हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र

आचार्य हरिहर पाण्डेय

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

प्रकाशकीय

मनुष्य जाति का स्वभाव ही अधिकाधिक ज्ञान से जुड़ना रहा है, पर जिन मानव समाजों में इसके विविध क्षेत्रों को अत्यंत गहरे खँगाला गया, भारतीय सभ्यता उनमें से एक है। वेदों से इसकी जो परम्परा शुरू हुई, तो आज तक यह सिलसिला निरंतर जारी है। ऐसे क्षेत्रों में विज्ञान, गणित, इतिहास, तर्क और ज्योतिष आदि प्रमुख हैं। जहाँ तक ज्योतिष का सम्बन्ध है, आज इस क्षेत्र के साथ अनेक किंवदंतियाँ और अंधविश्वास भी जुड़ गये हैं। ऐसे में इसे आधुनिक विज्ञान से जोड़ने की जरूरत निरंतर बढ़ती जा रही है। यह सही है कि भारतीय परम्परा में ज्ञान के विविध क्षेत्रों में से एक ज्योतिष विज्ञान ने जिस तरह से लम्बे काल के दौरान आम जनमानस को प्रभावित किया है, उसे एकबारगी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसे में यह जरूरी हो जाता है कि इस क्षेत्र का गहन अध्ययन किया जाय और सम्बंधित निष्कर्ष अत्यंत सोच-समझ कर निकाले जायँ।

ज्योतिष विज्ञान के प्रकाण्ड अध्येता आचार्य हरिहर पाण्डेय की यह पुस्तक 'हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र' इस अनिवार्यता की अधिकांश संदर्भों में पूर्ति करती है। ग्रह / नक्षत्रों का मनुष्य जीवन पर प्रभाव शत-प्रतिशत ठीक वैसा ही भले न हो, जैसा कि ज्योतिष में बताया जाता है, पर इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि उनके और इस धरती व इसकी प्रकृति / जीवों के बीच कोई न कोई सम्बन्ध किसी न किसी स्तर पर अवश्य है। विभिन्न क्षेत्रों में विज्ञान इसी पारस्परिक प्रक्रिया और सम्बन्धों की सुव्यवस्थित खोज यात्रा है। स्पष्ट है कि अत्यंत तेज गति से ज्ञान व चिंतन की ऊँचाइयाँ छूते आधुनिक समय में वास्तविक तथ्यों तक पुहँचने के लिए ऐसी पुस्तकें अत्यंत उपादेय हैं। विद्वान लेखक ने विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों के माध्यम से ज्योतिष पर अत्यंत विस्तार से इस पुस्तक में जो जानकारी उपलब्ध करायी है, उसकी उपेक्षा किसी भी विद्वान और शोधार्थी के लिए सम्भव नहीं है। पूरी पुस्तक 1 अध्यायों में विभक्त है, जिसमें जहाँ पहले अध्याय में फलित ज्योतिष के सम्बंध में विवेकानंद और अरविन्द जैसे असाधारण अनेक मनीषियों के विचार सम्मिलित हैं, वहीं दूसरे अध्याय में स्पष्ट तौर पर यह कहा गया है कि तमाम गणना और फलित ज्योतिष सम्बंधी निष्कर्षों के बावजूद भाग्य से कहीं बड़ा पुरुषार्थ और मनोवल होता है। तीसरा अध्याय कल्प से तिथि तक के तथ्यों में गहरे डूबता है और चौथा अध्याय 'वारों' को समर्पित है। पाँचवें अध्याय में नक्षत्र प्रकरण है और छठा अध्याय आकाशीय विवरण को खँगालता है। सातवाँ अध्याय पृथ्वी, समुद्र और ग्रहों आदि के सम्बन्धों को मुखर करता है जबकि आठवाँ अध्याय राशि प्रकरण पर है। नवाँ अध्याय मुहूर्त चिंतामणि की समीक्षा करता है और अंतिम अध्याय में सामुद्रिक शास्त्र की सुन्दरता का विशद विवरण उपलब्ध है।

इस पुस्तक की यह विशेषता ही है कि ज्योतिष शास्त्र में पूरी तरह विश्वास रखने वाला विद्वान हो या न रखने वाला, दोनों ही इसे पढ़ने और तद्नुरूप निष्कर्ष निकालने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। यह इस विशिष्ट ग्रंथ की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। आशा है कि उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रकाशित यह द्वितीय संस्करण भी अतीत की तरह सम्बंधित क्षेत्र के जिज्ञासुओं के बीच लोकप्रिय होगा और उन्हें इस विहंगम विषय को पूरी तरह समझने और वैज्ञानिक तथ्यों तक पहुँचने के लिए प्रेरित करेगा।

प्रभात कुमार मिश्र
निदेशक

निवेदन

भारतीय परम्परा की मूलभूत विशेषताओं में विचार-वैभिन्न्य प्रमुख है, फिर भी, जिन क्षेत्रों में यह सर्वाधिक उपलब्ध है, ज्योतिष उनमें से एक है। वैदिक काल से ही इसके प्रमाण मिलते हैं और सैकड़ों वर्षों के दौरान यह परम्परा कभी बाधित नहीं हुई। सच तो यह है कि भविष्य के बारे में जानने की उत्सुकता मनुष्य की मूलभूत विशेषताओं में से एक है और इसी के चलते छः वेदांगों में एक ज्योतिष भी है। (अन्य पाँच हैं-शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण और छन्द।) वेदों से जुड़े ज्योतिष विज्ञान पर अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। यह वैदिक ज्योतिष विज्ञान ऋग्वेद के 36 और यजुर्वेद के 43 मंत्रों से मिल कर बना है और इसे परम्परा में 'वेद का नेत्र' कहा गया है। कालान्तर में ज्योतिष का महत्त्व अधिकाधिक वढ़ता गया और यज्ञ रहे हों या अन्य कर्मकाण्ड, ज्योतिष गणना पर ही प्रायः आधारित रहे हैं।

व्यापक शोध और उसकी अभिव्यक्तियों के बावजूद सच यह है कि ज्योतिष के संदर्भ में आज तक एक राय नहीं बन सकी और यदि यह कहा जाय कि वैदिक ज्योतिष को अभी तक पूरी तरह समझा नहीं जा सका, तो गलत न होगा। इस दिशा में काफी समय से निरंतर शोध कार्य होता आ रहा है। 1877 में प्रकाण्ड विद्वान थीवो ने बंगाल की एशियाटिक सोसायटी पत्रिका में इस विषय पर सविस्तार लिखा था। लोकमान्य तिलक ने अंग्रेजी में 'वेदांग ज्योतिष', मराठी में शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने 'भारतीय ज्योतिष शास्त्र' तथा कई अन्य विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिख कर इस अभाव की काफी पूर्ति की। इसी परम्परा में प्रकाण्ड ज्योतिष विद्वान आचार्य हरिहर पाण्डेय का यह ग्रन्थ 'हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र' भी आता है। इसके प्रणयन में उन्होंने भारतीय मनीषा को जिस तरह खँगाला है, उसे शब्द दिये हैं, वह अद्‌भुत है और इसके लिए उनकी विद्वत्ता व अध्येता प्रवृत्ति की जितनी प्रशंसा की जाय, कम होगी। हो सकता है कुछ विद्वान और सुधी पाठक उनके निष्कर्षों से कुछ सीमा तक सहमत न हों, पर विद्वान लेखक ने जिस तरह से व्यापक स्तर पर तथ्य और तर्क एकत्रित किये हैं, वह उनके गहन अध्ययन और विश्लेषण का प्रमाण है। उन्होंने ठीक ही कहा है कि वेदों के अनुसार सभी नक्षत्र शुभ हैं, जहाँ उन्हें 'देवगृह' या 'तारक' कह कर सम्बोधित किया गया है। उनका यह भी मानना है कि यह वैदिक ज्योतिष मोक्षप्रद है।

फिर भी, जिस तरह से वर्तमान में ज्योतिष जैसे अत्यंत गंभीर विषय को सामान्य भविष्यवाणियों तक सीमित करके देखने का चलन बढ़ा है, उस पर अंधविश्वास को बढ़ावा मिला है, उससे यदि हमारे समाज का एक बड़ा भाग सहमत नहीं है, तो इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। ज्योतिष सम्बन्धी व्यावसायिकता के चलते न केवल गम्भीर अध्ययन प्रभावित हुआ है बल्कि इसकी परम्परागत सकारात्मक पहचान भी प्रभावित हुई है। ऐसे में जरूरी है कि इस क्षेत्र को वैज्ञानिक चिंतन से अधिक जोड़ा जाय और वर्तमान के अनुरूप उचित संशोधन भी किये जायँ। जिस तरह से ज्योतिष सम्बन्धी अन्धविश्वास स्वीकार नहीं किये जा सकते, उसी तरह वैज्ञानिकता के नाम पर तथ्यपूर्ण पुरा सामग्री की भी पूरी तरह उपेक्षा नहीं की जा सकती।

किसी अंतिम निर्णय पर पहुँचने से पूर्व ज्योतिष सम्बन्धी परम्परागत सम्पूर्ण जानकारी से परिचित होना अनिवार्य है और यह पुस्तक 'हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र' इस सम्बन्ध में प्रभावी मदद करती है। आशा है न

केवल विद्वानों और शोधार्थियों के लिए यह पुस्तक उपादेय होगी बल्कि सामान्य पाठकों के लिए भी सम्बंधित विषय की विधिवत् जानकारी देने में उपयोगी सिद्ध होगी। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण का जिस तरह से सम्बंधित क्षेत्र में व्यापक स्वागत हुआ है, विश्वास है यह द्वितीय संस्करण भी उसी तरह लोकप्रिय होगा।

सोम ठाकुर

कार्यकारी उपाध्यक्ष

प्राक्कथन

यस्मिन्नृचः सामयजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।

यस्मिंश्चिन्तमोतं सर्वं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

मैंने इस ग्रन्थ में सर्वत्र वैदिक ज्योतिष की प्रशंसा की है। वह कोरी भावुकता और अन्धश्रद्धा नहीं बल्कि सत्य और विज्ञान का अनुसरण है। परमात्मा सबके हृदयारबिन्द में विराजमान हैं पर वे कुछ स्थलों में उदित और कुछ में अस्त हैं। जिनके तम और रज समाप्त हो गये हैं, जिनमें सत्त्व का पूर्ण उदय हो गया है, जो दोषों से अस्पृस्ट हैं और गुणों के धाम हैं उनके हृदय में परमात्मा उदित हैं और वेदों की प्राचीन संहिताये अर्थात् वर्तमान संहिताओं का अधिक भाग उनकी वाणी है, अनुभूतिजन्य ज्ञान है और हितकारक है। मानव का सबसे बड़ा वल मनोबल हैं, मनोबल की सर्वोत्तम स्थिति शिव संकल्प है और वैदिक ज्योतिष इसका धाम है। भीरु मनुष्य के लिए सारे काल अशुभ हैं। वह छोटे से कार्य का आरम्भ करने में भी शंकाकुल रहता है किन्तु ज्ञानी पुरुप महारम्भ के बाद भी निराकुल रहता है। मनुष्य का मन ही बन्ध और मोक्ष का हेतु है। वैदिक ज्योतिष मोक्षप्रद है। उसमें कोई काल अशुभ नहीं है। आधुनिक पुराण और ज्योतिष पूरे कलियुग को अशुभ और पापमय मानते हैं परन्तु वेदानुयायी साहित्य में राजा ही युग है और युगों का शुभत्व अशुभत्व राजा एवं प्रजा के आचार और गुणों पर आश्रित है। संवत्सर जगत् की आत्मा और विष्णु स्वरूप सूर्य से उत्पन्न है अतः वेद में कोई वर्प अशुभ नहीं है। ऋतुये विष्णुरूपी संवत्सर की अङ्ग हैं, गुणवती हैं, सुन्दर हैं, मनोहारिणी हैं इसलिए वे कभी अशुभ हो नहीं सकतीं। प्रकाश और अन्धकार, दोनों गुणों के धाम हैं, हितकारी हैं, प्रभु ने सोच कर बनाये हैं इसलिए दोनों अयन (यान) शुभ हैं, दोनों पक्ष शुभ हैं, सारे मास शुभ हैं, सारी तिथियाँ शुभ हैं और अहोरात्र के ३० विभाग अर्थात् सारे मुहूर्त शुभ हैं। बड़े ही प्रमोद का विषय है कि वैदिक साहित्य में इन सब के नाम ऐसे चुन-चुन कर रखे गये हैं जिन्हें सुनकर चित्त गद्गद् हो जाता है और इनका शीर्षक है-

यो ह वा मासानामर्धमासानां दिवसानां मुहूर्तानां नामधेयानि वेद

नैतेष्वार्तिमृच्छति य एवं वेद (देखिए पृष्ठ ७२)

अर्थात् जो मासों, पक्षों, दिवसों, तिथियों और मुहूर्तादिकों के नामों को जानेगा उसे किसी भी काल में अशुभत्व की आशङ्का नहीं होगी किन्तु जानेगा तब। इनके कुछ नाम ये हैं-मधु, माधव, शुक्र, शुचि, तपः, तपस्य क्रतु, अरुण आर्द्र सर्वौपध, रसवान, संभर आदि।

वेद में सब नक्षत्र शुभ हैं और उन्हें देवगृह तथा तारक आदि कहा है। एक भी नक्षत्र का नाम अशुभ नहीं हैं जिन्होंने ये नाम रखे उनको सर्वत्र शुभ ही दिखाई दे रहा था पर वर्तमान ज्योतिष सब नक्षत्रों को शुभ नहीं मानता। हरि का नक्षत्र श्रवण, गुरु का नक्षत्र पुष्य, अदिति का नक्षत्र पुनर्वसु, मरुत् का नक्षत्र स्वाती और पूषा का नक्षत्र रेवती भी कुछ ही कर्मों में गृहीत हैं। दक्षिणा लेकर अशुभों के झुण्ड में शुभ बड़े परिश्रम से ढूँढ़ना पड़ता है और ज्योतिष ग्रन्थकारों ने लिख दिया है कि सर्वथा निर्दोष मुहूर्त तो एक सहस्त्र वर्षों में भी नहीं मिलेगा। आप जितने कर्म कर रहे हैं, कम-से-कम १० दोष सबके मुहूर्तों में हैं। वैदिक ज्योतिष का आधार नक्षत्र हैं और वर्तमान ज्योतिष का विदेशी राशि और वार है। यह होराशास्त्र कहा जाता है पर संस्कृत कोश में होरा शब्द कहीं नहीं है। इसका सम्बन्ध HOUR से है। आज का होरा शास्त्र बारह राशियों और सात वारों

केवल विद्वानों और शोधार्थियों के लिए यह पुस्तक उपादेय होगी बल्कि सामान्य पाठकों के लिए भी सम्बंधित विषय की विधिवत् जानकारी देने में उपयोगी सिद्ध होगी। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण का जिस तरह से सम्बंधित क्षेत्र में व्यापक स्वागत हुआ है, विश्वास है यह द्वितीय संस्करण भी उसी तरह लोकप्रिय होगा।

सोम ठाकुर
कार्यकारी उपाध्यक्ष

प्राक्कथन

यस्मिनृचः सामयजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।

यस्मिंश्चिन्तमोतं सर्वं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

मैंने इस ग्रन्थ में सर्वत्र वैदिक ज्योतिष की प्रशंसा की है। वह कोरी भावुकता और अन्धश्रद्धा नहीं वल्कि सत्य और विज्ञान का अनुसरण है। परमात्मा सबके हृदयारबिन्द में विराजमान हैं पर वे कुछ स्थलों में उदित और कुछ में अस्त हैं। जिनके तम और रज समाप्त हो गये हैं, जिनमें सत्त्व का पूर्ण उदय हो गया है, जो दोषों से अस्पृस्ट हैं और गुणों के धाम हैं उनके हृदय में परमात्मा उदित हैं और वेदों की प्राचीन संहिताये अर्थात् वर्तमान संहिताओं का अधिक भाग उनकी वाणी है, अनुभूतिजन्य ज्ञान है और हितकारक है। मानव का सबसे बड़ा वल मनोबल हैं, मनोवल की सर्वोत्तम स्थिति शिव संकल्प है और वैदिक ज्योतिष इसका धाम है। भीरु मनुष्य के लिए सारे काल अशुभ हैं। वह छोटे से कार्य का आरम्भ करने में भी शंकाकुल रहता है किन्तु ज्ञानी पुरुष महारम्भ के बाद भी निराकुल रहता है। मनुष्य का मन ही बन्ध और मोक्ष का हेतु है। वैदिक ज्योतिष मोक्षप्रद है। उसमें कोई काल अशुभ नहीं है। आधुनिक पुराण और ज्योतिष पूरे कलियुग को अशुभ और पापमय मानते हैं परन्तु वेदानुयायी साहित्य में राजा ही युग है और युगों का शुभत्व अशुभत्व राजा एवं प्रजा के आचार और गुणों पर आश्रित है। संवत्सर जगत् की आत्मा और विष्णु स्वरूप सूर्य से उत्पन्न है अतः वेद में कोई वर्ष अशुभ नहीं है। ऋतुये विष्णुरूपी संवत्सर की अङ्ग हैं, गुणवती हैं, सुन्दर हैं, मनोहारिणी हैं इसलिए वे कभी अशुभ हो नहीं सकतीं। प्रकाश और अन्धकार, दोनों गुणों के धाम हैं, हितकारी हैं, प्रभु ने सोच कर बनाये हैं इसलिए दोनों अयन (यान) शुभ हैं, दोनों पक्ष शुभ हैं, सारे मास शुभ हैं, सारी तिथियाँ शुभ हैं और अहोरात्र के ३० विभाग अर्थात् सारे मुहूर्त शुभ हैं। बड़े ही प्रमोद का विषय है कि वैदिक साहित्य में इन सब के नाम ऐसे चुन-चुन कर रखे गये हैं जिन्हें सुनकर चित्त गद्गद् हो जाता है और इनका शीर्षक है-

यो ह वा मासानामर्धमासानां दिवसानां मुहूर्तानां नामधेयानि वेद

नैतेष्वार्तिमृच्छति य एवं वेद (देखिए पृष्ठ ७२)

अर्थात् जो मासों, पक्षों, दिवसों, तिथियों और मुहूर्तादिकों के नामों को जानेगा उसे किसी भी काल में अशुभत्व की आशङ्का नहीं होगी किन्तु जानेगा तब। इनके कुछ नाम ये हैं-मधु, माधव, शुक्र, शुचि, तपः, तपस्य क्रतु, अरुण आर्द्र सर्वौषध, रसवान, संभर आदि।

वेद में सब नक्षत्र शुभ हैं और उन्हें देवगृह तथा तारक आदि कहा है। एक भी नक्षत्र का नाम अशुभ नहीं हैं जिन्होंने ये नाम रखे उनको सर्वत्र शुभ ही दिखाई दे रहा था पर वर्तमान ज्योतिष सब नक्षत्रों को शुभ नहीं मानता। हरि का नक्षत्र श्रवण, गुरु का नक्षत्र पुष्य, अदिति का नक्षत्र पुनर्वसु, मरुत् का नक्षत्र स्वाती और पूषा का नक्षत्र रेवती भी कुछ ही कर्मों में गृहीत हैं। दक्षिणा लेकर अशुभों के झुण्ड में शुभ बड़े परिश्रम से ढूँढ़ना पड़ता है और ज्योतिष ग्रन्थकारों ने लिख दिया है कि सर्वथा निर्दोष मुहूर्त तो एक सहस्त्र वर्षों में भी नहीं मिलेगा। आप जितने कर्म कर रहे हैं, कम-से-कम १० दोष सबके मुहूर्तों में हैं। वैदिक ज्योतिष का आधार नक्षत्र हैं और वर्तमान ज्योतिष का विदेशी राशि और वार है। यह होराशास्त्र कहा जाता है पर संस्कृत कोश में होरा शब्द कहीं नहीं है। इसका सम्बन्ध HOUR से है। आज का होरा शास्त्र बारह राशियों और सात वारों

पर आधारित है। पर वेद ही नहीं, हमारे अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी इनका कहीं उल्लेख नहीं है। राशियों की मेष, वृष आदि आकृतियाँ आकाश में कहीं दिखाई नहीं देतीं और वारों का आकाश से तथा रवि आदि सात ग्रहों से कोई नाता नहीं है। न रविवार गरम होता है न सोमवार ठण्ढा होता है न सिंह राशि वाले वीर और हिंसक होते हैं न कन्या राशि वाले निर्बल और भीरु होते हैं। होराशास्त्र में कल्पना का एकछत्र राज्य है पर वैदिक ज्योतिष की उक्तियाँ उन ऋषियों की हैं जो सदा आकाश का निरीक्षण किया करते थे और जिनके कालमानों का हर नाम आकाश से सम्बन्धित है। वेदों में १२ मासों का, अधिक मास का, मासों के ४८ नामों का, वृत्त के ३६० अंशों का, नक्षत्रीय प्रजापति का, नक्षत्रों का और तिथ्यादिकों के स्वरूप का सत्य एवं आलङ्कारिक विशद वर्णन है पर राशि और वारों का इसलिए नहीं है कि वे काल्पनिक हैं। हमारे पूर्वजों ने परकीय ज्ञान की कभी अवहेलना नहीं की पर दुर्भाग्य से इधर यह अज्ञान भी ले लिया। भारत में आने के बाद यह कल्पना के विशाल जाल में फँसकर अधिक विकृत हो गया है। इसमें कई सहस्र दोष और प्रश्न हैं। उनमें मे कुछ ये हैं-

१. सारा यह विश्व कहता है कि संस्कृत वर्णमाला सर्वश्रेष्ठ और वैज्ञानिक है। उसमें स्वरों और व्यंजनों का क्रम बहुत सोच समझ कर रख गया है पर हम आजकल जन्मनाम विदेशी होराशास्त्र के उस अबकड़ा चक्र से रखते हैं जिसके वर्णक्रम की कोई उपपत्ति नहीं है और जिसमें ऋ, ब, श, ष आदि हैं ही नहीं।

२. सात ग्रह बारह राशियों के स्वामी माने गये हैं। इसमें तथा अन्य सैकड़ों वर्णनों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि प्राचीनकाल में सात ही ग्रह माने जाते थे, वराहमिहिर और कल्याण वर्मा आदि प्राचीन आचार्यों ने सात ही ग्रह माने हैं क्योंकि आकाश में सात के ही बिम्ब दिखाई देते हैं किन्तु बाद में सूर्य चन्द्र की दो निराकार कक्षाओं के दो निराकार सम्पात भी राहु केतु नामक दो ग्रह मान लिये गये। उनके भी लम्बे-लम्बे फल लिखे जाने लगे और फलादेश में उनका महत्त्व सूर्य चन्द्र से अधिक हो गया। शंका होती है कि जिन वराहमिहिरादि आचार्यों ने इन्हें ग्रह नहीं माना उनके फल सत्य हैं या आपके।

३. आकाश में सूर्यचन्द्र के अतिरिक्त अन्य ग्रह भी हैं। उनकी भी कक्षाये हैं और उनके भी पचासों निराकार सम्पात हैं। यदि राहु केतु का प्रभाव पड़ता है तो उनका भी अवश्य पड़ता होगा किन्तु आप उनका गणित नहीं करते तो फलादेश सत्य कैसे होंगे?

४. सौरमण्डल के सबसे बड़े और तेजस्वी ग्रह सूर्य का दशावर्ष सबसे कम केवल छः वर्ष है पर सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होने वाले और उससे बहुत छोटे चन्द्रमा की दशा के वर्ष उसके दो गुने से थोड़ा कम दस वर्ष हैं तो क्या चन्द्रमा का प्रभाव सूर्य से अधिक है?

५. भारत में परस्पर विरुद्ध अनेक प्रकार की दशाएँ प्रचलित हैं। एक से जो काल शुभ होता है वही दूसरी से अशुभ।

६. वराहमिहिर आदि प्राचीन आचार्यों ने इनकी चर्चा नहीं की है। विंशोत्तरी दशा तो लिखी है पर वह नैसर्गिक है और हर मानव के लिए एक है। कामवासना का उद्‌गम शुक्र दशा का आरम्भ है और वृद्धावस्था शनि की दशा है। इस प्रकार पूरा जीवन सात ग्रहों में बाँट दिया गया है।

७. आज की दशाओं में ग्रहों के वर्षमान में और उनके क्रम आदि में भी मतभेद है क्योंकि वे अनुभूतियाँ नहीं बल्कि कल्पनाएँ हैं।

८. आकाश में जिस राहु का कोई बिम्ब नहीं है उसके दशावर्ष ग्रहराज सूर्य से तीन गुने १८ वर्ष हैं। बुध के १७, शुक्र के २० और शनि के १९ हैं जबकि ये सूर्य से अति छोटे हैं।

९. आकाश के सबसे तेजस्वी ग्रह सूर्य और चन्द्रमा एक-एक राशियों के स्वामी हैं पर जिस नन्हें से बुध को अनेक पाश्चात्य ज्योतिषी प्रयास करने पर भी जीवन भर में कभी देख न सके वह तथा अन्य ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी हैं और

इसका कल्पना के अतिरिक्त कोई हेतु नहीं है।

१०. ये राशिस्वामी ग्रहों के जिस कक्षाक्रम के आधार पर निश्चित किये गये हैं उसे विज्ञान ने प्रत्यक्षविरुद्ध और मिथ्या सिद्ध कर दिया है। अब यह निश्चित हो गया है कि ग्रह पृथ्वी की नहीं बल्कि सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं और पृथ्वी स्वयं सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। पृथ्वी को अचला मानने पर पचासों प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते। ग्रहों के राशि-स्वामित्व का निर्णय जिस कक्षाक्रम द्वारा किया गया है उसमें पृथ्वी और चन्द्र सूर्य के पास हैं तथा बुध और शुक्र दूर हैं किन्तु यह सिद्धान्त प्रत्यक्षविरुद्ध है।

११. हम जन्मपत्री में ग्रहों को अपनी राशि में स्थित देख कर प्रसन्न हो जाते हैं किन्तु यह मिथ्या धारणा है क्योंकि सब ग्रह सदा बारहों राशियों में घूमा करते हैं, कोई किसी का घर नहीं है।

१२. राहु केतु को ग्रह मान लेने पर उनको भी एक-एक राशियाँ दी गयीं।

१३. यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो का अविष्कार होने के बाद अन्य ग्रहों से छीन-छीन कर उन्हें भी राशियाँ दी जा रही हैं अर्थात् अब पुराना स्वक्षेत्र (स्वगृह) वाला नियम भग्न हो रहा है तो प्राचीन फलों और ग्रन्थों का क्या मूल्य रहा?

१४. क्रान्तिवृत्त का १२ विभाग करने में क्या कोई रहस्य है?

१५. हम जन्मपत्री में ग्रहों को उनकी उच्च राशि में स्थित देखकर प्रसन्न हो जाते हैं और उस व्यक्ति को भाग्यशाली समझने लगते हैं पर ज्योतिष के भास्कर आदि आचार्यों ने लिखा है कि ग्रहकक्षा का जो भाग हमसे दूर है वह उच्च है और जो निकट है वह नीच है तो क्या ग्रह दूर जाने पर प्रभावशाली और निकट आने पर प्रभावविहीन हो जाता है? वस्तुत: हमारी यह उच्चनीच की कल्पना भी निराधार है।

१६. हमने ग्रहों के उच्च नीच को युग-युग के लिए स्थायी मान लिया है पर प्राचीन और नूतन दोनों ज्योतिषियों ने सिद्ध कर दिया है कि ये सब चल हैं।

१७. ज्योतिषी किसी ग्रह को मित्रक्षेत्र में स्थिति देखकर प्रसन्न और शत्रुक्षेत्र में देखकर उदासीन हो जाता है किन्तु मित्र, सम, शत्रु का सिद्धान्त जिस आधार पर बना है उसकी कोई उपपत्ति नहीं है। वह भी कल्पना पर ही आधारित है। वहाँ एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं है (देखिए बृहत्संहिता की भटोत्पलटीका)।

१८. इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे नियम हैं जिनसे वे अधिमित्र और अधिशत्रु भी हो जाते हैं। उनमें भी कल्पना का ही राज्य है। इससे फलादेश की कठिनाई और बढ़ जाती है। पिता-पुत्र सूर्य-शनि और चन्द्र-बुध में शत्रुत्व क्यों है, बृहस्पति का पुत्र बुध उसका शत्रु क्यों है, सूर्यमंगल में मित्रता क्यों है, इन प्रश्नों का एक भी समाधानकारक उत्तर नहीं है।

१९. जन्मपत्री में ग्रहों की दृष्टि का बड़ा महत्त्व है पर उसके सिद्धान्तों में मतभेद है और सब में इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है कि ३, ४, ५, ७, ९, १० में दृष्टि पड़ती है तो ६ में क्यों नहीं? ऐसे अनेक प्रश्न हैं।

२०. मुख्य प्रश्न यह है कि जातकशास्त्र का मूल लग्न है पर उसके परस्पर विरोधी अनेक मत हैं। जैमिनि, पराशर आदि आचार्य सब लग्नों का मान समान (दो घण्टा) मानते हैं और भावसाधन में केवल १५ अंश जोड़ते हैं किन्तु आज के लग्नासाधन में सब राशियों के उदयमान भिन्न-भिन्न हैं। भावों का साधन प्रकार दूसरा है और अयनांशों के अनुसार राशियों के उदयमान बदलते रहते हैं। आचार्य वराहमिहिर का मान न दो घंटा है न विपुवत् रेखावाला है। वह सारी धरती के लिए एक है। उस पर अयनांश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और उसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि बच्चा जिस घर में पैदा हुआ वहाँ कितनी स्त्रियाँ थीं, दीपक पलंग आदि की स्थिति क्या थी, द्वार किस दिशा में था, इन सब के आधार पर लग्न को बदलने का

आदेश है, मुख्य जन्मकाल का कोई महत्त्व नहीं है।

२१. जन्मकाल किसे कहें, यह भी एक प्रश्न है। कभी-कभी शिशु के एक अङ्ग के दर्शन के बाद पूरा शरीर बाहर आने में छः घण्टे से अधिक समय लग जाता है।

२२. अन्य अनेक प्रश्न हैं।

२३. हम राशियों के आरम्भ स्थान को स्थिर मानते हैं पर वह निश्चित रूप से चल है। प्राचीन काल में मृगशीर्ष प्रथम नक्षत्र था, वेदों, में कृत्तिका की अधिक चर्चा है, वहाँ से अश्विनी में आया और अब पूर्वभाद्रपदा में जाने की तैयारी में है। हमारे पूर्वज इसमें सदा संशोधन किया करते थे पर आज हम रूढ़िवादी बनकर २२ दिसम्बर को होनेवाली मकर संक्रान्ति २४ दिनों बाद १४ जनवरी को मना रहे हैं अतः निश्चित है कि यह सत्य की उपलब्धि नहीं है।

२४. जिसका आरम्भ स्थान ही अशुद्ध है उसका फलादेश सत्य कैसे होगा?

२५. हमारे प्राचीन ग्रन्थों के निर्माण काल में यह २४ दिनों का अन्तर अदृश्य था, शून्य था तो उस स्थिति के आधार पर बने ग्रन्थ आज कैसे सत्य होंगे?

२६. मुहूर्त भी इसी से बताये जाते हैं तो वे सत्य कैसे होंगे?

खेद है कि ज्योतिष का हर विद्वान् जानता है कि भारत के बाहर सर्वत्र सायन गणना प्रचलित है क्योंकि वही प्रत्यक्ष और प्राकृतिक है। हमें भी उसी को ग्रहण करना चाहिए। हम लग्न निकालते समय पहले सूर्य को सायन करते हैं क्योंकि दूसरा उपाय नहीं है फिर भी विद्वत्समाज रूढ़ि के सामने नतमस्तक हो गया है। महामहोपाध्याय श्री बापूदेव जी शास्त्री ने दुखी होकर लिखा है कि यद्यपि सायन गणना ही ठीक है तथापि देश में सर्वत्र निरयण का प्रचार होने से मैं सामान्य जनता की सन्तुष्टि के लिए निरयन पंचांग बना रहा हूँ।

भवति यद्यपिसायनगणनैव मुख्या तथापि भारते सर्वत्र निरयणप्रचारात्
सामान्यजनप्रमादायेदं तिथिपत्रं निरयणगणनयैवव्यरचयम्।

शास्त्रीजी के पंचांग का सारा गणित प्रत्यक्ष शास्त्रानुसार होता है। दक्षिण में चित्रा और रेवती पक्ष का कटुविवाद चल रहा है। दोनों पक्षों के महापण्डित जानते हैं कि आरम्भस्थान चल है सायनगणना ही समुचित है पर वे जनता के सामने झुक कर आपस में यह शास्त्रार्थ कर रहे हैं-

१. चित्राणि साकं दिवि रोचनानि, मध्याकर्तोर्विततं चित्रं संजभार, पावीरवी कन्या चित्रायुः, चित्रश्चित्राभिरूतिभिः, त्वष्टा रूपाणामधिपतिः, इहत्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुपह्वये, त्वष्टा सुदत्रो।

२. अश्विभ्यां प्रातः सवनं अश्विभ्यां पिन्वस्य, अश्विभ्यां पच्यस्व, पूषणं वनिष्ठुना, पृषन्तव व्रते, पूषा पंचाक्षरेण, रेवती रमध्वं, श्रीश्चते लक्ष्मीश्च ते पत्न्यौ अश्विनौ व्यात्तम् आदि।

ये विद्वान् जानते हैं कि इन मन्त्रों के अभिप्राय से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है और वेद में प्रथम नक्षत्र बदलता रहा है पर क्या करें, शंकर बालकृष्ण दीक्षित का सायनपंचांग नहीं चला। हाँ, यह सत्य है कि हमारे पूर्वजों ने पंचवर्षीय शाश्वतपंचाग छोड़ा, सुपर्णचिति छोड़ी मृगशीर्ष से अश्विनी पर आ गये, वसिष्ठ सिद्धान्त को दूरभ्रष्ट कहा, सूर्य सिद्धान्त में बीज संस्कार दिया और उसे भी छोड़ नये ग्रन्थ बनाये। आज वे होते तो सायन पंचांग ही चलता। आज भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें परस्पर विरोधी अनेक पंचांग चलते हैं।

२७. हमारा आधुनिक ज्योतिष भाग्य और विधिलेख को अटल मानता है पर हमारे प्राचीन अनेक आचार्य इसके विरोधी हैं। इधर अन्न की वृद्धि हुई हैं, जल सुलभ हुआ है अनेक असाध्य रोग सुखसाध्य हो गये हैं, गोबर गैस से भोजन बन रहा है, प्राकृतिक वायु से रहट चल रहे हैं, सूर्य किरणों से अनेक कार्य हो रहे हैं, दूर-दूर का क्रिकेट मैच कोठरी में देखा जा रहा है और परिवारनियोजन आ गया है।

२८. वेद कहते हैं कि काल सब शुभ हैं। संकट अशुभ कालों से नहीं बल्कि राजा-प्रजा के पापकर्मों से आते हैं पर ज्योतिष में काल प्रायः अशुभ हैं। अनेक संवत्सर अशुभ हैं और कुछ संवत् लगातार अशुभ हैं। संवत्सर अशुभ है पर उसका उत्तरायण शुभ है। संवत्सर शुभ है पर उसका दक्षिणायन अशुभ है। उत्तरायण शुभ है पर उसकी कुछ ऋतुएँ अशुभ हैं उसका खलमास अशुभ है और कृष्णपक्ष अशुभ है। दक्षिणायन अशुभ है पर मार्गशीर्ष शुभ है और उसके शुक्ल पक्ष शुभ हैं। इस प्रकार शुभाशुभत्व की खिचड़ी यह निर्णय नहीं करने देती कि वस्तुतः क्या शुभ है और क्या अशुभ है। वर्ष के चार मास हरिशयन होने से अशुभ हैं, वर्ष में दो खलमास हैं, पितृपक्ष अशुभ है, होलाष्टक अशुभ है, दो मास का शुक्रास्त अशुभ है, एक मास का गुर्वस्त अशुभ है और जो थोड़ा सा समय बच रहता है उसमें कई सहस्र कुयोग हैं। वेद में कोई नक्षत्र अशुभ नहीं है पर यहाँ कुछ तीक्ष्ण हैं, कुछ दारुण हैं, कुछ उग्रक्रूर हैं, कुछ विद्ध हैं, कुछ सूर्य के चक्रों से अशुभ हो जाते हैं, कुछ में पृथ्वी सोती है, कुछ राक्षस हैं, कुछ शूद्र हैं और कुछ-कुछ ही कर्मों में गृहीत हैं। चन्द्रमा जिस नक्षत्र की सीध में रहता है उसी को हम नक्षत्र कहते हैं पर उसे केवल रोहिणी प्रिय है। भरणी सबसे भीषण है और जिन्होंने उसका नाम भरणी (भरण करने वाली) रखा वे मूर्ख थे। आर्द्रा शिवा है, शिव की पत्नी हैं, उसका हृदय आर्द्र है, पहली वर्षा उसी में होती है, वही धरती को आर्द्र करती है पर आधुनिक ज्योतिष में वह तीक्ष्ण और दारुण है। यह स्थिति अनेक नक्षत्रों की है। इसका कारण यह है कि आज नक्षत्रों, तिथियों, वारों, मासों, ऋतुओं, अन्य कालमानों और देवों का भाग्य ज्योतिषियों की मुट्ठी में है। आज नक्षत्र विदेशी राशियों में बँट गये हैं, यह भी उनका दुर्भाग्य है।

(२६) राशियों की भाँति वार भी विदेशी हैं और इनके नाम हमारे किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं हैं। इनका रविवार, सोमवार आदि क्रम ग्रहों के जिस कक्षा क्रम के आधार पर बना है उसे विज्ञान ने मिथ्या सिद्ध कर दिया है।

होराशास्त्र का कथन है कि प्रत्येक वार में २४ सूक्ष्मवार रहते हैं अर्थात् एक बार उसमें तीन चार वार आता है। अतः स्पष्ट है कि रविवार को रवि का वार मानना ही भ्रम है। यही स्थिति हर वार की है। भारतीय मनीषियों ने केवल उन्हीं कालमानों को अपनाया है जिनका आकाश से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। इसीलिए वैदिक साहित्य में वार नहीं हैं। ज्योतिष में सूर्य, मंगल, शनि, क्षीणचन्द्र, पापग्रहयुतबुध, राहु और केतु पापग्रह हैं। शुभ केवल गुरु-शक्र हैं पर वे भी अनेक स्थितियों में पाप हो जाते हैं इसलिए वार प्रायः पाप हैं। वेदों में सूर्य ही विष्णु है, उसकी सैकड़ों शुभ उपाधियाँ हैं और उसको एक बार भी सदोष नहीं कहा गया है, पर ज्योतिष में सूर्य पापग्रह हैं और उसका वार पापवार है। वेद में शिव को सुमंगल और मंगल कहा है, मंगल ग्रह का नाम ही मंगल है पर उसका वार पाप है और सूर्यसुत शनि के वार की भी यही स्थिति है। किसी गाँव का नाम रामनगर या कंसपुर रख देने से उसमें राम और कंस के गुण नहीं आ जाते पर वारों के विषय में हमारी ऐसी ही धारणा है। वारों के आधार पर ज्योतिष ने कम से कम पाँच सौ योग बनाये हैं। शुभ और पाप वार भिन्न-भिन्न तिथियों, नक्षत्रों और तिथिनक्षत्रों से मिलने पर नाना प्रकार के योग बनाते रहते हैं। पर हमें इनके गुणों का अनुभव नहीं होता। शनिवार के १, ८, १५, २२ वें घण्टों में शनि के गुण दिखाई नहीं देते २, ६, १६, २३ वें घण्टों में गुरु के गुण दिखायी नहीं देते फिर भी सात वारों के ७×२४ घण्टों के १६८ गुण लिखे हैं और माने जाते हैं, इसके बाद हैं, अनेक योग।

३०. वैदिक ज्योतिष में वार नहीं हैं पर अहोरात्र के मुहूर्त नामक ३० विभाग हैं किन्तु आधुनिक होराशास्त्र में प्रत्येक वार में २४ होराएँ हैं, १२ लग्न हैं, ३६ द्रेष्काण हैं, १०८ नवमांश हैं, १४४ द्वादशांश हैं, ६० त्रिशांश हैं, ७२० षष्ठ्यंश हैं,

सैकड़ों चौघड़िया के मुहूर्त हैं, सैकड़ों दो घड़िया के मुहूर्त हैं, पचासों, गोरखमत के खण्ड हैं और इनके अतिरिक्त अन्य अनेक टुकड़े हैं। इस प्रकार अनेक काल्पनिक विधियों द्वारा वारों के सहस्रों खण्ड हो जाते हैं और उनमें अधिकाधिक अशुभ हैं। जो एक विधि से शुभ है वही अन्य पाँच विधियों से अशुभ है। इनमें मतैव्य कभी सम्भव नहीं है और यह स्वाभाविक है। कल्पनाओं में मतैव्य कैसे होगा! यदि इनके लेखकों को अनुभव का व्यसन होता तो ये सिद्धान्त बन ही नहीं पाते।

३१. ज्योतिषशास्त्र ने प्रत्येक वार के कर्म निश्चित कर दिये हैं। हर काम प्रत्येक वार में नहीं किया जा सकता। दातुन करने, तेल लगाने और भिन्न-भिन्न वर्णों के वस्त्र पहनने के वार भिन्न-भिन्न हैं। (३२) मैथुन में केवल एक गुरु वार गृहीत है क्योंकि रवि-भौम पाप हैं, बुध-शनि नपुंसक हैं और शुक्र-सोम स्त्री हैं। (३३) वर्षा, आँधी, अकाल, सुकाल, कुहरा, धूप आदि सैकड़ों घटनाएँ वार से सम्बन्धित हैं। (३४) वारों की ध्रुवस्थिर, चरचल, उग्रकूर, मिश्र साधारण, लघुशीघ्र, मृदुमैत्र और तीक्ष्णदारुण सात जातियाँ हैं। (३५) वर्ष का प्रथम वार शनि है तो शनि ग्रह पूरे वर्ष का राजा होगा और वर्ष भीषण रहेगा। प्रथम वार यदि गुरु या शुक्र है तो वर्ष बहुत अच्छा रहेगा। मेष की संक्रान्ति यदि मंगलवार को लगती है तो वर्ष का मन्त्री मंगल है, इसलिए वर्ष अशुभ रहेगा। राजा गुरु है और मन्त्री पापग्रह रवि है तो निर्णय में कठिनाई है। इसी प्रकार आगे संक्रान्तियों के वारों के आधार पर पूरे वर्ष के सस्येश, धनेश, धान्येश, रसेश, दुर्गेश, फलेश, मेघेश आदि का निर्णय होता है। यदि इनमें पाँच ग्रह शुभ और शेष अशुभ हैं तो ज्योतिषी ग्रहों का भरोसा छोड़ अपनी प्रतिभा से वर्षफल लिखता है। ये सारे फल उन वारों पर आश्रित रहते हैं जिनका आकाश से कोई सम्बन्ध नहीं है। (३६) इसी प्रकार वारों से अनेक प्रश्नफल कहे जाते हैं। (३७) जिस दिन सूर्य आर्द्रा नक्षत्र में प्रविष्ट होता है उस वार से वर्ष भर की वर्षा आदि का का फल कहा जाता है। (३८) संक्रान्ति, विवाह, यात्रा, युद्ध, गृहारंभ, गृहप्रवेश, वधूप्रवेश आदि प्रत्येक कर्म में सर्वप्रथम वार देखा जाता है। इस समय वार ही ज्योतिष का राजा है। (३९) वह पापवारों में विवाह का निषेध करता है पर आजकल उनमें भी विवाह हो रहे हैं। जनता उस निषेध से नहीं डरती पर रविवार और मंगलवार को कन्या की विदाई नहीं कर सकती। वह विदाई को विवाह से महत्त्वपूर्ण समझती है। विवाह वाला साहस यहाँ निरस्त हो जाता है। ज्योतिष रवि, भौम और शनि (पापवारों) में यात्रा का निषेध करता है पर इस समय समाज के मन से यह भय भाग गया है, काल, पाश और योगिनी आदि के अनेक भय भाग गये हैं पर दिक्शूल वाला बैठा है। गोरखपुर से बनारस आने वाली बसों में वृहस्पतिवार को भीड़ नहीं रहती। यहाँ शुभवार भी अशुभ हो जाता है। निराधार वारों के प्रति यह आस्था अन्धविश्वास का सबसे वड़ा उदाहरण है। (४०) आज हिन्दू को ज्योतिषी से मुहूर्त पूछे बिना छोटा-बड़ा कोई भी काम करने का साहस नहीं है। शिक्षित हिन्दू देख रहा है कि संसार के जो देश सुख, विद्या, धन, विज्ञान आदि प्रत्येक विषय में हमसे आगे हैं वे कभी भी मुहूर्त नहीं पूछते। हमारा पड़ोसी मुसलमान मुहूर्त नहीं पूछता। मुहूर्त बताने वाले मुहूर्तों से हमें जो जो देने का उद्घोष करते हैं उनको उन्होंने स्वयं नहीं पाया है। दिग्विजय के सहस्रों अमोध मुहूर्तों के रहते हम उन देशों के बहुत दिनों तक दास बने रहे जिनका क्षेत्रफल हमारे एक प्रदेश तुल्य है। आज का अधिकांश ज्योतिषी वैदिक मुहूर्तों के नामों तक को भूल चुका है, मुहूर्त के नाम पर जो देखता है वह सब विदेशी है और उसके जन्मस्थान में उसकी कोई पूछ नहीं है। वहाँ के फेंके कूड़ा करकट को हमने सर्वसौख्यप्रद कह कर गले में बाँध रखा है। इसका क्षेत्र विशाल है। केवल पाँच मुहूर्तों पर विचार करें।

१. ज्योतिषशास्त्र कहता है कि विवाह के बाद पतिगृह में जाकर प्रथम ज्येष्ठ मास में रुक गयी, पिता के घर नहीं आयी तो उसके पति का ज्येष्ठ भ्राता अवश्य मर जायेगा। वैशाख या ज्येष्ठ में विवाह हुआ, पति के घर गयी और वहाँ आषाढ़ तथा पौष में रुक गयी तो सास, ससुर अवश्य मर जाएँगे। विवाह के बाद पतिगृह में क्षयमास में रुकी तो स्वयं मरेगी, मलमास में रुकी तो विधवा होगी और विवाह के बाद चैत में नैहर रह गयी तो पिता को खा जायेगी (देखिए मुहूर्तचिन्तामणि ७।३)। यह आदेश इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसे मुहूर्त के किसी भी ग्रन्थकार ने छोड़ा नहीं है किन्तु सचाई यह है कि अनेक कन्याएँ विदा होने के चार छ: वर्ष बाद लौटी हैं तथा अनेक विवाह के तीसरे वर्ष बिदा हुई हैं पर पति, सास, ससुर, जेठ और पिता

में से एक भी नहीं मरा हैं तथा हम आज भी प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि इस विधान में अणुमात्र भी सत्यता नहीं है। ज्योतिष में इस प्रकार के कई सहस्र योग ऐसे हैं जिनके फल मरण, वज्रपात और अग्निदाह आदि लिखे हैं पर कुछ होता नहीं दीखता जबकि टीकाकारों ने इनके समर्थन में काल्पनिक वसिष्ठ, नारद, भृगु आदि के वाक्यों से पोथियाँ भर दी हैं।

२. विवाह के तीसरे दिन कन्या का वधूप्रवेश और विवाह के पूर्व तीसरे दिन कन्या का हरिद्रालेपन शास्त्र से वर्जित है और भयंकर है किन्तु हमारे यहाँ ९९ प्रतिशत वधूप्रवेश तीसरे दिन और ९० प्रतिशत हरिद्रालेप तिनमंगरा में हो रहे हैं। अब हमें उनका भय नहीं है।

३. मुहूर्तचिन्तामणि (५।३६) में लिखा है और वशिष्ठादि मुनियों ने समर्थन किया है कि कोई मनुष्य वर्ष के भीतर कृत्तिका में छः बार या अनुराधा में तीन बार अथवा रोहिणी में आठ बार अथवा मघा में पाँच बार अथवा उत्तराफाल्गुनी में चार बार बाल बनवा ले तो समझ लो कि अब उसकी आयु एक वर्ष से अधिक नहीं है। यदि स्वयं ब्रह्माजी ऐसा करें तो उनका भी मरना निश्चित है।

त्रिमैत्रभः पद्मजसंनिभोपि क्षौरी नरोऽब्दान्निधनं प्रयाति।
क्षौरी स वर्ष चतुराननोपि न प्राणितीति प्रकरः प्रवारः॥

परन्तु आजकल न इसका किसी को पता है न कोई विचार करता है। अनेक लोगों का तो श्मश्रु नित्यकर्म है। वे ब्रह्मा सदृश भी नहीं हैं पर अभी जीवित हैं। एक ज्योतिषी जी समाधान में कहते हैं कि मरना ही मृत्यु नहीं है, शास्त्र में आठ प्रकार की मृत्युओं का वर्णन है। मैंने कहा कि अथर्ववेद में सौ मृत्युओं का वर्णन है-मृत्युरेकशतं ब्रूमः अतः उनसे कोई नहीं बचा है। यह कहने पर ज्योतिषी जी ने जो उत्तर दिया उसे सुनकर मैंने भयवश चुप रहना ही उचित समझा।

५. ज्योतिषशास्त्र कहता है कि कन्या का द्विरागमन विषम वर्षों (१,३,५) में ही हो सकता है, सम (२,४) में नहीं। क्यों, इसका उत्तर नहीं हैं। ज्योतिष कहता है कि कन्या का द्विरागमन वर्ष के तीन ही मासों में होगा, नव में नहीं। क्यों, इसका कोई उत्तर नहीं है। जो मास विवाह में शुभ हैं वे भी द्विरागमन में अशुभ हैं। विहित तीन मासों के भी कृष्णपक्ष अच्छे नहीं समझे जाते और इन तीन मासों का भी उतना ही भाग शुभ माना जाता है जो पापग्रहों की १,८,११ राशियों से स्पष्ट है। इन तीन मासों में भी भद्रा, भरणी आदि पचासों कुयोग हैं और द्विरागमन कुछ ही वारों, कुछ ही नक्षत्रों और कुछ ही तिथियों में होता है इसलिए इसका शुभ मुहूर्त मिलने में बड़ी कठिनाई होती है। सबसे बड़ा संकट यह है कि सूर्य के बाद सबसे तेजस्वी और सबसे सुन्दर ग्रह शुक्र के सामने या दाएँ रहने पर कन्या की विदाई नहीं होती। शुक्रादि सब ग्रह २४ घण्टे में पूरे आकाश की एक प्रदक्षिणा कर लेते है परन्तु शुक्र पूर्व और पश्चिम में लगातार दस-दस मासों तक बैठा माना जाता है। हम सूर्योदय और सूर्यास्त के पास वाले समय में शुक्र का चलन प्रत्यक्ष देखते हैं फिर भी ज्योतिषी के कहने से उसे एक दिशा में लगातार १० मास तक एक खूँटे में बँधा मान लेते हैं क्योंकि हमने अपनी बुद्धि बेच दी है। बेची न होती तो यह अवश्य सोचते कि ऐसा सुन्दर ग्रह सामने और दाएँ रहने से अशुभ क्यों हो जाता है? लड़की जब पिता या पति के घर में रहती है तब शुक्र का दिन भर में बीसों बार दाएँ और सामने रहना अशुभ नहीं होता तो पति के घर जाने में अशुभ क्यों हो जाता है? पहली बार और तीसरी बार जाने में अशुभ नहीं होता तो दूसरी बार अशुभ क्यों हो जाता है? शुक्र एक दिशा में लगभग एक वर्ष

(अस्त को लेकर) रहता है अत: अनेक बार ऐसे प्रसंग आते हैं कि वह प्रथम वर्ष में सामने पड़ जाता है। दूसरे में विदाई बनती नहीं, तीसरे में फिर सामने आ जाता है और आगे भी अड़ंगा लगा रहता है। ज्योतिष कहता है कि कश्यप आदि अनेक गोत्रों की कन्याओं को और युवती कन्याओं को शुक्रदोष नहीं लगता पर इस आदेश को कोई मान नहीं रहा है। शुक्र का यह दोष युद्ध यात्रा आदि में भी उतना ही भीषण माना जाता है पर शुक्र संबंधी शान्ति यज्ञ कर देने पर सब ठीक हो जाता है और सारे दोष भस्म हो जाते हैं। तक शुक्र की तीक्ष्ण किरणें शीतल हो जाती हैं।

ज्योतिषशास्त्र में मुहूर्त सम्बन्धी, अपशकुन सम्बन्धी और जन्मकुण्डली आदि से सम्बन्धित दोष, कई सहस्र हैं और उनके शान्तियाग भी अगणित हैं उनमें से कुछ बहु प्रचलित दोष ये हैं-हरिशयन, जलशयन, भूमिशयन, अग्नि का अभाव, स्त्री ऋतु, क्षय संवत्सर, खलमास, मलमास, क्षयमास, विभिन्न कर्मों में वर्जित मास, कृष्ण पक्ष, क्षयतिथि, वृद्धतिथि, रिक्ता तिथि, अमावास्या, क्षीणचन्द्र, पूर्णिमा, दग्धतिथि, शून्यतिथि, कुछ स्वजनों की मृत्युतिथि, मन्वादि, युगादि तिथियाँ, पितृपक्ष, होलाष्टक, शुक्र गुरु बुध भौम का अस्त, वक्रत्व, अतिचार, तिथिगण्डान्त, नक्षत्र गण्डान्त, लग्नगण्डान्त, भद्रा, अन्य अशुभ करण, विषतिथि, अधमतिथि, विषघटियाँ, अशुभवार, वारों से उत्पन्न अनेक अशुभ योग, शूल, व्याघात, गण्ड, अतिगण्ड, व्यतोपात, वैधृति, विष्कंभ, मृत्यु, मृता, यमघण्ट, कालदण्ड, राक्षस, परिध, मुसल, उत्पात, वज्र, ध्वांक्ष, धूम, क्रकच, दग्ध, हुताशन, विप, अशुभ मुहूर्त दोघड़िया चौघड़िया, संमुख शुक्र बुध भौमादि, खण्डराहु, मुहूर्तराहु, राहु के अनेक दोष, प्रश्नदोष, सैकड़ों वैधव्य योग, वारशूल, तिथिशूल, स्वरदोष, मृतपक्ष, महाडल, भ्रमण, हिम्वर, घबाड़, घातचन्द्र, घाततिथि, घातलग्न, घातवार, घातयोग, घातगृह, योगिनी, कालपाश, वेध, पारिधदण्ड, लत्तापात, महापात, जामित्र, कर्तरी, खार्जूर, उपग्रह, कालवेला, कुलिक, कण्टक, गणनादोष, लग्नादिदोष, गोचरदोष,संक्रान्तिदोष, दशयोग, विंशोपका, पंगुअन्धकाण-बधिरलग्न, शून्यराशि, शून्यलग्न, दग्धलग्न, रजोदर्शन के दोष, त्रीतरदोष, सिंहस्थगुरु, मकरस्थगुरु, गुर्वादित्य, १३ दिन का पक्ष, अशुभ दन्तोत्पत्ति, चन्द्रादिग्रहचारभय, धूमकेतु, उल्का, इन्द्रधनुष, इन्द्रध्वज, परिवेष, खंजन, गन्धर्वनगर, अगस्त्य और सप्तर्षिचार आदि के पचासों भय, अंगस्फुरण, पल्लीपलन, अशुभ छींक, अगणित अपशकुन और सामुद्रिक शास्त्र में वताये कुलक्षण आदि।

यह ग्रन्थ ज्योतिष का है पर ज्योतिष संबंधी कुयोगों का सम्बन्ध धर्मशास्त्र और वैदिक कर्मकाण्ड से है। इसलिए इसमें वेद और धर्मशास्त्र के केवल उन्हीं विषयों का संक्षिप्त उल्लेख है जो ज्योतिष से संबन्धित हैं।

धर्मशास्त्र में कथित और ज्योतिष द्वारा समर्थित इन सहस्रों शान्तियज्ञों में दिये जाने वाले अनेक प्रकार के दानों से यह बात सहज ही स्पष्ट हो जाती है कि इन यज्ञों का विधान कुयोगों की शान्ति के लिए नहीं बना है बल्कि कुयोग गढ़े गये हैं। मृत्यु, यमघण्ट, वज्र, व्यतीपात, गण्ड, व्याघात, राक्षस आदि भीषण योग और खलमास, मलमास, हरिशयन, घातचन्द्र आदि भीषणकाल प्रतिमास में आते हैं, प्रतिदिन आते हैं, महीनों रहते हैं और चार-छ: मास तक रहते हैं तो हमें उनकी भीषणता का अनुभव प्रतिदिन क्यों नहीं होता? रविवार और मंगलवार को कार्यारंभ करने में जो सैकड़ों विपत्तियाँ आती हैं वे हमें हर रवि और मंगलवार को दिखाई क्यों नहीं देतीं? जो भीषण काल कार्यारंभ करने पर सर्वनाश करते हैं वे कार्य के मध्य में वैसा क्यों नहीं करते? भीषण आकृति वाली साकार भद्रा

प्रत्येक मास में हमें लगातार १२ घण्टों तक आठ बार दिखाई क्यों नहीं देती?

संवत २०३३ के पंचाग ने मुझे यह ग्रन्थ लिखने को बाध्य किया है। इस संवत् में चैत्रमास भर खलमास और वैशाख भर गुरु अस्त था। ज्येष्ठ आषाढ़ भर शुक्रास्त था, आषाढ़ से कार्तिक तक हरि लगातार सो रहे थे, आगे पुन: एक खलमास तथा होलाष्टक था और बचे हुए तीन मासों में कई सौ कुयोग थे। साढ़े नव मासों में एक घण्टा समय भी ऐसा नहीं मिल रहा है जिसमें विवाहादि कोई मांगलिक कर्म किया जा सके क्योंकि धर्मशास्त्र कहता है कि ऐसा करने पर विपत्तियों के मेघ बरसने लगेंगे परन्तु हम देखते हैं कि इन भीषण समयों में रेलें, बसें चल रही हैं विद्यालय और कारखाने चल रहे हैं, कृषि हो रही है, विवाह जिसके लिए किया जाता है वह कर्म हो रहा है और सनातनी हिन्दू के अतिरिक्त दूसरों के विवाह हो रहे हैं किन्तु विपत्तियों की वर्षा नहीं हो रही है अत: ज्योतिष और धर्मशास्त्र की उक्तियाँ परीक्ष्य हैं।

ग्रन्थ लिखने के डेढ़ दशक के बाद छप रहा है। फिर भी मुझे प्रसन्नता है और मैं हिन्दी संस्थान के उन अधिकारियों के मंगलार्थ भगवान् सदा शिव से प्रार्थी हूँ जिनके कारण ग्रन्थ छप रहा है। जो हो रहा है सब शिव की कृपा है। मैं जानता हूँ कि मेरे विचारों से बहुत से लोग रुष्ट होंगे पर जो लिखा है, हृदयस्थ शिव की प्रेरणा से लोक मंगल के लिए लिखा है। मुझे इस ग्रंथ के लेखन में स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द घोष, तिलक जी, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, केलकर, कोल्हटकर, भारतरत्न काणे, श्रीराम शर्मा, स्वामी दयानन्द, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि महापुरुषों के ग्रन्थों से प्रेरणा न मिली होती तो हृदयस्थ लोकभय न लिखने देता। काशी के कई ज्योतिर्विदों में से श्री केदारदत्त जी जोशी के निबन्ध से भी मुझे प्रेरणा मिली है। उन्होंने निर्भीक होकर आत्मा की पुकार व्यक्त कर दी है। मैंने जो कुछ लिखा है, अनुभव के बाद।

ज्योतिषियों को मान लेना चाहिए कि हम पर ग्रहों की भाँति आकाश के उन तारों का भी प्रभाव पड़ रहा है जो बुध, भौम, शनि और गुरु से अधिक तेजस्वी दिखाई दे रहे हैं। जहाज के दूरस्थित बल्ब का प्रभाव पास के दीपक से अधिक पड़ता है अत: केवल सात ग्रहों का गणित पूर्ण नहीं है। आकाश में ग्रहों के अतिरिक्त नीहारिकाएँ, धूमकेतु और उल्काएँ भी हैं, भूवायु में नाना प्रकार के धूप, गैसें, ध्वनियाँ, और प्राणियों के मनोभाव भी हैं। ग्रहों की किरणें केवल जन्मकाल में ही नहीं पड़तीं, जीवन भर पड़ती हैं और जन्मकाल से अधिक पड़ती हैं। वास्तविक जन्म गर्भाधान काल में ही हो जाता है। योगवासिष्ठ, गीता और चरक आदि के अनुभूतिजन्य ज्ञान के अनुसार मनुष्य के सुख-दु:ख के अनेक हेतु हैं। उसे कितने साधन प्राप्त हो रहे हैं, वह कितना परिश्रम करता है, संगति कैसी है; राजा मंत्री गुरु और पड़ोसी कैसे हैं, पिछले जन्म के संस्कार कैसे हैं, मातामह, माता, पिता आदि कैसे हैं और आहार-विहार कैसा है। श्री भास्कराचार्य ने लिखा है कि ज्योतिष में वे ही बातें प्रामाणिक हैं जिनकी उपपत्ति है अत: कालों का अशुभत्व अमान्य है और वह वेदों के प्रतिकूल भी है। ज्योतिष के अंगभूत सामुद्रिक शास्त्र का सारांश यह है कि जो सर्वांग सुन्दर है वह गुणवान् और भाग्यशाली है परन्तु यह सिद्धान्त प्रत्यक्षविरुद्ध है। संसार में अनेक सुन्दर चोर और कुरूप सन्त विद्यमान हैं। हमें ग्रहों के प्रभाव का अध्ययन वैज्ञानिक विधि से करना है और उसके लिए नवीन सहेतुक आधार ढूँढ़ना है। भविष्य जानने में योग से अधिक उपयोगी दूसरा कोई शास्त्र नहीं है। वह भविष्य बताता है और अशुभ भविष्य के निराकरण का उपाय भी बताता है। कुछ लोग जन्मपत्री, हाथ या

मुखाकृति देखकर अथवा प्रश्नों द्वारा कुछ भूतकालीन घटनाएँ सन्तान-संख्या आदि बता देते हैं। कुछ लोग दूर बैठकर दूसरे के हाथ में स्थित कागज में लिखे प्रश्नों के सत्य उत्तर किसी अदृश्य शक्ति द्वारा लिखवा देते हैं पर इनका भविष्य सत्य नहीं होता। इस चमत्कार का सम्बन्ध ज्योतिष से नहीं है। इस विद्या का पूर्णत्व योग में ही है। कोई काल अशुभ नहीं होता। जीवन में जो संकट आते हैं उनके निवारण के योगियों द्वारा कथित उपाय हैं ज्ञानार्जन, सत्कर्म और हृदय से प्रभु का स्मरण, ज्योतिषोक्त प्रपंच नहीं। लिखा है-

द्वाभ्यायेव हि पक्षाभ्यां यथा वै पक्षिणां गतिः। तथैव
ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् (योगवासिष्ठ)॥
स्वकमर्णा समभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः (गीता)।
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽघ्रियुगं स्मरामि॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः। येषां इन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममंगलम्। येषां हृदिस्थो भगवान् मंगलायतनो हरिः ॐ॥

भिनगाकोठी बी० २७/३१ बी०
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-२२१००५

हरिहर पाण्डेय

अनुक्रमणिका

अध्याय १

समर्पण और नमन

योगेश्वरि शिवे तात योगीश्वर सदाशिव।
ग्रन्थप्रसूनमेतद् वां पादाब्जेषु समर्पये॥१॥
अम्बिके मोहतो मग्नान् कल्पिते ज्यौतिषार्णवे।
भ्रामितान् प्रचुरावर्तैः उद्धराश्वज्ञबालकान्॥२॥
दैवज्ञनिर्मितासंख्यपाशस्थान् क्लिशितान् सुतान्।
प्रभूतरज्जुसम्बद्धान् आशुतोषाशु मोचय॥३॥
हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
पूषन्नपावृणु त्वं तत् सत्यधर्माय दृष्टये॥४॥
असतस्तमसो मृत्योः सत्ज्योतिर्गमयामृतम्।
सुपथा नय रायेऽस्मान् धियो धर्मे प्रचोदय॥५॥
उपपत्या विहीनं नो प्रमाणं मनवामहै।
ईश्वरोक्तमपि ग्रन्थं देह्येतादृङ्मनोबलम्॥६॥
नाथ तं प्रेषयागस्त्यं योऽस्मद्दुर्वादमध्यगम्।
भक्षयेदिल्वलं विन्ध्यं शाययेत् सागरं पिबेत्॥७॥

मातः शिवे और पिता सदाशिव! यह ग्रन्थप्रसून आपके चरणों में समर्पित है। माँ! तुम्हारे अज्ञ बालक मोहवश ज्योतिष के काल्पनिक सागर में डूब रहे हैं और शकुन तथा मुहूर्त आदि के अगणित भँवरों द्वारा घुमाये जा रहे हैं अतः कृपया इन्हें बचाओ। हे आशुतोष! ज्योतिषियों द्वारा असंख्य पाशों में फाँसे और अनेक रस्सियों से बाँधे इन दुःखी पुत्रों को शीघ्र मुक्त करें। हे पूषन्! सोने के ढक्कन से सत्य के पात्र का मुख ढक दिया गया है। उसे हटा कर हमें लोभियों से बचावें, सत्यधर्म की रक्षा करें और ज्ञान दें। हे प्रभो! हमें असत् से, तम से और मृत्यु से क्रमशः सत्, ज्योति और अमृत की ओर ले चलें। हम सुमार्ग से धनोपार्जन करें और हमारी बुद्धियाँ धर्मोन्मुख हों। हे सदाशिव! हमारे यहाँ कुछ काल्पनिक ग्रंथों के मुखपृष्ठ पर बलपूर्वक वसिष्ठादि मुनियों, सूर्यादि देवों और ईश्वर के नाम थोप दिये गये हैं। अतः कृपया हमें ऐसा शिव संकल्पवान् मनोवल दें कि हम उपपत्ति से विहीन किसी भी ग्रंथ को प्रमाण न मानें। हे विश्वनाथ! कृपया उन अगस्त्य को शीघ्र भेजें जो हमारे मध्य में स्थित दुर्विवाद रूपी इल्वल दैत्य को खा जायँ, विन्ध्य पर्वत को सुला दें और सागर को पी जायँ ताकि हम मिलकर सत्यज्ञान प्राप्ति का प्रयास करें।

मैं उन योगिराज वसिष्ठ और भगवान राघवेन्द्र को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने योगवासिष्ठ में भाग्यवाद की असारता और पुरुषार्थ की महत्ता का विस्तार से प्रतिपादन किया है। मैं उन योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने गीता में स्थान, कर्तृत्व, साधन और चेष्टा को भाग्य से बड़ा कहा है तथा कर्म को ही पूजा माना है। मैं उन भगवान् गौतमबुद्ध को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने सबसे पहले पृथ्वी को चला सिद्ध किया और भाग्य के भरोसे न रहकर पुरुषार्थ का आदेश दिया। मैं

उन महर्षि पतंजलि को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने योगशास्त्र में बताया है कि दुर्वृत्तियों का निरोध कर अपने को जानो और भाग्य के भरोसे न रहकर तीव्र वेग से दीर्घकाल तक सतत अभ्यास करके तारों, ग्रहों और भुवनों की सत्य स्थिति जानो। मैं उन महर्षि चरक के चरणों में नतमस्तक हूँ जिन्होंने अपनी संहिता में लिखा है कि सुसन्तान की प्राप्ति अपने हाथ में है और मनुष्य की आयु निर्धारित नहीं है बल्कि संयम-असंयम से वढ़ती घटती है। मैं उन आचार्य आर्यभट को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने आज के डेढ़ सहस्र वर्ष पूर्व पृथ्वी को चल सिद्ध किया और गणित में अनेक आविष्कार किये। मैं उन भास्कराचार्य को बार-बार प्रणाम करता हूँ जिन्होंने पौराणिक भूगोल खगोल का निःसंकोच खण्डन किया और हमें पृथ्वी को आकर्षण शक्ति, उदयान्तर संस्कार आदि विशिष्ट बातें बतायीं। मैं भगवान् शंकर के गण स्वरूप, विद्यासागर, त्यागमूर्ति श्री राजाराम मोहन राय को शतशः प्रणाम करता हूँ जिन्होंने समाज से और माता-पिता से तिरस्कृत होकर भी धर्मशास्त्र का सत्य रूप बताया। मैं आर्यों और वेदों के उद्धारक प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने विष पीकर भी ज्योतिष और वेदादि के सत्य अर्थ को प्रकाशित किया। मैं भारत के उन ज्योतिर्विदों को प्रणाम करता हूँ जो दृश्यगणित एवं सायनवाद के समर्थक हैं तथा पश्चिम के उन वैज्ञानिकों को हाथ जोड़ नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूँ जिन्होंने आग में जलना और अंधा होना स्वीकार करके भी सत्य कहा, ज्ञान को आगे बढ़ाया और जो ज्ञानसागर होकर भी अपने को अल्पज्ञ मानते हैं।

फलित ज्योतिष के विषय में कुछ महापुरुषों की शिक्षाएँ

स्वामी विवेकानन्द

फलित ज्योतिष की सूक्ष्म बातों में बहुत ध्यान देना उन अन्धविश्वासों में है जिससे हिन्दुओं की अत्यधिक क्षति हुई है। मेरे विचार से इसे यूनानी भारत में ले आये और भारत से गणित की अनेक बातें सीखीं। ज्योतिष की भविष्यवाणियाँ अनेक बार मिथ्या होती देखी गयी हैं। इन पर दुर्वल मन वाले अदूरदर्शी ही विश्वास करते हैं। महान् पुरुष यह संकल्प करते हैं कि हम अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करेंगे। वुद्ध का कथन है कि लोग नक्षत्र कला से या उस प्रकार के अन्य मिथ्या प्रपंचों से जीविकोपार्जन करते हैं उन्हें दूर हटा देना चाहिए। बुद्ध और ईसा आदि कैसे महान् बने, इसे जानने के लिए ग्रह नक्षत्रों का अन्वेषण अनावश्यक है। उनका कुछ प्रभाव हो सकता है पर उसकी उपेक्षा कर देनी चाहिए। जिस वस्तु से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दुर्बलता उत्पन्न हो उसे पैर से भी मत छुओ, यह मेरी पहली शिक्षा है। हमारे छोटे से शरीर में असीम शक्ति कुण्डली मारे बैठी है। वह मनुष्य की प्रगति का मुख्य हेतु है। फलित ज्योतिष सदृश कल्पनाओं में भी सत्य का एक कण हो सकता है पर उसे दूर हटाने में ही कल्याण है। मैंने कुछ मनुष्यों को आश्चर्यजनक भविष्यवाणी करते देखा है परन्तु मेरे पास यह विश्वास करने का कोई हेतु नहीं है कि उसका आधार ग्रह नक्षत्र मण्डल है।

यदि तुम राष्ट्र को जीवित रखना चाहते हो तो ऐसे शास्त्रों से दूर रहो। ग्राह्य वह है जो हमें बलवान् बनाता है। हमारे देश में इस ज्योतिष की भाँति अनेक अन्धविश्वास कुकुरमुत्ते की भाँति उगे हैं, बढ़े हैं और हम अशिक्षित नारियों की भाँति उन्हें सत्य माने बैठे हैं। जो धन के लिए दूसरों को ठगता है उसको हम दुष्ट मानते हैं और जो आध्यात्मिक मूर्ख बनाता है उसको गुरु कहते हैं किन्तु गुरु वह है जो सत्य बताये और अन्धविश्वासों से ऊपर उठाये। तुम दिव्य हो, महान् हो, ईश्वरांश हो पर टिमटिमाते तारों से छले जा रहे हो। मैं भारत में कोई नयी महत्त्वपूर्ण बात बताना चाहूँ और उसे केवल अनुभूतियों की प्रामाणिकता दूँ तो कोई नहीं सुनेगा किन्तु यदि वेदों से कुछ ऋचाएँ निकालकर उन्हें तोड़ूँ मरोड़ूँ, उनका अत्यन्त असंभव अर्थ निकालूँ और वेदमंत्र के वास्तविक अर्थ का गला घोंट कर अपने विचारों को वेदों का तात्पर्य कहूँ तो झुण्ड के झुण्ड लोग मेरे पीछे फिरने लगेंगे। चूँकि जनता का मन लीकों में दौड़ता है इसलिए नये विचारों को पुरानी लीकों के पास रखना पड़ता है परन्तु मेरा मत यह है कि पुस्तकों से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई है। पुस्तकें ही संसार के धार्मिक अत्याचारों और युद्धों के लिए उत्तरदायी हैं। वस्तुतः कल्याण तो स्वतंत्रतापूर्वक विचार करने में है। (आकलैण्ड २५।२।१९०० ई०)

योगिराज अरविन्द

मन्दिरों, गिरिजों और धार्मिक सम्प्रदायों ने धर्म, दर्शन और विज्ञान के विकास में भारी रुकावट डाली है। ब्रूनो इसलिए जलाया गया और गेलेलियो इसलिए बन्दी बनाया गया कि धर्म कुछ बन्धनों से बँधा है और वे बन्धन ऐसे हैं जो कसौटी पर खरे नहीं उतरते। धर्म की संकीर्ण भावनाएँ जनता के जीवन के आनन्द और सौन्दर्य को कुचलकर उसे ऊसर बना देती हैं। ये बिना सोचे समझे घिसी-पिटी कठोर व्यवस्था का समर्थन करती हैं। ये मान बैठी हैं कि आवश्यक परिवर्तन से भी धर्म का उल्लंघन हो जाता है। धर्म जब किसी सम्प्रदाय या कुछ रूढ़ियों से एकाकार होकर शान्ति का बाधक हो जाता है तब यह आवश्यक हो जाता है कि उसके प्रभुत्व को मानव प्रवृत्तियों से दूर करें। इस धर्मपाश का फलित ज्योतिष से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

सांगली के सम्मेलन में लोकमान्य तिलक का भाषण

आज हम पंचांगशोधन के जिस कार्य के लिए एकत्र हुए हैं वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। वस्तुत: यह बहुत पहले होना चाहिए था पर समाज का इधर ध्यान ही नहीं था। प्रसन्नता की बात है कि आज की और आज से पचास वर्ष पूर्व की स्थिति में बहुत अन्तर है। उस समय यह सुनना भी असह्य था कि ग्रहलाघवीय पंचांग में प्रत्यक्ष से अन्तर पड़ता है। ऐसा कहने पर लोग रुष्ट होते थे। इस कथन को और पंचांगशोधन को धर्म एवं शास्त्र का घोर विरोध समझते थे और कहने वाले से सम्बन्ध तोड़ देते थे। सन् १६०४ के बम्बई के १०-११ दिन के अखिल भारतीय सम्मेलन में भी मतैक्य नहीं हो सका। मेरी अभिलाषा है कि यह मतभेद समाप्त हो और पूरे महाराष्ट्र का ही नहीं, पूरे भारत का एक पंचांग बने। यदि हम अपने दुराग्रह और हठ का परित्याग कर दें तो वह शुभ दिन असम्भव नहीं है। ऐसा करने पर ज्योतिष की उन्नति होगी और उसकी दुर्गति का कंटाकाकीर्ण मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। दुराग्रह न छोड़ने पर हमारी स्थिति मतभेदपूर्ण और हास्यापद बनी रहेगी।

इस समय सबसे आवश्यक यह है कि हम सब मिलकर नवीन ज्योतिषज्ञान का सदुपयोग करते हुए यह निश्चित कर दें कि क्रान्तिवृत्त का आरम्भ स्थल कौन-सा है। खेद है कि जहाँ से राशियों का आरम्भ होता है, जिसके आधार पर संक्रान्तियों के और राशियों के फलों का निर्णय होता है, वर्षा सूखा बताया जाता है और जन्मपत्री का फल लिखा जाता है वही स्थान अभी हमारे यहाँ विवादास्पद है। उसका निर्णय हो जाने पर अयनांशवाद स्वयं समाप्त हो जायेगा। उसके बाद करणग्रंथ का प्रश्न है। वह कार्य आर्य और आंग्ल, दोनों ज्योतिषों में निपुण विद्वद्वर श्री व्यंकटेश बापू जी केतकर द्वारा सम्पन्न हो जायेगा। मेरी अभिलाषा है कि हमारा हिन्दी पंचांग ऐसा बने जो अंग्रेजी नाटिकल की भाँति नौकागमन में भी उपयोगी हो। वह पूर्ण प्रत्यक्ष हो। इसके लिए भारत में नूतन वेधशाला का निर्माण और वेधज्ञो का होना अति आवश्यक है। हमें सत्य की ओर जाना है और मान लेना है कि सत्य की विजय होकर रहती है।

कुछ लोग कहते हैं कि शुद्ध गणित को स्वीकार कर लेने पर उसका धर्मशास्त्र से विरोध होगा पर यह सत्य नहीं है। होगा तो हम उसका समाधान कर लेंगे। हमें यह भूलना नहीं है कि कुछ मतभेद तो वेदार्थ में भी है परन्तु ज्योतिष वेदांगों में मूर्धन्य (सर्वश्रेष्ठ) है और यज्ञों का तथा धर्मशास्त्रोक्त पर्वों का समय वही बताता है अत: धर्मशास्त्र को ज्योतिष के बताये मार्ग पर ही चलना होगा। ज्योतिष प्रत्यक्षशास्त्र कहा गया है अत: उसकी प्रत्येक शाखा के संशयास्पद सिद्धान्तों को सत्य न मानकर हमें उनके मूल में जाना है और संशोधन करना है। ऋर्षियों का यही आदेश है, उपदेश है।

विद्वद्वर श्री श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर का मत

हमारे धर्मशास्त्रों के निर्माणकाल में अयनांश का प्रश्न नहीं था क्योंकि उस समय सम्पात रेवती के पास था किन्तु अब उनमें संशोधन करना ही होगा क्योंकि ऋतुओं का खिसकना प्रत्यक्ष है। शुद्ध ग्रहस्थिति के बोध के लिए हमें पाश्चात्य

पद्धति को स्वीकार करना ही होगा क्योंकि पाश्चात्यों ने भिन्न-भिन्न देशों की वेधशालाओं में सूक्ष्म एवं विशाल यंत्रों की सहायता से शोध करके ज्योतिष को लगभग पूर्णावस्था में पहुँचा दिया है। हमें अपने पूर्वजों के प्रति गर्व होना उचित है पर उसकी मर्यादा विवेक से निश्चित करनी चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस विषय में हमारे पूर्वज ही सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शक हैं। आज का प्रश्न यदि उनके सामने होता तो वे क्या करते, इसे भारतीय ज्योतिष का इतिहास स्पष्ट बता देता है।

हमारे वेदांगज्योतिष में पाँच वर्षों का एक युग है, पाँच वर्षों का एक शाश्वत पंचांग है, उसमें वर्ष ३६६ दिनों का है और ३० मास के बाद नियमित रूप से एक अधिमास आता है। हमारे पूर्वज यदि उसी पंचांग को पकड़े रहते तो स्थिति हास्यास्पद हो जाती परन्तु वे सत्य के सामने परम्परा को महत्त्व नहीं देते थे और सदा नूतन शोध किया करते थे। इसी से हमारा ज्योतिष सर्वदा उन्नत होता रहा। उन्हें वह युगपद्धति अपूर्ण प्रतीत हुई। पितामह तथा वसिष्ठ ने वर्षमान ३६५ दिन २७ घटी किया और सूर्य सिद्धान्त ने उसे ३६५।१५ पर पहुँचा दिया। हमारे प्राचीन सिद्धान्तकारों ने बार-बार वेध करके सूक्ष्म मध्यम गति का निर्णय किया और बिना किसी की सहायता के उच्च, पात, परम फल, परम शर और चन्द्रगति का आश्चर्यजनक मान निश्चित किया। ग्रहों के उच्च और पात में गति है, इसका तत्कालीन पाश्चात्यों को पता नहीं था। पर हमारे आचार्यों ने पृथ्वी की आकर्षण शक्ति, शून्यांक, दशमलव, बीजगणित, उच्चगति, पातगति, अयनचलन, भुजज्या, त्रिकोणमिति आदि अनेक विषयों का पता लगाया और सवको सिखाया, किन्तु खेद है कि उनके वंशज हमने डेढ़ दो सहस्र वर्षों में कोई शोध नहीं किया और परम्परा का ही राग अलापते रहे।

परकीय ज्ञान का बहिष्कार आत्महत्या है। सच कहें तो हम पाश्चात्यों से न ऋण ले रहे हैं न भीख माँग रहे हैं। पहले बहुत दिया था, आज ले रहे हैं। हमने ज्योतिष ही नहीं, उन्हें वैद्यक और दर्शनादि अनेक शास्त्र दिये थे और कटुसत्य यह है कि आविष्कार की जन्मभूमि सारी धरती है। कोई एक राष्ट्र नहीं। आविष्कार तारों की भाँति सारे विश्व को प्रकाश देते हैं और सबके स्वजन तथा पूज्य होते हैं। हम आज अपने पूर्वजों के ठीक विपरीत चल रहे हैं, और कहते हैं कि प्राचीन ज्योतिष सिद्धान्तों में संशोधन करने से धर्म भ्रष्ट हो जायेगा। हमारे विद्यालयों में नूतन पाश्चात्य विषय पढ़ाये जाते हैं, हमारे धर्मगुरु मोटर और विमान से यात्रा करते हैं, चश्मा लगाकर बिजली के प्रकाश में वेद पढ़ते हैं, माइक पर बोलते हैं और पाश्चात्य पंचांगों से दृश्य घटनाओं का गणित करते हैं तब धर्मभ्रष्ट नहीं होता पर तिथ्यादि में उनका प्रयोग करने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है। हमारे वसिष्ठ कहते हैं कि तिथ्यादि का निर्णय दृश्य गणित से करो और चल संस्कृत सूर्य की संक्रान्ति को ही वास्तविक संक्रान्ति मानो पर हमारे अनेक ज्योतिषी कह रहे हैं कि नूतन शोध का तिथ्यादि में प्रयोग करने से धर्म भ्रष्ट हो जायेगा और तिथि में ५ घटी वृद्धि और ६ घटी के क्षय वाले नियम का ही प्रयोग करो नहीं तो श्राद्ध करने में पितरों का शाप लगेगा। यह कितनी कष्टप्रद बात है!

> ग्रहणादौ परीक्षेत न तिथ्यादौ कदाचन।
> बाणवृद्धिरसक्षीणा ग्राह्या नान्यातिथिः क्वचित्॥
> दृक्सिद्धखेटैरिहसाधितासु कुर्वन्ति केचित्तिथिषु प्रमादात्।
> श्राद्धादिकं तत्पितृशापतस्ते पुण्यक्षयाहुर्गतिमाप्नुवन्ति॥

उच्चशिक्षित ईसाई भी चर्च में जाते हैं और पृथ्वी को स्थिर कहने वाले क्राइस्ट को सम्मान देते हैं पर अब वे पृथ्वी को स्थिर नहीं मानते। पृथ्वी भर के ईसाइयों का इस समय एक पंचांग है और उसमें अन्तर केवल अक्षांश-देशान्तर का है किन्तु हिन्दुओं के शंकराचार्य एवं पाँच विषयों के आचार्य भी अभी पृथ्वी को स्थिर सिद्ध करते हैं और हिन्दुओं में परस्पर विरोधी सैकड़ों पंचांग प्रचलित हैं। इस कलंक को धोने के लिए सरकार एक राष्ट्रीय पंचांग चला रही है पर वह जनता एवं धर्माधिकारियों द्वारा तिरस्कृत है। उसकी भूमिका में लिखा है–

राष्ट्रीय पंचांग की भूमिका

हमारे अनेक राज्यों में इस समय ऐसे पंचांग प्रचलित हैं जिनमें बहुत अन्तर है। इतनी अधिक भिन्नता रखने वाली पंचांग पद्धति अन्य किसी भी देश में नहीं है। यहाँ वर्ष का आरम्भ भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है और तिथि नक्षत्र आदि की समाप्ति के समयों में तथा अन्य आकाशीय घटनाओं में बड़ा अन्तर रहता है। सूर्य के आधार पर मासारंभ का दिन निश्चित करने में विभिन्न राज्यों में विभिन्न रूढ़ियाँ प्रचलित हैं। वर्षारंभ कहीं सौर वैशाख से, कहीं सौर भाद्रपद से और कहीं सौर आश्विन से होता है। चान्द्र पंचांगों में वर्षारंभ कहीं चैत्र से, कहीं आषाढ़ से और कहीं कार्तिक से है। कहीं मास पूर्णिमा को समाप्त हो तो कहीं अमावास्या को। इस विभिन्नता से गड़बड़ी उत्पन्न हो गयी है। हमारा, तिथि और नक्षत्र का काल बहुत भ्रामक है। इसका कारण यह है कि पंचांगकार सबसे अधिक महत्त्व उस सूर्यसिद्धान्त को देते हैं जिसकी रचना ईसा की चौथी शताब्दी में हुई है। आधुनिक वेधशालाओं में सूक्ष्मयंत्रों की सहायता से पर्यवेक्षण कर ग्रहगणित के सिद्धान्तों में जो सुधार किये गये हैं उन्हें वे नहीं मानते। वे मुंजाल और भास्कर आदि भारतीयों के शोधों को भी ग्रहण नहीं करते। इसका परिणाम यह है कि हमारे तिथि नक्षत्रादि अशुद्ध हैं।

भारतीयों की सबसे बड़ी त्रुटि है वर्षमान, जो पंचांगों का मूलाधार है। भारतीय पंचांगों का वर्षमान है ३६५ दिन ६ घंटा १२'६ मिनट, जबकि ऋतुओं सम्बन्धी (सायन) वर्षमान है ३६५ दिन ५ घंटा ४८'८ मिनट। इस प्रकार वर्षमान में २३'८ मिनट की त्रुटि है। इसका परिणाम यह है कि हमारी संक्रान्तियाँ २३ दिन बाद मनाई जाती हैं और ऋतुएँ खिसकती चली जा रही हैं। इस प्रकार हर मास सब ऋतुओं में घूमता रहेगा। कुछ लोगों को अभी भी विश्वास है कि सम्पात का चलन २७ अंश से अधिक नहीं होगा पर यह भ्रम है। कुछ वर्षों से पंचांग में सुधार हो रहा है पर मतैक्य नहीं हुआ है सन् १९५२ में सरकार ने पंचांग सुधार की समिति संघटित की है, उसने पूरे भारत के लिए १४ भाषाओं में एक पंचांग बनाया है। यह वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित है। उसका वर्ष सायन (Tropical Year) है। उनके अनुसार वर्ष का आरम्भ विषुवसंक्रान्ति के दूसरे दिन से होगा। प्रथम मास चैत्र रहेगा, उसका आरंभ २२ मार्च से होगा और प्लुत वर्ष (Leap Year) में २१ मार्च से होगा। राष्ट्रीय संवत् शकाब्द रहेगा और १८८२, १८८६ आदि प्लुतवर्ष होंगे। उनमें वर्ष ३६६ दिनों का होगा। विवरण यह है–

मास	दिन संख्या	मासारंभ
चैत्र	३०	२२ मार्च
वैशाख	३१	२१ अप्रैल
ज्येष्ठ	३१	२२ मई
आषाढ़	३१	२२ जून
श्रावण	३१	२३ जुलाई
भाद्रपद	३१	२३ अगस्त
आश्विन	३०	२३ सितम्बर
कार्तिक	३०	२३ अक्टूबर
मार्गशीर्ष	३०	२२ नवम्बर
पौष	३०	२२ दिसम्बर
माघ	३०	२१ जनवरी
फाल्गुन	३०	२० फरवरी

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत

मेष और तुला की संक्रान्ति का वास्तविक दिन वह है जब दिन-रात समान हों। मकर संक्रान्ति का दिन वह है जब दिन सबसे छोटा हो और सूर्योदय उत्तर ओर खिसकने लगे। कर्कसंक्रान्ति का दिन वह है जिसमें दिन सबसे बड़ा हो और सूर्योदय दक्षिण ओर हटने लगे। ये ही वास्तविक संक्रान्तियाँ है। विष्णुपुराण का कथन है-

समरात्रिन्दिवे काले विषुवद् विषुवं च तत्।
तदा तुल्यमहोरात्रं करोति तिमिरापहः॥

किन्तु खेद है कि आज हमारा इन वास्तविक संक्रान्तियों से कोई नाता नहीं है। ज्योतिष के अन्य अनेक विषयों की यही स्थिति है। यवनों ने इस देश में जिस होराशास्त्र और प्रश्नविद्या का प्रचार किया उसका भारत के कर्मफल शास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। ग्रहों की जाति और लिंग का तथा ग्रहमैत्री का सिद्धान्त आर्यधर्म के विरुद्ध है। राजा के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि की कुण्डली में राजयोग नहीं रहते। दिलीप, रघु, दशरथ, बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, सबकी कुण्डलियों में राजयोग नही थे। इसी प्रकार अन्य योग भी परीक्षणीय हैं।

आचार्य श्रीराम शर्मा का मत

विद्यासागर, तपोमूर्ति श्री श्रीराम शर्मा संस्कृत वाङ्मय के साथ-साथ पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के भी मर्मज्ञ थे और उनका सारा बोध अनुभूतिजन्य है। उनके आश्रम में नवीनतम सूक्ष्म यंत्रों द्वारा ज्योतिष पर अनुसंधान कार्य हो रहा है। उन्होंने अपने ब्रह्मवर्चस् पंचांग की भूमिका में फलित ज्योतिष के विषय में लिखा है-

गणित और फलित ज्योतिष में बहुत दिनों से विवाद चल रहा है पर ग्रहगणित वस्तुतः विज्ञानसम्मत एक पूर्ण विद्या है। उसके साथ फलित ज्योतिष का जंजाल जुड़ जाने से यह असमंजस उठ खड़ा हुआ है। जीवधारियों पर ग्रहों का जो प्रभाव पड़ता है उसका ग्रहगणित के आधार पर अध्ययन आवश्यक है पर वह उस फलित से नितान्त भिन्न है जो ग्रहदशाओं के नाम पर लोगों को डराता है और इस विद्या के प्रति अविश्वास उत्पन्न करता है।

मुहूर्त जनमानस में गहराई से घुसे हैं। मुहूर्तवाद ने इतना अनर्थ किया है और कर रहा है कि उससे हुई हानियों को गिना नहीं जा सकता। सोमनाथ का पतन इसलिए हुआ कि महमूद गजनवी का प्रतिरोध करने में असमर्थ योद्धा शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा में बैठे रहे और समय पर जुट नहीं सके। वे महमूद से न हारते पर मुहूर्तवाद ने हरा दिया। यह एक अभिशाप है। यात्रा में योग, दिक्शूल तिथि आदि इतने विधि निषेध है कि सबको मानने पर यात्रा करना ही कठिन हो जायेगा। वस्तुतः दया, उत्साह, देवस्मरण, कर्तव्यबोध और पूज्यों के आदेश सब दोषों को समाप्त कर देते हैं।

चित्ते कारुण्यसंचार उल्लासो मनसस्तथा।
इष्टदेवस्मृतिर्भक्त्या प्रबोधः कर्मणस्तथा॥
निर्देशाः पूज्यपादानां यात्रादोषापहारकाः॥

आचार्य श्रीराम शर्मा का लेख- ज्योतिर्विज्ञान में- फलित ज्योतिष की मूढ़ मान्यताओं तथा भाग्यवाद और मुहूर्तवाद सदृश अंधविश्वासों के जड़ जमा लेने के कारण विचारशील वर्ग द्वारा ज्योतिर्विज्ञान की उपेक्षा होती रही है। इस उपेक्षा और विरोध का एक मात्र कारण है इससे सम्बन्धित फैली भ्रान्तियाँ। आज भी अनेक तथाकथित ज्योतिषी भ्रम एवं भय फैलाते हैं, शोषण करते हैं और जनता में ज्योतिष के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करते हैं। वे ज्योतिष के वास्तविक स्वरूप से

अपरिचित हैं और अंधविश्वासों को वढ़ावा देते हैं। वस्तुत: ज्योतिृविज्ञान में गहन शोध की आवश्यकता है। इससे अनेक अविज्ञात रहस्यों का उद्घाटन होगा। इसकी प्रगति ने अनेक पुरानी मान्यताओं को अस्वीकार कर दिया है और अव वह कड़वी गोली पुरातनपन्थियों को भी किसी प्रकार गले उतारनी पड़ रही है। अब राहु केतु राक्षस नहीं रह गये। इन्हीं की भाँति उल्का के सम्बन्ध में भी यह मान्यता थी कि उनका पात देवों और प्रेतों की आत्माओं की हलचल है। देवगण उल्कापात द्वारा पृथ्वी पर विपत्तियाँ भेजते हैं। इस कारण भयभीत लोग देवों को प्रसन्न करने के लिए यज्ञादि करते थे किन्तु विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि यह प्रकृति की एक साधारण घटना है। ज्वालामुखी के उद्गार एवं भूकम्प के विषय में भी यह समझा जाता था कि शेषनाग फण हिला रहे हैं। पौराणिक आख्यानों के अनुसार पृथ्वी कभी चटाई की भाँति बिछी थी, हिरण्याक्ष उसे लपेट कर भागा था और समुद्र में जा छिपा था। तब विष्णु ने बाराह रूप धारण कर उसे छुड़ाया था। यह घटना आज बालबुद्धि की कल्पना सिद्ध होती है पर किसी समय शिरोधार्य थी। बाद में पृथ्वी को भ्रमणशील बताया गया तो बताने वालों को नास्तिकता के अपराध में शूली पर चढ़ा दिया गया किन्तु सत्य तो सत्य है। उसे स्वीकार करना ही पड़ता है। हमारी पृथ्वी का ७१ प्रतिशत भाग समुद्र में डूबा है। समुद्र की सर्वाधिक गहराई ३५ सहस्त्र फीट है और सर्वोच्च पर्वत २९ सहस्त्र फीट ऊँचा है। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करने में वर्ष भर में ५८४६ लाख मील चलती है और २४ घंटे में अपनी धुरी पर घूमती है।

सूर्य चन्द्र के ग्रहण के विषय में प्राचीन काल में भिन्न-भिन्न देशों की विभिन्न मान्यताएँ रही हैं। प्रशान्त के तराहती द्वीपवासी मानते थे कि यह प्रेमी प्रेमिका सूर्य-चन्द्र का मिलन है। उस दृश्य को देखने में वे लज्जा का अनुभव करते हुए मुख छिपाते फिरते थे। अंधविश्वास किसी भी घटना के साथ जुड़ सकते हैं। इन्द्र धनुष, बिजली की कड़क और ग्रहण देवों के युद्ध का एक स्वरूप समझा जाता रहा है और अनेक बार इनमें चतुर लोगों द्वारा लाभ उठाया जाता रहा है।

कहा जाता है कि अमुक ग्रह अशुभ है, उसकी पूजा करनी चाहिए और उसकी शान्ति के लिए दान देना चाहिए। यह अंधविश्वास धूर्तों को लाभ पहुँचाता है और बुद्धिजीवियों को नास्तिक वनाता है। यदि हम ज्योतिृविज्ञान द्वारा अविज्ञात तथ्यों को जानने का प्रयास करें और पुरातन शोधों को इससे जोड़ें तो उस अमृत से जनता का अवश्य लाभ होगा। सूर्य की लपटों का प्रभाव भूगर्भ तक पहुँचता है। अत: मानव शरीर उससे अछूता नही रह सकता। सृष्टि के प्रत्येक घटक एक दूसरे से जुड़े हैं और सब पर सबका प्रभाव पड़ता है अत: मनुष्य दूरस्थ प्रभावों से बच नहीं सकता। उसका भाग्य समष्टि से जुड़ा है परन्तु ज्ञान से, पुरुषार्थ से तथा सामूहिक आध्यात्मिक प्रयास से समीपवर्ती वातावरण को अनुकूल बनाकर अनिष्टों से बचा जा सकता है। खेद है कि पूर्व और पश्चिम में मनीषियों ने अनेक बार फलित ज्योतिष की पोल खोली पर अंधविश्वास समाप्त नहीं हुआ। अमेरिकन शास्त्रीय संशोधन समिति के बास्टन और कैम्ब्रिज शाखा के ज्योतिर्विदों ने फलित ज्योतिष की परीक्षा के लिए संसार भर के विशेषज्ञों की एक समिति बुलाई। उसने निर्णय किया कि आकाशस्थ ज्योतियों की गति द्वारा किसी व्यक्ति या राष्ट्र के भविष्य का निर्णय कठिन है। किरणें ग्रहों की ही नहीं, सब ज्योतियों और धूमकेतुओं आदि की आ रही हैं। पाश्चात्य फलित ज्योतिष में तुला राशि ललितकला की सूचक मानी जाती है किन्तु अमेरिकन प्रोफेसर फार्न्स वर्थ ने लगभग २००० वादनपटुओं और चित्रकारों की कुण्डलियों का अध्ययन कर यह निश्चित किया कि तुलाराशि और ललितकला में कोई सम्बन्ध नहीं है। रोमन साम्राज्य में फलित का बहुत प्रचार था। सिसरो और केटो ने इस पर आक्रमण किया, विरोध में नियम बनाये पर लोग छिपकर ज्योतिषियों के पास जाते रहे। पाँच सौ वर्षों के बाद उसका फिर बोल-बाला हो गया। विश्वविख्यात ज्योतिषी कोपर्निकस ने तीस वर्षों तक लगातार अनुसंधान करने के बाद कहा कि पृथ्वी चलती है पर धर्म विरुद्ध होने के कारण उसकी बात नहीं मानी गयी १५२९ ईसवीं में लिखा उसका ग्रंथ धर्मगुरुओं के भय से १४ वर्ष बाद उसके ७० वर्ष के वय में २३।५।१५४३ को प्रकाशित हुआ और वह उसके दूसरे दिन मर गया। उसका अनुयायी होने के कारण केपलर को नौकरी नहीं मिल रही थी पर अन्त में फलित को सत्य कहने पर मिली। विश्वास न होने पर भी उसको वर्षफल और वर्षा आदि का भविष्य बताना पड़ता था।

आचार्य श्रीराम शर्मा का लेख (अन्तरिक्ष अनुसंधान में)– रुढ़िवादी पण्डितगण कलियुग का मान ४३२००० वर्ष बताते हैं पर यह कथन शास्त्र विरुद्ध एवं भ्रामक है। धर्मशास्त्रों पर धर्मजीवी पण्डितों का बहुत दिनों तक एकाधिकार रहने से जनता अनेक विषयों में भ्रान्त हो गयी। उसने इतने लम्बे काल को अशुभ मानकर अपने को भाग्यवाद और निराशा से बाँध लिया। उन ग्रंथों ने अफीम खिलाकर बौद्धिक पराधीनता में जकड़ दिया। जिन शास्त्रीय सन्दर्भों से युग गणना का यह अतिरंजित प्रतिपादन किया गया है वहाँ अर्थ को तोड़–मरोड़कर उल्टा गया है। भाग्य और युग को शुभ कह देने से मनुष्य अकर्मण्य हो जाते हैं और अशुभ कहने से उनका उत्साह समाप्त हो जाता है। वैज्ञानिक ग्रहों के स्थूल प्रभावों को ही जानते हैं पर भारतीय ज्योतिर्विज्ञान सूक्ष्मवेत्ता है किन्तु वह इस समय स्वार्थियों के कुचक्र में पड़कर गर्त में गिर गया है। उसके साथ भविष्यकथन और भाग्यवाद की विडम्बनाएँ जुड़ गयी हैं। उसके वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए समय–समय पर जो करना चाहिए उसकी अज्ञान, आलस्य और अंधभक्ति के कारण उपेक्षा हो गयी है। प्राचीन काल में दृश्य गणित के आधार पर पंचांगों का संशोधन किया जाता था पर आज अशुद्ध ही शुद्ध माना जा रहा है। यही अन्धेरगर्दी चलती रही तो हमें सत्य कभी उपलब्ध ही नहीं होगा। शरीर के किसी एक भाग में आघात लगने पर पूरा शरीर और मन व्यथित हो जाता है। इसी कारण पूरा ब्रह्माण्ड एक पिण्ड है और उसके सब घटक एक दूसरे से जुड़े हैं। भारत में प्राचीन काल में उन सब के सम्बन्ध का ज्ञान ज्योतिर्विज्ञान कहा जाता था। उसका लक्ष्य था, अन्तर्ग्रही प्रभावों को जानना और उनके दुष्प्रभावों से जनता की रक्षा करना। कालान्तर में यह विज्ञान लुप्त हो गया और उसका स्थान फलित ज्योतिष की झूठी मान्यताओं ने ले लिया।

संसार में प्रत्यक्ष की अपेक्षा अप्रत्यक्ष अधिक है। आकश अनेक ग्रहों, उपग्रहों, तारों, उल्काओं, नीहारिकाओं, धूमकेतुओं के साथ–साथ अनेक देवों और राक्षसों से भी भरा है। वह भट्ठों, गाड़ियों, कारखानों और बमों के धूम से, अनेक गैसों से, कोलाहल से, माइकों की ध्वनि से, रुदन से और मानवों के दूषित मनोभावों से अतिशय कलुषित हो गया है। प्राणियों पर उन सब का प्रभाव पड़ रहा है। आकाश में अनेक चेतन विद्यमान है। उनका प्रभाव जड़, ज्योतियों की अपेक्षा अधिक होता है। संसार में इस समय शृंगारप्रियता, कामुकता, लोभ, आक्रमण, विजयेच्छा, स्वार्थान्धता आदि की बहुत वृद्धि हो गयी है। उसने वायुमण्डल को विषाक्त कर दिया है। मनुष्यों पर उसका भी प्रभाव पड़ता है। मनुष्य का प्रधान आहार वायु है। उसका महत्त्व अन्न–जल से अधिक है। इस समय वायु भौतिक और मानसिक, दोनों पदार्थों से दूषित हो गया है। विचारपवित्रता, वृक्षारोपण, वनस्पतिसंवर्धन और यज्ञों द्वारा उसे पवित्र बनाया जा सकता है। हम नवग्रहों को देव मानते हैं पर देव उनके अतिरिक्त भी हैं और उनकी संख्या विशाल है। हम उन्हें बुलाकर और उनके सम्पर्क में रहकर वायुमण्डल को और अपने को विशुद्ध एवं सुखी वना सकते हैं। देवाराधन में आकाशस्थ सात्त्विक चेतन शक्तियों से सम्पर्क बढ़ाने का ही प्रयास किया जाता है। उन्हें प्राप्त कर लेना ही योगसिद्धि है और समाज में उन्हें वितरित करना ही महानता है। आकाश में अनेक शक्ति तरंगे हैं, अनेक प्रकार की ऊर्जा तरंगों का भण्डार है, देव हैं, पितर हैं। हमें ज्योतिर्विज्ञान द्वारा उनमें से हितावहों को लेना है। इस समय धरती पर कोयला, भाप, तेल, बिजली और अणु, ये पाँच ईधन उपलब्ध हैं। वे कम और मँहगे हैं इसलिए सौर ऊर्जा की प्राप्ति का प्रयास चल रहा है। यह सस्ती है और वहुत है। लैसर से लेकर मृत्यु किरणें तक आकाश से उपलब्ध हो रही हैं पर युद्धोन्माद में सवका दुरुपयोग हो रहा है। स्वास्थ्य पर सबसे अधिक प्रभाव वायुमण्डल का पड़ता है। उसी के कारण उजवेकिस्तान में मनुष्य की औसत आयु सौ वर्ष है। हमें ज्योतिर्विज्ञान द्वारा आकाश को शुद्ध करना है और देवों को बुलाना है।

फलित ज्योतिष और ग्रहगणित का कौन–सा पक्ष सत्य और हितावह है, इस विषय की श्री आर्यभट, आचार्य भास्कर, श्री गणेश दैवज्ञ, महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी, भारतरत्न श्री पाण्डुरंग वामन काणें, श्री शंकर बालकृष्ण जी दीक्षित और श्री व्यंकटेश बापू जी केतकर आदि भारतमान्य विद्वानों की संमतियाँ ग्रंथ में आगे यथास्थान लिखी हैं।

अध्याय २

भाग्य और पुरुषार्थ

भाग्य के भावी, दैव, हरि-इच्छा, ब्रह्म-लेख, अदृष्ट, अपूर्व, संचित आदि अनेक नाम हैं। हमारे यहाँ बड़े-बड़े ज्ञानियों की भी दृढ़ प्रतीति है कि विधाता ने छठी रात के अन्त में ललाट में जो लिख दिया है वह किसी भी उपाय से न राई भर घट सकता है न तिल भर बढ़ सकता है। 'होइहै सोइ जो राम रचि राखा' किन्तु यह सिद्धान्त यदि ध्रुव सत्य होता तो हमें खेती में घोर श्रम और बहुत व्यय न करना पड़ता। नियत तिथि पर वर-वधू अपने आप मिल जाते। विद्याभ्यास, व्यापार आदि सैकड़ों कर्मों में व्यस्त और चिन्तित न रहना पड़ता, पुत्र-प्राप्ति के लिए हरिवंशपुराण न सुनना पड़ता, पाप-नाश के लिए तीर्थ-यात्राएँ न करनी पड़तीं, वैद्य की औषध का सेवन न करना पड़ता और युद्ध में स्वजनों की बलि न देनी पड़ती। हम एक युवती विधवा को आश्वासन देते हैं कि तुम्हारे भाग्य में यही लिखा था परन्तु भारत की ही अनेक जातियों में विधवा विवाह धर्मसम्मत है और विश्व की कई जातियों में विधवा एवं विधुर शब्द ही समाप्त हो गये हैं। वैधव्य का स्थायित्व विधि का विधान होता तो विधुर का भी दूसरा विवाह नहीं होता और कोई पुरुष सैकड़ों-सहस्रों नारियों का पति न बन पाता। भाग्य का परिवर्तन आज हम हर क्षेत्र में देख रहे हैं। पहले बद्रीनारायण का दर्शन कुछ भाग्यशालियों को ही होता था और उनमें से थोड़े ही लौट कर आते थे पर आज चारों धाम की यात्रा दो एक दिन में शक्य है। पहले ब्रह्मा जी स्त्रियों और शूद्रों के भाग्य में विद्या नहीं लिखते थें पर अब हम उनसे लिखवाने लगे हैं और ब्रह्मा अनेक नारियों को मुख्यमंत्री और राष्ट्रपति आदि बनाने लगे हैं। ज्योतिषी जी ने रामधनी सिंह की जन्मपत्री में पाँच पुत्र और पाँच पुत्री का प्रवल योग लिखा था पर अव उन्होंने दो सन्तान के बाद आप्रेशन कराकर ब्रह्म-लेख को मिटा दिया है। वैद्यराज दुर्गादत्त जी बीस वर्षों से मोतियाविन्द के कारण अन्धे थे और उसे विधि का विधान मानते थे पर उनके सुपुत्र डॉक्टर ने उनके नेत्र ठीक कर दिये हैं। सेवाराम जी १५ वर्षों से विवृद्ध अण्डकोष को गले में बाँधे घूमते थे पर अब वह अदृश्य है और वे दौड़ रहे हैं। बड़ी माता (चेचक), प्लेग, महामारी आदि अनेक रोग अब अदृश्य हो गये हैं और बिजली तथा नहर ने ऊसर के भाग्य को परिवर्तित कर दिया है। किसी देश में मनुष्य की मध्यम आयु २५ वर्ष है तो कहीं ७५ वर्ष किन्तु दोनों के ब्रह्मा एक हैं। प्रत्यक्ष देखा जा रहा है कि ज्ञान और पुरुषार्थ की वृद्धि में भाग्य की सीमा संकुचित होने लगती है, उनके पूर्णत्व में समाप्त हो जाती है और इस जन्म के भले बुरे कर्मों द्वारा पीछे के पाप-पुण्य समाप्त किये जा सकते हैं।

हमारे दर्शनशास्त्र में त्रैत, द्वैत और अद्वैत, तीन मुख्य वाद हैं। त्रैतवाद के अनुसार ईश्वर के साथ-साथ प्रकृति और जीव भी कर्म करते हैं तथा इन तीनों की कृतियाँ प्रत्यक्ष हैं। ईश्वर और जीव को मानने वाले द्वैतवाद में भी जीव कर्मठ हैं तथा अद्वैतवाद तो जीव को ईश्वर मानता है। अतः दर्शनों के मत में जीव भाग्य का दास नहीं बल्कि उसका निर्माता है, विधाता है।

भाग्य और योगवासिष्ठ

इस ग्रंथ में महामुनि वसिष्ठ द्वारा राम को दिये हुए उपदेशों का संग्रह है और इसके लेखक महर्षि वाल्मीकि हैं। इसके मुमुक्षुप्रकरण के चतुर्थ से नवम पर्यन्त, छः सर्गों में दैव का विस्तृत और सयुक्तिक विवेचन है। उसमें से यहाँ केवल ४० श्लोक लिखे हैं। हिन्दी अनुवाद श्री श्रीकृष्णपन्त शास्त्री जी का है। इसमें एक शब्द भी मेरा नहीं है।

सर्वमेवेह संसारे सर्वदा रघुनन्दन
सम्यक् प्रयुक्तात् सर्वेण पौरुषात् समवाप्यते ४। ८
पौरुषं स्पन्दफलवत् दृष्टं प्रत्यक्षतो न यत्
कल्पितं मोहितैर्मन्दैः दैवं किंचिन्न विद्यते ४। १०

हे रघुनन्दन! इस संसार में भली भाँति किये गये प्रयत्न से सबको सर्वदा सब पदार्थ मिलते हैं। प्रयत्न का अभाव ही विफलता का हेतु है। प्राचीनकाल के मुनियों को जो फल मिलते थे वे आज आधुनिक पुरुषों को नहीं मिल सकते, यह सोचना अज्ञान है। भोजन से उत्पन्न तृप्ति की भाँति पुरुषार्थ का फल प्रत्यक्ष है और दैव (भाग्य) अप्रत्यक्ष है। वह वस्तुतः अज्ञान से मोहित मन्द पुरुषों की कोरी कल्पना है।

साधूपदिष्टमार्गेण यन्मनोंऽगविचेष्टितम्
तत्पौरुषं तत्सफलं अन्यदुन्मत्तचेष्टितम् ४।११
यो यमर्थं प्रार्थयते तदर्थं चेहते क्रमात्
अवश्यं स तमाप्नोति न चेदर्धान्निवर्तते ४।१२

साधुओं के कहे मार्ग से मन और अंगों की चेष्टा पौरुष है, वह सफल होता है और शेष उन्मत्त की चेष्टा है। जो जिस अर्थ को चाहता है और प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता रहता है वह उसको क्रमशः अवश्य प्राप्त करता है, यदि आधे पर छोड़ न दे तो।

प्राक्तनं चैहिकं चेति द्विविधं विद्धि पौरुषम्
प्राक्तनोऽद्यतनेनाशु पुरुषार्थेन जीयते ४।१७
यत्नवद्भिः दृढाभ्यासैः प्रज्ञोत्साहसमन्वितैः
मेरवोपि निगीर्यन्ते कैव प्राक्पौरुषे कथा ४।१८

पौरुष दो हैं। एक पूर्वजन्म का और दूसरा इस जन्म का। आधुनिक पुरुषार्थ द्वारा पूर्वजन्म का पुरुषार्थ शीघ्र तिरस्कार को प्राप्त होता है। निरन्तर प्रयत्न करने वाले दृढ़ाभ्यासी, प्रज्ञा और उत्साह से युत पुरुष मेरु पर्वत को भी मटियामेट कर डालते हैं, पूर्व पौरुष की तो बात ही क्या है।

परं पौरुषमाश्रित्य दन्तैर्दन्तान् विचूर्णयन्
शुभेनाशुभमुद्युक्तं प्राक्तनं पौरुषं जयेत् ५।६
प्राक्तनः पुरुषार्थोसौ मां नियोजयतीति धीः
बलादधस्पदीकार्या प्रत्यक्षादधिका न सा ५।१०

उत्कृष्ट पौरुष का अवलम्बन कर दाँतों से दाँत पीसकर इस जन्म के शुभ पौरुष से पूर्वजन्म के अशुभ को जीत लेना चाहिए। प्राचीन कर्म मुझे प्रेरित कर रहा है, इस बुद्धि को कुचल डालना चाहिए। प्राक्तन कर्म प्रत्यक्ष से बलवान् नहीं है।

दोषः शाम्यत्यसन्देहं प्राक्तनोद्यतनैर्गुणैः
दृष्टान्तो ह्यस्तनस्यात्र दोषस्याद्यगुणैः क्षयः ५।१२
न गन्तव्यमनुद्योगैः साम्यं पुरुषगर्दभैः

उद्योगस्तु यथाशास्त्रं लोकद्वितयसिद्धये ५।१४

इस जन्म के गुणों से पूर्व जन्म का दोष निस्सन्देह नष्ट हो जाता है (जैसे उपवास से अजीर्ण) अनुद्योगी गदहे से भी निकृष्ट हैं। शास्त्रानुसार उद्योग से इस लोक और परलोक दोनों में सिद्धि मिलती है।

शुभेन पौरुषेणाशु शुभमासाद्यते फलम्
अशुभेनाशुभं नित्यं दैवं नाम न किंचन ५।१८
प्रत्यक्षमानमुत्सृज्य योऽनुमानमुपेत्यसौ
स्वभुजाभ्यामिमौ सर्पौ इति प्रेक्ष्य पलायते ५।१९
दैवं संप्रेरयति मामिति दग्धधियां मुखम्
अदृष्टश्रेष्ठदृष्टीनां दृष्ट्वा लक्ष्मीनिवर्तते ५।२०

शुभ पौरुष से शुभ और अशुभ से अशुभ फल मिलता है। दैव कुछ नहीं है। जो मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमाण को छोड़कर अनुमान का अवलंबन करता है, वह अपनी बाहुओं को ही सर्प समझकर भागने लगा है। अदृष्ट को ही श्रेष्ठ समझने वाले दुर्बुद्धियों का मुख देखकर लक्ष्मी लौट जाती हैं क्योंकि वे दैव को ही प्रेरक समझते हैं।

इति प्रत्यक्षतो दृष्टं अनुभूतं श्रुतं कृतम्
दैवात्तमिति मन्यन्ते ये हतास्ते कुबुद्धयः ५।२९
आलस्यं यदि न भवेद् जगत्यनर्थः, को न स्याद् वहुधनिको वहुश्रुतो वा।
आलस्यादियमवनिः ससागरान्ता सम्पूर्णा नरपशुभिश्च निर्धनैश्च ५।३०॥

हम जीवन्मुक्त लोगों ने इसे प्रत्यक्ष देखा है, अनुभव किया है, सुना है और साधनों से उपार्जित किया है। उसे दैवाधीन कहने वाले मन्दमति और विनष्ट हैं। अनर्थकारी आलस्य संसार में यदि न होता तो कौन पुरुष धनिक और विद्वान् न हो जाता। आलस्य के कारण ही यह धरती नरपशुओं और दरिद्रों से परिपूर्ण हैं।

द्वौ हुडाविव युध्येते पुरुषार्थौ परस्परम्
य एव बलवांस्तत्र स एव जयति क्षणात् ६।१०
यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान्
स निर्याति जगन्मोहात् मृगेन्द्रः पंजरादिव ६।२८

पूर्व जन्म और इस जन्म के कर्मरूपी दो भेड़ें आपस में लड़ते हैं, उनमें बलवान विजयी होता है। उदार स्वभाव और सदाचार वाले इस जगत्मोहक दैव से वैसे ही निकल जाते हैं जैसे पिंजरे से सिंह।

कश्चिन्मां प्रेरयत्येवं इत्यनर्थकुकल्पने
यःस्थितो दृष्टमुत्सृज्य त्याज्योसौ दूरतोधमः ६।२९
करामलकवद् दृष्टं पौरुषादेव तत्फलम्
मूढः प्रत्यक्षमुत्सृज्य दैवमोहे निमज्जति ६।३८

जो पुरुष कर्म का त्यागकर इस अनर्थकारिणी कुकल्पना में स्थित है कि कोई पुरुष (ईश्वर) मुझे प्रेरित कर रहा है उस नराधम का दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए। पौरुष का फल हाथ में रखे आँवले के समान स्पष्ट है। प्रत्यक्ष को छोड़ दैव के मोह में निमग्न लोग मूढ़ हैं।

ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिताः दैवपरायणाः
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः ७।३
पौरुषाद् दृश्यते सिद्धिः पौरुषाद् दृश्यते क्रमः
दैवमाश्वासनामात्रं दुःखे पेलवबुद्धिषु ७।१५
भोक्ता तृप्यति नाभोक्ता गन्ता गच्छति नागतिः
वक्ता वक्ति न चावक्ता पौरुषं सफलं नृणाम् ७।१७

उद्योग छोड़कर दैव पर निर्भर रहने वाले आत्म शत्रु अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का नाश करते हैं। पौरुष से ही सिद्धियों की प्राप्ति होती है, पराक्रम की वृद्धि होती है। दैव तो दुःख-सागर में डूबे दुर्बल चित्तवालों के आँसू पोंछने का बहाना मात्र है। भोजन करने वाला तृप्त होता है, चलने वाला पहुँचता है, वक्ता बोलता है और अकर्मण्य कुछ नहीं करता इसलिए पौरुष ही सफल है, दैव नहीं।

न दैवं दृश्यते दृष्टया न च लोकान्तरे स्थितम्
उक्तं दैवाभिधानेन स्वर्लोके कर्मणः फलम् ७।२२
पुरुषो जायते लोके वर्धते जीर्यते पुनः
न तत्र दृश्यते दैवं जरायौवनबाल्यवत् ७।२३

दैव नेत्रों से दिखाई नहीं देता, न तो वह स्वर्ग में है। पुरुषार्थी के अदृष्ट कर्मफल को ही लोग दैव कहते हैं। पुरुष पैदा होता है, बढ़ता है, फिर वृद्ध होता है, इसे हम देखते हैं पर दैव की ये अवस्थाएँ दिखाई नहीं देतीं।

स्वकर्मफलसम्प्राप्तौ इदमित्थं इतीति याः
गिरस्ता दैवनाम्नैताः प्रसिद्धिं समुपागताः ८।२
तत्रैव मूढमतिभिः दैवमस्तीति निश्चयः
आत्तो दुखबोधेन रज्वामिव भुजंगमः ८।३

कर्म का फल प्राप्त होने पर जो वाग्व्यवहार होते हैं वे ही दैव नाम से प्रसिद्ध हैं। रस्सी में सर्प की भाँति मूढ़ लोग भ्रान्ति से वहाँ दैव मानते हैं।

मूढानुमानसंसिद्धं दैवं यस्यास्ति दुर्मतेः
दैवाद्दाहोस्ति नैवेति गन्तव्यं तेन पावके ८।१५
दैवमेवेह चेत् कर्तृ पुंसः किमिव चेष्टया
स्नानदानासनोच्चारान् दैवमेव करिष्यति ८।१६
न चामूर्तेन दैवेन मूर्तस्य सहकर्तृता
पुंसः संदृश्यते काचित् तस्माद्दैवं निरर्थकम् ८।१९

जो दुर्मति मूढ़ों द्वारा कल्पित दैव को मानता है उसे भाग्य के भरोसे अग्नि में कूद पड़ना चाहिए वह जलेगा नहीं। यदि दैव ही कर्ता-धर्ता है तो प्रयत्न से क्या प्रयोजन? स्नान, दान, उठना, बैठना, बोलना दैव ही कर देगा। अदृश्य दैव दृश्य पुरुषार्थ का सहकारी नहीं है, वह निरर्थक है।

मनोबुद्धिवदप्येतत् दैवं नेहानुभूयते

आगोपालं कृतप्रज्ञैः तेन दैवमसत् सदा ८।११
नामूर्तेस्तेन संगोस्ति नभसेव वपुष्मतः
मूर्त च दृश्यते लग्नं तस्माद्दैवं न विद्यते ८।१३

बच्चों से लेकर विद्वानों तक को मन और बुद्धि की भाँति दैव का अनुभव नहीं होता, इसलिए वह नहीं है। जैसे हमारा सारा शरीर निराकार आकाश से युक्त नहीं होता उसी प्रकार अमूर्त दैव से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

दैवेन त्वभियुक्तोहं तत् करोमीदृशं स्थितम्
समाश्वासनवागेषा न दैवं परमार्थतः ८।१५
मूढैः प्रकल्पितं दैवं तत्परास्ते क्षयं गताः
प्राज्ञास्तु पौरुषार्थेन पदमुत्तमतां गताः ८।१६
ये शूरा ये च विक्रान्ता ये प्राज्ञा ये च पण्डिताः
तैस्तैः किमिव लोकेस्मिन् वद दैवं प्रतीक्ष्यते ८।१७
कालविद्भिः विनिर्णीता यस्यातिचिरजीविता
स चेत् जीवति संछिन्नशिराः तद्दैवमुत्तमम् ८।१८
कालविद्भिर्विनिर्णीतं पाण्डित्यं यस्य राघव
अनध्यापित एवासौ तज्ज्ञश्चेत् दैवमुत्तमम् ८।१९

मैं दैव से प्रेरित होकर ऐसा कर रहा हूँ, यह आश्वासन मात है। सचमुच भाग्य कुछ नहीं है। मूर्खों ने इसकी कल्पना की और वे नष्ट हो गये, किन्तु बुद्धिमानों ने पुरुषार्थ से उत्तम पद पाया। शूर, पराक्रमी, मेधावी और विद्वान भाग्य की प्रतीक्षा नहीं करते। ज्योतिषियों ने जिसकी दीर्घायु का निर्णय सुनाया है वह सिर कटने पर भी जीवित रहे तो भाग्य को श्रेष्ठ माना जा सकता है और ज्योतिषियों ने जिसके विद्वान होने का निर्णय किया है वह यदि बिना पढ़ाये विद्वान् हो जाय तो भाग्य उत्तम है।

दैवं न ङ्क्कचित् कुरुते न भुंक्ते न च विद्यते
न दृश्यते नाद्रियते केवलं कल्पनेदृशी ९।३
अन्यस्त्वां चेतयति चेत्तं चेतयति कोऽपरः
क इमं चेतयेत्तस्मादनवस्था न वास्तवी ९।२९

दैव न कुछ करता है, न भोगाता है, न उसका अस्तित्व है, न दिखाई देता है, न विवेकी पुरुषों द्वारा उसका आदर किया जाता है किन्तु भ्रान्त मूढ़ों ने बहुत दिनों से दैव (भाग्य) की कल्पना कर रखी है। यदि आपका प्रेरक कोई अन्य (दैव) है तो उसका प्रेरक कौन है और उसके प्रेरक का प्रेरक कौन है। अनेक प्रेरकों को मानने पर तो अनवस्था हो जायेगी।

अथ चेदशुभो भावस्त्वां योजयति संकटे
प्राक्तनस्तदसौ यत्नात् जेतव्यो भवता बलात् ९।२७

यदि आपकी पूर्व-जन्म की वासनाएँ अशुभ हैं और वे संकट की ओर ले जा रही हैं तो प्रयत्न द्वारा बलपूर्वक उन पर विजय प्राप्त कीजिए।

योगी वसिष्ठ की कुछ बातें आपने सुनीं। हमारे दूसरे ज्योतिषी वसिष्ठ ने भयों का एक महासागर बनाया है। उनमें से कुछ आगे लिखे जायेंगे। उनके मत से स्त्री का एक भी रजोदर्शन ऐसा नहीं हो सकता जिसमें चार-छः भीषण दोष न हों।

स्त्री संभोग का मुहूर्त तो वर्ष भर में कदाचित् ही मिलेगा। क्या ये दोनों वसिष्ठ एक हो सकते हैं?

भाग्य और गणेश दैवज्ञ

ज्योतिषशास्त्र के महान् आचार्य ग्रहलाघवकार श्री गणेश दैवज्ञ ने विवाह वृन्दावन की टीका में लिखा है कि भाग्य ही सब कुछ है तो मनुष्य कृषि आदि कर्मों में परिश्रम क्यों करता है? भाग्य में जितना लिखा है उतना ही मिलना है और उतना निश्चित रूप से मिलता है तो वेदों और स्मृतियों में लिखे विधानों, निषेधों, संयमों और नियमों का क्या महत्त्व रहा? पूर्व जन्म के कर्म इस जन्म में भाग्य वन जाते हैं और शुभ भाग्य की प्राप्ति इच्छा माल से नहीं बल्कि उद्यम से होती है। जैसे रखा हुआ बीज पृथ्वी, जल और उष्णता का समुचित संयोग न मिलने पर कुछ दिनों में सूख जाता है वैसे ही उद्योग और सदाचार के अभाव में पिछले सत्कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। भाग्य और कर्म रथ के दो चक्र हैं और पक्षी के दो पंख हैं। उनमें एक से काम नहीं चलता।

फलेद्यदि प्राक्तनमेव तत् किं कृष्याद्युपायेषु परः प्रयत्नः।
श्रुतिः स्मृतिश्चापि नृणां निषेधविध्यात्मके कर्मणि किं निषण्णा॥
पूर्वजन्मजनितं पुराविदः कर्म दैवमिति सम्प्रचक्षते।
उद्यमेन तदुपार्जितं तदा वांछितं फलति नैव केवलम्॥
प्राक्कर्मबीजं सलिलानलोर्वी संस्कारवत् कर्म विधीयमानम्।
शोषाय पोषाय च तस्य तस्मात् सदा सदाचारवतां न हानिः॥

मनु स्मृति में लिखा है कि दीर्घायु, उत्तम स्वास्थ्य, धन और विद्या आदि की प्राप्ति भाग्य के नहीं, पुरुषार्थ और संयम के वश में है। ऋषियों ने दीर्घकाल तक संयम (ध्यान) द्वारा ही दीर्घायु, प्रज्ञा, यश और ब्रह्मवर्चस्व आदि पाया (४।९४)। गुणी संतान और अक्षय धन सदाचार से ही प्राप्त होते हैं (४।१५६)। संयमी पुरुषों का पतन कभी होता ही नहीं (४।१४६)। भाग्य के विषय में महर्षि चरक की संमति आगे लिखी है। सदाचार और पुरुषार्थ की महत्ता एवं भाग्य की उपेक्षा के इस प्रकार के वर्णन से वेद, रामायण, महाभारत, पुराण और स्मृति ग्रंथ भरे पड़े हैं। उन सब का सारांश यह है कि इस जन्म के सत्कर्मों द्वारा पूर्वजन्म के दुष्कर्मों के फलों को मिटाया जा सकता है।

मनोबल और ज्योतिष

वेदों के मत में मनुष्य का सबसे बड़ा मित मनोवल है, मनोबल की सबसे श्रेष्ठ स्थिति शिव (शुभ) संकल्प है, इन दोनों का सबसे वड़ा शतु भाग्यवाद है और भाग्यवाद का सबसे बड़ा पोषक एवं संरक्षक हमारा आधुनिक ज्योतिषशास्त्र है। इसमें छींक, छिपकली, गिरगिट, गोह, सूकर, साँप, संन्यासी, विधवा आदि के दर्शन से, भिन्न-भिन्न अंगों के स्फुरण से, स्वर से और तिथि, नक्षत, वार आदि से उत्पन्न कई सहस्र भीषण कुयोगों का भयावह वर्णन है। उनमें से कुछ आगे लिखे हैं। इन्होंने हमारे मनोवल की हत्या कर दी है। आज न तो किसी पहलवान को गुरुवार को दक्षिण जाने का, न किसी वेद-वेदान्ताचार्य को भद्रा-भरणी में विवाहादि करने का साहस है। मनुष्य का सबसे बड़ा बल मनोबल है। उसके अभाव में धन, अन्न, शरीर, विद्या, शस्त्र, सेना, देव आदि के सारे बल निरर्थक हो जाते हैं। हमारे पूर्वजों ने उसी वल से चीन, तिब्बत, जापान, लंका, श्यामदेश, ब्रह्मदेश, वियतनाम, जावा, सुमाता, इण्डोनेशिया आदि में सम्मान प्राप्त किया। महाराणा प्रताप सिंह ने मनोबल से ही नूतन अस्त्र-शस्त्रों से सम्पन्न एवं विशाल मुगल सेना में प्रवेश किया। उन्होंने जो किया वह शरीर बल और शस्त्रबल से कभी भी संभव नहीं था। श्री शिवाजी और रणजीत सिंह आदि वीरों ने थोड़ी-सी सेना द्वारा शतु की विशाल सेनाओं पर अनेक वार जो विजय प्राप्त की वे मनोबल के अभाव में असंभव थीं। शस्त्रास्त्रबल से विहीन लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, श्री सुभाष, सावरकर, रासविहारी, चन्द्रशेखर और भगत सिंह आदि वीरों ने समस्त भूमण्डल में विख्यात और

शस्त्रास्त्रबल से सुसम्पन्न अंगरेजों को भारत से भगा दिया। यह मनोबल का ही प्रभाव था। सिकन्दर, गौरी, गज़नवी, तैमूर, नादिर शाह, खिलजी, लोदी, तुगलक, मुगल, पुर्तगीज और अंगरेज आदि वीर ऊँचे पर्वतों को लाँधकर, समुद्रों और रेगिस्तानों को पारकर बहुत दूर से थोड़ी सेना लेकर आये और भारत सरीखे सर्वसाधन सम्पन्न, वीर, विशाल देश पर सहस्रों वर्षों तक राज करते रहे। उन्होंने हमारे अगणित सिर काटे, मन्दिर तोड़े, प्रतिष्ठा लूटी और धन लूटा। यह मनोबल का ही प्रभाव था। विश्व के इतिहास में मनोबल द्वारा शान्ति और विजय की प्राप्ति की तथा मनोबल के अभाव में पराजय और दुर्दशा की कई सौ कथाएँ हैं। भारतीय योगी मन की क्लिष्ट वृत्तियों का निरोध कर मनोबल से ही अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करते थे। वे ज्योतिषियों से यह नहीं पूछते थे कि हमारे भाग्य में सिद्धियाँ लिखी हैं या नहीं। इसीलिए योगेश्वर कृष्ण ने गीता में कहा है कि मैं इन्द्रियों में मन हूँ। इन्द्रियाणां मनश्चास्मि। उन्होंने अर्जुन से कहा था कि नपुंसक मत बनो, मन की दुर्बलता का परित्याग कर खड़े हो जाओ, अपनी बुद्धि को निश्चयात्मिका बनाओ, मोहरूपी दलदल से बाहर आओ, ज्ञान को अज्ञान से आच्छादित मत होने दो, अपना उद्धार स्वयं करो और अपने को ईश्वर का अंश समझो। मत्स्यपुराण २४३।२७ और विष्णुधर्मोत्तर पुराण २।१६३ में विस्तार से बताया गया है कि मन की तुष्टि, मन का उत्साह और मन की जय सबसे बड़ी विजय है तथा पाराशरसंहिता का कथन है कि सारे शुभ शकुन एवं मुहूर्तादि एक ओर हैं तथा मन की शुद्धि और उत्साह एक ओर है। मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का मुख्य कारण है, मन की हार हार हैं और मन की जीत जीत है।

मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम्।
एकतः सर्वलिंगानि मन उत्साह एकतः॥
निमित्तशकुनादिभ्यः श्रेष्ठो हि मनसो जयः।
तस्माद् यियासतां नृणां फलसिद्धिर्मनोजयात्॥
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
मन के हारे हार है मन के जीते जीत॥

राजनीति के महान् आचार्य श्री विष्णुशर्मा ने लिखा है कि मूढ़ के लिए प्रतिदिन शोक और भय के सहस्रों स्थान हैं। वह पृथ्वी के हर अन्न और पान में शंकालु रहता है। उसे कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं प्रतीत होता और उसका जीवन दूभर हो जाता है। वह छोटा-सा कार्य प्रारम्भ करके भी व्याकुल हो जाता है पर शूरों और पण्डितों की स्थिति इसके ठीक विपरीत होती है। वे बड़े-बड़े कार्यों का आरम्भ करने पर भी निराकुल रहते हैं।

शंकाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले।
निवासः कुत्र कर्तव्यो जीवितव्यं कथं नु वा॥
आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारंभेऽपि सुधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः॥
शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥
विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता।
उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः॥

अल्प मनोबल वाले मनुष्यों के लिए छोटी-सी भी घटना कितनी भयावह हो जाती है तथा वे कैसे-कैसे भीषण सपने और शकुन देखने लगते हैं, इसकी भागवत की एक कथा पठनीय है। लिखा है कि कालिया नाग से लड़ने के लिए श्रीकृष्ण एक ऊँचे कदम्बवृक्ष पर चढ़ कर कालीदह में कूद पड़े। ब्रजवासी यद्यपि उनके पराक्रम से सुपरिचित थे और बलरामजी को

स्त्री संभोग का मुहूर्त तो वर्ष भर में कदाचित् ही मिलेगा। क्या ये दोनों वसिष्ठ एक हो सकते हैं?

भाग्य और गणेश दैवज्ञ

ज्योतिषशास्त्र के महान् आचार्य ग्रहलाघवकार श्री गणेश दैवज्ञ ने विवाह वृन्दावन की टीका में लिखा है कि भाग्य ही सब कुछ है तो मनुष्य कृषि आदि कर्मों में परिश्रम क्यों करता है? भाग्य में जितना लिखा है उतना ही मिलना है और उतना निश्चित रूप से मिलता है तो वेदों और स्मृतियों में लिखे विधानों, निषेधों, संयमों और नियमों का क्या महत्त्व रहा? पूर्व जन्म के कर्म इस जन्म में भाग्य बन जाते हैं और शुभ भाग्य की प्राप्ति इच्छा मात्र से नहीं बल्कि उद्यम से होती है। जैसे रखा हुआ बीज पृथ्वी, जल और उष्णता का समुचित संयोग न मिलने पर कुछ दिनों में सूख जाता है वैसे ही उद्योग और सदाचार के अभाव में पिछले सत्कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। भाग्य और कर्म रथ के दो चक्र हैं और पक्षी के दो पंख हैं। उनमें एक से काम नहीं चलता।

फलेद्यदि प्राक्तनमेव तत् किं कृष्याद्युपायेषु परः प्रयत्नः।
श्रुतिः स्मृतिश्चापि नृणां निषेधविध्यात्मके कर्मणि किं निषण्णा॥
पूर्वजन्मजनितं पुराविदः कर्म दैवमिति सम्प्रचक्षते।
उद्यमेन तदुपार्जितं तदा वांछितं फलति नैव केवलम्॥
प्राक्कर्मबीजं सलिलानलोर्वी संस्कारवत् कर्म विधीयमानम्।
शोषाय पोषाय च तस्य तस्मात् सदा सदाचारवतां न हानिः॥

मनु स्मृति में लिखा है कि दीर्घायु, उत्तम स्वास्थ्य, धन और विद्या आदि की प्राप्ति भाग्य के नहीं, पुरुषार्थ और संयम के वश में है। ऋषियों ने दीर्घकाल तक संयम (ध्यान) द्वारा ही दीर्घायु; प्रज्ञा, यश और ब्रह्मवर्चस्व आदि पाया (४।९४)। गुणी संतान और अक्षय धन सदाचार से ही प्राप्त होते हैं (४।१५६)। संयमी पुरुषों का पतन कभी होता ही नहीं (४।१४६)। भाग्य के विषय में महर्षि चरक की संमति आगे लिखी है। सदाचार और पुरुषार्थ की महत्ता एवं भाग्य की उपेक्षा के इस प्रकार के वर्णन से वेद, रामायण, महाभारत, पुराण और स्मृति ग्रंथ भरे पड़े हैं। उन सब का सारांश यह है कि इस जन्म के सत्कर्मों द्वारा पूर्वजन्म के दुष्कर्मों के फलों को मिटाया जा सकता है।

मनोबल और ज्योतिष

वेदों के मत में मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र मनोबल है, मनोबल की सबसे श्रेष्ठ स्थिति शिव (शुभ) संकल्प है, इन दोनों का सबसे बड़ा शत्रु भाग्यवाद है और भाग्यवाद का सबसे बड़ा पोषक एवं संरक्षक हमारा आधुनिक ज्योतिषशास्त्र है। इसमें छींक, छिपकली, गिरगिट, गोह, सूकर, साँप, संन्यासी, विधवा आदि के दर्शन से, भिन्न-भिन्न अंगों के स्फुरण से, स्वर से और तिथि, नक्षत्र, वार आदि से उत्पन्न कई सहस्त्र भीषण कुयोगों का भयावह वर्णन है। उनमें से कुछ आगे लिखे हैं। इन्होंने हमारे मनोबल की हत्या कर दी है। आज न तो किसी पहलवान को गुरुवार को दक्षिण जाने का, न किसी वेद-वेदान्ताचार्य को भद्रा-भरणी में विवाहादि करने का साहस है। मनुष्य का सबसे बड़ा बल मनोबल है। उसके अभाव में धन, अन्न, शरीर, विद्या, शस्त्र, सेना, देव आदि के सारे बल निरर्थक हो जाते हैं। हमारे पूर्वजों ने उसी बल से चीन, तिब्बत, जापान, लंका, श्यामदेश, ब्रह्मदेश, वियतनाम, जावा, सुमात्रा, इण्डोनेशिया आदि में सम्मान प्राप्त किया। महाराणा प्रताप सिंह ने मनोबल से ही नूतन अस्त्र-शस्त्रों से सम्पन्न एवं विशाल मुगल सेना में प्रवेश किया। उन्होंने जो किया वह शरीर बल और शस्त्रबल से कभी भी संभव नहीं था। श्री शिवाजी और रणजीत सिंह आदि वीरों ने थोड़ी-सी सेना द्वारा शत्रु की विशाल सेनाओं पर अनेक बार जो विजय प्राप्त की वे मनोबल के अभाव में असंभव थीं। शस्त्रास्त्रबल से विहीन लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, श्री सुभाष, सावरकर, रासविहारी, चन्द्रशेखर और भगत सिंह आदि वीरों ने समस्त भूमण्डल में विख्यात और

शस्त्रास्त्रबल से सुसम्पन्न अंगरेजों को भारत से भगा दिया। यह मनोबल का ही प्रभाव था। सिकन्दर, गौरी, गज़नवी, तैमूर, नादिर शाह, खिलजी, लोदी, तुगलक, मुगल, पुर्तगीज और अंगरेज आदि वीर ऊँचे पर्वतों को लाँधकर, समुद्रों और रेगिस्तानों को पारकर बहुत दूर से थोड़ी सेना लेकर आये और भारत सरीखे सर्वसाधन सम्पन्न, वीर, विशाल देश पर सहस्रों वर्षों तक राज करते रहे। उन्होंने हमारे अगणित सिर काटे, मन्दिर तोड़े, प्रतिष्ठा लूटी और धन लूटा। यह मनोबल का ही प्रभाव था। विश्व के इतिहास में मनोबल द्वारा शान्ति और विजय की प्राप्ति की तथा मनोबल के अभाव में पराजय और दुर्दशा की कई सौ कथाएँ हैं। भारतीय योगी मन की क्लिष्ट वृत्तियों का निरोध कर मनोबल से ही अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करते थे। वे ज्योतिषियों से यह नहीं पूछते थे कि हमारे भाग्य में सिद्धियाँ लिखी हैं या नहीं। इसीलिए योगेश्वर कृष्ण ने गीता में कहा है कि मैं इन्द्रियों में मन हूँ। इन्द्रियाणां मनश्चास्मि। उन्होंने अर्जुन से कहा था कि नपुंसक मत बनो, मन की दुर्बलता का परित्याग कर खड़े हो जाओ, अपनी बुद्धि को निश्चयात्मिका बनाओ, मोहरूपी दलदल से बाहर आओ, ज्ञान को अज्ञान से आच्छादित मत होने दो, अपना उद्धार स्वयं करो और अपने को ईश्वर का अंश समझो। मत्स्यपुराण २४३।२७ और विष्णुधर्मोत्तर पुराण २।१६३ में विस्तार से बताया गया है कि मन की तुष्टि, मन का उत्साह और मन की जय सबसे बड़ी विजय है तथा पाराशरसंहिता का कथन है कि सारे शुभ शकुन एवं मुहूर्तादि एक ओर हैं तथा मन की शुद्धि और उत्साह एक ओर है। मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का मुख्य कारण है, मन की हार हार हैं और मन की जीत जीत है।

मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम्।
एकतः सर्वलिंगानि मन उत्साह एकतः॥
निमित्तशकुनादिभ्यः श्रेष्ठो हि मनसो जयः।
तस्माद् यियासतां नृणां फलसिद्धिर्मनोजयात्॥
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
मन के हारे हार है मन के जीते जीत॥

राजनीति के महान् आचार्य श्री विष्णुशर्मा ने लिखा है कि मूढ़ के लिए प्रतिदिन शोक और भय के सहस्रों स्थान हैं। वह पृथ्वी के हर अन्न और पान में शंकालु रहता है। उसे कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं प्रतीत होता और उसका जीवन दूभर हो जाता है। वह छोटा-सा कार्य प्रारम्भ करके भी व्याकुल हो जाता है पर शूरों और पण्डितों की स्थिति इसके ठीक विपरीत होती है। वे बड़े-बड़े कार्यों का आरम्भ करने पर भी निराकुल रहते हैं।

शंकाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले।
निवासः कुत्र कर्तव्यो जीवितव्यं कथं नु वा॥
आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारंभेऽपि सुधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः॥
शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥
विक्रमाूजतराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता।
उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः॥

अल्प मनोबल वाले मनुष्यों के लिए छोटी-सी भी घटना कितनी भयावह हो जाती है तथा वे कैसे-कैसे भीषण सपने और शकुन देखने लगते हैं, इसकी भागवत की एक कथा पठनीय है। लिखा है कि कालिया नाग से लड़ने के लिए श्रीकृष्ण एक ऊँचे कदम्बवृक्ष पर चढ़ कर कालीदह में कूद पड़े। ब्रजवासी यद्यपि उनके पराक्रम से सुपरिचित थे और बलरामजी को

हँसते देख रहे थे फिर भी भयभीत हो गये। उन्हें पृथ्वी, आकाश तथा शरीरों में तीनों प्रकार के भयंकर उत्पात दिखाई देने लगे और ऐसा प्रतीत होने लगा कि कोई भीषण घटना घटने वाली है। कृष्ण को मरा जानकर कुछ लोग आत्महत्या के लिए यमुना-तट पर आ गये किन्तु सैकड़ों अपशकुनों का फल यह हुआ कि नाग भाग गया और यमुना का जल अमृत सदृश हो गया (१०।१६)

अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा अतिदारुणाः।
उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः।।१२।।
सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम सः।
तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाऽभवत्।।६७।।

नीतिविदों का कथन है कि ऐसे भीरु और भविष्य-वक्ताओं के सम्पर्क में रहने से शूरों का मन भी कुछ दिनों में बलहीन हो जाता है अतः इनका त्याग ही श्रेयस्कर है।

हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्।

श्रीमद्भागवत (११।२३) में एक योगी की शिक्षा है कि हमारे सुख-दुःख के कारण देव, ग्रह और विभिन्न काल आदि नहीं हैं बल्कि वह मन है जो संसार-चक्र को चला रहा है। मन ही तीन प्रकार की वृत्तियाँ उत्पन्न कर तीन प्रकार के कर्म करता है और शुभाशुभ गतियाँ दिलाता है। दान, धर्म, यम, नियम, अध्ययन, सत्कर्म और शौचादि व्रतों का पालन योग है किन्तु मनोनिग्रह ही इन सब का अन्तिम फल है और वही परम योग है। जिसका मन प्रशान्त और उत्साहपूर्ण हैं उसको दानादि के पालन की आवश्यकता नहीं है किन्तु जिसका मन संयम और उत्साह से हीन होने के कारण विनाशोन्मुख है उसे दान, यम, नियम आदि से कुछ नहीं मिलता। देवरूपी इन्द्रियाँ सदा मन के वश में रहती हैं किन्तु मन उनके वश में नहीं रहता। वह बलवान देव है और जो उसे वश में कर लेता है वह मनुष्य देवों का देव है। अतः मन को जीतना और पवित्र, निर्भय एवं बली बनाना आवश्यक है।

नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवतात्मग्रहकर्मकालाः।
मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत्।।
मनो गुणान् वै सृजते बलीयस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि।
शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवन्ति।।
दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतानि कर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधिः।।
समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम्।
असंयतं यस्य मनो विनश्यद् दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः।।
मनोवशेऽन्ये ह्यभवन् स्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति।
भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान् युंज्याद्वशे तं स हि देवदेवः।।

यजुर्वेद का कथन है कि मन देवबल से युत है, स्वयं देव है, ज्योतियों की ज्योति है, प्रज्ञान और अमृत स्वरूप है तथा धृति रूप है। उसमें सारा भूत, वर्तमान और भविष्य प्रतिष्ठित है,उसमें सबके मन ओत-प्रोत हैं, रथ की नाभि में अरों की भाँति उसमें सारे वेद (ज्ञान) स्थित हैं और मनोबल के बिना कोई कार्य नहीं किया जा सकता। जैसे अच्छा सारथी अश्वों को ठीक चलाता है वैसे ही संस्कृत मन मनुष्य को महान् बना देता है। मन एक महान् ज्योति है। वह सदा बलवान्, वेगवान् और शिवसंकल्पवान् रहे।

यज्जाग्रतो दूरमुपैति दैवं दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकम्। यस्मिनृचः सामयजूंषि प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यूस्मश्चित्तमोतं प्रजानां यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च। यज्जयोतिरमृतं प्रजासु। येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्। यस्मात्र ऋते किंचन कर्म क्रियते। सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

अथर्ववेद (७।५०।८) का कथन है कि कृत और विजय हमारे दायें-बायें हाथों में हैं। हम गौ, अश्व और हिरण्य के नेता धनञ्जय हैं। अथर्ववेद २।१५।४ में लिखा है कि हे मनुष्यों! जैसे आकाश-पृथ्वी, दिन-रात, सूर्य-चन्द्र और ब्राह्मण क्षत्रिय न हताश होते हैं न किसी से डरते हैं उसी प्रकार तुम न हताश हो, न डरो। अथर्ववेद १९।१५।५ में यह प्रार्थना है कि हे परमात्मा! हम आकाश और पृथ्वी से, आगे से पीछे से, मित्र और अमित्र से, पश्चिम और पूर्व से, ज्ञात से, अज्ञात से, दिन और रात्रि से तथा किसी भी प्राणी से भयभीत न हों। हमारे लिए सब पदार्थ और सब दिशाएँ मित्र हो जायें।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद्धनंजयो हिरण्यजित्॥
यथा द्यौश्च पृथिवी च, यथाहश्च रात्रिश्च, यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च,
यथा ब्रह्म च क्षत्रं च, न बिभीतो न रिष्यतः, एवा मे प्राण मा बिभेः॥
अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षादभयं नक्तमभयं दिवा नः।
सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता (१६।१) में दैवी सम्पति में प्रथम स्थान अभय को दिया है और वेद में बार-बार यह प्रार्थना है कि हम, हमारे पशु और परिजन सर्वत्र, सर्वदा अभय रहें तथा हमारे मनोबल का ह्रास न हो। बढ़ा मनोबल कुमार्गी भी हो सकता है इसलिए वेदों में बार-बार यह प्रार्थना भी है कि हमारे मन में सदा शिव संकल्प उठें और शान्ति-साम्राज्य की स्थापना हो।

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्यो अभयं नः पशुभ्यः॥
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।
द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवीशान्तिः सामाशान्तिरेधि॥

किन्तु ज्योतिष ने इसके विपरीत भय को विशाल सेना खड़ी कर हमारे मनोबल को समाप्त कर दिया है। उसने भद्रा को अभद्रा, भरणी को हरणी तथा मंगल को अमंगल बना दिया है और अशुभ कालों में पापकर्मों का आदेश देकर संकल्प को अशिव कर दिया है।

वेदांग ज्योतिष के अनेक अंग

ज्योतिष, व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त और छंद वेद के छः अंग हैं। ये वेद के नेत्र, मुख, नासिका, कर्ण, हाथ और पैर हैं। देवर्षि नारद का कथन है कि ज्योतिष रूपी वृक्ष के सिद्धान्त, संहिता और होरा रूपी तीन स्कन्ध हैं, यह कल्मष से रहित निर्मल वेद-नेत्र है और इसके बिना श्रौत-स्मार्त कर्म सिद्ध नहीं होते अतः ब्रह्मा ने संसार के कल्याण के लिए इसे स्वयं बनाया है।

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिःशास्त्रमकल्मषम्।।
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिध्यति।
तस्मात् जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।।

ज्योतिषशास्त्र को आगम और तंत्र भी कहते हैं तथा आगम और तंत्र को शंकर-पार्वती का संवाद भी कहा जाता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि ब्रह्मा के चार मुखों से चार वेद उत्पन्न हुए हैं परन्तु महर्षि कणाद ने अपने नाडीविज्ञान में लिखा है कि शिव पंचानन हैं और उनके चार मुखों से चार वेदों की तथा पाँचवे से आगम की उत्पत्ति हुई है। वर्तमान ज्योतिष के गौरीजातक और चौघड़िया मुहूर्त आदि कुछ विषय उमाशंकर के संवाद भी माने जाते हैं परन्तु इन कथनों में अनेक शंकाएँ हैं।

(१) व्याकरण आठ हैं तो क्या आठों, ब्रह्मा और शिव के मुख से उत्पन्न हैं। आज पाणिनि व्याकरण का ही प्रचलन है। वैदिक व्याकरण उससे भिन्न है और उसका प्रचार नहीं है। वस्तुतः ब्रह्मा के मुख से वही निकला होगा तो हम पाणिनि को ब्रह्मा से श्रेष्ठ क्यों मानते हैं? (२) करोड़ों वर्षों तक जीने वाले नारद का हमें आजकल दर्शन क्यों नहीं हो रहा है? (३) क्या नारद के समय होरा शब्द का और बारह राशियों एवं सात वारों वाले इस होराशास्त्र का प्रचलन था? (४) नारद का कथन है कि ज्योतिष के अध्ययन के अधिकारी केवल द्विज हैं। यदि यह सत्य है तो सूर्य ने मय दानव को ज्योतिष क्यों पढ़ाया? आचार्य वराहमिहिर ने लिखा है कि यवन म्लेच्छ हैं किन्तु ज्योतिष भली-भाँति उन्हीं में स्थित है और वे ऋषियों की भाँति पूज्य हैं।

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः।।

तो ब्रह्मा जी यह शास्त्र म्लेच्छों को क्यों पढ़ने देते हैं? (५) क्या शूद्र गणित आदि भी न पढ़ें? (६) क्या हमारा आधुनिक ज्योतिष ब्रह्मा और शिव के मुख से उत्पन्न और निर्मल है? (७) इस ज्योतिष का मूलाधार बारह राशियाँ और सात वार हैं। तो वेदांग ज्योतिष के इन मुख्य विषयों का वर्णन वेद में क्यों नहीं है? इनके नाम क्यों नहीं हैं? वेद में होरा शब्द क्यों नहीं है जो इस शास्त्र का मुख्य नाम है? (८) वेद ने भद्रा-भरणी आदि शब्दों को शुभ क्यों माना है? (९) योगेश्वरी योगीश्वर उमाशंकर ने आगम और तंत्र में अतिशय अश्लील, अभद्र और अनैतिक विषयों की चर्चा क्यों की है? (१०) हम एक मुख से चारों वेद पढ़ लेते हैं और अनेक भाषाएँ बोल लेते हैं तो ब्रह्मा और शिव को वेदागम पाठ के लिए चार-पाँच मुख क्यों बनाने पड़े? (११) सामवेद में ऋग्वेदातिरिक्त केवल ७५ मंत्र हैं तो उतने के लिए उन्होंने अन्य मुख क्यों धारण किये? (१२) वे ऋग्वेद के मंत्रों को अन्य वेदों में क्यों पढ़ते हैं? (१३) गीता आदि प्राचीन ग्रंथों में वेदों की संख्या तीन ही क्यों बतायी गयी हैं? (१४) ब्रह्मा ने युग, ऋतु, पक्ष, तिथि, करण, नक्षत्र आदि के नामों की और शुभाशुभ की यह शिक्षा विश्व के अन्य देशों को क्यों नहीं दी?

ज्योतिष वेदांग कहा जाता है और तीन ग्रंथ वेदांगज्योतिष के नाम से प्रसिद्ध भी हैं, पर उनमें भेद है। इसलिए विद्वानों ने उनके तीन नाम रख दिये हैं। (१) ऋग्ज्योतिष (२) यजुर्ज्योतिष (३) अथर्वज्योतिष। प्रथम और द्वितीय में थोड़ा सा ही अन्तर है पर तीसरा दोनों से बहुत भिन्न और नूतन है। ऋग्ज्योतिष के आचार्य लगध हैं। उसमें युग के पाँच संवत्सरों के शुभ नाम हैं पर उनके स्वामियों में बाद में थोड़ा मतभेद हो गया है। उसमें ऋतु, मास, पक्ष, अधिमास, पर्व, तिथि, नक्षत्र, मुहूर्त, नाडी, पल, सावन और नक्षत्रदेव वर्णित हैं। युगारम्भ उत्तरायण के आरम्भ से है, ग्रहों में केवल सूर्य चन्द्र की चर्चा है, धनिष्ठा प्रथम नक्षत्र है और कुछ नक्षत्रों को उग्र-क्रूर भी कहा है, पर वर्तमान ज्योतिष के उग्र क्रूर नक्षत्र उनसे भिन्न हैं। उसमें सात वार नहीं है और बारह राशियाँ नहीं हैं पर सूर्यमास शब्द हैं। सूर्यमास, चन्द्रमास और अधिमास तीनों हैं। इनका विवरण आगे पढ़ें।

अथर्वज्योतिष में लिखा है कि इसे पितामह ने कश्यप को पढ़ाया था। इसमें मुहूर्तों के रौद्र, श्वेत आदि १५ नाम लिखे हैं और बताया है कि शुभ नाम वाले मुहूर्तों में शुभ तथा अशुभ नाम वालों में अशुभ कर्म करो। इसमें तिथि के करणों के तथा उनके देवों के नाम हैं, उनके शुभाशुभ फल हैं, भद्रा की पूँछ है, नंदा भद्रा आदि तिथियाँ हैं और वार भी हैं अतः इसकी नूतनता स्पष्ट है फिर भी इसमें राशियाँ नहीं हैं। ऋग्ज्योतिष का रचनाकाल विद्वानों ने ई०पू० ११०० से १४०० के मध्य में निश्चित किया है पर अथर्वज्योतिष बहुत नया है। इसमें ऐसे कई विषयों का वर्णन है जो वेद से अस्पष्ट है फिर भी यह अपने को वेदांग कहता है। बाद के ज्योतिष की, वेदांग-उपाधि भी ऐसी ही कपटी है।

ज्योतिषशास्त्र आकाशस्थ ग्रह, नक्षत्र, विद्युत्, धूमकेतु आदि ज्योतियों से सम्बन्धित है। इनकी स्थिति जानने में अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित और गोलीय रेखागणित आवश्यक होते हैं इसलिए वे भी ज्योतिष के अंग माने जाते हैं। ज्योतिष प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र का तथा वर्षा, रोग, युद्ध आदि का भूत-भविष्य बताता है। आजकल ज्योतिष में संहिता, जातक, ताजिक, मुहूर्त, शकुन, स्वर, सामुदिक, अंगस्फुरण, छींक, भूगर्भ-विद्या, वास्तुशास्त्र आदि अनेक विषय आ गये हैं क्योंकि ये सब भी भविष्य बताते हैं। संहिता ग्रंथों में ज्योतिष के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी वर्णन है। जातक शास्त्र मनुष्य के स्वास्थ्य, सौन्दर्य, आयु, धन, विद्या, भाग्य, पत्नी आदि अनेक विषयों की स्थिति बताता है किन्तु इस समय ज्योतिष की मुख्य शाखाएँ तीन हैं। (१) वैज्ञानिक ज्योतिष (२) होराशास्त्र और (३) वैदिक ज्योतिष।

वैज्ञानिक ज्योतिष प्रयोगजन्य अनुभूतियों पर आश्रित होने से पूर्ण सत्य है। उसने ग्रहों, तारों तथा धुमकेतुओं आदि के विषय में बहुत कुछ जाना है और वह उनके प्रभाव के अध्ययन में भी तत्पर है। प्राचीन काल में भारतीय ज्योतिष की भी यही स्थिति थी किन्तु बाद में ज्यातिषियों ने गौतम बुद्ध, आर्यभट और भास्कराचार्य आदि के नूतन शोधों को अस्वीकार कर दिया। अतः विकास अवरुद्ध हो गया। होराशास्त्र विदेशी है, होरा शब्द विदेशी है, उसकी बारह राशियाँ विदेशी हैं, सात वार विदेशी हैं, ए, बी, सी, डी, से बना अवकडा चक्र विदेशी है और ताजिक विदेशी है। विदेशी ज्ञान बुरा नहीं होता पर आज के होरा में कल्पनाओं का राज्य है। वेदों में ज्योतिष के कुछ ही विषयों का वर्णन है पर जो है वह सब प्राकृतिक, प्रत्यक्ष, सत्य, अनुभूत और हितावह है पर दुर्भाग्य से आज वह अप्रचलित है और भारत के बड़े-बड़े ज्योतिषी मासों, पक्षों, दिनों, रातों और मुहूर्तादिकों के वैदिक शुभ नामों तक को भूल गये हैं। वैदिक ज्योतिष प्रतिदिन विवाह का आदेश देता है पर आज वैदिक हिन्दू को कुछ संवत्सरों में विवाह का एक भी मुहूर्त नहीं मिलता और आज के होराशास्त्र के सब नियमों का माना जाय तो विवाह का निर्दोष मुहूर्त सौ वर्ष में भी नहीं मिलेगा। होराशास्त्र अपने को वेदनेत्र कहता है पर वह वेदविरुद्ध और प्रत्यक्ष विरुद्ध है।

•

अध्याय ३

कल्प महायुग और युग

हमारे सबसे लम्बे कालमान कल्प और युग हैं। वेदों में इनके नाम तो हैं पर मान नहीं। आजकल ४३२००० वर्षों का कलियुग, उसका दो गुना द्वापर, तीन गुना त्रेता, चार गुना कृतयुग (सत्‌युग) और दस गुना महायुग माना जाता है। चारों युगों के योग को महायुग कहते हैं। ब्रह्मा का एक दिन एक सहस्र महायुगों का होता है। उसे ही कल्प कहते हैं और एक कल्प में १४ मन्वन्तर होते हैं अर्थात् एक मनु का काल लगभग ७१ महायुग होता है और ब्रह्मा की आयु उनके वर्षों से सौ वर्ष की होती है। कल्प शब्द का अर्थ है समर्थ या समूथत। आजकल कुछ वर्षों के भले-बुरे नियमित समूहों को युग कहा जाता है पर वेदों में यह अर्थ नहीं है। ऋग्वेद में युग न तो निश्चित वर्षों वाला कालमान है न भले-बुरे वर्षों का समूह। उसमें युग शब्द के कई अर्थ हैं। उसके कुछ मंत्र ये हैं-

अश्वो न कुशिकेभिर्युगे युगे ३।२६।३ में युगे युगे का अर्थ है- प्रत्येक वर्ष में। मनुष्या युगानि १।१६२।११ और मानुषेमायुगानि १।१०३।४ में उसका एक पीढ़ी या एक वर्ष अर्थ है। दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे १।१५७।६ में युग का अर्थ है दशम वर्ष अथवा चार-पाँच वर्ष। त्वामग्ने युगे-युगे दधिरे देवासः ६।१५।८ में युग एक दीर्घकाल के लिए प्रयुक्त है। युगे-युगे विदर्थ्य ६।८।५, देवानां पूर्व्ये युगे १०।७२।२ और पितरो युगे-युगे क्षेमकामा सः १०।९४।१२ में भी वही अर्थ है। यया युगवरत्नया नह्यन्ति १०।६०।८ का अर्थ है- जैसे बैल के कंधे पर रखे जुए को रस्सी से बाँधते हैं। युनक्त सीरा वियुगा १०।१०१।३ और सीरा युंजन्ति युगा वितन्ते १०।१०१।४ का अर्थ है,हल जोतते हैं और जुओं को फैलाते हैं। यहाँ बैलों की जुआठ ही युग है। ये मंत्र ऋग्वेद के हैं। अथर्ववेद ८।२।२१ मंत्र है- शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः। यहाँ दो, तीन, चार युगों का सौ और दस सहस्र वर्षों से सम्बन्ध है। ऋग्वेद और वाजसनेयि संहिता के दो मंत्रों में नाहुषयुग और त्रियुग शब्द हैं।

नाहुषायुगाः ५।७३।३ देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा १२।७५। अन्य मंत्र हैं-

> **सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा शूशुजानः। अक्षासो**
> **अस्य वितिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि॥ ऋ० १०।३४।६॥**
> **कृतं न श्वघ्नी विचिनोति देवने---। ऋ० १०।४३।५**
> **इदमुग्राय नमो यो अक्षेषु.............. कञ्चल शिक्षामि। अथर्वं ७।१०९।१**
> **अक्षराजाय कितवं कृतायादि नवदर्शं त्रेतायै कल्पिनम्। यजुः ३०।१८**

इनके अर्थ हैं- सभा में आ रहा है कितब (जुआरी) और कह रहा है कि मैं जीतूँगा। अक्ष (पासे) उसकी कामना बढ़ा रहे हैं। वह कृत (पासा) धारण करता है। जुआरी जुआ खेलते समय कृत (पासा) चुनता है। उस तेजस्वी को नमस्कार है। अक्ष में कलि (पासा) सीखता हूँ। अक्षराज को जुआरी देता हूँ। इनमें कृत और कलि शब्द पासा या बहेड़े का बीज फेंकने के अर्थ में आये हैं और इस क्रिया का जुए से सीधा सम्बन्ध है। अक्ष और कितब शब्द वहीं के हैं। इससे यह बात सिद्ध होती है कि युग और कृत का प्रयोग द्यूतपाश में भी होता था। वाजनेयिसंहिता और तैत्तिरीयब्राह्मण के एक-एक मंत्र हैं-

कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुम् ३०।१८॥
कृताय सभाविनं त्रेतायामादिनवदर्शं द्वापराय बहिः सदं कलये सभास्थाणुम् ३।४।१॥

ये मंत्र पुरुषमेघ सम्बन्धी हैं। इनमें कृत, त्रेता आदि के लिए कुछ पुरुषों के अर्पण का विधान है। सब भाष्यकारों का कथन है कि इसमें मनुष्यों की बलि नहीं दी जाती, केवल अर्पण करके उन्हें छोड़ दिया जाता है और शिक्षा दी जाती है। यहाँ के आदिनवदर्शी, कल्पी आदि सब जुआरियों से सम्बन्धित हैं। आचार्य माधव के मत में सभावी वह है जो द्यूतसभा में बैठता है। आदिनवदर्श द्यूत का परीक्षक, बहिस्सद बाहर बैठकर खेल देखने वाला और सभास्थाणु सदा सभा में रहने वाला होता है। इससे भी सिद्ध होता है कि कृत, त्रेता आदि शब्द जुआ से सम्बन्धित हैं।

इस विषय में भारतरत्न श्रीपाण्डुरंग वामन काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में लिखा है कि– ''अपने युग को हर ग्रंथकार ने कष्टमय और पापमय कहा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।११ से सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में कृत शब्द चार गुने के अर्थ में लिया जाता था। जीते हुए पासों की संख्या चार से कट जाने पर कृत और ३,२,१ शेषों से त्रेता, द्वापर, कलि माना जाता था। छान्दोग्योपनिषद् (४।१।४) के भाष्य में शंकराचार्य ने भी यही कहा है। शतपथ ब्राह्मण ५।४।४।६ में कृत जिताने वाला और कलि हराने वाला है। वेदों से लेकर उपनिषद् काल तक कृतादि शब्द जुए में प्रयुक्त होते थे। कृत शुभ था और त्रेता, द्वापर, कलि क्रमशः अधिकाधिक अशुभ थे। महाभारत (विराट् पर्व ५०।२४) में भी कृत और द्वापर शब्दों के ये ही अर्थ हैं। युग सम्बन्धी आज के सिद्धान्त का उदय ईसा पूर्व तीसरी या चौथी शताब्दी में हुआ और वह ईसा की चौथी शताब्दी तक पूर्ण प्रचलित हो गया।''

राजा ही युग है

ऐतरेय ब्राह्मण (३३।३) के अनुसार मनुष्य के चार प्रकार के कर्म या चार मानसिक स्थितियाँ ही चार युग हैं। सोया हुआ अर्थात् आलसी और अकर्मण्य मनुष्य कलि है, उठने के लिए प्रयत्नशील द्वापर है, उठा हुआ त्रेता है और कर्म में तत्पर कृतयुग है।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठन् त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥

यह श्लोक थोड़े शब्द भेद से मनुस्मृति में भी आया है। सत्य यह है कि कई लाख वर्ष लम्बा कालमान अति पुण्यवान् या अति पापमय नहीं हो सकता। भले बुरे मानव हर युग में रहते हैं। राम-रावण और कृष्ण-कंस एक ही समय में थे। अकबर-औरंगजेब से लड़ कर मरने वाले और उनसे अपनी बहन-बेटियाँ ब्याहने वाले हिन्दू एक ही युग में विद्यमान थे। एक ही दिन में एक योगी समाधि में बैठा रहता है और ठीक उसी समय एक भोगी वेश्यारत रहता है अतः युग भला-बुरा नहीं होता। उसे भला-बुरा बनाना राजा-प्रजा के वश में है। युगों के जो नाम पहले पासों विषयक थे, वे बाद में कर्मों से और राजा-प्रजा की वृत्तियों से जोड़ दिये गये और वे ही कुछ दिनों बाद लम्बे-लम्बे युग हो गये। महाभारत (शान्तिपर्व अध्याय ६९) के अनुसार राजा द्वारा राज्य की सर्वोत्तम प्रबन्ध वाली स्थिति कृतयुग, तीन चतुर्थांशों वाली त्रेता, दो अंशों वाली द्वापर और तीन पदों से दूषित तथा एक पाद से शुद्ध कलियुग है परन्तु घोर कलि आने पर धर्म और नीति का चौथा पाद भी टूट जाता है अर्थात् राजा ही चारों युगों का निर्माता है।

दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक् कार्त्स्न्येन वर्तते।
तदा कृतयुगं नाम कालसृष्टं प्रवर्तते॥

दण्डनीत्यां यदा राजा त्रीनंशाननुवर्तते।
चतुर्थमंशमुत्सृज्य तदा त्रेता प्रवर्तते॥
अर्धं त्यक्त्वा यदा राजा नीत्यर्धमनुवर्तते।
ततस्तु द्वापरं नाम कालस्तत्र प्रवर्तते॥
दण्डनीतिं परित्यज्य यदा कार्त्स्न्येन भूमिपः।
प्रजाः क्लिश्नात्ययोगेन प्रवर्तेत तदा कलिः॥
राजा कृतयुगस्त्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम्॥

मनस्मृति ९।३०१ के अनुसार युगों के नाम वस्तुतः राजा के चरित्र हैं। जिस स्थिति में धर्म के सत्य, दया, तप और दान नामक चारों पाद सुरक्षित रहते हैं वह कृतयुग है तथा एक-एक पाद हीन होने पर त्रेतादि युग बन जाते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण वाला श्लोक यहाँ भी है।

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते॥
कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः।
सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप॥
कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद् द्वापरं युगम्।
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंश्च कृतं युगम्॥

भागवत (१२।३) का कथन है कि मनुष्य के मन में चारों युग सदा आते रहते हैं। इन्द्रियों में सत्त्व की वृद्धि हो जाय और तप तथा ज्ञानार्जन में रुचि बढ़ जाय तो समझ लो कि कृत युग आ गया है। मनुष्य कामनाओं में आसक्त होकर धर्म-अधर्म भूल जाय तो जान लो कि वह त्रेता हो गया है। लोभी, असन्तोषी अहंकारी, द्वेषी और तृष्णाकुल मनुष्य द्वापर में स्थित है तथा जो माया, असत्य, आलस्य, निद्रा, हिंसा, विषाद, शोक, मोह, भय एवं दैन्य आदि से ग्रस्त है वह सर्वदा तामस कलि में बैठा है।

सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः।
कालसंचोदितास्ते वै परिवर्तन्त आत्मनि॥
प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च।
तदा कृतयुगं विद्यात् ज्ञाने तपसि यद्रुचिः॥
यदा कर्मसु काम्येषु भक्तिर्भवति देहिनाम्।
तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन्॥
यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दंभोऽथ मत्सरः।
कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद् रजस्तमः॥
यदा मायाऽनृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम्।
शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः॥

गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है कि युगधर्म सबके हृदयों में सर्वदा आते रहते हैं। हृदय में शुद्ध सत्त्व, साम्यवाद

एवं ज्ञानविज्ञान का उदय हो जाय और मन सदा हृषत रहे तो समझ लो कि हम कृतयुग में हैं। सत्त्व के साथ थोड़ा रज भी आ जाय, चित्त प्रसन्न हो और कर्मों में आसक्ति हो जाय तो समझ लो कि त्रेता आ गया है। सत्त्व कम हो जाय, रजोगुण बहुत हो जाय, तामस भी आ विराजे और हर्ष के साथ शोक एवं भय भी आ जायँ तो समझ लो कि हम द्वापर में हैं। सत्त्व का अभाव, रज और तम की अधिकता तथा विग्रह की वृद्धि ही कलि का आगमन है। जिनकी परमात्मा में अतिशय प्रीति है उन पर युगों का प्रभाव नहीं पड़ता। वे सदा सत्त्वयुग में रहते हैं।

नितयुगधर्म होह्निह सब केरे, हृदय राम माया के प्रेरे।
शुद्ध सत्त्व ममता विज्ञाना, कृत प्रभाव हरखित मन जाना।
अधिक सत्त्व कछु रज रतिकर्मा,सब विध सुख त्रेता कर धर्मा।
बहु रज स्वल्प सत्त्व कछु तामस, द्वापर हर्ष शोक भय मानस।
तामस बहुत रजोगुण थोरा, कलि प्रभाव बिग्रह चहुँ ओरा।
कालधर्म व्यापहि नहिं ताही, रघुपति चरन प्रीति अति जाही।

प्राचीन काल में मनुष्य की चार प्रकार की वृत्तियाँ चार युग मानी जाती थीं पर बाद में ये युग १२००, २४००, ३६०० और ४८०० वर्षों के कालमान हो गये। मनुस्मृति, भागवत और हरिवंशपुराण आदि में ऐसे युगों का वर्णन है।

चत्वार्याहुः सहस्त्राणां वर्षाणान्तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः॥
चत्वारि त्रीणि द्वे चैके कृतादिषु यथाक्रमम्।
संख्यातानि सहस्त्राणि द्विगुणानि शतानि च॥
त्रीणि वर्षसहस्त्राणि त्रेता तु परिणामतः।
तथा वर्षसहस्त्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम्॥
कलिर्वर्षसहस्त्रं च संख्यातोऽत्रमनीषिभिः॥

इसका अर्थ यह है कि कृतयुग चार सहस्त्र वर्षों का होता है और उसके सन्ध्या संध्यांश चार-चार सौ वर्षों के होते हैं। इस प्रकार पूरा कृत ४८०० वर्षों का होता है और त्रेता ३६००, द्वापर २४०० तथा कलि १२०० वर्षों का होता है परन्तु बाद में ये मानववर्ष देववर्ष मान लिये गये तो वर्षों की संख्या ३६० गुना बढ़ गयी। इतना ही नहीं, वर्ष संख्या के साथ युगों के गुण भी बदल गये।

आर्यभट के युग

आचार्य आर्यभट का ग्रंथ हमारा ग्रहगणित का प्रथम ग्रंथ है। उसके अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों में एक यह है कि वहाँ चारों युगों के मान समान हैं। इससे अनुमान होता है कि प्राचीन काल में युगों के वर्ष और गुण समान थे। कलियुग न छोटा था न पापमय। सचमुच कई लाख वर्षों तक संसार का लगातार पुण्यमय या पापमय रहना असंभव है। कृतयुग में ही हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, जालन्धर, मधु, कैटभ, मुर, पुर, अन्धक, चण्ड, मुण्ड, महिषासुर, रक्तबीज आदि दैत्य और उनके अगणित पापी मित्र धर्म का नाश कर रहे थे। कलह को कलि कहते हैं अतः लोग कलियुग को कलहमय मानते हैं किन्तु वेद का दाशराज्ञ युद्ध भी कलह है और यज्ञ के पहले दिग्विजय करना भी कलह है। त्रेता में रावण, खर, दूषण आदि सदृश महापापी थे और रघु, दशरथ एवं राम को भी कलह करना पड़ा था। कंस, शिशुपाल और जरासंध सदृश कलहप्रिय लोग द्वापर में थे और कौरवों-पाण्डवों तथा कंस-कृष्ण का कलह द्वापर में ही हुआ था। वेदों में अपनी रक्षा और शत्रुनाश के लिए

जो सहस्त्रों प्राथनाएँ लिखी हैं वे सिद्ध कर देती हैं कि प्राचीनतम युग शान्तिपूर्ण और कलहविहीन नहीं था। कलियुग में जैनमुनि महावीर अन्य तीर्थंकर, भगवान बुद्ध, उनके देवस्वरूप अनेक शिष्य और अनुयायी, महाराज अशोक, विक्रमादित्य, शंकराचार्य, रामानुज, बल्लभ, नानक, अर्जुनदेव, गुरुगोविन्द, बन्दा बैरागी, कबीर, दादू, राधास्वामी, रैदास, रमण, लाहिडी, रामकृष्ण, विवेकानन्द, अरविन्द, राजाराममोहनराय, दयानन्द, राणाप्रताप, शिवाजी, तिलक, गोखले, रानडे, सुभाष, सावरकर, लाजपत, गान्धी, मालवीय, चन्द्रशेखर आदि इतने देव और ऋषि पैदा हुए हैं कि उनके नाम लिखने के लिए एक मोटा ग्रंथ चाहिए। अतः कोई युग शुभ-अशुभ नहीं होता।

कलि की आकृति और कृति

आजकल पंचांगों के प्रथम पृष्ठ पर लिखा रहता है कि कलि का मुख पिशाचवत् भीषण है। वह लिंग और जीभ का दास है। अतः दोनों हाथों से उन दोनों को पकड़कर नाचता रहता है। कलि में देव राक्षस हो जाते हैं, तपस्वी कपटी हो जाते हैं, जनता मिथ्यावादी हो जाती है। मेघ कम बरसते हैं, नीच प्रसन्न रहते हैं, नृप दुष्ट हो जाते हैं, भले लोग भाग जाते हैं, गीता नष्ट हो जाती है, वेद लुप्त हो जाते हैं, स्मृति पुराण अदृश्य हो जाते हैं और रैदास आदि नीच जातियाँ धर्मोपदेश करने लगती हैं। शिव, शिव, शिव कितना भीषण है कलियुग!! इसके बहुत श्लोक हैं।

पिशाचवदनः क्रूरः कलिस्तु कलहप्रियः।
धृत्वा वामकरे शिश्नं दक्षे जिह्वां स नृत्यति॥

न देवे देवत्वं कपटपटवस्तापसजना जनो मिथ्यावादी विरलतरवृष्टिर्जलधरः।
प्रसन्ना नीचा अप्यवनिपतयो दुष्टमतयो जनाः शिष्टा नष्टा अहह कलिकालो विलसति॥
गता गीता नाशं निखिलनिगमो दूरमगमत् विलीनाः स्मृत्यर्थाः क्वचिदपि पुराणं व्यपगतम्।
इदानीं रैदासप्रभृतिवचनान् मोक्षपदवीं न जाने को हेतुः शिव शिव कलेरस्य महिमा॥

इन श्लोकों में लेखक की जो अभिलाषा है उसके अनुसार कोई भी युग शुभ और कृतयुग तब समझा जायेगा जब स्मृतियों और पुराणों का एकछत्र राज्य स्थापित हो जाय, वेद का मंत्र सुनने पर रैदास के कान में पिघला सीसा डाल दिया जाय, उसका हृदय विदीर्ण कर दिया जाय, विधवाएँ लाठी से मार-मारकर पति की चिता पर सती बना दी जायँ, शूद्र मन्दिरों में न जाने पावें, ब्राह्मण सर्वदुर्गुणसम्पन्न होने पर भी पूजे जायँ और पुराणों की सारी असम्भव बातों को सम्भव एवं रहस्यमय मान लिया जाय।

श्रीमद्भागवत (१।१६) का कथन है कि कृष्ण की उपस्थिति में कलियुग को यहाँ आने का साहस नहीं था। उनके दिवंगत हो जाने के बाद वह झट आ गया। तब बैल रूपधारी धर्म के तीन पैर टूट गये। वह लंगड़ाते और कराहते हुए एक पैर से चलने लगा। पृथ्वी पर सर्वत्र पापियों का राज हो गया, यज्ञ बन्द हो गये, मेघों ने बरसना बन्द कर दिया, नारियाँ अरक्षित हो गयीं, ज्ञान, वैराग्य, सत्य, शौच, त्याग आदि लुप्त हो गये और पृथ्वी गाय का रूप धारण कर रोने लगी। राजा परीक्षित ने देखा कि कलियुग ने एक क्रूर मानव का रूप धारण कर लिया है और वह बैलरूपी वृष तथा गौर रूपधारिणी पृथ्वी को पीट रहा है। वे दोनों काँपते हुए मूत रहे हैं। उन्होंने कलि का सिर काटना चाहा तो वह पैरों पर गिर पड़ा और राज्य छोड़ने को कहा तो रोने लगा। तब उसे यहीं जुआ, मदिरा, हिंसा, सुवर्ण, मद, मिथ्या, वैर और नारियों में रहने का आदेश दिया। कलि तब से इन्हीं में रहता है और नारियों में विशेषतः। किन्तु ये सब कल्पनाएँ हैं। कृष्ण के समय में भी कलि था, कलह था, पाप का अभ्युत्थान था, धर्म की ग्लानि थी, साधु त्रस्त थे, जरासन्ध ने शिव को बलि देने के लिए बहुत से क्षत्रिय पाल रखे थे और कंस के अत्याचार से जनता त्रस्त थी। अतः भगवान् ने अवतार लिया। द्वापर में ही दुर्योधन और दुःशासन थे। द्वापर में ही युधिष्ठिर ने पत्नी और सारे राज्य को जूए में दाँव पर रखा था और जुआ खेलना धर्म समझा जाता था। तो क्या कृत, त्रेता और द्वापर में

जुआ, मदिरा, हिंसा और सोना आदि में धर्म का वास था? सत्य यह है कि काल निराकार पदार्थ है। अत: कलि, भद्रा, संक्रान्ति आदि का तथा पृथ्वी धर्म, अधर्म आदि का साकार होना असंभव है। नारी में कलि का वास होता तो उससे उत्पन्न नर कभी सतयुगी न हो पाते। भागवत (१२।३) में लिखा है कि कलियुग में सब मनुष्य निर्दयी, द्रोही, भाग्यहीन, दुराचारी, मिथ्याभाषी, आलसी, हिसंक, बहुभक्षी, कायर, दरिद्र, शोकाकुल और शूद्रवत् होते हैं। समाज चोरों से त्रस्त हो जाता है, स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जाती हैं, वेद पाखण्ड से दूषित हो जाते हैं, राजा प्रजा को चूसने लगते हैं, ब्राह्मण उदरपरायण और कामी हो जाते हैं, संन्यासी धनी और तपस्वी ग्रामवासी हो जाते हैं, गायें दूध नहीं देतीं और शूद्र धर्मोपदेशक हो जाते हैं। देवी भागवत (६।११) में लिखा है कि पहले के राक्षस कलियुग में ब्राह्मण हो जाते हैं और वे पाखण्डी मिथ्याभाषी आदि होते हैं। अन्य तीन वर्णों की भी यही स्थिति रहती है। गोस्वामी तुलसीदास का भी यही कथन है और शूद्रों पर विशेष कटाक्ष है।

पूर्वं ये राक्षसा राजन् ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः।
असत्यवादिनः क्रूरा भवन्ति जनवंचकाः॥
तथैव क्षत्रिया वैश्याः शूद्राद्या धर्मवृजताः॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी भये पापबस सब नरनारी
शूद्र द्विजन उपदेसहिं ज्ञाना मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना
जे बरनाधम तेलि कुंभारा श्वपच किरात कोल कलवारा
ते विप्रन सन पांव पुजावहिं उभयलोक निज हाथ नसावहिं

परन्तु ये सब कल्पनाएँ हैं। इन्हें सत्य मानने पर तो कलि के सब महान् पुरुषों को पापी मानना होगा, जो कि प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। कृतयुग के विषय में भागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराण (उ० ६०) का कथन है कि उस समय सब मनुष्य सदाचारी, तपस्वी और आत्माराम रहते हैं। पृथ्वी अन्न से पूर्ण रहती है, मनुष्य लाख वर्ष जीते हैं, सबके घर रत्नजटित हो जाते हैं, कोई भी भिक्षुक दु:खी रोगी और वृद्ध नहीं होता, चोरी नहीं करता, परस्त्री गमन नहीं करता, देवों और द्विजों की निन्दा नही करता, ब्राह्मणों से कर नहीं लिया जाता, वे पूज्य और स्वच्छन्दगामी होते हैं तथा वृक्ष फलों से लदे रहते हैं।

न भयं दस्युचौराणां न चासन् परदारिकाः।
न कृते दुःखितो मर्त्या सर्वेषां रत्नमन्दिरम्॥
न भिक्षुका न रोगार्ता नो जरार्ता न कुत्सिताः।
करशून्या द्विजास्सर्वे पूज्याः स्वच्छन्दगामिनः॥
लक्षवर्षायुषः केचित् खलहीनं जगत्त्रयम्॥

किन्तु यह कथन मिथ्या है। ईश्वर को कृतयुग में चार बार, त्रेता में तीन बार, द्वापर में दो बार और कलि में केवल एक बार अवतार लेना पड़ता है। यह बात पुराणों में लिखी है। कृतयुग में हिरण्याक्ष पृथ्वी को ले भागा था, राक्षस मनुष्यों का रक्त पीते थे, मुनियों की हड्डी से पर्वत बन जाते थे, प्रह्लाद आग में डाले गये थे, मुनिगण मांस से श्राद्ध करते हुए पितरों को लगभग सभी पशुओं का माँस खिलाते थे, अतिथि को मधुपर्क में बछिया का माँस देते थे, यज्ञों में देवों को पशु की बलि देते थे, अग्नि में माँस मदिरा की आहुति देते थे, उन दोनों के आग में जलने से जो गंध उत्पन्न होता था उसे सूँध-सूँधकर देवगण प्रसन्न हो जाते थे, ब्राह्मणों को खिलायी गयी गायों के हाड़ और चाम के ढेर से चर्मण्वती सरीखी नदियाँ निकलती थी, नृपगण सहस्रों पत्नियाँ रखते थे, विदाई में दामाद को और यज्ञ में पुरोहित को रथ में भर-भरकर दासियाँ देते थे। मनुष्य पशुओं की भाँति बिकते थे और आचार्य गण वेदमंत्र पढ़-पढ़कर निराकार ऋतुओं को, तिथियों को तथा मासादिकों को अनेक पशुओं की बलि और आहुति देते थे। प्राचीन भाष्यकारों ने उन मंत्रों के ये ही अर्थ लिखे हैं और ऐसा ही करते थे। लिखा है–

वसन्ताय कपिंजलानालभते ग्रीष्माय कलङ्कवकान् (यजु० सं० २४।२०)

अत: न कृतयुग सात्त्विक है न कलियुग तामस। ये सब मनुष्य की भली-बुरी मानस वृत्तियाँ मात्र हैं। इसी प्रकार न कलियुग डाकू था, न धर्म बैल बना था, न कृतयुग में मनुष्य लाखों वर्ष जीते थे।

कलिवर्ज्य प्रकरण

वर्तमान ज्योतिष के अनुसार अशुभ नक्षत्रादि काल शुभ कर्मों में वर्जित हैं और चोरी, डाका, व्यभिचार; हत्या, विष-दान आदि पाप कर्मों में उपयुक्त हैं। मुहूर्तचिन्तामणि में रामाचार्य ने और उसकी पीयूषधारा टीका में वसिष्ठ ने कहा है कि अशुभ कालों में घात करने, आग लगाने, विष देने, फूट डालने आदि कर्मों में सफलता मिलती है। इस सिद्धान्त के अनुसार कलियुग में विवाह, गृहारम्भ, विद्याभ्यास आदि शुभ कर्म नहीं करना चाहिए और पाप कर्म करना चाहिए। धर्मशास्त्र ने भी कलि में कुछ कर्मों का निषेध किया है। उनमें से कुछ ये हैं-

परपुरुष से सन्तानोत्पादन (नियोग), श्राद्ध में माँस मदिरा का प्रयोग, संन्यास, देवर से सन्तानोत्पादन, विधवा-विवाह, अक्षतयोनि विवाहिता का पुनर्विवाह, निम्न जाति की कन्या से विवाह, स्त्रीस्वातन्त्र्य, बलात्कार से अपवित्र स्त्रियों की शुद्धि, अतिथि सत्कार में बछियावध, पशुयाग, अश्वमेघ, नरमेघ, गोसव यज्ञ में गोवध, सौत्रामणि यज्ञ में सुरापान, शूलगव यज्ञ में बैलवध, ब्राह्मण को मृत्युदण्ड, लम्बा ब्रह्मचर्य, आत्महत्या, दूरस्थ तीर्थों की यात्रा, मुख से आग फूँकना, शूद्र से भोजन बनवाना आदि।

परन्तु सत्य यह है कि पाप कर्म प्रत्येक युग में पाप ही होता है। कृतयुग और त्रेता में यज्ञों में पशुओं की, साँस बन्द कर गला घोंट कर हत्या की जाती थी। हत्यारा शामित्र कहा जाता था और वह ब्राह्मण तथा अब्राह्मण दोनों होता था। तो क्या उस समय यह कर्म शुभ था? क्या बछियावध, बैलवध, माँस-मदिरा सेवन, नरमेध और आत्महत्या आदि कर्म किसी युग में वैध हो सकते हैं? बलात्कार से अपवित्र नारियों की शुद्धि और विधवाविवाहादि कर्म कृतयुग में उचित थे तो आज अवैध क्यों?

वेदांगज्योतिष का युग

इसमें पाँच संवत्सरों के एक युग का वर्णन है पर न युग अशुभ है न कोई संवत्। यह युग मध्यम है। इसका आरम्भ उत्तरायण से, माघ से और धनिष्ठा से होता था। इसमें ६० सौरमास, ६२ चान्द्रमास, २ अधिमास, ६७ नाक्षत्रमास, १८३० सावन दिन, १८६० तिथियाँ, ३० तिथिक्षय और १८०९ नक्षत्र होते थे। इसका संक्षिप्त रूप यह है-

संवत्सर	उत्तरायणारंभ		दक्षिणायनारम्भ	
	तिथि	चन्द्रनक्षत्र	तिथि	चन्द्रनक्षत्र
संवत्सर	माघ शु० १	धनिष्ठा	श्रा० शु० ७	चित्रा
परिवत्सर	माघ शु० १३	आर्द्रा	श्रा० कृ० ४	पू०भा०
इदावत्सर	माघ कृ० १०	अनुराधा	श्रा० शु० १	अश्लेषा
अनुवत्सर	माघ शु० ७	अश्विनी	श्रा० शु० १३	पू०षा०
इदवत्सर	माघ कृ० ४	उ०फा०	श्रा० कृ० १०	रोहिणी

उत्तरायण के आरम्भ में सूर्य धनिष्ठा में रहता था और दक्षिणायन के आरम्भ में आश्लेषा के मध्य में। उत्तरायण का आरम्भ माघ शुक्ल से और दक्षिणायनारम्भ श्रावणशुक्ल से होता था। अब इसका प्रचलन नहीं है।

संवत्सर और उसका मान

युग से छोटा दूसरा कालमान संवत्सर है। इसे वर्ष कहते हैं। वर्ष के अर्थ में वेदों में संवत्सर, समा, शरद्, हेमन्त और हायन शब्दों का प्रयोग है। यजु: संहिता में पाँच संवत्सरों का एक युग है, पाँचों के पाँच देव स्वामी हैं और उनमें थोड़ा मतभेद है। पर सब देव और पाँचों संवत्सर शुभ हैं। वर्तमान ज्योतिष में आधे से अधिक संवत्सर अशुभ हैं पर वेद में वर्ष (संवत्सर) को महान्, प्रजापति और परम शुभ कहा है। गोपथ ब्राह्मण (पूर्व भाग प्र० ४क०११) का कथन है कि संवत्सर अधिदेव और अध्यात्म होकर प्रतिष्ठित है। जो इस बात को जानता है वह प्रजावान् और पशुमान् होकर प्रतिष्ठा पाता है। यह संवत्सर बृहती (वेदवाणी) से मिला है। बृहती के ३६ अंग होते हैं। जो यह जानता है वह संवत्सरस्वरूप है। संवत्सर महान् सुपर्ण (गरुड़ पक्षी) है, जिस दिन दिनरात्रि समान होते हैं उसे विषुवदिन कहते हैं। उसके पूर्व के छ: मास सुपर्ण के दक्षिण पक्ष हैं और बाद के छ: मास वामपक्ष हैं। विषुवान् संवत्सर का आत्मा है और बारह मास उसके शरीर के स्विदित (पसीना) हैं। पुरुष संवत्सर है। उसके दो पाद दिन-रात्रि हैं, नख नक्षत्र हैं और अन्य अंग यज्ञ हैं। पुरुष एक है और संवत्सर एक है अर्थात् संवत्सर पुरुष (परमात्मा) का शरीर है।

स वा एष संवत्सरोऽधिदैवं चाध्यात्मं च प्रतिष्ठित:। य एवं वेद प्रजया पशुभि: प्रतितिष्ठति। स वा एष संवत्सरो बृहतीमभिसम्पन्न:। सा षट्त्रिंशदवदाना। एष महासुपर्ण:। यान् विषुवत: षण्मासान् पुरस्तादुपैति स तस्य दक्षिण: पक्ष: उत्तरोऽन्य:। विषुवान् संवत्सरस्यात्मा। द्वादशमासा: स्विदितम् (गोपथब्राह्मण २।५।५)।

तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।१०।१) में संवत्सर साक्षात् प्रजापति और महान् है– प्रजापति: संवत्सरो महान् क:। गोपथ ब्राह्मण की ही भाँति तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।१०।४।१) का कथन है कि संवत्सर एक सुपर्ण है और वसन्तादि ऋतुएँ उसके सिर, पुच्छ और दायें-बायें पक्ष हैं। इस विषय के अन्य भी अनेक प्रमाण हैं। अत: वेदमत में संवत्सर का कोई भाग अशुभ नहीं है। प्रश्नोपनिषद् का मंत्र आगे पढ़ें।

आर्यों का जीवन प्राकृतिक था इसलिए उनके सारे कालमान प्राकृतिक हैं। आर्यों का वर्ष सौर है। सूर्य क्रान्तिवृत्त के किसी बिन्दु से चलकर पुन: जितने समय में वहाँ आता है उसे एक सौर वर्ष कहते हैं। चन्द्रमा उतने समय में १२ बार पूर्ण होता है इसलिए १२ मास माने जाते हैं। सूर्य जहाँ से चलता है उस बिन्दु में भी थोड़ी गति है। वह एक वर्ष में लगभग ५०.२ वकला पीछे खिसक जाता है। अत: सूर्य वहाँ ५० पल पूर्व पहुँच जाता है। इसकी सायन वर्ष कहते हैं। वेद में राशियाँ नहीं हैं पर वर्ष को १२ सौरमासों, ३६० सौर दिवसों और ७२० अहोरात्रों में बाँटने का स्पष्ट उल्लेख हैं।

द्वादशारं न हि तज्जराय सप्तशतानि द्विंशतिश्च तस्थु: (ऋ० १।१६४।११)। द्वादशप्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि त्रिशता न शंकवोऽर्पिता: षष्टि: (ऋ० १।१६४।४८) तस्य त्रीणि शतानि षष्टिश्च स्तोत्रीयास्तावती: संवत्सरस्य रात्रय: (तै०सं० ७।५।१)।

आर्य चाहते थे कि १२ चान्द्रमास सर्वदा नियमित ऋतुओं में आते रहें। ऐसा न हो कि चैत्र कभी वर्षा में और कभी जाड़े में आ जाय। इसलिए उन्होंने अधिक मास की व्यवस्था की है। यह मध्यम मान से ३२-३३ मासों में आता है। इसको वेदों में अंहस्पति, मलिम्लुच और संसर्प आदि तथा वर्तमान ज्योतिष में अधिमास, मलमास और पुरुषोत्तम मास आदि कहा गया है। वेदों में चान्द्रमासों के अतिरिक्त वर्ष के बारहवें अंश तुल्य सायन सौरमास भी हैं। मधु माधव आदि नाम उन्हीं के हैं।

वेदांग ज्योतिष में सायन सौरवर्ष और मासादिकों के स्थूल व्यवहारोपयोगी मान लिखे हैं किन्तु उस समय मुनियों को सूक्ष्म मान भी ज्ञात थे। ऋग्वेद में कथित ३६० दिन सौर दिन हैं, सायन नहीं। सूर्य सिद्धान्त आदि में लिखे वर्षमान भिन्न-भिन्न हैं पर इनमें डेढ़ पल (आधा मिनट) से अधिक अन्तर नहीं है। कुछ मान ये हैं-

सूर्य सिद्धान्त ग्रहलाघव ३६५।१५।३१।३०

आर्यसिद्धान्त ३६५।१५।३१।१५

करणकुतूहल ३६५।१५।३१।१७

ब्रह्मगुप्त ३६५।१५।३०।२३

पुलिश ३६५।१५।३०।०

आपटे ३६५।१५।२२।५८

केतकर ३६५।१५।२२।५२

सायन ३६५।१४।३१

चैत्रादि मास सदा नियमित ऋतुओं में आते रहें, इसलिए दूरदर्शी आर्यों ने अधिकमास की व्यवस्था की पर निरयण वर्ष मानने पर भी दोष आवेगा। हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि इसी कारण वसन्तु ऋतु चैत्र से खिसक कर माघ में आ गयी है और आगे सावन में भी आवेगी। अतः वर्ष सायन मानना ही समुचित है।

वर्ष का आरम्भ और बार्हस्पत्य संवत्सर

विश्व की हर जाति में वर्ष के आरम्भदिवस भिन्न-भिन्न हैं। पूरे भारत में हिन्दुओं के वर्षारंभदिवस भी लगभग दस हैं। अधिकांश पंचागों में वर्षारंभ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है, किन्तु प्रत्येक पंचांग के मुखपृष्ठ पर संवत्सर का एक नाम भी लिखा रहता है। उसका सम्बन्ध सौर वर्ष से नहीं बल्कि वृहस्पतिवर्ष से है। बृहस्पति लगभग बारह सौर वर्षों में नक्षत्र मण्डल की एक प्रदक्षिणा करता है इसलिए बारह वर्षों का एक संवत्सरचक्र (युग) माना गया है और एक सौरवर्ष को बृहस्पति का एक मास कहा गया है। इन वर्षों कें नाम चैत्रसंवत्सर, वैशाखसंवत्सर आदि हैं। बृहस्पति के अस्त, उदित, वक्री, मार्गी और अस्त होने में ३९९ दिन लगते हैं। अतः उसकी एक बार की स्थिति के समय में ३९९ दिन जोड़ देने पर दूसरी बार की उस स्थिति का काल ज्ञात हो जाता है। जैसे सूर्य के १ राशि १० अंश रहने पर बृहस्पति का अस्त हुआ है तो दूसरा अस्त १।१०+ (३९९-३६५) ३४ पर अर्थात् २।१४ सूर्य पर होगा।

बृहस्पति के संवत्सर के मान के विषय में श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित का कथन है कि इसकी दो पद्धतियाँ रही हैं- (१) बृहस्पति का उदय जिस नक्षत्र में होता था उसी के अनुसार संवत्सर के चैत्रसंवत्सर, वैशाखसंवत्सर आदि नाम रखे जाते थे। यह उदयपद्धति है। चूँकि गुरु के उदय से दूसरे उदय तक ३९९ दिन लगते हैं, इसलिए १२ वर्षों (४३८३ दिनों) में ११ बार ही उदय होते हैं। अतः एक संवत्सर का लोप हो जाता है। (२) बृहस्पति को एक राशि भोगने में मध्यमान से जितना समय लगता है उसको प्राचीन ज्योतिषियों ने एक संवत्सर माना। इसमें संवत्सर का लोप नहीं होता। यह मध्य राशि पद्धति है। महाभारत से ज्ञात होता है कि शककाल से ५०० वर्ष पूर्व, पहली उदयपद्धति ही प्रचलित थी।

क्षयं संवत्सराणां च मासानां च क्षयं तथा।
पक्षक्षयं तथा दृष्ट्वा दिवसानां च संक्षयम्॥ ४६॥
शान्तिपर्व अध्याय ३०१ मोक्षधर्म

इस श्लोक में संवत्सर, मास, पक्ष और दिवस के क्षय का वर्णन है। आजकल मासक्षय प्रसिद्ध है। जिस मास में दो संक्रान्तियाँ होती हैं वह क्षयमास कहा जाता है पर प्राचीन क्षयमास इससे भिन्न था क्योंकि उस समय मेषादि राशियाँ और उनकी संक्रान्तियाँ नहीं थीं। प्राचीन काल में १३ दिन के पक्ष को क्षयपक्ष कहा जाता था। अर्धचान्द्रमास का मध्यम मान १४ दिन ४५

घटी ५५ पल होता है। चूँकि मध्यम मान से पक्ष १३ दिन का नहीं होता और स्पष्ट मान से होता है। अत: स्पष्ट है कि महाभारतकाल में सूर्य चन्द्र की गतियों का सूक्ष्म ज्ञान था। आजकल तिथि का क्षय प्रसिद्ध है। वेदांगज्योतिष में दिवसक्षय का भी वर्णन है। संवत्सर का क्षय लगभग ८५ वर्षों में होता है परन्तु आजकल इसमें गुरुगति का गणित राशिपद्धति से किया जाता है। चूँकि महाभारत काल में राशियाँ नहीं थीं। अत: स्पष्ट है कि उस समय यहाँ लिखी उदयपद्धति ही प्रचलित रही होगी।

मद्रास के चान्द्रमान वाले तैलंगी पंचांग में संवत्सर का नाम उदयपद्धति से ही रहता है। गुप्तकालीन ताम्रपटों में भी इसका उल्लेख मिलता है किन्तु मारवाड़ के चण्डूपंचांग में मध्यमराशिपद्धति का प्रयोग है। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार बृहस्पति को मध्यम गति से एक राशि पार करने में ३६१।१।३६ दिवस लगते हैं। इस समय बार्हस्पत्य संवत् का मध्यम मान ३६१।२।४।४५ सायन दिन माना जाता है। चूँकि यह काल सौर संवत्सर (३६५।१४।४८) से थोड़ा छोटा है इसलिए ८५ सौर वर्षों में ८६ गुरुवर्ष हो जाते हैं अर्थात् एक बार्हस्पत्य वर्ष का लोप हो जाता है। इस पद्धति में उसका आरम्भ सौरवर्ष के किसी भी दिन से हो सकता है। इससे भिन्न एक दूसरी पद्धति भी है। उसमें गुरुवर्ष सौरवर्ष के समान होता है। अत: उसमें संवत्सर का लोप नहीं होता।

प्रत्येक पंचांग के मुख पृष्ठ पर बार्हस्पत्य संवत् का नाम और उसका आरम्भकाल लिखा रहता है पर उसमें मतैक्य नहीं है। आप केवल काशी के चार पंचांग लें तो उनमें भिन्न-भिन्न चार काल मिलेंगे और दक्षिण के पंचांग को लें तो संवत्सर संख्या में १५ तक का अन्तर पड़ जायगा। इनकी संख्या १२×५=६० है। नियम यह है कि शक संख्या में २३ जोड़कर ६० का भाग दें तो प्रभवादि संवत्सरों का ज्ञान हो जायगा पर आजकल इसमें तीन का अन्तर पड़ जाता है। प्रभव के प्रारम्भ में मध्यम बृहस्पति (स्पष्ट नहीं) कुम्भ राशि में रहता है और प्रतिवर्ष एक-एक राशि आगे बढ़ता जाता है। उसके शुद्ध, अधिक और क्षय संवत्सर भी होते हैं। मार्गी गति से दो राशियों में संचार होने पर लुप्त या क्षय संवत्सर होता है।

बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात् संवत्सरं सांहितिका वदन्ति

इन साठ संवत्सरों में शुभाशुभ के निर्णय की परस्पर विरुद्ध अनेक विधियाँ हैं। उनमें से यहाँ पाँच लिखी जा रही हैं (१) प्रथम विधि में नाम का महत्त्व है। आनन्द संवत् शुभ है और राक्षस अशुभ किन्तु इस विधि से मध्यप्रदेश में जो वर्ष शुभ है वही महाराष्ट्र में अशुभ हो जाता है। इसे मानने पर दोनों प्रान्तों की वर्तमान सीमा रेखा से अथवा नर्मदा नदी से दक्षिण जो बालक पैदा हुआ है वह संवत्सर फल के अनुसार पापी और मूर्ख होगा तथा उसी समय एक मील की दूरी पर जो बालक उत्तर में पैदा हुआ है वह धर्मात्मा और विद्वान होगा क्योंकि समय एक रहते हुए भी संवत्सर के नामों में १४-१५ का अन्तर है जबकि इन नामों का आकाश से और शुभाशुभत्व से कोई नाता नहीं है।

१ प्रभव	१३ प्रमाथी	२५ खर	३७ शोभन	४९ राक्षस
२ विभव	१४ विक्रम	२६ नन्दन	३८ क्रोधी	५० अनल
३ शुक्ल	१५ वृष	२७ विजय	३९ विश्वावसु	५१ पिंगल
४ प्रमोद	१६ चित्रभानु	२८ जय	४० पराभव	५२ काल
५ प्रजापति	१७ सुभानु	२९ मन्मथ	४१ प्लवंग	५३ सिद्धार्थ
६ अंगिरा	१८ तारण	३० दुर्मुख	४२ कीलक	५४ रौद्र
७ श्रीमुख	१९ पार्थिव	३१ हेमलम्बी	४३ सौम्य	५५ दुर्मति
८ भाव	२० व्यय	३२ विलम्बी	४४ साधारण	५६ दुन्दुभि
९ युवा	२१ सर्वजित्	३३ विकारी	४५ विरोधी	५७ रुधिरोद्गारी
१० धाता	२२ सर्वधारी	३४ शार्वरी	४६ परिधावी	५८ रक्ताक्ष

११ ईश्वर	२३ विरोधी	३५ प्लव	४७ प्रमादी	५९ क्रोधन
१२ बहुधान्य	२४ विकृत	३६ शुभकृत	४८ आनन्द	६० क्षय

इस चक्र में १ से १२ तक सब संवत् शुभ हैं और ४५ से ६० तक प्राय: सब अशुभ हैं परन्तु इतना लम्बा शुभाशुभत्व असंभव है।·(२) दूसरी विधि में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की बीस-बीस वर्षों की तीन बीसियाँ मानी गयी हैं। उनमें रुद्र बीसी अशुभ है क्योंकि शंकर गंजेड़ी भंगेड़ी दिगम्बर भीषण देव हैं। दो बीसियाँ शुभ हैं। इस प्रकार बीस वर्ष लगातार अशुभ और चालीस वर्ष लगातार शुभ रहते हैं। यह कल्पना है तो असम्भव, पर जो १८ लाख वर्षों के सतयुग को लगातार शुभ मानता है उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं है। पता नहीं क्यों, इन बीसियों का आरम्भ ४८वें संवत् आनन्द से है। वहाँ से २० वर्षों के स्वामी ब्रह्मा हैं, भाव से २० वर्षों के स्वामी विष्णु हैं और जय से बीस वर्षों के स्वामी रुद्र हैं। लिखा है–

आनन्दादिपतिर्ब्रह्मा भावादिर्विष्णुरेव च।
जयादि: शंकर: प्रोक्त: सृष्टिपालननाशका:॥

यह विधि पहली का खण्डन करती है। पहली विधि के अनुसार ब्रह्मबीसी के राक्षस, अनल, काल, रौद्र आदि संवत्सर अशुभ हैं क्योंकि उनके नाम भीषण हैं, विष्णुबीसी के प्रमाथी, विरोधी, विकृति आदि संवत् अशुभ हैं क्योंकि उनके नाम भयावह हैं तथा रुद्रबीसी के जय, शुभकृत, शोभन आदि संवत्सर शुभ हैं क्योंकि उनके नाम शुभ हैं। किन्तु वहाँ जो शुभ हैं वही यहाँ अशुभ है। (३) संवत्सर संख्या में दो का गुणा कर तीन घटायें और सात का भाग दें। २, ५ शेष शुभ हैं, ३, ६ मध्यम हैं और १, ४, ० कष्टप्रद हैं। यह विधि पिछली दोनों के विपरीत है।

प्रभवाद् द्विगुणं कृत्वा त्रिभिर्न्यूनं च कारयेत्।
सप्तभिश्च हरेच्छेषै: फलं ज्ञेयं शुभाशुभम्॥
त्रिषष्ठयो: समं ज्ञेयं पंचद्वाभ्यां सुभिक्षकम्।
एकं चत्वारि दुर्भिक्षं शून्ये पीडा न संशय:॥

(४) चतुर्थ विधि में पाँच-पाँच वर्षों के १२ युग माने गये हैं और उनके नाम प्रथम युग, द्वितीय युग आदि रखे हैं। चूँकि इनका सम्बन्ध कुम्भ आदि राशियों से हैं। अत: स्पष्ट है कि ये नूतन और अभारतीय हैं। इनके फल मनमाने हैं। उन्हें लिखते समय पारस्परिक विरोध पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया है। इसके कुछ उदाहरण ये हैं– प्रभवादि पाँच संवत्सरों के नाम शुभ हैं और वे ब्रह्मबीसी में पड़ने से अति शुभ हैं। अत: उनमें उत्पन्न बालक धनी, सुशील, मेधावी और राजमान्य आदि कहे गये हैं पर उन्हीं पाँच संवत्सरों वाला प्रथम युग अशुभ कहा गया है और उसमें उत्पन्न बालक को मद्यमांसप्रिय और परस्त्रीगामी आदि कहा गया है। दशम युग के राक्षस और अनल संवत्सरों का फल लिखा है पापी, मद्यमांसप्रिय और दु:खी आदि पर उस युग का फल लिखा है– सुरूप, सुखी, दाता, मंत्री आदि। यह स्थिति प्रत्येक युग में है। एक आचार्य ने इन युगों अथवा इनके स्वामियों के नाम रखे हैं– विष्णु, गुरु, इन्द्र, अग्नि, धाता, शिव, वायु, पितर, विश्वेदेव, चन्द्र, अश्विनौ और भग। इन नामों में भी मतभेद है। इस स्थिति में शंका होती है कि युग, स्वामी और संवत् के परस्पर विरोधी फलों में किसे सत्य माना जाय। वेद में इन्द्र, अग्नि, शिव और भगदेव शुभ हैं पर ज्योतिष में उनके नक्षत्र ज्येष्ठा, कृत्तिका, आर्द्रा और पूफा अति अशुभ हैं तो हम इन देवों के युगों को शुभ कैसे कहें?

(५) ज्योतिषियों ने पाँच संवत्सरों के भी अग्नि, सूर्य, शशि, ब्रह्मा और शिव पाँच स्वामी माने हैं पर इनमें एक भी निर्मल नहीं है तो ज्योतिष के मत में इन संवत्सरों के फल कैसे होंगे?

अग्न्यर्कशीतगुविरंचिशिवा: क्रमेण।

अग्नि, वायु, वरुण और चन्द्रमा के मण्डलों द्वारा आधा वर्ष अशुभ हो जाता है। उत्तर-दक्षिण अयनों से भी यही होता है। आर्द्रा में सूर्य के प्रवेश लग्न से वर्षफल कहा जाता है। सप्तनाडीचक्र भी यही करता है। इनके अतिरिक्त वर्षफल बताने की अन्य विधियाँ भी हैं। उनके विवरण आगे पढें किन्तु यह निश्चित है कि फल का निर्णय नहीं हो पावेगा। लुप्त संवत् और मास अति निषिद्ध हैं। पता नहीं, जो है ही नहीं वे कैसे निषिद्ध हो गये। मुहूर्तचिन्तामणि (१।५३) का कथन है कि १, २, ११, १२ से भिन्न राशियों में अतिचारी गुरु वक्री होकर पूर्व राशि में न आ जाय तो वहाँ विलुप्तवर्ष होता है। उसका दोष गंगा-नर्मदा के बीच में लगता है। पता नहीं, गंगा नर्मदा के बीच वालों ने ऐसा कौन-सा पाप किया है।

विक्रम और शालिवाहन संवत्सर

भारत में सप्तर्षि, कलि, विक्रम, शक, ईसवीय, हिज़री, मालव, चालुक्य, वलभी, सिंह, बंगाली, विलायती, इलाही, अमली, फसली, नेवार, लक्ष्मणसेन, शिवाजी, दयानन्द आदि नामों वाले अनेक संवत्सरों के नाम सुने जाते हैं पर इस समय सबसे अधिक प्रचार ईसवीं सन् का है। न्यायालयों और विद्यालयों के सारे कार्य अंग्रेजी तारीख से होते हैं और हमारे वेदाचार्य, वेदान्ताचार्य, नेतागण, गुरु और पुरोहित भी अपने बच्चों का जन्मोत्सव इंगलिश डेट से ही मनाते हैं। श्रीमोरार जी देसाई का जन्मदिवसोत्सव चौथे वर्ष मनाया जाता है क्योंकि उनका जन्म-दिवस २९ फरवरी है। हमारे घर में अंग्रेजी तारीख के ही कलेण्डर लटके रहते हैं और बच्चे यह नहीं जानते कि आज किस भारतीय मास की कौन तिथि है। वे अपना नाम आई०जी० सिंह और पिता का नाम बी०बी० सिंह बताते है तथा ए बी सी डी की अपेक्षा क ख ग घ से कम परिचित हैं।

आजकल पंचांगो और जन्म पत्रियों में विक्रम संवत्सर और शालिवाहन शक लिखे जाते हैं। दोनों के आरम्भ काल में १३५ वर्षों का अन्तर है। ईसवीय सन् के आरम्भ से ५७ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् का और ७८ वर्ष बाद शालिवाहन शक का आरम्भ होता है पर ये दोनों काल किस राजा से सम्बन्धित हैं, इसका निर्णय नहीं हो सका है। हम विक्रम संवत् को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से जोड़ते हैं पर चन्द्रगुप्त तीन हैं। (१) अशोक के पितामह, बिन्दुसार के पिता और चाणक्य के शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य का समय ई०पू० ३०० से पूर्व है। ई०पू० १८५ में मगध में शुंगवंशीय पुष्यमित्र का राज्य था। उसने मौर्यवंश को पराजित कर दिया था। मौर्यों का राज्य पहले दक्षिण में मैसूर तक था किन्तु बाद में वहाँ शातवाहन वंश का राज हो गया। शातवाहनों ने गुजरात के शकों को भी हरा दिया। भारत में विदेश से आये यवन, कुषाण और शक बाद में भारतीय आर्य हो गये। वसिष्ठपुत्र शातवाहन का विवाह शककन्या से हुआ था। उसका काल ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी है। कुषाण शासकों में कनिष्क सबसे महान् है। उसका काल भी वही अर्थात् विक्रम संवत् का आरम्भ काल है। (२) ईसा की चतुर्थ शताब्दी में मगध देश में गुप्त वंश का विशाल राज्य था। उसका प्रथम शासक चन्द्रगुप्त प्रथम था। (३) उसके पौत्र (समुद्रगुप्त के पुत्र) को द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य कहा जाता है। उसने भी शकों को पराजित किया था उसका काल लगभग ४०५ ईसवीं हैं। अतः स्पष्ट है कि मौर्य और गुप्त वंशीय चन्द्रगुप्त विक्रमसंवत् के प्रणेता नहीं है। कुछ लोग इसका सम्बन्ध मालववंश से जोड़ते हैं पर उसका काल ईसा की ५-६ शताब्दी है। अतः कुषाण, कनिष्क और शात (शालि) वाहन ही इन दोनों के प्रवर्तक प्रतीत होते हैं। विक्रमादित्य उपाधि उनमें भी थी इस विषय में महामहोपाध्याय श्री वासुदेव विष्णु मिराशी जी ने लिखा है-

''भारत में युधिष्ठिर प्रथम राजा है जिनके नाम से संवत् चला है पर इसका कोई प्राचीन उल्लेख उपलब्ध नहीं है इसका प्रचलन काल ४०० ईसवी माना जाता है। विक्रम और शक संवत् उत्तरी और दक्षिणी भारत में प्रचलित है पर इनका उत्पत्तिकाल विवादास्पद है। विक्रम संवत् का सबसे पुराना उल्लेख ८८८ ईसवीं के धौलपुर के एक शिलालेख में प्राप्त होता है पर इसका नाम मालवगण (३-६ शताब्दी) के साथ भी प्राप्त होता है। ११वीं शताब्दी के कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी में विक्रमादित्य की विजयों के उल्लेख हैं पर वे निराधार हैं उनमें लिखा है कि गौड़ देश (बंगाल) के शक्तिकुमार, कर्नाटक के जयध्वज, गुजरात के विजयवर्मा, कश्मीर के सुनन्दन, सिन्ध के गोपाल, विन्ध्य के मिलन और परसिया के राजा निर्मूक

को विक्रमादित्य ने अपने अधीन किया।

गौड: शक्तिकुमारोऽयं कार्णाटश्च जयध्वज:।
निर्मूक: पारसीकश्च नृप: प्रणमति प्रभुम्॥

पर इतिहास में ईसा की प्रथम शताब्दी में इन राजाओं का पता नहीं लगता। अत: विक्रमादित्य के विजय की कथाएँ काल्पनिक हैं। प्राकृत भाषा की गाथासप्तशती में भी विक्रमादित्य का नाम आता है पर उस ग्रंथ में आठवीं शताब्दी तक प्रक्षेप होते रहे हैं। अत: वह भी प्रामाणिक नहीं है। कालकाचार्यकथानक नामक ग्रंथ विक्रमादित्य को उज्जैन के राजा गर्दभिल्ल का पुत्र कहता है पर ई०पू० प्रथम शताब्दी के इतिहास में गर्दभिल्ल का कोई प्रमाण नहीं है। इस ग्रंथ के १२वीं शताब्दी के एक संस्करण में विक्रमादित्य को संवत्सर का जनक कहा है पर वह क्षेपक है। पुराणों में मौर्य, शुंग, कण्व और गुप्तवंश का वर्णन है पर विक्रमादित्य का नहीं। पुराणों में गर्दभिल्लों का वर्णन है पर केवल आन्ध्रों के उत्तराधिकारी के रूप में। उनका विक्रमादित्य से कोई सम्बन्ध नहीं। मालव संवत् मालव राजाओं की देन है और उन्होंने बाद में विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर ली। मालव संवत् बाद में चन्द्रगुप्त द्वितीय के नाम से जुड़ गया और तब मान लिया गया कि इसके निर्माता विक्रमादित्य हैं। गुप्तयुग में शासक आदित्य की उपाधि से भूषित हुए और उसमें चन्द्रगुप्त के साथ जुड़ा विक्रमादित्य अधिक लोकप्रिय हो गया। बाद के अनेक राजाओं ने उसका प्रयोग किया और चालुक्यवंश में १२ विक्रमादित्य हुए। कहा जाता है कि कालिदास विक्रमादित्य के एक नवरत्न थे और उन्होंने ज्योतिष का ज्योतिर्विदाभरण ग्रंथ लिखा पर यह कालिदास और ग्रंथ एक धोखा है। वराहमिहिर भी विक्रमादित्य के नवरत्न कहे जाते हैं पर उनका काल छठीं शताब्दी है तथा कालिदास और विक्रमादित्य के काल भिन्न-भिन्न हैं। शालिवाहन संवत् कुषाण राजा कनिष्क की देन है। विजयनगर के राजाओं के युग में वह शातवाहन परिवार से जुड़ा था इसलिए शालिवाहन कहा गया किन्तु वह विदेशी राजा द्वारा स्थापित है और विक्रम संवत् भारतीय है।"

श्री मिराशी जी का कथन महत्त्वपूर्ण है पर उसमें शालिवाहन की विदेशीयता वाली बात विचारणीय है। हमारे ज्योतिष के सब ग्रंथों में शालिवाहन शक का ही प्रयोग है इसलिए राष्ट्रीय पंचांग में वही राष्ट्रीय संवत्सर माना गया है। शाकद्वीपी ब्राह्मण और सक्सेना कायस्थ शक शब्द से जुड़े हैं। हिन्दू हिन्दुस्थान शब्द विदेशी है और कोंकणस्थ ब्राह्मणों का इतिहास विचित्र है पर उसमें गोखले, रानडे, तिलक आदि सदृश तथा उनसे बड़े सहस्रों महापुरुष उत्पन्न हुए हैं जिनपर हमें गर्व है। आज हमारे उपयोग में आने वाली अनेक विद्याएँ, कलाएँ और यंत्र विदेशी हैं। वस्तुत: मूल भारतीय कितने हैं, इसका निर्णय कठिन है। अत: जो हमारे रक्त में घुल मिल गये वे सब स्वदेशी हैं इसलिए शालिवाहन शक हमारा है। शक बुरा है तो मुरा से उत्पन्न मौर्य भी बुरा है। गान्धारी भी बुरी है और गोत्रप्रवर्तक लगभग सब मुनि बुरे हैं क्योंकि उनके जन्म का इतिहास अभद्र है।

ज्योतिर्विदाभरण के लेखक ने अपने को रघुवंशलेखक और विक्रमादित्य का एक नवरत्न कालिदास कहा है तथा अपने ग्रंथ का काल गतकलि ३०६८ और विक्रमसंवत् २४ बताया है किन्तु महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी और शंकर बालकृष्ण दीक्षित आदि महान ज्योतिर्विदों ने उसे धूर्त सिद्ध किया है। उसका काल ईसा की १३वीं शताब्दी है।

विक्रम और शालिवाहन संवत्सरों के प्रारम्भकाल के विषय में अन्य अनेक मत हैं। कुछ इतिहासविदों का कथन है कि कुषाणों की जो मुद्राएँ प्राप्त हैं उनके काल, पारस्परिक सम्बन्ध और क्रम आदि के विषय में बहुत वाद है। कनिष्क के राज्याभिषेक का काल ७८ से २७८ ईसवी के बीच में झूल रहा है किन्तु नगरकोट का राज्य ईसा से पूर्व है और कनिष्क उससे पूर्व है। कनिष्क का काल ७८ ईसवी मानने पर मथुरा में नागों और कुषाणों का शासन एक साथ मानना पड़ेगा किन्तु वह असंभव है। अत: कुषाणकाल ईसा पूर्व ६७० है। पण्डित सत्यश्रवा जी का कथन है कि सन् ७८ से प्रारम्भ होने वाला शकाब्द किसी के राज्याभिषेक काल से नहीं बल्कि किसी शकराजा के मरण काल से गिना गया है और उसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने

मारा था। अत: स्पष्ट है कि उसका शासनारम्भ ७८ ईसवी के आसपास हुआ होगा। श्री अल्तेकर जी का कथन है कि कृत, मालव एवं विक्रम संवत् एक हैं और इनका प्रचलन ई०पू० ५७ से हुआ है किन्तु कुछ अन्य आचार्यों का इसके विरोध में यह कहना है कि कृत और मालव एक है, इनका काल ई०पू० ३७५ से भी पूर्व है और विक्रम संवत् उनसे भिन्न है। मन्दसौर के संवत् ४६१ के एक लेख में मालव और कृत शब्द हैं पर विक्रम नहीं है।

श्रीमालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते।
एकषष्ट्यधिके प्राप्ते समाशतचतुष्टये॥

संवत्सर के प्रवर्तकों से सम्बन्धित इस विवाद से हमें यह महत्त्वपूर्ण शिक्षा मिलती है कि जिस घटना को केवल दो सहस्र वर्ष बीते हैं उसका इतिहास भी अंधकार में है। अत: हमारे कई लाख वर्ष के पूर्वजों, गोत्रप्रवर्तकों और देवों के विषय में जो असंभव, अश्लील, अप्राकृतिक और परस्पर विरुद्ध कथाएँ आगे लिखी हैं उन्हें हम चुपचाप मानकर अपने इतिहास को कलंकित न करें बल्कि उनकी समीक्षा करें।

जन्मपत्री और कालमानों के फल

हमारे यहाँ जन्मपत्री का बड़ा महत्त्व है। हमें विश्वास है कि उसके आधार पर मनुष्य के जन्म से मरण तक के हर क्षण का भविष्य जाना जाता है और यज्ञ, दान आदि से कुछ संकटों को टाला जा सकता है। बड़ी जन्मपत्री में बड़े से बड़े और छोटे से छोटे सब कालमानों के फल लिखे जाते हैं। सबसे बड़ा कालमान युग है और इस समय कलियुग चल रहा है। ज्योतिष के अनुसार इस युग के हर मनुष्य को पापी होना चाहिए। युग से छोटा कालमान संवत्सर है। उसका विवेचन हो चुका। संवत्सर आदि का फल लिखने वाले अनेक ग्रंथ हैं। यहाँ जातकाभरण की कुछ बातें लिखी जा रही हैं।

आपने देख लिया है कि संवत्सर का फल कहने की अनेक विधियाँ हैं और वे एक दूसरे के विरुद्ध हैं। जातकाभरण संवत्सर का फल केवल नाम के आधार पर लिखता है। उसका कथन है कि राक्षस संवत्सर में उत्पन्न बालक आलसी, दुराचारी और निर्भय होता है तथा आनन्द संवत् में जन्मा शिशु चतुर, भाग्यशाली और उदार आदि होता है। वह कहता है कि नारी का गर्भाधान हो जाने के बाद ब्रह्मा जी उसके उदर में घुसकर जीवों के मस्तक पर हर क्षण का भविष्य लिख देते हैं, होराशास्त्र रूपी नेत्र से ज्योतिषी उसे पढ़ लेता है और जन्मपत्री में लिख देता है। अत: जन्मपत्री बनवाने वाला सारा भविष्य जानता है, उसके घर में लक्ष्मी आ बैठती हैं, दीर्घकाल तक धन देती हैं और जन्मपत्रीहीन मानव अंधा है।

सा जन्मपत्री विमला न यस्य तज्जीवितं सन्ततमन्थकं स्यात्।
यस्यास्ति तत्सद्मनि श्रीः सलीला सुनिश्चिता तिष्ठति दीर्घकालम्॥

जातकाभरणकार का कथन है कि नाना ग्रंथों के अवलोकन के बाद ज्योतिषी का चित्त अतिशय उद्विग्न हो जाता है। वह सोचने लगता है कि मैं किस ग्रंथ को सत्य मानूँ और संवत्सर, अयन, ऋतु, मास, वार, लग्न, नवांश आदि के परस्पर विरुद्ध फलों में किस पर विश्वास रखूँ। वे कहते हैं कि इस संकट से बचने का एक उत्तम उपाय यह है कि तुम प्रारम्भ में ही लिख दो कि बालक के जन्मकाल में मैं वहाँ घटी या शकुं आदि यंत्र लेकर बैठा नहीं था। यजमान के बताये समय से जन्मपत्री बना रहा हूँ। अत: फल न घटे तो मुझे नहीं बल्कि अशुद्ध जन्मकाल को दोष देना।

शास्त्रोक्तां यो जन्मपत्रीं करोति नाना ग्रन्थालोकनात्तस्य चित्तम्।
अत्युद्विग्नं स्यात्ततो जातकेस्मिन् कुर्वे व्यक्तां जातकोक्त्युक्त समस्ताम्॥
कृतं मया नोदकयन्त्रसाधनं नृपेक्षणं चापि न शंकुधारणम्।
परोपदिष्टाद् समयात् प्रयत्नतः शुभाशुभं जन्मफलं मयोच्यते॥

दो यान और दो अयन

संवत्सर से छोटा कालमान यान (गोल) या अयन है। यह संवत्सर को दो समान भागों में बाँटता है। यान राजनीति का एक अंग है। वाहन को भी यान कहते हैं तथा मार्ग, पदवी और पद्धति को अयन कहते हैं। वैदिक साहित्य में देव और पितृ नामक दो यानों का वर्णन है। वेद में जिन मासों को मधु, माधव आदि कहा है उन्हें हम आजकल मेष, वृष आदि राशियाँ कहते हैं इसलिए सुविधा के लिए यानों और अयनों का परिचय यहाँ राशियों द्वारा दिया जा रहा है। वर्ष में दिन और रात दो बार समान होते हैं। वेद इन्हें विषुवदिन कहते हैं क्योंकि उस समय सूर्य विषुव और क्रान्तिवृत्तों के सम्पात में रहता है। आजकल इन्हें सायन मेष और सायन तुला संक्राति कहते हैं। सूर्य की सायन मेष से सायन तुला तक की स्थिति में दिनमान प्रतिदिन ३० घटी (१२ घंटा) से अधिक रहता है। वेद इसे देवायन कहते हैं और आधुनिक ज्योतिष उत्तर गोल कहता है। शेष ६ मासों में दिनमान ३० घटी से छोटा होता है। वेद इसे पितृयान या दक्षिणयान कहते हैं और ज्योतिष दक्षिण गोल कहता है। वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुएँ देवयान में तथा शरद्, हेमन्त और शिशिर ऋतुएँ पितृयान में पड़ती हैं। शतपथ ब्राह्मण (२।१।३) में लिखा है–

	देवयान=उत्तरगोल		
दक्षिण अयन	४ कर्क ५ सिंह ६ कन्या	मिथुन ३ वृष २ मेष १	उत्तर अयन
	७ तुला ८ वृश्चिक ९ धनु	मीन १२ कुम्भ ११ मकर १०	
	पितृयान = दक्षिण गोल		

वसन्तो ग्रीष्मो वर्षा देवा ऋतवः। शरद् हेमन्तः शिशिरः पितृणाम्।
सूर्यो यत्रोदगावर्तते देवेषु तह्र भवति यत्र दक्षिणावर्तते पितृषु भवति।।

हमारा ज्योतिष दक्षिण शब्द से भयभीत है। उसमें दक्षिण से सम्बन्धित सारे पदार्थ अशुभ हैं, पर वेद में पितृयान या दक्षिणयान अशुभ नहीं है। प्रश्नोपनिषद् का कथन है कि पूरा संवत्सर परमात्मा का शरीर है, शुभ है और दोनों यान उसके दो भाग हैं। देवयान प्रजापति का प्राण है और पितृयान उनकी रयि (शक्ति) है। जैसे शक्तिमान् से शक्ति पृथक् नहीं रहती वैसे ही प्राण और रयि एक हैं।

संवत्सरः प्रजापतिः। तस्यायने दक्षिणं चोत्तरंच। एष ह वै
रयिर्यः पितृयाणः१।९।। अपरः प्राणानामायतनम् १।१०।।

सुहावनी शरद् और सुन्दर स्वास्थ्य तथा दीर्घायु देने वाले हेमन्त और शिशिर पितृयान में ही आते हैं। पितृयान अशुभ होता तो उसके आग्रहायन (अगहन) मास को वेद हायन (वर्ष) का अग्र न मानते और सारे वेद तथा शास्त्र अगहन में विवाह, द्विरागमन और गृहारम्भ आदि सैकड़ों शुभ कर्मों के मुहूर्त न बताते।

कुछ लोग यम और पितृ शब्द से शंकित होते हैं पर दोनों का सम्बन्ध नरक से नहीं बल्कि द्युलोक, देवयानपथ और स्वर्ग से है। वेदों में इसके सैकड़ों मंत्र हैं। अर्थर्वसंहिता (१८।२) का कथन है कि– ये सोमरस, हवि और यज्ञ यमदेव के पास जाते हैं (१) जिन्होंने सत्यधर्म का पालन किया उसे बढ़ाया और उससे प्रसिद्धि पायी वे यम के पास जाते हैं (१५)। जो तप से महान् बने हैं और स्वर्ग में पहुँचे हैं वे यम के पास रहें (१६)। जो शूर सत्य और धर्म की रक्षा के लिए रण में मरे हैं, जिन्होंने बहुत दक्षिणा दी है (१७) और जो तपस्वी समाज की रक्षा करते हैं वे यम के पास जायें (१८)। यजुः संहिता (१९।५८) का कथन है कि अग्नि द्वारा स्वाद ग्रहण करने वाले और सोम के अधिकारी हमारे पितर देवयान पथ से आवें। मनुस्मृति (३।२०३) में भी ऐसा ही वर्णन है तथा यम, नियम और संयम शब्द शुभ हैं।

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः।
यमं हि यज्ञो गच्छत्यग्निदूतः॥
ये चित् पूर्वं ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजानपि गच्छतात्॥
तपसा ये अनाधृष्याः स्वर्ययुस्तान् गच्छतात्।
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यज्यः।
ये वा सहस्त्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात्॥

भायन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः अस्मिन् यज्ञे॥

(१८।२२) के अनुसार संवत्सर परमात्मा है, विषुवदिन उसका सिर है और उसके पूर्वार्ध– उत्तरार्ध मान है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।२।३) के अनुसार दोनों यान एक गृह के दो भाग हैं अर्थात् दोनों शुभ

यथा वै पुरुष एवं विषुवान्। यथा तस्य दक्षिणोऽर्धस्तथोत्तरः।
यथा शालायै पक्षसी एवं संवत्सरस्य पक्षसी॥

यनों की है। उत्तरायण में सूर्य जिस मार्ग से उत्तर जाता है, दक्षिणायन में उसी से दक्षिण आता है और कार के क्षण (सेकण्ड) तक समान होते हैं। अतः दक्षिणायन अशुभ नहीं है। योगेश्वर भगवान् है कि अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्ल और उत्तरायण में मरे लोग ब्रह्म को प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं पर क्षणायन में मरों को चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है, वे मुक्त नहीं होते। मुक्त वे मनुष्य होते हैं जिनकी में होती है और जो ज्ञानी होते हैं।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः८।२४॥
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ८।२५॥
यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते १४।१४॥

ध्यान देने योग्य है कि अग्नि, ज्योति और धूप शब्द कालवाचक नहीं है। वैसे ही दिन शुक्ल, दक्षिणायन शब्द भी कालवाचक नहीं बल्कि मनुष्य की शुक्ल कृष्ण वृत्तियों के द्योतक हैं। यह वात हाँ भगवान् की यह उक्ति विशेष महत्त्वपूर्ण है कि युद्ध आदि किसी कर्म के लिए शुभ काल मत ढूँढो। च्चे हृदय से ईश्वर का स्मरण करने पर सब काल अपने आप शुभ हो जाते हैं।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ८।२६
तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ८।७
तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ८।२७

१६) में भगवान् ने विस्तार से बताया है कि जो मनुष्य आसुरी प्रवृत्ति के हैं, अपने उग्र कर्मों से संसार

का क्षय और अहित करते हैं, अन्याय से धन कमाते हैं, जिनकी कामनाएँ अनन्त हैं और जिनमें शौच, सत्य तथा सदाचार नहीं हैं वे चाहे जहाँ मरें और जब मरें, मैं उन्हें नरकों में भेजता हूँ, आसुरी योनियों में भेजता हूँ और बार-बार अधम गति देता हूँ। शुभ गति वह पाता है जो इन पापों से मुक्त है।

न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

हम लोगों को विश्वास है कि दक्षिणायन में मरे मनुष्य नरकगामी होते हैं इसलिए शरशय्या पर पड़े भीष्म उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे थे किन्तु सत्य यह है कि केवल धर्म की चर्चा करने वाले पितामह के सामने वह उत्तरायण आ गया जिसे अपनी इच्छा से प्राण त्यागने वाले योगी चाहते हैं। भगवान कृष्ण उनके सामने स्वयं आकर खड़े हो गये।

भक्त्यावेश्य मनो यस्मिन् वाचा यन्नाम कीर्तयन्।
त्यजन् कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः॥
स मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात् कृष्णो दर्शनमागतः।
धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः।
यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः॥ भागवत १।९

हमें विश्वास है कि कुछ मालाओं, वस्त्रों और तिलकों के धारण से, कुछ नामों के उच्चारण से, कुछ नदियों में नहाने से, कुछ तिथियों में अन्न जल छोड़ने से तथा काशी प्रयाग आदि कुछ पुरियों और कुछ समयों में मरने से सारे पाप समाप्त हो जाते हैं और स्वर्ग मिलता है।

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥
अयोध्यामथुरामायाकाशीकांचीअवन्तिकाः।
पुरी द्वारावती चेति सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

किन्तु इस कथन में अनेक शंकाएँ हैं। (१) ज्योतिष ने उत्तरायण की ही भाँति शुक्ल पक्ष और दिन को शुभ तथा दक्षिणायन की ही भाँति कृष्णपक्ष और रात्रि को अशुभ कहा है। किसी मनुष्य की मृत्यु उत्तरायण में और कृष्णपक्ष में हुई हो तो उसकी क्या गति होगी? (२) दक्षिणायन में और दिन में हुई तो स्वर्ग में जायगा या नरक में? (३) एक पुण्यात्मा काशी में या मथुरा में या एकादशी को दक्षिणायन में मरा तो वह कहाँ जायगा? (४) एक पापी विलायत में या मगहर में या नरक चतुर्दशी को उत्तरायण में मरा तो उसकी क्या गति होगी? (५) ज्योतिषशास्त्र एक बार क्षण-क्षण में कालों का शुभत्वाशुभत्व बदल देता है और दूसरी बार दक्षिणायन, हरिशयन, खलमास आदि लम्बे-लम्बे कालमानों को शुभाशुभ कहता है तो हम किस सिद्धान्त को मानें? (६) जिन कालों का अयन उत्तर है और यान दक्षिण है अथवा यान उत्तर है और अयन दक्षिण है उन्हें शुभ कहें या अशुभ? (७) अगहन मास अति पवित्र है। उसका नाम ही आग्रहायन है और श्रीकृष्ण ने गीता में उसे अपना स्वरूप बताया है किन्तु वह दक्षिणायन और दक्षिणयान (दक्षिणगोल) में पड़ता है तो उसमें आप विवाहादि शुभ कर्म क्यों

में अन्य अनेक शंकाएँ हैं। मुख्य शंका यह है कि संसार में कुछ ऐसे महामानव आये हैं जिनका नाम ही जाता है और जिनके चरणरज के स्पर्श से क्षेत्र पावन हो जाते थे, किन्तु उन्होंने दक्षिणायन में शरीर हैं नारकीय मानें? कुछ नाम ये हैं–

स्वामी, गुरुनानक देव, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्द सिंह, महर्षि दयानन्द, श्री तैलंगस्वामी, रामकृष्ण नन्द, स्वामी रामतीर्थ, गोस्वामी तुलसीदास, स्वामी विशुद्धानन्द, योगत्रयानन्द श्री शिवकिंकर, रामदास सागर, श्री राजाराम मोहनराय, श्री श्यामाचरण लाहिड़ी, योगी अरविन्द, महाराणा प्रताप, विष्णुदिगम्बर, ०म० शिवकुमारशास्त्री, मालवीय जी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, साईंबाबा, सुभाष बाबू, प्रेमचन्द आदि।

अयन और यान में जन्म का फल

त कहता है कि उत्तरायण में जन्मा बालक महापण्डित, धर्मशील, धनिक, सुन्दर और सर्वशुभगुण गोल में उत्पन्न बालक धनवान्, विद्वान्, पुत्रवान्, पौत्रवान्, राजमान्य और यशस्वी होता है पर ोलमें उत्पत्र बालक कपटी, मिथ्यावादी, पापी, रोगी, चिन्ताग्रस्त, दुःखी, धूर्त, दुराचारी, हीनांग और

धर्मार्थशीलयुक्तश्च गुणवांश्च सुरूपवान्॥
सौम्यगोले समुत्पन्नो धनवान् विद्ययान्वितः।
पुत्रपौत्रादिसंयुक्तो राजमान्यो नरो भवेत्॥
याम्यायने नरो जातः कूटसाक्षी सदाऽनृतः।
अधर्मी रोगबहुलो नित्यं चिन्तान्वितो भवेत्॥
याम्यगोले च यो जातः स सदा सुखवर्जितः।
कूटसाक्षी दुराचारी हीनाङ्गो निर्धनो भवेत्॥

ह है कि ४, ५, ६ राशियों का गोल (यान) उत्तर है और अयन दक्षिण तथा १०, ११, १२, राशियों का न उत्तर है तो इनमें उत्पन्न बालक कैसे होंगे? ४, ५, ६, ७, ८, ६ राशियाँ दक्षिणायन के कारण अशुभ ाशियाँ दक्षिण गोल के नाते अशुभ हैं। शुभ केवल १, २, ३ बचती हैं किन्तु कृष्णपक्ष में जन्म होना लिए इनका आधा भाग (४५ दिन) भी अशुभ हो जाता है। बचे रहते है ४५ दिन किन्तु रात्रि का जन्म नका आधा भाग भी अशुभ हो जाता है इसलिए केवल साढ़े बाईस दिन शुभ बचते हैं। उनमें तिथि, , लग्न और नवमांश आदि से सम्बन्धित कई सौ भीषण योग हैं तो शुभ काल बचता ही कहाँ है?

वर्षा-शरद् ऋतुएँ और हरिशयन

ान से छोटा कालमान ऋतु है। सूर्य वेद में विष्णु भगवान हैं, ऋतुएँ उनसे उत्पन्न हैं और प्रजापति के हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार संवत्सर प्रजापति है, वसन्त उसका सिर है, ग्रीष्म दक्षिण पक्ष है, शरद् य है और वर्षा पुच्छ है। इस ग्रंथ में ऋतुओं को अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा की भाँति पुनीत कहा है। नकर ऋतुओं को आहुतियाँ दी गयी हैं और उनके द्वारा वसु, रुद्र आदि देवों की स्तुति की गयी है। कि हे अग्निदेव! वर्ष और ऋतुएँ तुम्हारी वृद्धि करें। हे बालक! तुम्हारी रक्षा के लिए हम तुम्हें शरदादि रहे हैं। ऋतु, ऋतुपति, संवत्सर और मास हमें पापों से मुक्त करें।

तस्य ते वदन्तः शिरो ग्रीष्मो दक्षिणः पक्षो वर्षाः पुच्छम्।
शरदुत्तरः पक्षो हेमन्तो मध्यम् (तै०ब्रा० ३।१०।४)
वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यो वर्षाण्यनु शरदो
हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः (सामवेद् पूर्व ६।४।२)
वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः। ग्रीष्मेण ऋतुना
देवा रुद्राः पंचदेशे स्तुताः। शरदेन......हेमन्तेन......शैशिरेण
ऋतुना..........अमृते स्तुताः..........वयो दधुः (२१।२८)॥
समास्त्वग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सराः २।६।१
शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परिदद्मसि ८।२।२२
ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान्।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते ना मुञ्चन्त्वंहसः ११।६।१७

दों में ऋतुओं की प्रशंसा के ऐसे सैकड़ों मंत्र हैं पर कहीं किसी ऋतु को अशुभ नहीं कहा है। शिवपुराण का
ऍं शिवपुत्र षडानन के छः मुख हैं, १२ मास १२ भुजाएँ हैं और सब शुभ हैं।

ऋतवः षण्मुखं तस्य मासास्तु गुहपाणयः।

ग-महाभारत, पुराणों और काव्यादिकों में लिखित ऋतुओं के बाह्य सौन्दर्य और आन्तरिक गुणों से सम्बन्धित
त किया जाय तो एक मोटा पुराण बन जायगा। महाकवि कालिदास ने तो ऋतुसंहार नाम का एक काव्य ही
र अन्य कवियों ने छः ऋतुओं को छः गुणवती सुन्दरियाँ मान लिया है। ऋतु की निन्दा ढूँढ़ने पर कदाचित्
तिष ने भी जन्मकाल में सब ऋतुओं को शुभ कहा है पर खेद है कि वर्षा और शरद् को हरि का शयनकाल
शुभ कर्मों का निषेध कर दिया है किन्तु इनके विषय में हमारे विशिष्ट कवियों की संमति क्या है, इसे जान
के भय से उनके कुछ ही पद लिखे जा रहे हैं।

में वर्षा-वर्णन बहुत सरस है। वहाँ मेघ गर्जना से भयभीत कामिनियाँ अपने आप पति से आश्लिष्ट हो जाती
ीत गोविन्द में आकाश मेघों से शोभित है, वनभूमि तमालद्रुमों से श्यामा हो गयी है और यमुनाकूल पर
लियाँ चल रही हैं। महाकवि सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं–

भींजत कुंजन ते दोउ आवत।
वे हंसि ओट करत पीताम्बर वे अंचलहिं ओढ़ावत आवत॥
यों-ज्यों बूंद परे चूनर पर त्यों-त्यों हरि उर लावत आवत।
सूरदास दोउ मित्र परस्पर राग मलारहिं गावत आवत॥
बरखाकाल मेघ नभ छाये गरजत लागत परम सोहाये।
बरसहिं जलद भूमि नियराये जथा नवहिं बुध विद्या पाये॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ।
सस संपन्न सोह महि कैसी उपकारी की सम्पति जैसी॥
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।
उदित अगस्त पंथ जल सोखा जिमि लोभहिं सोखै सन्तोखा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा सन्त हृदय जस गत मद मोहा।

जानि सरद ऋतु खंजन आये समय पाय जिमि सुकृत सोहाये॥
फूले कमल सोह सर कैसा निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा।
सरदातप निसि ससि अपहरई सन्त दरस जिमि पातक टरई॥

।२२) का कथन है कि आकाश में धने नीले वादल गरज रहे हैं और विजली चमक रही है, मानो
है। ये दयालु घन, कृषकों के सन्ताप से द्रवित हो गये हैं। ग्रीष्म ऋतु से कृश धरती अब हरी-भरी
को तप का फल मिल रहा है। मण्डूक वेदपाठियों की भाँति बोल रहे हैं। हरी-भरी घास और चित्र-
की सेना से प्रतीत हो रहे हैं। खेतों की लहलहाती अन्नसंपत्ति देखकर कृषक प्रसन्न हैं, नवीन वारि के
र स्थलचरों का रूप रुचिर हो गया है, मोर नाच रहे हैं, झरनों का सुरीला शब्द कानों को वड़ा प्रिय
ट थोड़ी ही देर में भर जाता है, घर में दूध-दही-मक्खन की भरमार है, पके आमों और काली जामुन
द् ऋतु के विषय में भागवत में लिखा है कि इसने मेघों, क्षुद्र जन्तुओं और कीचड़ को समाप्त कर
भित निर्मल जल वाले सरोवर योगियों के चित्त सदृश दिखाई दे रहे हैं। रात में तारे जगमगा रहे हैं,
, वृक्ष पुष्पों से लदे हैं, शीतल मन्द सुगन्ध वायु लताओं से होकर आ रही है। गाय, हरिणियाँ, पक्षियाँ
गयी हैं और पुरुष उनका अनुगमन कर रहे हैं, मानों कर्म-फल, कर्म का पीछा कर रहा है।

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः।
तूष्णीं शयानाः प्राग् यद्वत् ब्राह्मणा नियमात्यये॥
आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः।
पुंसो यथाऽस्वतन्त्रस्य देहद्रविडसम्पदः॥
क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः।
जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया॥
अबिभ्रद् रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया॥
शरदा नीरजोत्पत्या नीराणि प्रकृतिं ययुः॥
भ्रष्टानामिव चेतांसि यथा योगनिषेवया।
गाधवारिचरास्तापमविन्दन् शरदर्कजम्॥
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः।

वि किरातार्जुनीय में लिखते हैं कि शरद् के कारण धरती नवयौवना कामिनी प्रतीत हो रही है। पके हुए
गोरी काया हैं, मधुरस्वन से कूजती हंसपंक्ति उसकी करधनी है, सरोवरों में मछलियाँ उछल रही हैं,
नयनों से उनकी क्रीड़ा देख रहे हैं, नदियों के तट से गायों का झुण्ड ऊपर जा रहा है, मानों कामिनी
ी है। अरण्यानी अपने खिले पुष्पों द्वारा हँस रही है, लताओं पर पुष्पपराग छाया है। पवन उसे उड़ाना
ने नहीं देती, जैसे स्त्रियाँ वस्त्र खींचने नहीं देती हैं। हंसों और बकों के कलरव द्वारा दिशाएँ बात कर
ार्य वराहमिहिर बृहत्संहिता में लिखते हैं कि शरद् ऋतु प्रसन्नवदना कामिनी है, चक्रवाक उसके
नल कटाक्ष हैं और भ्रमरपंक्ति वेणी है किन्तु खेद है कि ज्योतिषी को वर्षा और शरद की इस शोभा
ल दिखाई देता है इसलिए वह इनमें विवाहादि सब मांगलिक कर्मों को वन्द कर देता है और इनमें
है (१) दक्षिणायन (२) हरिशयन (३) स्त्रीलिंग।

शुभत्व का प्रतिपादन हो चुका। हमें पुनः ध्यान रखना है कि इसी दक्षिणायन में वह वर्षा होती है

त्पन्न होते हैं जिनके अभाव में संसार में हाहाकार मच जाता है। परमात्मा ने अधर्म के नाश और धर्म की रक्षा
ार लेने में इसी को चुना था। हमारे गुरुपूर्णिमा, कामदा, नागपंचमी, हनुमद्दर्शन, पुत्रदा, कज्जली, कुशोत्पाटिनी,
ंचमी, हलषष्ठी, लोलार्कषष्ठी, अनन्तचतुर्दशी, दशावतार, महालय, जीवत्पुत्रिका, पितृविसर्जन, ललिता,
ष्टमी, विजयादशमी, करवा, राधाजयन्ती, हनुमज्जयन्ती, धन्वन्तरि जयन्ती, दीपावली, कुबेरार्चन, गोवर्धनपूजा,
पंचक, तुलसीविवाह, यमद्वितीया, आग्रहायन, अगस्त्योदय, भैरवाष्टमी, स्कन्दषष्ठी; दत्तजयन्ती और
आदि सैकड़ों पर्व इसी में पड़ते हैं।

यन के विषय में ज्योतिष और धर्मशास्त्र का कथन है कि आषाढ़ की शुक्ल एकादशी (हरिशयनी) को विष्णु
ठीक चार मास बाद कार्तिक शुक्ल एकादशी (प्रबोधिनी) को जागते हैं, इसलिए इन चार मासों में कोई शुभ
चाहिए किन्तु सत्य यह है कि इन मासों में ईश्वर के सो जाने का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। वेदों में सूर्य
हा है पर उनका अहर्निश चलते रहना प्रत्यक्ष है। वे कभी सोते नहीं। पुराणों का कथन है कि विष्णु भगवान
शय्या पर सोते हैं और लक्ष्मी उनका पैर दबाती हैं पर वेदों के अनुसार आकाश ही क्षीरसागर है, सूर्य की सहस्त्र
णें ही शेषनाग के सहस्त्र (असंख्य) सिर हैं और किरणों की शोभा तथा शक्ति ही श्री लक्ष्मी हैं। *

हम थोड़ी देर के लिए हरि के शयन को स्वीकार कर लें तो भी प्रश्न उठता है कि क्या राजा और मन्त्री के सोते
के सारे कार्य बंन्द हो जाते हैं? क्या भारत में, मंत्री के सो जाने पर रेलें और बसें नहीं चलतीं? विद्यालय और
लय बन्द हो जाते हैं? हरि सो गये तो पवन कैसे चलता है, सूर्य कैसे उगता है और नदियाँ कैसे बहती हैं? हरि
ाप प्रार्थना किसकी करते हैं, फूल किसे चढ़ाते हैं और आरती किसकी करते हैं? सोये हुए हरि आपके द्वारा
फल और पान को कैसे खाते हैं? सत्य यह है कि हमारे, बुद्धि और शौर्य के देव गुरु शुक्र सो गये हैं और हमने
स्थित हरि को थपकियाँ दे दे कर सुला दिया है। वे जागने पर हमारे अज्ञानरूपी मधुकैटभ की हत्या करेंगे तो
दि के चण्डमुण्ड अदृश्य हो जायेंगे। खेद है कि हमारे वृद्ध पिता शेषशय्या पर सोये हैं, बूढ़ी लक्ष्मी माँ उनका
और हम युवकों का विवाह ज्योतिष के कारण बन्द है।

यह है कि हरि कभी सोते नहीं। मनुस्मृति में लिखा है कि हरि के जागते रहने पर ही जगत् के क्रियाकलाप
वे शान्त हो कर सोने लगते हैं तब सारा जगत् निश्चेष्ट हो जाता है, उन्हीं में समा जाता है, सारे देहधारी अपने
हो जाते हैं और उनके मन थक जाते हैं। सारा विश्व जब उनमें एक साथ विलीन हो जाता है, तब वे विश्वात्मा
से निवृत्त होकर सोते हैं।

यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत्।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति।।१।५३।।
तस्मिन् स्वपति सुस्थे तु कर्मात्मानः शरीरिणः।
स्वकर्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति।।१।५३।।
युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन् महात्मनि।
तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः।।१।५३।।

ंश यह कि हरि महाप्रलय में ही सोते हैं और सत्य यह है कि वे तब भी सोते नहीं बल्कि योगनिद्रा में पड़े रहते
बार-बार कहते हैं कि अस्य च सुप्तं महाप्रलयः, किन्तु हमारे पौराणिक, धर्मशास्त्री और ज्योतिषी उन्हें
भाँति वर्ष में लगातार चार मास सुला देते हैं और आश्चर्य यह है कि उन्हें जगाते समय कहते भी हैं कि हे
! निद्रा को छोड़कर उठो क्योंकि तुम्हारे सोने पर सारा संसार सो जाता है।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत् सुप्तं भवेदिदम्।।

चार मासों में सारा संसार सुप्त या विक्षिप्त रहता है और कार्तिक की एकादशी को झट जाग जाता है?
और जगत् की सृष्टि तथा महाप्रलय को कोई जान नहीं सकता। इसीलिए बुद्ध भगवान ने इस विषय को
निर्णेय) कहा है। इससे सम्बन्धित वेद के तीन मन्त्र माननीय हैं।–

पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि। (पुरुषसूक्त)
को अद्धा वेद का इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेन अथो को वेद यत आबभूत।
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अंग वेद यदि वा न वेद ।। (नारदीयसुक्त)

विश्व के विषय में जितना जान सके हैं और भविष्य में जानेंगे वह ज्ञान तथा क्षेत्र एक पाद है और अज्ञान
स्पष्टतया कौन जानता है और कौन बता सकता है कि यह सृष्टि कब पैदा हुई और इसका महाप्रलय कब
सृष्टि की उत्पत्ति के बहुत बाद पैदा हुए हैं तो कौन बता सकता है कि यह कब और किससे उत्पन्न हुई
हाकाश में रहने वाला इसका अध्यक्ष ही जानता है पर वह भी जानता है या नहीं, इसे कौन जाने। इससे
ी है कि हरिशयन, हरि का जागरण, सृष्टि की उत्पत्ति और महाप्रलय आदि हमारी मिथ्या, अनावश्यक
एँ हैं।

वर्षा और शरद् स्त्री

स्त्रीनामानमृतुं विहाय मुनयो माण्डव्यशिष्या जगुः।

विवाहवृन्दावन का है। इसमें लिखा है कि वर्षा और शरद् शब्द स्त्रीलिंगी हैं, ये दोनों ऋतुएँ स्त्रियाँ हैं
हीं करना चाहिए। यह माण्डव्य मुनि के शिष्यों का आदेश है। यद्यपि यह बात स्पष्ट है कि यह आदेश
र्य है कि पूरे हिन्दू समाज ने इसे आँख मूँद कर मान लिया है। संसार में स्त्री से घृणित दूसरा कोई पदार्थ
में हमारे लगभग सब सन्त एक मत हैं जगद्गुरु आदिशंकराचार्य ने अपनी मणिरत्नमाला में लिखा है कि
नहीं होती। वह नरक का द्वार है, पिशाची है, हेय है, त्याज्य है, विष है, सुरा है और उसका चरित अज्ञेय

विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी। द्वारं किमेकं नरकस्य नारी।
नारी पिशाची च सुधोपमं विषम्। किमत्र हेयं कनकं च कान्ता।।
संमोहयत्येव सुरेव का स्त्री। ज्ञातुं न शक्यं चरितं तदीयम्।।

मी तुलसीदास ने बहुत लिखा है। उनके कुछ पद ये हैं–

शूद्र गँवार ढोल पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी।।
अधम ते अधम अधम अति नारी। नारि निबिड़ रजनी अंधियारी।।
विधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी।।

नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अशौच अदाया॥
भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
विकल होइ मन सकहि न रोकी। जिमि रविमनि द्रव रविहिं विलोकी॥
जप तप नेम जलाशय झारी। होइ ग्रीष्म सब सोखहि नारी॥
पुरुष प्रताप सबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥
सुनु मुनि कह पुरान श्रुति सन्ता। मोह विपिन कहं नारि वसन्ता॥
बुधिबल सील सत्य सब मीना। तिय बंसी सम कहहिं प्रबीना॥
अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
सहज अपावन नारि पति सेवत सुभ गति लहइ॥

अन्धविश्वासी न बनकर शान्त चित्त से सोचना है कि ऋतु, मास, पक्ष, जल, वायु, अग्नि आदि निराकार क्या कोई लिंग होता है? (१) संस्कृत व्याकरण के अनुसार पुरुषों के लिंग, वीर्य, मन, तेज शरीर, अनेक अंग नपुंसक लिंगी हैं, ग्रीवा, नाडी, नासिका, बसा आदि स्त्रीलिंगी हैं, नारियों के भग, योनि, क्ष आदि पुल्लिगी हैं, दार शब्द भी पुल्लिगी है तो क्या इन सब को वैसा ही मान लिया जाय? (२) रात्रि , घटी और अनेक नक्षत्र स्त्रीलिंगी हैं, तो क्या रात्रि में, किसी तिथि में और किसी घटी में तथा रोहिणी, स्वाती, अनुराधा आदि स्त्री नक्षत्रों में विवाह न किया जाय? (३) चन्द्र की चन्द्रिका, ग्रहों की किरणें, स्त्री हैं। (४) पृथ्वी, विद्या, लक्ष्मी, भक्ति, मित्रता, दया, शान्ति, क्षमा, योग सिद्धियाँ, नदियाँ और त्या हम इन सब से नाता तोड़ दें? (५) ज्योतिष–शास्त्र उत्तरायण में विवाह को शुभ मानता है पर यह स्त्री ऋतुएँ निषिद्ध हैं तो नपुंसक उत्तरायण शुभ कैसे हो गया? (६) वर्षा शरद ऋतुएँ स्त्री हैं पर उनके ठों पक्ष पुरुष हैं और सारे दिवस पुरुष हैं तो ऋतुओं को ही प्रधान क्यों माना जाय? ऋतुएँ जिस संवत्सर तो पुरुष ही है? (७) वर्षा और शरद को ऋतु कहा है पर ऋतु शब्द पुल्लिगी है तो ऋतु को क्या मानें? यह है कि पुरुष इन घृणित स्त्रियों से विवाह क्यों करते हैं और सूरदास, तुलसीदास तथा कालिदास नारियों की शरीर–शोभा का विशद वर्णन क्यों करते हैं? सत्य यह है कि पुरुष दस मास तक नारी के गर्भ बाद में उसी के दूध से पुष्ट होता है इसलिए वह नारी से महान् नहीं है।

दार्थों में लिंग नहीं होता और एक ही पदार्थ के भिन्न–भिन्न भाषाओं में विभिन्न लिंग होते हैं। आत्मा गी और हिन्दी में स्त्रीलिंगी है। इतना ही नहीं, संस्कृत में भी लिंग बदलते रहते हैं। इसीलिए आदेश दिया लोकाश्रयत्वाल्लिंगस्य। अर्थात् लोकाश्रित होने से लिंग अनिश्चित है। वेद में इषु शब्द स्त्रीलिंगी है, प्रोष्ठपद क लिंगी (धर्माणि) है पर संस्कृत में वे पुरुष, स्त्री और पुल्लिगी हो गये हैं। जल, तारा, वेद आदि अनेक शब्द विभिन्न लिंगों के हैं अत: स्त्री होने के कारण वर्षा शरद् के त्याग का विधान अज्ञानजन्य है। उसे स्वती, लक्ष्मी, श्रद्धा, मैत्री, शान्ति, क्रिया और लज्जा आदि नारियों को भी छोड़ना होगा।

वसन्त हेमन्त और खलमास

नीरस मनुष्य हो यह संभव नहीं है कि हेमन्त ऋतु की हरियाली, धरती माता की सरसों के पीले फूलों तीसी और केसारी के नीले फूलों की चादर, ओस के बूंदों और मटर के लाल श्वेत सुमनों की मोतीमाला हो जाय और वसन्त के विषय में तो श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं कहा है कि मैं ऋतुओं में वसन्त हूँ। ऋतूनां

योतिषाकाश के भास्कर श्रीभास्कराचार्य ने सब ऋतुओं के सौन्दर्य और गुणों से आकृष्ट होकर अपने
लाध्याय में उनका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। उनके कुछ पदों के भाव ये हैं–वसन्त ऋतु में प्रफुल्ल
ुगन्ध से भ्रान्त होकर भ्रमर घूम रहे हैं, आमवृक्षों में नूतन लाल–लाल पल्लव निकल आये हैं और
कोकिलों का मधुर आलाप सुनाई दे रहा है, तथा वसन्त का बेला अपने कुसुमों से मलिना मालती का
 यात्रियों! इस चैत्रोत्सव में घर छोड़ कर बाहर जाते समय तुम्हारे चित्त व्यथित क्यों नहीं होते? ग्रीष्म
में नहीं रहे हैं जिसके तट ऊँचे सफल रसाल वृक्षों से आच्छादित हैं। वर्षा में वर्षा हो रही है, मेघ गरज
 रहा है और मयूर नाच रहे हैं। शरद् में चन्द्रमा अपने किरणों से अमृत बरसा रहा है। हेमन्त में धरती
ाला से विभूषित है, बहुशस्यशालिनी है, हृष्ट पुष्ट गोकुल से समन्वित है और उसे देख कर कृषक हर्ष
 अरुण पल्लव और पुष्पों से वन कांचनवन हो गये हैं और प्रियासंग से शिशिरक्षति हो रही है।

उत्फुल्लन्नवमल्लिका–परिमलभ्रान्तभ्रमद्भ्रामरे।
रे पान्थाः कथमव्यथानि भवतां चेतांसि चैत्रोत्सवे॥
व्रजन्ति वापीजलकेलिलालसा वनाय कामोच्छ्रितचूतकेतवे।
सहस्यकाले बहुशस्यशालिनीं विलोक्य हृष्यन्त्यधिकं कृषीवलाः॥
वहति कांचन कांचनकाननं नवतरां नितरां शिशिरागमे।
निशि यथोष्मलपीनघनस्तनीभुजनिपीडनतः शिशिरक्षतिः॥

ाकर कहते हैं–'बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में बनन में बागन में बगरो बसन्त है'। हमारा
न्त के यशोगान से भरा है, ये दोनों कुसुमाकर हैं, कामदेव का नाम कुसुमशर है और मनोवैज्ञानिक इन
 औचित्य सिद्ध करते हैं। वेद में इसके चार मासों के सरस नाम हैं मधु, माधव, सहस् और रहस्य पर
धे भाग को खलमास या खरमास कहता है। इसका अर्थ है–दुष्ट या गधा या तीक्ष्ण मास। इनमें विवाह,
ाना, बात करना तथा प्रत्येक शुभ कर्म वर्जित है। सूर्य के धन और मीन राशियों में आने पर ये मास
 है कि यह मान्यता नूतन और अभारतीय है क्योंकि राशियाँ विदेशी हैं।

इन दोनों राशियों का स्वामी बृहस्पति है, ज्योतिष में सूर्य और बृहस्पति एक दूसरे के मित्र हैं, धन और
मित्रक्षेत्रीय और शुभ माना जाता है पर न जाने क्यों, यहाँ ज्योतिष दो मासों को खर और खल बना कर
कर देता है।

ऋतुओं में जन्म का फल

कन्दर्परूपो मतिमान् प्रतापी संगीतशास्त्रे गणिते प्रवीणः।
शास्त्रप्रसूतामलचैलचेता वसन्तजन्मा मनुजः प्रसन्नः॥१॥
ऐश्वर्यविद्याधनधान्ययुक्तो वक्ता प्रलम्बामलकेशपाशः।
भोगी भवेन्नीरविहारशीलो यो ग्रीष्मकालोद्भवतां प्रपन्नः॥२॥
संग्रामधीरो मतिमान् प्रतापी तुरंगमप्रेमपरः सुरूपः।
कफानिलात्मा ललनाविलासी वर्षोद्भवो वै पुरुषः सहर्षः॥३॥
अपूर्णरोषः पुरुषोनिलात्मा मानी धनी धर्मरुचिः शुचिः स्यात्।
रणप्रियो वाहनसंयुतश्च ऋतौ शरन्नाम्नि च यस्य जन्म॥४॥

नरेन्द्रमंत्री चतुरोऽप्युदारो नरो भवेच्चारुगुणोपपन्नः।
सत्कर्मधर्मानुरतो मनस्वी हेमन्तजातः सततं विनीतः॥५॥
मिष्टान्नपानानुरतो नितान्तं क्षुधान्वितः पुत्रकलत्रसौख्यः।
सत्कर्मवेषः पुरुषः सरोषो बलाधिशाली शिशिरर्तुजन्मा॥६॥
वसन्त–सुन्दर मेधावी प्रतापी संगीतज्ञ गणितज्ञ शास्त्रज्ञ प्रसन्न।
ग्रीष्म–विद्वान् धनी वक्ता सुकेश भोगी यशस्वी जलप्रिय।
वर्षा–वीर मेधावी प्रतापी अश्वप्रिय सुरूप कफवातवान् प्रसन्न कामी।
शरद्–शान्त वातुल मानी धनी धर्मशील शुचि शूर वाहनवान्।
हेमन्त–मंत्री चतुर उदार गुणवान् सदाचारी धर्मशील विनीत।
शिशिर–मिष्टान्नप्रिय सुपुत्रवान् बहुभोजी सदाचारी बली सुन्दर।

हाँ सब ऋतुओं के फल शुभ हैं तो दक्षिणायन और दक्षिणगोल में अर्थात् वर्षा, शरद् और हेमन्त में ापी, रोगी, दरिद्र और मूर्ख आदि क्यों कहा है? शरद् ऋतु के कार्तिक मास में उत्पन्न बालक को कामी है? पुनीत ऋतु के मास खर या खल क्यों हो गये? अयन, ऋतु और मास के फलों का समन्वय कैसे होगा? में मतभेद क्यों है?

बारह तेरह मास

शास्त्रों में १२ मासों के ६० नाम हैं और वे सब शुभ हैं। वेद के सारे कालमान प्राकृतिक हैं। उनमें एक है। चैत्रमास का प्रारम्भ होते ही सूर्यास्तकाल में चित्रा नक्षत्र, पूर्वक्षितिज में उदय हो जाता है और वह रात था चैत्र की पूर्णिमा को चन्द्रमा चित्रानक्षत्र में पहुँच जाता है। इसी कारण इस मास को वैदिक साहित्य में ाया है। शेष मासों के नाम भी इसी प्रकार विशाखापूर्णमासी, ज्येष्ठापूर्णमासी आदि रखे गये हैं। इन्हीं नामों चैत्र, वैशाख आदि कहा जाने लगा। चूँकि चन्द्रमा एक सौर वर्ष में १२ बार पूर्ण होता है अर्थात् १२ सलिए आर्यों ने एक वर्ष में १२ मास माने हैं। एक चान्द्रमास छोटे से छोटा २६–३०५५ दिन का, बड़े से न का और मध्यम २६–५३०६ दिन का होता है। इसलिए एक चान्द्रवर्ष लगभग ३५४ दिन ८ घंटा ४८ ड का होता है। साम्पातिक सायन सौर वर्ष मध्यम मान से ३६५–२४२२ दिनों का अर्थात् ३६५ दिन ५ घंटा ड (३६५ दिन १४ घटी ३१ पल ५४ विपल) का होता है। दोनों में लगभग ११ दिनों का अन्तर है। यही ों में एक मास तुल्य हो जाता है। उसको अधिक मास, मलिम्लुच और पुरुषोत्तम मास आदि कहते हैं।

चान्द्रमासों के नाक्षत्रनाम

ज्येष्ठा	आषाढा	श्रवण	भाद्रपदा	आश्विनी	कृत्तिका	मृगशीर्ष	पुष्य	मघा	फाल्गुनी
ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्रपद	आश्विन	कार्तिक	मार्गशीर्ष	पौष	माघ	फाल्गुन

चन्द्रमा को नक्षत्रमण्डल की एक परिक्रमा करने में लगभग २७.३२ दिन लगते हैं इसलिए नक्षत्र २७–२८ माने गये हैं। चूँकि पक्ष २४ हैं और नक्षत्र २७ इसलिए २७ नक्षत्रों के २४ ही नाम रखे गये हैं और पूर्वाफाल्गुनी–उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढा–उत्तराषाढा, पूर्वाभाद्रपदा–उत्तराभाद्रपदा कह कर २७ संख्या भी पूरी कर दी गयी है। अभिजित् को लेकर २८ नाम हो जाते हैं। इस कारण मास के नाम से सम्बन्धित नक्षत्र कभी–कभी पूर्णिमा से एक नक्षत्र दायें–बायें हो जाता है। मासों के ये सभी नाम सार्थक, मांगलिक और ओजस्वी हैं। अधिमास सहित १३ नाम ये हैं–

अरुणोऽरुणरजाः पुण्डरीको विश्वजित् अभिजित् आर्द्रः
पिन्वमानोऽन्नवान् रसवान् इरावान् सर्वौषधः संभरो
महस्वान्। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।१)

अरुण शब्द सूर्य, सूर्यसारथी मंगल और रक्तवर्ण का बोधक है। श्वेतकमल, सिंह और एक दिग्गज को पुण्डरीक कहते हैं। पुष्ट ही पिन्वमान है और विधिवत् भरण–पोषण करने वाला संभर है। दयालु और आनन्द की वर्षा करने वाला आर्द्र कहा जाता है। पृथ्वी, वाणी जल इरा हैं। तेज और उत्सव महस् हैं। शेष शब्दों के अर्थ स्पष्ट हैं। इनमें एक भी अशुभ नहीं है।

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू। शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू।
नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू। इषश्चोर्जश्च शारदावृतू।
सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू (तै–सं० ४।४।११)

ये ६ ऋतुओं के १२ मास हैं। अग्नि, तेज, बल, और शुक्रग्रह को शुक्र कहते हैं। यहाँ आषाढ़ को शुचि कहा है। सुन्दर, पवित्र और अग्नि को शुचि कहते हैं। अन्न को इष् और बल तथा जल के रस को ऊर्ज कहते हैं। ऊर्ज का अर्थ बल भी होता है। सहस् और सहस्य भी बल हैं। शेष नाम स्पष्ट हैं।

बारह मासों के ६० पुनीत नामों में ४८ वैदिक और १२ पौराणिक हैं। प्राचीन वेद भाष्यकारों ने इन नामों के जो अर्थ लिखे हैं उनसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि उनमें एक भी अशुभ नहीं है। पुराणों के कथानानुसार उनमें १२ आदित्यों, १२ देवियों और १२ देवादिकों का वास है। उनकी सारणी यह है। नीचे कुछ क्लिष्ट नामों के अर्थ लिखे हैं।

मासनाम	मासनाम	मासनाम	मासनाम	मासनाम और देव	देवी	सूर्य
चैत्र	मधु	वाज	अरुण	केशव	रमा	वैदांग
वैशाख	माधव	प्रसव	अरुणरज	नारायण	मोहिनी	भानु
ज्येष्ठ	शुक्र	अपिज	पुण्डरीक	माधव	पद्माक्षी	इन्द्र
आषाढ़	शुचि	क्रतु	विश्वजित्	गोविन्द	कमला	रवि
श्रावण	नभः	वसु	अभिजित्	विष्णु	कान्तिमती	गभस्ति
भाद्रपद	नभस्य	अहर्पति.	आर्द्र	मधुसूदन	अपराजिता	यम
आश्विनी	इष	मुग्धाह्न	पिन्वमान	त्रिविक्रम	पद्मावती	सुवर्णरेता
कार्तिक	ऊर्ज	वैनंशिन	अन्नवान्	वामन	राधा	दिवाकर
मार्गशीर्ष	सहः	आंत्यायन	रसवान्	श्रीधर	विशालाक्षी	मित्र
पौष	सहस्य	भौवन	इरावान्	हृषीकेश	लक्ष्मी	विष्णु
माघ	तपः	भुवनपति	सर्वौषध	पद्मनाभ	रुक्मिणी	अरुण

य	अधिपालक	संभर	दामोदर	धात्री	सूर्य
म्लुच	प्रजापति	महस्वान्	पुरुषोत्तम	श्री	मरीचि
इष्	सह वाज	अपि इरा	महः संभर ऊर्ज	वसु वैनंशिन	मुग्धह्न
न अन्न	बल अन्न	जल जल	तेज पालक ओज	धन छोटा	स्वच्छ

११) का कथन है कि बारह मास बारह आदित्य हैं और समस्त लोकों के आत्मा हरि ही सूर्य अनेक हैं। कालरूपी सूर्य जगत् की रक्षा के लिए बारह मासों में अपने बारह गणों के साथ धर्व, अप्सरा आदि सर्वदा उनकी रक्षा करते हैं अतः कोई मास अशुभ नहीं है।

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकृत हरिः।
सर्ववेदक्रियामूलं ऋषिभिर्बहुधोदितः ३०॥
मध्वादिषु द्वादशसु भगवान् कालरूपधृक्।
लोकतंत्राय चरित पृथग् द्वादशभिर्गणैः ३२॥

रहों मासों के संरक्षकों का यह चक्र है। इसमें राक्षस, यक्ष और नाग शब्दों को देखकर शंकित यण में लिखा है कि रक्षा करने वाले राक्षस और यज्ञ करने वाले यक्ष होते हैं। नाग मनुष्यों और

	अप्सरा	राक्षस	नाग	यक्ष	ऋषि	गन्धर्व
	कृतस्थली	हेति	वासुकि	रथकृत	पुलस्त्य	तुम्बुरु
	पुंजिकस्थली	प्रहेति	कच्छनीर	अथौजा	पुलह	नारद
	मेनका	पौरुषेय	तक्षक	रथस्वन	अत्रि	हाहा
	रंभा	चित्रस्वन	शुक्र	सहजन्य	वसिष्ठ	हूहू
	प्रम्लोचा	वर्य	एलापत्र	श्रोता	अंगिरा	विश्वावसु
्	अनुम्लोचा	व्याघ्र	शंखपाल	आसारण	भृगु	उग्रसेन
	तिलोत्तमा	ब्रह्मापेत	कम्बल	शतजित्	जमदग्नि	धृतराष्ट्र
	रंभा	मरवापेत	अश्वतर	ताक्ष्र्य	विश्वामित्र	सूर्यवर्चा
	उर्वशी	विद्युत्शत्रु	महाशंख	ऊर्ण	कश्यप	ऋतसेन
	पूर्वचित्ति	स्फूर्ज	कर्कोटक	सुरुचि	आयु	अरिष्टनेमि
	घृताची	वात	धनंजय	सत्यजित्	गौतम	सुषेण
	सेनंजित्	वर्चा	ऐरावत	क्रतु	भरद्वाज	विश्व

कार लिखते हैं कि ये सब आदित्यरूपधारी विष्णु भगवान की विभूतियाँ हैं। ये प्रतिदिन दोनों के पाप का नाश करती हैं। सूर्यदेव अपने छः गणों के साथ बारहों मासों में प्रतिदिन घूमा करते करते हैं। ऋषिगण वेदमंत्रों से उनकी स्तुति करते हैं, गन्धर्व यश गाते हैं, अप्सराएँ उनके आगे हैं, यक्ष सजाते हैं, राक्षस उसको पीछे से ढकेलते हैं और बालखिल्य नामक साठ सहस्र ऋषि करते हैं। जिसको हम मलमास और निन्दित मास कहते हैं वह इस पद्धति में पुरुषोत्तम मास है उसको देवराज इन्द्र का गृह कहा है।

त्रयोदशोमास इन्द्रस्य गृहः

वेदों में जिस प्रकार मासों को मधु, माधव आदि कहा गया है उसी प्रकार पुराणादिकों में उनके केशव, नारायण, माधव आदि विष्णु भगवान के ही बारह नाम हैं। गीता में मार्गशीर्ष प्रथममास है और इस पद्धति में भी मार्गशीर्ष से ही प्रारम्भ है। आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में लिखा है–

मृगशीर्षाद्याः केशवनारायणमाधवाः सगोविन्दाः।
विष्णुमधुसूदनाख्यौ त्रिविक्रमो वामनश्चैव॥
श्रीधरनामा तस्मात् सहृषीकेशश्च पद्मनाभश्च।
दामोदर इत्येते मासाः प्रोक्ताः यथासंख्यम्॥

किन्तु खेद है कि आज हिन्दू दक्षिणायन के छः मासों को इसलिए निषिद्ध कहता है कि उनमें सूर्योदय स्थान क्षितिज में उत्तर से दक्षिण की ओर खिसकता दिखाई देता है। उसके चार मास विशेष रूप से इसलिए निषिद्ध हैं कि उनमें हरिशयन रहता है। पुष्य नक्षत्र देवगुरु का नक्षत्र है और पोषक होने से सब कर्मों में शुभ माना जाता है। पौष मास में वह रात भर दिखाई देता है। पुष्य के कारण ही वह मास पौष कहा जाता है। पौष में गाँवों में चारों ओर हरियाली दिखाई देती हैं पर ज्योतिष इसे अशुभ और खल मास कहता है। चित्रा को मृदु और मैत्र नक्षत्र कहा गया है। वह परम शुभ है और रजोदर्शन, रजस्वलास्नान, गर्भाधान, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, गृहारम्भ, गृहप्रवेश आदि कर्मों में शुभ माना गया है। वह चेत्र मास में रात भर दिखाई देता है। इसी से वह चैत्र कहा गया है। यह काल ऋतुराज वसन्त में पड़ता है। इसमें धरती सुगन्ध से परिपूर्ण हो जाती है। इसी में वर्षारम्भ माना जाता है, इसी में नवरात्र पड़ता है और इसी में राम का जन्म हुआ है पर यह खल मास है। ज्योतिष विशाखा, कृत्तिका, मधा और फाल्गुनी नक्षत्रों को अशुभ कहता है पर ये जिनमें रात भर दिखाई देते हैं वे वैशाख, कार्तिक, माघ और फाल्गुन परम शुभ हैं। कन्या के द्विरागमन में नव मास वर्जित हैं। जिनमें विवाह होता है उनमें द्विरागमन नहीं हो सकता। केवल तीन मास ग्राह्य हैं। पापग्रह शनि और मंगल की राशियों ११, १, ८ में सूर्य के रहने पर द्विरागमन हो सकता है पर जो ग्रह शुभ कहे जाते हैं, उन बुध, बृहस्पति, शुक्र और चन्द्रमा की राशियों ३, ६, ९, १२, २, ७ और ४ में द्विरागमन होने पर कन्या विधवा हो जाती है। ३, ६, १२, २, ७ लग्न द्विरागमन में शुभ हैं, राशियों को ही लग्न कहा जाता है पर ये राशियाँ द्विरागमन में विष हो जाती हैं। शुक्र की राशि २, ७ में द्विरागमन शुभ होता है पर बिदाई के समय शुक्र सामने या दायें पड़ जाने पर कान्याएँ बंध्या, मृतवत्सा और विधवाएँ हो जाती हैं। जिन मासों में विवाह और वधूप्रवेश होते हैं, जिनमें सोहागरात मनाने का आदेश है तथा जिनमें पुत्रजन्म शुभ कहा गया है उनमें द्विरागमन नहीं हो सकता। यह है ज्योतिष की लीला। जन्म मासों का संक्षिप्त फल जातकाभरण से दिया जा रहा है। ग्रन्थविस्तार के भय से श्लोकों के केवल भाव लिखे जा रहे हैं। इनमें सब मासों के फल शुभ हैं। केवल उस कार्तिक में ही कुछ दोष हैं जो अनेक प्रकार से शुभ समझा जाता है।

मासजन्मफल

चैत्र—विद्याविनयसुखशीलसम्पन्न मधुरान्नभोजी मन्त्री क्रोधी।
वैशाख—शीलसुखधनसम्पन्न देवद्विजभक्त सुन्दर कामुक।
ज्येष्ठ—क्षमामेधासुखसम्पन्न चपल दीर्घसूत्री विदेशवासी।
आषाढ़—सदाचारी पुत्रवान् गुरुप्रिय वक्ता स्वाभिमानी मन्दाग्नि।
श्रावण—पुत्रपौत्रस्त्रीमित्रसुखयुत गुणी उदार ख्यात कफी स्थूल।

भाद्रपद—स्त्रीपुत्र से सुखी दाता उदार क्षीणकाय श्रीमान् वाचाल सुखी।
आश्विन—विद्वान् धनी राजमान्य कवि बहुभृत्यपुत्र दाता गुणवान् सुन्दर सुखी।
कार्तिक—मन्दधी कुंचितकेश व्यापारी धनी वाचाल कामी दुष्ट।
मार्गशीर्ष—परोपकारी कलावान् सुशील तीर्थयात्री विलासी साधु।
पौष—शास्त्रज्ञ परोपकारी पितृधनहीन विधिज्ञ गुप्तमन्त्र वीर धनी।
माघ—मन्त्रज्ञ, साधु, वेदवेत्ता, विजयी, निष्पाप, विद्वान् धनी।
फाल्गुन—दयालु बली कुशल परोपकारी विलासी फल्गुवाक्।

ह फल तो लिख दिया गया किन्तु भारतवर्ष में वर्ष का आरम्भ कई मासों से होता है और मास का ं से होता है। महाराष्ट्र आदि में मासों का शुक्लपक्ष पहले पड़ता है और कृष्णपक्ष बाद में। वहाँ पहले र उत्तर भारत वाले जिसको वैशाख कृष्ण कहते हैं वह महाराष्ट्र का चैत्र कृष्ण है। हम कृष्ण जन्माष्टमी में मानते हैं पर वे लोग उसको श्रावण कृष्ण कहते हैं। जहाँ सौर संवत्सर चलता है वहाँ भी वर्षारंभ में र है। सबके मासों का प्रारम्भ एक दिन नहीं होता। पंजाब, मद्रास और बंगाल में सौर संवत् तथा सौर जाब के सौर संवत् का प्रारम्भ चैत्र से नहीं बल्कि वैशाख से होता है और १३ अप्रैल से होता है जबकि वैशाख मास से और १४ अप्रैल से प्रारम्भ होता है मद्रास के सौर पंचांगों का प्रथम मास चैत्र है किन्तु । कहीं-कहीं ब्रह्म भी कहा जाता है। हमारे राष्ट्रीय पंचांग का वैशाख सायनवृषसंक्रान्ति से आरम्भ होता र को मेषसंक्रान्ति के छः सात दिन बाद पड़ता है। किसी प्रान्त में वर्ष का प्रथम मास चैत्र है तो अन्यत्र आश्विन या आषाढ़ या कार्तिक। अयनांशों की भिन्नता के कारण संक्रान्तियों में भी चार-पाँच दिनों का फलादेश में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि आज के मास संक्रान्ति से सम्बन्धित हैं पर मास और थान भिन्न होते हैं। मार्गशीर्ष और चैत्र शुभ हैं पर उनकी ६, १२ संक्रान्तियाँ खल हैं।

मलमास या पुरुषोत्तम मास

र्य चन्द्र आदि को पुरुष और उषा अमावस्था आदि को नारी मानकर उनका जो विशद वर्णन किया गया त्र स्पष्ट है किन्तु ज्योतिष और पुराणों में अनेक निराकार कालमानों को सचमुच देहधारी मानव मानकर मिथ्या वर्णन किया गया है। मलमास के विषय में बृहन्नारदीय पुराण में विस्तार से लिखा है कि एक बार ी कि मासों के केशव, माधव आदि देव स्वामी हैं परन्तु अधिक मास अनाथ, असहाय, अपूज्य, निन्दित, कर्मों में तिरस्कृत है क्योंकि इसमें सूर्य की संक्रान्ति नहीं लगती। यह सुनकर वह आत्महत्या के लिए ाद में कुछ सोच कर वैकुण्ठ चला गया और वहाँ विष्णु भगवान् के सामने दण्डवत् गिरकर विलाप करते दीनबन्धो! आप द्रोपदी की भाँति मुझ शरणागत की रक्षा करें। हे नाथ! ज्योतिषशास्त्र में प्रत्येक क्षण, और दिन आदि का कोई न कोई देव स्वामी है अतः वे सब सुप्रसन्न और निर्भय हैं पर मैं निराश्रय हूँ ी बहिष्कृत हूँ, अतः मरने जा रहा हूँ। ऐसा कहते-कहते वह मूर्छित हो गया।

तमूचुः सकला लोका असहायं जुगुप्सितम्।
अनर्हो मलमासोऽयं रविसंक्रान्तिवर्जितः॥
अस्पृश्यो मलरूपत्वात् शुभे कर्मणि गर्हितः।
मुमूर्षुरभवत्तस्मात् चिन्ताग्रस्तो हतप्रभः॥
प्राप्तो वैकुण्ठभवनं दण्डवत् पतितो भुवि।

क्षणा लवमुहूर्ताद्या मोदन्ते निर्भयाः सदा॥
न मे नाम न मे स्वामी न च कश्चिन्ममाश्रयः।
मरिष्येहं मरिष्येऽहं सत्कर्मभ्यो निराकृतः॥

विष्णु के आदेश से गरुड़ ने अपने पंख के वायु से मलमास की मूर्छा दूर कर दी तो विष्णु बोले कि बेटा। तुम मेरे साथ मेरे स्वामी और आराध्य देव कृष्ण भगवान् के उस गोलोक में चलो जो वैकुण्ठ तथा शिवलोक के ऊपर है और जहाँ रासेश्वर मुरलीधर कृष्ण रासमण्डल में गोपियों के बीच बैठे हैं। दोनों चले किन्तु विष्णु ने ज्योति के धाम कृष्ण को दूर से देखा तो उनके नेत्र बन्द हो गये। किसी प्रकार मलमास को पीछे कर धीरे-धीरे आगे बढ़े तो गोपियों के बीच में रत्न के सिंहासन पर विराजमान मनोहर कृष्ण को भूमि पर लेटकर प्रणाम करने लगे और बाद में हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। जो प्रातःकाल इस स्तुति का पाठ करता है उसके छोटे-बड़े सब पाप समाप्त हो जाते हैं और दुःस्वप्न शुभ फल देने लगते हैं।

वीजयामासपक्षेण मासं तं मूर्च्छितं खगः।
वत्सागच्छ मया सार्धं गोलोकं योगिदुर्लभम्॥
वैकुण्ठः शिवलोकश्च यस्याधस्तत्र संस्थितः।
गोपिकावृन्दमध्यस्थं रासेशं मुरलीधरम्॥
ददर्श दूरतो विष्णुर्ज्योतिर्धाम मनोहरम्।
तत्तेजपिहिताक्षोऽसौ बद्धांजलिपुरःसरः॥
इति विष्णुकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य पापानि नश्यन्ति दुःस्वप्नः सत्फलप्रदः॥

उसके बाद विष्णु, श्रीकृष्ण के चरणों के पास बैठ गये और उनके पूछने पर बोले कि यह रोता हुआ मनुष्य मल-मास है। संवत्सरों, मासों आदि सारे कालमानों से तिरस्कृत है, शुभ कर्मों में निषिद्ध है और मरना चाहता है अतः कृपया इसकी रक्षा करें। ऐसी प्रार्थना करने के बाद विष्णु हाथ जोड़कर खड़े होकर श्रीकृष्ण का मुखारविन्द निहारने लगे। श्रीकृष्ण ने कहा कि तुमने मलमास को यहाँ लाकर उसकी जो भलाई की है उससे लोक में यश पाओगे। मैं तुम्हारे कारण आज इसे अपना पुरुषोत्तम नाम और सब गुण दे रहा हूँ। अब इसके नाम से संसार पवित्र हो जायेगा और इसके पूजकों के पाप, कष्ट, दरिद्रता आदि की समाप्ति हो जायेगी। अब यह मास मेरा हो गया। जैसे वृक्ष का एक बीज बोने पर करोड़ों गुना हो जाता है वैसे ही इसमें दिये दान कोटिगुना होकर मिलेंगे।

उपविष्टस्ततोविष्णुः श्रीकृष्णचरणाम्बुजे।
उवाचायमनर्होऽस्ति मलिनः शुभकर्मणि॥
पुरस्तस्थौ ततस्तस्य निरीक्षन् वदनाम्बुजम्॥
अस्मै समर्पिताः सर्वे ये गुण मयि संस्थिताः॥
एतन्नाम्ना जगत् सर्वं पवित्रं च भविष्यति।
पूजकानामयं पापदुःखदारिद्र्यखण्डनः।
क्षेत्रनिःक्षिप्तबीजानि वर्धन्ते कोटिशो यथा।
तथा कोटिगुणं पुण्यं कृतं मत्पुरुषोत्तमे॥

यह संभव है कि काम, लोभ आदि से हीन, वायुभक्षी, निराहार तपस्वी मेरे लोक में न पहुँचें पर पुरुषोत्तम के पूजक तो अनायास पहुँचते हैं। बड़े-बड़े याज्ञिक, दानी, धर्मात्मा मुक्त न होकर स्वर्ग से लौट आते हैं पर इसके पूजक नहीं।

राध कभी लगता ही नहीं। मैं अपने भक्त की कामना की पूर्ति में विलम्ब कर सकता हूँ पर उसके
मूढ़ इसमें दान नहीं करते वे भाग्यहीन हैं। उनके लिए शान्ति, खरगोश की सींग के समान है। वे
ते हैं और मरने पर कुम्भीपाक में जाते हैं। जो नारियाँ इसमें स्नान–दान करती हैं उनकी कामना
हीं करतीं उन्हें सम्पत्ति, पुत्र और स्वामी आदि का सुख नहीं देता। बारह सहस्र वर्षों के गंगास्नान
ारे कर्मों के फल एक बार के पुरुषोत्तम स्नान से प्राप्त हो जाते हैं। सच पूछिए तो मैं कई अरब
ा वर्णन नहीं कर पाऊँगा।

> न हि गत्वा निवर्तन्ते पुरुषोत्तमपूजकाः।
> पुरुषोत्तमभक्तानां नापराधः कदाचन॥
> जायन्ते दुर्भगा दुष्टा अस्मिन् दानादिवर्जिताः।
> तद्भक्तकामनादाने न विलम्बे कदाचन॥
> नाचरिष्यन्ति ये धर्मं कुम्भीपाके पतन्ति ते।
> द्वादशाब्दसहस्त्रेषु गंगास्नानेन यत्फलम्॥
> आगमोक्तैश्च यत्पुण्यं सकृत्स्नानेन तत्समम्।
> नाहं वक्तुं समर्थोस्मि कल्पकोटिशतैः फ़लम्॥

अनेक दुख भोगे उसका कारण यह था कि वन में रहते समय उन्होंने अधिमास की पूजा नहीं की।
कटाक्षी, सुन्दरी कन्या थी और विवाह के पूर्व ही माता पिता से हीन हो गयी। उसे पति नहीं मिल
क हे सुन्दरी! अधिमास में एक बार किसी तीर्थ में नहा लेने से सारे पाप भस्म हो जाते हैं और सब
अन्य व्रतों, यज्ञों, दानों, पवित्र मासों, कालों, पर्वों और वेदशास्त्र में कथित साधनों में इतना पुनीत
ोदावरी में बारह सहस्र वर्षों तक लगातार स्नान करने से जो पुण्य मिलता है वह पुरुषोत्तम मास में
लेने से प्राप्त हो जाता है इसलिए तुम पतिप्राप्ति के लिए यही करो। कन्या बोली कि महात्मन्!
दं देव तथा कार्तिक–माघ आदि पुनीत मास जो नहीं दे पाते वह यह लोकनिन्दित मलिन मास कैसे
थन मुझे रुचता नहीं। यह सुन कर कुपित दुर्वासा बोले कि इस कुशंका का दुष्फल तुम अग्रिम जन्म
मारी ने ग्रीष्मऋतु में पंचाग्नि का सेवन करते हुए तथा शीतकाल में पानी में बैठ कर कई सहस्र वर्षों
व की आराधना की। शिव प्रकट हुए तो उसने पाँच बार 'पतिं देहि' कहा। शिव बोले कि तुम्हें पाँच
लगी तो शिव ने बताया कि तुमने दुर्वासा के सामने मलमास की उपेक्षा की थी। उसी का यह फल
सभा में उसके केश खींचे और कटुवचन कहे। ब्रह्मा ने वेदों में कथित सब शुभ साधनों को एक
को दूसरी ओर रखा तो वेदोक्त साधन ऊपर टँग गये।

> पुरुषोत्तममासस्य यस्त्वयानादरः कृतः।
> तस्मात् पञ्च भविष्यन्ति पतयस्तव सुन्दरि॥
> यो वै निन्दति तं मासं यात्यसौ घोररौरवम्।
> वयं सर्वेऽपि गीर्वाणाः पुरुषोत्तमसेविनः॥
> तोलयामास लोकेश एकतः पुरुषोत्तमम्।
> लघून्यन्यानि जातानि गुरुश्च पुरुषोत्तमः॥

पुरुषोत्तम पूजाविधि

एक सुन्दर कलश रखो, उसमें सव समुद्रों, नदियों, पर्वतों, तीर्थों, द्वीपों, देवों मातृकाओं और वेदों को बैठाओ, उसे पीताम्वर से ढको, उस पर सोने की राधा और कृष्ण की मूर्ति रखो, सबकी विधिवत् पूजा करो और जान लो कि जैसे हाथी के पद में सारे पद समा जाते हैं उसी प्रकार राधाकृष्ण की पूजा से सवकी पूजा हो जाती है। पुरुषोत्तम को दीप देने से जो पुण्य प्राप्त होता है, वेदों में कथित सारे यज्ञ, दान, तीर्थ, योग और तप उसका सोलहवाँ भाग भी नहीं दे पाते। जो इस पूजा में दीप–दान, दक्षिणा–दान आदि नहीं करता उसे धिक्कार है।

कलशे तु न्यसेत् हैमं राधया सहितं हरिम्।
पूजयेत् लभते कान्तां पुत्रं पौत्रं यशो धनम्॥
धिक् धिक् तं नास्तिकं पापं शठं धर्मध्वजं नरम्।
पुरुषोत्तममासाद्य यः पूजादानवर्जितः॥

राधाकृष्ण वाले कलश के चारों ओर चार अन्य कलश रखे। उन पर पुरुषोत्तम मास, हलधर, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की सोने की मूर्तियाँ रखो, एक अन्य कलश पर उमा और शंकर की सोने की मूर्तियाँ रखो, सवको वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत करो, तीस ब्राह्मण बुलाओ, चार को दो दो पात्र, सोने की अँगूठी, सोना सहित पूर्णमात्र दो और अन्य ब्राह्मणों को भी अष्टपद (वस्त्र, छाता, जूता, आभूषण आदि) दो। आचार्य को विपुल दक्षिणा दो, प्रसन्नतापूर्वक उन्हें वस्त्र, आभूषण आदि से प्रसन्न करो, सुशीला, पयस्विनी, सवत्सा, घंटाभरणभूषिता ऐसी गायें दो जिनकी सींगें सोने से, खुरें चाँदी से और पीठें तांबे से विभूषित हों। आचार्य को वस्त्राभूषण से विभूषित सोने के सिंहासन पर रखो। भागवत की पोथी दो तो तुम्हारे कोटि कुलों का उद्धार होगा और तुम स्वयं अप्सराओं से विभूषित विमान में बैठ कर उस गोलोक में पहुँचोगे जो वड़े–बड़े योगियों के लिए भी दुर्लभ है। सौ वाजपेयादि याग, सहस्र कन्यादान, तुलादान आदि भी इसकी तुलना में तुच्छ हैं। इसके बाद द्विजों की पूजा कर उन्हें घृतपक्व अन्न, पायस, खोवा, मलाई, षट्रस आदि खिलाओ, अंगूर आम आदि का रस पिलाओ, आग्रहपूर्वक खिलाओ–पिलाओ इलायची, केसर, कस्तूरी युत पान दो, उनके हाथों में लड्डू रखो तथा हाथ जोड़ नतमस्तक होकर कहो कि हे देव! आज मैं अनुगृहीत हूँ, धन्य हूँ और मेरा जन्म सार्थक हो गया है। इसके बाद सारी सामग्री आचार्य एवं अन्य ब्राह्मणों को दे दो। हाँ, एक सर्वगुण सम्पन्न बैल का दान मत भूलना। ऐसा करने से पूजक के कोटि कुलों का उद्धार हो जाता है, कोटि जन्मों के पाप भस्म हो जाते हैं, सहस्रों जन्मों की तपस्या से अधिक फल मिलता है, मरने पर अप्सराओं से भरे विमान में बैठकर योगि–दुर्लभ गोलोक में जाना होता है और वहाँ उतने सहस्र वर्षों तक रहना होता है जितने ब्राह्मणों को खिलाये बड़ों में छेद होते हैं। गंगादि नदियों और सब तीर्थों में नहाने से और सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा से जितना पुण्य मिलता है उतना पुरुषोत्तम मास के माहात्म्य को सुनने से मिलता है।

द्वे द्वे वस्त्रे प्रदातव्ये हस्तमुद्रादिसंयुते।
आचार्याय ततो दद्यात् दक्षिणां विपुलां मुदा॥
धेनुरेका प्रदातव्या सुशीला च पयस्विनी।
सवत्सा च सवस्त्रा च घण्टाभरणभूषिता॥
स्वर्णशृंगी ताम्रपृष्ठी सरौप्यखुरभूषिता।
उमामहेश्वरं दद्यात् वस्त्राभरणभूषितम्॥
पदमष्टविधं दद्यात् ब्राह्मणेभ्यस्तथैव गाः।
श्रीमद्भागवतं दद्यात् स्वर्णसिंहासनस्थितम्॥

स कोटिकुलमुद्धृत्य अप्सरोगणसेवितः।
विमानमधिरुह्यैति गोलोकं योगिदुर्लभम्॥
कन्यादानसहस्त्राणि वाजपेयशतानि च।
तुलादानानि चैतस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
संपूज्य विधिवत् भक्त्या भोजयेत् घृतपायसैः।
द्राक्षाभिः कदलीचूतैः फाणिताद्यैर्मृदु ब्रुवन्॥
धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि जातं मे जन्म सार्थकम्।
आचार्याय ततो दद्यात् उपहारं समूर्तिकम्॥
अनड्वांश्च प्रदातव्यो धौरेयो धुरिसत्तमः॥

के कई सौ श्लोक हैं और उसकी एक मोटी पोथी भी है जो उस मास में सुनाई जाती है। प्रश्न रम पवित्र और देवराज इन्द्र का प्रिय गृह कहते हैं तथा ज्योतिष कहता है कि इसमें पैदा हुआ सना से हीन, सदाचारी, पवित्रचित्त, नीरोग, लोकप्रिय और दूरदर्शी होता है तो हम इसे अशुभ

विषयहीनमतिः सुचरित्रदृक् विविधतीर्थकरश्च निरामयः।
सकलवल्लभ आत्महितंकरः खलु मलिम्लुचमासभवो नरः॥

धिक मास बारह मासों से भिन्न जाति का कोई पृथक् मास नहीं है। आर्यों ने प्राकृतिक चान्द्रमासों ौरवर्ष की नियमित ऋतुओं में आते रहें, इसके लिए अधिमास की कल्पना और व्यवस्था की। कालमान सूर्य और चन्द्रमा दोनों से सम्बन्धित नहीं हैं उनके यहाँ यह मास नहीं है। आजकल जिसमें मेषादि राशियों की संक्रान्ति नहीं होती पर वेदकाल में राशियाँ नहीं थीं अतः वहाँ इसके आजकल अयनांश की भिन्नता के कारण संक्रान्तियाँ भिन्न समयों में लगती है अतः अधिमास प्रश्न अनेक बार आता रहता है कि किस मास को अधिमास कहा जाय। पुरुषोत्तम मास की कथा का कोढ़ है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव को कृष्ण के जूते के पास खड़ा किया गया है, देवों में पैदा की गयी है, दुर्वासा और शिव को मूर्ख सिद्ध किया गया है राधा की नूतन अश्लील कल्पना गेश्वर कृष्ण को गोपियों में बैठा कर हिन्दुत्व की नाक काटी गयी है, कर्मयोगी श्रीकृष्ण के— आदर्श को झुठला कर पूजा का मिथ्या ढोंग खड़ा किया गया है, ब्राह्मणवाद के विशुद्ध आदर्श पर च्छ स्वार्थी बताया गया है, निराकार कालमानों को साकार कह कर जनता को भ्रम में डाला गया था लिख कर हमारे उज्ज्वल इतिहास को भ्रष्ट किया गया है, हमारे शूर और आदर्श राजपूतों को , वेदों, शास्त्रों, तीर्थों और यमादिकों को सारहीन सिद्ध किया गया है, सच को झूठ और झूठ को वार्थ सिद्ध किया गया है और इसमें अन्य अनेक दोष हैं। वस्तुतः पुरुषोत्तम मास में प्रभु की पूजा ।

त से हीन मास अधिमास और अपवित्र समझा जा रहा है परन्तु हमें शान्तचित्त से सोचना है कि ा से विहीन हो सकता है? क्या मलमास में सूर्य दिखाई नहीं देता? क्या पंचांगों में अधिक मास के लिखे रहते हैं? संक्रान्ति किसी मास के प्रारम्भ में, किसी के मध्य में और किसी के अन्त में लगती तिपदा से अर्थात् मासारंभ से एक घंटा पहले लग गयी तो क्या पूरा मास अपिवित्र हो गया? कृष्ण

ने अधिमास को पुरुषोत्तम कह दिया तो वह अपवित्र क्यों? थोड़े से हिन्दुओं के अतिरिक्त विश्व में कोई भी अधिमास की पूजा नहीं करता तो क्या वे सब घोर कष्ट में हैं और नरक में जायेंगे? क्या अधिकमास में आकाश परिवर्तित हो जाता है?

पक्ष मीमांसा (पक्षों के वैदिक नाम)

शुक्ल और कृष्ण पक्ष आकाश के प्राकृतिक दृश्य हैं और प्राकृतिक कालमान हैं अत: वैदिक साहित्य में इनका वर्णन है, महत्त्व है, वे सब शुभतम माने गये हैं, एक को भी अशुभ नहीं कहा गया है और उनके नामों के साथ यह भी लिखा है कि जो इन मांगलिक नामों को जानेगा उसे किसी भी पक्ष में अनिष्ट की आशंका नहीं होगी पर जानेगा तब। यहाँ पक्षों को अर्धमास कहा है और लिखा है—

यो ह वा अर्धमासानां नामधेयानि वेद, पवित्रं पवयिष्यन्.....इति।
नार्धमासेष्वार्तिमार्च्छति। य एवं वेद।

तैत्तिरीयब्राह्मण (३। १०। १०) में वर्ष के १२ शुक्ल पक्षों तथा १२ कृष्ण पक्षों के क्रमशः नाम ये हैं—पवित्र पवयिष्यन् पूत मेध्य, यश यशस्वान् आयु, अमृत, जीव जीविष्यन् स्वर्ग लोक। सहस्वान् सहीयान् ओजस्वान् सहमान। जयत् अभिजयत् सुद्रविण द्रविणोदा, आर्द्रपवित्र हरिकेश मोद और प्रमोद। किन्तु खेद है कि आज का ज्योतिष उस सत्य सिद्धान्त के साथ उन पवित्र नामों को भी भूल गया है और १२ कृष्ण पक्षों को अशुभ कहता है। उत्तरायण शुभ है, उसकी सब ऋतुएँ शुभ हैं, फाल्गुन वैशाख मास शुभ है पर उनके सारे कृष्ण पक्ष अशुभ हैं। शुक्ल और कृष्ण, दोनों पक्षों में प्रकाश और अन्धकार के पल-विपल तक समान होते हैं पर न जाने क्यों एक शुभ है और दूसरा अशुभ। आश्चर्य है, कृष्णपक्ष की प्रतिपदा-द्वितीया में चन्द्रमा पूर्ण रहता है पर वे अशुभ हैं और शुक्ल पक्ष के प्रारंभ की तिथियों में बहुत कम प्रकाश रहता है पर शुक्लपक्षीय होने से वे शुभ हैं। ज्योतिष कहता है कि शुक्लपक्ष में उत्पन्न शिशु कर्मठ, दीर्घायु, सुशील, श्रीमान्, पुत्रवान्, सुन्दर, सुखी, विनीत, शास्त्रज्ञ और मेधावी होता है तथा कृष्णपक्ष में जन्मा बालक उसके ठीक विपरीत प्रतापहीन, निर्बल, चंचल, कलहप्रिय, उद्दण्ड और अतिकामी होता है। दूसरे आचार्य का कथन है कि शुक्ल-पक्षीय शिशु पूर्णचन्द्र सा कान्तिमान्, धनी, उद्योगपरायण, अनेक शास्त्रों का मर्मज्ञ, कर्मकुशल और ज्ञानी होता है पर कृष्णपक्ष में उत्पन्न बालक निष्ठुर, भाग्यहीन, स्त्रीद्वेषी, बुद्धिहीन, पराधीन और दरिद्र होता है।

चंचच्चिरायुर्नितरां सुशीलः श्री पुत्रवान् कोमलकायकान्तिः।
सदा सदानन्दविनीतकालश्चेज्जन्मकालोऽस्ति वलर्क्षपक्षे॥
प्रतापहीनो विबलश्च लोलः कलिप्रियः स्वीयकुलोद्धतश्च।
मनोभवाधिक्ययुतो नितान्तं सितेतरे यस्य नरस्य जन्म॥
पूर्णचन्द्रनिभः श्रीमान् सोद्यमो बहुशास्त्रवित्।
कुशलो ज्ञानसम्पन्नः शुक्लजातो भवेन्नरः॥
निष्ठुरो दुर्भगश्चैव स्त्रीद्वेषी मतिहीनकः।
परप्रेक्ष्यो दरिद्रश्च कृष्णपक्षे प्रजायते॥

क्या यह सिद्धान्त कभी सत्य हो सकता है? शंका है कि जिसका जन्म उत्तरायण और कृष्णपक्ष में है वह विद्वान् होगा या मूर्ख? दक्षिणायन अशुभ होता है पर उसमें छः शुक्लपक्ष भी होते हैं। इन दोनों में उत्पन्न बालक की स्थिति क्या होगी?

१३ दिनों का पक्ष और क्षयाह

अमावस्या को सूर्य और चन्द्रमा एक सीध में रहते हैं। उसके बाद चन्द्रमा आगे बढ़ने लगता है। सूर्य एक दिन में

लगभग १३ अंश। जितने समय में दोनों में १२ अंश का अन्तर पड़ता है वही एक तिथि का
न्तर पड़ने पर अर्थात् दोनों के पुनः एकत्रित हो जाने पर ३० तिथियाँ पूरी हो जाती हैं। यही एक
गभग २९ दिन १३ घण्टा है। हर बार १२ अंश का अन्तर पड़ने में समान काल नहीं लगता
हुआ करती हैं। प्राचीन नियम है—'बाणवृद्धी रसक्षयः' अर्थात् सबसे बड़ी तिथि ६५ घटी की
होती है। नवीन सूक्ष्मगणित के अनुसार सप्तवृद्धिर्दशक्षयः का नियम बना है, अर्थात् महत्तम
म ५० घटी की होती है। सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय में भास्कराचार्य ने लिखा है कि एक
न होते हैं। इसको ३० में से घटा दें तो २८ घटी १० पल शेष बचता है। ३० दिनों में यही क्षयाह
में एक क्षयाह होता है। स्पष्टमान से देखें तो प्रत्येक मास में एक तिथि का क्षय अवश्य मिलेगा।

रे सूर्योदय तक लगभग ६० घटी का अन्तर पड़ता है। तिथि छोटी होने पर ५४ घटी की भी होती
र सम्भव है कि वह तिथि दो सूर्योदयों के बीच में पड़ जाय और किसी भी सूर्योदय का स्पर्श न
ोती है अतः यह भी संभव है कि वह दो सूर्योदयों का स्पर्श कर ले और थोड़ा दायें–बायें बढ़
घटना है, इसमें भय या अशुभ का कोई कारण नहीं है पर ज्योतिषशास्त्र कहता है—

> **स्युस्तिस्त्रः तिथयोवारे एकस्मिन् अवमातिथिः।**
> **तिथिर्वारत्रयं चैका त्रिद्युस्पृक् द्वेऽतिनिन्दिते॥**
> **कृतं यन्मंगलं तत्र त्रिद्युस्पृगवमे दिने।**
> **भस्मी भवति तत् क्षिप्रं अग्नि सम्यक् यथेन्धनम्॥ (मु० चि० १। ३५)**

न तिथियों का स्पर्श करे अथवा एक तिथि तीन वारों का स्पर्श कर दे तो दोनों निन्दित हैं। उनमें
ने ईंधन की भाँति भस्म हो जाता है, यह वसिष्ठ का कथन है। ५४ घटी की तिथि दो वारों में रहने
में रहने पर नाश कर देती है। आचार्य वराहमिहिर का कथन है कि शुक्ल पक्ष में तिथि की वृद्धि
प्रजा की वृद्धि होती है, हानि होने पर तीनों की हानि होती है और समानता में समानता रहती
फल होता है।

> **शुक्लेपक्षे संप्रवृद्धिं प्रयाते ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च।**
> **हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन॥**

कतनी गम्भीरता, सूक्ष्मता और सचाई है, इसकी परीक्षा के लिए यह एक श्लोक पर्याप्त है। ५०
ती पर ५९ घटी ५० पल की अशुभ है। १३ दिन ५० घटी का पक्ष क्षय नहीं है पर १३ दिन ५९
देता है। यह कथन हमारे सर्वश्रेष्ठ ज्योतिषी वराहमिहिर का है। यदि पाश्चात्यों में यही धारणा
न के जनवरी, मार्च आदि मासों के आने पर हाहाकार मच जाता क्योंकि इनमें मास ३० दिन से

भी पक्ष १३ दिन ५० घटी से छोटा नहीं होता अर्थात् १३ दिन का पक्ष वस्तुतः कभी होता ही नहीं
१३ दिन के पक्ष में भी है। कोई तिथि दो सूर्योदयों का स्पर्श नहीं करती तो उसे क्षयतिथि कह
न हो जाती है न अशुभ होती है। उसे अशुभ कहना अनुचित है। आश्चर्य है, इस पद्धति में १३
नहीं होता पर उससे बड़ा १३ दिन २३ घंटा ५० मिनट वाला अशुभ हो जाता है। उसके विषय

में मुहूर्तचिन्तामणि (१।४८) के भाष्य में ज्योतिर्निबन्ध, व्यवहारचण्डेश्वर और गर्गादि मुनियों का कथन है कि १३ दिन का पक्ष आने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है, निश्चित रूप से संसार का नाश हो जाता है, रौरव कालयोग हो जाता है और उसमें विवाह आदि करने पर मृत्यु निश्चित है। विवाह करने पर पति-पत्नी की, उपनयन करने पर ब्रह्मचारी की, मुण्डन करने पर बालक की और गृह बनाने पर निर्माता की मृत्यु निश्चित है। जीवित रहना चाहते हो तो इस पक्ष में यात्रा आदि कुछ भी न करो।

पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेतां तदा भवेद्रौरवकालयोगः।
पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टं इत्याहुराचार्यवराः समस्ताः॥
त्रयोदशदिने पक्षे नूनं संहरते जगत्॥
त्रयोदशदिने पक्षे विवाहादि न कारयेत्।
गर्गादिमुनयः प्राहुः कृते मृत्युर्भवेद् ध्रुवम्॥
उपनयनं परिणयनं वेश्मारंभादिकर्माणि।
यात्रां द्विक्षयपक्षे कुर्यान्न जिजीविषुः पुरुषः॥

दो उदाहरण—काशी के ऋषीकेश पंचांग में सवंत् २०२८ का आषाढ़ कृष्णपक्ष १३ दिन का है परन्तु उसकी प्रतिपत् से अमावास्या तक का काल १३ दिन ५४ घटी ३८ पल है अर्थात् १४ दिनों में केवल दो घंटे ६ मिनट की कमी है। इसका विवरण है—बुधवार को ज्जेष्ठपूर्णिमा ०।२०। उसके बाद प्रतिपत् ५६।२७। द्वितीया गुरुवार से आषाढ़ कृष्ण-पक्ष का आरम्भ। मंगलवार को आषाढ़ की अमावास्या ५४।५४। बीच में चतुर्दशी क्षयतिथि है। उसका मान है ५६।११ अर्थात् प्रतिपत् और चतुर्दशी दोनों क्षयतिथियाँ ४६।२७ तथा ५६।१६ हैं। प्रश्न है, क्या इस संवत् में संसार नष्ट हो गया है।

हृषीकेश पंचांग में संवत् २०३३ का श्रावण शुक्लपक्ष १३ दिन का है। पूरे पक्ष का मान १३ दिन ५३ घटी ४६ पल है अर्थात् १४ दिन से केवल ढाई घंटे की कमी है। इसका विवरण है—मंगलवार श्रावण अमा ३।४१। बुधवार को श्रावण शुक्ल १। सोमवार श्रावण शुक्ल १५ का मान ५४।४०। इस पक्ष की क्षय तिथियों द्वितीया और चतुर्थी का मान ५६।४३ और ५६।५० है। इसी पंचांग के संवत् २०३२ का ज्येष्ठ शुक्लपक्ष ऊपर लिखे दोनों १३ दिन के पक्षों से छोटा अर्थात् १३ दिन ५४ घटी १ पल है पर उसमें विवाह के मुहूर्त लिखे हैं।

मैं इस पंचांग पद्धति को बुरी नहीं कहता, १३ दिन के पक्ष को भीषण मानने की परम्परा को अनुचित कहता हूँ। क्या उन संवत्सरों में संसार नष्ट हो गया? क्या उन मासों और वर्षों में विवाह, मुण्डन और यात्रा आदि करने वाले अहिन्दुओं पर आपत्तियों के बादल घहरा पड़े? क्या इस मान्यता में कुछ भी तथ्य है? सच यह है कि १३ दिन का पक्ष और तिथिक्षय सूर्योदय, सूर्यास्त और जाड़ा गरमी की भाँति एक प्राकृतिक घटना है, वह अशुभ नहीं है।

महाभारत में १३ दिन का पक्ष

महाभारत के अनुसार एक कार्तिकी पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण तथा उससे आगे वाली अमावास्या में सूर्यग्रहण लगा था और वह पक्ष १३ दिन का था किन्तु शंकरबालकृष्ण दीक्षित का कथन है कि 'यह बात असंभव है। पाण्डव काल में चन्द्र सूर्य की गतियों का गणित स्थूल था। युद्ध के पूर्व वाले मास में सूर्यग्रहण लगा था। उसके एक मास बाद झट दूसरा ग्रहण लगना अशक्य है अतः वह अतिशयोक्ति है। तेरहवें दिन अमावास्या आयी और उसमें सूर्यग्रहण लगा, यह भी अतिशयोक्ति है।'

तिथियों का शुभाशुभत्व

ां यद्यपि तिथि शब्द नहीं है फिर भी वेद उसके अर्थ से अपरिचित नहीं हैं। अथर्वसंहिता और
ास्या और पूर्णिमा शब्द आये हैं तथा वैदिक साहित्य में कृष्णपक्ष की अष्टमी को अष्टका कहा
०।५) में स्पष्ट उल्लेख है कि चन्द्रमा १५ दिन में पूर्ण और पुनः १५ दिन में अदृश्य होता है
३० तिथियों को बोध था। ऋग्वेद (५।४।५) में अतिथि शब्द आया है। उसके विषय में निरुक्त
शिष्ट तिथियों में दूसरे के घर जाने वाला अतिथि होता है। जिसके आगमन की कोई निश्चित
हते हैं। उत्तरकालीन वैदिक ग्रन्थों में अमावास्या और पूर्णिमा के दो दो भेद हैं। वहाँ चतुर्दशी से
से युत अमा कुहू, चर्तुदशी से युत पूर्णिमा अनुमति और प्रतिपदा से युत पूर्णिमा राका कही गयी

सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः।
कलाहीने सानुमतिः राका पूर्णे निशाकरे॥

ों अथवा एक दूसरे से सटे हुए वारों, नक्षत्रों योगों, लग्नों आदि में बहुत अन्तर नहीं होता और
हो जाता। अमावास्या की अन्धेरी रात के एक घटी बाद झट पूर्णिमा का प्रकाश नहीं आ जाता।
ठ की लू नहीं चलने लगती पर ज्योतिष के फलादेश में सर्वत्र यह अन्धेर प्रतिष्ठित है। जन्म में
भ हैं। उनमें उत्पन्न बालक विद्वान्, सुशील, वीर, सुन्दर, धनी और राजमान्य होते हैं पर उन दोनों
तुर्थी में पैदा बालक जुआरी, मद्यप, कुरूप, मूर्ख, झगड़ालू और दरिद्र होता है। रवि और भौम
ी, मृगशीर्ष और पुनर्वसु के बीच में स्थित आर्द्रा की तथा शोभन और सुकर्मा के बीच में स्थित
है। एक क्षण में आकाश अमृतवर्षी से विषवर्षी हो जाता है। संवत्, अयन, मास, पक्ष, लग्न और
भी ऐसा ही होता है। आकाश में क्रमशः परिवर्तन होता है पर ज्योतिष के फल में आकस्मिक

नन्दादि तिथियाँ

नन्दा	भद्रा	जया	रिक्त	पूर्णा
१	२	३	४	५
६	७	८	९	१०
११	१२	१३	१४	१५

थियों के द्वितीया, तृतीया आदि नामों से
ाज चन्द्रमा में कितना प्रकाश है पर ये
यद्यपि पंचमी, दशमी, अमावास्या और
ाएँ भिन्न-भिन्न रहती हैं फिर भी इस
तीनों के फल समान हैं। मुहूर्तगणपति
न पाँचों के कर्म भिन्न-भिन्न हैं। सबमें
यम यह है—

, चित्र, उत्सव, शिल्प, गृहकर्म, अलंकार, कृषि....।
हकर्म, उपनयन, देवस्थान, भूषण, राज्यारोहण....।
, सीमन्त, विद्यारंभ, संगीत, शिल्प...।
विषदान, बन्धन, अग्निदाह, जुआ, मद्यपान, आखेट....।
कर्म।

ज्योतिष में तिथियों के शुभाशुभत्व के परस्पर विरोधी कई नियम हैं। एक के अनुसार अमावास्या के आगे पीछे की दस तिथियाँ अशुभ हैं, पूर्णिमा के आगे-पीछे की दस शुभ हैं और बीच वाली दस मध्यम हैं। यह नियम चन्द्रमा की कलाओं से सम्बन्धित है पर नन्दादि पाँच नाम इसे काट देते हैं। शुक्लपक्ष की प्रतिपत् कला की दृष्टि से अशुभ है क्योंकि उसमें चन्द्रमा अतिक्षीण है पर नन्दा होने से आनन्ददा है। पूर्णिमा के पास की चतुर्दशी कला की दृष्टि से शुभ है पर रिक्ता होने से अशुभ है। चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी क्रमशः गणेश, दुर्गा और शिव की तिथियाँ हैं पर रिक्ता होने से तीनों अशुभ हैं। आश्चर्य है, गृहारंभ के समय जिन पाँच शिलाओं की स्थापना की जाती है उनके भी ये ही नन्दादि पाँच नाम हैं और वहाँ रिक्ता शुभ मानी गयी है। वहाँ स्थापना के समय ये मंत्र और स्तोत्र पढ़े जाते हैं कि हे रिक्ता माता! तुम सिद्धि और बुद्धि देने वाली हो, रिक्तता को दूर करती हो, शुभा हो अतः मेरे घर में सर्वदा वास करो।

स्थापयेत् प्रार्थयेत्तद्वत् रिक्तां रिक्तार्तिहारिणीम्।
रिक्तेत्वरिक्तदोषघ्नि सिद्धिबुद्धिप्रदेशुभे॥ सर्वदोषघ्नि तिष्ठास्मिन् मन्दिरे मम सर्वदा॥

परन्तु ज्योतिष में रिक्ताएँ अति अशुभ हैं जबकि भगवान् राघवेन्द्र का जन्म रिक्ता तिथि नवमी में हुआ था। किन्तु एक दूसरा आश्चर्य यह है कि शनिवार को रिक्ता तिथि आने पर परम शुभ सिद्धियोग हो जाता है, जबकि शनि और रिक्ता दोनों अशुभ हैं।

अमावास्या, रात्रि और अन्धकार

ज्योतिष ने चन्द्रमा की क्षीणता और अन्धकार के कारण अमावास्या को और उसके पास की तीन तिथियों को अर्थात् कृष्णत्रयोदशी से शुक्लप्रतिपदा तक के काल को सर्वथा निषिद्ध कहा है। उसमें किसी कर्म का मुहूर्त पूछा ही नहीं जा सकता। इसी प्रकार रात्रि में उत्पन्न बालकों को मन्ददृष्टि, कामी, क्षयरोगी और पापी आदि कहा है पर सत्य यह है कि परमात्मा ने अन्धकार की रचना हमारे कल्याण के लिए की है और उसमें प्रकाश से कम गुण नहीं हैं। वेद का एक प्रसिद्ध मन्त्र है—

मधु वाता ऋतायते मधु नक्तमुतोषसो....।

इसका अर्थ यह है कि उषाकाल में और रात्रि के अन्धकार में एक प्रकार का मधु (अमृत) स्थित है। ऋग्वेद के रात्रिसूक्त में प्रार्थना है कि हे रात्रिमाता! तुम हमारी रक्षिका, श्रियों की धारिका और व्यापिका हो। थकावट और आलस्य को दूर करती हो। तुम्हारे आने पर हम घोंसले में बैठे पक्षो की भाँति गृह में सुख से सोते हैं, तुम सब पशुओं, पक्षियों और मानवों को अपनी गोद में सुलाती हो, आकाश की कन्या हो और हमारे लिए दूध देने वाली गाय हो।

अक्षभिः पुरुत्रा विश्वा अधिश्रियोऽधित वृक्षे न वसतिं वयः।
उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः॥ (१०।१२।८)

ऋग्वेद और अथर्ववेद (७।४६) में अमावास्या को देवों की भगिनी, सौभाग्यवती, अमृतपत्नी, कृष्णासुन्दरी, सुन्दर जाघों, भुजाओं, अँगुलियों, केशों वाली, सुपुत्रदा, इन्द्रप्रिया, विष्णुपत्नी और देवप्रिया कहा है। उससे यह प्रार्थना की गयी है कि हे देवि! तुझमें सूर्य चन्द्रमा एक साथ बसते हैं अतः देव भी आ जाते हैं। देवों ने तुम्हारी महिमा जान कर तुम्हें हवियाँ दी हैं। हे माता! हमारा यज्ञ सम्पन्न करो तथा हमें सुवीर पुत्र और धन दो। देव तुम्हारी सहायता से ही सृष्टि करते हैं। अमा कहती है कि इन्द्रादि सब श्रेष्ठ देव, सिद्ध और साध्य मुझसे मिलने आते हैं और मुझमें बसते हैं।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥ १॥
या सुबाहुः स्वंगुरिः सुषूमा बहुसूवरी।
तस्यै विश्पल्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोत न ॥ २॥
पत्नि ॥ ३॥ कुहूर्देवानाममृतस्यपत्नी॥ ७। ४७। २
ा अकृण्वन्नामधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा।
यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम्॥ (७। ७६। १)
स्यमावास्या मा वसन्ति सुकृतो मयो मे
ा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे। (७। ७६। २)
स्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वारूपाणि परिभूर्जजान।
स्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ (अथर्व ७। ७६। ४)

कहते हैं। इसमें सूर्य और चन्द्रमा एकत्रित होकर एक दूसरे को बड़े प्रेम से देखते हैं। उस पूर्णिमा की भाँति प्रकाशित रहता है। उससे चन्द्रमा के ऊर्ध्व भाग में रहने वाले पितरों को

ाश्रित्य ताममावास्यां पश्यतः सुसमागतौ॥
न्योन्यं सूर्यचन्द्रौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते। (वायुपुराण)
वधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः॥ (सिद्धान्तशिरोमणि)

तर हैं, पितर देव हैं और देवयान पथ से आते हैं। गीता का कथन है कि जिस रात्रि में ी (योगी) जागते हैं। उपासना के लिए रात्रि का ब्राह्म मुहूर्त सबसे श्रेष्ठ बताया गया है। संगीत महान् साधन है पर संगीत के कल्याण, देश, विहाग, दुर्गा, वागीश्वरी, मालकोस ी हैं। हमारे वैद्यक, ज्योतिष और कामशास्त्र के अनुसार संभोगादि कई कर्म रात्रि में ही शुभ अशुभ नहीं है। मत्स्यपुराण (अध्याय १४) में लिखा है कि अमावसु पितर को देखकर हुई वह पितरों को प्रिय है, उसमें किया श्राद्ध अक्षय होता है और उसका नाम अमावास्या

च्छोदामावसुं दृष्ट्वा पितरं कामपीडिता।
तिथौ अमावसुर्यस्त्वयामिच्छां चक्रे न तां प्रति।
र्येण तस्य सा लोकैरमावास्येति कीर्तिता॥

कि इस तिथि में अनेक देवों का बास है अतः इसमें हर कर्म शुभ है किन्तु ज्योतिष में ारों से सम्पर्क होने पर सात फल होते हैं और वे प्रायः अशुभ हैं। उनका विवरण आगे वार

अष्टका और पूर्णिमा

ास्या ही नहीं, प्रकाशवती अष्टमी और पूर्णिमा भी अशुभ हैं। मुहूर्तचिन्तामणि ने यात्रा में कृष्ण पक्ष की अष्टमी अष्टका है। उसकी प्रशंसा में अथर्ववेद (३। १०) का कथन है कि पत्नी है और जिसे आती देखकर देव प्रसन्न होते हैं वह अष्टका हमारे लिए सुमंगली हो।

हे देवि! तुम संवत्सर की प्रतिमा हो, इन्द्र, सोम और प्रजापति की कन्या हो अतः हमारी हवि लो और हमारी कामनाएँ पूर्ण करो, हमें आयुष्मती प्रजा और धन आदि दो। यह अष्टका प्रथमा है, इसमें अनेक महिमाएँ हैं, यह सबमें चरती है, नववधू है और अनर्थों को जीतने वाली जननी है।

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम्।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमंगली॥ २॥
संवत्सरस्य प्रतिमा यां त्वां रात्र्युपास्महे।
सा न आयुष्यतीं प्रजां रायस्पोषेण संसृज॥ ३॥
इयमेव सा या प्रथमा इतरासु चरति प्रविष्टा।
महान्तो अस्या महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री॥ ४॥
वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणाम्।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ ५॥
इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः।
कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः॥ १३॥

कुछ लोगों को विश्वास है और कुछ पोथियों में लिखा है कि रात्रि के अन्धकार में भूत दौड़ते हैं। कदाचित् इसी कारण ज्योतिष ने अमावास्या के पास की तिथियों को निन्दित कहा है पर पता नहीं क्यों, वे पूर्णिमा के प्रकाश से भी डरते हैं। मुहूर्तचिन्तामणि ने उसका यात्रा में निषेध किया है किन्तु अथर्ववेद (७।८०) का कथन है—

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषाःमदेम॥ १॥
वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे॥ २॥
पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु।
ये त्वां यज्ञे यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः॥ ४॥

पूर्णिमा आगे और पीछे, दोनों ओर रहती है। वह आकाश के मध्य में चमकती है। हम उसमें देवों की महिमा के साथ वास करें, अन्न से पुष्ट हों और स्वर्ग में प्रसन्न रहें। हम सब कुछ देने वाले बलवान्। वृषभ पौर्णमास या यज्ञ कर रहे हैं। यज्ञियों में पूर्णमासी प्रथमा है। दिन और रात्रि के अन्त में दी हुई हवियाँ कामनाओं को पूर्ण करती हैं। हे यज्ञिया पूर्णिमे। तुम्हारा यजन करने वाले पुण्यात्मा स्वर्ग में प्रविष्ट होते हैं।

राकामहं सुहवा सुष्टुती हूवे शृणोतु नः सुभगा बोधतुत्मना। ७। ४८। १
यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रापोष सुभगे रराणा॥ ७। ४८। २

सुभगाा राका को हम सुन्दर मंत्रों से वुला रहे हैं। वह हमें बोध दे। हे राके! तुम्हारी जो कल्याणदात्री सुमतियाँ हैं, जिनसे तुम अपने स्रोताओं को अनेक वसु देती हो, सुमना होकर उनके साथ हमारे पास आओ और हमें सहस्रों पोषक अभीष्ट दो।

किन्तु ज्योतिष में पूर्णिमा भी अशुभ है। पूर्णिमा अशुभ हो गयी तो अन्य शुभ कैसे होंगी? वस्तुतः ज्योतिष में एक तिथि भी ऐसी नहीं है जो सब कर्मों में ग्राह्य हो। यात्रा में १, ४, ६, ८, ६, १२, १४, ३० तिथियाँ तो सीधे-सीधे त्याज्य हैं।

रा टीका में वसिष्ठ ने अष्टमी को कष्ट, शोक, भय, रोगदात्री, पूर्णिमा को सर्वनाशकारिणी
णी कहा है। कुछ तिथियाँ कुछ कर्मों में शुभ मानी गयी हैं पर वे भी कुछ नक्षत्रों और वारों

दातुन करने की तिथि और मृत तिथियाँ

में लिखा है कि १, ३०, ६, ९, ११ तिथियों में और रविवार को दातुन करने से सात पीढ़ियाँ
ं और लक्ष्मी, कुल जाति तथा स्वजनों का नाश हो जाता है। जिसने रविवार को दातुन की,
है और अपने कुल का नाश किया है।

तिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्येकादशी रवौ। दन्तानां काष्ठसंयोगो
हत्यासप्तमं कुलम् ॥ ४० ॥ लक्ष्मीकुलज्ञातिजनोपघातम्॥
रवेर्दिने यः कुरुते प्राणी दन्तस्य धावनम्।
सविता भक्षितस्तेन स्वकुलं तेन घातितम्॥ ४१ ॥

, स्वाती, उत्तरा और हस्त नक्षत्र परम शुभ हैं। इन्हें मृदु, मैत्र आदि कहा गया है पर इनका
ुयोग बन जाता है। घर बैठे रहने पर इनसे कोई कष्ट नहीं होता पर कोई काम किया तो
त्यु निश्चित है।

एषु कार्य कृतं चेत् स्यात् षणमासान्मरणं ध्रुवम्

	अनुराधा २	उत्तरा ३	रोहिणी ६, ११	हस्त ७	चित्रा स्वाती १३	मृत्युयोग

तिथिस्वामी

सविता, द्युमणि आदि और चन्द्रमा को द्विजराज, सुधांशु, सोम आदि कहा है और सारी
: न्यायतः कोई तिथि अशुभ नहीं होनी चाहिए और वेद में कोई तिथि अशुभ नहीं है। कोई
है। यह बाद की कल्पना है। वराहमिहिर और रामाचार्य के तिथिस्वामियों में मतभेद भी है।
र्म जिस नक्षत्र में करने का विधान है, उसका जो मुहूर्त है, करण है और उसकी जो तिथि
नी सिद्धियाँ मिलती हैं।

त्कार्य नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु यत्कार्यम्।
करणमुहूर्तेष्वपि तत् सिद्धिकरं देवतानां च॥

कसी कर्म का मुहूर्त है तो वह ब्रह्ममुहूर्त और द्वितीया तिथि में किया जाय क्योंकि इन सब
में कई कठिनाइयाँ हैं। ३, ४, ६, ९ तिथियों के स्वामी पार्वती, गणेश कार्तिकेय और दुर्गा
या मुहूर्त के स्वामी नहीं हैं और वैदिक मुहूर्त नक्षत्रों के नाम पर नहीं हैं अतः उनका कोई
कारण यह है कि वैदिक मुहूर्तों का नक्षत्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे ज्योतिष के वर्तमान
की तिथिस्वामी वाली पद्धति नहीं है। वह वेद में होती तो इन्द्र, वरुण और भग आदि देव
तिषशास्त्र अपने को वेदनेत्र कहता है पर अश्विनी, अदिति, त्वष्टा, वायु, निर्ऋति, वसु आदि

कोई भी वैदिक देव उसमें तिथिस्वामी नहीं हैं। आजकल करणों के स्वामियों का प्रचलन नहीं है अत: वराहमिहिर का आदेश नगण्य है। खेद है कि आज के ज्योतिष में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, गणेश और सूर्य की तिथियाँ भी निन्दित हैं। इस समय तिथिस्वामी ये हैं—

अग्नि	धाता	उमा	गणेश	नाग	गुह	रवि	शिव	दुर्गा	यम	विश्वे	हरि	काम	शिव	शशी
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५

इन स्वामियों के विषय में कुछ लोगों का कथन है कि अग्नि, सर्प, रवि, रुद्र, यम और काम की तिथियाँ अशुभ हो सकती हैं क्योंकि ये देव भीषण हैं परन्तु यह धारणा सत्य के विपरीत है। अग्नि वेद का प्रथम शब्द है, प्रथम देव है, सारी आहुतियाँ अग्नि में डाली जाती हैं। और शव भी अग्नि में ही जलाये जाते हैं अत: वह शुभ है। जो सरकता है वह सर्प है। वेद में वेद ही सर्प हैं। इसीलिए पंचमी को पूर्णा और उसके स्वामी को सर्प कहा है। इसका विशेष विवरण आश्लेषा नक्षत्र के वर्णन में पढ़ें। यम की तिथि दशमी भी पूर्णा है, यम-नियम शब्द पवित्र हैं और वह ईश्वर का नाम है। इसका विवेचन भरणी प्रकरण में पढ़ें। ज्योतिष में रवि पाप ग्रह है पर वेद में वह विष्णु है और प्रत्यक्ष रूप में भी शुभतम है। रुद्र का ही नाम शिव, शंकर और महादेव आदि है अत: वे भी भीषण नहीं है। अमावास्या को वेद में कामदुघा कहा गया है और योगेश्वर कृष्ण ने गीता में अपने को धर्मानुकूल काम कहा है अत: काम की तिथि १३ भी शुभ है। शंका करने वालों को पहले यह सोचना चाहिए कि गणेश, कार्तिकेय, शिव, दुर्गा और विष्णु आदि शुभ देवों की ४, ६, ८, ९, १२, १४ तिथियाँ अनेक कर्मों में निषिद्ध क्यों हैं? वसिष्ठ ने कहा है कि ये पक्ष के छेद हैं। इनमें विवाह करने पर नारी विधवा हो जायेगी, उपनयन करने पर बटु पतित हो जायेगा, अन्नप्राशन करने पर बालक मर जायेगा, गृहारम्भ करने पर घर में आग लग जायेगी, मूर्तिस्थापना करने पर देश नष्ट हो जायगा तथा बाल बनाने, मैथुन करने, तेल लगाने और अन्य कर्म करने पर भी संकटों की वर्षा होने लगेगी।

चतुर्दशी चतुर्थी च द्वादशी नवमी तथा।
तिथिः षष्ठी चाष्टमी च पक्षच्छिद्राह्वयाः स्मृताः॥
विवाहे विधवा नारी व्रात्यः स्याच्चोपनायने।
सीमन्ते गर्भनाशोऽन्नप्राशने मरणं ध्रुवम्।
राष्ट्रनाशः प्रतिष्ठायां गृहारंभेऽग्निभीर्ध्रुवम्।
किमत्र बहुनोक्तेन कृतं सर्वं विनश्यति॥ (मु० चि० १। ३६ टीका)

किन्तु सत्य यह है कि इस नूतन तिथिस्वामी की पद्धति में भी कोई तिथि अशुभ नहीं है क्योंकि सब देव शुभ हैं।

मन्वादि और युगादि तिथियाँ

हम मनु की सन्तान होने से मानव कहे जाते हैं। मनु १४ हैं और उनकी १४ जन्म-तिथियाँ हैं। हमें उन्हें शुभ मानना चाहिए और उनमें मनुजयन्ती मनानी चाहिए पर आज वे सब निषिद्ध हैं। चार युगादि तिथियों की भी यही स्थिति है।

चैत्र	कार्तिक	आषाढ़	ज्येष्ठ	फाल्गुन	आश्विन	माघ	पौष	भाद्रपद	श्रावण	मास
शुक्ल	शु.	शु.	शु.	शु.	शु.	शु.	शु.	शु.	कृष्ण	पक्ष
३	१३	१०	१५	१५	९	७	११	३	८	तिथि
१५	१५	१५							३०	

	कार्तिक शु० ६	श्रवण नक्षत्र वृद्धियोग
	वैशाख शु० ३	रोहिणी शोभन
	माघ कृ० ३०	धनिष्ठा वरीयान्
	भाद्र कृ० १३	कृत्तिका व्यतीपात

तिथिगण्डान्त

छ नक्षत्रों, राशियों, लग्नों और तिथियों की सन्धियों में भीषण गण्डान्त बैठा दिये हैं। पूर्णा और
ी उन (५–६, १०–११, १५–१) की सन्धियों में गण्डान्त राक्षस बैठा है। वह इन समयों में पैदा
वाह, यात्रा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, व्रत आदि शुभ कर्म करने वाले युवकों को खा जाता है। ज्योतिष
न्न शिशुओं को फेंक दो अथवा बहुत मोह हो तो विधिवत् शान्तियज्ञ करो। उसमें ब्राह्मण को
अन्न, वस्त्र, सोना, भूमि, पात्र, छाता, पलंग आदि दो तो गण्डान्त भस्म हो जायगा। न देने पर

> पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिर्नाडीद्वयं तथा।
> गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु॥
> सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते।
> तिथिगण्डे त्वनुड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते॥
> कांचनं लग्नगण्डे च गण्डदोषो विनश्यति॥

ाथि का नाम पूर्णा और षष्ठी का नाम नन्दा है, दोनों तिथियाँ शुभ कही गयी हैं। दोनों एक दूसरी
नके बीच में कोई सीमा रेखा नहीं है, सन्धि नहीं है, कोई बाँध नहीं है और यही स्थिति १०-११
वीच में भीषण गण्डान्त कहाँ से आ गया? क्या इसे किसी ने देखा है? क्या ऋतुओं, मासों और
त रहता है? ईसाई, मुसलमान गण्डान्तयज्ञ नहीं करते और आजकल हिन्दू भी तिथिगण्डान्त की
में पैदा हुए बालक और उसमें यात्रा, विवाह, व्रत आदि करने वाले मानव मर जाते हैं?

क्षीणचन्द्र

में एक बार कुछ ही क्षणों तक पूर्ण रहता है पर कुछ ने क्षीण चन्द्रमा को और कुछ ने कृष्णपक्ष
कहा है। राम का जन्म शुक्ला नवमी को और कृष्ण का जन्म कृष्ण अष्टमी को हुआ था। उस
हैं। कश्यप का कथन है कि चन्द्रमा लग्न में हो अर्थात् चन्द्रोदय, के समय किसी बालक का
या पूर्ण, अति अशुभ है। इस प्रकार राम, कृष्ण, चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस और आदि
पुरुष अनेक दोषों से दूषित सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि उनकी जन्मपत्रियों में चन्द्रमा लग्नस्थ है।

> चन्द्रः क्षीणोथवा पूर्णो लग्ने सर्वत्र गर्हितः।

तिथिव्रत

किसी व्रत से विशेष सम्बन्ध नहीं है। व्रत शब्द बहुत प्राचीन है और वेदों तथा बाद के ग्रन्थों में

इसके अनेक अर्थ हैं। प्राचीन काल में उपासना, तप, अनुष्ठान, यज्ञ, संरक्षण, आचार, कर्तव्य, आज्ञापालन, संकल्प और विधान आदि को व्रत कहते थे। महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगशास्त्र में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह आदि को व्रत कहा है। उनके मत से प्रत्येक देश, काल और स्थिति में पालन करने पर ये व्रत महाव्रत हो जाते हैं किन्तु आज व्रतों का पद उपवास ने ले लिया है। उपवास का भी वास्तविक अर्थ है साधु या देव के उप (समीप) में वास किन्तु अब अन्न–जल का त्याग अथवा बहुत फलाहार ही उपवास और व्रत बन बैठा है। भारत में वारों के आगमन के बाद अनेक व्रत वारों से जुड़ गये हैं पर प्रधानता तिथियों की ही है। आज प्रत्येक तिथि का दो–चार व्रतों से सम्बन्ध है। इस समय व्रतों में प्राय: उत्सव मनाये जाते हैं। दुर्गानवरात्र, रामनवमी, कृष्णाष्टमी तथा महावीर, नानक, हनुमान, अम्बेडकर आदि की जयन्ती में उन देवों और महामानवों के गुणों को अपने में उतारने का प्रयत्न नहीं किया जाता। प्रह्लाद को जलाने का प्रयास करने वाली होलिकाराक्षसी लाखों वर्ष पहले जल गयी किन्तु इस समय देश में लाखों होलिकाएँ पैदा हो गयी हैं। हम प्रति फाल्गुनी पूर्णिमा को दूसरों का ईंधन बलपूर्वक जला देते हैं, बिजली के तारों को नष्ट कर देते हैं, दूसरों के वस्त्र रंग देते हैं, गोली–लाठी चलवा देते हैं पर न तो हृदय में स्थित होलिका को जलाते हैं न मन को सात्त्विक रंगों से रंगते हैं। प्रति वर्ष नवरात्र में लाखों रावण के पुतले जलाये जा रहे हैं पर देश में कई लाख नये रावण पैदा हो गये हैं। उनके सुवर्ण भवन बढ़ते जा रहे हैं और भारत का धन विदेशी बैंङ्कों में भागता जा रहा है। नवरात्र में महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, महिषासुर, गणेश आदि की करोड़ों मूर्तियाँ बनती हैं, गाड़ियाँ रोक–रोक कर चन्दा लिया जाता है, माइक की ध्वनियाँ रात में सोने नहीं देतीं, अरबों रुपयों के पटाखे वायुमण्डल को विषाक्त करते हैं, कान के पर्दें तोड़ते हैं, मूर्तियाँ पानी में डुबो दी जाती हैं पर न किसी देवी का पता लगता है न देव का। सरस्वती और कलाएँ विदेशों से आ रही हैं, महाकाली का शास्त्रास्तबल विदेशों की कृपा पर अवलम्बित है, महालक्ष्मी ऋण रूप में बाहर से आ रही हैं और उन देशों से आ रही हैं जहाँ के लोग इन देवियों की आकृतियों से अपरिचित हैं। बिजली के अगणित बल्ब वायुमण्डल से और हमारे घरों से लक्ष्मी और मधु को भगा देते हैं, हमारे नेत्रों की लक्ष्मी हर लेते हैं, जुए में लाखों दरिद्र हो जाते हैं और हृदयों में अन्धकार छा जाता है। ऐसे अगणित तिथिपर्व और तिथिव्रत आते हैं पर व्रत का कोई फल नहीं मिलता है।

महामहोपाध्याय भारतरत्न श्री पाण्डुरंग वामन काणें ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में तिथियों से सम्बन्धित लगभग चार सौ व्रत लिखे हैं। उनका कथन है कि इनके अतिरिक्त भी व्रत हैं। उनमें से यहाँ अकारादि वाले तथा अन्य २० लिखे जा रहे हैं।

१ अक्षय चतुर्थी। मंगलवार हो तो विशेष फल देती है। अक्षय तृतीया वैशाख शुक्ल ३ विष्णुपूजनतिथि। ३ अक्षयनवमी कार्तिक शुक्ल ९। ४ अखण्डद्वादशी आषाढ़ शुक्ल ११। ५ अंगारक चतुर्थी मंगलवार को। ६ अंगारक–चतुर्दशी। ७ अघोर चतुर्दशी भाद्र–कृष्ण १४। ८ अग्निव्रत फाल्गुन कृष्ण १४। ९ अंगिराव्रत कृष्णदशमी। १० अचला–सप्तमी माघ शुक्ला ७। ११ अच्युतव्रत पौषकृष्ण १। १२ अतिविजया एकादशी पुनर्वसुयुता। १३ अदारिद्र्य षष्ठी [illegible] पूजा। १४ अनघाष्टमी मार्गशीर्ष कृष्ण। १५ अनंगत्रयोदशी मार्ग शुक्ल। १६ अनंगदान रविहस्त। अनंगपवित्रारोपण [illegible] शुक्ल १३। १७ अतन्तचतुर्दशी भाद्र शुक्ल। १८ अनन्ततृतीया भाद्र, वैशाख, मार्ग शुक्ल। १९ अनन्त द्वादशी भाद्र शुक्ल। २० [illegible] भाद्र शुक्ल। २१ अनन्तसप्तमी भाद्र शुक्ल। २२ अनन्दानवमी फाल्गुन शुक्ल। २३ अनरकव्रत मार्ग शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ २४ अनोदनासप्तमी चैत्र शुक्ल। २५ अपराजितासप्तमी भाद्र शुक्ल। २६ अपराजिता दशमी आश्विन शुक्ल। २७ अपराधव्रत मार्गद्वादशी। २८ अपापसंक्रान्ति २९ अभीष्टतृतीया मार्ग शुक्ल। ३० अभीष्ट सप्तमी। ३१ अमावास्या व्रत तीन प्रकार के। ३४ अमुक्तासप्तमी भाद्र शुक्लपक्ष ३५ अम्बुयाची ३६ अयनव्रत ३७ अयाचित ३८ अरण्यद्वादशी मार्ग शुक्ल ३९ अरण्यषष्ठी ज्येष्ठ शुक्ल ४० अरन्धन अष्टमी ४१ अरुणोदय। ४२ अरुन्धती व्रत ४३ अर्कव्रत ४४ अर्कसप्तमी फाल्गुन शुक्ल। ४५ अर्काष्टमी ४६ अर्धश्रावणिक श्रावण शुक्ल प्रतिपदा ४७ अर्घोदय ४८ अलक्ष्मी नाश ४९ अलवण तृतीया ५० अविघ्नविनायक व्रत

कार्तिक शु० ६	श्रवण नक्षत्र वृद्धियोग
वैशाख शु० ३	रोहिणी शोभन
माघ कृ० ३०	धनिष्ठा वरीयान्
भाद्र कृ० १३	कृत्तिका व्यतीपात

तिथिगण्डान्त

त्रों, राशियों, लग्नों और तिथियों की सन्धियों में भीषण गण्डान्त बैठा दिये हैं। पूर्णा और (५–६, १०–११, १५–१) की सन्धियों में गण्डान्त राक्षस बैठा है। वह इन समयों में पैदा यात्रा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, व्रत आदि शुभ कर्म करने वाले युवकों को खा जाता है। ज्योतिष शुओं को फेंक दो अथवा बहुत मोह हो तो विधिवत् शान्तियज्ञ करो। उसमें ब्राह्मण को वस्त्र, सोना, भूमि, पात्र, छाता, पलंग आदि दो तो गण्डान्त भस्म हो जायगा। न देने पर

पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिर्नाडीद्वयं तथा।
गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु॥
सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते।
तिथिगण्डे त्वनुड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते॥
कांचनं लग्नगण्डे च गण्डदोषो विनश्यति॥

का नाम पूर्णा और षष्ठी का नाम नन्दा है, दोनों तिथियाँ शुभ कही गयी हैं। दोनों एक दूसरी बीच में कोई सीमा रेखा नहीं है, सन्धि नहीं है, कोई बाँध नहीं है और यही स्थिति १०–११ में भीषण गण्डान्त कहाँ से आ गया? क्या इसे किसी ने देखा है? क्या ऋतुओं, मासों और ता है? ईसाई, मुसलमान गण्डान्तयज्ञ नहीं करते और आजकल हिन्दू भी तिथिगण्डान्त की दा हुए बालक और उसमें यात्रा, विवाह, व्रत आदि करने वाले मानव मर जाते हैं?

क्षीणचन्द्र

क बार कुछ ही क्षणों तक पूर्ण रहता है पर कुछ ने क्षीण चन्द्रमा को और कुछ ने कृष्णपक्ष है। राम का जन्म शुक्ला नवमी को और कृष्ण का जन्म कृष्ण अष्टमी को हुआ था। उस कश्यप का कथन है कि चन्द्रमा लग्न में हो अर्थात् चन्द्रोदय, के समय किसी बालक का पूर्ण, अति अशुभ है। इस प्रकार राम, कृष्ण, चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस और आदि ष अनेक दोषों से दूषित सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि उनकी जन्मपत्रियों में चन्द्रमा लग्नस्थ है।

चन्द्रः क्षीणोथवा पूर्णो लग्ने सर्वत्र गर्हितः।

तिथिव्रत

ी व्रत से विशेष सम्बन्ध नहीं है। व्रत शब्द बहुत प्राचीन है और वेदों तथा बाद के ग्रन्थों में

इसके अनेक अर्थ हैं। प्राचीन काल में उपासना, तप, अनुष्ठान, यज्ञ, संरक्षण, आचार, कर्तव्य, आज्ञापालन, संकल्प और विधान आदि को व्रत कहते थे। महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगशास्त्र में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह आदि को व्रत कहा है। उनके मत से प्रत्येक देश, काल और स्थिति में पालन करने पर ये व्रत महाव्रत हो जाते हैं किन्तु आज व्रतों का पद उपवास ने ले लिया है। उपवास का भी वास्तविक अर्थ है साधु या देव के उप (समीप) में वास किन्तु अब अन्न–जल का त्याग अथवा बहुत फलाहार ही उपवास और व्रत बन बैठा है। भारत में वारों के आगमन के बाद अनेक व्रत वारों से जुड़ गये हैं पर प्रधानता तिथियों की ही है। आज प्रत्येक तिथि का दो–चार व्रतों से सम्बन्ध है। इस समय व्रतों में प्राय: उत्सव मनाये जाते हैं। दुर्गानवरात्र, रामनवमी, कृष्णाष्टमी तथा महावीर, नानक, हनुमान, अम्बेडकर आदि की जयन्ती में उन देवों और महामानवों के गुणों को अपने में उतारने का प्रयत्न नहीं किया जाता। प्रह्लाद को जलाने का प्रयास करने वाली होलिकाराक्षसी लाखों वर्ष पहले जल गयी किन्तु इस समय देश में लाखों होलिकाएँ पैदा हो गयी हैं। हम प्रति फाल्गुनी पूर्णिमा को दूसरों का ईंधन बलपूर्वक जला देते हैं, विजली के तारों को नष्ट कर देते हैं, दूसरों के वस्त्र रंग देते हैं, गोली–लाठी चलवा देते हैं पर न तो हृदय में स्थित होलिका को जलाते हैं न मन को सात्त्विक रंगों से रंगते हैं। प्रति वर्ष नवरात्र में लाखों रावण के पुतले जलाये जा रहे हैं पर देश में कई लाख नये रावण पैदा हो गये हैं। उनके सुवर्ण भवन बढ़ते जा रहे हैं और भारत का धन विदेशी बैंङ्कों में भागता जा रहा है। नवरात्र में महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, महिषासुर, गणेश आदि की करोड़ों मूर्तियाँ बनती हैं, गाड़ियाँ रोक–रोक कर चन्दा लिया जाता है, माइक की ध्वनियाँ रात में सोने नहीं देतीं, अरबों रुपयों के पटाखे वायुमण्डल को विषाक्त करते हैं, कान के पर्दे तोड़ते हैं, मूर्तियाँ पानी में डुबो दी जाती हैं पर न किसी देवी का पता लगता है न देव का। सरस्वती और कलाएँ विदेशों से आ रही हैं, महाकाली का शास्त्रास्तबल विदेशों की कृपा पर अवलम्बित है, महालक्ष्मी ऋण रूप में बाहर से आ रही हैं और उन देशों से आ रही हैं जहाँ के लोग इन देवियों की आकृतियों से अपरिचित हैं। विजली के अगणित बल्ब वायुमण्डल से और हमारे घरों से लक्ष्मी और मधु को भगा देते हैं, हमारे नेत्रों की लक्ष्मी हर लेते हैं, जुए में लाखों दरिद्र हो जाते हैं और हृदयों में अन्धकार छा जाता है। ऐसे अगणित तिथिपर्व और तिथिव्रत आते हैं पर व्रत का कोई फल नहीं मिलता है।

महामहोपाध्याय भारतरत्न श्री पाण्डुरंग वामन काणें ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में तिथियों से सम्बन्धित लगभग चार सौ व्रत लिखे हैं। उनका कथन है कि इनके अतिरिक्त भी व्रत हैं। उनमें से यहाँ अकारादि वाले तथा अन्य २० लिखे जा रहे हैं।

१ अक्षय चतुर्थी। मंगलवार हो तो विशेष फल देती है। अक्षय तृतीया वैशाख शुक्ल ३ विष्णुपूजनतिथि। ३ अक्षयनवमी कार्तिक शुक्ल ९। ४ अखण्डद्वादशी आषाढ़ शुक्ल ११। ५ अंगारक चतुर्थी मंगलवार की। ६ अंगारक–चतुर्दशी। ७ अघोर चतुर्दशी भाद्र–कृष्ण १४। ८ अग्निव्रत फाल्गुन कृष्ण १४। ९ अंगिराव्रत कृष्णदशमी। १० अचला–सप्तमी मास शुक्ला ७। ११ अच्युतव्रत पौषकृष्ण १। १२ अतिविजया एकादशी पुनर्वसुयुता। १३ अदारिद्र्य षष्ठी भास्कर पूजा। १४ अनघाष्टमी मार्गशीर्ष कृष्ण। १५ अनंगत्रयोदशी मार्ग शुक्ल। १६ अनंगदान रविहस्त। अनंगपवित्रारोपण श्रावण शुक्ल १३। १७ अतन्तचतुर्दशी भाद्र शुक्ल। १८ अनन्ततृतीया भाद्र, वैशाख, मार्ग शुक्ल। १९ अनन्त द्वादशी भाद्र शुक्ल। २० अनन्तपंचमी भाद्र शुक्ल। २१ अनन्तसप्तमी भाद्र शुक्ल। २२ अनन्दानवमी फाल्गुन शुक्ल। २३ अनरकव्रत मार्ग शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ २४ अनोदनासप्तमी चैत्र शुक्ल। २५ अपराजितासप्तमी भाद्र शुक्ल। २६ अपराजिता दशमी आश्विन शुक्ल। २७ अपराधव्रत मार्गद्वादशी। २८ अपापसंक्रान्ति २९ अभीष्टतृतीया मार्ग शुक्ल। ३० अभीष्ट सप्तमी। ३१ अमावास्या व्रत तीन प्रकार के। ३४ अमुक्तासप्तमी भाद्र शुक्लपक्ष ३५ अम्बुयाची ३६ अयनव्रत ३७ अयाचित ३८ अरण्यद्वादशी मार्ग शुक्ल ३९ अरण्यषष्ठी ज्येष्ठ शुक्ल ४० अरन्धन अष्टमी ४१ अरुणोदय। ४२ अरुन्धती व्रत ४३ अर्कव्रत ४४ अर्कसप्तमी फाल्गुन शुक्ल। ४५ अर्काष्टमी ४६ अर्धश्रावणिक श्रावण शुक्ल प्रतिपदा ४७ अर्घोदय ४८ अलक्ष्मी नाश ४९ अलवण तृतीया ५० अविघ्नविनायक व्रत

ी भाद्र शुक्ल ५२ अवियोग तृतीया मार्ग शुक्ल ५३ अवैधव्य एकादशी चैत्र शुक्ल ५४ अव्यंग
काष्टमी चैत्र शुक्ल ५६ असिधारा आश्विन पूर्णिमा ५७ अश्वदीक्षा आश्विन शुक्ल ६॥

अवतार–व्रत

३। ५६ कच्छा–वैशाख पूर्णिमा। ६० वराह–भाद्र शुक्ल ३। ६१ नृसिंह–वैशाख शुक्ल १४। परशुराम–वैशाख शुक्ल ३। ६४ राम–चैत्र शुक्ल ६। ६५ कृष्ण–भाद्र कृष्ण ८। ६६ बलराम– शुक्ल २। इनके अतिरिक्त १४ मन्वादि, ४ युगादि और अनेक कल्पादि तिथियाँ व्रत से न होते हैं, व्रत उनसे अधिक हैं। यहाँ केवल एक पक्ष के व्रत देखें—

चैत्र शुक्लपक्ष की तिथियों के व्रत

भ, नवरात्रारंभ, कल्पादि, शैलपुत्री यात्रा, दमनक पूजा, चाण्डाल स्पर्श, वर्षाधीश पूजा। चैत्र जा, ब्रह्मचारिणी यात्रा, लक्ष्मीनारायण पूजन, रौप्यदर्शन। चैत्र शुक्ल 3 मत्स्यावतार, राम गणेशगौरी व्रत, चन्द्रघंटा यात्रा। चैत शुक्ल ४ गणेश चतुर्थी कूष्मांडादर्शन, मोदक से गणेश ा, नाग पूजा, रामराज्योत्सव, स्कन्दमातृपूजन। चैत्र शुक्ल ६ स्कन्द पूजा, कात्यायनी पूजा, ुक्ल ७ को दौना के साथ सूर्य पूजा, कालरात्रि यात्रा। चैत्र शुक्ल ८ महागौरी यात्रा, ब्रह्म–पुत्र परिक्रमा। चैत्र शुक्ल ६ सिद्धेश्वरी यात्रा, रामजन्म, भद्रकाली पूजा। चैत्र शुक्ल १० धर्मराज शुक्ल ११ कृष्ण दोलोत्सव, सप्तर्षि पूजा, रुक्मिणी पूजा, कामदा एकादशी, सुवर्ण–वामन चैत्र शुक्ल १२ दमनक (दौना) उत्सव। चैत्र शुक्ल १३ कामदेव पूजा, महावीर जयन्ती। चैत्र र पूजा, भैरवपूजा। चैत्र पूर्णिमा हनुमत्‌जयन्ती, मन्वादि।

अपने धर्मशास्त्र ग्रन्थ में तिथि–पर्वों की जो बृहत् सूची दी है उसे अधूरी कहा है। उसके और अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वर्ष की एक भी ऐसी तिथि नहीं है जिसका सम्बन्ध न हो। अतः स्पष्ट है कि कोई तिथि अशुभ नहीं है।

जन्मकालीन तिथिफल (जातकाभरण)

में ऋतुएँ, ऋतुओं में मास, मासों में पक्ष, पक्षों में तिथियाँ और तिथियों में ही करण होते हैं विरुद्ध हैं और उनमें समन्वय कठिन है। इस विषय में सब ग्रन्थों में भी मतैक्य नहीं है। यहाँ रहे हैं। ग्रन्थ विस्तार के भय से श्लोक नहीं लिखे हैं।

ार, विद्वान, विवेकी, सुन्दर, राजमान्य, धनवान्।
र्मी, गुणी, सदाचारी, यशस्वी, प्रसन्न, धन्य।
जमान्य, धनी, विलासी, चतुर, प्रवासी, कामी।
ी, शूर, कृपण, चंचलचित्त, जुआरी......।
जमान्य, दयालु, सुस्त्रीपुत्रवान्, मित्रवान्।
ी, धनी, सुपुत्रवान्, चतुर, श्रेष्ठ, स्वस्थ, सव्रण।
ी, कन्यावान्, परधनहारी, विजयी, देवभक्त।
जमान्य, दयालु, चंचलचित्त, स्त्रीभक्त।

९ बन्धुद्वेषी, कटुभाषी, विद्वद्विरोधी, दुराचारी, चतुर।
१० धर्मात्मा, धनी, विद्वान्, सुकण्ठ, उदार, विनीत, सुन्दर, कामी।
११ द्विज-देवभक्त, धनी, साधु, कृशकाय, क्रोधी, दानी, मेधावी।
१२ व्यवहारपटु, जलप्रिय, विलासी, पुत्रवान्, अन्नदाता, राजमान्य।
१३ सुन्दर, लम्वकण्ठ, शूर, चतुर, असात्त्विक, पुत्रवान्।
१४ शूर, क्रूर, चतुर, प्रसन्न क्रोधी, कटुभाषी, चोर, अतिकामी।
१५ पूर्णिमा-सुन्दर, धर्मात्मा, वहुस्त्रीक, विलासी, गुणी, प्रसन्न।
३० अमावास्या-शान्त, मनस्वी, पितृभक्त, यात्री, लोकमान्य, अल्पधन, कृश।

तिथियों के करण

पंचांगों में तिथियों और नक्षत्रों की भाँति करणों का गणित नहीं किया जाता। सूर्य चन्द्रमा का अन्तर १२ अंश होने में जितना समय लगता है वह एक तिथि होती है। अत: सूर्य चन्द्र में ६ अंश अन्दर होने के काल को करण कहना चाहिए पर ऐसा नहीं होता। तिथि के काल के आधे को एक करण का समय मान लिया जाता है। करण एक नयी कल्पना है। प्राचीन ग्रन्थों में ये नहीं हैं और इनके बव, बालव , किंस्तुघ्न आदि नाम विचित्र हैं। आजकल करणों का कोई महत्त्व नहीं है। उन्हें कोई नहीं पूछता। अमावास्या के पास के करण अशुभ हैं पर उनका अशुभत्व अमावास्या के नाते है। आश्चर्य है, करणों का कोई महत्त्व नहीं है पर एक करण विष्टि (भद्रा) कालमानों में सबसे अधिक भीषण हो गया है, जब कि उसका नाम शुभ है। ३० तिथियों में ६० करण इस प्रकार आते हैं।

कृष्ण पक्ष		शुक्ल पक्ष	
१ बालव	कौलव	१ किंस्तुघ्न	बव
२ तैतिल	गर	२ बालव	कौलव
३ वणिज	विष्टि	३ तैतिल	गर
४ बव	बालव	४ वणिज	विष्टि
५ कौलव	तैतिल	५ बव	बालव

कृष्ण पक्ष		शुक्ल पक्ष	
६ गर	वणिज	६ कौलव	तैतिल
७ विष्टि	बव	७ गर	वणिज
८ बालव	कौलव	८ विष्टि	बव
९ तैतिल	गर	९ बालव	कौलव
१० वणिज	विष्टि	१० तैतिल	गर
११ बच	बालव	११ वणिज	विष्टि
१२ कौलव	तैतिल	१२ बव	बालव
१३ गर	वणिज	१३ कौलव	तैतिल
१४ विष्टि	शकुनि	१४ गर	वणिज
३० चतुष्पद	नाग	१५ विष्टि	बव

जन्मकालीन करणों के फल

बली, कामी, सुशील, मेधावी, धनी, भाग्यशाली।
, विलासी, कवि, कलावान्, दानी, प्रसन्न, सुबुद्धि।
त श्रेष्ठ, बली, कामी, वक्ता, सुखी, बहुमित्र, स्वतन्त्र।
र, कलावान्, वक्ता, विलासी, सुशील, मेधावी।
, उदार, सुन्दर, परोपकारी, चतुर, विजयी, धीर।
ाविद्, हास्यप्रिय, यशस्वी, व्यापारी, चतुर।
, विजयी, बली, चपल, सुन्दर, आलसी।
ावी, मंत्रज्ञ, शकुनज्ञ, गुणी, सावधान, भाग्यशाली।
ाचारी, क्षीणकार्य, मन्दबुद्धि, दरिद्र।
, कुलक्षयकारी, कलहप्रिय, कुशील।
अस्थिरचित, उदासीन, मन्दबुद्धि, पापी।

तिथि और करण के फल में मतभेद

तिथियों के ही आधे भाग को करण कहते हैं परन्तु इनके फलों में मतभेद है। कृष्णपक्ष की चतुर्थी
के करण, बव और बालव शुभ हैं। रिक्ता होने से नवमी दोनों पक्षों में अशुभ है पर उसके तैतिल,
ण शुभ हैं। पूर्णिमा शुभ है पर उसमें स्थित भद्रा अशुभ है। क्यों? यहाँ जन्मकाल में रिक्ता से भिन्न
तो वे यात्रा आदि में अशुभ क्यों मानी गयी हैं? कार्यारंभ भी तो कार्य का जन्म ही है। जिन तिथियों
में उत्पन्न बालक मेधावी, ज्ञानी, दाता और साधु कैसे हो जाते हैं? आगे संक्रान्ति प्रकरण में भद्रा
फल शुभ क्यों लिखा है? जो करण जन्मकाल में शुभ हैं वे संक्रान्तियों में अशुभ क्यों हो जाते हैं?

करणों और योगों के स्वामी भी लिखे हैं परन्तु जैसे ये दोनों नवीन हैं उसी प्रकार उनके स्वामी भी।
ता है वह निराकार है, उसकी १२ राशियाँ निराकार हैं और उसके एक राशि से दूसरी में प्रवेश
कार है पर ज्योतिष ने उसके भी १२ भीषण रूप मान लिये हैं और वे करणों के अनुसार बदलते
न, आभूषण, पात्र, जाति आदि का भी वर्णन है। बवकरण में संक्रान्ति हुई तो उसका वाहन सिंह,
भोजन अन्न, पात्र सोने का और लेप कस्तूरी होगा। इस प्रकार उसकी १५ स्थितियों का वर्णन है।
में देखें।

भद्रा अशुभ क्यों ?

के दो नाम हैं विष्टि और भद्रा। संस्कृत में प्रविष्ट और व्याप्त को विष्ट तथा प्रवेश को विष्टि कहते
ष्टि का अर्थ आकाश और ४।१५।२ में त्रिविध सुख है तथा स्वर्ग को त्रिविष्टप कहा गया है अतः
भाषा में भद्र शब्द अति शुभ है और अमरकोश में उसका अर्थ है कल्याण, मंगल, आनन्द। श्वेत
को भद्रासन, मलयचन्दन को भद्रश्री, देवदारु को भद्रदारु, जलपूर्ण कलश को भद्रकलश और
हा जाता है तथा भद्रपुरुषों में बलभद्र, वीरभद्र, भद्रकाली और सुभद्रा स्मरणीय हैं। चारों वेदों में

शुभतम अर्थ में भद्र शब्द कई सौ बार आया है और प्रार्थनाएँ हैं कि हे परमात्मा! हम नेत्र से भद्र देखें, कान से भद्र सुनें, हमारे चारों ओर भद्राएँ हों, हमें देवों की भद्रमति प्राप्त हो, हमारे मन भद्र रहें तथा यज्ञ और अग्नि भद्र हों। कुछ मन्त्र ये हैं—

भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु १।१२३।१३, भद्रा उषासः १।१२३।१२, भद्रा ते सुमतिः १।११४।६, उभे भद्रे जोषये ते १।६४।६, विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु १।१६६।६, उषो भद्रेभिरागहि १।४६।१ भद्रा तं उषः १।१२३।११, भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना ३।३६।२, भद्रा ते हस्ता ४।२१।६, भद्रा रातिः सहस्त्रिणी ६।४५।३२ (ऋग्वेद)॥ भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः। भद्राहं नो अह्वां प्राता रात्री भद्राह्नमस्तु नः ६।१२८।२, यो नो भद्राहमकरः ६।१२८।४, भद्राहमस्मभ्यं राजन् ६।१२।३, भद्राहमस्मै प्रायच्छन् ६।१२८।१ (अथर्ववेद)॥ आनो भद्राः क्रतवो यन्तु २५।१४, देवानां भद्रा सुमतिः २५।१५, भंद्र कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः २५।२१, भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः भद्रा उत प्रशस्तयः १५।३८, भद्रं मनः १५।३६ (यजुर्वेद)॥

जन्मपत्रिका में विंशोत्तरी के साथ एक योगिनी दशा लिखी जाती है। उसकी आठ योगिनियों में एक भद्रा या भद्रिका है और वह परम शुभ मानी जाती है। नन्दादि पाँच तिथियों में एक भद्रा है। २, ७, १२ तिथियाँ भद्रा कही जाती हैं, शुभ मानी जाती हैं और वसिष्ठ कहते हैं कि इसमें प्रारम्भ किये कर्म सफल होते हैं—

> द्वितीयायां तृतीयायां पंचम्यां कथितान्यपि।
> सर्वकर्माणि सिध्यन्ति द्वादश्यां सप्तमी तिथौ॥ (मु० चि० १।३ टीका)

किन्तु वह अब अशुभ हो गयी है। उसके विषय में मुहूर्तचिन्तामणि और मुहूर्तगणपति के भाष्यों में लिखा है कि एक बार देवासुर संग्राम में दैत्यों के नाश के लिए कुपित शिव ने अपने शरीर से भीषण भद्रा निकाली। भद्रा के शरीर से अग्नि की लपटें निकल रही थीं। उसका मुख गधी सदृश और पेट चिपका था। ग्रीवा सिंह सदृश थी, पूँछ लम्वी थी, तीन पैर थे, सात हाथ थे वह शव पर सवार थी और सबका कर्म नाश कर रही थी। वह अपने भटों द्वारा लोगों को कष्ट दे रही थी, बहुत काली थी, बहुत बड़ी दंष्ट्रा, दाढ़ी, नाक और कपोल से युत थी, भयानक थी, मुख से आग उगल रही थी, तीनों लोकों में दौड़ रही थी और उसकी दाढ़ कपोल, नाक आदि विशाल थे। उसने सब दैत्यों को मार डाला तो देवों ने उसे बव आदि करणों के अन्त में बैठा दिया। वह दिन में सर्पिणी रहती है और रात में वृश्चिकी हो जाती है। दूसरे आचार्यों का कथन है कि शुक्लपक्ष में वृश्चिकी रहती है और कृष्णपक्ष में साँपिन हो जाती है। सर्पिणी का मुख और वृश्चिकी की पूँछ त्याज्य होती है। इसलिए ज्योतिषि में मुख और पूँछ की घटियाँ भी लिखी हैं। हाँ, ग्रन्थकारों में उस विषय में थोड़ा मतभेद भी है। भद्रा शुभ कार्य में वर्जित है पर इसमें दूसरों के घर, खेत, खलिहान में आग लगाने से, विष देने से और कलह तथा हत्या आदि करने से सफलता मिलती है।

> पुरा देवासुरे युद्धे शंभुकायाद् विनिर्गता।
> दैत्यघ्नी रासभास्या च विष्टिर्लांगूलिनी त्रिपात्॥
> सिंहग्रीवा शवारूढा सप्तहस्ता कृशोदरी।
> महोग्रा विकरालास्या पृथुदंष्ट्रा भयावहा॥
> कार्यघ्नी भुवमायाति वह्निज्वालासमाकुला।
> अमरैः करणप्रान्ते सा नियुक्ता शिवाज्ञया॥
> शुक्लेऽस्ति वृश्चिकी भद्रा कृष्णपक्षे भुजंगमा।
> दिवसे सर्पिणी रात्रौ वृश्चिकी चापरे जगुः॥
> मुखं त्याज्यं तु सर्पिण्या वृश्चिक्याः पुच्छमेव च।

दाहघातादिके शस्ता न शुभा शुभकर्मणि॥
भद्राख्येऽस्मिन् महादोषे शुभकर्ता विनश्यति॥
द्बद्धोद्भटतरपीडितातिकृष्णा दंष्ट्रोग्रा पृथुहनुगण्डदीर्घनासा।
कार्यघ्नी हुतवहनं समुद्गिरन्ती विश्वान्तः पतति समन्ततोऽत्र भद्रा॥

का कथन है कि भद्रा महादोष है और यह सब शुभ कर्मों में बाधा डालती है। इसमें जो काम करते र्म नष्ट हो जाता है। रत्नकोश में लिखा है कि भद्रा आठ रूप धारण कर आठ तिथियों में रहती ठ प्रकार के होते हैं। इसके आठ नाम हैं—हंसी, नन्दिनी, त्रिशिरा, सुमुखी, कराली, विकृति, रुद्रा लगभग ३० घटी (१२ घण्टा) है। यह प्रत्येक मास की आठ तिथियों में रहती है। प्रत्येक तिथि आठ दिशाओं में रहता है। मुख से विपरीत दिशा में पूँछ रहती है। भद्रा कृष्णपक्ष में सर्पिणी और धारण कर लेती है। सर्पिणी के मुख में और वृश्चिक की पूँछ में विष रहता है इसलिए यदि कुशल बुद्धिमत्ता का गर्व छोड़कर ज्योतिषीजी से पूछ लें कि भद्रा इस समय सर्पिणी है या वृश्चिकी और स दिशा में है।

भद्राख्योयं महादोषः कथितोऽस्ति समस्तगः।
तदानीं कृतसत्कर्मा कर्त्रासह विनश्यति॥
असिते सर्पिणी ज्ञेया सिते भद्रा च वृश्चिकी।
सर्पिण्या आननं त्याज्यं वृश्चिकक्याः पुच्छमेव च॥ (मु० चि० १।४४ टीका)

की ३० घटियों को उसके भिन्न-भिन्न अंगों में बाँट दिया है और उसके भिन्न-भिन्न फल लिखे करने पर वे फल मिलते हैं परन्तु कुछ न करने पर अथवा पहले से प्रारम्भ किये कामों को चालू फल नहीं होता। आचार्यों का आदेश है कि भद्रा में वध करना, बाँधना, आग लगाना, विष देना, ा, मोहन, उच्चाटन करना और घोड़ा, ऊँट, भैंस, आदि सम्बन्धित कर्म करना सफल होता है पर हो तो मांगलिक कर्म न करो।

	गला	वक्ष	नाभि	कटि	पूँछ
टी	१	११	४	६	३
हानि	मृत्यु	दरिद्रता	उन्मत्तता	पदच्युति	विजय

न्धविषाग्नयस्त्रच्छेदनोच्चाटनादिकम्। तुरंगमहिषोष्ट्रादिकर्म
ुर्यान्तु सिद्ध्यति। न कुर्यान्मंगल तस्यां जीवितार्थी कदाचन।
नज्ञस्य तत्सर्वं क्षिप्रं वै नाशतां व्रजेत्॥ (मु० चि० १।४४ टीका)

असुरों का नाश करने के लिए उत्पन्न भद्रा गधी क्यों बनी? सिंहिनी ही क्यों न रह गयी? क्या सिंहिनी (२) क्या गधी और सिंहिनी को तीन पैर होते हैं? (३) क्या तीन पैर वाली चतुष्पदी से अधिक और सिंहिनी को सात हाथ होते हैं? (५) भद्रा तो सुन्दरी और शान्ता होती है। शिव ने उसका घोरा (६) भद्रा आज भी जीवित है तो वह इस समय असुरों का नाश क्यों नहीं करती? (७) असुरों के भद्रा को विश्व के आतंकवादियों का अत्याचार कैसे सहन होता है? (८) उसने बन्दा वैरागी,

अर्जुनदेव, गुरुगोविन्द, चन्द्रशेखर, भगत सिंह आदि को बचाया क्यों नहीं? (६) आठ तिथियों नें ६६ घंटे बैठी रहने वाली और तीनों लोकों में घूमने वाली असुरघ्नी भद्रा शिवमन्दिर को तोड़ने वाले दैत्यों को खा क्यों नहीं गयी? (१०) वह शिवभक्तों की, देश रक्षा के लिए प्राण देने वालों की और नारियों की दुर्दशा कैसे देखती रह गयी? (११) उसे मन्दिरों की नींव पर बनी मसजिदें कैसे सहन होती हैं? (१२) भद्रा ने क्लाइव और ओ डायर को क्यों नहीं खाया? (१३) दुष्ट दैत्यों का नाश करने के लिए उत्पन्न भद्रा में कार्यरंभ, यात्रा आदि करने वाले निरपराध सज्जनों का नाश क्यों करती है? (१४) भद्रा तीनों लोकों में घूमती रहती है तो आठ तिथियों में कैसे बैठी रहती है? (१५) क्या कोई साकार प्राणी आठ स्थानों में सर्वदा बैठा रह सकता है? (१६) आप कहते हैं कि भद्रा में विषदान, अग्निदाह, चोरी, मारण आदि भीषण कर्म किये जा सकते हैं पर शुभ कर्म नहीं। शिव के शिवशरीर से ऐसी अशिव भद्रा कैसे उत्पन्न हो गयी? उन्होंने ऐसा क्यों होने दिया? (१७) आप कहते हैं कि भद्रा में शुभ कार्यों को प्रारंभ मत करो। जो आरंभ में विघ्न डालती है वह मध्य में कैसे चुप बैठी रहती है? (१८) संसार के शुभ कर्म भद्रा के रहते सम्पन्न कैसे हो रहे हैं? विद्यालय, वाहन, यन्त्रालय और कृषिकर्म कैसे चल रहे हैं? (१६) भद्रा प्रत्येक मास में ६६ घण्टे विद्यमान रहती है और उसके मुख तथा शरीर से प्रज्वलित होली सी अग्निज्वालाएँ निकलती रहती हैं तो वह दिखाई क्यों नहीं देती? (२०) भद्रा को शरीर है तो तिथियों और मासादिकों को भी होना चाहिए। वे सब कहाँ हैं? (२१) भद्रा का वाहन शव है तो क्या शव दौड़ता है? (२२) भद्रा के सिंहिनी, गर्दभी, बिच्छू और सर्पिणी रूप कैसे संभव हैं? (२३) भद्रा शुक्लपक्ष में और रात में वृश्चिकी तथा कृष्णपक्ष और दिन में सर्पिणी रहती है तो शुक्लपक्ष के दिवसों और कृष्णपक्ष की रातों में उसका क्या रूप होगा? (२४) क्या इसके लेखक ने कुछ भी सोचने का कष्ट उठाया है? (२५) क्या भद्रा सूर्योदय और सूर्यास्त में रूप बदलती रहती है? (२६) भद्रा शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के उत्तरार्ध में बैठी रहती है, फिर कहीं चली जाती है और अष्टमी के पूर्वार्ध में पुन: आ बैठती है तो वह कहाँ से आती है? (२७) ज्योतिषी कहते हैं कि

स्वर्ग	मर्त्य	पाताल
१,२,३,८	४,५,११,१२	६,७,६,१०

राशियों के अनुसार भद्रा प्रत्येक मास में तीनों लोकों का चक्कर काटा करती है। वह चन्द्रमा की तुला राशि में रहने पर पाताल में रहती है पर चन्द्रमा का वृश्चिक से स्पर्श होते ही पाताल से कूद कर स्वर्ग में पहुँच जाती है और मर्त्यलोक को बीच में ही छोड़ देती है। इसी प्रकार वृश्चिक के बाद धन लगते ही मर्त्यलोक को छुये बिना पाताल में चली जाती है। तो क्या उन तिथियों में मर्त्यलोक में नहीं रहती? (२८) नहीं रहती है तो पंचांग में क्यों लिखी जाती है और भद्रा का दोष क्यों मनाया जाता है? (२६) भद्रा की इस उछल–कूद का, मिथ्या कल्पना के अतिरिक्त क्या कोई प्रमाण है? (३०) यहाँ भद्रा के उछल–कूद का सम्बन्ध राशियों से है तो क्या यह सिद्ध नहीं हो जाता कि इसका प्रचार भारत में राशियों के आगमन के बाद हुआ? (३१) पोथी कहती है कि देवों ने शिव की आज्ञा से भद्रा को करणों के अन्त में रखा तो क्या उस देवासुर संग्राम के समय भारत में करणों का प्रचार था? (३२) यदि था तो प्राचीन ग्रन्थों में उनका वर्णन क्यों नहीं है? (३३) जो वेद और महाभारत आदि ग्रन्थ, तिथियों का तथा दण्डों, पलों और विपलों तक का उल्लेख करते हैं वे तिथि के आधे करणों का नाम क्यों नहीं लेते? (३४) भद्रा के आगमन के बाद करण ग्यारह हो गये तो क्या उसके पहले दस ही थे? उनकी क्या व्यवस्था थी? क्या उसका कहीं उल्लेख है? (३५) शिव के शरीर से उत्पन्न वीरभद्र और देवों के अंश से निर्मित भद्रकाली पापियों के नाश में रत हैं तो भद्रा सबका नाश क्यों करती है? (३६) वह पुराणों में वीरभद्र और भद्रकाली की भाँति वर्णित क्यों नहीं है। (३७) यह ईसाई और मुसलमानों की तिथियों में क्यों नहीं बैठती? (३८) तिथियों और राशियों (नक्षत्रों), दोनों से सम्बन्धित भद्रा के निवासकाल की संगति क्या लग सकती है? (३६) भद्रा के कितने रूप हैं? (४०) वेदों में, ज्योतिष में और व्याकरणादि शास्त्रों में सारे नाम सार्थक हैं। ज्योतिष कहता है—योगानामसदृक्फला:। प्रवर्धमाना: फलदा: स्वनाम्ना। (मु० चि० १। २४) इसका अर्थ यह है

र्थक हैं। वेद का कथन है कि मासों, पक्षों, दिवसों, रात्रियों और मुहूर्तादिकों के सारे नाम गुणों
फिर भद्रा अशुभ कैसे हो गयी? भद्रा कथा में अन्य अनेक शंकाएँ हैं।

ा—सभी तिथियाँ सूर्य और चन्द्रमा से उत्पन्न हैं और सूर्य–चन्द्रमा परमात्मा के चक्षु और मन
कथन है पर ज्योतिष में कुछ तिथियाँ दक्षिणायन और हरिशयन में होने से, कुछ खलमास,
शुक्रास्त, गुर्वस्त आदि में होने से, कुछ मृत्यु, हुताशन, वज्र, गण्ड आदि भीषण योगों में पड़ने
होने से, कुछ चन्द्रमा के क्षीण होने से और कुछ भद्रा, भरणी आदि के कारण अशुभा हो जाती
और प्रत्यक्ष के विपरीत हैं। ज्योतिष में उत्तरायण, शुक्लपक्ष और दिवस शुभ हैं, राम का जन्म
। ज्योतिष में दक्षिणायन, कृष्णपक्ष और रात्रि गर्हित हैं, श्रीकृष्ण का जन्म इन तीनों के मध्य में
नुसार कृष्ण को घमण्डी, कृषक, क्रूर, शठ, कुरूप, मूर्ख, निर्बल, कामी, मन्ददृष्टि, क्षयरोगी
हिए। अयन और पक्ष के फल पीछे लिखे हैं। दिन–रात्रि के फल ये है—

बन्धुपूज्यश्च तेजस्वी चारुदृष्टिर्जनप्रियः।
सुरूपोधर्मशीलश्चदिवाजातो नरो भवेत्॥
मन्ददृक्कामुको लोलः क्षयरोगी मलीमसः।
निष्ठुरश्छन्नपापश्च निशिजातो नरो भवेत्॥

ष्ण दोनों एक ही परमात्मा के दो अवतार हैं अतः स्पष्ट है कि ये फलादेश प्रत्यक्ष विरुद्ध हैं और
दोनों में जन्म लेकर हमें सत्य का बोध कराया है। हमारे देश में इस समय भी ऐसे देवतुल्य
जिनका जन्म इन निन्दित अयनों, पक्षों और तिथियों आदि में हुआ है।

●

अध्याय ४

वार और सप्ताह शब्द

संस्कृत में समूह को वार कहते हैं। पुन: पुन: के अर्थ में भी वारं वारं कहा जाता है किन्तु प्राचीनकाल में दिन के अथवा दिन–रात के लिए वार शब्द का प्रयोग नहीं होता था। संस्कृत में दिन के लिए दिवस, घस्र, अह: और वासर शब्द हैं पर वार नहीं है। ऋग्वेद ८।६।३० और ८।४८।७ में वासर शब्द है पर वार कहीं नहीं है। वेद, महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथों में कहीं भी सप्ताह का उल्लेख नहीं है। वेद में षडह शब्द तो है पर उसके छ: दिनों के छ: नाम नहीं हैं। वाद में षडह का प्रचार भी नहीं रहा। प्राचीन काल में मैक्सिको में ५, रोम ८, मिश्र और एथेंस में १० तथा यहूदियों, बेबीलोनों और अमेरिका के इंका लोगों में ७ वार थे। ओल्ड और न्यू टेस्टामेंट में वारों के नाम नहीं है। सप्ताह का आरंभ मिश्र में हुआ और ईसा की पहली शताब्दी में उसका यूनान में प्रचार हुआ। यूरोप और मध्य एशिया में ई०पू० दूसरी शताब्दी तक सात वारों के नाम अज्ञात थे। ईसाइयों में रवि, यूनानियों में सोम, पारसियों में मंगल, असीरियनों में बुध, मिश्रियों में गुरु, मुसलमानों में शुक्र और यहूदियों में शनिवार पवित्र एवं विश्राम दिन माना जाता है। यहूदी, मुसलमान और एथेंसवासी सूर्यास्त से, इंगलिश और रोमन आधी रात से तथा भारतीय सूर्योदय से वार का आरंभ मानते हैं पर कुछ धार्मिक कृत्यों में भारतीय भी संकल्प में आधी रात के बाद वार बदल देते हैं। आकाश को देख कर अयन, गोल, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि और नक्षत्र बताये जा सकते हैं पर वार नहीं। अयनादिकों का सूर्य, चन्द्रमा और आकाश से सम्बन्ध है पर वारों का किसी से नहीं। वे अप्राकृतिक और काल्पनिक हैं। ग्रहों के जिस प्राचीन कक्षाक्रम के आधार पर वारक्रम निश्चित किया गया है उसे नवीन विज्ञान ने मिथ्या सिद्ध कर दिया है पर भारत में इस समय वारों का महत्त्व प्रत्येक कालमान से अधिक है और ज्योतिष ने उनके आधार पर शुभाशुभत्व का एक सागर तैयार कर दिया है। संसार में किसी भी अस्तित्व विहीन काल्पनिक पदार्थ को इतना सम्मान नहीं मिला है जितना हिन्दू के घर में और उसके ज्योतिष में वारों को। रवि के वार में न उष्णता बढ़ती हैं न सोमवार में शीतलता, पर आज उच्च शिक्षित हिन्दू भी दोनों में भिन्न गुणों की सत्ता मानता है। आकाश में प्रति दिन सातों ग्रह घूमते रहते हैं, प्राणियों पर सातों का प्रभाव पड़ता रहता है पर हमने उन्हें बलपूर्वक वारों में बाँट दिया है।

पश्चिम में ग्रहों को कुछ देवों के नाम दिये गये हैं। उसकी विभिन्न कथाएँ हैं। सैटर्न रोम का प्रसिद्ध देवता था। शनि को उसी का नाम दिया गया। वहाँ शनिवार शुभ और उत्सव का दिन था। सबसे ऊपर होने के कारण यहूदियों ने उसे प्रथम और सर्वश्रेष्ठ वार माना। सबसे तेजस्वी होने के कारण कई देशों ने सूर्य को श्रेष्ठ माना। कुछ लोगों का कथन है कि यहूदी के विरोधी होने के कारण इंगलिश लोगों ने शनि को नहीं बल्कि रवि को प्रथम वार माना। कुछ विद्वानों का कथन है कि डायना (Diana) नाम की सुन्दरी देवी के नाम पर मूनडे नाम रखा गया है। अंग्रेजों के युद्ध के देव का नाम टायर था। उसके पास एक भेंड़िया था। वह पृथ्वी पर सदा आक्रमण किया करता था। उसकी स्मृति में टयूज़डे नाम पड़ा है। वेडन सोने के गृह में रहता था। वेन्सडे उसी के नाम पर है। उत्तर यूरोप वासियों का सबसे बलवान् देव थर्स था। वह हाथ में हथौड़ा रखता था। सौन्दर्य की देवी फ्रेया वार्डन की पत्नी थी। फ्राइडे उसी के नाम पर है। मून और वीनस पश्चिम की दो सुन्दरी देवियाँ हैं। शुक्र को भी वीनस् कहते हैं। वेनस् शब्द वेद में भी आया है। मार्स, मर्करी और ज्यूपिटर की अनेक कहानियाँ हैं, वारों के नाम इन्हीं से सम्बन्धित हैं।

प्राचीनकाल में हर देश के पौराणिक, दही–दूध के सागरों तथा आकाश का विस्तृत वर्णन करते थे पर सत्य स्थिति से अनभिज्ञ थे। हमारी रामकथा में लिखा है कि महाराज दशरथ रथ पर बैठकर रोहिणी तारे के पास गये थे और उन्होंने शनिग्रह से युद्ध किया था किन्तु सत्य यह है कि शनि से रोहिणी बहुत दूर है और जो रोहिणी तक पहुँचने में समर्थ है वह चन्द्रमा को सूर्य से एक लाख योजन ऊपर नहीं कह सकता, पृथ्वी को ब्रह्माण्ड का केन्द्र नहीं मान सकता और शेषनाग को पृथ्वी का आधार नहीं लिख सकता। ज्योतिषियों का ज्ञान पौराणिकों से सर्वदा अधिक रहा है। इसलिए उन्होंने पृथ्वी का आधार गजराज का मस्तक और बैल की सींग नहीं माना तथा उसे कुंभार के चाके की भाँति चपटी नहीं बल्कि गेंद की भाँति गोल कहा। आचार्य भास्कर ने सिद्धान्तशिरोमणि में पौराणिक खगोल और भूगोल का खण्डन किया है किन्तु प्राचीन काल में ज्योतिषी भी यह मानते थे कि सब ग्रह पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते हैं। उनका क्रम सामने लिखा है।

शनि
गुरु
मंगल
रवि
शुक्र
बुध
चन्द्र
पृथ्वी

पश्चिम में एक अहोरात्र में २४ घंटे (Hours) माने जाते हैं और वे सात ग्रहों में वाँट दिये गये हैं। शनिवार की पहली होरा का स्वामी, शनि, दूसरी का गुरु, तीसरी का मंगल और सातवीं का स्वामी चन्द्रमा होता है। इसी प्रकार शनि १, ८, १५ और २२वीं हीरोओं का स्वामी होता है। २३वीं का गुरु, २४वीं का मंगल और २५वीं का स्वामी रवि होता है। इसीलिए शनिवार के बाद रविवार माना गया है। यही क्रम आगे चलता है और वारक्रम की यही उपपत्ति है।

कुछ भारतीय कहते हैं कि वार भारतीय हैं। भारत में एक वार में ६० घटियाँ मानी जाती हैं और क्रम नीचे से चन्द्रमा से प्रारम्भ होकर ऊपर जाता है। चन्द्रवार की १, ८, १५, २२, २६, ३६, ४३, ५० और ५७वीं घटियों का स्वामी चन्द्रमा है। ५८, ५६, ६० के स्वामी बुध, शुक्र, रवि हैं और उसके आगे मंगल है इसलिए सोमवार के बाद मंगलवार आता है और यही विधि आगे चलती रहती है परन्तु यह बात इतिहासविदों को अमान्य है। वे कहते हैं कि वार भारतीय होते तो तिथियों और नक्षत्रों की भाँति वेदों और महाभारत आदि में उनका भी उल्लेख रहता।

वारों के शुभाशुभत्व में शंका

नवीन क्रम
प्लूटो
नेपचून
यूरेनस
शनि
गुरु
लघुग्रह
मंगल
पृथ्वी–चन्द्र
शुक्र
बुध
सूर्य

एक अहोरात्र में २४ होराएँ मानें अथवा ६० घटियाँ, दोनों स्थितियों में ये संशय उत्पन्न होते हैं। (१) शनिवार में प्रत्येक ग्रह की होरा तीन बार और घटी आठ–नौ बार आती है तो उसे शनि मात्र का वार और अशुभ क्यों माना जाय? यह प्रश्न प्रत्येक वार में हैं। (२) सूर्य चन्द्र की होराएँ और घटियाँ प्रत्येक वार में कई वार आती हैं तो क्या सूर्य की होरा या घटी के आगमन काल में आकाश उष्ण और प्रकाशित हो जाता है? क्या चन्द्र की होरा और घटी में शीतल हो जाता है? क्या शनि की होरा और घटी में पाप और मन्दत्व आ जाता है? (३) होरा शुभग्रह की है और घटी अशुभ की तो किसे महत्त्व दिया जाय? (४) ज्योतिषियों ने अहोरात्र को दोघड़िया, चौघड़िया, होरा, घटी, मुहूर्त, लग्न, नवांश, द्वादशांश, त्रिशांश, द्रेष्काण आदि विधियों से सैकड़ों भागों में बाँटा है और सबके फल परस्पर विरुद्ध हैं तो किसकी बात मानी जाय?

सत्य यह है कि ग्रहों के जिस कक्षाक्रम के आधार पर होराओं, घटियों राशियों और नवमांशादिकों का ग्रहों में बँटवारा हुआ है उसे विज्ञान ने मिथ्या सिद्ध कर दिया है। सूर्यादि ग्रह पृथ्वी की प्रदक्षिणा नहीं करते वल्कि सब ग्रह अपने से लाखों गुना बड़े सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं। इनका क्रम द्वितीया चक्र में देखें। हमें सोचना है कि ग्रह–स्थिति से अनभिज्ञ मनुष्य ग्रहों के प्रभाव को कैसे जान सकेगा?

वेदों में सब दिन, रात और मुहूर्त शुभ

वेदों में कोई दिन अशुभ नहीं है और कुछ विशिष्ट दिनों को सुदिन कहा गया है। जिस दिन धनलाभ होता है, शरीर किसी संकट से बच जाता है, मन प्रसन्न रहता है, कोई शुभ समाचार या सुवचन सुनने को मिलता है या कोई शुभ घटना घट जाती है उसे ऋग्वेद सुदिन मानता है। उसका कथन है कि जो मनुष्य धर्मयुद्ध में आगे रहते हैं, अपनी प्रतिभा और सुकृतियों से सबको सदाचारी बनाते हैं तथा शुभ वचन बोलते हैं वे विप्र हैं, देव हैं और उनके सब दिन सुदिन हैं। वरुणदेव उन मनुष्यों के दिनों को सुदिन बना देते हैं जो स्तोत्रों का और सत्साहित्य का पाठ करते हैं। जिस काल में जो कर्म अनुकूल पड़ता है वह उसके लिए सुदिन होता है। इसलिए वैदिक साहित्य में सूर्य की अनुराधा नक्षत्र में स्थिति जौ गेहूँ की बोवाई आदि के लिए सुदिन कही गयी है।

> पोषं रयोणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ (ऋ० ३। २३। ४)
> स्तोतारं विप्र सुदिनत्वे अह्नाम्॥ (ऋ० ७। ८८। ४)
> जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः।
> पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम्॥ (ऋ० ३। ८। ५)
> मैत्रेण कृषन्ते॥ (तैत्तिरीय ब्राह्मण १। ८। ४, पारस्कर गृह्यसूत्र २। १३)

एक चान्द्रमास में लगभग ३० दिन होते हैं, इसलिए ३० तिथियाँ मानी गयी हैं। एक मास में दिवसों और रातों की संख्याएँ ३०-३० होती हैं इसलिए वेद में उनके ३०-३० नाम हैं। वर्तमान ज्योतिष ने कदाचित् इसीलिए ६० करण माने हैं पर उनमें आधे से अधिक अशुभ हैं किन्तु वेद में साठों नाम परम मांगलिक हैं। इतना ही नहीं, तैत्तिरीय ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा भी है कि जो मनुष्य मासों के मधु-माधव आदि, पक्षों के पवित्र-सहस्वान् आदि, दिवसों के संज्ञान-विज्ञान आदि और रातों के तृप्ति-पूर्णा आदि नामों को जानेगा उसे उनमें पीड़ा की आशंका नहीं होगी किन्तु जानेगा तब। इसके आगे विदेह जनक का कथन है कि जो मनुष्य अहोरात्रों के नामों का चिन्तन करता है और उनका रहस्य जानता है वह पाप रहित होकर स्वर्ग को चारों ओर से जीत लेता है। बोध की प्राप्ति ही स्वर्गविजय है।

> यो ह वा अहोरात्राणां नामधेयानि वेद संज्ञानं विज्ञानं दर्शा दृष्टेति।
> नाहोरात्रेष्वार्तिमार्च्छति या एवं वेद॥ (तै० ब्रा० ३। १०। १)
> जनको ह वैदेहोऽहोरात्रैः समाजगाम।
> तं होचुर्यो वा अस्मान् वेद विजहत्अप्मानमेति अभिस्वर्गं लोकं जयति॥ (तै. ब्रा. ३। १०। ६)

शुक्लपक्ष के १५ दिवसों के नाम—संज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं जानदभिजानत्। संकल्पमानं प्रकल्पमानं उपकल्पमानं उपक्लृप्तं क्लृप्तं। श्रेयो वसीय आयत् संभूतं भूतम्।

शुक्लपक्ष की १५ रातें—दर्शा दृष्टा दर्शता विश्वरूपा सुदर्शना। आप्यायमाना प्यायमाना प्याया सूनृता इरा। आपूर्यमाणा पूर्यमाणा पूरयन्ती पूर्णा पूर्णमासी।

कृष्णपक्ष के १५ दिन—प्रस्तुतं विष्टुतं संस्तुतं कल्याणं विश्वरूपं। शुक्रं अमृतं तेजस्वि तेजः समृद्धं। अरुणो भानुमान् मरीचिमान् अभितपत तपत् तपस्वत्।

कृष्णपक्ष की १५ रातें—सुता सुन्वती प्रसुता सूयमाना अभिषूयमाणा। पीती प्रपा सम्पा तृप्तिः तर्पयन्ती। कान्ता काम्या कामजाता आयुष्मती कामदुघा।

वाजसनेयिसंहिता का कथन है कि वर्ष से लेकर निमेष तक छोटे-बड़े सारे काल उस विराट् पुरुष से उत्पन्न हैं जो सूर्य, चन्द्र और विद्युत् से भी तेजस्वी हैं, सबका पिता है और पवित्र है इसलिए सब काल पवित्र हैं तथा ईश्वर का निवासस्थान होने से सब दिशाएँ शुभ हैं।

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यंचं न मध्ये परिजग्रभत्॥ एषो ह देवः प्रदिशो नु सर्वाः ३२।२

वारों और वारखण्डों में शुभाशुभत्व के आरोप

मुहूर्त—ऋग्वेद १०।१८९।३ में त्रिंशद् धाम शब्द आया है और ३।३३।५ में मुहूर्त शब्द है। यह अहोरात्र के ३० मुहूर्तों की ओर संकेत है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।१०।१) में यह वर्णन है कि मासों के ३० अहोरात्रों के तथा प्रत्येक अहोरात्र के ३० मुहूर्तों के नामों को जो समझेगा उसे किसी भी अहोरात्र में और मुहूर्त में अशुभत्व की आशंका नहीं होगी। वहाँ शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष के मुहूर्त भिन्न हैं तथा सब शुभ हैं। ज्योतिष में दोनों पक्षों के मुहूर्त एक हैं पर उनमें शुभ ढूँढ़ना पड़ता है। ज्योतिष में मुहूर्तों के नाम कई बार बदले हैं। आजकल नक्षत्रनाम ही मुहूर्तों के नाम हैं पर उनका क्रम नक्षत्रों से भिन्न है और उसका कोई नियम नहीं है। खेद है कि आज हम मुहूर्तों के पुनीत वैदिक नामों को भूल चुके हैं और मुहूर्त बताते समय वर्तमान ज्योतिष के नामों को भी महत्त्व नहीं देते। मुहूर्त के नाम पर उन वारों और लग्नादिकों का प्रयोग करते हैं जिनका वेद से, आकाश से और प्रकृति से कोई सम्बन्ध नहीं है। आज के ज्योतिष में वार सहस्रों भागों में बाँट दिये गये हैं, उस बँटवारे पर हठपूर्वक शंकर-पार्वती, बाबा गोरखनाथ आदि के नाम थोप दिये गये हैं और हर खण्ड पर शुभाशुभत्व का आरोप लगा दिया गया है। दिवस के घटी, पल, क्षण, निमेष, घण्टा, मिनट, सेकण्ड, माइक्रो सेकण्ड आदि करोड़ों विभाग होते हैं। दूरदर्शी मनुष्य उनमें शुभत्वाशुभत्व नहीं देखते। भारत में वेदकाल में यही स्थिति थी पर विदेशी वारों के आगमन के पश्चात् उनमें विविध गुणों के आरोप हुए। तिथियों से, नक्षत्रों से तथा दिशा आदिकों से उनका योग होने पर शत-शत कुयोगों की और उनके शान्तियज्ञों की कल्पना हुई। वेद में जो काल और वार पवित्र, मोद, प्रमोद, पुण्डरीक, विज्ञान, प्रज्ञान, सुदर्शना, पूर्णमासी, कल्याण, तेज, कान्ता आदि नामों से प्रसिद्ध थे उनका लोप हो गया और उनके स्थान पर यमघण्ट, कालदण्ड, राक्षस और वज्र आदि आ गये। एक वार में अनेक वार, एक नक्षत्र में अनेक नक्षत्र और एक राशि में सहस्रों अंश हो गये। इनमें शुभाशुभत्व का आरोप हुआ और उसमें भृगु, पराशर, वसिष्ठ, नारद तथा गर्ग आदि उन महर्षियों के नाम जोड़ दिये गये जिनके समय में वारों, राशियों और इन कुयोगों का जन्म ही नहीं हुआ था। वेदों में और प्राचीन ज्योतिष में मुहूर्तों के काल निश्चित थे पर वारों के पदार्पण के बाद उनके नाम बदले, फल बदले और समय इतने बदले कि अब उसका गणित करना होगा। फलों में मनमानी कल्पनाओं के कारण अनेक मत हो गये। प्रारंभिक मतों में इन सारी कठिनाइयों के बाद भी जनता को यह सुविधा थी कि प्रतिदिन प्रत्येक कार्य के लिए शुभ मुहूर्त मिल जाता था पर आगे चल कर वह भी समाप्त कर दिया गया और दोषों की संख्या इतनी बढ़ गयी कि बड़े-बड़े ज्योतिषी भी मुहूर्त ढूँढ़ने में हताश होने लगे। पीयूषधारा टीकाकार गोविन्द दैवज्ञ स्वयं कहते हैं कि सब दोषों का विचार किया जाय तो सहस्र वर्षों में भी निर्दोष मुहूर्त नहीं मिलेगा क्योंकि स्वरोदय और संहिताओं में कथित सब स्थूल-सूक्ष्म दोष अगणित हैं। हम केवल ऐसा मुहूर्त बता सकते हैं जिसमें गुण अधिक हों और दोष कम, निर्दोष तो असम्भव है, बस उसी से सारा कर्म निभा लो।

स्वरोदयस्थानां संहितिकानां च स्थूलसूक्ष्मदोषाणां त्यागो वर्षसहस्रेणापि दुःशकः।
तत्र गुणानां भूयस्त्वं दोषाणां चाल्पत्वमंगीकृत्य निखिलकृत्यं निर्वाह्यम्॥ (११।३५ टीका)

परन्तु आचार्य श्रीपति की चेतावनी है कि कुछ छोटे दोष, ब्राह्मण को हिरण्य, गौ, भूमि, अन्न, वस्त्र, दासी आदि

देने पर शान्त हो जाते हैं पर कुछ असाध्य हैं। उनमें कर्म करने पर सर्वनाश निश्चित है। याद रखो, धधकती आग में एक बूँद पानी डालने पर उसका पता नहीं लगता। उसी प्रकार अधिक गुण अल्प दोषों को समाप्त कर देते हैं किन्तु कुछ दोष ऐसे हैं जो लाख गुणों को ले डूबते हैं। मदिरा का एक बूँद पूरे पञ्चगव्यकलश को ही भ्रष्ट कर देता है परन्तु यहाँ कठिनाई यह है कि कौन दोष छोटा है और कौन वड़ा, इसका निर्णय कैसे हो? इस विषय में भी तो आचार्यों में मतभेद है!

न भूरिगुणसंचये प्रभवतीह दोषोऽल्पको ह्युदर्चिषि हुताशने सलिलविन्दुरेको यथा।
मद्यस्य विन्दुरपि पावनपञ्चगव्यं सम्पूर्णमेवकलशं मलिनो करोति॥ (मु० चि० ११।३५ टीका)

पहले यह सारा प्रपंच केवल दिन में था और पूरी रात शुभ थी। लिखा है कि कालवेला में काम करने पर मर जाओगे, यम घण्ट में करने पर दरिद्र हो जाओगे, कुलिक सर्वनाश कर देगा पर रात्रि में दोष नहीं लगेगा। जैसे कामिनी के कटाक्षबाण अन्धे के सामने निष्फल हो जाते हैं उसी प्रकार ये सारे दोष रात्रि के गन्ध से शक्तिहीन हो जाते हैं।

निधनं कालवेलायां यमघण्टे दरिद्रता।
कुलिके सर्वनाशः स्याद् रात्रावेते न दोषदाः॥
तमस्विनीगन्धमुपेत्य वारदोषास्तथा शक्तिमनाप्नुवन्तः।
अन्धं समासाद्य विलासिनीनां कटाक्षबाणा इव निष्फलाः स्युः॥

एक वार में २४ वार—मुहूर्त चिन्तामणि (१।५६) में लिखा है कि एक वार में २४ सूक्ष्म वार होते हैं और वे होरा (HOUR) कहे जाते हैं। प्रत्येक वार में प्रथम होरा उसी वार की होती है और उसके बाद ग्रह कक्षा के पिछले प्रथम चक्र वाला क्रम चलता है अर्थात् शनिवार में प्रथम होरा शनि की, दूसरी, गुरु की, सातवीं चन्द्रमा की और २४वीं मंगल की होती है। जो कर्म जिस वार में करने का आदेश है उसको उसी की होरा में करना चाहिए अन्यथा कार्य निष्फल हो जायेंगे। आपको कोई कार्य गुरुवार में बताया गया है तो उसको गुरु की ही होरा में करें और उसका समय ज्योतिषी से पूछ लें। इसी श्लोक की टीका में लिखा है कि सूर्य की होरा मार डालती है, मंगल के घण्टे में काम करने पर जेल जाना पड़ता है, शनि की होरा जड़ बना देती है, चन्द्रमा की स्थिर आसन देती है, बुध की होरा में शुभ कर्म करने से पुत्रलाभ होता है, गुरु की होरा वस्त्रालंकार देती है और शुक्र की होरा में सुन्दरी पत्नी मिलती है। इस श्लोक में रामाचार्य ने यह भी बता दिया है कि जिस नक्षत्र में जिस कर्म का आदेश है उसे उसी के मुहूर्त में करना चाहिए।

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेऽस्य।
भानुहोरा मृतिं कुर्याच्चन्द्रहोरा स्थिरासनं कारावन्धं भौमहोरा वुधहोरा च पुत्रदा॥
वस्त्रालंकारदा जीवहोरा शौक्री विवाहदा।
जडत्वं शनिहोरायां सप्तहोरा फलन्त्विदम्॥

उपमुहूर्त—वेदों में दिन और रात्रि के ६० मुहूर्तों के नाम शोभन, शोभमान, दाता, प्रदाता, मोद, प्रमोद, आनन्द, अमृता, समृद्ध, तेजस्वी और शम्भू आदि हैं। इनमें एक भी अशुभ नहीं है और वहाँ लिखा है कि कोई मुहूर्त अशुभ नहीं है। एक मुहूर्त में १५ उपमुहूर्त होते हैं वे सब शुभ और शीघ्रता बोधक हैं। उनके नाम हैं इदानीं, तदानीं, एतर्हि, क्षिप्र, अचिर। आशु, निमेष, फण, द्रवन्, अतिद्रवन्। त्वरन्, त्वरमाण, आशु अशीयान्, जव।

आपने देखा कि वैदिक ऋतुओं, मासों, पक्षों, तिथियों दिवसों, मुहूर्तों और उपमुहूर्तों में एक भी अशुभ नहीं है। पर वेद के नेत्र ज्योतिष में काल्पनिक सात वारों में अगणित खण्डों की कल्पना की गयी है और उनके शुभाशुभत्व के निरूपण की परस्पर विरुद्ध अगणित पद्धतियाँ हैं। उनमें से यहाँ १० दी जा रही हैं

(१) वेद के ६० मुहूर्त				(२) ज्योतिष के ३० मुहूर्त	
शुक्ल पक्ष		कृष्ण पक्ष		दोनों पक्ष	
दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि
चित्र	दाता	प्रस्तुत	अभिशास्ता	शिव	शिव
केतु	प्रदाता	विष्टुत	अनुमन्ता	सर्प	अजपात्
प्रभान्	आनन्द	संस्तुत	आनन्द	मित्र	अहिर्बुध्न्य
आभान्	मोद	कल्याण	मोद	पितर	पूषन्
संभान्	प्रमोद	विश्वरूप	प्रमोद	वसु	अश्वि
ज्योतिष्मान्	आवेशन	शुक्र	आसादयन्	जल	यम
तेजस्वान्	निवेशन	अमृत	निसादयन्	विश्व	अग्नि
आतपन्	संवेशन	तेजस्वी	संसादन	अभिजित्	ब्रह्मा
तपन्	संशान्त	तेज	सादन	विधाता	सोम
अभितपन्	शान्त	समृद्ध	संसन्न	इन्द्र	अदिति
रोचन	आभवन्	अरुण	आभू	इन्द्राग्नि	गुरु
रोंचमान	प्रभवन्	भानुमान्	विभू	निर्ऋति	विष्णु
शोभन	संभवन्	मरीचिमान्	प्रभू	वरुण	सूर्य
शोभमान	संभृत	अभिजित्	शंभू	अर्यमा	त्वष्टा
कल्याण	भूत	तपस्वान्	भुव	भग	वायु

(३) शिवोपदिष्ट चौघड़िया मुहूर्त

वेद और ज्योतिष के ३० मुहूर्त प्रत्येक दिन और रात में एक क्रम से आते हैं पर चौघड़िया में ऐसा नहीं है। इसमें हर वार के मुहूर्त भिन्न–भिन्न हैं। इसमें दिन और रात के विभाग आठ–आठ हैं पर उन्हें सात ही मुहूर्तों में बाँटा गया है। एक मुहूर्त लगभग ६० मिनट का होता है। इस समय इसकी दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं और दोनों एक दूसरी के विरुद्ध हैं। एक में सब मुहूर्त दिन–रात क्रमशः चलते हैं पर दूसरे दिन के प्रारम्भ में न जाने क्यों एक मुहूर्त उड़ जाता है। दूसरी विधि में रात में क्रम समाप्त हो जाता है। कब कौन मुहूर्त रहेगा, इसका ज्ञान पोथी से ही होगा। मुहूर्तों के नाम हैं—उद्वेग, चर, लाभ, अमृत, काल, शुभ, रोग।

(३) चौघड़िया की प्रथम पद्धति

रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल
चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ

लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्योग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर
शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल

रात्रि के मुहूर्त

रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर
शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्योग	अमृत
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल
चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ

(४) चौघड़िया की द्वितीय पद्धति

इसमें दिन के मुहूर्तों वाला प्रथम चक्र प्रथम पद्धति के समान ही है किन्तु द्वितीय में बहुत अन्तर है। प्रथम पद्धति में रविवार की रात्रि का पाँचवाँ मुहूर्त शुभ है तो दूसरी में काल। छठाँ मुहूर्त रोग है तो दूसरी में लाभ। प्रथम पद्धति में सोमवार का द्वितीय मुहूर्त शुभ है तो दूसरी में रोग। शनिवार की रात्रि का छठाँ मुहूर्त प्रथम पद्धति में अमृत है तो दूसरी में रोग। ऐसे अनेक विरोधी उदाहरण हैं। आश्चर्य है, शंकर द्वारा गौरी को उपदिष्ट इस शास्त्र में इतना मतभेद कहाँ से आ गया? आश्चर्य है, उद्वेग मुहूर्त को कई पंचांग उत्पात कहते हैं पर महाराष्ट्र में उसका नाम उद्योग है। उद्योग और उद्वेग में कितना अन्तर है। हम किसकी बात सत्य मानें?

रात्रि के मुहूर्त

रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग
चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर

लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल
शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

(५) द्विघटिका (दो घड़िया) मुहूर्त

चौघड़िया से जो काल शुभ होता है वह दो घड़िया से अशुभ हो जाता है पर दोनों के उपदेशक एक ही शिव हैं। इसमें होरा शब्द आया है अतः सिद्ध है कि किसी पण्डित ने इसे शिव पर थोपा है क्योंकि होरा शब्द विदेशी है। यहाँ पार्वती कहती हैं कि होरा शुभ है तो तुम तिथि नक्षत्र आदि की चिन्ता मत करो और भद्रा आदि से मत डरो। समझ लो कि सब कुछ शुभ है।

न तिथिर्न च नक्षत्रं न योगः करणं तथा।
न शूलं योगिनी राशिर्नास्ति होरासमो गुणः॥
व्यतीपाते च संक्रान्तौ भद्रायामशुभे दिने।
शिवाकथितमालोक्यं सर्वविघ्नोपशान्तये॥

दो घड़िया मुहूर्त ४५ मिनट के होते हैं। इनकी संख्या १६ है। १६ मुहूर्त दिन में और १६ रात्रि में होते हैं। पता नहीं, शिव–पार्वती ने वेद और ज्योतिष के नियमित १५ मुहूर्तों को हटा कर इन अनियमित १६ होराओं की स्थापना क्यों की। इनके नाम हैं—

१ रौद्र	५ जयदेव	९ रावण	१३ याम्य
२ श्वेत	६ वैरोचन	१० बालव	१४ सौम्य
३ मैत्र	७ तुराग	११ विभीषण	१५ भार्गव
४ चार्वट	८ अभिजित्	१२ सुनन्दन	१६ सावित्र

अनियम ही इस पद्धति का नियम है। इसमें रविवार के दिन का प्रथम मुहूर्त रौद्र और अन्तिम सावित्र होता है। रविवार की रात्रि में तथा अन्य वारों के दिनों में और रात्रियों में भी यही क्रम रहना चाहिए था पर रात्रि में, दिन में और प्रत्येक वार में अनेक अव्यवस्थाएँ, हैं। (१) इसमें इन १६ होराओं के साथ चौघड़िया मुहूर्त भी जोड़ दिये गये है और इन १६ को उन ८ में बाँट दिया गया है। (२) साथ ही साथ इनमें सत्त्व, रज, तम गुण भी आरोपित हैं। (३) इनसे चौघड़िया मुहूर्तों को जोड़ने में पीछे की द्वितीय पद्धति ली गयी है किन्तु यहाँ जो सत्त्वादि तीन, उद्वेगादि सात और रौद्रादि १६ कालमानों का मिश्रण किया गया है उससे कोई भी काल शुभ या अशुभ नहीं रह पाता। कभी काल नामक मुहूर्त सत्त्वगुणी हो जाता है तो कभी रोग मुहूर्त में सौम्य होरा आ जाती है। रौद्र और श्वेत होराएँ, कभी उद्वेग मुहूर्त में आती हैं तो कभी अमृत में। रविवार के दिन का मूहूर्त तम और रोग से जुड़ा है तो रात्रि का सौम्य मुहूर्त रज और उद्वेग के साथ है। सोमवार के दिन का रौद्र मुहूर्त अमृत से जुड़ा है तो रात्रि का जय मुहूर्त तम से। ऐसा लगता है कि ये भेड़ों के तीन समूह हैं, समूहों में भी भेंड़े भिन्न–भिन्न रूपों की हैं और वे सब सात वार रूपी बाड़ों में एकत्रित होकर ऐसी भेंड़ियाधसान करती हैं कि वारों के गुणों का निर्णय असम्भव हो जाता है। आप सोचें कि इनमें वारविभाग रूप अन्य भेंड़ समूहों को मिला देने पर वारों की क्या स्थिति होगी। ग्रन्थविस्तार के भय से यहाँ केवल रविवार और सोमवार के दिन और रात्रि के मुहूर्त लिखे जा रहे हैं। इन्हीं से शेष १० चक्रों सम्बन्धी घपलों का अनुमान कर लें।

रविवार दिन			रविवार रात्रि		
रौद्र–श्वेत	उद्वेग	तम	श्वेत–मैत्र	शुभ	रज
मैत्र–चार्वट	चल	सत्त्व	चार्वट–जय	अमृत	तम
जयदेव–वैरोचन	लाभ	रज	वैरो० तुरग	चल	सत्त्व
तुरग–अभिजित्	अमृत	तम	अभि० रावण	रोग	रज
रावण–बालव	काल	सत्त्व	बालव–विभी०	काल	तम
विभीषण–सुनन्द	शुभ	रज	सुनन्द–याम्य	लाभ	सत्त्व
याम्य–सौम्य	रोग	तम	सौम्य–भार्गव	उद्वेग	रज
भार्गव–सावित्र	उद्वेग	सत्त्व	सावित्र–रौद्र	शुभ	तम

सोमवार दिन			सोमवार रात्रि		
मैत्र–चारु	अमृत	सत्त्व	चार्वट–जय	चर	तम
जय–वैरोचन	काल	रज	वैरोचन–तुरग	रोग	सत्त्व
तुरग–अभिजित्	शुभ	तम	अभिजित्–रावण	काल	रज
रावण–बालव	रोग	सत्त्व	बालव–विभीषण	लाभ	तम
विभीषण–सुनन्द	उद्वेग	रज	सुनन्द–याम्य	उद्वेग	सत्त्व
याम्य–सौम्य	चल	तम	सौम्य–भार्गव	शुभ	रज
भार्गव–सावित्र	लाभ	सत्त्व	सावित्र–रौद्र	अमृत	तम
रौद्र–श्वेत	अमृत	रज	श्वेत–मैत्र	चल	सत्त्व

शिवप्रोक्त एक पद्धति में जो शुभ है वही दूसरी में अशुभ है और वही यहाँ शुभ–अशुभ दोनों है क्योंकि प्रत्येक मुहूर्त के शुभ और अशुभ दो भाग हो जाते हैं। रोग में सौम्य भी है, शुभ में भीषण भी है और उद्वेग में सावित्र भी है।

अथर्वज्योतिष में दिन में १५ मुहूर्त माने गये हैं और उनके नाम हैं—रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, सावित्र, वैराज, विश्वावसु, अभिजित्। अभिजित् के आगे उलटे क्रम से विश्वावसु से रौद्र तक सात मुहूर्त और हैं। इस प्रकार सब १५ हो जाते हैं पर फल में ऊपर वाले नामों से विभिन्नता हो जाती है। यहाँ चार्वट के स्थान में सारभट, विश्वावसु के स्थान में रावण और सावित्र के स्थान में विभीषण हो जाता है। अथर्वज्योतिष में करणों और योगों का भी वर्णन है अतः इन मुहूर्त—पद्धतियों की भाँति उसका भी नवीनत्व स्पष्ट है।

शंकाएँ—(१) शिव और अथर्ववेद के मुहूर्तों में मतभेद क्यों हैं? (२) हमने शिव, अथर्ववेद और ब्राह्मण ग्रन्थों के मुहूर्तों का परित्याग कर पाश्चात्य पद्धति को क्यों स्वीकार किया है? (३) क्या उद्वेग मुहूर्त के समय हम प्रतिदिन उद्विग्न हो जाते हैं? (४) क्या अमृत मुहूर्त में अमृत की वर्षा होती है? (५) क्या ये विविध स्थितियाँ प्रतिदिन आती है? (६) बीच में एक मुहूर्त लुप्त क्यों हो जाता है?

(६) दो घड़िया का अन्य विधान

इसमें केवल चार मुहूर्त हैं। माहेन्द्र, शुभ, वक्र, शून्य। दो शुभ और दो अशुभ हैं। इनके काल प्रत्येक मास में भिन्न भिन्न हैं। शंकर भगवान् पार्वती से कहते हैं कि पंचांग के पाँचों अंगों को छोड़ केवल इन्हीं को देखो। मिहिर का कथन है कि चारों के चार फल हैं। नीचे के तीन चक्रों में इनकी घटियाँ लिखी हैं। सबका योग ३० है पर यह नियम नहीं है कि एक मुहूर्त कितनी घटियों तक रहेगा और किसके बाद कौन आयेगा। वैशाख से ज्येष्ठ का और आषाढ़ से श्रावण का नियम भिन्न है। माहेन्द्र की घटियाँ सर्वत्र कम हैं।

न तिथिर्न च नक्षत्रं न योगः करणं तथा।
शिवस्याज्ञां समादाय देवकार्यं विचिन्तयेत्॥
माहेन्द्रममृतं वक्रं शून्यं क्षणचतुष्टयम्।
क्रियते मिहिरेणेदं यात्रोद्वाहादिमंगले॥
माहेन्द्रे विजयो नित्यममृते कार्यसाधनम्।
वक्रे गतिविलम्बः स्यात् शून्ये च मरणं भयम्॥

मा = माहेन्द्र
अ= अमृत
व = वक्र
शू= शून्य

माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, श्रावण, भाद्रपद

रवि		सोम		भौम		बुध		गुरु		शुक्र		शनि	
दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि
मा २	शू २	मा ४	व ४	अ ६	व ४	व ४	शू २	अ ६	व ४	शु २	व ४	शु ४	व ६
अ ८	मा २	व ८	व ८	शू २	मा ४	अ ४	अ ६	शू २	मा ४	अ १६	शू २	व २	अ ६
व १०	शू २	अ ६	अ २	व २	अ २	व ६	मा ४	व ४	अ १६	व ८	अ ६	शु २	व ४
शू ८	अ ४	व ६	व ८	अ ६	व ६	अ ४	व ४	अ ६	व ८	अ २	व ६	अ ८	शु ४
अ २	शू २	अ ४	अ ४	शू ८	अ ४	शू २	शू ४	व ८	अ ४	शू २	मा ६	शु २	अ ४
	अ ४	शू २	शू ४	अ ४	शू २	व ४	अ १०	अ ४	शू ४		शु २	व २	शु २
	शू २		व २	शू २	व २	मा २			अ ४		अ ४	शु ४	अ ४
	व ६		शू २		मा २	अ ४						अ ४	
	शू ६				अ ४							शु २	
	मा २												
	अ ४												

आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष

रवि		सोम		मंगल		बुध		गुरु		शुक्र		शनि	
दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि
शु ४	शु ४	अ ८	व ६	अ ४	व ६	शु २	अ १०	अ २	शु ४	व ८	व ४	शु ४	शु २
अ ६	अ ४	मा ४	अ ८	व ६	अ ८	मा ४	शु २	शु ४	व ४	अ ४	शु २	अ ४	व ४
व ६	व ६	शु ६	व ६	अ २	व ६	अ ८	व ८	व ६	शु २	शु २	अ ६	शु ४	अ ६
अ ६	अ ६	अ ६	अ ४	शु ४	अ ४	व ६	अ ६	अ ४	अ ६	अ २	शु ६	अ ८	व ४

दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि
व ४	शु ४	मा ६	शु २	मा ६	शु २	शु ८	शु २	शु २	व ६	व ४	मा २	शु २	अ ६
अ २	व ६		व ४	शु ६	व ४	व २	व २	व ४	शु २	अ ६	शु २	व ४	व ४
शु २				व २				अ ६	व ६	मा ४	व ८	शु २	अ ४
								मा २				मा २	

ज्येष्ठ–आषाढ़ मलमास

रवि		सोम		भौम		बुध		गुरु		शुक्र		शनि	
दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि
अ ६	शु २	अ ४	व ६	शु ४	शु २	शु २	व ४	अ ४	व ८	अ २	व ४	मा २	शु २
व ८	अ ८	व ४	अ ८	व ६	अ ८	मा ४	अ ४	व ६	अ ६	व २	अ ४	शु ६	व ४
अ ८	व ६	अ ६	व ८	अ ४	व ६	अ ४	व ८	अ ४	व ६	अ ६	शु ४	अ ८	मा २
शु २	अ ६	व १६	मा २	शु ४	अ ६	व ६	अ ६	शु ४	अ ६	व ६	अ २	व १०	अ ४
मा २	व ४		व ६	व ६	व ६	शु २	शु ८	व ६	व ४	अ ८	व ४	शु ४	शु १०
शु ४	मा ४			शु २	मा २	व ४		शु २		शु २	अ ४		अ २
				अ ४		अ ६		अ ४		व ४	शु ८		व २
						शु २							शु २
													अ २

(७) गोरखमत–बाबा गोरखनाथ अनेक पाखण्डों के साथ–साथ इस मुहूर्तवाद से भी दूर रहे हैं पर ज्योतिषियों ने सूर्य, भृगु और गर्ग आदि की भाँति इस वाद में उन्हें भी घसीटा है। नीचे लिखे गोरखचक्र का मुहूर्तचिन्तामणि (११। २३) में भी वर्णन है पर वहाँ उनका नाम नहीं है। भारत के महाराष्ट्र, गुजरात आदि के कई पुराने पंचांगों में इसका उल्लेख है।

पौष	माघ	फाल्गुन	चैत्र	वै०	ज्ये०	आ०	श्रा०	भा०	आ०	का०	मार्ग०	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	सुख	कष्ट	भय	लाभ
२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	शून्य	हानि	हानि	मिश्र
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	कष्ट	कष्ट	लाभ	लाभ
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	लाभ	सुख	सुख	लाभ
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	लाभ	लाभ	लाभ	सुख
६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	भय	लाभ	मृत्यु	लाभ
७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	लाभ	कष्ट	लाभ	शुभ
८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	कष्ट	सुख	कष्ट	सुख
९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	सुख	लाभ	सुख	कष्ट
१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	कष्ट	कष्ट	लाभ	लाभ
११	१२	१	२	३	४	५.	६	७	८	९	१०	मृत्यु	लाभ	लाभ	शून्य
१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	शून्य	सुख	मृत्यु	कष्ट

इस चक्र का अर्थ यह है कि पौष मास की प्रतिपदा को पूर्व दिशा में गमन करने पर सुख़ की प्राप्ति होगी। दक्षिण जाने पर क्लेश, पश्चिम की यात्रा में भय और उत्तर की यात्रा में अर्थागम होगा। माघ की द्वितीया, फाल्गुन की तृतीया आदि के भी ये ही फ़ल हैं। इसी प्रकार नीचे की पंक्तियों में देखना चाहिए किन्तु यह फल मुहूर्तचिन्तामणि का है। अन्य ग्रन्थों के इस चक्र के फलों में मतभेद भी है।

यहाँ द्वादशी के बाद तीन तिथियाँ नहीं लिखी हैं। इसका कारण यह है कि त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा के फल तृतीया, चतुर्थी और पंचमी तुल्य ही हैं। कुछ ग्रन्थों ने चार दिशाओं की भाँति दिन के चार प्रहरों के फल भी लिखे हैं। वे अनेक स्थानों में दिक्फलों को काट देते हैं। जेसे पौष मास की प्रतिपदा को पूर्व दिशा की यात्रा सुखप्रद और लाभप्रद है परन्तु तीसरा प्रहर हो तो अशुभ हो जाती है। माघ मास की चतुर्थी में उत्तर की यात्रा लाभप्रद है किन्तु चौथा प्रहर हो तो विनाशकारिणी है। पौषाष्टमी आदि के तो चारों प्रहर अशुभ हैं। यहाँ ग्रन्थ विस्तार के भय से प्रहर का चक्र नहीं दिया जा रहा है पर वह गोरखनाथ का कहा गया है। मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ से कहते हैं कि भरणी, भद्रा, योगिनी, दिक्शूल, चन्द्रदोष, घातवार आदि कुछ भी न देखो। बस इस एक चक्र को ही मानो। इसके आगे वाले श्लोक में लिखा है कि यात्राकालीन तिथि, नक्षत्र और वार के योग को तीन स्थानों में लिखो और उसमें सातं, आठ तथा तीन का भाग दो। प्रथम स्थान में शून्य बचे तो यात्रा करने पर अति कष्ट होगा। द्वितीय में शून्य बचे तो धन नाश होगा और तृतीय में शून्य बचे तो मृत्यु होगी। इसी विषय को चण्ड़ेश्वर ने दैवज्ञ मनोहर में दूसरे प्रकार से कहा है।

(८) आठवीं पद्धति पिछली सातों के विपरीत है। इसमें प्रत्येक वार के दिन के कुछ मुहूर्त अशुभ हैं पर शुभ वारों में अशुभ मुहूर्त अधिक हैं और अशुभ वारों में कम। ये रात में नहीं आते। इनका मान दिन का सोलहवाँ भाग है।

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
६	४	२	२	२	४	१
७	६	३	४	६	५	२
८	८	४	८	१२	६	८
१०	९	६	९	१४	९	१०
१४	१२	१०	१०	१५	१०	११
	१३		१४	१६	१२	१२
	१४				१४	

(९) कुछ आचार्य दिन का आठ भाग कर प्रथम भाग वार स्वामी को देते हैं और शेष ग्रहों को क्रमशः अन्य भागों का स्वामी मानते हैं। आठवाँ भाग बिना स्वामी का रह जाता है। प्रत्येक वार में शनि का भाग कुलिक, बुध का कालवेला, गुरु का यमघण्ट और मंगल का कण्टक (मृत्यु) कहा जाता है। वसिष्ठ का कथन है कि ये सब दरिद्रता और मृत्यु आदि देते हैं। कुछ आचार्य कहते हैं कि रात्रि में इनका इसी प्रकार विचार करना चाहिए परन्तु वसिष्ठादि मुनियों का कथन है कि जेसे अन्धे मनुष्य के सामने युवतियों के कटाक्ष बाण निष्फल हो जाते हैं वैसे ही ये अशुभ काल रात्रि के अन्धकार को देख कर शक्तिहीन हो जाते हैं।

अन्धं समासाद्य विलासिनीनां कटाक्षबाणा इव निष्फलाः स्युः।

रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि

७	६	५	४	३	२	१	कुलिक
३	२	१	७	६	५	४	कण्टक
४	३	२	१	७	६	५	कालवेला
५	४	३	२	१	७	६	यमघण्ट

इस नवम पद्धति की मुख्य शंकाएँ ये हैं—(१) शुभ ग्रह बृहस्पति और बुध के प्रहर यमघण्ट और काल क्यों हो जाते हैं? (२) भौम और शनि के प्रहर भीषण हैं तो रवि के क्यों नहीं? वह भी तो पाप ग्रह है? (३) शुभ ग्रह बुध और गुरु के प्रहर भीषण हैं तो सोम और शुक्र के शुभ क्यों? (४) पहली पद्धति में दिन के आठ भागों के स्वामी शनि, भौम, गुरु, आदि हैं। वहाँ कक्षाक्रम की महत्ता है तो यहाँ दिन के आठ भागों के स्वामियों में सूर्य, चन्द्र, मंगलवाला क्रम कैसे आ गया? (५) क्या आकाश में यह क्रम कहीं दिखाई देता है? क्या आकाश में चन्द्रमा के सबसे पास मंगल है? क्या बुध बृहस्पति पास-पास हैं?

(१०) इस पद्धति में दिनमान का १६ भाग करके ऊपर वाले खण्डों की द्विगुणित संख्या को कुलिक आदि कहा जाता है। ७, ६, ५, आदि के स्थान में १४, १२, १० आदि अंक लिखे जाते हैं।

यहाँ तक अहोरात्र को अनेक भागों में बाँटकर उनके फल की दस विधियों का वर्णन किया गया पर अन्य विधियाँ भी हैं। आज इनकी कहीं पूछ नहीं है। इस समय यात्रा, विवाह, गृहारंभ आदि में शुभ लग्न का सबसे अधिक महत्त्व है पर नवांश, द्रेष्काण आदि विधियों से लग्न के भी सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं और इन दस विधियों की भाँति वहाँ भी यह प्रश्न आ खड़ा होता है कि हम किसे महत्त्व दें। लग्न को या होरा को, द्रेष्काण को या नवांश को। वार के खण्डों और लग्न से सम्बन्धित गुलिक और प्राणपद नामक दो अन्य विधान भी हैं। उनका वर्णन आगे है।

वारों के काल्पनिक फल और वारमहिमा

प्रत्येक वार को कई सौ टुकड़ों में बाँट दिया गया और हर खण्ड के परस्पर विरोधी भिन्न–भिन्न फल लिख दिये गये तो किसी भी पूरे वार को एक फल नहीं होना चाहिए फिर भी न जाने क्यों, ज्योतिषियों ने सबके मनमाने भिन्न–भिन्न फल लिखे हैं। उनमें से कुछ ये हैं—रविवार को विद्यारंभ करने पर विद्या नहीं आती, रजस्वला नारी नहाने पर रुग्णा हो जाती है तथा हवन करने पर सुख और धन नष्ट हो जाते हैं। सोमवार को कृषि कर्म करने पर कृषि नष्ट हो जाती है, मंगल को किया शुभ कर्म देश को भस्म कर देता है, बुधवार बुद्धि को तीक्ष्ण कर देता है, गुरुवार इष्टप्राप्ति कराता है, शुक्रवार विचारों को शुद्ध कर देता है और शनिवार को शुभ कर्म करने पर सर्वनाश हो जाता है। प्रत्येक वार के कर्म नियत हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
यात्रा	शंख	चोरी	विद्या	विद्या	विद्या	पापकर्म
संग्राम	कमल	विषदान	यज्ञ	यज्ञ	यज्ञ	विषदान
यज्ञ	मोती	वध	नृत्य	पौष्टिक	नृत्य	मदिरा
मंत्र	चाँदी	भेद	शिल्प	मंगल	गीत	लोहा
नौकरी	गन्ना	दाह	लिपि	सोना	वादन	कालापदार्थ
वाहन	पुष्प	संग्राम	वाहन	भूषण	सोना	
उत्सव	वस्त्र	छल	गीत	वस्त्र	नारी	शस्त्र
				वृक्ष	गो अन्न	

कुछ कर्मों के वारफल

	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
तेलमर्दन	ज्वर	कान्ति	मृत्यु	लाभ	दरिद्रता	विपत्	लाभ
वस्त्रधारण	जीर्णता	आर्द्रता	शोक	लाभ	ज्ञान	मान	कष्ट
क्षौर–आयु	हानि	वृद्धि	हानि	वृद्धि	वृद्धि	वृद्धि	हानि
रजोदर्शन	विधवा	पुत्रहानि	आत्महत्या	कन्याप्ति	पुत्राप्ति	सौभाग्य	पुंश्चली
पुंसवन	पुत्रवती	मृत्यु	पुत्रलाभ	पुत्रनाश	पुत्रलाभ	काकवंध्या	मृत्यु
विद्यारम्भ	सम	जड़ता	मृत्यु	शुभ	शुभ	शुभ	मृत्यु
ऋतुस्नान	रुग्णा	पतिप्रिया	दीना	पुत्रवती	सुखी	पतिप्रिया	क्लेश
कैसा वस्त्र पहनें	नीला	चित्र	लाल	पीला	श्वेत	श्वेत	काला

भिन्न–भिन्न वारों में जन्म के फल

रविवार—शूर, अल्पकेश, श्याम, पित्तप्रकृति, दाता, पराक्रमी.....।

सोमवार—ज्ञानी, शान्त, मृदुभाषी, राजमान्य, धीर, विद्यावान्.....।

भौमवार—कटुभाषी, कृषिजीवी, कलहप्रिय, मन्त्री, उग्रस्वभाव....।

बुधवार—सुन्दर , वक्ता, धनवान्, कलावान्, विद्वान्, मेधावी, वणिक्.....।

गुरुवार—विद्वान्, गुरु, धनी, राजमान्य, लोकमान्य, सुन्दर, सर्वज्ञ....।

शुक्रवार—सुकेश, सुवेष, मेधावी, श्वेतवस्त्रप्रिय, विद्वान्, सुमार्गी।

शनिवार—दुर्बल, तमोगुणी, निर्दय, मूर्ख, कलहप्रिय, अकालवृद्ध।

वारों का आकाश से कोई सम्बन्ध नहीं है पर उनके फल कई सहस्र हैं। ३६० तिथियों में वारों के आने से उनके लगभग एक सहस्र फल हो जाते हैं। चैत्र मास की प्रतिपदा को रविवार हो तो घोर सूखा पड़ता है और जनता दुखी हो जाती है। सोमवार हो तो धरती अन्न, जल और आनन्द से परिपूर्ण हो जाती है।

प्रतिपदि रविवारश्चैत्रमासे यदि स्यान्न भवति न जलवृष्टिः दुःखिता लोकसंघाः।
प्रतिपदि शशिवारश्चैत्रमासे यदि स्याद् भवति ननु धरित्री सस्यतोयाभिपूर्णा॥

इसी प्रकार चैत्रप्रतिपदा से सम्बन्धित सातों वारों के फल लिखे हैं। वैशाख की त्रयोदशी को यदि रवि–भौम वार हों तो पीपर, चीनी, पान आदि मँहगे हो जाते हैं और वैशाख शुक्ला पंचमी को शनिवार हो तो लाल वस्त्र, ताँबा आदि मँहगे हो जाते हैं।

वैशाखस्य त्रयोदश्यां यदि भौमार्कवासरौ।
कृष्णा च शर्करा नागबल्ली दुर्लभतां व्रजेत्॥
वैशाखस्य सिते पक्षे पंचम्यां चेत् शनैश्चरः।
रक्तवस्त्रं च ताम्रादि महर्घन्ति न संशयः॥

ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा को यदि शुभ अर्थात् सोम, गुरु, शुक्रवार आ जायँ तो मनुष्य सुखी हो जाते हैं, वृष्टि होती है तथा अन्न की वृद्धि हो जाती है और ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपदा को सूर्य, मंगल और शनिवार आ जायँ तो व्याधियों की वृद्धि होती है।

ज्येष्ठे शुक्लप्रतिपदि चन्द्रेज्यभृगुवासरे।
भवन्ति सुखिनो लोका वृष्टयः सस्यसम्पदः॥
ज्येष्ठकृष्णप्रतिपदि भौमार्कशनिवासराः।
यदा भवन्ति लोकानां तदा व्याधिभयं भवेत्।

आषाढ़ कृष्ण पंचमी को रविवार होने पर सूखा, भौम होने पर युद्ध, शनि होने पर विनाश और सोम आदि शुभवारों के रहने पर वृष्टि, शुभ, क्षेम और सुख का आगमन होता है। आषाढ़ शुक्ल पंचमी को शुभ वारों के रहने पर सारी धरती धन–धान्य से परिपूर्ण हो जाती है और अशुभवारों से युत होने पर अकाल आ जाता है।

आषाढ़मासेऽसितपक्षपंचमी ख्यादिवारेषु यथाक्रमेण।
चेदल्पवृष्टिर्विपुला च वृष्टिर्युद्धं सुखं क्षेमशुभे च नाशः॥
आषाढ़शुक्लपंचम्यां शुभवारेऽखिला धरा।
धनधान्ययुता वारे पापानां रहिता च तैः॥

गुरुवार को सूर्य की कोई भी संक्रान्ति होने पर पृथ्वी पर सोना बरसने लगता है, ब्राह्मण यज्ञ करने लगते हैं और चारों ओर महोत्सव होने लगते हैं। वे ही संक्रान्तियाँ शनिवार को लग जायँ तो चारों ओर दुर्भिक्ष छा जाता है। पौष शुक्ल त्रयोदशी को यदि शनि, शुक्र और मंगलवार आ जायँ तो पानी बहुत बरसेगा। उस समय घर में गेहूँ इकट्ठा करके रख देना चाहिए। शनिवार ही नहीं, किसी भी पाप वार में संक्रान्ति लगने पर मास भय से, घोर दुर्भिक्ष से और अतिवृष्टि से क्लेशमय हो जाता है।

गुरोर्दिने संक्रमणे तु भानोर्मही सदा नन्दति हेमधारया।
शनेर्दिने संक्रमणे च भानोर्दुर्भिक्षमन्नस्य भवेद् धरायाम्॥
शुक्ला त्रयोदशी पौषे मन्दशुक्रकुजैर्युता।
यदि वर्षति जीमूतः कार्यो गोधूमसंग्रहः॥
संक्रान्तिर्जायते यत्र भास्करे भूसते शनौ।
तस्मिन् मासि भयं घोरं दुर्भिक्षात् वृष्टितो भयम्॥

माघ कृष्ण सप्तमी षष्ठी और पंचमी को रवि, शुक्र और भौम वार हों तो पृथ्वी युद्ध से आकुल हो जाती है। किसी भी मास में पाँच शुभ वार आ जायँ तो आनन्द की और पाँच पाप वार आ जायँ तो विपत्तियों की वर्षा होने लगती है। माघ शुक्ल द्वितीया–तृतीया को गुरुवार हो तो राजा–प्रजा को बहुत सुख मिलता है। अमावास्या को भौमवार हो तो गंगा–स्नान से सहस्र गोदान का फल मिलता है। किसी भी अमावास्या को भिन्न भिन्न वार छू दें तो उनके भिन्न भिन्न फल होते हैं। हर तिथि की यही स्थिति है।

पंचमी सप्तमी कृष्ण माघमासस्य षष्ठिका।
शुक्रार्करविसंयुक्ता तदा युद्धाकुला धरा॥

माघशुक्लद्वितीया च तृतीया गुरुसंयुता।
राजानस्तत्र सुखिनः प्रजा नन्दन्ति नित्यशः॥
कस्मिंश्चिदपि मासे चेदागताः पंचवासराः।
शुभाः कल्याणजनकाः पापाः सौख्यार्थनाशकाः॥
अमावास्यां स्पृशेद्वारो यदि भूमिसुतस्य वै।
जाह्नवीस्नानमात्रेण गोसहस्त्रफलं लभेत्॥

वार और वर्षा

श्री जीवनाथ शर्मा ने वर्षा के विषय में संस्कृत में वनमाला नाम का एक छोटा सा ग्रन्थ लिखा है। काव्य की दृष्टि से ग्रन्थ अति उत्तम और सरस है पर मैं उसमें लिखे वर्षा और सूखा के योगों द्वारा अपने कृषक जजमानों की कोई सहायता न कर सका और प्रयास करने पर भी वर्षा का भविष्य न जान सका। वर्षा के फल में भी ज्योतिषियों ने वारों को बहुत महत्त्व दिया है। भडली नाम के एक नूतन कवि ने घाघ और भड्डुरी की भाँति वर्षा, आँधी, सूखा आदि के विषय में मेघमाला नामक एक छोटा सा ग्रन्थ लिखा है। वह भी अनुभूति पर नहीं बल्कि वनमाला आदि पुराने संस्कृत ग्रन्थों पर ही आश्रित है। कठिनाई यह है कि स्थानों के अक्षांश–देशान्तर में थोड़ा सा ही अन्तर है अर्थात् जहाँ की ग्रह–स्थिति समान है वहाँ भी वर्षा भिन्न प्रकार से होती है। एक जनपद बाढ़ से त्रस्त है तो दूसरा सूखे से। अतः ग्रहस्थिति के आधार पर आँधी, तूफान, वर्षा, भूकम्प आदि नहीं बताये जा सकते। भड्डरी ने भी काल्पनिक वारों को बहुत महत्त्व दिया है। वे कहते हैं कि ज्योतिष एक सागर है और मेरा ग्रन्थ उससे निकला चन्द्रमा है पर गाँव में रह कर वर्षा बताने का प्रयास करने वाले पुरोहित का मन कहता है कि भड्डरी के चन्द्रमा में उतनी ही सचाई है जितनी क्षीरसागर के मन्थन से पैदा हुए चन्द्रमा में। पहले उनका वारफल देखें—

कार्तिक शुक्ल ५ को रविवार हो तो एक रुपये में दस पसेरी अन्न मिलेगा। सोमवार हो तो बीस पसेरी, मंगल हो तो आठ पसेरी, बुध–गुरु हों तो तीन तीन पसेरी और शुक्रवार हो तो सात पसेरी अन्न मिलेगा। शनिवार होने पर चौपाये मरेंगे, अन्न नहीं मिलेगा, हाहाकार मच जायगा और खेती सूख जायेगी। रविवार, मंगलवार और शनि को दीपावली आ जाने पर रोगों से अनेक मनुष्यों की मृत्यु होगी, स्त्रियों का गर्भपात होगा, राजा का हृदयभंग होगा तथा अन्य अनेक उपद्रव होंगे। अगहन की अमावास्या यदि इन तीन पाप वारों में पड़ गयी तो पानी बहुत कम बरसेगा, देश दरिद्र हो जायगा, अन्न मँहगा होगा और किसान रोयेंगे। पौष की अमावास्या यदि इन तीन वारों में पड़ी तो अन्न तोला के भाव में बिकेगा। बुधवार को पड़ी तो पानी नहीं बरसेगा और अन्नवालों को चार गुना लाभ होगा। यदि शुभ वारों में पड़ी तो बहुत अन्न होगा और कोई मोल लेने वाला नहीं मिलेगा। माघ के विषय में लिखा है–

माघ सुदी की सप्तमी होय सोम का वार।
काल परै बहु युद्ध हो बरसै जग तलवार॥
आदितवारौ पुष्य ऋष जो नवमी तिथि होय।
अन्ने लोहा चौगुना भूख मरत सब कोय॥

माघी अमावास्या को पापवार हों तो तीक्ष्ण वायु और उपद्रवों से कष्ट होगा। सोमवार हो तो बहुत अन्न उपजेगा और प्रजा सुखी रहेगी। फागुन की अमावास्या को पाप वार हो तो युद्ध, दुर्भिक्ष और उपद्रव से देश त्रस्त हो जायगा। चैत्र कृष्ण १ को पापवार हों तो वायु, युद्ध, सूखा और रोगों से हाहाकार मच जायेगा। चैत्र की अमावास्या को पापवार पड़े तो छत्रभंग और

अमंगल होगा। बुधवार का भी लगभग यही फल है। शुभवार हों तो अन्न, दूध और सुख की वृद्धि होगी। वैशाख की अमावास्या का भी यही फल है। जेठ कृष्ण १ को रवि, भौम, बुध और शनिवार हों तो तीव्र वायु, रोग से कष्ट होगा। शुभवार सुखप्रद हैं। जेठ, आषाढ़ आदि सब मासों की पूर्णिमा और अमावास्या के वारों से सम्वन्धित ऐसे ही फल लिखे हैं।

जेठ अमावस वार शनि जो होवै विधि जोग।
परै न एको बूँद जल छत्रभंग बहुरोग।
चोर अग्निभय दुख बहुत नहिं उपजत जग धान॥
आषाढ़ै सुदि पूनम जोय। बार सूर्य रोगी दुख होय॥
बुधवारी वहु बालक मरैं। दोष शीतला घर घर फिरैं॥

भडली ने मेष, वृष आदि संक्रान्तियों के भिन्न भिन्न वारों में होने पर भिन्न भिन्न फल लिखे हैं और रवि आदि वारों में प्रत्येक संक्रान्ति का सामान्य फल भी लिखा है। इन दोनों विधियों के फल में अन्तर भी पड़ जाता है। उस स्थिति में ज्योतिषी को अपनी प्रतिभा का प्रयोग करना पड़ता है।

रविवार	ध्वांक्ष	धनी वायु, संग्राम, मँहगाई अरु नरदुखी।
सोमवार	महोदरी	बहुत अन्न, जग सब सुखी सोमवार संक्रान्त।
मंगलवार	घोरा	घृत, गुड़, गेहूँ, तेल, लाल वस्त्र आदि मँहगे।
बुधवार	मन्दाकिनी	मूँग, हरी वस्तु पन्ना आदि मँहगे, नीच भय।
गुरुवार	मन्दा	व्यापारी को लाभ, सब सुखी, पीली वस्तु मँहगी।
शुक्रवार	मिश्रा	घर घर मंगलचार, चौपद–व्यापारी सुखी।
शनिवार	राक्षसी	युद्ध, उपद्रव, सुखाभाव, भूमि मुण्डरक्तमयी।

शनि रवि मंगल कर्क की जो होवे संक्रान्ति।
अन्न मँहँग अरु अल्प जल देशै दुखी करन्ति॥
मीनराशि संक्रान्ति जो बुद्धवार के होय।
छत्रभंग जल नहिं परत घर घर रोदन होय॥

कोई भी पाप वार एक मास में यदि पाँच वार पड़ जाय तो बहुत अशुभ और शुभवार आ जाय तो अति शुभ है। चन्द्रमा के उदय का भी वारों से सम्बन्ध है।

पाँच शनीचर पाँच रवि पाँचो मंगल होय।
होय उपद्रव भूमि में बिरला जीयै कोय॥
रोग बहुत रवि पाँच ते मंगल बहुभय दाय।
पाँच शनी यक मास में रस अति मँहगा प्याय॥
बुध गुरु शुक्र चन्द्र संचारै मंगलकारी जग ये वारैं।
जो शशि ऊगै सोम शनि एक अचंभा होय।
छत्रभंग दिन तीस महँ कै कन मँहगो होय॥

भडली ने इन्द्रधनुष, छींक, छिपकली, गधा, कौवा आदि के शकुनों का विस्तृत वर्णन किया है। उसमें दिशाओं और दिन रात के प्रहरों के अनुसार फल लिखे हैं और वारों को विशेष महत्त्व दिया है। मुसलमानों के मुहर्रम के आरम्भ के वार का फल भी लिखा है। कुछ पद ये हैं—

रविदिन अति मन्दी कही भौम शुक्र शनि रोग
वार परै बुध चन्द्र गुरु तो होवै बहु रोग
जो मुहरम रविवारे होय दूध दही बहु घर में होय
जो मुहरम शशि वारे होय बहुत रोग नर नारिहिं होय
भौमवार जो मोहरम होय बहुत अकाल जगत में होय
फल थोरा बहु देश उजार टूटैं तरु वायू के भार

वर्ष के राजा–मन्त्री आदि वारों पर आधारित

नये वर्ष का आरम्भ होने के दो–चार मास पहले से ही लोग नये पंचांग द्वारा अपना और संसार का भविष्य जानने के लिए उत्सुक रहते हैं और उस फलादेश में वारों की प्रधानता रहती है। सूर्य, सोम, मंगल आदि ग्रहों से सूर्य, सोम, मंगल आदि वारों का कोई सम्बन्ध नहीं है और वार जहाँ बने हैं वहाँ सब वारों को ग्रहों के नाम नहीं दिये गये हैं। ट्यूज, वेन्स, थर्स और फ्राई डे का भौम, बुध, गुरु और शुक्र ग्रहों से कोई नाता नहीं है किन्तु हमारे यहाँ ग्रहों से वार बलपूर्वक जोड़ दिये गये हैं और पूरे वर्ष का भविष्य उन्हीं से बताया जाता है।

वर्ष का प्रथम दिन (चैत्र शुक्ल प्रतिपत्) जिस वार को पड़ता है वही ग्रह वर्ष का राजा होता है और मेष की संक्रान्तिं जिस ग्रह के वार में पड़ती है वही मन्त्री मान लिया जाता है। इसी प्रकार आगे ७। ११ राशियों से रसेश, १२ से फलेश, ६–१० से नीरसेश और २ से सस्येश का सम्बन्ध रहता है। इसी प्रकार मेघेश, दुर्गेश और घनेश आदि का निर्णय होता है तथा कुछ अन्य नियम भी हैं।

इन सब का फल जानने की शास्त्रीय पद्धति यह है कि ज्योतिषी जी को अपने घर बुलाओ, पंचांग के मुख पृष्ठ पर छपी सिद्धि बुद्धि और गजानन की मूर्ति की तथा ज्योतिषी की पूजा करो, ज्योतिषी को षट्रस भोजन से तथा सुवर्ण, गौ, वस्त्र आदि के दान से सन्तुष्ट करो और बाद में फल सुनो। तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, ये पाँच पंचांग के पाँच अंग हैं। इनका फल सुनने से गंगास्नान का पुण्य मिलता है और सब पाप भस्म हो जाते हैं। राजा का फल सुनने से अचल राज्य मिलता हैं, मन्त्री का फल सुनने से कुशलता मिलती है, धान्येश का फल सुनने से लक्ष्मी अपने चंचला स्वभाव को छोड़ कर स्थिर होकर घर में आ वैठती हैं, मेघेश का फल सुनने से जीभ पर सरस्वती का वास हो जाता है, वाणी सरसा हो जाती है, रसेश का फल सुनने से बुद्धि धर्म में स्थिर हो जाती है, आयु बढ़ जाती है तथा सस्येश का फल सुनने से चारों ओर यश फैल जाता है इसलिए नीरसेश, फलेश आदि सभी नृपों का फल सुनो। जो जजमान प्रतिवर्ष नियमित रूप से चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को अर्थात् वर्षारंभ के दिन वर्षफल सुनते हैं वे दुःख दरिद्रता और रोग से हीन हो जाते हैं तथा धन–धान्य से परिपूर्ण होकर आनन्द मनाते हैं।

तिथिर्वारश्च नक्षत्रं योगः करणमेव च।
पंचांग तत्फलं श्रुत्वा गंगास्नानफलं लभेत्॥
पंचांगस्थं गणेशं द्विजगणकयुतं पूजयित्वा...

सन्तोष्यानेकदानैः भौजयित्वान्नमिष्टम्॥
राज्यं स्यादचलं तिथिश्रवणतो मंत्रिश्रवात् कौशलं
धान्येशात् कमला स्थिरा च सुरसा वाणी भवेन्मेघपात्॥
धर्मे बुद्धिरतिस्थिरा रसपतेः दीर्घायुराप्नोति च।
सस्येशाद् विमलं यशः शुभकरी राजावली श्रूयताम्॥
ये चैत्रशुक्लप्रतिपत्तिथौ फलं शृण्वन्ति भक्त्या प्रतिवार्षिकं नराः।
ते दुःखदारिद्र्यरुगादिवर्जिता नन्दन्ति लोके धनधान्यसंकुलाः॥

किन्तु सत्य यह है कि पंचांग के मुख पृष्ठ पर छपे गणेश और सिद्धि वुद्धि के पूजन से और पंचांग के फल श्रवण से यदि अचल राज्य, लक्ष्मी, विद्या, सुवाणी, दीर्घायु, यश, महानन्द आदि की प्राप्ति होती और सारे कष्ट भाग जाते तो संसार में कोई मानव दरिद्र, मूर्ख, अल्पायु, दुखी और रोगी न रहता तथा गणेशमन्दिर के पुजारी और झोले में सदा पंचांग रखने वाले सारे गुरु और पुरोहित जजमानों के द्वार पर भटकते न फिरते। वस्तुतः पंचांग के पाँच अंगों में से वार, करण और योग नूतन हैं और वेदों के अनुसार कोई भी तिथि या नक्षत्र अशुभ है ही नहीं। मन्त्री, धनेश, दुर्गेश आदि का सम्वन्ध राशियों से है इसलिए वे भी विदेशी हैं और उनके फल में कितनी सचाई है, उसे देख लें और एक कवि का यह श्लोक सुन लें।

गणिकागणकौ तुल्यौ स्वपंचांगप्रदर्शकौ।
ददाति गणिका किंचित् गणको हरते सदा॥

सात नृपों के सात फल

सूर्ये नृपे स्वल्पजलास्तु मेघाः स्वल्पं च धान्यं विफलाश्च वृक्षाः।
स्वल्पं पयो गोषु जनेषु पीडा चौराग्निबाधा निधनं नृपाणाम्॥ १॥
धेनवोऽतिपयसोऽधिकतोषः प्राणिनां जलवशात् कणतोषः।
भूभृतो विहितसुद्विजपूजा जायते हिमकरो यदि राजा॥ २॥
मेदिनीधनकणादिवर्जिता मेदिनीपतय आहवे रताः।
अग्निचौरगदभीः क्वचित् जलं मंगले क्षितिपतौ न मंगलम्॥ ३॥
बुधस्य राज्ये सजलं महीतलं गृहे गृहे तूर्यविवाहमंगलम्।
प्रकुर्वते विप्रसुरार्चनं नराः सौख्यं सुभिक्षं धनधान्यसंकुलम्॥ ४॥
नृपे गुरौ वर्षति कामदं जलं महीतले कामदुघाश्च धेनवः।
यजन्ति विप्रा बहु नैव रोगा महोत्सवः सर्वजनेषु वर्तते॥ ५॥
शुक्रस्य राज्ये बहुसस्यसंकुला प्रभूततोयार्थधराधरित्री।
फलन्ति वृक्षा बहुगोप्रसूतिः वसुन्धरापार्थिवसौख्ययुक्ता ॥ ६॥
धनधान्यजलादिकाल्पता जनता तस्कररोगपीडिता।
क्षितिपालगणो रणे रतः क्षितिपालो यदि भानुमत्सुतः॥ ७॥

रविग्रह से रविवार का कोई सम्बन्ध नहीं है। थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय तो भी वेद, शास्त्र और प्रत्यक्ष के अनुसार वह शुभ और सर्वश्रेष्ठ ग्रह है फिर भी यहाँ लिखा है कि वर्ष का प्रथम वार यदि रविवार है तो रवि वर्षेश होगा और

तब (१) मेघ कम बरसेंगे, धन-धान्य की न्यूनता रहेगी, वृक्षों में फल नहीं लगेंगे, गायें कम दूध देंगी, चोर अग्नि आदि से जनता पीड़ित रहेगी और राजा आपसी युद्ध में मरेंगे। (२) वर्ष का प्रथम वार सोम है तो चन्द्र राजा होगा। तब गायें अधिक दूध देने लगेंगी, जनता प्रसन्न रहेगी, सुवृष्टि के कारण अन्न अधिक पैदा होगा और नृप द्विजों तथा देवों की पूजा में लगे रहेंगे। (३) प्रथम वार मंगल है तो धरती धन-अन्न से विहीन हो जायेगी, राजा युद्धरत रहेंगे, जनता आग, चोर, रोग आदि से पीड़ित रहेगी, पानी कहीं कहीं बरसेगा और मंगल तो कहीं सुनाई ही नहीं देगा। वह नाम व्यर्थ हो जायेगा। (४) वर्ष का आरंभ यदि बुधवार से होता है तो राजा बुध है। इसके राज्य में महीतल जल से, धन-धान्य से, सुभिक्ष से और सुख से परिपूर्ण रहेगा, घर घर में बाजे बजेंगे, विवाहादि मांगलिक कर्म होंगे और जनता ब्राह्मणों एवं देवों की पूजा में निरत रहेगी। (५) बृहस्पति के राजा होने पर मेघ ठीक समय पर आवश्यकता भर बरसेंगे, गायें कामधेनु सरीखी हो जायेंगी, सारे रोग अदृश्य हो जायेंगे, सबके घर महोत्सव होने लगेंगे और ब्राह्मण यज्ञों में तत्पर रहेंगे। (६) वर्ष का प्रथम वार शुक्र होने पर धरती अन्न, जल और धन से परिपूर्ण हो जायेगी, वृक्ष फलों से लद जायेंगे, गायें बहुप्रसवा हो जायेंगी और नृप प्रजा को सुख देंगे। (७) वर्ष का प्रथम दिन यदि शनिवार है तो धन-धान्य और जल की अल्पता रहेगी, जनता तस्करों और रोगों से पीड़ित होगी तथा नृप गण युद्ध में रत रहेंगे। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक फल लिखे हैं।

वर्ष का आरम्भ कब

यहाँ वर्ष के प्रथम दिन को वर्ष का राजा मान कर सूर्य, भौम और शनि का अति अशुभ और सोम, गुरु, शुक्र का अति शुभ फल लिखा है। इसका मिथ्यात्व अति स्पष्ट होने के कारण परीक्षण अनावश्यक है। यहाँ सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि वर्ष का आरंभ कहाँ से माना जाय। भारत में वार जिस देश से आये हैं वहाँ उनके जनवरी, फरवरी, आदि मासों का क्रम और मासों के दिवसों की संख्या बहुत दिनों तक संशोधित होती और घटती-बढ़ती रही। वहाँ बहुत दिनों तक वर्षारंभ मार्च से होता था पर बाद में जनवरी से होने लगा। पहले दस मास थे, बाद में बारह हो गये और उनके दिवसों की संख्या घट गयी। इसका विवरण आगे पढ़ें। उसके अतिरिक्त संसार को भिन्न-भिन्न जातियों के वर्षारंभ पृथक्-पृथक् हैं। मुसलमानों का प्रथम मास मुहर्रम अर्थात् वर्षारंभ सब ऋतुओं में घूमता रहता है। हिन्दुओं के कई वर्षारंभ थे और हैं। किसी समय उत्तरा फाल्गुनी वर्ष का प्रथम नक्षत्र था। लोकमान्य तिलक ने अपने ओरायन ग्रन्थ में प्राचीन चार वर्षारंभों का वर्णन किया है। उसे आगे पढ़ें। महाभारत आदि कई ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि किसी समय मार्गशीर्ष (अगहन) ही वर्ष का प्रथम मास था। गुजरात में कार्तिक के शुक्लपक्ष से वर्ष का आरंभ होता है। पूरे भारत में भिन्न भिन्न स्थानों में मेषसंक्रान्ति, सिंहसंक्रान्ति, कन्यासंक्रान्ति, चैत्र, आषाढ़, श्रावण, आश्विन, माघ आदि से वर्षारंभ होते रहे हैं और इनमें से मिथिला, गुजरात, बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, मलावार आदि में आज भी बहुत से प्रचलित हैं तो हम वर्ष का आरंभवार कौन सा मानें और क्या फल कहें? क्या हर राष्ट्र, हर प्रान्त और हर काल में विभिन्न फल होंगे?

मन्त्रीफल—मन्त्री, रसेश, धान्येश आदि के फल संक्रान्तियों के आधार पर लिखे हैं किन्तु सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि आजकल संक्रान्तियाँ वास्तविक संक्रान्ति के २३-२४ दिन बाद मनाई जाती हैं और दोनों के वार भिन्न भिन्न रहते हैं तो प्रश्न है कि आप के मन्त्री और सस्येश आदि के फल सत्य कैसे होंगे? ऋतुएँ तो सायनसंक्रान्ति पर ही अवलम्बित हैं न? सात मन्त्रियों के फल ये हैं—

सूर्येप्रधाने ज्वलिता धरित्री क्षुधाभिभूतं जगदल्पसस्यम्।
महर्घता रोगभयं जनानां युद्धं नृपाणामतुलं, न वृष्टिः॥ १॥
शशिनि मंत्रिगते बहुसस्यवत्यपि धरा रमते सुखमण्डिता।
वियति वारिधरा बहुवर्षिणो जनपदाः सुखराशिसुशोभिताः॥ २॥

अवनिजो ननु मंत्रिपदं गतो भवति दस्युगदादिजवेदना।
ध्रुवमवर्षणतः कणनाशनं रणपराः क्षितिपा न रता द्विजे॥ ३॥
स्यात्कोषवृद्धिर्धरणीश्वराणां गावः सदुग्धा न गदो नराणाम्।
गोधूमशालीक्षुयुताधरित्री पूर्णोदका चेत् शशिजोऽत्रमंत्री॥ ४॥
पाथोधरा भूरि दिशन्ति पाथो धात्री कणाद्यैर्जनमुद्विधात्री।
पृथ्वाभृतां सम्पदतीव पृथ्वी मंत्री यदा स्यात् सुरराजमंत्री॥ ५॥
अतिदुग्धयुतो गवां गणः क्षितिपानां न परस्परं रणः।
पशुवृद्धिरतीव वृष्टितः कणपोषः सचिवो यदा सितः॥ ६॥
नैवधान्यफलपुष्पसंचयः स्यादवर्षणवशात् जगत्क्षयः।
अग्निभीः प्रचुरतस्करोदयः सूर्यजो हि सचिवो महाभयः॥ ७॥

(१) अर्थात् रविवार को मेषसंक्रान्ति लगी तो समझ लीजिए कि सूर्य मंत्री है। उसके प्रधान होने पर धरती जलने लगती है, अन्न की अत्यन्त अल्पता हो जाने से जनता क्षुधा से व्याकुल हो जाती है, मँहगाई बढ़ जाती है, नाना प्रकार के रोग फैलने लगते हैं, राजा घोर युद्ध में प्रवृत्त हो जाते हैं और पानी तो बरसता ही नहीं। (२) चन्द्रमा के मंत्री होने पर धरा बहु धान्यवती और सुखराशि से सुशोभित हो जाती है तथा मेघ बहुत पानी बरसते हैं। दुःख का कहीं दर्शन ही नहीं होता। (३) मंगलवार को मेषसंक्रान्ति लगने पर चोरों और नाना प्रकार के रोगों से उत्पन्न कष्ट चारों ओर व्याप्त हो जाता है, वर्षा के अभाव में अन्न नहीं पैदा होता, राजा आपस में लड़ते हैं और देवों तथा ब्राह्मणों को भूल जाते हैं। (४) बुध के मंत्री होते ही नृपों की कोषवृद्धि होने लगती है, गायें पर्याप्त दूध देने लगती हैं, सारे रोग भाग जाते हैं और धरती गेहूँ , चावल, चीनी, जल आदि से भर जाती है। (५) गुरुवार को मेषसंकान्ति लगने पर बादल बहुत बरसते हैं, धरती अन्न, फल, फूल से मोद देने लगती है और नृपों की सम्पत्ति बढ़ जाती है। (६) शुक्र के मंत्री होने पर गायों में दूध की और भूपों में स्नेह की वृद्धि हो जाती है, पशुओं की संख्या बढ़ जाती है, अन्न की भरमार हो जाती है और संसार में युद्ध तो कहीं सुनाई ही नहीं देता। (७) शनिवार को मेषराशि में सूर्य के प्रवेश करने पर अनावृष्टि के कारण सारा संसार नष्ट हो जाता है, अन्न, फल, पुष्प आदि अदृश्य हो जाते हैं और अग्नि, तस्कर आदि के प्रचुर भय का उदय हो जाता है।

विषय विस्तृत है अतः रसेश आदि के कुछ फल लिखे जा रहे हैं। इन सबों का सारांश यह है कि संक्रान्तियाँ यदि रविवार, भौमवार और शनिवार को हुईं तो सर्वत्र हाहाकार मच जायेगा, प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जायेगा और बुध, गुरु, सोम, शुक्रवारों में हुई तो धरती पर स्वर्ग उतर आयेगा पर खेद है कि हम वास्तविक संक्रान्ति भूल चुके हैं और भिन्न भिन्न ग्रह राजा, मन्त्री दुर्गेश आदि हो जाते हैं।

द्रविणपे रविजे विरलो घनो गदरता धरणीपतयः सदा।
अधनिका वणिजः कृषिजीविनो द्विजवराः परिपीडितमानसाः॥ १॥
शुक्रो यदा सस्यपतिर्धरायां मेघो जलं वर्षति शोभनं च।
गोधूमशालीक्षुधनप्रियंगुवृक्षेषुपुष्पाणि सुखप्रदानि॥२॥
सुरपतिः कुरुते जलवर्षणं विविधसस्यफलादिकपोषणम्।
द्विजगणो मखकर्मकरः क्षितौ जलधराधिपतौ सति वाक्पतौ॥ ३॥
गढ़पतिहिमरश्मिसुतो यदा नृपसुराज्यविलासितपौरकाः।

बहुफलेक्षुजगोरसभोगिनी बहुसुखं द्विजशस्त्रवतां विशाम्॥ ४॥
यदि धरातनयो रसपो भवेत् न रससौख्ययुता जनता तदा।
नरपतिः करभोजनतापदो न जलदः शुभवृष्टिकरो भुवि॥ ५॥
यदि विधुः फलपो द्रुमराशयः फलयुताः सततं कुसुमैर्युताः।
द्विजमुखा वरभोगसमन्विता जलधरा जलदाः फलमुत्तमम्॥ ६॥
सस्याधिनाथे तरणौ हि पूर्वं धान्यं महर्घं बहवस्तु चौराः।
युद्धं नृपाणां जलदा विनीराः स्वल्पं च सस्यं च फलं न वृक्षेः॥ ७॥

नीरसाधिपतौ सूर्ये त्रपुचन्दनयोरपि।
रत्नमाणिक्यमुक्तादेरर्घवृद्धिः प्रजायते॥

घनेश वाली संक्रान्ति शनिवार को हुई तो मेघ कम हो जायेंगे, भूमिपति रोगी हो जायेंगे, व्यापारी दरिद्र हो जायेंगे और ब्राह्मण एवं कृषक अति पीड़ित हो जायेंगे। सस्येश की संक्रान्ति शुक्रवार को लगी तो मेघ से सुखदात्री वर्षा होगी, गेहूँ, गुड़, धान, सावाँ पुष्प आदि की वृद्धि होगी और जनता प्रसन्न रहेगी। यदि वृहस्पति वार को मेघेशवाली संक्रान्ति लगी तो अनुकूल वर्षा होगी, जनता अन्न और फल से पुष्ट हो जायेगी और ब्राह्मण यज्ञ में तत्पर हो जायेंगे। दुर्गेशवाली संक्रान्ति बुधवार को आयी तो राजा की सुव्यवस्था से प्रजा प्रसन्न हो जायेगी, फल, गुड़, गोरस, अन्न आदि की भरमार हो जायेगी और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बहुत सुखी रहेंगे। रसेश की संक्रान्ति मंगलवार को लगी तो दूध आदि रसों का अभाव हो जायेगा, जनता दुखी हो जायेगी, पानी नहीं बरसेगा और राजा विविध करों से सताने लगेगा। फलेश की संक्रान्ति सोमवार को लगी तो वृक्ष फूल-फल से लद जायेंगे, चारों वर्ण प्रसन्न हो जायेंगे और पर्याप्त वर्षा होगी। रविवार को सस्येश की संक्रान्ति लगी तो महँगाई और चोरों की वृद्धि होगी, राजा में युद्ध होंगे और अन्न तथा फल का अभाव हो जायेगा। नीरसेश की संक्रान्ति रविवार को लगी तो रत्न, माणिक, मोती, राँगा और चन्दन आदि बहुत महँगे जो जायँगे।

इस प्रकार अतिशयोक्तिपूर्ण सरस भाषा में और ललित छन्दों में वारों के आधार पर सहस्त्रों श्लोकों में वर्ष के सारे फल लिखे गये हैं। इनमें परस्पर विरोध स्वाभाविक है और निश्चित फल कहना अशक्य है पर ग्रन्थों में इस संकट से बचने की यह युक्ति भी लिखी है कि राजा का फल काम्बोज-कश्मीर में होगा, मन्त्री का फल मालव-बाह्लीक में होगा, रसेश का मगध-कोंकण में होगा, मेघेश का द्रविड़ देश में होगा और धान्येश आदि का फल विदर्भ आदि में घटेगा। सारांश यह है कि भारत के हर प्रान्त के ग्रह एक नहीं हैं।

आर्द्राप्रवेश

इनके अतिरिक्त सूर्य का आर्द्रा नक्षत्र में जब प्रवेश होता है उस समय के वार, नक्षत्र, तिथि, योग, पक्ष और वेला आदि के अनुसार भी वर्षफल लिखा जाता है। वारफल सुन लें—

भानोर्वेशः पृथ्वीसूनोर्वारे रौद्रेधिष्ण्ये चेत्स्यात्।
शस्त्राघातात् पृथ्वीशानां निःसन्देहं मृत्युस्तर्हि॥
शनैश्चरस्य वारे चेत् रविरार्द्रागतो भवेत्।
कृशता तर्हि लोकानां नितरां मन्दता भवेत्॥
सुरराजगुरोर्वारे द्युमणिर्यदि रौद्रगः।
सर्वेषां तर्हि जन्तूनां द्रव्यवृद्ध्या सुखं बहु॥
दैत्यराज्यगुरोर्वारे यदि स्यात् रौद्रगो रविः॥

तर्हि शान्तिश्च तुष्टिश्च पुष्टिः प्रतिदिनं नृणाम्॥

अर्थात् अर्द्रा नक्षत्र में सूर्य के प्रविष्ट होते समय यदि मंगलवार है तो शस्त्रों के आघात से सब नृप निश्चित रूप से मर जायेंगे, शनिवार है तो जनता कृश और मन्द हो जायेगी, गुरुवार है तो द्रव्य की वृद्धि होने से सब लोग बहुत सुखी हो जायेंगे और दैत्यगुरु शुक्र का वार है तो पूरे वर्ष भर प्रतिदिन सबको शान्ति, तुष्टि और पुष्टि की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार अन्य तीन वारों के फल भी लिखे हैं।

आर्दा की भाँति अन्य नक्षत्रों में भी सूर्य के प्रविष्ट होने के वारों का ध्यान रखना चाहिए। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार आर्द्रा, भरणी, ज्येष्ठा आदि नौ नक्षत्रों की तीक्ष्ण, दारुण, उग्र और क्रूर संज्ञा है अत: उनसे सूर्यादि पाप ग्रहों का संयोग होने पर संसार को भस्म हो जाना चाहिए किन्तु पोथी में लिखा है कि उस समय पाप जातियाँ और पाप मनुष्य सुखी हो जाते हैं तथा भले लोग कष्ट पाने लगते हैं। मुहूर्तचिन्तामणि (३।१) में लिखा है कि सूर्य यदि रविवार को उग्र नक्षत्रों में प्रविष्ट हो तो उसका नाम घोरा संक्रान्ति होता है। वह शूद्रों को सुख देती है क्योंकि शूद्र घोर होते हैं। गुरुवार को स्थिर नक्षत्रों की संक्रान्ति हो तो वह मन्दा कही जाती है और ब्राह्मणों को सुख देती है क्योंकि ब्राह्मण मन्द होते हैं। इसी प्रकार अन्य नक्षत्रों की संक्रान्तियों का वर्णन है। उसे इस चक्र में देखें—

वार	नाम	कौन सुखी	नक्षत्र
रवि	घोरा	शूद्र	पूषा, पूफा, पूभा, भरणी, मघा
सोम	ध्वांक्षी	वैश्य	अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित्
मंगल	महोदरी	चोर	स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, घनिष्ठा, शत
बुध	मंदाकिनी	राजा	मृग, चित्रा, अनुराधा, रेवती
गुरु	मन्दा	विप्र	उफा, उषा, उभा, रोहिणी
शुक्र	मिश्रा	पशु	विशाखा, कृत्तिका
शनि	राक्षसी	अन्त्यज	आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल

दिन, रात्रि–विभाग और प्रहर–विभाग के अनुसार संकान्तियों के ये सारे फल बदल जाते हैं। नीचे का चक्र देखें। यहाँ दिन के तीन और रात्रि के चार भाग किये गये हैं। कौन मरेगा, यह सामने लिखा है।

मासेश, पक्षेश, दिनेश

दिन	प्रथम भाग	राजा
	द्वितीय भाग	ब्राह्मण
	तृतीय भाग	वैश्य
रात	प्रथम प्रहर	पिशाच
	द्वितीय प्रहर	राक्षस
	तृतीय प्रहर	नट
	चतुर्थ प्रहर	पशुपाल
	अस्तकाल	शूद्र
	उदयकाल	लिंगी

यहाँ आर्द्रा नक्षत्रों के फलों से पिछले राजा मन्त्री आदि के फलों का विरोध तो स्पष्ट है किन्तु इससे बड़ा विरोध यह है कि जैसे वर्ष का प्रथम वार वर्षेश होता है उसी प्रकार प्रत्येक मास और प्रत्येक पक्ष का प्रथम वार मासेश और पक्षेश होता है। जैसे वर्ष के प्रथम वार के आधार पर पूरे वर्ष का फल कहा गया वैसे ही मास और पक्ष के प्रथम वार द्वारा तथा उस दिन की चन्द्रस्थिति द्वारा पूरे पक्ष का फल कहने का विधान भी है। इन फलों में विरोध होना अनिवार्य है। मुहूर्तचिन्तामणि का कथन है कि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा शुभ है तो पूरा पक्ष शुभ है और अशुभ है तो पूरा पक्ष अशुभ है। कृष्णपक्ष चूँकि काला है इसलिए उसका फल उलटा है। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को चन्द्रमा शुभ है तो पूरा पक्ष अशुभ है और चन्द्रमा अशुभ है तो पूरा पक्ष शुभ है। इसी प्रकार शास्त्र में एक एक क्षण के एक एक ईश हैं और सबके फल परस्पर विरुद्ध हैं। ताजिकशास्त्र के फल इन सब के विपरीत हैं।

सितासितादौ सद्दुष्टे चन्द्रे पक्षौ शुभावुभौ।
व्यत्यासे चाशुभौ प्रोक्तौ संकटेऽब्जबलं त्विदम्॥ (मु० चिं० ४।८)

ताजिकशास्त्र का राजा दूसरा

ताजिक शास्त्र के राजा (वर्षेश), मासेश और पक्षेश आदि जातक से भिन्न हैं। गोविन्द दैवज्ञ ने अपने पिता तथा अकबर बादशाह के कृपापात्र नीलकण्ठ को साक्षात् नीलकण्ठ (शंकर) कहा है। नीलकण्ठ ने अपनी पोथी नीलकंठी में लिखा है कि "जातकशास्त्र वाली दशा स्थूल है और ज्योतिषी की बुद्धि उसमें हताश हो जाती है। इसलिए मैं ताजिकशास्त्र द्वारा वर्ष, मास, दिन और घटी आदि का सूक्ष्म और सत्य फल जानने की विधि लिख रहा हूँ। यह ताजिकं आदिशास्त्र है।" परन्तु इसके पारिभाषिक शब्द अनफा, सुनफा, इक़बाल, इसराफ, गैरकम्बूल, रद्द, दुफाली, खल्लासर, तम्बीर, दुरुफ्फ आदि हैं। क्या वे शब्द आदिशास्त्र के हैं? जातकशास्त्र की दशा स्थूल है और ज्योतिषी को किंकर्तव्यविमूढ़ बना देती है तो वे सत्य ताजिकदशा को ग्रहण कर पुरानी को त्याग क्यों नहीं देते?

जातकोदितदशाफलं यतः स्थूलकालफलदं स्फुटं नृणाम्।
तत्र न स्फुरति दैवविन्मतिः तद्ब्रुवेऽब्दफलमादिजातकात्॥२।२

श्रीनीलकण्ठ जी (२।३) में कहते हैं कि तुम्हारी वर्षेश विधि ठीक नहीं है। पूरे वर्ष का एक स्वामी नहीं होता और एक फल नहीं होता। फल प्रति मास ही नहीं, प्रतिदिन बदलते रहते हैं। इसलिए तुम्हारे जन्मकालीन सूर्य के समान सूर्य जिस दिन हो उस वार को वर्षेश मानो और उसमें एक-एक राशि जोड़ते जाओ तो प्रत्येक मास का स्वामी ज्ञात हो जायेगा। इसी प्रकार १५ अंश जोड़ने से पक्षेश और एक अंश जोड़ने से दिनेश का बोध हो जायेगा। उन वारों और ग्रहस्थितियों द्वारा सत्य फल कहो। घटी-घटी का फल जानना चाहो तो कलाएँ जोड़ो।

एकैकराशिवृद्ध्या चेत् तुल्योंऽशाद्यैर्यदा रविः।
तदा मासप्रवेशो द्युप्रवेशश्चेत् कलासमः २।३॥

जैसे वर्षारंभ का वार वर्ष का राजा होता है वैसे ही मासारंभ का वार मासेश होता है। उसी प्रकार पक्षेश और दिनेश होते हैं। इस प्रकार जातक और ताजिक, दोनों में सातों ग्रह भिन्न-भिन्न कालों के स्वामी हो जाते हैं तथा उनमें आधे शुभ और आधे अशुभ हैं तो फल का निर्णय कैसे होगा?

गृह में वार दोष— गृह के क्षेत्रफल में दो का गुणा कर सात का भाग दो, शेष १, ३ बचे तो सूर्य और मंगल के वार समझो। क्षेत्रफल में छः का गुणा कर नौ का भाग दो, शेष १, ३ बचे तो सूर्य और मंगल के अंश समझो। इन स्थितियों में तथा

रविं, भौम और शनि के वार आदि में गृह सम्वन्धी कोई कार्य मत करो। करने पर घर में आग लगेगी, भूतों राक्षसों का वास होगा और वच्चे मर जायेंगे।

भौमेऽह्विवेश्याग्निसुतार्तिदं स्यात्॥
समन्दैर्मन्दवारे स्याद्रक्षोभूतयुतं गृहम्। सूर्यारवारराश्यंशाः सदावह्निभयप्रदाः॥ (मु०चि० १२)

रजोदर्शन और रजस्वलास्नान में वार दोष

पाप वार में कन्या का रजोदर्शन और रजःस्नान होने पर वह दुखी, रुग्णा और मलिना हो जाती है तथा शुभवार पतिव्रता, सौभाग्यवती और सुखी वना देते हैं। अनेक आचार्यों ने ग्रहों के लिंगों के आधार पर वारों का भी लिंग निर्णय किया है। सूर्य, भौम, गुरु पुरुष हैं, शुक्र-चन्द्र स्त्री है और शनि-बुध नपुंसक हैं। अतः नारी पुरुषवार में नहाने से पुत्रवती, स्त्री वारों में काकवन्ध्या और नपुंसक वारों में नहाने पर सन्तानहीनता होगी।

रोगिणी रविवारे स्यात् सोमवारे पतिव्रता। दुःखिता भौमवारे च बुधे सौभाग्य संयुता॥
श्रीसंयुता गुरोर्वारे पतिभक्ता भृगोर्दिने। मलिना मन्दवारे स्याद्रात्रावपि तथैव च॥
सरुक् पतिव्रता दीना पुत्रिणी भोगभागिनी। पतिव्रता क्लेशयुता ऋतुस्नानेऽर्कवारतः॥ मु०चि० ५।४)

मैथुन का कोई शुभ वार नहीं

रवि और मंगल पाप वार हैं, बुध और शनि नपुंसक हैं तथा सोम और शुक्र स्त्री हैं। गुरुवार शुभ और पुरुष हैं पर उस दिन दीक्षा न ली हो और भरणी, भद्रा, व्यतीपात आदि कुयोग न हों तब। आचार्यों में इस विषय में वहुत मतभेद हैं। कुछ आचार्य पुरुष होने से रवि और मंगलवार को शुभ मानते हैं पर अन्य आचार्य उन्हें पापवार कहते हैं (देखिये मु०चि० ५।६ टीका) मैथुन में स्त्री और नपुंसक वारों का निषेध है पर तिथियाँ सब स्त्री हैं और नक्षत्रों में केवल तीन चार पुरुष हैं। वेद में श्रवण श्रोणा है, स्त्री है और हमें जिससे संभोग करना है वह भी स्त्री है। क्या शनि और बुधवार में हम नपुसंक हो जाते हैं?

क्षौरवार— मुहूर्तमार्तण्ड के अनुसार शनिवार में वैश्य-शूद्र क्षौर करा सकते हैं पर व्राह्मण और क्षत्रिय नहीं। उनके लिए क्रमशः रवि और भौमवार ग्राह्य हैं। कृष्णपक्ष के सोमवार को कोई क्षौर न करावे। शुभग्रहों के वार शुभ हैं। गर्ग और वसिष्ठ का कथन है (मु०चि० ५।३४ टीका) कि बुध, सोम, गुरु और शुक्र वारों में क्षौर कराने से आयु क्रमशः ५, ७, १०, ११ मास बढ़ जाती है और रवि, भौम, शनि वारों में क्रमशः १, ८, ७ मास घट जाती है। इन ग्रहों के लग्नों का भी यही फल है। अतः बाल बनवाने का वार ही नहीं, लग्न भी पूछ लेना आवश्यक है। लिखा है कि रवि, भौम और शनि वारों में बाल बनाने और दातुन करने वालों के शरीर पर शस्त्र से घात होता है।

भानुरायुः क्षपयति मासं सप्त शनैश्चरः।
भौमो मासाष्टकं हन्ति ज्ञो यच्छेत् मासपंचकम्॥
सप्तमासान् ददातीन्दुः सुरेज्यो दशमासकम्।
एकादश कविर्दद्यात् कृते तु क्षौरकर्मणि॥
आदित्यभौमार्कदिनेषु धीमान्न दन्तकाष्ठक्षुरकर्म कुर्यात्।
कुर्वन्नवाप्नोति फलं विरुद्धं शस्त्रेण सम्यक् स्वशरीरघातम्॥

यात्रा के वार, शूल, काल और पाश

रवि, मंगल और शनि पापवार हैं अत: इनमें किसी भी दिशा में यात्रा मत करो, नहीं तो अग्नि, चोर, रोग, बन्धन आदि का भय और मरण होगा। दूसरे आचार्य कहते हैं कि तुम्हारी जन्मपत्री में जो ग्रह सबसे बली हो उसी के वार में यात्रा करो—बलयुक्तस्य खेटस्य वारवर्ग: शुभप्रद:। पूर्व में सोम–शनि के, दक्षिण में बृहस्पति के, पश्चिम में रवि शुक्र, और उत्तर में मंगल–बुध के वार दिक्शूल माने जाते हैं। दिक्शूल से भयंकर हैं काल और पाश। यहाँ गला काटने वाली रस्सी को पाश कहा है। काल का अर्थ स्पष्ट है। कोणों को लेकर दिशाएँ आठ हैं और वार सात इसलिए काल–पाश का उचित बँटवारा नहीं हो सका। दिक्शूल में भी दक्षिण दिशा को इसी कारण एक ही वार मिला है। काल–पाश प्रति दिन नियमानुसार क्रमश: दिशाओं औ विदिशाओं में गमन करते हैं किन्तु न जाने क्यों, सूर्यास्त होते ही दोनों सामने वाली दिशा में चले जाते हैं। उत्तर दिशा से आरम्भ कर पश्चिम की ओर चलते हुए सात दिशाओं में सात वार काल हो जाते हैं और उनके ठीक सामने पाश बैठा रहता है। रविवार को उत्तर में काल रहता है और दक्षिण में पाश। सोमवार को वायुकोण में काल रहता है और अग्निकोण में पाश। इसी प्रकार आगे भी समझ लें किन्तु रात्रि में काल के स्थान में पाश और पाश के स्थान में काल बैठ जाता है। यात्रा में इन दोनों का सामने रहना अति भयावह है किन्तु काल का बायें और पाश का दायें रहना भी उतना ही अशुभ है। कोणों की यात्रा में दिक्शूल, काल और पाश तीनों देखने पड़ते हैं पर इसे मानने पर अयोध्या (वायव्य कोण) की यात्रा के लिए एक दिन भी नहीं मिलता। मंगल–बुध उत्तर के दिक्शूल हैं, रवि–शुक्र पश्चिम के दिक्शूल हैं। सोमवार वायव्य का काल है और शनि, गुरु में पाश दोष है।

> अर्के क्लेशमनर्थक क्षितिसुते चौरज्वराग्न्यादिभि:
> मन्दे बन्धनहानिरोगमरणान्युक्तानि गर्गादिभि:॥
> कौबेरीतो वैपरीत्येनकालो....(मु० चि० ११।३५)॥

घातवार—बारह राशि वालों के लिए १२ वार घात होते हैं। इनमें युद्ध करने पर, रोग होने पर यात्रा करने पर शरीर का घात होता है। घात वारों में अन्य दोष भी हैं।

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ	मीन
रवि	शनि	सोम	बुध	शनि	शनि	गुरु	शुक्र	शुक्र	भौम	गुरु	शुक्र

वारों और तिथियों से उत्पन्न अनेक योग

	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
सिद्धयोग			जया	भद्रा	पूर्णा	नन्दा	रिक्ता
मृतयोग	नन्दा	भद्रा	नन्दा	जया	रिक्ता	भद्रा	पूर्णा
सर्वार्थसिद्ध	हस्त	मृग	अश्विनी	अनुराधा	पुश्य	रेवती	रोहिणी
आनन्दादि	अश्विनी	मृग	आश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उषा	शतभिषा
दग्धयोग	भरणी	चित्रा	उषा	धनिष्ठा	उफा	ज्येष्ठा	रेवती
यमघण्ट	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृत्तिका	रोहिणी	हस्त
अधमतिथि	७,१२	११	१०	१,९	८	७	६
दग्धतिथि	१२	११	५	३	६	८	९
विषतिथि	४	६	७	२	८	९	७

अग्नितिथि	१२	६	७	८	१०	११	१२
मृत्युतिथि	५	६	७	८	९	१०	११
उत्पात	विशाखा	पूषा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उफा
मृत्यु	अनुराधा	उषा	शत	अश्विनी	मृग	आश्लेषा	हस्त
काणयोग	ज्येष्ठ	अभिजित्	पूभा	भारणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
क्रकच	१२	११	१०	९	८	७	६

इनमें अनेक शंकाएँ हैं। (१) बुध और भद्रा तिथि का योग सिद्ध योग है, द्वितीया भी भद्रा है पर बुधद्वितीया का योग विषयोग है। (२) शनिवार और रिक्ता (४, ९, १४) का योग सिद्ध योग है पर शनि नवमी का योग दग्ध योग है। (३) मृतयोग को अनेक आचार्यों ने अमृत योग कहा है। क्या अनुभूत ज्ञान में ऐसा मतभेद संभव है? (४) रविवार और द्वादशी का योग दग्ध है तथा बुध और द्वितीया का योग विषयोग है। वार और तिथि से उत्पन्न इन योगों में शुक्ल और कृष्ण पक्ष की तिथियाँ समान मान ली गयी हैं पर क्या दोनों पक्षों की १ और १२ तिथियाँ समान हो सकती हैं? वुधवार को प्रतिपदा पड़ने से संवर्त नामक भीषण योग आ जाता है। प्रतिपदा शुक्ल पक्ष की हो या कृष्ण की। क्या यह कथन उचित है? (६) सूर्य ग्रह का ही नाम मित्र है और सूर्य वार में मित्र (अनुराधा) नक्षत्र के योग से मृत्यु योग बन जाता है। क्यों? (७) गुरु और मृग, दोनों शुभ हैं तो उनके योग से मृत्यु योग कैसे बन जाता है? (८) सोम और एकादशी शुभ हैं तो उनके योग दग्धयोग क्यों हो जाता है? (९) शुक्र–रोहिणी से यमघण्ट, सोम–भद्रा से मृत, सोम–उत्तराषाढ़ा से मृत्यु, गुरु–उत्तरा फाल्गुनी से दग्ध आदि की उत्पत्ति में ऐसी अनेक शंकाएँ हैं।

शनि और रिक्ता, दोनों पाप हैं पर उनके योग से सिद्धयोग हो जाता है। पूछने पर एक ज्योतिषी ने बताया कि गणित में ऋण ऋण का गुणनफल धन हो जाता है। खंजन और आप, दोनों के मुख दक्षिण हों तो फल शुभ होता है, मैंने पूछा कि शुभ वार और शुभ तिथि के योग से यमघण्ट, दग्ध और विष आदि भीषण योग वन जाते हैं तो क्या धन–धन का गुणनफल भी ऋण होता है और आप दो अंकों या पदार्थों के योग को गुणन क्यों कहते हैं? ज्योतिषी ने कहा कि ऋषियों की अनुभूति है पर मैं समझता हूँ, यह वैसी ही अनुभूति है जैसी शेषनाग के सिर पर पृथ्वी की स्थिति वाली अनुभूति। ज्योतिषियों ने अनुभव करके लिखा है कि इन अशुभ योगों के शमन का कोई उपाय नहीं है। इनमें शुभकर्म करने पर कुल का नाश हो जाता है।

अचिकित्स्या इमे योगा मंगले कुलनाशनाः।
नात्र यात्रा प्रकर्तव्या कार्यान्तरमथापि वा॥ (मुहूतंचिन्तामणि पीयूषधारा १।८)

क्रकचयोग—पश्चिम के कुछ देशों में १३ की संख्या वहुत अशुभ मानी जाती है। वहाँ घर की १३वीं मंजिल पर रहने का किसी को साहस नहीं होता। यहाँ भी नारद के नाम से एक ज्योतिषी ने क्रकच (आरा) नाम का एक भीषण योग गढ़ा है। इसमें कार्यारंभ करने वाला मनुष्य बाद में उतना ही कष्ट पाता है जितना आरा से चीरने पर। इस योग में तिथि और वार की संख्याओं का योग १३ होता है।

वार	रवि १	साम २	मंगल ३	बुध ४	गुरु ५	शुक्र ६	शनि ७
तिथि	१२	११	१०	९	८	७	६

वार, तिथि और नक्षत्र योग

वारों का कुछ नक्षत्रों से योग होने पर सिद्धि योग होता है पर उसी में कुछ शुभ तिथियों के आ जाने पर न जाने क्यों विषयोग हो जाता है।

	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
सिद्धि	हस्त	मृग	अश्विनी	अनुराधा	पुष्य	रेवती	रोहिणी
विष	५	६	७	८	९	१०	११
सिद्धि	कृत्तिका	चित्रा	रोहिणी	भरणी	अनुराधा	श्रवण	रेवती
विष	५	२	१५	७	१३	६	८

सर्वार्थसिद्ध योग (मु० चि० १ । २८)

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
हस्त	श्रवण	अश्विनी	रोहिणी	रेवती	रेवती	श्रवण
मूल	रोहिणी	उभा	अनुराधा	अनुराधा		रोहिणी
उफा	मृग	कृत्तिका	हस्त	अश्विनी	पूफा	स्वाती
उषा	पुष्य	आश्लेषा	कृत्तिका	पुनर्वसु	अश्विनी	
उभा						
पुष्य	अनुराधा	मृग	पुष्य	पुनर्वसु		
अश्विनी				श्रवण		

रविवार और मूल नक्षत्र अशुभ हैं, मंगलवार और आश्लेषा पाप हैं पर इनके योग से सर्वार्थसिद्धि योग बनता है और ठीक इसी प्रकार शुभ नक्षत्रों और वारों के यीग से अशुभ योग बनते हैं। पता नहीं, यह भगवान की लीला है या हमारी।

वारों से उत्पन्न आनन्दादि योग

पंचांगों में विष्कंभादि और आनन्दादि, दो प्रकार के योग लिखे हैं। विष्कम्भादि के घटी पल लिखे रहते हैं और आनन्दादि सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक रहते हैं। विष्कम्भादि सूर्यचन्द्र की गतियों के योग से बनते हैं और आनन्दादि वारनक्षत्र के योग से। आश्चर्य है, भौमवार और आश्लेषा नक्षत्र अशुभ हैं पर दोनों के योग से आनन्द योग हो जाता है। सोमवार और उत्तराषाढा शुभ हैं पर दोनों के योग से मृत्यु योग बन जाता है। ऐसे कई योग हैं। आज की रात्रि के अन्तिम क्षण तक प्रवर्धमान है तो कल एक सेकण्ड बाद राक्षस। सूर्योदय के पूर्व सिद्धि है और उससे सटा हुआ एक क्षण बाद उत्पात। आकाश एक क्षण में विष से अमृत और अमृत से विष हो जाता है। यह आकस्मिक घटना नहीं है, ज्योतिष के सूक्ष्ममानों के अनुसार प्रत्येक पल में हुआ करती है। आनन्दादि और विष्कम्भादि, दोनों योग पंचांगों में लिखे रहते हैं किन्तु अनेक बार इनमें घोर विरोध हो जाता है। एक ओर आनन्द और प्रीति है तो दूसरी पंक्ति में उसी दिन वज्र और मृत्यु है। पंचांगों में ये दोनों लिखे रहते हैं पर आनन्द के दिन न आनन्द की वर्षा होती है न वज्र वाले दिन वज्रपात होता है। लम्बी कुण्डलियों में दोनों के फल लिखे जाते हैं। समन्वय कैसे होगा?

वार और अमावास्या—सात वारों से अमावास्या का योग होने पर सात प्रकार के फल होते हैं। इनमें अधिकांश अशुभ हैं। इनके फल ये हैं—

रवि—जनता और राजा को क्लेश, सन्ताप, धन नाश....।

सोम—क्षेम, आरोग्य, प्रजासुख, अन्नवृद्धि, यथेष्ट वर्षा, सुभिक्ष....।

भौम—युद्ध, राजनाश, उत्पात, अल्प वृष्टि, अकाल, हानि...।

बुध—दुर्भिक्ष, राजा-प्रजा को कष्ट, अल्पान्न, स्थानत्याग, उदासी....।

गुरु—सुवृष्टि, सुभिक्ष, कल्याण, आरोग्य, कष्टनाश...।

शुक्र—अतिवृष्टि, अन्नाभाव, चोरों से कष्ट, उपद्रव....।

शनि—दुर्भिक्ष, भय, व्यसन, पिता-पुत्र में युद्ध, व्यसन, वृद्धि।

सात वारों में रवि, भौम और शनि स्वभावत: पाप हैं। चन्द्रमा नारी है और चन्द्रमा के क्षीण रहने पर सोमवार और भी बुरा हो जाता है। शुक्र और बुध शुभ हैं पर नपुंसक हैं। गुरुवार अच्छा है पर पुराणों में देवगुरु की बहुत अश्लील कथाएँ लिखी हैं। उन्हें सत्य मानने पर गुरुवार शुभ नहीं हो सकता और वह वहुतों को सहता नहीं। हाथी-घोड़ा पर चढ़ने में आभूषण बनाने में हल जोतने में, बीज बोने में, अन्न काटने में, अन्नमर्दन में, विवाह में, द्विरागमन में गृहप्रवेश में और वस्त्र धोने आदि में पाप वार वर्जित हैं। शुभ वार भी अनेक वार कुयोग बना देते हैं और उनकी अनेक होराएँ, घटियाँ और मुहूर्त पाप हैं।

एक मास में एक वार पाँच वार

यस्मिन्मासे रवेर्वारा जायन्ते पञ्च सन्ततम्। दुर्भिक्षं छत्रभंगश्च तदास्ते च महद्भयम्॥
सोमस्य पंचवाराश्च यस्मिन्मासे भवन्ति हि। धनधान्यसमृद्धिश्च सुखं भवति सर्वदा॥
यत्र मासे महीसूनोर्जायन्ते पंचवासराः। रक्तेन पूरिता पृथ्वी छत्रभंगस्तदा भवेत्॥
बुधस्य पंचवाराश्च जायन्ते यत्र मासके। प्रजानां सुखमत्यन्तं सुभिक्षं च प्रजायते॥
पंचकं च शनेर्दृष्ट्वा पाताले कम्पते फणी। ईशानदेशभंगश्च वह्निदाहो महर्घता॥

एक मास में २६-३० दिन होते हैं। अत: एक-दो वारों का प्रत्येक मास में पाँच बार आ जाना स्वाभाविक है। ज्योतिष का कथन है कि इस स्थिति में पाप वारों का फल अति भीषण और शुभ वारों का फल अति शुभ होता है। संक्षिप्त फल यह है—

रविवार– दुर्भिक्ष, छत्रभंग, अनेक भय। सोमवार– धन धान्य की वृद्धि और अपार सुख। भौमवार– छत्र भंग, पृथ्वी रक्त रंजित। बुध– प्रजासुख, सुभिक्ष। गुरु-शुक्र के फल भी ऐसे ही हैं। शनिवार यदि एक मास में पाँच बार आ जाय तो शेषनाग काँपने लगते हैं, ईशान कोण में भयंकर कष्ट आता है, मँहगाई बढ़ जाती है और चारों ओर आग लग जाती है, परन्तु किसी भी वार के चार बार और पाँच बार आने में इतना अन्तर पड़ना असंभव है और ये सारी मिथ्या कल्पनाएँ हैं। सत्य यह है कि वारों के कारण प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं होता।

प्रश्नविद्या और वार

प्रश्नों द्वारा भविष्य बताने की अनेक विधियाँ हैं। उनमें से यहाँ तीन लिखी जा रही हैं। (१) प्रश्नकालीन वार तिथि, नक्षत्र आदि के योग से। (२) प्रश्नाक्षर, मात्रा आदि के योग से। (३) प्रश्नकालीन लग्न से। इन तीनों में आपस में विरोध है और प्रश्न पूछते समय प्रष्टा ने कौन-सा अंग छुआ या उस समय कैसे शकुन हुए, यह बात सब फलों को उलट देती है। प्रश्न विद्या के अनेक आचार्य हैं। वस्तुत: पोथियाँ तो बहुत बाद में बनी हैं किन्तु उन पर प्राचीन मुनियों के नाम लिख दिये गये हैं। यहाँ गर्ग मनोरमा की कुछ बातें लिखी जा रही हैं। भड्डरी, घाघ आदि ने जो कुछ कहा है वह सब अनुवाद है, अनुभव नहीं। भडरी ने वर्ष के राजा, मंत्री, वर्षा आदि के फल उसी प्रकार लिखे हैं। वस्तुत: किसी के प्रश्न का उत्तर देना या मनोभाव को जान लेना योगशास्त्र का विषय है पर भारत के ही नहीं हर देश के संतों ने अपने को सर्वज्ञ सिद्ध करने के लिए हर विषय में

टाँग अड़ाई है। पुराणों का भूगोल, खगोल ऐसा ही है, उपनिषद् में चन्द्रमा को सूर्य के ऊपर बताना ऐसा ही है और इसी विषय में बाईबिल के विरुद्ध पृथ्वी को चल कहने के कारण श्री ब्रूनो जीवित जलाये गये थे। आज प्रश्नविद्या भी ज्योतिष का एक अंग बन चुकी है। इसमें प्रश्नकर्ता के मुख से निकले प्रथम अक्षर से, अथवा अक्षरों के योग से, अथवा अक्षरों और मात्राओं के योग से, अथवा अक्षर, मात्रा, वार, तिथि, नक्षत्र, योग घटी, प्रहर आदि में से कुछ के योगों से सहस्त्र बातें बता दी जाती हैं। नया वर्ष कैसा रहेगा, यह मास कैसे बीतेगा, यह सप्ताह कैसा रहेगा, आज के दिन की क्या स्थिति रहेगी, पूछने वाले के मन में किस विषय का प्रश्न है, उसकी मुट्ठी में कौन-सा पदार्थ है, उसका रंग कैसा है, यह नारी गर्भवती है या नहीं, इसको पुत्र होगा या पुत्री, हमारा कार्य सिद्ध होगा या नहीं, शत्रु के दुर्ग में कितने मनुष्य बैठे हैं, वे क्या सोच रहे हैं, क्या कर रहे हैं, उनके पास कौन-कौन से साधन हैं, यह रोगी मरेगा या जीवित रहेगा, यहाँ भूमि के भीतर कहाँ धन है, कहाँ पानी है, हमारी खोई वस्तु किस दिशा में है, कहाँ छिपी है, स्वामी की कृपा होगी या नहीं, विदेश में स्थित हमारा मित्र जीवित है या नहीं, हमारी यात्रा कैसी रहेगी, युद्ध में विजय मिलेगी या नहीं, हमारा भेजा दूत कहाँ है, क्या कर रहा है, यह वार्ता सत्य है या मिथ्या, अमुक व्यक्ति से हमारा मिलन होगा कि नहीं, सन्धि होगी या युद्ध, वह भेदिया व्यक्ति पुरुष है या स्त्री, इस वर्ष कितना पानी बरसेगा, कितना अन्न होगा, परीक्षा में मेरे पुत्र की कौन-सी श्रेणी आयेगी, इत्यादि प्रश्नों का सत्य उत्तर देने का ज्योतिषशास्त्र उद्घोष करता है। जन्मपत्री के १२ कोष्ठों द्वारा जो सैकड़ों बातें बताई जाती हैं उन्हें ज्योतिषी प्रश्न से बता देते हैं। इतना ही नहीं, वे प्रश्न से जन्मपत्री भी बना देते हैं। प्रश्नविद्या का आदेश है कि प्रष्टा फल, पुष्प, वस्त्र और दक्षिणादि लेकर मध्याह्न के पूर्व आये और अविश्वासी न हो तभी ज्योतिषी उत्तर दे नहीं तो उत्तर मिथ्या हो जायेंगे।

फलपुष्पादियुक्तो यो दैवज्ञं परिपृच्छति।
तस्यैव कथयेद् विद्वान् सत्यो भवति नान्यथा॥

प्रश्न विषयक अन्य विषय आगे हैं। वार सम्बन्धी ये हैं-(१) यह वर्ष मेरे लिए कैसा रहेगा, इसे बताने की एक विधि यह है कि प्रश्नकालीन तिथि, वार, नक्षत्र के योग में संवत्सर के नामाक्षर जोड़ो और उस योग में तीन का भाग दो। एक शेष बचे तो वर्ष कष्ट से बीतेगा। दो बचे तो कार्य सिद्ध होगा और शून्य बचने पर सुख मिलेगा। दूसरी विधि यह है कि वार, नक्षत्र, तिथि और प्रष्टा के नामाक्षरों के योग में नौ का भाग दो। शेष को विंशोत्तरी दशा की भाँति समझो अर्थात् एक से नव शेषों तक सूर्य से शुक्र तक की दशाएँ मानो।

तिथिवारधिष्ण्ययोगैर्युक्तः संवत्सरस्य नामार्णैः।
पावकशेषे कलेशं कार्योत्पत्तिं सुखं ज्ञेयम्॥
वारर्क्षतिथ्यो नरनामवर्णैर्युताश्च भक्ता नवभिर्दशेशाः॥

प्रथम विधि में शंका है कि दक्षिण और उत्तर भारत के संवत्सर भिन्न होते हैं। कौन सा लें? दूसरी विधि में शंका है कि जो कई नामों से पुकारे जाते हैं उनका कौन सा नाम लें? वर्ष का फल बताने वाली ताजिक, जातक आदि की कई दशाएँ हैं। वे यदि इसके विपरीत पड़ जायँ अथवा गोचर, अष्टकवर्ग आदि विरुद्ध हो जायँ तो किसे सत्य मानें?

(२) कार्य सिद्ध होगा या नहीं, इसके उत्तर की दस से अधिक विधियाँ हैं। पहली है-वार, नक्षत्र, तिथि और योग की संख्या के योग में २४ जोड़ कर आठ से भाग दो और शेषों के अनुसार फल कहो पर २४ जोड़ने की क्या आवश्यकता है? न जोड़ने पर भी तो शेष उतना ही आयेगा। जिसको इतनी मोटी बात का बोध नहीं है वह वर्ष भर का भविष्य कैसे बतायेगा? दूसरी विधि है—तिथि वार के योग में इष्टघटी का तिगुना जोड़ कर १२ का भाग दो और शेष के अनुसार फल कहो। तीसरी विधि है—तिथि वार के योग में छाया की लम्बाई का दो गुना जोड़ कर आठ का भाग दो और शेष द्वारा फल कहो। चौथी विधि है—तिथि, वार, नक्षत्र के योग में ३२ जोड़कर आठ का भाग दो और शेष से फल कहो। ऐसी अनेक विधियाँ है। इनके फलों

में मतभेद होने पर निर्णय कैसे होगा, पता नहीं।

(१) वारर्क्षयोगैः सहिता तिथिश्च सिद्धप्रयुक्ता वसुभिर्विभक्ता।
(२) अभीष्टनाडी त्रिगुणा च वारतिथिप्रयुक्ता रविभिर्विभक्ता।
(३) आत्मच्छाया द्विगुणा तिथिवारयुताष्टशेषिता ज्ञेया।
(४) वारर्क्षतिथियोगानां योगो रदनसंयुतः। अष्टभिःशेषितः।
(५) तिथिस्त्रिगुणिता धिष्ण्यवारयुक्ता नगाहता, द्विभक्ता।
(६) वारनक्षत्रसंयुक्ता तिथिः प्रहरमिश्रिता सप्तभिः शेषिता।

(३) मेरा आज का दिन कैसा रहेगा, इसे बताने के लिए वार गणना आवश्यक है। (४) दुर्ग में कितने मनुष्य हैं, इसे बताने के लिए वार आदि के योग में दो का गुणा कर आठ से भाग देकर संख्या बताने का आदेश है, दूसरी विधि में त्रिगुणित वार संख्या में नक्षत्र संख्या जोड़कर तीन का भाग देना है और तीसरी विधि में वार आदि के योग में ११ जोड़ कर आठ का भाग देना है। श्लोक है—

नामर्क्षवारतिथिसंयुतिरद्रितष्टा॥ तिथ्यृक्षवारघटिकाः प्रहरैःसमेताः।
दुर्गाक्षरैश्च सहिता द्विगुणा गजाप्ताः॥ रामैर्गुणितवारश्च तारायुक्तः।
त्रिभाजितः॥ वारेणयुक्तातिथिरीशयुक्ता नक्षत्रयुक्ता वसुभिर्विभक्ता॥

शंका—यहाँ तीन और आठ से भाग देकर शेष के आधार पर दुर्ग के मनुष्य बताये हैं तो क्या दुर्ग में तीन या आठ से कम मनुष्य रहते हैं? तीन का भाग देना है तो वार में तीन का गुणा क्यों करें? आठ से भाग देना है तो ११ क्यों जोड़ें? (५) रोगी मरेगा या नहीं, इसका परस्पर विरुद्ध फल बताने वाली दस से अधिक विधियाँ हैं। वार संख्या सब में जोड़नी है। तीन ये हैं—

तिथिवारर्क्षयुतिस्त्रिधाकृता द्वाभ्यां तष्टा। शून्यशेषे मृत्युः।
वह्निभिर्भाजिते योगे चिररोगी द्विशेषके।
एकेन निधनाभावः शून्यशेषे मृतिं वदेत्॥
उदयात् घटिकास्त्रिघ्नाः तिथिवारैः समन्विताः।
सूर्यभक्ते रूपपक्षयुगशून्यैर्न जीवनम्॥

(६) पुत्र होगा या नहीं यह पूछने पर वार और योग में चार गुनी तिथि जोड़ कर चार से भाग दो और शेषों से फल कहो अथवा तिथि आदि के योग में तीन से भाग देकर फल कहो अथवा त्रिगुणित वार में तिथि जोड़ कर दो का भाग दो अथवा वारादिकों के योग में तीन का भाग देकर फल कहो अथवा योग में नौ का भाग दे कर फल कहो। सब १० विधियाँ हैं और निश्चित है कि इनके फल परस्पर विरोधी हैं। धन्य हैं वे ज्योतिषी जो तिथि में चार का गुणा कर बाद में चार से भाग देते हैं।

चतुर्गुणा तिथिः सैका वारयोगसमन्विता।
वेदभक्ता चैकशेषे चिराद् भावि द्विके नहि॥ १॥
वारर्क्षतिथियोगानां योगो नामाक्षरैर्युतः।
लग्नयुग् वह् निहृत् पुत्र एके द्वाभ्यां च कन्यका॥ २॥
वारस्त्रिगुणितो युक्तस्तिथिभिर्युग्मभाजितः।

द्विशेषे विद्यते गर्भोऽन्यथा नास्तीति निश्चितः॥ ३॥
वारर्क्षतिथिसंयोगो गुर्विणीनामसंयुतः।
त्रितष्टस्तत्र पुंकन्यागर्भनाशान् क्रमाद्वदेत्॥ ४॥
नामवर्णा नखैर्युक्ताः तिथिवारयुताः पुनः।
निरेका नवभिस्तष्टाः समे स्त्री विषमे पुमान्॥ ५॥

(७) इस रोगी को कौन सी बाधा है, यह पूछने पर वार, तिथि, नक्षत्र, लग्न और प्रहर की संख्याओं को जोड़ कर आठ से भाग दो। तीन–सात बचें तो देवबाधा, आठ–दो बचें तो पितरबाधा, चार–छः में प्रेत बाधा और एक शेष में ग्रह बाधा बता दो। इसी योग में बारह का भाग दो। ३, ५, ८, ९, ११ शेष बचें तो कहो कि रोगी बच जायेगा। १, २, ४, ७, १०, ० शेष बचें तो कहो कि मर जायेगा। इसकी दूसरी विधि भी नीचे लिखी है।

तिथिवारर्क्षलग्नानां योगे प्रहरसंयुते।
अष्टभिः शेषिते प्रेतबाधा षष्ठे चतुर्थके।!
भक्ते द्वादशभिः शेषे नन्दे रुद्रे स जीवति।

(८) खोई वस्तु कहाँ है, यह पूछने पर वार, तिथि, नक्षत्र, प्रहर, और दिशा के योग में सात का भाग दो। शेषों के क्रमशः फल ये हैं—पृथ्वी में, पात्र में, पानी में, आकाश में, भूसा में, गोबर में और राख में। (९) नौकरी स्थिर रहेगी या नहीं, यह पूछने पर वार, तिथि, नक्षत्र के योग में स्वामी के नामाक्षरों से गुणा करो, तीन जोड़ो और दो से भाग दो। शून्य बचे तो अशुभ फल जानों अथवा वार, तिथि, योग और नक्षत्र के योग में ३२ जोड़ कर सात का भाग देकर भला–बुरा फल जानो अथवा वार, तिथि और नक्षत्र के योग में १९ जोड़कर तीन का भाग दो। इसकी भी दस विधियाँ हैं और इनमें भी ३२, १९ आदि के योग विचारणीय हैं।

तिथिर्वारश्च नक्षत्रं सप्तभिर्भाजितं तथा।
एकेन भूतले द्रव्यं सप्तमे भस्मसंस्थितम्॥
वारर्क्षतिथियोगस्तु प्रभुनाम्ना हतः त्रिभिः।
सहितो भाजितो द्वाभ्यां चन्द्रे मैत्री करे न हि॥
वारर्क्षतिथ्यो रदनप्रयुक्ताः सप्तभाजिताः।
नन्देन्दवो वै तिथिवारधिष्ण्यैर्युताः त्रिभक्तः॥

(१०) धन मिलेगा या नहीं, यह पूछने पर वार, नक्षत्र और तिथि जोड़ो, उसमें प्रश्नाक्षर और पाँच जोड़ो तथा चार का भाग दो। शेष विषम बचा तो धन मिलेगा अन्यथा नहीं। (११) यह वार्ता सत्य है या असत्य, यह पूछने पर वार, नक्षत्र और योग के योग में १५ का गुणा कर चार का भाग दो। एक–दो शेष बचने पर वार्ता को सत्य अन्यथा असत्य कह दो।

वारर्क्षतिथियोगस्तु तद्वर्णैश्च शरैर्युतः।
वेदभक्तः समे शेषे नौ प्राप्तिर्विषमे भवेत्॥
वारर्क्षतिथिसंयोगस्तिथिघ्नो वेदभाजितः।
सत्यमेकेन च द्वाभ्यां त्रिशून्ये तमसद्वदेत्।

(१२) विदेश गया मनुष्य जीवित है या मर गया है, यह पूछने पर वार, तिथि, नक्षत्र, योग इष्टघटी, माससंख्या और यात्री के नामाक्षरों को जोड़ कर सात का भाग दो। एक दो शेष बचे तो जीवित है और लाभ में है, तीन चार बचें तो कष्ट में

है, छः बचे तो रोगी हो गया है और पाँच बचे तो समझ लो कि मर गया है। यह शारदा का वचन है। इसकी दूसरी विधि में वार तीन गुना किया जाता है।

वारर्क्षतिथियोगाश्च घटिका उदयाद्रवेः।
चैत्रादिगतमासाश्च प्रवासीनामसंयुताः॥
सप्तभिश्च हरेद्भागं पंचमे मरणं भवेत्।
प्रथमे च द्वितीये च प्रवासी लाभसंयुतः॥
सप्तमेऽपि भवेन्मृत्युः शारदावचनं यथा॥

(१३) दुर्ग मिलेगा या नहीं, यह पूछने पर त्रिगुणित वार में नक्षत्र जोड़कर तीन से भाग दो। एक, दो और शून्य शेष बचने पर क्रमशः कहो कि मिलेगा, सन्धि होगी, नहीं मिलेगा।

रामैर्गुणितवारस्तु नक्षत्रैर्योजितः त्रिहृत्।
एकशेषे दुर्गलाभो द्विके सन्धिस्त्रिके न हि॥

वारों से सम्बन्धित प्रश्नोत्तरों की संख्या अगणित है। उनमें से यहाँ १३ लिखे गये। इन्हीं से शेष के विषय में अनुमान किया जा सकता है। जिन वारों का आकाश से और स्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है उनके आधार पर यह सब बताना कितना सत्य और उचित है, यह बात इन प्रश्नोत्तरों से स्पष्ट हो जाती है। गर्गमनोरमा, शिव ने गर्ग को सुनाई थी, ऐसा कहा जाता है पर इसका शिव और गर्ग से कोई नाता नहीं है, इसका लेखक कोई दूसरा है, यह बात प्रथम श्लोक से ही सिद्ध हो जाती है। उसमें लिखा है कि यह ग्रन्थ गर्ग ने बनाया। लेखक गर्ग होते तो लिखते—मैं गर्ग यह ग्रन्थ लिख रहा हूँ।

प्रश्नविद्या के कुछ अन्य विषय

प्रश्न के अनेक ग्रन्थों में वारों के बिना अक्षर, वर्ग और मात्रा के योग से उत्तर दिये हैं पर विधियों में भेद होने से विभिन्न उत्तर आते हैं। गर्गमनोरमा के लेखक के मत में यह दोष ज्योतिष का नहीं, ज्योतिषी का है। इस ग्रन्थ द्वारा पृथ्वी में स्थित सारे पदार्थ, सारे भूत-भविष्य और चोर आदि सैकड़ों विषय जान लिये जाते हैं। आपको शंका होगी कि हमने आज तक रत्न, कोयला और तेल आदि की सारी खदानें प्रश्नों द्वारा क्यों नहीं जान लीं? पृथ्वी और ग्रहों की वास्तविक स्थिति क्यों नहीं जानी? चोरों को पकड़ क्यों नहीं लेते? किन्तु शास्त्र में शंका नास्तिकता है। दूसरा श्लोक पिण्डविषयक है। इस ग्रन्थ में सब प्रश्नों के उत्तर इसी पिण्ड द्वारा दिये जाते हैं पर निर्णय असाध्य है। उसमें अनेक मतभेद हैं और मतों का श्लोक से सम्बन्ध नहीं है।

वर्गवर्णप्रमाणं च सस्वरं ताडितं मिथः।
पिण्डसंज्ञा भवेत्तस्य यथाभागैस्तु कल्पना॥ २॥

प्रसिद्ध विद्वान् श्री बच्चू झा ने इसका अर्थ लिखा है—वर्ग और वर्ण की संख्याओं के योग में स्वर संख्या जोड़ो और दोनों योगों के गुणनफल के दो गुने को पिण्ड मानो किन्तु अन्य आचार्यों के अर्थ भिन्न हैं अतः उत्तरों का मूलाधार पिण्ड ही वादग्रस्त हो जाता है। टीकाकार कहते हैं कि प्रश्नकर्ता ज्योतिषी के सामने बैठ कर मध्याह्न से पूर्व किसी फूल का, मध्याह्न में फल का, अपराह्न में नदी का और रात में किसी देव का नाम ले। ज्योतिषी उसी से सब कुछ बता देगा। जैसे प्रष्टा ने फल का नाम लिया दाडिम। तीनों अक्षरों के वर्गों का योग ५+४+६=१५। वर्णसंख्यायोग ३+३+५=११। दोनों का योग २६। स्वरयोग २+३+१=६, तीनों का योग ३२, दोनों का गुणनफल ८३२ है। एक आचार्य इसी को पिण्ड मानते हैं तो दूसरे इसके दूने १६६४ को। अन्य आचार्यों के चक्र इनसे भिन्न हैं। दो चक्र देखें—

अ १	आ २	इ ३	ई ४	उ ५	ऊ ६	ऋ ७
ऌ ८	ए ९	ऐ १०	ओ ११	औ १२	अं १३	
क १	ख २	ग ३	घ ४	ङ ५		कवर्ग 1
च १	छ २	ज ३	झ ४	ञ ५		चवर्ग २
ट १	ठ २	ड ३	ढ ४	ण ५		टवर्ग ३
त १	थ २	द ३	ध ४	न ५		तवर्ग ४
प १	फ २	ब ३	भ ४	म ५		पवर्ग ५
य १	र २	ल ३	व ४			
श १	ष २	स ३	ह ४			

अ २	आ ३	इ ४	ई ५	उ ६	ऊ ७
अ ८	ऋ ९	ऌ १०	ॡ ११	ए १२	ऐ १३
ओ १४	औ १५	अं १६	अः १७		अवर्ग १
क ३	ख ४	ग ५	घ ६	ङ ७	कवर्ग २
च ४	छ ५	ज ६	झ ७	ञ ८	चवर्ग ३
ट ५	ठ ६	ड ७	ढ ८	ण ९	टवर्ग ४
त ६	थ ७	द ८	ध ९	न १०	तवर्ग ५
प ७	फ ८	ब ९	भ १०	म ११	पवर्ग ६
य ८	र ९	ल १०	व ११	०	यवर्ग ७
श ९	ष १०	स ११	ह १२	०	शवर्ग ८

वर्गो और वर्णों के इन दोनों के अतिरिक्त अन्य भी कई चक्र हैं। उन सब में प्रश्नों के उत्तर पिण्ड से ही दिये जाते हैं। (१) कार्य में सिद्धि होगी या असिद्धि, व्यापार में लाभ या हानि, युद्ध में जय होगी या पराजय, रोगी मरेगा या जीयेगा, खोई वस्तु मिलेगी या नहीं, ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने की विधि यह है कि पिण्ड में दो का भाग दो। एक शेष बचे तो अनुकूल और शून्य बचे तो प्रतिकूल फल जानो। पिण्ड में आठ का भाग दो। शेष एक बचे तो समझ लो कि खोई हुई वस्तु पूर्व दिशा में गयी है और दो बचे तो अग्नि कोण में गयी है। इसी प्रकार आगे के शेषों का भी फल जानो। (२) गर्भवती नारी की सन्तान स्थिति जाननी हो तो पिण्ड में तीन का भाग दो। एक शेष बचे तो पुत्र, दो बचे तो कन्या और शून्य बचे तो नपुंसक जानो। भूत, वर्तमान और भविष्य सम्बन्धी तथा आकाश, भूमि और पाताल सम्बन्धी प्रश्नों में भी यही गणित करो। धातु, मूल और जीव सम्बन्धी प्रश्नों मेंभी इसी विधि से उत्तर दिया जायेगा परन्तु दिन या रात्रि के द्वितीय और तृतीयांश में उत्तर बदल जायेगा। वहाँ १, २ और शून्य शेष बचने पर उत्तर होगा मूल, जीव और धातु। पिण्ड में दस का भाग देने पर एक शेष बचे तो समझो कि सोना सम्बन्धी प्रश्न है। इसी प्रकार २, ३, ४ आदि शेषों में चाँदी, ताँबा, पीतल आदि जानो। पिण्ड में १२ का भाग देकर शेष के अनुसार जान लो कि प्रश्न आभूषण सम्बन्धी है या लोटा, थाली, गिलास आदि से सम्बन्धित है। पिण्ड में दस का भाग देकर शेषों के अनुसार जान लो कि वस्तु मिट्टी की बनी है या पत्थर, प्लास्टिक आदि से सम्बन्धित है। पिण्ड में चार का भाग देकर जान लो कि प्रश्न चौपायों सम्बन्धी है अथवा भौंरा, बिच्छू, साँप सम्बन्धी। देवता, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पक्षी आदि का ज्ञान भी इसी विधि से हो जायेगा।

चार का भाग देने पर शेष से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि का बोध हो जायेगा। शूद्र के अतिरिक्त अन्त्यज का भी पता लगाना है, तो पाँच का भाग दो। चार का भाग देने पर शेष से यह भी ज्ञात हो जायेगा कि चोर ब्रह्मचारी, गृहस्थ, बाणप्रस्थी या संन्यासी में से कौन है। यह भी ज्ञात हो जायेगा कि हंस, परमहंस, वहूदक और कुटीचर में से कौन है। पिण्ड में तीन से भाग देने पर यह पता लग जायेगा कि काला-गोरा, लम्वा-नाटा, युवा-वृद्ध आदि में कौन है। दो का भाग देने पर पुरुष-नारी का और बारह का भाग देने पर कुण्डली के बारहों भावों के सब फलों का बोध हो जायेगा। पिण्ड में छः का भाग देने से लाल-पीले आदि छः रंगों का पत्ता, फूल, छाल आदि वृक्ष के छः अंगों का और छः ऋतुओं का पता लग जायेगा। १२ का भाग देने पर राशि और मास तथा दो का भाग देने पर भक्ष्याभक्ष्य, शुष्क-आर्द्र, नर-नारी, दिन-रात, स्वदेश-परदेश, आदि ज्ञात हो जायेंगे।

गौरः श्यामस्तथा रक्तो दीर्घो मध्यश्च खर्वकः।
शिशुर्युवा तथा वृद्धः त्रिभिर्भक्तेऽभिजायते॥
मूलं काष्ठं त्वचा पत्रं कृष्णं पीतमृतूंस्तथा।
षड्भिर्भक्ते विजानीयात् यथोक्तं शंभुना पुरा॥

भूमि में गाड़ी वस्तु का पता लगाने वाला एक अन्य चक्र भी है। उसमें स्वरों और व्यंजनों के अंक भिन्न हैं। ज्योतिषी प्रश्नों का उत्तर ही नहीं बताता, बिना पूछे प्रश्नों को जान भी लेता है। इसकी भी विधियाँ लिखी हैं। ग्रन्थ विस्तार के भय से यहाँ केवल तीन की मीमांसा की जा रही है। प्रष्टा धातु, जीव और मूल में से किसके विषय में पूछ रहा है, इसके उत्तर को परस्पर विरुद्ध दस से अधिक विधियाँ हैं। (१) प्रश्नाक्षर को द्विगुणित करो, उसमें एक जोड़ो, तीन से भाग दो। एक, दो शून्य बचें तो क्रमशः जीव, धातु, मूल जानो। (२) पूछते समय ऊपर, नीचे और सामने देख रहा है तो क्रमशः जीवन, मूल, धातु जानो। (३) यदि मुख ललाट, हृदय उदर और कटि छूता है तो क्रमशः जान लो कि जीव और धातु के विषय में प्रश्न करेगा। यदि लिंग, जाँघ या पीठ छूता है तो मूल पूछेगा। (४) उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में देख रहा है तो जीव, धातु, और मूल पूछेगा। (५) प्रश्नाक्षरों को छः से गुणा करो, एक जोड़ो, तीन का भाग दो। १, २, ० शेष बचें तो जीव, धातु और मूल की चिन्ता जानो।

व्योमदृष्टिर्भवेज्जीवी मूलं भूम्यवलोकने॥
स्पृशेद् वक्त्रं ललाटं चेत् जीवचिन्ता शुभप्रदा।
हृत्कट्युदरसंस्पर्शे धातुचिन्ता च मध्यमा॥
प्रश्नाक्षरं षड्गुणितमेकेन च समन्वितम्।
एके जीवः समे धातुः शून्ये मूलं प्रकीर्तितम्॥

छठीं विधि है—प्रश्नाक्षर में छ का गुणा कर आठ जोड़ो और नौ से भाग दो। एक, दो आदि शेषों को सूर्य-चन्द्र आदि ग्रह जानो। चन्द्र और शुक्र हों तो जीव चिन्ता है, सूर्य, बुध, केतु हैं तो धातुचिन्ता है और शेष ग्रहों में मूलचिन्ता है। शुक्र-चन्द्र में चाँदी की, बुध में सोने की, गुरु में रत्न की, भौम में ताँवे की, शनि में लोहे की और सूर्य में मोती की चिन्ता जानो। सूर्य चन्द्र बचें तो जान लो कि वस्तु पूर्व में गयी है। गुरु-शुक्र बचें तो पश्चिम में गयी है, मंगल-बुध हैं तो उत्तर में गयी और शनि है तो दक्षिण में गयी है।

चन्द्रेशुक्रे जीवचिन्ता धातुचिन्ता बुध रवौ....॥
शुक्रे चन्द्रे भवेद्रौप्यं सूर्ये मौक्तिकमुच्यते....॥
चन्द्रभान्वोर्वदेत् प्रात्यां जीवे शुक्रे च पश्चिमे...॥

प्रश्न के आदि अक्षर कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग आदि के हैं तो चुराई वस्तुएँ पशु, बहुपाद और अपाद आदि हैं, अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग आदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि हैं और पुरुष, स्त्री, नपुंसक आदि हैं। ये चोर हैं। नाम बताने की विधि भी है। जय–पराजय बताने की अनेक विधियों में चार ये हैं—(१) वादी–प्रतिवादी के नामाक्षरों में तीन का गुणा कर तिथि–घटी जोड़कर तीन से भाग दो। जिसमें अधिक शेष बचेगा उसकी जय होगी किन्तु इस विधि को लिखने वाला विक्षिप्त है। तीन का गुणा कर तीन से भाग देना है तो नामाक्षरों की क्या उपयोगिता रही? (२) वादी–प्रतिवादी के नाम के स्वरों और व्यंजनों के योग में सात का भाग दो जिसमें शेष अधिक बचेगा उसकी जय होगी परन्तु इस विधि से गज और अन्धक दैत्यों द्वारा शिव पराजित सिद्ध होते हैं (३) वादी–प्रतिवादी के नामों के अक्षरों और मात्राओं के योग में से १२ घटा कर ८ का भाग दो। जहाँ शेष अधिक है वहाँ विजय है किन्तु इस विधि के अनुसार विष्णु मधु से हार जाते हैं और मुर से सन्धि कर लेते हैं। (४) वादी–प्रतिवादी के नाम के अक्षरों और मात्राओं के योग में दो का भाग दो। एक शेष में जय और शून्य में पराजय है पर इस विधि से राम को रावण पर विजय नहीं मिलती। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ विधियों में व्यंजन हलन्त लिये गये हैं अतः अ का अंक सर्वत्र जोड़ना पडता है।

द्वितीय विधि

	श	ति	थ	सं	का	ला	रि
दं ८	५	६	४	७	१	३	२
अ आ	क	च	ट	त	प	य	श
इ ई	ख	छ	ड	थ	फ	र	ष
उ ऊ	ग	ज	ड	द	ब	ल	स
ए ऐ	घ	झ	ढ	ध	भ	व	ह
ओ औ अं	ङ	ञ	ण	न	म	०	०

चतुर्थ विधि

शं	मे		गं	गा	ग
५	५		३	३	३
ति	स्ते	द	ह	द	धि
६	६	८	८	८	९

तृतीय विधि

तु	ला	रि	भ	ज	नी	ध	सा	म	न	का
६	३	२	४	८	६	१	७	३	०	१
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
म	य	व	र	ल	श	ष	स	ह	०	०

शिव=श् इ व् अ=२+८+३+८=२१ शेष०

गज=ग् अ ज् अ=५+८+६+८=शेष ६

विष्णु=व् इ ष् ण् उ= ८+२+१+३+८=२२ शेष २

मधु=म् अ ध् उ= ६+६+६+८=२६ शेष ६

राम=र् आ म् अ=३+५+५+५=१८ शेष०

रावण=र् आ व् अ ण् अ=३+५+३+५+५+५=२६ शेष०

शंका—(१) इस ग्रन्थ के विभिन्न चक्रों में स्वरों और व्यंजनों के अंक विभिन्न हैं। किसे सत्य मानें! (२) क्या फल, फूल, नदी आदि के नामों द्वारा सृष्टि की स्थिति बताई जा सकती है?

आचार्य वराहमिहिर के पुत्र आचार्य पृथुश्रवा ने प्रश्नविद्या का षट्पञ्चाशिका नामक ग्रन्थ लिखा है। कुछ ज्योतिषी जिन प्रश्नों के उत्तर वार, तिथि आदि के योग से देते हैं तथा कुछ लोग जो उत्तर प्रश्न के अक्षरों और मात्राओं के योग से देते हैं उन्हें ये प्रश्नकालीन लग्न से बता देते हैं। इस ग्रन्थ का कथन है कि ज्योतिषी प्रश्न का उत्तर ही नहीं देते, यह भी बता देते हैं कि आप के मन में क्या प्रश्न है। जैसे जन्मपत्री के १२ भावों द्वारा शरीर, आयु, धन, विद्या, सन्तान, पत्नी आदि की स्थिति का बोध होता है उसी प्रकार ये सव प्रश्नलग्न से भी जाने जाते हैं। इतना ही नहीं, कुछ पण्डित प्रश्न से जन्मपत्री भी बना देते हैं। इस ग्रन्थ का प्रथम प्रश्न यह है कि मैंने कैसी स्त्री से संभोग किया है। उत्तर यह है—प्रश्नलग्न से सप्तम स्थान में यदि रवि, मंगल शुक्र हैं तो परस्त्री से, बृहस्पति है तो अपनी स्त्री से, बुध या चन्द्रमा है तो वेश्या से और शनि है तो धोबिन, चमाइन, डोमिन, नटिन, मल्लाहिन आदि अन्त्यजा से संभोग किया है। चन्द्रमा बाल है तो बालिका से किशोर है तो किशोरी से, युवा है तो युवती से और वृद्ध है तो वृद्धा से संभोग किया है। अमावास्था से पहले का चन्द्रमा वृद्ध, बाद का बाल और पूर्णिमा के पास का युवा होता है।

अस्ते रविसितवक्रैः परजायां स्वां गुरौ बुधे वेश्याम्।
चन्द्रे च वयः शशिवत् प्रवदेत् सौरेऽन्त्यजातीनाम्॥

शंका—(१) सप्तम में यदि दो ग्रह बैठे हैं तो क्या दो प्रकार की स्त्रियों में संभोग किया है? (२) यदि चार पाँच ग्रह बैठे हों तो क्या उत्तर दिया जाय? (३) ज्योतिष ने शनि को अन्त्यज कहा है और धर्मशास्त्र ने सात अन्त्यज माने हैं तो वह सातों में से एक है या सब? (४) शनि प्रतिदिन नियमित रूप से आकाश की एक प्रदक्षिणा करता है और उनकी किरणें हमारे शरीर पर पड़ती हैं तो क्या उनमें धोबी, चमार, डोम आदि की अनुभूति होती है? (५) पुराणों के अनुसार चन्द्रमा गुरुपत्नीगामी है और बुध दोगला है इसलिए यहाँ उन दोनों को वेश्यागमन से जोड़ दिया गया है पर यह सुन कर चन्द्रवंशी क्षत्रिय रुष्ट होंगे। कौरव-पाण्डव इसी वंश के हैं और वेदों के अनुसार चन्द्रमा द्विजराज है। सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा। बुध शब्द भी श्रेष्ठता का द्योतक है तो हम चन्द्र-बुध को ऐसा क्यों कहें? (६) रवि यदि परस्त्रीगामी है तो उसकी पूजा और सूर्यवंशियों का सम्मान क्यों हो? (७) इस सिद्धान्त के अनुसार क्या गुरुग्रह पवित्र सिद्ध हो सकता है?

प्रश्न २—चोरी की वस्तु कहाँ गयी है? उत्तर—लग्न और नवांश स्थिर राशि (२, ५, ८, ११) के हैं तो वस्तु स्वजन ने चुरायी है और घर में गाड़ी है। यदि प्रश्न लग्न के प्रथम द्रेष्काण में हुआ है तो द्वारदेश में गड़ी है। द्वितीय द्रेष्काण है तो मध्य (आँगन) में और तृतीय द्रेष्काण है तो पीछे गड़ी है। चन्द्रमा बली है तो शीघ्र मिलेगी और निर्बल है तो नहीं मिलेगी। जो ग्रह केन्द्र में है वह जिस दिशा का स्वामी है उधर ही चोरी की वस्तु गयी है। केन्द्र में कई ग्रह हों तो जो बली हो उसी की दिशा बताओं और कई बली हों तो राशियों से निर्णय करो। आठ दिशाओं के स्वामी क्रमशः ये आठ ग्रह हैं—रवि, शुक्र, मंगल, राहु, चन्द्रमा, बुध और गुरु। लग्न में १, ५, ९ राशियाँ हों तो वस्तु पूर्व में गयी है, २, ६, १० राशियाँ हों तो दक्षिण दिशा में गयी है। इसी प्रकार आगे समझें। प्रश्नलग्न की राशि से चोर की लम्बाई और वर्ण आदि का, द्रेष्काण से आकृति का और नवांश से वय का पता लग जाता है। नवांश यह भी बता देता है कि वस्तु कितनी दूर गयी है।

शंका—पूर्व दिशा का स्वामी इन्द्र है कि सूर्य? इन ग्रहों और राशियों का पूर्व आदि दिशाओं से क्या सम्वन्ध है? क्या ४, ८, १२ राशियों के चन्द्रमा को कभी किसी ने उत्तर दिशा में देखा है? नवांश १२ से अधिक नहीं होते तो क्या चोरी की वस्तु १२ योजन से दूर नहीं जाती? क्या २, ५, ८ राशियाँ अर्थात् बैल, सिंह और विच्छू स्थिर होते हैं? इस कथन में अन्य अनेक शंकाएँ हैं।

प्रश्न ३—इस नारी को पुत्र होगा या पुत्री होगी? उत्तर—लग्न में यदि पुरुष राशियाँ (१, ३, ५ आदि) हैं, या पुरुष ग्रह (सूर्य, भौम, गुरु) के नवांश हैं, या पुरुष ग्रहों की दृष्टि पड़ रही है या शनि विषम स्थानों में बैठा है तो पुत्र होगा। शंका—क्या विषम राशियों और विषम स्थानों का पुल्लिंग से कोई सम्बन्ध है? क्या वृष, कर्क और मकर स्त्री हैं? क्या ग्रहों में लिंग है? यदि शनि पुरुष राशि में बैठा है और उस पर स्त्री ग्रह की दृष्टि पड़ रही है तो पुत्र होगा कि पुत्री होगी? क्या दृष्टि वाले विधान की कोई उपपत्ति है।

ताजिक नीलकण्ठी—षट्पंचाशिका में अन्य प्रश्नों के उत्तर इसी प्रकार दिये गये हैं। नीलकण्ठी के प्रश्नतन्त्र की भी यही स्थिति है। वहाँ आदेश है कि पूछने वाला हाथ में रत्न, फल, फूल आदि लेकर जाये और एक बार ही प्रश्न पूछे। कई प्रश्न पूछने पर ज्योतिषी का उत्तर मिथ्या हो जाता है। आचार्य का आदेश है कि विवाह सम्बन्धी सारी बातों का निर्णय हो जाने के बाद वरपक्ष को ज्योतिषी द्वारा भली-भाँति जाँच लेना चाहिए कि कन्या व्यभिचारिणी तो नहीं है। लिखा है कि प्रश्न-लग्न की राशि यदि चर है और लग्नेश एवं चन्द्र चर राशि में हैं तो निश्चित है कि सदोषा है और ये तीनों आदि द्विस्वभाव राशि के हैं तो थोड़े दोषों वाली है पर निर्दोषा नहीं है। शंकर के अवतार नीलकण्ठ लिखते हैं कि प्रश्नकाल में यदि मंगल और शनि अस्थिर राशि में हैं तो कुमारी ने गुप्त रमण किया है और चन्द्र-शनि लग्न में हैं तो स्पष्ट रमण किया है। लग्नेश और चन्द्र से मंगल एकांश में मुथशिली हो तो परपुरुष में रता है, लग्नेश चन्द्र से मुथशिली मंगल स्वगृह में हो तो जार के साथ भाग जायेगी और सूर्य से मुथशिल हो तो राज-पुरुष से रमण करेगी। नीलकण्ठी में लिखा है कि यह शास्त्र विष्णु ने ब्रह्मा को बताया है। सारांश यह कि मुथशिल, मुसरिफ, दुफाली, रद्द आदि शब्दों का प्रयोग ब्रह्मा, विष्णु भी करते हैं।

तस्मान्नरः कुसुमरत्नफलादिहस्तः प्रातः प्रणम्य गणकं सकृदेव पृच्छेत्।
एषा कुमारिका किल निर्दोषा किं न वेति पृच्छायाम्।
लग्ने स्थिरे स्थिरर्क्षे लग्नपशशिनोश्च निर्दोषा॥
चरराशिगतैरेतैरियं कुमार्यपि च जातदोषा स्यात्।
द्विशरीरस्थे चन्द्रे चरलग्ने स्वल्पदोषा च॥
अश्रौषीच्च पुरा विष्णोर्ज्ञानार्थे समुपस्थितः।
वचनं लोकनाथोपि ब्रह्मा प्रश्नादिनिर्णयम्॥

इन उत्तरों में राशिस्वामी, गृहदृष्टि और राशिजाति, तीनों निराधार और काल्पनिक हैं। वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभधारी नर स्थिर नहीं होते और मेष, कर्क, मकर से उनमें इतना अन्तर नहीं रहता। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि चर नक्षत्र चरराशियों में नहीं आते। मुथशिल, दुफाली और रद्द आदि नाम ब्रह्मा-विष्णु से सम्बन्धित होते तो प्राचीन ग्रन्थों में अवश्य रहते। यहाँ जो प्रश्न कुमारियों के विषय में पूछे गये हैं उन्हें विवाहिताओं और विवाहितों के विषयों में पूछने पर प्रश्नविद्या का फण्डाफोड़ हो जायेगा।

अंग स्पर्श—वारों, फलों और प्रश्न लग्नों के आधार पर जो उत्तर दिये गये हैं वे सब अंगस्पर्श के विपरीत हो जाते हैं। प्रश्नविद्या कहती है कि जो सिर, मुख, कान और नेत्र छूकर प्रश्न करता है वह सोना, धन, धान्य पाता है। कुक्षि, नाभि के स्पर्श से भोजन-वाहन लाभ, जाँघ-लिंग से पत्नीलाभ, पुत्रलाभ, पादस्पर्श से कष्ट और केशस्पर्श से मरण होता है। अंगस्पर्श की कथा लम्बी है।

जंघालिंगकटिस्पर्शे पत्नीलाभः सुतोद्भवः।
केशस्पर्शे भवेन्मृत्युः पदस्पर्शे च दुःखभाक्॥

• •

अध्याय ५

नक्षत्र प्रकरण

सब नक्षत्र शुभ–संवत्सर, अयन, यान (गोल), ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, दिन, नक्षत्र और मुहूर्त प्राकृतिक काल–मान हैं अत: वेदों में ये सब वर्णित हैं। चन्द्रकला से सम्बन्धित तिथियाँ स्पष्ट हैं, प्रत्यक्ष हैं अतः उन्हें सब जानते हैं पर नक्षत्रों को सब नहीं जानते। इस कारण नक्षत्रों से सम्बन्धित प्राकृतिक चान्द्रमासों का हर देश में प्रचार नहीं है। हमारे चैत्र, वैशाख आदि बारह मास प्राकृतिक हैं क्योंकि उनका पूर्णिमा से और चित्रा आदि नक्षत्रों से सम्बन्ध है (इसका विवरण मास प्रकरण में देखें)। पश्चिम का वर्ष सौर है और प्राकृतिक है किन्तु उसके जनवरी, फ़रवरी आदि मास काल्पनिक हैं। उनके नामों का विवरण आगे पढ़ें।

ज्योतिष में नक्षत्र को तारा, तारका, उडु, ऋक्ष और भ तथा वेद में नभ, रोचना और स्तृ भी कहते हैं। इंगलिश का स्टार Star शब्द इसी स्तृ से बना है। ऋग्वेद १।५०।२ और ६।६७।६ में उन लोकों को नक्षत्र कहा है जिनका कभी क्षय नहीं होता। यजुर्वेद १८।१८ में नक्षत्र चन्द्रमा की अप्सराएँ हैं, ३१।२२ में परमात्मा के रूप और अलंकार हैं तथा २२।२८ में उन्हें देव मानकर आहुतियाँ दी गयी हैं। ऋग्वेद १०।८४।२ और अथर्ववेद १४।१।२ का कथन है कि नक्षत्रों में सोमरस (अमृत) रखा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।२ का कथन है कि सब नक्षत्र देवगृह हैं। जो यह जानता है वह गृही और सुखी होता है। ये रोचन हैं, शोभन हैं और आकाश को रुचिर बनाते हैं। इनके बीच में सूक्ष्म जल का सागर है। ये उसे तरते हैं, तारते हैं इसलिए तारा और तारका कहे जाते हैं। जल को अप् कहते हैं। ये अप् में सरकती हैं इसलिए अप्सरा कही जाती हैं। इन नक्षत्रों में जो यज्ञ करता है वह नक्षत्र (सुरक्षित) रहता है। यही नक्षत्रों का नक्षत्रत्व है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।६।३ का कथन है कि नक्षत्रों द्वारा अश्व, शकट, मृग, मृगी, शय्या, गृह, हाथ, मोती, मूँगा, तोरण, कुण्डल, मंच और मृदंग आदि की भव्य आकृतियाँ बनती हैं। नक्षत्रों के रूप में साक्षात् प्रजापति खड़े हैं। हस्त ही उनका हाथ है, चित्रा सिर है, स्वाती हृदय है, विशाखा के दो तारे जंघे हैं और अनुराधा उनके खड़े होने का स्थान है।

> देवगृहा वै नक्षत्राणि। य एवं वेद गृही भवति।
> रोचन्ते रोचना दिवि। सलिलं वो इदमन्तरासीत्॥
> यदतरँस्तत्तारकाणां तारकत्वम्। यो ह वा इह यजते अमुं स लोकं नक्षते (प्राप्नोति)।
> तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्। नक्षत्राणामुपस्थे सोम आहितः॥
> यो वै नक्षत्रियं प्रजापतिं वेद। उभयोरेनं लोकयोर्विदुः।
> हस्त एवास्य हस्तः, चित्रा शिरो, निष्ट्या हृदयं, ऊरू विशाखे, प्रतिष्ठानूराधाः॥

तैत्तिरीय संहिता (७।५।२५) का कथन है कि परमात्मा एक अश्व है। जो आशु (शीघ्र) चलता है उसे अश्व कहते हैं। उसका यजन अश्वमेध है। आकाश की सारी ज्योतियाँ और सब कालमान उस प्रजापति के अंग हैं। उषः काल उसका सिर है, सूर्य नेत्र है, चन्द्रमा कान है, वायु प्राण है, दिशाएँ चरण हैं, दिन–रात निमेष हैं, पक्ष पर्व हैं, ऋतुमास अन्य अंग हैं, वर्ष आत्मा है, नक्षत्र रूप हैं और तारे अस्थियाँ हैं (यह बात पुरुष सूक्त में भी है) वेद का कथन है कि जो इस बात को जानता है, वह शीर्षस्थ और महान् होता है। सारांश यह कि न कोई नक्षत्र या ग्रह पाप है न कोई काल अशुभ है।

यो वाश्वस्य मेध्यस्य शिरो वेद, शीर्षण्वान् मेध्यो भवति। उषास्य शिरः।
सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणश्चन्द्रमाः श्रोत्रं, दिशः पादा अवान्तरदिशः पर्शवोऽहो– ॥
रात्रे निमेषोऽर्धमासाः पर्वाणि, मासाः सन्धानानि ऋतवोंगानि।
संवत्सर आत्मा, रश्मयः केशा, नक्षत्राणि रूपं, तारका अस्थीनि.... ॥
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्यौ अहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ॥

सायन, निरयणवाद और चल नक्षत्र

वैदिक साहित्य में सब नक्षत्रों के शुभत्व प्रतिपादक ऐसे अनेक प्रमाण हैं किन्तु उनके अध्ययन के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि नक्षत्र चक्र का आरंभस्थान चल है इसलिए हर नक्षत्र के आरम्भ स्थान भी चल हैं। नक्षत्रचक्र का आरम्भ क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के सम्पात से होता है। क्रान्तिवृत्त स्थिर है पर नाड़ी या विषुववृत चल है इसलिए किसी नक्षत्र का आरम्भ सर्वदा एक स्थान से नहीं हो सकता। कुछ लोग चलवृत्त के २७ भागों को नक्षत्र न मानकर तारों को उनकी सीमा मानते हैं परन्तु उन्हें जानना चाहिए कि तारे चल हैं, ध्रुव तारा चल है, ध्रुव स्थान चल है और पृथ्वी का भी ध्रुव स्थान चल है। वेद में कृत्तिका के सात तारों का और पुराणों में छः का वर्णन है। अर्थात् एक तारा लुप्त या मन्द हो गया। अब न कृत्तिकाओं का पूर्व में उदय होता है न वे अपने स्थान में हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।५।२।२) में नक्षत्रिय प्रजापति का वर्णन है। स्वाती नक्षत्र उसका हृदय है पर वह खिसक कर उत्तर की ओर बहुत दूर चला गया है। इसका कारण यह है कि उसकी निजगति (Proper Motion) अन्य तारों से अधिक है (इसका विशेष विवरण आगे पढ़ें)। अतः नक्षत्रों को स्थिर मानना एक मोह है। कुछ लोगों की धारणा है कि वैदिक आर्यों को सूक्ष्म अयनचलन का बोध नहीं था। परन्तु यह विश्वास नितान्त मिथ्या है। आर्य आकाश का सर्वदा सूक्ष्म निरीक्षण किया करते थे। वे जानते थे कि वर्ष की चार विशिष्ट स्थितियाँ होती हैं। दो दिनों में अहोरात्र समान होते हैं अर्थात् दिन और रात दोनों ३०–३० घटियों (१२–१२ घण्टों) के होते हैं। वर्ष में एक दिन दिनमान सबसे छोटा होता है, रात्रि सबसे बड़ी होती है और उस दिन क्षितिज में सूर्योदय उस बिन्दु में होता है जहाँ से दक्षिण नहीं जाता। इसी प्रकार उसके लगभग छः मास वाद एक ऐसा दिन आता है जब दिन सबसे बड़ा होता है, रात्रि सबसे छोटी होती है और क्षितिज में सूर्य का उदय जहाँ होता है उससे उत्तर वह कभी दिखाई नहीं देता। आज–कल इन चारों बिन्दुओं को सायन मेष–तुला संक्रान्ति, सायन मकर संक्रान्ति, और सायनकर्क संक्रान्ति कहते हैं। भारत में प्राचीन काल में राशियाँ नहीं थीं इसलिए २७ नक्षत्र चार भागों में बाँटे जाते थे प्रत्येक भाग में पादोन सात नक्षत्र (६ ।।।) आते थे। प्राचीन आर्य उन दो दिवसों को वसन्तारंभ और शरदारंभ मानते थे जिनमें दिन–रात समान होते थे और वे उस नक्षत्र को प्रथम नक्षत्र मानते थे जिसमें सूर्य के रहने पर वसन्तारंभ होता था किन्तु आर्य भली–भाँति जानते थे कि यह दिवस या नक्षत्र स्थिर नहीं बल्कि चल है इसलिए वे आदि नक्षत्र को और वर्षारंभ को बदला करते थे। वैदिक साहित्य में इसके पर्याप्त प्रमाण हैं। अतः निश्चित है कि आर्य अयनचलन के अभिज्ञ थे और चलन का प्रयोग करते थे।

आचार्य वराहमिहिर के समय वसन्तसम्पात रेवती के अन्त और अश्विनी के प्रारंभ में था अतः उस समय उत्तरायण का आरम्भ (२७–६ ॥।=२०।) उत्तराषाढ़ा के द्वितीय पाद के आरम्भ से होता था और दक्षिणायन का आरम्भ (२७+६ ॥।=६ ॥।) पुनर्वसु के चतुर्थ पाद के आरम्भ से होता था। खेद और आश्चर्य की बात है हम डेढ़ सहस्र वर्षों से अभी उसी को मानते चले आ रहे हैं पर निश्चित है कि आचार्य वराहमिहिर होते तो उसे कभी न मानते। उन्होंने अपनी बृहत्संहिता में लिखा है कि सम्पात् उत्तरायण और दक्षिणायन चल हैं क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि आश्लेषार्ध से दक्षिणायन का और धनिष्ठा से उत्तरायण का आरम्भ होता है अतः यह स्थिति कभी अवश्य रही होगी।

आश्लेषार्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।

नूनं कदाचिदासीत् येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु॥
साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादिश्चान्यत्।
उक्ताभावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः॥

वराहमिहिर ने जिस प्राचीन स्थिति का वर्णन किया है और उनके समय में जो थी उन दोनों में लगभग दो नक्षत्रों (७ नक्षत्रपादों) का अन्तर है। चूँकि अयन की २७ नक्षत्रों की प्रदक्षिणा लगभग २६००० वर्षों में पूर्ण होती है इसलिए उसका काल लगभग २००० वर्ष पूर्व होगा अर्थात् उस समय वसन्त सम्पात दो नक्षत्र पूर्व कृत्तिका में रहा होगा। वैदिक साहित्य में इसका विशद वर्णन है। लोकमान्य श्री बालगंगाधर तिलक ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ओरायन (Orion) में लिखा है कि वह कृत्तिका से पूर्व मृगशीर्ष में था। संस्कृत में वर्ष का एक नाम हायन है, मृगशीर्ष का एक नाम आग्रहायणी है, उससे सम्बन्धित मास का नाम आग्रहायण (वर्ष का अग्र) है, गाँव की भाषा में उसे अगहन कहते हैं और गीता का कथन है—मासानां मार्गशीर्षोऽहम्। अत: आर्यों का अयनचलन का ज्ञान और प्रयोग स्पष्ट है।

प्राचीनकाल में वसन्तारंभ ही उत्तरायणारंभ

किन्तु तिलक जी ने ओरायन में इस विषय में एक ऐसी महत्त्वपूर्ण बात लिखी है जो आज हमें विचित्र लगेगी। उनका कथन है "प्राचीन काल में यज्ञों का बहुत महत्त्व था। वार्षिक यज्ञ वर्षारंभ में आरंभ होते थे, उनका मध्य वर्ष के मध्य में और समापन वर्ष के अन्त में होता था। यज्ञ तथा संवत्सर शब्द समानार्थक हो गये थे और यज्ञ को प्रजापति माना जाता था। तैत्तिरीयसंहिता (२।५।७।३, ७।२।१०।३, ७।५।७।४) और ऐतरेय ब्राह्मण (२।७।४।२२) में लिखा है—यज्ञो वै प्रजा-पतिः, संवत्सरः प्रजापतिः, प्रजापतिर्यज्ञः। आर्यों का वर्ष नाक्षत्र सौरवर्ष था। वह साम्पातिक वर्ष से लगभग एक घटी बड़ा होता है इसलिए उन्हें अपना वर्षारंभ प्रति दो सहस्र वर्षों में एक मास पीछे लाना पड़ता था क्योंकि ऋतुएँ साम्पातिक वर्ष के अनुसार ही होती हैं। परन्तु आर्यों का उत्तरायण भी विषुवदिन (वसन्तसम्पात) से ही आरंभ होता था। वेदांगज्योतिष में संवत्सर का आरंभ उत्तरायण से ही है और आश्वलायन श्रौतसूत्र (१।२।१४।१, २।२।१४।३) में भी ऐसा ही वर्णन है। वेद में उत्तरायण (देवयान) का आरंभ विषुवदिन (वसन्तसम्पात) से था परन्तु वह बाद में बदल कर मकरसंक्रान्ति में चला आया और वैदिक उत्तरायण का अर्थ बदल गया। इसी से श्री भास्कराचार्य को भी भ्रान्ति हो गयी और उन्होंने लिखा कि सूर्य के दिनोन्मुख हो जाने पर अर्थात् आधी रात से ही देवों का दिन प्रारंभ हो जाता है किन्तु यदि वे सायनमेष संक्रान्ति से देवदिन मानते तो ऐसी भ्रान्ति न होती। प्राचीन काल में वर्षारंभ, देवयानारंभ और उत्तरायणारंभ एक थे, पर बाद में उत्तरायण जब मकर में आ गया तो वार्षिक यज्ञ का आरंभ भी वहीं से होने लगा और दो पद्धतियाँ चल पड़ीं। वैदिक साहित्य में देवयान-पितृयान और देवनक्षत्र-यमनक्षत्र का जो वर्णन है उसमें सीमा मेषसंक्रान्ति ही है, मकर नहीं। तैत्तिरीयसंहिता और तैत्तिरीय ब्राह्मण आदि से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदकाल में वसन्त सम्पात, वर्षारंभ और उत्तरायण कृतिकारंभ में था परन्तु तैत्तिरीयसंहिता (७।४।८) में चार वर्षारंभों का वर्णन है।

संवत्सराय दीक्षिष्यमाणा एकाष्टकायां दीक्षेरन्।
एषा संवत्सरस्य पत्नी यदेकाष्टका। एतस्यां वा एष एतां रात्रिं वसति।
साक्षादेव संवत्सरमारभ्य दीक्षन्ते य एकाष्टकायां दीक्षन्ते मुखं वा एतत्॥ १॥
फाल्गुनोपूर्णमासे दीक्षेरन् मुखं वा एतत् संवत्सरस्य यत्फल्गुनीपूर्णमासो
मुखत एव संवत्सरमारभ्य दीक्षन्ते तस्यैकैव निर्या यत् सांमेघ्ये विषूवान्तसम्पद्यते॥ २॥
चित्रापूर्णमासे दीक्षेरन् मुखं वा एतत् संवत्सरस्य यत् चित्रापूर्णमासो
मुखत एव संवत्सरमारभ्य दीक्षन्ते। न तस्य काचन निर्या भवति॥ ३॥

चतुरह पुरस्तात् पौर्णमास्यै दीक्षेरन्। तेषामेकाष्टकायां क्रयः सम्पद्यते...
तेषां पूर्वपक्षे सुत्या सम्पद्यते पूर्वपक्षं मासा अभिसम्पद्यन्ते...सर्वेराध्नुवन्ति॥ ४॥

अर्थ—(१) संवत्सरयाग करने वाले माघ कृष्ण अष्टमी (एकाष्टका) की दीक्षा लें। यह संवत्सर की पत्नी है और वह इस रात्रि में उसके पास रहता है। यह संवत्सर का मुख है किन्तु इसमें दीक्षा लेने वाले संवत्सर को पीड़ा देते हैं। यह अन्तिम ऋतु है। इस समय संवत्सर व्यस्त रहता है। इसमें शीतलता रहती है। यह दोष है। (२) फाल्गुनी पूर्णमासी को दीक्षा लें। यह संवत्सर का मुख है पर इसमें एक दोष यह है कि विषुवान् वर्षाकाल में पड़ता है। (३) चित्रा पूर्णमासी को दीक्षा लें। यह संवत्सर का मुख है और इसमें कोई दोष नहीं है। (४) माघ की पूर्णमासी से चार दिन पूर्व दीक्षा लें। तब एकाष्टका को सोमक्रय की सुविधा होगी और वह निष्फल नहीं होगी। ऐसा करने से शुक्ल पक्ष (पूर्वपक्ष) में सुत्या और मास आते हैं, औषधियाँ उठती हैं और यजमान समृद्ध होते हैं। इस वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वर्षारंभ पीछे खिसकता रहता था।''

श्रीशंकर बालकृष्ण दीक्षित का मत

तिलक जी और दीक्षित जी, दोनों ने मुद्रित होने के पूर्व एक दूसरे के ग्रन्थ पढ़े थे। दीक्षित जी ने लिखा है– ''तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।१।२) के अनुसार वसन्त ऋतुओं का मुख है और उत्तराफाल्गुनी उसकी प्रथमा रात्रि है। इससे अनुमान होता है कि किसी समय फाल्गुन की पूर्णिमा से ही वसन्तारंभ होता रहा होगा और विषुवान् दिवस संवत्सरसत्र के मध्य में आता रहा होगा। वार्षिक यज्ञ के ठीक बीच में विषुवान दिवस आवे, उसके छः मास पूर्व ठीक विषुवान् दिवस में ही यज्ञारंभ हो और उस दिन पूर्णिमा भी हो, यह असंभव है। यदि किसी वर्ष में संयोवशात् फाल्गुन पूर्णिमा को दिन–रात समान हो गये तो दूसरे वर्ष में पूर्णिमा के ११ दिन बाद और तीसरे वर्ष में २२ दिन बाद समान होंगे।''

भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय की त्रिप्रश्नवासना में लिखा है कि उत्तरायण देवों का दिन है और दक्षिणायन रात्रि है, यह संहिताकारों का कथन है पर वैदिक साहित्य में देवयान वसन्तसम्पात (सायनमेष) से प्रारम्भ होता है और देवों की मध्यरात्रि उससे तीन मास पूर्व होती है। इसका अभिप्राय यह है कि वे सूर्य के दिनोन्मुख हो जाने पर अर्थात् मध्यरात्रि से ही देवदिन मान लेते हैं।

दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशातथा तत्फलकीर्तनाय तत्॥

तिलक जी का कथन है कि वैदिक वसन्तारंभ, उत्तरायणारम्भ और वर्षारंभ सायन मेष से ही होता है। भास्कराचार्य स्वयं इस सायनवाद के पक्षपाती हैं और उन्होंने लिखा है कि–''ब्रह्मगुप्त आदि के समय में स्वल्प होने से वह उपलब्ध नहीं था पर आज उपलब्ध है और गणित में वही शास्त्र प्रामाणिक है जिसकी उपपत्ति हो।

तदा स्वल्पत्वात्तैर्नोपलब्धः इदानीं बहुत्वादुपलब्धः।
गणितस्कन्धे उपपत्तिमानेवागमः प्रमाणम्॥

देवयान और पितृयान शुभ

आजकल मेषाधि छः राशियाँ उत्तर गोल में और तुलादि छः राशियाँ दक्षिण गोल में मानी जाती हैं। वेदों ने इन्हें देवयान और पितृयान कहा है किन्तु उस समय वसन्तसम्पात कृत्तिका में था इसलिए कृतिका प्रथम नक्षत्र था, वहाँ से विशाखा तक १४ नक्षत्र देवयान या देवनक्षत्र कहे जाते थे और अनुराधा से भरणी तक १४ नक्षत्र पितृयान तथा यम नक्षत्र माने जाते थे।

तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।२ में लिखा है—

कृत्तिकाः प्रथमं, विशाखे उत्तमं, तानि देवनक्षत्राणि।
अनुराधाः प्रथममपभरणीरुत्तमं तानि यमनक्षत्राणि॥

वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में देवयान से ही वर्षारम्भ है और वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, तीन ऋतुएँ इसी में पड़ती हैं। इसी से वसन्त को ऋतुओं का मुख कहा है। इसके बाद अनुराधा से भरणी तक १४ नक्षत्र पितृयान के हैं। इन्हें यम नक्षत्र कहा है। आधुनिक ज्योतिष में दक्षिण गोल और यम शब्द अशुभ हैं किन्तु पुराणों में यम धर्मराज हैं और योगशास्त्र में यम, नियम, संयम पवित्र हैं।

मुखं वैतदृतूनां यद्वसन्तः (तै० ब्रा० १।१।२।६) बसन्तो ग्रीष्मो वर्षा ते देवाऋतवः।
शरद्हेमन्तः शिशिरस्ते पितरः। यत्रोदगावर्तते देवेषु तर्हि भवति।
यत्रदक्षिणावर्तते पितृषु तर्हि भवति (शत० बा० २।१।३)॥

तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।२ में यम नक्षत्रों से सम्बन्धित एक बहुत महत्त्वपूर्ण कथा है जिससे सारे यम नक्षत्र शुभ सिद्ध हो जाते हैं। श्रीसायणाचार्य ने उसके भाष्य में लिखा है कि एक बार देवों ने परामर्श किया कि हम असुरसंग्राम के लिए अनुकूल सामग्री से राद्ध (समृद्ध) हों। उन्होंने जिस नक्षत्र में यह विमर्श किया वह अनुराधा है। यह अनु और राद्ध का योग है। जिसमें ज्येष्ठ असुर के वध की योजना बनी वह ज्येष्ठघ्नी हुई। उसका संक्षिप्त रूप ज्येष्ठा है। जिसमें असुरों के समूल उच्छेदन (बर्हण) की योजना बनी वह मूलबर्हणी कही गयी। जिसमें असुरों को देवों का आक्रमण असह्य हुआ वह आषाढ़ा हुई और जिसमें बहुत प्रहार किये गये वह श्रोणा कही गयी। श्रोण शब्द बाहुल्यवाची है और श्रोणा का लौकिक नाम श्रवण है। असुरों ने जिस नक्षत्र में देवों के आक्षेप सुने वह श्रविष्ठा है और बाद में वही धनिष्ठा कही जाने लगी। जिस नक्षत्र में देवों ने असुरों द्वारा किये सौ प्रहारों का भैषज्य (औषधोपचार) किया वह शतभिषक् है, जिनमें आयुधों को पुनः उद्यत किया वे प्रोष्ठपदा हैं, जिसमें घोर रव (शब्द) किया वह रेवती है, जिसमें अश्वों को रथ में पुनः जोता वह अश्वयुक् या अश्विनी है और जिसमें उनके प्राणों का अपभरण हुआ अर्थात् वे मारे गये वह अपभरणी कही गयी। इन अनुराधादि नक्षत्रों में यम ने असुरों को मारा इसलिए वे यम नक्षत्र कहे गये।

अन्वेषामराद्धमित्यनुराधा। ज्येष्ठमवधिष्मेति ज्येष्ठघ्नी।
मूलमेषामवृक्षामितिमूलबर्हणी। यन्नासहन्त तदषाढा॥
यदश्रोणत् तच्छोणा। यदशृणोत्तम् श्रविष्ठा।
यच्छतमभिषज्यन् तच्छतभिषक्। प्रोष्ठपदेषूदयच्छन्त॥
रेवत्यामरवन्त अश्वयुजोरयुंजन्। अपभरणीष्वपावहन्॥ (देखिये सायणभाष्य)

किन्तु आधुनिक ज्योतिष देवयान के कृत्तिका, आर्द्रा, मघा आदि नक्षत्रों को तीक्ष्ण, दारुण और उग्र आदि कहता है, पूरे पितृयान (यमनक्षत्रों) को अशुभ कहता है और पुनः उसके अनुराधादि कुछ नक्षत्रों को कुछ कर्मों में शुभ मानता है। उसने भारत में सात वारों के आगमन के बाद उन्हीं के गुणों के आधार पर नक्षत्रों की भी सात जातियाँ बना डालीं और उनके चित्र-विचित्र नाम रख दिये। उनका चक्र यह है-

वारों और नक्षत्रों की सात जातियाँ

१	रवि	ध्रुव स्थिर	रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा

२	सोम	चर चल	स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा
३	भौम	उग्र क्रूर	पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, मघा
४	बुध	मिश्र साधारण	कृत्तिका, विशाखा
५	गुरु	क्षिप्र लघु	अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित्
६	शुक्र	मृदु मैत्र	मृग, चित्रा, अनुराधा, रेवती
७	शनि	तीक्ष्ण दारुण	ज्येष्ठा, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा

इनमें क्रमशः सात प्रकार के कर्म करने का विधान है। उनका संक्षिप्त विवरण यह है–(१) बीज, गृह, शान्तियज्ञ, वाटिकादि स्थिर कर्म। (२) वाहन, वृक्ष, गीत, दूध, कृषि आदि चल कर्म। (३) घात, शठता, अग्निदाह, विषदान, चोरी, युद्धादि उग्र कर्म। (४) नृत्य, शिल्प, लिपि, रसादि कर्म। (५) कला, भूषण, यज्ञादि। (६) गायन, वादन, क्रीड़ा, वस्त्र, मैत्री, आभूषणादि कर्म। (७) चोरी, घात, विषदान, मिथ्याभाषण आदि। ग्रन्थकारों ने प्रत्येक नक्षत्र के भिन्न भिन्न कर्म भी विस्तार से लिखे हैं।

वेदांगज्योतिष ग्रन्थ बाद की रचनाएँ हैं। वे तीन हैं, उनके कई विषय वेदविरुद्ध हैं और कुछ नूतन हैं। वहाँ वारों का वर्णन है अतः नक्षत्रों के उग्र क्रूर नाम भी आये हैं किन्तु वे इस पद्धति से भिन्न हैं। यहाँ उग्र को ही क्रूर कहा है पर वहाँ दोनों भिन्न हैं। वहाँ आर्द्रा, चित्रा, विशाखा, श्रवण और अश्विनी उग्र हैं तथा मघा, स्वाती, ज्येष्ठा और मूल क्रूर हैं अर्थात् जो चित्रा यहाँ मृदु और मैत्र (परम शुभ) है, जो श्रवण–स्वाती शुभ हैं, जो अश्विनी अति शुभ है और जो विशाखा बुध के समकक्ष है वह भी उग्र और क्रूर हो गयी है। काल्पनिक शास्त्र में ऐसा मतभेद स्वाभाविक है। खेद है, यहाँ इन्द्र, अश्विनी कुमार, विष्णु और वायु आदि देवों के नक्षत्र भी क्रूर हैं।

उग्राण्यार्द्रा च चित्रा च विशाखा श्रवणाश्वयुक्।
क्रूराणि तु मघा स्वाती ज्येष्ठा मूलं यमस्य यत्॥

हमारी आकाशगंगा के एक हाथ में लाखों तारे हैं और आकाश में असंख्य आकाशगंगाएँ हैं अर्थात् नक्षत्र अगणित हैं और हम पर उन सब का प्रभाव पड़ता है। नक्षत्रमण्डल सूर्यादि ग्रहों से लाखों करोड़ योजन दूर है, वहाँ कोई ग्रह पहुँच नहीं सकता पर ग्रहों की गतियों का बोध नक्षत्रों से ही होता है। जो ग्रह जिस नक्षत्र की सीध में दिखाई देता है, हम उसको उसी में स्थित मानते हैं। ग्रहों में चन्द्रमा की गति सबसे अधिक है क्योंकि वह पृथ्वी के सबसे निकट है और उसका भ्रमणमार्ग छोटा है। शनि सबसे दूर है और उसकी कक्षा बहुत बड़ी है इसलिए उसकी गति सबसे कम है। सूर्य एक वर्ष में, मंगल दो वर्ष में, गुरु बारह वर्ष में, शनि तीस वर्षों में और चन्द्रमा लगभग २७ दिन ८ घण्टों में अपनी कक्षा की प्रदक्षिणा करता है। आजकल नक्षत्र शब्द से चन्द्र नक्षत्र का ही ग्रहण होता है। एक वृत्त में ३६० अंश होते हैं अतः एक नक्षत्र ३६०÷२७= १३ अंश २० कला का होता है। प्रत्येक को पार करने में चन्द्रमा को भिन्न-भिन्न समय लगते हैं इसलिए सब नक्षत्रों के कालमान भिन्न-भिन्न होते हैं।

देवराज इन्द्र का नक्षत्र भीषण (ज्येष्ठा)

शास्त्र कहते हैं कि जिन्होंने काम, क्रोध, लोभ आदि दोषों पर विजय पा ली है और जो सत्य, शौच, दया आदि दैवी गुणों से समन्वित हैं वे महामानव ही स्वर्ग के अधिकारी होते हैं। जिनका पुण्य उन सामान्य मनुष्यों से पचासों गुना अधिक होता है वे देव हो जाते हैं। चूँकि इन्द्र देवों के देव, देवराज हैं अतः निश्चित है कि उनका सुकृत देवों से भी सैकड़ों गुना अधिक होगा

और उन्हें काम, कोप, लोभ, असत्य, हिंसा, अशौच आदि दोष छू भी नहीं सके होंगे। इन्द्र की महत्ता का अनुमान इसी से लगता है कि विष्णु को उपेन्द्र कहा जाता है। ऋग्वेद में विष्णु के केवल पाँच सूक्त हैं पर इन्द्र के लगभग तीन सौ। वेदों का लगभग एक चतुर्थांश इन्द्र की प्रार्थना और यशोगान में लगा है। वेदों में उनके ज्ञानप्रद, त्राता, दयालु, विष्णु, शिव, धाता, प्रजापति, वैकुण्ठ, ब्रह्म, अविता, सुत्रामा, सुखद, धर्मशील, न्यायकारी, तारक, राजा, वागीश, सूर्य, गगनेश, यज्ञात्मा, गोपा, विश्वकर्मा, वृत्रघ्न, असुरघ्न, योगी, सत्तम, नोतिमान्, वलिष्ठ, ओजिष्ठ, वैद्यराज एकवीर, वज्रबाहु, पुरन्दर, चित्रभानु आदि कई सौ पावन नाम हैं, इतना ही नहीं, वेद तो यह भी कहते हैं कि इन्द्र परमात्मा का नाम है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

महाभारत (उद्योगपर्व २६) में श्री वेदव्यास ने विस्तार से लिखा है कि कृष्ण भगवान युधिष्ठि से कहते हैं—तेजस्वी इन्द्र ने मन को प्रिय लगने वाली सदोष वस्तुओं, लौकिक सुखों और प्रमाद को छोड़, सावधान होकर चिरकाल तक सत्य, ब्रह्मचर्य, समदर्शिता, सात्विकता, सहिष्णुता आदि का पालन किया तब उन्हें देवराज पद मिला।

सत्यं धर्म पालयन्नप्रमत्तो हित्वा सुखं यो मनसः प्रियाणि।
अतन्द्रितो ब्रह्मचर्यं चचार स देवराज्यं मघवाऽऽप मुख्यम्॥

किन्तु खेद है कि हमारे पुराणों ने और लोकभाषा के महाकवियों ने, एक भी ऐसा लांछन नहीं है जिसका आरोप इन्द्र पर न किया हो। यज्ञ इन्द्र की ही कृपा के लिए किये जाते हैं। लिखा है—'स्वर्गकामो यजेत्', किन्तु इन्द्र यज्ञ का घोड़ा चुराते हैं। जिन मेनका, उर्वशी, रंभा आदि अप्सराओं की सुन्दरता देख कर अगस्त्य, वसिष्ठ, विश्वामित्र, विभाण्डक आदि मुनियों का वीर्यपात हो जाता है उन्हें छोड़ कर और करोड़ों योजन चल कर इन्द्र धरती पर उस अहल्या के पास जाते हैं जिसने पति के अनुकरण में अपना शरीर सुखा दिया है तथा जो भस्म लगाकर भस्म पर बैठती है और भस्म पर सोती है। हम निश्चित कर बैठे हैं कि गौतम के शाप से अहल्या पत्थर हो गयी थी और मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राघवेन्द्र ने उस तपस्विनी ब्राह्मणी को पैर से छू कर पुनः मानवी बनाया था, पर वाल्मीकि का कथन है कि वह तपस्विनी भस्म पर बैठी थी, समाधि में लीन थी, राम और लक्ष्मण ने उसके पैर छुये, पैरों पर सिर रखा और आशीर्वाद लिया।

तप्यन्ती भस्मशायिनी, राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा॥

श्रुति के श्रोत्र निरुक्तशास्त्र ने स्पष्ट कर दिया है कि उषा ही अहल्या है, घोर अन्धकार ही गौतम है और उदय कालीन सूर्य ही इन्द्र है। उसके आने पर गौतम दूर चला जाता है और इन्द्र–अहल्या मिल जाते हैं। सूर्य सहस्राक्ष है और उसकी सहस्र (असंख्य) किरणें ही उसके नेत्र हैं। इन्द्र किसी के शाप से सहस्राक्ष नहीं बना है पर हमने आँख मूँद कर देवराज पर गालियों की वर्षा की है। सन्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि नारद की तपस्या से इन्द्र भयभीत हो जाता है। उसका सिंहासन राजा दशरथ की कृपा से सुरक्षित है और वह उन्हें अपने सिंहासन पर बैठाता है। वह रामराज्य में विघ्न डालने के लिए सरस्वती को मन्थरा की जीभ पर भेजता है और राम–भरत के मिलन की आशंका से काँपता है। नीचे की चौपाइयों में गोसाई जी ने देवराज को कैसी–कैसी उपाधियाँ दी है उनका मनन करें और वैदिक उपाधियों से उनकी तुलना करें।

सुनासीर मन महँ अति त्रासा। चहत देवऋषि मम पुर बासा॥
जे कामी लोलुप जगमाहीं। कुटिल काक इव सबहिं डेराहीं॥
सूख हाड़ लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहिं न लाज॥ १। २५
सुरपति बसइ बाहुबल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताके॥ २। २५

आगे होई जेहिं सुरपति लेई। अर्ध सिंहासन आसन देई॥ २। ६७
देखि प्रभाउ सुरेसहिं सोचू। जग भल भलेहि पोच कहं पोचू॥
गुरु सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहिं भरतहिं भेंट न होई॥ २। १७
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभ्य धकधकी धरकी॥ २। २४१
सुनत जनक आगमन सब, हरखेउ अवधसमाज।
रघुनन्दनहिं सँकोच बड़, सोच बिबस सुरराज॥ २। २७२
रामसनेह सँकोच बस, कह ससोच सुरराज।
रचहु प्रपंचहिं सकल मिलि, नाहित भयउ अकाज॥ २। २६४
सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाट।
रचि प्रपंच माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाट॥ २। २६४
करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सब काज अकाजू॥
कपट कुचालि सीम सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहुँ न प्रतीती॥
प्रथम कुमति करि कपट सँकेला। सो उचाट सबके सिर मेला॥
लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान् जुआनू॥ २। ३०२
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरखत सुरतरु फूल॥ २। ३०८
लोक उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसर पाइ। २। ३१६
आये देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी ६। ११०

इन्द्र की लौकिक और वैदिक कुछ उपाधियाँ

गोसाईं जी	वेद	गोसाईं जी	वेद
कामी	जितेन्द्रिय	शोकाकुल	सानन्द
लोलुप	मधुप्रद	विकल	दुश्च्यवन
कुटिल	सुशील	द्वेषी	निष्कलुष
काक	शंकर	प्रपंची	योगीश्वर
श्वान	धर्मशील	स्वार्थी	तारक
जड़	बृहस्पति	मलिन	वैकुण्ठ
निर्लज्ज	देवराज	कुमन्त्र	सुत्रामा
पराधीन	अविता सविता	कुठाट	सुभग
नरदास	परब्रह्म	मायावी	मायापति
पोच	सत्तम	भीरु	प्रवीर
कुचाली	विष्णु	कपटी	शिव
नीच	प्रजापति	कुमति	बृहस्पति
छली	शर्मद	अविश्वासी	वृद्धश्रवा

इन्द्र सदृश ही दुर्गति उनके नक्षत्र ज्येष्ठा की भी हुई है। इन्द्र सुरज्येष्ठ हैं इसलिए उनका नक्षत्र भी ज्येष्ठा कहा गया है। देखने में उसके तारे बड़े सुन्दर हैं और ज्योतिषियों ने उसे कुण्डल कहा है। हरि के नक्षत्र श्रवण की आकृति भी लगभग ऐसी ही है पर ज्येष्ठा अधिक तेजस्विनी है। उसके विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि वह इन्द्र की प्रिया है और इन्द्रलोक है। देवासुर संग्राम में इन्द्र ने उसी नक्षत्र में असुरराज वृत्र को मारा था। इन्द्र अपनी ज्येष्ठा के साथ आ रहा है। इस नक्षत्र में हम अमृत का दोहन कर क्षुधा से, दुर्गति से और संकटों से पार हों। दुष्ट पुरों के नाशक, बली, धीर, वीर, व्रती, सहिष्णु, सज्जनों पर आनन्द की वर्षा करने वाले और श्रेष्ठ मधु के दोहक इन्द्र को नमस्कार है। वे यजमान को अपना लोक ज्येष्ठा दें?

इन्द्रो ज्येष्ठामनुनक्षत्रमेति यस्मिन् वृत्रं वृत्रतूर्ये ततार।
तस्मिन् वयममृतं दुहाना क्षुधं दुरितिं दुरिष्टिं तरेम॥
पुरन्दराय वृषभाय धृष्णवे आषाढाय सहमानाय मीढुषे इन्द्राय ज्येष्ठां मधुमद्दुहानाः।
उक्तं कृणोतु यजमानाय लोकम्॥

अथर्वसंहिता १६।७ का कथन है कि २८ रोचन और चित्र (सुन्दर) नक्षत्र आकाश में एक साथ घूम रहे हैं। उनमें ज्येष्ठा सुनक्षत्र है और मूल अरिष्ट (शुभ) है। 'ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टं मूलम्'। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।५।१।४) में लिखा है– इन्द्रस्यरोहिणी। तैत्तिरीय संहिता (४।४।१०)में भी ज्येष्ठा को रोहिणी कहा है। इसका अर्थ यह है कि ज्येष्ठा आरोहण कराने वाली अर्थात् ऊपर उठाने वाली है। ज्येष्ठ मास को ज्येष्ठ इसलिए कहते हैं कि उसमें सूर्यास्त होते ही ज्येष्ठा नक्षत्र का उदय हो जाता है, वह रात भर दिखाई देती है और उस मास की पूर्णिमा में चन्द्रमा, ज्येष्ठा नक्षत्र में पहुँच जाता है। चूँकि ज्येष्ठ मास प्रत्येक शुभ कर्म में पुनीत माना गया है अतः सिद्ध है कि प्राचीन काल में ज्येष्ठा अशुभ नहीं मानी जाती रही होगी। वह ज्येष्ठ मास की जननी है।

कहीं कहीं ज्येष्ठा को ज्येष्ठघ्नी और मूल को मूलवर्हणी कहा है। आर्यसमाजी विद्वानों के अतिरिक्त सायणाचार्य ने भी इन्हें ज्येष्ठ असुर को मारने वाली और असुरों के मूल की नाशिका सिद्ध किया है। अथर्ववेद (६।११०।२, ३ तथा ६। ११२।१, २ और ६।१२१।३, ४) में कुछ शब्द वादास्पद हैं। ६।११०।३ का अर्थ है, व्याघ्र सदृश वीर नक्षत्र में उत्पन्न यह सुवीर बालक किसी का वध न करे।

व्याघ्रे ह्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः

कुछ लोग इस अर्थ को सुनकर भयभीत हो गये और उन्होंने इस सिंहवत् वीर नक्षत्र को मारक मान लिया। इस स्थिति को देख मुझे एक पौराणिक कथा का स्मरण होता है। देवों को भय हो गया था कि शंकर–पार्वती से उत्पन्न व्याघ्रवत् वीर पुरुष हमें मार डालेगा इसलिए उन्होंने विघ्न डालने का प्रयास किया पर हुआ यह कि उमाशंकरसुत कार्तिकेय ने ही तारकासुर का वध करके देवों की रक्षा की। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि व्याघ्रवत् वीर पुरुष से ही देश, जाति, धर्म और समाज की रक्षा होती है। मुहूर्त और प्रश्न से नहीं। व्याघ्र और सिंह से डरने पर तो हमें क्षत्रियों की जजमानी ही छोड़ देनी पड़ेगी और रणजीत, रणंजय, भीम, भीष्म, अभिमन्यु, प्रताप आदि नामों को हटा देना होगा।

कुछ लोगों को भय है कि ज्येष्ठा और मूल यम नक्षत्र हैं अतः भीषण हैं। उन्हें ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, यम, नियम, संयम आदि शब्दों के अर्थ का स्मरण करना चाहिए और यह जानना चाहिए कि अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, आदि भी यम नक्षत्र हैं और शुभ माने जाते हैं। एक बात और—ज्येष्ठा और मूल दोनों यम नक्षत्र हैं पर मूल में विवाह होता है, वधू प्रवेश होता है और द्विरागमन होता है पर ज्येष्ठा में सब वर्जित हैं। मूल का स्वामी राक्षस है, वर्ण क्षत्रिय

(सिंह व्याघ्र) है और योनि कुत्ता है। ज्येष्ठा का स्वामी इन्द्र है, वर्ण ब्राह्मण है और योनि मृग है पर मूल विवाह में शुभ है और ज्येष्ठा त्याज्य है। यह परमात्मा की नहीं, ज्योतिषी और ज्योतिष की लीला है। ज्योतिष के अनेक ग्रन्थों ने लिखा है कि ज्येष्ठा में उत्पन्न बालक कीर्तिमान, सुन्दर, वैभवशाली, धनवान अतिप्रतापी, प्रतिष्ठावान्, श्रेष्ठ, महान् वक्ता, विद्वान् गुणवान् और विशेष रूप से राजमान्य एवं लोकमान्य होता है। एक श्लोक पढ़ लें–

सत्कीर्तिकान्तिर्विभुतासमेतो वित्तान्वितोऽत्यन्तलसत्प्रतापः।
श्रेष्ठप्रतिष्ठो वदतां वरिष्ठो ज्येष्ठोद्भवः स्यात्पुरुषोविशेषात्॥

किन्तु खेद है कि ज्योतिष ने ज्येष्ठा को सब शुभ कार्यों में त्याज्य कह दिया है और उसकी गणना तीक्ष्ण–दारुण नक्षत्रों में की है। उसका कथन है कि यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो ज्येष्ठा में उत्पन्न पुत्र–पुत्री को फेंक दो। साहस न हो तो आठ वर्षों तक उनका मुख न देखो और विधिवत् शान्तियज्ञ करो। वसिष्ठ और नारद का कथन है कि ज्येष्ठा में मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण का प्रयोग, किसी को बाँधना या पीटना, विष देना, आग लगाना, अस्त्र, शस्त्र मदिरा आदि बनाना, मित्रों में कलह पैदा करना, झूठ बोलना और पशुदमन आदि कृत्य सफल होते हैं पर शुभ कर्म कभी नहीं। आश्चर्य है, अनुराधा यम नक्षत्र है, परम शुभ है और उससे सटी ज्येष्ठा इतनी भीषण है। वह एक क्षण में धरती और आकाश को इतना बदल देती है, पर प्रश्न यह है कि क्या अपने प्रतिमास में नियमित रूप से ऐसा परिवर्तन होते देखा है?

अभुक्तमूलजं पुत्रं पुत्रीमपि परित्यजेत्।
अथवाब्दाष्टकं तातस्तन्मुखं न विलोकयेत्॥
तत्राभिचारघातोग्रभेदाः पशुदमादिकम्।
बन्धनं दहनं शस्त्रं विषपानासवानृतम्॥ (मु० चि० २। ८ भाष्य)

ज्येष्ठाशान्ति

हाथ जोड़े शौनक मुनि को ऋषि गर्ग बता रहे हैं कि ज्येष्ठा नक्षत्र के प्रारम्भ की छ घटियों में पैदा हुआ पुत्र नानी का घातक होता है तथा आगे के नव भागों में उत्पन्न शिशु क्रमशः नाना का, मामा का, माता का, अपना, पूरे गोत्र का, कुल का, ज्येष्ठ भ्राता का, ससुर का और सर्वस्व का सर्वनाश कर देता है। जो अन्तिम घटियों में पैदा हैं वे निश्चित् रूप से दस दिन के भीतर अपना और पिता का प्राणनाश कर देते हैं। यदि कन्या है तो पति के बड़े भाई को खा जाती है।

सुखासोनमृषिश्रेष्ठं गर्गं मुनिगणान्वितम्।
कृतांजलिपुटो भूत्वा पप्रच्छ किल शौनकः
ज्येष्ठादौ मातृजननीं मातृतातं द्वितीयके।
तृतीये मातुलं हन्ति मातरं च चतुर्थके॥
आत्मानं पंचमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत्।
सप्तमे कुलनाशः स्यादष्टमे ज्येष्ठसोदरम्।
नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वस्वं दशमे तथा।
ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हन्ति शीघ्रं धवाग्रजम्॥

इसकी शान्ति का उपाय यह है कि कृपणता का परित्याग कर, उदारता पूर्वक वज्र—अंकुशधारी, ऐरावत हाथी पर बैठे इन्द्र की और आठ लोक पालों की सोने की मूर्तियाँ बनावे, उनकी विधिवत् पूजा करे, सबको दो दो वस्त्र पहनावे, कलशों

में सोना आदि छोड़े, जप–होम करावे और इसके बाद आचार्य को सुशीला, दुधारू, लाल, सींग खुर आदि के अलंकारों से भूषिता, दो सुन्दर वस्त्रों से आच्छादिता गौ दे। १०८ ब्राह्मणों को खिलावे, दक्षिणा दे, प्रणाम करे और क्षमा माँगे तो ज्येष्ठा की सब घटियों के सारे दोष समाप्त हो जाते हैं।

वज्रांकुशधरं शक्रमैरावतगजान्वितम्।
प्रकुर्वीत सुवर्णेन वित्तशाठ्यं न कारयेत्॥
विधिना पूजयेत्तत्र लोकपालान् गणान्वितान्।
आचार्याय च गां दद्यात् शुभशीलां पयस्विनीम्॥
रक्तवर्णां वत्सयुतां सर्वालंकारभूषिताम्।
वस्त्रयुग्मपिधानामप्यष्टोत्तरशतान् द्विजान्॥
तेभ्यश्च दक्षिणां दत्त्वां प्रणिपत्य क्षमापयेत्।

भीषण नक्षत्र मूल

तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि जिसमें देवों ने असुरों का समूल नाश किया वह मूल नक्षत्र शुभ है। ज्योतिष कहता है कि उसका एक भाग अति शुभ है। उसमें उत्पन्न शिशु सुखी, धनी, सुवाहनवान् वीर, धीर, विजयी और कार्यकुशल होता है पर उससे सटा हुआ दूसरा भाग भीषण होता है। कौन घटियाँ भीषण हैं, इसमें बहुत मतभेद है।

सुखेन युक्तो धनवाहनाढ्यो वीरो बलाढ्यः स्थिरकर्मकर्ता।
प्रताडितारातिजनो मनुष्यो मूले कृती स्याज्जननं प्रपन्नः॥

मूल नक्षत्र का स्वामी निर्ऋति है और वह दिक्पाल है। चूँकि दिक्पाल संरक्षक और पूज्य होता है अतः अशुभ नहीं हो सकता। निर्ऋति को असुर और राक्षस भी कहते हैं। ये तीनों शब्द आज अशुभ माने जाते हैं पर प्राचीन काल में शुभ भी थे। वेद आदि कई ग्रन्थों में सुरा न पीने वाले को असुर और वाल्मीकि रामायण में रक्षा करने वाले को राक्षस कहा है। वेद में इन्द्र, अग्नि, वरुण, सूर्य, वायु और मेघ आदि को अनेक बार असुर कहा है। ऋग्वेद और युजर्वेद के कुछ उदाहरण ये है—

१।१७४।१ इन्द्र, मेघ	७।२।३ अग्नि	५।४२।११ शिव
४।२।५ अग्नि	१।५४।३ इन्द	१।३५।७ सूर्य
२।२७।१० सुरा न पीने वाले	१।२४।१४ वरुण	३।३८।४ विद्युत्
५।१५।१ अग्नि	१।३।५ सविता	३।३८।७ वायु
५।४२।१ मेघ	५।४१।३ मेघ	७।३६।२ मित्रावरुण
३४।२६ सूर्य	२७।१२ वायु	८।२४ मेघ (यजुर्वेद)

हमारे सबसे निकटवर्ती पारसी धर्म में परमात्मा असुर (अहुर) हैं, अमरकोश में राक्षस एक देव योनि है और प्राचीन काल में याजकों को यक्ष कहा जाता था।

विद्याधरोऽप्सरोयक्षरक्षोऽमीदेवयोनयः।(अमरकोश)
रक्षाम इति वैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्ति वै॥(वाल्मीकि)

निऋति शब्द की भी यही स्थिति है। ऋग्वेद १।११६।७ में निःशेष और निरन्तर ऋत (सत्य) को निर्ऋत (अमृत) कहा है। यजुर्वेदसंहिता १२।६२ में निर्ऋति राक्षस या राक्षसी नहीं बल्कि एक देवी है और उसको नमस्कार किया गया है तथा इसके बाद के तीन मन्त्रों में पृथ्वी माता को निर्ऋति कह कर उनका वन्दन किया गया है।

नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु।१२।६२
नमः सु ते निर्ऋते यमेन त्वं यम्या॥१२।६३
यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परिवेद विश्वतः।१२।६४

निर्ऋति देव इन्द्र, ईशान, वरुण, सोम आदि के समकक्ष दिक्पाल हैं तथा उनका नक्षत्र मूल वेदकाल से लेकर आज तक विवाह, वधू-प्रवेश और द्विरागमन सदृश परम मांगलिक कर्मों में गृहीत है किन्तु नूतन ज्योतिष ने इसमें पैदा होने के कारण तुलसीदास सदृश लाखों बच्चों को फेंकवा दिया है। सत्य में कभी मतभेद नहीं होता पर इसके कौन-कौन से भाग भीषण हैं, इस विषय में परस्पर विरुद्ध बीसों मत हैं। इसके मिथ्यात्व का सबसे बड़ा प्रमाण यही है। आठ मतों का निरीक्षण करें।

मूल के परस्पर विरोधी अनेक फल

(१) बालक चाहे जिस समय जन्म ले, मूल का प्रथम चरण है तो पिता मरेगा, दूसरा है तो माता मरेगी, तीसरा है तो धननाश होगा और चौथा शुभ है। (२) जातकाभरण का कथन हैं कि मूल के अशुभत्व का सम्बन्ध चरणों से नहीं, बेला से है। बालक किसी भी चरण में पैदा हो, दिन में जन्म है तो पिता मरेगा, सायंकाल है तो मामा मरेगा, रात्रि है तो पशु मरेंगे और प्रातः काल है जो स्वजन मरेंगे। मूल के चारों चरण अशुभ हैं। (३) मुहूर्त चिन्तामणि की प्रमिताक्षरा टीका में नारद का वचन है कि जन्मकाल दिन में है तो पिता की और रात्रि में है तो माता की मृत्यु होगी। प्रातःकाल या सायंकाल है तो शिशु स्वयं मर जायेगा। (४) वसिष्ठ का कथन है कि प्रथम चरण रात्रि में पड़ता है तो बालक मरेगा और द्वितीय पाद दिन में पड़ जाय तो माता को कष्ट नहीं होगा।

(१) आद्ये पिता नाशमुपैति मूलपादे द्वितीये जननी तृतीये। धनं चतुर्थोऽस्यशुभः।
(२) दिवासायं निशि प्रातस्तातस्य मातुलस्य च।
पशूनां स्वजनानां च क्रमान्मूलमनिष्टदम्॥
(३) दिवा जातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा।
आत्मानं सन्ध्ययोर्हन्ति नास्ति गण्डो निरामयः॥
(४) मूलाद्यपादो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पितुर्विनाशः।
द्वितीयपादो दिनगो यदि स्यान्न मातुरल्पोऽपि तदास्ति दोषः॥

शंका है कि जन्म यदि मूल के चतुर्थपाद में और दिन में हुआ है तो फल शुभ होगा कि पिता मरेगा? जन्म प्रातःकाल में और द्वितीय पाद में हुआ है तो तीन में से कौन मरेगा? (५) रामाचार्य ने अपनी प्रमिताक्षरा में घटियों के ये फल लिखे हैं—

मूल ७ समूलनाश
स्तम्भ ८ वंशनाश

मूलं स्तंभस्त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा।

त्वचा १० मातृकष्ट	
शाखा ११ मातुलकष्ट	
पत्र १२ राज्यलाभ	
पुष्प ५ मंत्रित्वलाभ	
फल ४ बहुलक्ष्मी	
शिखा ३ अल्पायु	

मुनयोऽष्टौ दिशो रुद्राः सूर्याः पंचाब्धयोऽग्नयः॥
मूले तु मूलनाशः स्यात् स्तम्भे वंशविनाशनम्।
त्वचि मातृर्भवेत् क्लेशः शाखायां मातुलस्य च॥
पत्रे राज्यं विजानीयात् पुष्पे मन्त्रिपदं स्मृतम्।
फले च विपुला लक्ष्मीः शिखायामल्पजीवितम्॥

किन्तु जातकाभरण में मूलवृक्ष की घटियों के विभाग और फल इस वृक्ष से भिन्न हैं। उसमें लिखा है—

मूल ४ अशुभ	
स्तम्भ ७ अशुभ	
त्वचा ८ अशुभ	
शाखा १० अशुभ	
पत्र ९ शुभ	
पुष्प ५ अशुभ	
फल ६ शुभ	
शिखा ११ अशुभ	

मूलस्तंभत्वचः शाखा पत्र पुष्पं फलं शिखा।
वेदाः सप्त गजाः काष्ठाः खेटा बाणाश्च षट् शिवाः॥
मूलवृक्ष विभागेषु मंगलं हि फले दले।
अमंगलफलं विद्यात् शेषभागेषु निश्चितम्॥

यह विधि इसके पूर्व की चारों विधियों के विपरीत हैं। इसमें न तो वेला का महत्त्व है न चरण का। इसके अनुसार न तो पूरा चतुर्थ चरण शुभ है, न द्वितीय और तृतीय चरण पूर्ण रूप से अशुभ हैं। चतुर्थ चरण में भी अशुभ घटियाँ हैं और दूसरे तथा तीसरे चरणों में भी शुभ घटियाँ हैं। बड़ी कठिनाई यह है कि दो आचार्यों के मूल वृक्षों में भी बहुत भिन्नता है। प्रथम चक्र में पुष्प मन्त्रीपद का दाता है पर दूसरे में अशुभ है। प्रथम में मूल की अन्त की तीन घटियाँ अशुभ हैं पर दूसरे में ११। अन्य मतभेद भी हैं। (६) जातकाभरण में इन सब से भिन्न विधि यह है कि उसमें मूल को एक भीषण मनुष्य मान कर ६० घटियों की उसके दस अंगों में स्थापना की गयी है। इसमें प्रथम पाद की केवल पाँच घटियाँ अशुभ हैं जबकि पहली विधि में पूरे प्रथम पाद को पिताघाती कहा है। वहाँ पूरे द्वितीय एवं तृतीय चरण मातृघाती और धन नाशक हैं पर यहाँ उन दोनों चरणों की अनेक घटियाँ सुखदात्री और अग्रगामी बनाने वाली हैं। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि रामाचार्य ने प्रतिमास में जो घटीचक्र बनाया है वह इसके विपरीत है। उसमें इस चक्र की अनेक शुभ घटियाँ अशुभ और अशुभ घटियाँ शुभ हो जाती हैं। चक्र देखें–

५	मूर्धा छत्रलाभ	८	हृद राज्याप्ति
५	मुख पितृघात	२	नाभि अल्पायु
८	स्कन्ध धूर्वह	१०	गुह्य सुख
८	भुज आलसी	६	जानु भ्रमण
२	हाथ घातक	६	पाद अल्पायु

५	मूर्धा राज्यलाभ	९	हृदय राजमंत्री
७	मुख मातृपितृघात	२	नाभि ब्रह्मवेत्ता
४	स्कन्ध महाबली	१०	गुह्य अतिकामी
८	भुज बलवान	६	जानु महामति

मूलस्य घटिकान्यासो मूर्ध्नि पञ्च नृपो भवेत्।
मुखे सप्त मृतिः पित्रोः स्कन्धे वेदा महाबलः॥
बाहू वोरष्टौ बली, पाण्योः तिस्रो हस्त्यन्वितो भवेत्।
हृदि खेटा भूपमन्त्री नाभौ द्वौ ब्रह्मविद् भवेत्॥

३ हाथ गजलाभ	६ पाद मरण

गुह्ये दशातिकामीस्यात् जानुनोः षण्महामतिः।
पादयोः षण्मृतिस्तस्येत्युक्तवान् कमलासनः॥

(७) इन सब के अतिरिक्त जातकाभरण में एक सातवीं विधि क्षण (मूहूर्त) नाम की है। उसमें मूल के ३० भाग हैं और उनके राक्षस, यातुधान, सोम, शुक्र, फणीश, यम और विष्णु आदि ३० नाम रखे गये हैं। उनमें १, २, ६, ८, ६, १६ और २३ वें मुहूर्त अशुभ हैं और शेष सब शुभ हैं। उनके नाम ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि हैं। इस विधि के अनुसार, प्रथम, द्वितीय और तृतीय पाद के भी अनेक मुहूर्त शुभ हैं। (८) रामाचार्य ने प्रमिताक्षरा में मूल में उत्पन्न कन्याओं का एक अन्य चक्र लिखा है। उसकी अधिकांश घटियाँ अशुभ हैं। प्रथम विधि में चतुर्थ चरण शुभ है पर यहाँ अन्त की दस घटियाँ वैधव्यप्रदा हैं।

प्रथमे द्वितये षष्ठे चाष्टमे नवमे तथा।
अष्टादशे त्रयोविंशे कुलक्षयकरः शिशुः।
विज्ञेया अपरे शुभाः। पादयोर्दशनाडचश्च तत्र वैधव्यमादिशेत्॥

जातकाभरणकार का कथन है कि मुनियों का मतभेद देखकर शंका मत करो। जो घटियाँ कई विधियों में अशुभ हैं उन्हें अति अशुभ समझो, उनमें विशिष्ट यज्ञ करो और ब्राह्मणों को अधिक दक्षिणा दो।

पादे मुहूर्ते वेलायां वृक्षे च पुरुषाकृतौ।
अनिष्टमशुभाधिक्ये शुभाधिक्ये शुभं फलम्॥

गण्डान्त का तीनों लोकों में परिभ्रमण

ज्येष्ठा और मूल की सन्धि को गंडान्त कहते हैं। यह गण्डान्त आश्लेषा–मघा और रेवती–अश्विनी की सन्धियों में भी रहता है। गण्डान्त एक भीषण राक्षस है। वह कुछ नक्षत्रों की, कुछ राशियों, कुछ तिथ्यादिकों की सन्धियों में बैठा भी रहता है और तीनों लोकों में घूमा भी करता है। इसके घूमने का विचित्र नियम है। चैत्र में पृथ्वी पर रहता है, वैशाख–ज्येष्ठ में पाताल में रहता है और आषाढ़ में उछल कर, धरती को लाँघकर स्वर्ग में चला जाता है। पौष में पृथ्वी पर और माघ में स्वर्ग में रहता है पर फाल्गुन में पाताल में चला जाता है।

चैत्र, श्रावण, कार्तिक, पौष—पृथ्वी में
वैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष, फाल्गुन—पाताल में
आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन, माघ—स्वर्ग में

शंकाएँ—(१) गण्डान्त तीनों लोकों में मासक्रम से क्यों नहीं घूमता? (२) क्या कोई इसकी उछल–कूद को देखता है? (३) क्या एक ही गण्डान्त नक्षत्रों और तिथियों की सब सन्धियों में विविध रूप धारण कर बैठता है? (४) जिस समय गण्डान्त पाताल में और स्वर्ग में रहता है उस समय आप लोग उसका दोष क्यों बताते हैं और शान्ति क्यों कराते हैं? (५) क्या सारे गण्डान्त एक साथ घूमते हैं? (६) ये गण्डान्त और मूल शान्ति में पूजे जाने वाले अन्य देव हमें दिखाई क्यों नहीं देते? (७) मूल शान्ति के कई यज्ञ जब एक साथ होते हैं तब उन सब में वे कैसे पहुँच जाते हैं? क्या वे अपने चेतन और शरीर के टुकड़े कर देते हैं? (८) जो जातियाँ ये यज्ञ नहीं करतीं उनका परिवार समाप्त क्यों नहीं हो जाता? (६) यह दोष केवल छः नक्षत्रों की ही सन्धियों में क्यों रहता है? सबमें क्यों नहीं रहता? (१०) मुसलमानों और अंगरेजों की तारीखों की सन्धियों में

क्यों नहीं जाता? (११) क्या आप के मन्त्रों और यज्ञ विधानों में इतनी शक्ति है कि वे एक घण्टे में अल्प शिक्षित पण्डितों द्वारा कराये कर्मकाण्ड से ऐसे भीषण दोषों को भगा दें? (१२) क्या इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है?

गण्डान्त रहस्य

भारत का प्राचीन ज्योतिष केवल नक्षत्रों पर आश्रित था। बाद में जब उनके आसन पर विदेशी राशियाँ आ बैठीं तब नक्षत्र गौण एवं उपेक्षित हो गये। नक्षत्र २७ हैं और राशियाँ १२। सत्ताइश नक्षत्रों को बारह राशियों में बाँटने पर एक राशि में सवा दो–दो नक्षत्र आते हैं और इस प्रकार नक्षत्रों के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। इसका परिणाम बड़ा विचित्र होता है। कृतिका नक्षत्र के प्रथम चरण की मेष राशि है और क्षत्रिय वर्ण है किन्तु उसके शेष तीन चरणों की वृष राशि है और वैश्य वर्ण है। मेष राशि का वर्ण रक्त है, स्वामी मंगल हैं, प्रकृति पित्त है, लिंग पुरुष है, स्वभाव क्रूर है, दिशा पूर्व है और वह चर है इसलिए कृत्तिका के प्रथम चरण के भी ये ही गुण माने जाते हैं परन्तु कृत्तिका के अगले तीन चरण उस वृष राशि में चले जाते हैं जिसके सारे गुण मेष के विरुद्ध हैं। उसका वर्ण श्वेत है, स्वामी शुक्र है, प्रकृति वात है, लिंग स्त्री है, स्वभाव सौम्य है, दिशा दक्षिण है और वह.स्थिर है। इस प्रकार एक ही नक्षत्र में जन्मे दो मनुष्यों के राशिफल भिन्न भिन्न लिखे जाते हैं। यही स्थिति अनेक नक्षत्रों की है। इस संकट से तीन सन्धियाँ बच जाती है। वहाँ नक्षत्रों के टुकड़े नहीं होते पर उन्हें आज का ज्योतिष भीषण गण्डान्त कहता है। वे ये हैं—

कर्क	सिंह	वृश्चिक	धन	मीन	मेष
आश्लेषा	मघा	ज्येष्ठा	मूल	रेवती	अश्विनी

ज्योतिषशास्त्र ने इन तीनों गण्डान्त में उत्पन्न पुत्रों और पुत्रियों को त्याज्य कहा है। इतना ही नहीं उसका कथन है कि चित्रा के पूर्वार्द्ध में, पुष्य के मध्य में पूर्वाषाढ़ा के तृतीयपाद में और उत्तरा के प्रथम पाद में उत्पन्न बालक भी माता, पिता और भाइयों को खा जाते हैं तथा स्वयं मर ज़ाते हैं। गण्डान्तों में उत्पन्न शिशु वर्ष भर में पिता का, दो वर्षों में धन का तीन वर्षों में माता का, पाँच वर्षों में भाइयों का, सात वर्षों में परिवार के अन्य लोगों का, वर्ष भर में अपना और नव वर्ष में सम्बन्धियों का नाश कर देते हैं इसलिए किसी चरण को शुभ न मान कर सब में विधिवत् शान्ति करनी चाहिए। तव कोई नहीं मरता, सब कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और बालक शतायु हो जाते हैं।

भुजंगपौरन्दरपौष्णभानां तदग्रभानां च यदन्तरालम्।
अभुक्तमूलं प्रहरप्रमाणं त्येजत् सुतं तत्र भवां सुतां च॥
अभुक्तमूलभेभवं परित्यजेत्तु बालकम्।
समाष्टकं पिताथवा न तन्मुखं विलोकयेत्॥
वत्सरात् पितरं हन्ति मातरं च त्रिवर्षतः॥
द्युम्नं वर्षद्वयेनैव श्वशुरं नववर्षतः॥
जातं बालं वत्सरेण वर्षैः पञ्चभिरग्रजम्।
श्यालकं चाष्टभिर्वर्षैः अनुक्तानृ हन्ति सप्तभिः॥
तस्माच्छान्तिं प्रकुर्वीत विधिनांघ्रिचतुष्टये।
सर्वे कामाश्च सिद्ध्यन्ति वेदोक्तायुर्भविष्यति॥

मुहूर्त चिन्तामणि (२।५५ पीयूषधारा) में कश्यप का आदेश है कि मूल के चतुर्थ और आश्लेषा के प्रथम पाद को शुभ मत समझो तथा यह भी मत मानो कि गण्डान्त इस समय स्वर्ग या पाताल में चले गये हैं। सबमें शान्ति यज्ञ करो क्योंकि

मामा की और सम्बन्धियों की मृत्यु भी अशुभ ही है। मुहूर्तचिन्तामणि (६। १६) का कथन है कि मूल में उत्पन्न शिशु विवाह होने के बाद सास को मार डालते हैं और ज्येष्ठा में उत्पन्न कन्या पति के बड़े भाई को झट खा जाती है अत: उनकी दीर्घायु के लिए यज्ञ अनिवार्य है।

मूलशान्तियज्ञ (मु० चिं० २। ५७ टीका)

अच्छा मण्डप बनावे, उसे तोरण, कदलीस्तम्भ और पुष्पमाला आदि से अलंकृत करे, बाजा, बजवावे, रुद्र कलश के साथ पाँच कलशों की स्थापना करे, कलशों में पंचरत्न डाले, उन्हें उत्तम वस्त्रों से ढँके, रुद्र की और नक्षत्र देवता की एक एक निष्क (४ भर) की सोने की मूर्तियाँ बनवावे, शक्ति कम हो तो आधा या चौथाई कर दे और शीघ्रता हो तो कलश पर सोने का मूल्य रख दे। सुवर्ण के स्थान पर चाँदी न रखे। रखने पर चाँदी सदृश अश्रुबिन्दु गिराने पड़ेंगे। दूसरी धातु की भी मूर्ति न बनावे। सोने में और ब्राह्मण में सब देव बसते हैं अत: इनके सांनिध्य से सब कष्ट दूर हो जाते हैं। प्रतिमापूजन में दो वस्त्र आवश्यक हैं। कलश सोना, चाँदी, मिट्टी, तीनों के हो सकते हैं। लोकपालों, दिक्पालों, नक्षत्रदेवों और अधिदेवादिकों की पूजा करे, हवन करे, अभिषेक करे। यजमान अब्राह्मण हो तो मेषशृङ्ग का धूप दे और सुरा मांसादि का नैवेद्य दे। ब्राह्मण हो तो सुरा के स्थान में नमक मिश्रित दूध दे और मांस के स्थान में लवण युत खीर दे। इसके बाद सौ ब्रह्माणों को पायस आदि का भोजन करावे। न मिलें तो पचास या दस को ही खिलावे। उन्हें दक्षिणा से सन्तुष्ट करे। आचार्य को बछवा के साथ दुधारू गाय, सोने की मूर्तियाँ, वस्त्र, सोना और कलश आदि दे। रुद्रमन्त्र के जापक को रूद्रमूर्ति, कलश, वस्त्र और काला बैल दे। इसी प्रकार अन्य ब्राह्मणों को दक्षिणादि देकर आशीर्वाद ले और कहे कि आप ने मुझे इस घोर संकट से बचा लिया पर मैं कुछ सेवा न कर सका। मनु का आदेश है कि इस प्रकार शान्ति करने से माता, पिता, धन, शिशु और स्वजनों के नाश का भय समाप्त हो जायेगा।

निष्कमानेन चार्धेन पादेनापि स्वशक्तितः।
सुवर्ण सर्वदैवत्यं सर्वदेवात्मको द्विजः॥
सुरापौलिकमांसाद्यैर्नैवेद्यैर्भोजनादिभिः।
सुरास्थाने द्विजैर्देयं क्षीर सौन्धवमिश्रितम्॥
पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत्।
धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय सवत्सकाम्॥
निर्ऋतिप्रतिमां वस्त्रकुंभहेमादि दापयेत्।
श्रीरुद्रजापिने दद्यात् कृष्णोनड्वान् घटादिकम्॥
आशीश्च तेभ्यो गृह्णीयात्प्रणम्याथ क्षमापयेत्।
इत्युक्तं मनुना बालबन्धुशोकोपशान्तये॥

सोने में देव बसते हैं, इसकी समीक्षा आगे पढ़ें। भागवत का निर्णय है कि परीक्षित के आदेश से सोना कलि (कलह और कष्ट) का निवास स्थान हो गया है। देव कैसे ब्राह्मणों में रहते हैं इसका विवेचन आगे पढ़ें। हाँ, दिन-रात दान लेते रहना ब्राह्मण का कर्म नहीं है।

गण्डान्त की एक कथा

ऋतवाक् मुनि को रेवती नक्षत्र के अन्त में पुत्र हुआ। वह दुष्ट हुआ, उसके पिता रोगी हो गये, माता दुखी हो गयी

और उसने एक ब्राह्मणी का अपहरण कर लिया। पूछने पर गर्गाचार्य ने बताया कि यह सब रेवती नक्षत्र में जन्म का फल है। यह सुन कर ऋतवाक् ने शाप देकर रेवती तारे को पृथ्वी के कुमुद नामक पर्वत पर गिरा दिया और उसका नाम रैवतक हो गया। उस तारे की कान्ति से वहाँ एक सुन्दर सरोवर बन गया, उससे एक रूपवती कन्या निकल आयी और उसका नाम रेवती रखा गया। वह सयानी हुई तो मुनि को, अग्नि ने उसका विवाह दुर्गम राजा से करने का आदेश दिया। संयोगवशात् मृगया के प्रसंग में एक दिन राजा वहाँ स्वयं आ गये, मुनि ने विवाह करना चाहा पर कन्या ने कहा कि मेरा विवाह रेवती नक्षत्र में होगा। तब मुनि ने पर्वत पर गिरे रेवती तारे को पुनः उसके स्थान में आकाश में टाँग दिया और कन्या का विवाह कर दिया (मार्कण्डेयपुराण ६७ अध्याय)।

रेवत्यन्ते मुनिश्रेष्ठ जातोऽयं तनयस्तव।
तस्य दौःशील्यहेतुत्वं रेवत्यन्तमुपागतम्॥
तेनैवं व्याहृते शापे रेवत्यृक्षं पपात ह।
पश्यतः सर्वलोकस्य विस्मयाविष्टचेतसः॥
भासयामास सहसा कुमुदाद्रिं समन्ततः।
तस्यर्क्षस्य च या कान्तिः सा जाता पद्मिनीसरः॥
ततो जज्ञे तदा कन्या रूपेणातीवशोभना।

देवी भागवत का कथन है कि गर्गोक्त विधि से गण्डान्त शान्ति करने पर बालक भी ठीक हो गया। उस रूपवती कन्या से जो बालक पैदा हुआ वही हमारा पाँचवाँ मनु रैवतक है।

दत्ते शापे तु मुनिना रेवती निपपात रवात्।
कुमुदाद्रौ भासमाना सोऽतो रैवतकोऽभवत्॥
रेवत्यृक्षस्य यत्तेजस्तस्माज्जाता सुकन्यका।
कन्यया प्रार्थितश्चक्रे सोममार्गे मुनिश्च भम्॥
रेवत्यां रैवतो नाम पंचमोऽभून्मनुस्ततः।

शंकाएँ

(१) रेवती कोई तारा नहीं बल्कि तारापुंज है। उसमें ३२ तारे हैं। अभी हमारे ज्योतिषी निश्चित नहीं कर सके हैं कि इनमें से किसको रेवती (योग तारा) कहा जाय तो उनमें से कौन तारा गिरा? (२) आकाश का छोटे से छोटा तारा भी पृथ्वी से अरबों गुना बड़ा है तो वह पर्वत पर कैसे गिरा और उसके गिरने से पर्वत भासमान कैसे हो गया? (३) रेवती तारे से चन्द्रमा कभी मिल नहीं सकता क्यों रेवती सोम मार्ग में नहीं बल्कि उससे अरबों-खरबों योजन दूर है। ऋषि को और पुराण लेखकों को क्या इतना भी पता नहीं था? (४) ऐसे मुनि को ऋतवाक् और ऐसे ग्रन्थों को व्यास की वाणी क्यों माना जाय? (५) क्या रेवती नक्षत्र में उत्पन्न शिशु माता, पिता को रोगी बना देता है और स्वयं महापापी हो जाता है? यह स्थिति क्या आज कहीं देखी जा रही है? (६) आजकल रेवती का शान्तियज्ञ कहीं नहीं होता तो बालक ऐसा उत्पात क्यों नहीं करते? (७) आप गर्गाचार्य को मूर्ख क्यों बना रहे हैं? (८) क्या ज्योतिष को और कृष्ण को दूषित करने वाली पुराण की संहिताएँ गर्ग लिख सकते हैं? (९) क्या गर्ग के समय भारत में राशियों का प्रचार था? (१०) रेवती नक्षत्र वेद और ज्योतिष दोनों में शुभ माना गया है। उसका देव पूषा है, जाति मृदु मैत्र है, वर्ण ब्राह्मण है, गण देव है, उससे मनु सदृश महापुरुष पैदा हुए हैं, उसके गिरने से पर्वत भासमान हो गया और उसमें विवाहादि सारे शुभ कर्म आज भी किये जाते हैं तो वह इतना भीषण कैसे हो गया? (११) रेवती

नक्षत्र के समय का उसके ३२ तारों से कोई नाता नहीं है। रेवती का स्थान हटता रहता है और तारे घटते–बढ़ते रहते हैं। किसी तारे के गिर जाने से नक्षत्र का काल समाप्त नहीं हो सकता। वेदकाल में कृत्तिका में सात तारे थे और पुराणकाल में छ:। तो क्या एक तारे के गिर जाने से कृत्तिका का काल समाप्त हो गया? चन्द्रमा कृत्तिका को एक दिन में भोगता है, सूर्य १५ दिन में, मंगल एक मास में, गुरु ५ मास में और शनि लगभग एक वर्ष में तो क्या कृत्तिका के एक तारे के अदृश्य होने से वह कालगणना समाप्त हो गयी? (१२) क्या ऋतवाक् मुनि को पता है कि रेवती के कितने तारे गिरे थे? (१३) सड़क के मील के पत्थर के टूट जाने से उसकी सीमा समाप्त नहीं होती। क्या मुनि को इतना ज्ञान भी नहीं था? क्या ऐसे मुनि के शाप से तारे गिर सकते हैं और पुन: आकाश में टाँगे जा सकते हैं? (१४) क्या तारे या ग्रह की शोभा से पानी का सरोवर बनता है? (१५) क्या सरोवर से मानवी पैदा होती है? (१६) क्या मानवी सरोवर में डूब कर जीवित रह सकती है? (१७) क्या तारों और ग्रहों की किरणों से सुन्दर नरनारी पैदा होते हैं? (१८) यदि वह तारा पुन: टाँगा न जाता तो क्या गगन से रेवतीकाल लापता हो जाता? (१९) ऐसी कथाओं को सत्य मान कर रेवती गण्डान्त और मूल आदि में उत्पन्न बालकों को अभागा और भीषण समझना क्या उचित है? (२०) बलराम का विवाह इसी रेवती से हुआ था तो क्या बलराम का तारे से, कृष्ण का कालिन्दी नदी से और शान्तनु का गंगा से विवाह सम्भव है? (२१) तिथि, नक्षत्र और लग्नादि के गण्डान्तों में बालक का जन्म अशुभ माना गया है। यदि ये अशुभ हैं तो जन्मकाल में ही क्यों अशुभ होते हैं। इनकी स्थिति सर्वदा अशुभ क्यों नहीं होती? (२२) सब जातियों को क्यों नहीं सताती? (२३) जो पुरोहित एक घण्टे के शान्तियज्ञ से इन्हें बचा लेते हैं वे शान्तियज्ञों द्वारा ज्वर, संग्रहणी और राजयक्ष्मादि रोगों को क्यों नहीं समाप्त कर देते? (२४) जो पापग्रहादि अनिष्टों को भगा देते हैं वे हमारे धर्मद्रोही यवनों को समाप्त क्यों नहीं कर देते? (२५) क्या अग्नि किसी को आदेश दे सकता है?

तुलसीदास की आह

मुसलमानी राज्य में क्षत्रियों के यहाँ कन्याएँ मार डाली जाती थीं अत: मूल वाली तो अवश्य मारी जाती रही होंगी। तुलसी के शब्दों में मुरहों की एक आह सुन लें। वे कहते हैं कि माता–पिता ने मुझे पैदा कर कीट की भाँति फेंक दिया। मेरे जन्म के समय सोहर नहीं गाया गया और मैं जन्मजात भिखमंगा हो गया। बालपन से कथरी–करवा लिए नीच और अपमानित होकर टुकड़े के लिए बिलखता हुआ कुत्ते की भाँति द्वार-द्वार घूमता रहा और चने के चार दानों को चार फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) समझता रहा। पेट की ज्वाला से सन्तप्त हो जाति कुजाति सबका खाया। दाँत निपोरे लोगों के पैर पर गिरता पर कोई प्रेम से नहीं बोलता। लोग मुझे अभागा समझ कर छूते नहीं थे, इसे संसार जानता है।

मातु पिता जग जाइ तज्यो विधिहूँ न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच निरादरभाजन कादर कूकर टूकर लागि ललाई॥
जायो कुल मंगन बधायो न बजायो मन भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारेते ललात बिललात द्वार द्वार दीन जानत हौं चारि फल चारि हि चनक को॥
पातकी पीन कुदारिद दीन मलीन धरे कथरी करवा है।
लोक कहे विधिहू न लिख्यो सपनेहुं नहीं अपने बरवा है॥
जाति के कुजाति के सुजाति के पेटागि बस खाये टूक सबके विदित बाति दुनिसों।
द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परी पांय कियो न सभाषण काहू....॥
दुखहु दुखित मोहिं हेरे। तनु जन्यो तज्यो कुटिल कीट ज्यों माता पिता हू।
मेरो अभाग सकुचत सत्र छुइ छाहूँ॥

पता नहीं, मुख देखे बिना पुत्र को फेंक देने के बाद भी तुलसी के पिता श्री आत्माराम दूबे का वंश क्यों नष्ट हो गया। मुझे खेद है कि जिस ज्योतिष और धर्मशास्त्र ने गोसाईं जी की यह दुर्दशा की, वे जीवन भर उसी का गुणगान करते रहे और नाना पुराणागम को आलापते रहे। कैसे होगा हमारा उद्धार!

अन्य गण्डान्त और उनके शान्तियज्ञ

मुहूर्त चिन्तामणि (६।४३) की टीका में नारद और कश्यप ने लग्न-गण्डान्त को मारक कहा है किन्तु वसिष्ठ का कथन है कि वह प्राण ही नहीं लेता, जैसे लोभ मनुष्य के सब गुणों को हर लेता है वैसे ही लग्नगंडान्त मुहूर्तादिकों के सारे गुणों को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार नन्दा और पूर्णा तिथियों के सन्धिस्थान अर्थात् तिथि गण्डान्त भी जन्मकाल, विवाह और यात्रा आदि में रहने पर प्राण ले लेते हैं।

मीनाजयोः सर्वगुणान्निहन्ति लोभो यथा सर्वगुणान्नरस्य।
पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिर्नाडीचतुष्टयम्॥
गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु॥

ये गण्डान्त नक्षत्र, राशि और तिथियों की सन्धियों में ही नहीं वर्ष, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, योग, करण आदि की सन्धियों में भी रहते हैं। नक्षत्र के अन्त में दो घटी, मासान्त में तीन दिन, वर्षान्त में १५ दिन और ग्रहण के अन्त में सात दिन रहते हैं। इनमें जन्म होने या शुभ कर्म का प्रारम्भ करने पर पुत्रनाश, धननाश, वर्गनाश और सर्वनाश होता है। इन सन्धिकालों (गण्डान्तों) में सन्तान उत्पन्न होने पर या शुभ कर्म करने पर स्त्रियाँ मृतपुत्रा, वन्ध्या और शोकाकुला हो जाती हैं। विशाखा और ज्येष्ठा की सन्धियों (चतुर्थ चरणों) में उत्पन्न कन्याएँ देवर और पति के बड़े भाई के लिए विच्छू का डंक बन जाती हैं और मार डालती हैं। बालक किसी भी गंडान्त में उत्पन्न हो, सर्वोत्तम पक्ष यह है कि उसे फेंक दो अथवा विधिवत् शान्ति करो पर छः मास के पहले तो मुख नहीं ही देखो। यह मुनियों का आदेश है।

घटिकाद्वयमृक्षान्ते मासान्ते च दिनत्रयम्।
वर्षान्ते वर्जयेत्पक्षं ग्रहणाद्दिनसप्तकम्॥
ऋक्षान्ते पुत्रनाशः स्यात् मासान्ते च धनक्षयः।
वर्षान्ते वर्गनाशः स्यात् ग्रहणात् सर्वनाशनम्॥
चतुर्थपादजा त्याज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छवत्।
सन्धौ पुरन्ध्री शुचमेति बन्ध्या मृतप्रजा स्यादृतुना विमूढा।
सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते।
वर्जयेद्दर्शनं तावद्यावत् षाण्मासिको भवेत्॥

नारद का कथन है कि शान्तियज्ञ करने पर ये सारे दोष भस्म हो जाते हैं किन्तु शान्ति विस्तार से (पुष्कला) करनी चाहिए और हर गण्डान्त में भिन्न-भिन्न विधियों से करनी चाहिए। नक्षत्र-गण्डान्त की शान्ति है तो बड़ा सा काँसे का थाल मँगावे, उसमें माखन से भरा शंख और पायस रखे, चाँदी का चन्द्रमा बनावे, उसकी सहस्र श्वेत पुष्पों से पूजा करे, सोममन्त्र का सहस्र जप और हवन करावे, ज्योतिषी को रेशमी पीताम्बर, पहनावे, श्वेतमाला और श्वेत वस्त्र से उनकी पूजा करे, देवगुरु बृहस्पति की चाँदी की मूर्ति बनावे, उसे छोटी न होने दे, उसको ताम्रपात्र में रख कर ब्राह्मण को दे और सबको मनोवांछित (इष्टा) दक्षिणा दे तो दोष भाग जाते हैं।

कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिर्नवम्।

तन्मध्ये पायसं शंखे नवनीतेन पूरिते॥
राजतं चन्द्रमर्चेच्च सितपुष्पसहस्रकैः।
दैवज्ञः क्षौमवासाश्च शुक्लमाल्याम्बरार्चितः॥
शुक्लं वागीश्वरं चैव ताम्रपात्रसमन्वितम्।
दद्याद्वै दक्षिणामिष्टां गण्डदोषोपशान्तये॥

तिथिगण्डान्त में बैल का, नक्षत्र गण्डान्त में गाय का, लग्नगण्डान्त में सोने का और चित्रा में बकरी का दान करे। प्रत्येक शान्ति में नक्षत्रेश की सोने की मूर्ति और उसकी पूजा के लिए दो वस्त्र आवश्यक हैं। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा उत्तराभाद्रपदा, चित्रा, पुष्य और पूर्वाषाढ़ा में भी ये शान्तियाँ आवश्यक हैं। इन सब में गाय, बैल, सोना, यव, चावल, उड़द, तिल, मूँग, ब्राह्मणभोजन आदि के दान अनिवार्य हैं। ऐसा करने पर बालक की और उसके स्वजनों की आयु बढ़ जाती है, कुण्डली वाली आयु मिथ्या हो जाती है और जैसे पानी कमल के पत्ते में घुस नहीं पाता उसी प्रकार गण्डान्तों और नक्षत्रों के दोष जजमान को प्रभावित नहीं कर पाते, पर शान्तियज्ञ विस्तार से होना चाहिए (मु० चिं० २। ५७ टीका)।

तिथिगण्डे त्वनड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते।
सुवर्णं लग्नगण्डेथो तिष्ये गोदानमीरितम्॥
उत्तरातिष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च।
स्वर्णं यवं व्रीहिमाषांस्तिलमुद्गांश्च दापयेत्॥
न दोषैर्लिप्यते नूनं पद्मपत्रमिवांभसा।
पुष्कला यदि शान्तिः स्यात्तर्हि दोषो न कश्चन॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं स प्राप्नोति दिने दिने।
अन्यान् कामानवाप्नोति पुत्रपौत्रप्रवर्धनम्॥

कृत्तिका नक्षत्र और अग्निदेव

वेदों के मुख्य देव इन्द्र के नक्षत्र ज्येष्ठा की दुर्दशा आप ने देखी, चारों वेदों में इन्द्र के बाद द्वितीय स्थान अग्निदेव का है। ऋग्वेद में अग्नि के दो सौ सूक्त हैं, वेद का आरम्भ अग्नि शब्द से ही है। ऋग्वेद और सामवेद के प्रथम मन्त्र हैं— अग्निमीडे पुरोहितं, अग्न आयाहि वीतये। अग्नि की स्तुति से चारों वेद भरे हैं, और उनमें अग्नि के पुरोहित, रत्नधा, पावक, शुक्रकिरण, मधुजिह्व, वसुपति, सुमेधा, विभावसु, बृहद्भानु, धनंजय, गृहपति, बुध, समाध्यक्ष, परमेश्वर प्रजापति, ब्रह्म, व्रतपति, धनप्रद, ज्ञानद, वीर, धर्म, यम, यज्ञ, ऋषि, आदित्य, अतिथि, मन, प्राण, वीर्य, आयु, राक्षसघ्न, वाक्, तप, योगी, न्यायाधीश, रुद्र, शिव वसिष्ठ, देवमुख, सप्तार्चि, चित्रभानु, जातवेदा, कृशानु, रोहिताश्व, शिखी, हिरण्यरेता, शुक्र, शुचि आदि सैकड़ों प्रशस्त नाम और उपाधियाँ हैं। शास्त्रों का कथन है कि अग्नि में दी हुई आहुतियाँ देवों तक जाती हैं और उनसे वायुमण्डल की शुद्धि तथा वर्षा होती है। इस कारण अग्नि को अन्नप्रद, प्राणप्रद, कष्टहर, रोगहा, देवदेव और ईश्वर भी कहा है।

वेद में जैसे प्रथम शब्द अग्नि है वैसे ही प्रथम नक्षत्र कृत्तिका है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि कृत्तिका अग्नि का नक्षत्र है, देवनक्षत्र है और नक्षत्रों का मुख है। इसमें अग्न्याधान करने वाला प्रमुख होता है। वे अग्निदेव हमारी रक्षा करें जिनकी कृत्तिकाएँ इन्द्रियों को द्योतमान करती हैं, जिनकी रश्मियाँ और केतु द्योतमान हैं तथा जो सारे विश्व के स्वामी हैं। जो अग्निदेव कृत्तिकाओं में बसते हैं वे हमें कर्मफल दें। अग्निदेव के नक्षत्र कृत्तिका की एक ओर शुक्र और दूसरी ओर ज्योति

है। शुक्र तेजस्वी है, दीप्ति का साधन है और दूसरी ओर की ज्वाला ज्योति है। अतः इसमें अग्न्याधान करने वाला मनुष्य तेजस्वी, ब्रह्मवर्चसी और दीप्तिमान् होता है।

कृत्तिकास्वग्निमादधीत, एतदग्नेर्नक्षत्रं, मुखं वैतन्नक्षत्राणाम्।
यः कृत्तिकास्वग्निमाधत्ते, मुख्य एव भवति॥
कृत्तिकाः प्रथमं विशाखे उत्तमं, एतानि देवनक्षत्राणि।
अग्निर्नः पातु कृत्तिकाः, नक्षत्रं देवमिन्द्रियम्॥
यस्य भान्ति रश्मयो यस्य केतवः, यस्येमाविश्वा भुवनानि सर्वाः।
स कृत्तिकाभिरभिसंवसानः अग्निर्नोदेवः सुविते दधातु (३।१।१)॥
अग्नेः कृत्तिका शुक्रं परस्तात्, ज्योतिखस्तात् (१। ५। १)॥
यः कृत्तिकासु अग्निमाधत्ते ब्रह्मवर्चसी तेजस्वी भवति....अग्निर्देवानामन्नादः॥

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि अन्य नक्षत्रपुञ्जों में एक, दो, तीन तारे हैं पर कृत्तिका में बहुत हैं अतः इनमें अग्न्याधान करनेवाला बहुत पाता है। अन्य नक्षत्रों का उदय पूर्व दिशा से हटकर होता है पर ये सदा पूर्व में उगती है। वेद में कृत्तिका के अम्बा आदि सात तारों को आहुतियाँ दी गयी हैं।

एकं द्वे त्रीणि वान्यानि नक्षत्राणि कृत्तिका एवं भूयिष्ठाः।
तद् भूमानमुपैति, तस्मात् कृत्तिकास्वादधीत॥
एता हवै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते, सर्वाणि चान्यानि नक्षत्राणि च्यवन्ते तस्मात्...॥
अम्बायै स्वाहा दुलायै स्वाहा नितत्यै स्वाहाऽभ्रयन्त्यै।
मेघयन्त्यै वर्षयन्त्यै चुपुणीकायै स्वाहा॥

छः कृत्तिकाएँ पुराणमत में स्वामिकार्तिक की माताएँ हैं। कृत्तिकाओं की ही भाँति कार्तिकेय भी दयालु और हमारे संरक्षक हैं। इसीलिए उन्हें सुब्रह्मण्यं कहा जाता है। पुराणों ने संवत्सर को उन्हीं षडानन का रूप बताते हुए कहा है कि संवत्सर की छः ऋतुएँ कार्तिकेय के छः मुख हैं और १२ मास उनकी १२ भुजाएँ हैं अतः वे सब कार्तिकेय के मुखों और भुजाओं की भाँति पवित्र हैं।

ऋतवः षणमुखं तस्य मासास्तु गुहपाणयः

कृत्तिकाओं के ही नाम पर एक मास का नाम कार्तिक रखा गया है। वह वेदों के साथ-साथ पुराणों में भी परम शुभ हैं क्योंकि उसमें कृत्तिका माताओं का रातभर दर्शन होता है किन्तु खेद है कि आज के ज्योतिष में कृत्तिका नक्षत्र सब शुभ कर्मों में वर्जित है, उसकी राशि और योनि भेंड़ा है तथा गण राक्षस है। ज्योतिष कहता है कि इसमें उत्पन्न शिशु बहुभक्षक, मिथ्याभाषी, दरिद्र, व्यर्थ में घूमने वाला, कृतघ्न, कठोरभाषी और निन्दित कर्म करने वाला होता है। इस नक्षत्र में शुभकर्म नहीं बल्कि अग्न्याधान, आग लगाना, अस्त्र-शस्त्र चलाना, हत्या आदि उग्र कर्म करना, लड़ना, दारुण कर्म करना, झगड़ा लगाना और औषध करना आदि अच्छा होता है।

क्षुधाधिकः सत्यधनैर्विहीनो वृथाटनोत्पन्नमतिः कृतघ्नः।
कठोरवाग् गर्हितकर्मकृत् स्यात् चेत् कृत्तिका जन्मनि वर्तते नुः॥
अग्न्याधानास्त्रशस्त्रोग्रवह्निविग्रहदारुणाः।
संग्रामौषधवादित्रक्रियाः शस्तास्तु बह्निभे॥

यहाँ शंकाएँ होती हैं कि (१) कृत्तिकाएँ अशुभ हैं तो तो कार्तिक शुभ कैसे हो गया? (२) कृत्तिकाओं के पुत्र कार्तिकेय रक्षक कैसे हो गये? (३) कृत्तिकाओं से आग बरसती है तो वह बच्चों के जन्म में और कार्यारम्भ में ही क्यों बरसती है? युवकों को और होते हुए कार्यों को क्यों नहीं नष्ट करती? (४) कृत्तिका का स्वामी अग्नि अशुभ है तो वेदों और शास्त्रों ने उसे एक दिक्पाल क्यों माना और शिव, प्रजापति, विष्णु आदि क्यों कहा? (५) आप विंशोत्तरी दशा का आरम्भ अब कृत्तिका से क्यों करते हैं जबकि उसे प्रथम नक्षत्र नहीं मानते।

इन्द्र और अग्नि का नक्षत्र विशाखा (राधा)

विशाखा नक्षत्र ज्योतिष में अति अशुभ है किन्तु वेदों में अति शुभ है। कारण यह है कि वेद के दो प्रधानदेव इन्द्र और अग्नि इसके स्वामी हैं। इसी से इसको द्वीश (दो ईशोंवाला) भी कहा जाता है। पुराणों में शंकर–पार्वती के पुत्र का नाम विशाख है और यह नाम शंकर, पार्वती तथा देवों ने बहुत सोचकर रखा है। वेद और निघण्टु ने विशाख उसे कहा है जो ख (आकाश) में विशेष रूप से शयन करता है। वेद में वैशाख शुभ है, माधव है, अरुण है और पुराणों में वैशाख के माहात्म्य का विशद वर्णन है। ज्योतिष में वह परम पवित्र और प्रत्येक शुभ कार्य में गृहीत है। वैशाख प्रारम्भ होते ही सूर्यास्त के समय पूर्व दिशा में विशाखा का उदय हो जाता है और वह रात भर दिखाई देती है तथा प्रत्येक वैशाख की पूर्णिमा में विशाखा नक्षत्र रहता है अर्थात् चन्द्रमा विशाखा के दो उज्ज्वल तारों के बीच आ जाता है। वह दृश्य बड़ा मनोहर होता है। महाकवि कालिदास ने लिखा है कि सीता और लक्ष्मण के बीच श्रीराम वैसे ही दिखाई देते हैं जैसे विशाखा के दो तारों के मध्य में स्थित पूर्ण चन्द्र।

विशाखयोर्मध्यगतो यथा शशी

विशाखा के कारण ही इस मास का नाम वैशाख पड़ा है पर घोर आश्चर्य है कि वैशाख परम शुभ है और विशाखा अति अशुभ है। विशाखा को राधा और वैशाख को राध भी कहा जाता है। पीछे तैत्तिरीय ब्राह्मण वाली कथा में समृद्ध को राद्ध और अनुराधा को शुभ कहा है। अनुराधा समृद्धिदा और शुभा है तो राधा कभी भी अशुभा नहीं हो सकती। महाभारत, हरिवंशपुराण और भागवत आदि में तो राधा नाम की कोई गोपी कृष्ण की प्रेयसी नहीं है पर नपुंसक लिगी राधस् शब्द उन सब में आया है और उसका अर्थ तेज, धन, साधक आदि है। जिन पुराणों में राधा का वर्णन है उन सब में उसे शुभा और इष्ट साधिका कहा है।

राध्नोति सकलान् कामान् तेन राधेति सा स्मृता

आराधना शब्द भी इससे सम्बन्धित है। जेसे परमात्मा और देवों की आराधना सिद्धि और समृद्धि देती है उसी प्रकार राधा या विशाखा नक्षत्र भी सिद्धिप्रद है। ऋग्वेद में राधस्, राधसाः, राधसा, राधसे, राधः, राधांसि और राधोभिः शब्दों के सम्बन्ध सिद्धि, सफलता, भूमि, सुवर्ण, राज्य, विजय, सुख, बल, धन, अन्न, विद्या आदि की प्राप्ति से हैं। इनका वर्णन हर मण्डल में है। यहाँ प्रथम मण्डल के कुछ मन्त्र दिये जा रहे हैं। यह वर्णन अन्य वेदों में भी हैं।

ब्राह्मणादिन्द्राधसः पिबा सोमं ।	**१।१५।५**
कथं राधाम सखायः॥	**१। ४२। ७**
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु।	**१। १७। १**
इन्द्रावरुण वामहं हूवे चित्राय राधसे॥	**१। १७। ७**
मादयस्व शवसे शूर राधसे।	**१। ८। १८**
तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां राधः॥	**१।१२१।५**

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। १।२२।७
पिबतं मध्वो अन्धसः चन्द्रेण राधसागतं॥ १।१३४।४
गवामपव्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः॥ १।१०।७॥

कृष्ण की रासलीला और राधा

यहाँ के अन्तिम मन्त्र में गवां व्रज, राधा और अद्रि शब्द आये हैं, वेदों में सूर्य ही विष्णु हैं, उनकी किरणें ही गायसमूह (गोव्रज) हैं, मेघ ही अद्रि हैं और समृद्धि ही राधा हैं। यजुर्वेदसंहिता का सुप्रसिद्ध मन्त्र है—

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं। ३३। ४३

यह मन्त्र सूर्य विषयक है, इसमें उसे अमृतवर्षी कहा है और कृष्ण शब्द आया है। यहाँ कृष्ण का अर्थ आकर्षक है। ऋग्वेद १।६२।८, १।१४१।७, १।१४१।८ और १।१४०।३ आदि में कृष्ण शब्द का स्पष्ट अर्थ आकर्षक है। वेदों ने सूर्य–रूपी विष्णु को कृष्ण, गोप और गोपति कहा है। मेघरूपी गोवर्धन पर्वत पर इनकी रासलीला की मुख्य ऋतुएँ वर्षा, शरद् और हेमन्त हैं। सूर्य ही गोपाल कृष्ण हैं, उनकी किरणें ही गोपियाँ हैं, विशाखा ही राधा है और कृत्तिका से भरणी तक के नक्षत्र राधा की सखियाँ हैं। शरद् और हेमन्त ऋतुएँ तव आती है जब कृष्ण (सूर्य) राधा (विशाखा) के पास पहुँचते हैं। भागवत का कथन है—

इत्थं शरत्स्वच्छजलं सगोगोपालकोऽच्युतः। १०। २१। १
हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः॥ १०। २२। १

यहाँ गोपियाँ एक वृत्त में बैठी हैं, उनका आरम्भ कृत्तिका से होता है, समाप्ति भरणी में होती है और वीच में अनुराधा, ज्येष्ठा आदि हैं। खेद है कि ज्योतिष ने इस वृत्त के आदि और अन्त (कृत्तिका–भरणी) को भ्रान्ति से अशुभ मान लिया है। वेद में विष्णु को आदित्य, इन्द्र हरि और कृष्ण भी कहा गया है। शरद् में कृष्ण और राधा के इसी संयोग से बाद में राधाकृष्ण की रासलीला की कल्पना हुई है पर कवियों ने उसे विकृत कर दिया है और ज्योतिषियों ने उस मनोहर, मांगलिक काल को हरिशयन और दक्षिणायन आदि कह कर दूषित कह दिया है। भरणी–कृत्तिका का सूर्य मेष–वृष राशियों में रहता है। इन राशियों के सूर्य, चन्द्र जन्मपत्री में शुभ होते हैं पर यहाँ अशुभ हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि दो श्रेष्ठ देव इन्द्र और अग्नि नक्षत्रों की अधिपत्नी राधा के साथ आ रहे हैं। ये सब भुवनों के संरक्षक हैं। ये तीनों हमारे शत्रुओं को भयभीत कर भगा दें, वे दूर चले जायँ और देवगण हमारे यज्ञ में आकर प्रसन्न हों। हम चारों ओर से अभय रहें। ये विभिन्न गतियों से आकर हमारे शत्रुओं और क्षुधा को दूर करें।

दूरमस्मच्छवो यन्तु भीताः तन्नो देवा अनुमदन्तु यज्ञं, पश्चात् पुरस्तादभयं नो अस्तु।
नक्षत्राणामधिपत्नी विशाखे श्रेष्ठाविन्द्राग्नी भुवनस्य गोपौ।
विषूचः शत्रूनपबाधमानौ। अपक्षुधं नुदतामरातिम्॥

प्राचीन ग्रन्थों में कृष्ण के साथ राधा का नाम नहीं है पर राधा शब्द वहुत प्राचीन है, वेदों में आया है और परम शुभ है तथा आजकल श्रीकृष्ण के भक्त उनका नाम राधा के साथ ही लेते हैं अतः सिद्ध है कि राधा शब्द परम पवित्र है किन्तु खेद है कि आज का ज्योतिष राधा में जन्मे शिशु को चोर, कामी, सबका शत्रु और समाज में निन्दित कहता है तथा उसमें सब शुभ कर्मों का निषेध करता है। जातकाभरण का कथन है कि विशाखा में जन्मा मनुष्य सर्वदा देवों के पूजन और हवन आदि में लगा रहता है, धातुकर्म का विशेषज्ञ होता है पर किसी का मित्र नहीं होता। वह सौम्य और उग्र दोनों होता है।

सदानुरक्तोऽग्निसुरक्रियायां धातुक्रियायामपि चोग्रसौम्यः।
यस्य प्रसूतौ च भवेद्विशाखा सखा न कस्यापि भवेन्मनुष्यः॥

अतः शका होती है कि (१) हम राधा देवी को शुभ कैसे मानें और उन्हें परमात्मा की प्रिया एवं आराध्या कैसे कहें? (२) राधा (विशाखा) अशुभ है तो वैशाख (राध) शुभ कैसे हो गया? (३) यदि विशाखा अशुभ है तो उसके स्वामी इन्द्र और अग्नि तथा उसके पुत्र स्वामी कार्तिकेय शुभ कैसे हो गये? (४) वेदों शास्त्रों ने राधा शब्द की इतनी प्रशंसा क्यों की? (५) ज्योतिष में अनुराधा अति शुभ है तो राधा अशुभ क्यों? क्या चर, गामी, जीवी, पद और मति की अपेक्षा अनुचर, अनुगामी, अनुजीवी, अनुपद और अनुमति बड़े होते हैं? क्या ये उनके विपरीत होते हैं? (६) राधा का शरीर स्वाती और अनुराधा से सटा तथा दोनों के बीच में है तथा वे दोनों शुभ है तो राधा अशुभ कैसे हो गयी? (७) क्या देवों और यज्ञों का भक्त मनुष्य उग्र और सबका शत्रु होता है?

पूर्वा और उत्तरा आषाढ़ा

ब्रह्मचारी के पवित्र पालाशदण्ड को आषाढ़ कहा जाता है इसलिए ये दोनों नक्षत्र शुभ हैं। वैदिक और आधुनिक दोनों ज्योतिषों में इस नक्षत्र से सम्बन्धित मास को 'शुचि कहा गया है। खेद है कि आषाढ़ शुचि है, उत्तराषाढ़ा शुचि है पर उसका पूर्वार्ध अशुचि मान लिया गया है। आकाश में नक्षत्रों के बीच में न कोई बाँध है न दीवार है। ऐसा नहीं है कि एक ओर अमृत और दूसरी ओर विष भरा है। आकाश में फाल्गुनी, आषाढ़ा और भाद्रपदा के दोनों भागों की आकृतियाँ समान हैं। स्पष्ट दिखाई देता है कि ये एक ही पुंज के दो भाग हैं पर न जाने क्यों उनका पूर्वार्ध अति अशुभ और उत्तरार्ध अति शुभ मान लिया गया है। तीनों के पूर्वार्ध उग्र और क्रूर हैं तथा उत्तरार्ध ध्रुव, स्थिर और शुभ हैं, मानो एक नरक है और दूसरा स्वर्ग।

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र का स्वामी वह जल है जो अष्टमूर्ति शिव और वरुणदेव का निवास स्थान माना गया है। जल से ही शिव का अभिषेक किया जाता है और जल से ही गजलक्ष्मी नहलाई जाती है। वैदिक साहित्य में जल के घृत, मधु, अमृत, जीवन पय, क्षीर, भेषज, रस, क्षेम, ओज, सुख शुभ एवं पवित्र आदि सौ नाम हैं और उसे बार–बार अमृत कहा गया है (जल की महत्ता का विशेष वर्णन आगे समुद्रमन्थन की कथा में पढ़ें)। उस जल के नक्षत्र पूर्वाषाढा के विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि आषाढा नक्षत्र का यह जल दिव्य आकाश से आ रहा है अतः पेय (पीने योग्य) और पय (दूध) है। यह पृथ्वी में पहुँचने पर भी वैसा ही रहता है। इसमें आप् देव बैठे हैं, आषाढ़ा उनकी इच्छा का अनुगमन करती है और जल में स्थित मधु को पीती, पिलाती है। ये जल आकाश, कूप, समुद्र, सरोवर, बावली, नदी आदि किसी भी जलाशय के हों, मधु हैं। ये हमारा कल्याण करें।

या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः।
यासामषाढा अनुयन्ति कामं तान आपः शं स्योना भवन्तु॥
याश्च कूप्याः समुद्रिया याश्च नाद्याः वैशान्तीरुत प्रासचीर्याः।
यासामषाढा मधु भक्षयन्ति ता न आपः शं स्योना भवन्तु॥

ऋग्वेद ७।३३।२ और युजर्वेद १६।३७ तथा ३०।१६ में वैशान्तं, वैशन्ताय और वैशन्ताभ्यः शब्द आये हैं। वहाँ भाष्यकारों ने उनका अर्थ किया है—इन्द्रप्रदत्त या छोटे जलाशयों में स्थित जल। पीछे लिखा है कि इन दोनों नक्षत्रों में किये हुए देवों के प्रहारों को असुर सह नहीं सके इसलिए दोनों को आषाढ़ा कहा गया परन्तु आज का ज्योतिष कहता है कि तीनों पूर्वाओं में झगड़ा, मांसविक्रय, विषदान, शस्त्रास्त्रक्रिया, दारुणकर्म, उग्रकर्म और युद्ध करो पर शुभ कर्म नहीं तथा तीनों उत्तराओं में देवप्रतिष्ठा, विवाह सीमान्त, राज्याभिषेक, उपनयन, गृहारंभ, गृहप्रवेश और अश्वगजकर्म आदि करो पर उग्रकर्म

नहीं जब कि जातक ग्रन्थों में जन्मकाल में दोनों आषाढ़ाएँ शुभ कही गयी हैं। लिखा है कि पूर्वाषाढ़ा में जन्मा बालक वक्ता, जलप्रिय, चंचल, सुशील और धनी होता है।

> **विवादविषशस्त्राग्निदारुणोग्रहवादिकम्।**
> **पूर्वात्रयेऽखिलं कर्म कर्तव्यं मांसविक्रयम्॥**
> **प्रतिष्ठोद्वाहसीमन्ताभिषेकव्रतबन्धनम्।**
> **प्रवेशस्थापनाश्वेभवास्तुकर्मोत्तरात्रये॥**
> **भोक्ता चंचद्वाग्विलासः सुशीलो नूनं संपज्जायते तस्य गाढा॥**

सारांश यह कि आषाढ़ा शब्द पवित्र है, आषाढ़ मास का नाम शुचि है, पूर्षाषाढ़ा का स्वामी जल है, उसमें वरुण और शिव का वास है, वह अमृत है, वह नक्षत्र असुरों का मारक है, उसमें तिलक, कन्यावरण आदि विवाह सम्बन्धी कर्म होते हैं, वह जन्म में शुभ माना गया है, उसकी राशि के स्वामी देवगुरु बृहस्पति हैं पर वह आज शुभ कर्म में निषिद्ध है।

पूर्वा–उत्तरा–भाद्रपदा

पूर्वाभाद्रपदा को प्रोष्ठपदा भी कहा है और यह नाम कहीं–कहीं उत्तरा भाद्रपदा के लिए भी प्रयुक्त है। पीछे वाली कथा में लिखा है कि—प्रोष्ठपदेषूदयच्छन्त। अर्थात् इनमें सुरों ने अस्त्र उद्यत किये। इन दोनों के चार चमकीले तारों से एक बृहत् चतुष्कोण बनता है। जिसके पद (चरण) विशेष प्रौढ़ हों उन्हें प्रोष्ठपद कहते हैं (ऋग्वेद ७।५५।८)। ज्योतिष में इन्हें भद्र (शुभ) पदा कहा गया है पर न जाने क्यों उत्तरा भाद्रपद शुभ है और भाद्रपदा का पूर्वार्ध अशुभ है। भद्रपदा अशुभ हो गयी तो भाद्रपद को अशुभ कहना स्वाभाविक है। पता नहीं, कृष्ण ने क्या सोच कर इसमें जन्म लिया। इस नक्षत्र के स्वामी अजपाद् देव हैं। यह सूर्य का ही एक नाम है। उत्तराभाद्रपदा के स्वामी अहिर्बुध्न्य हैं। यह नाम सूर्य और शिव दोनों का है। इन दोनों नक्षत्रों के विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण कहता है—संसार के सब प्राणियों को प्रमोद देता हुआ सूर्य प्रोष्ठपदाओं के साथ उदित हो रहा है। ये देवियाँ अमृत की संरक्षिकाएँ हैं और देवगण सूर्य के पीछे आ रहे हैं। वस्तुतः सूर्य भगवान् विष्णु हैं, जन्मरहित हैं और एक पाद से देवों एवं अन्य प्राणियों की रक्षा करते हैं अतः वे अजैकपाद हैं। सायणाचार्य का कथन है कि यह पद अग्नि के लिए भी प्रयुक्त होता है। सूर्य भी अग्नि ही है यह तेजस्वी, सुन्दर सूर्य द्यौ और पर्वत रूपी अन्तरिक्ष पर आरोहण करता है तथा प्रोष्ठपदाएँ उसका अनुगमन करती हैं।

> **अज एकपादुदगात् पुरस्तात् विश्वाभूतानि प्रतिमोदमानः।**
> **तस्य देवाः प्रसवं यन्ति सर्वे प्रोष्ठपदासो अमृतस्य गोपाः॥**
> **विभ्राजमान अन्तरिक्षमरुहद् अगं द्यां।**
> **तं सूर्यदेवमजमेकपादं प्रोष्ठपदासो अनुयन्ति....॥**

उत्तराभाद्रपद्रा के विषय में लिखा है–देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ अहिर्बुध्न्य आ रहा है। यह प्रतिष्ठावान् देव है। सायणाचार्य ने लिखा है कि जो कभी हीन नहीं होता वह अहि है। यह जगत् के बुध्न (मूल) में अर्थात् जगदारंभ में होने से बुध्निय है। यह रुद्र का नाम है। सोमपायी सौम्य ब्राह्मण उसकी और चार प्रोष्ठपदाओं की स्तुति करते हैं। प्रोष्ठपदाएँ चार हैं और देव एक है। नक्षत्र रूपी चार देव सभापति बुध्निय की स्तुति करते हैं और नमस्कार से अहि की सेवा करते हैं।

> **अहिर्बुध्नियः प्रथमान एति श्रेष्ठो देवानामुत मानुषाणाम्।**
> **तं ब्राह्मणाः सोमपाः सोम्यासः प्रोष्ठपदासो अभिरक्षन्ति सर्वे॥**

चत्वार एकमभिकर्म देवाः।
प्रोष्ठपदास इति यान् वदन्ति ते बुध्नियं परिषद्यं स्तुवन्तः॥
अहिं रक्षन्ति नमसोपसद्य।

आश्चर्य है, आज के ज्योतिष में जन्मकाल में पूर्वा और उत्तरा, दोनों भाद्रपदाएँ शुभ हैं, इनके रूप और प्रभाव में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता, दोनों के पद भद्र (शुभ) हैं पर एक अशुभ है और दूसरी शुभ।

भरणी और यमदेव

अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, अभिजित्, श्रवण धनिष्ठा, शतभिषक्, रेवती और अश्विनी नक्षत्र वेदमत में यम नक्षत्र हैं और शुभ हैं तथा ये ज्योतिष के मत में भी शुभ हैं पर अन्तिम यम नक्षत्र भरणी और उसका स्वामी यमदेव आज के ज्योतिष में भयंकर हैं। चारों वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में यमत्, यमते, यमन, यमिष्ठ आदि शब्दों का सम्बन्ध जितेन्द्रिय होकर दोषों के शमन और सद्गुणों के प्रदान से है तथा न्यायी, संयमी नियन्ता, परमात्मा, सूर्य, अग्नि, वायु और वैवस्वत को यम कहा है (देखिए ऋग्वेद १।७३।१०, १।१२७।३, ३।४५।१, ५।३२।७ और ५।४६।५ आदि)। सारांश यह कि यम ही धर्म है और यमराज ही धर्मराज है। गरुडपुराणसार (अध्याय १४) में लिखा है कि सूर्य के पुत्र वैवस्वत धर्मराज का निवास अति रमणीय है। वहाँ महान् तपस्वी, व्रती, सत्यवादी, शान्त, संन्यासी, सिद्ध सदाचारी और शूर पुरुष जाते हैं तथा वे ही उनके सभासद हैं। अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, और नारदादि मुनि तथा सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी मनु, दिलीप, मान्धाता, सगर, भगीरथ आदि नृप उनकी उपासना करते हैं। उनकी सभा में धर्म का राज्य है। वहाँ न पक्षपात है, न मिथ्या है, न मत्सर है। वहाँ सारे सभासद धर्मशील, विद्वान्, क्रोधलोभविहीन और शिवभक्त हैं। यमराज जी वहाँ जाने वाले धर्मशीलों का स्वागत करते हैं और मधुर वचन बोलते हैं किन्तु वे पापियों को भीषण दिखाई देते हैं।

तत्रोग्रतपसो यान्ति सुव्रताः सत्यवादिनः।
शान्ताः संन्यासिनः सिद्धाः पूताः पूतेन कर्मणा॥
अत्रिर्वसिष्ठः पुलहः पुलस्त्यागस्त्यनारदाः।
मनुर्दिलीपो मान्धाता सगरश्च भगीरथः॥
सभायां यमराजस्य धर्म एव प्रवर्तते।
न तत्र पक्षपातोऽस्ति नानृतं न च मत्सरः॥
तत्र ब्रह्मर्षयो यान्ति शिवभक्तिपरायणः।
यमस्तानागतान् दृष्ट्वा स्वागतं कुरुते मुहुः॥
पापिष्ठाश्च प्रपश्यन्ति यमदेवं भयंकरम्।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि यम भगवान् हैं, महानों में महान् हैं, राजा हैं, हमारे मार्ग को सुगम एवं अभय बनाते हैं और उनकी प्रिया भरणी विश्व का भरण करती है। इसी में देवों ने यम का राज्यभिषेक किया और वे इसी में पधारते हैं। हम भरणी का यजन करते हैं। वह हमारे पापों और कष्टों को समाप्त करे।

लोकस्य राजा महतो महान् हि। सुगं नः पन्थामभयं कृणोतु।
यस्मिन्नक्षत्रे यम एति राजा। यस्मिन्नेनमभ्यषिंचन्त देवाः॥
तदस्य चित्रं हविषा यजाम।

योगिराज पर्तजलि ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अलोभ को यम एवं शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और

ईश्वर ध्यान को नियम तथा धारणा, ध्यान, समाधि को संयम कहा है और श्री बंकिमचन्द्र जी चटर्जी ने राष्ट्रगीत में भारतमाता को भरणी कहा है–धरणीं भरणीं मातरं वन्दे मातरम्। किन्तु ज्योतिष ने यम और भरणी दोनों को तामस, भीषण और अशुभ मान लिया है। ८ बजकर १० मिनट तक अश्विनी है, उसमें शुभ कर्म किये जा सकते हैं, उसमें उत्पन्न बालक सत्यवादी, परोपकारी, विनीत, सब सम्पत्तियों का स्वामी और स्त्री, पुत्र, धन आदि से प्रसन्न रहेगा परन्तु ८ बजकर ११ मिनट पर भरणी के आ जाने पर कोई शुभ कार्य नहीं किया जायेगा। उसमें दुस्साहस, विषदान, अग्निदाह, बन्धन, कृषि और मारण आदि दारुण कर्म सफल होंगे तथा उसमें उत्पन्न बालक नाना प्रकार के दुर्व्यसनों से आसक्त, कलंकित, खल और कायर आदि होगा, आकाश और चन्द्रमा में एक मिनट में इतना परिवर्तन हो जायेगा। ज्योतिषग्रन्थ इस वर्णन से भरे हैं।

आर्द्रा और विश्वनाथ शंकर

देव नक्षत्रों में आर्द्रा का चतुर्थ स्थान है। उसके स्वामी वे विश्वनाथ शंकर हैं जिन्हें चारों वेद शिवतर, आशुतोष, मयोभव, वैद्यनाथ, दयासागर, सूर्यवत् तेजस्वी, तपे सोने से ओजस्वी, देवों के स्वामी, महादेव, देवों का श्रेष्ठ धन, देवज्येष्ठ, कारणों के कारण, अर्हत् और रुद्र आदि कहते हैं। रुद्र शब्द का अर्थ है रुत् (कष्ट) को द्रवित करने वाला।

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते श्रेष्ठो देवानां वसुः।
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां, ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमः।
नमः शंभवाय च मयोभवाय च अर्हन्निदं दयसे विश्वम्।

उनकी प्रिया हैमवती या अम्बिका ही आर्द्रा हैं। उनका हृदय दया से आर्द्र रहता है इसलिए वे आर्द्रा कही जाती हैं। वे आर्द्रा नक्षत्र की स्वामिनी हैं। पहली वर्षा आर्द्रा में होती है और उससे धरती के आर्द्र होने पर पुनर्वसु आता है। ऋग्वेद १। १०।६, २।२२।३, ६।१।१३ आदि अनेक मन्त्रों में विद्या, आरोग्य, धन आदि को वसु कहा है और उनमें अन्न मुख्य है। आर्द्रा के बरसने पर ही पुनः अन्न पैदा होता है और तभी पोषण करने वाला पुष्य नक्षत्र आता है। आर्द्रा नक्षत्र में एक ही तारा है पर वह बड़ा तेजस्वी है और ज्योतिष में आकाश की मणि कहा गया है। आकाश का सबसे तेजस्वी तारा रुद्र उसी के पास है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि देवों में श्रेष्ठ, गायों के पति, सुप्रसिद्ध देव रुद्र, आर्द्रा के साथ आ रहे हैं। हम इनके नक्षत्र आर्द्रा की पूजा करते हैं। वह हमारी हवि स्वीकार करे। वह हमारी प्रजा की और वीरों की रक्षा करे। शंकर और आर्द्रा दुरितों से हमें मुक्त करें और शत्रुओं से बचावें।

आर्द्रया रुद्रः प्रथमान एति। श्रेष्ठो देवानां पतिरघ्नियानाम्।
नक्षत्रमस्य हविषा विधेम। मा नः प्रजां रीरिषन् मोत वीरान्॥
आर्द्रा नक्षत्रं जुषतां हविर्नः प्रमुञ्चमानौ दुरितानि विश्वा।
अपाघशंसं नुदतामरातिम्। हेती रुद्रस्य परितो वृणक्तु॥

किन्तु ज्योतिष कहता है कि आर्द्रा तीक्ष्ण है, दारुण है, त्याज्य है, इसकी योनि कुतिया है, वर्ण शूद्र है और इसकी राशि मिथुन है अर्थात् इसमें पैदा हुआ मनुष्य शूद्रवत्, श्वानवत् और कामी होता है। इसमें ज्वर आदि रोगों के उत्पन्न होने पर मनुष्य मर जाता है और जातक के अनुसार इस नक्षत्र में उत्पन्न बालक बहुत खाने वाला, बहुत क्रोधी, कृतघ्न दरिद्र, रुक्ष शरीरवान्, कुरूप, स्वार्थी, नीच, निर्दय, परस्त्रीगामी, अभिमानी शठ और हिंसक आदि होता है। जब कि प्रत्यक्ष देखा जा रहा है कि इस नक्षत्र में उत्पन्न अनेक नरनारी शिवशिवा की भाँति विद्वान्, त्यागी, योगी, परोपकारी, निर्मल और अनेक गुणों के निधान हैं। आश्चर्य है, आर्द्रा से सटे हुए मृगशीर्ष और पुनर्वसु नक्षत्रों में उत्पन्न बालक शूर विनम्र, सत्संगी, राजमान्य, सुमार्गी, बहुमित्र, लोकमान्य, विद्वान्, धनी, दाता और प्रतापी आदि कहे गये हैं पर आर्द्रा उनके ठीक विपरीत है और उसमें

कलह, बन्धन, वध, उच्चाटन, मारण आदि जघन्य कर्म करने का आदेश है।

मृगः– शूरो विनीतो गुणिनां गणेषु रक्तो नृपस्नेहभरेण पूर्णः।
आर्द्रा– क्षुधाधिकः क्रोधयुतः कृतघ्नो रुक्षः कठोरश्च तमोधिकः स्यात्।
पुर्नवसु– दाता प्रतापी च प्रभूतमित्रो विद्वान् धनाढ्यश्च विभूषणाढ्यः।
आर्द्रायां बन्धनं कुर्यात् संग्रामं छेदनं वधम्।
विषसन्ध्यग्निदाहाद्यं दारुणोच्चाटनं तथा॥

आश्लेषा और सर्प

दो पदार्थों के संयोग को और आलिंगनादि आनन्दमयी क्रियाओं को आश्लेष कहते हैं। श्रावणमास में सचमुच धरती और आकाश के बीच में इस आनन्द का उस समय दर्शन होता हैं जब सूर्य आश्लेषा नक्षत्र में आते हैं। आश्लेषा के स्वामी सर्प हैं। यहाँ सर्प का अर्थ साँप नहीं बल्कि देव है। वेद में लोकों और सेवकों को भी सर्प कहा है। देखिए यजुः– संहिता १०।३०, १३।६, २३।५६। सर्पन्ति सर्पाः। जो सरकते हैं, चलते हैं वे सर्प हैं। वेद में तारा आदि दिव्य ज्योतियों को भी सर्प कहा है। कुछ चमकीले तारे सर्पों की मणियाँ हैं। ये सर्प द्यौ, अन्तरिक्ष और भूमि, तीनों लोकों में रहते हैं। वेदों के अनुसार भगवान् शंकर सर्प हैं, सूर्यमण्डल में सर्प सरक रहे हैं और नक्षत्र उनके देह हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि जो सर्प (देव) द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी में रहते हैं, तारे और ग्रहों में रहते हैं, सूर्य की किरणों में रहते हैं, नक्षत्ररूपी देह वाली आश्रेषाएँ जिनके चित्त और कामनाओं का अनुगमन करती हैं वे सर्प हमारे यज्ञ में आवें। हम उन्हें मधुमती हवि दे रहे हैं.

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥
इदं सर्पेभ्यो हविरस्तु जुष्टम्।
ये अन्तरिक्षं पृथिवीं क्षियन्ति (वसन्ति) ते नः सर्पासो हवमागमिष्ठाः॥
ये रोचने सूर्यस्यापि सर्पाः। ये दिवं देवीमनुसंचरन्ति।
येषामाश्रेषा (नक्षत्रदेहा) अनुयन्ति कामं, अनुयन्ति चेतः।
तेभ्यः सर्पेभ्यो मधुमज्जुहोमि।

किन्तु आज के ज्योतिष में यह देवनक्षत्र आश्लेषा तीक्ष्ण है, दारुण है और सब शुभ कर्मों में निषिद्ध है। इससे सटा हुआ नक्षत्र पुष्य शुभ है, उसमें यात्रा, प्रतिष्ठा, ब्रतबन्ध, गृहप्रवेश आदि करने का आदेश है और लिखा है कि पुष्य में जन्मा बालक सुन्दर, माता–पिता का भक्त, धर्मात्मा, विनम्र, यशस्वी, लोकमान्य, विद्वान्, धनी और सुवाहनवान् होता है परन्तु उससे सटे आश्लेषा में उत्पन्न शिशु व्यर्थ में घूमने वाला, अतिदुष्ट, दूसरों को कष्ट देने वाला, अपव्ययी और कामी आदि होता है। इस नक्षत्र की अन्तिम घटियाँ गण्डान्त कही जाती हैं। वे अति भीषण होती हैं। इस नक्षत्र में झूठ बोलना, शराब आदि मादक द्रव्यों का सेवन करना, जुआ खेलना और विवाद आदि कर्म सफल होते हैं। दोनों नक्षत्रों के कुछ श्लोक ये हैं—

प्रसन्नगात्रः पितृमातृभक्तः स्वधर्मसक्तो विनयाभियुक्तः।
भवेन्मनुष्यः खलु पुष्यजन्मा संमाननानाधनवाहनाढ्यः
वृथाटनः स्यादतिदुष्टचेष्टः कष्टप्रदश्चापि वृथा जनानाम्।
सार्पे कदर्थो हि वृथार्पितार्थः कन्दर्पसन्तप्तमना मनुष्यः॥

यात्रा प्रतिष्ठा सीमन्तव्रतबन्धप्रवेशनम्।
करग्रहं विना सर्वं कर्म देवेज्यभे शुभम्॥
अनृतं व्यसनं द्यूतं वादं घातं च बंधनम्।
कपटस्तेययुद्धादिकर्मं कद्रूजभे शुभम्॥

पितरों का नक्षत्र मघा

ऋग्वेद में लिखा हैं–स्तोतृभ्यां महते मघम् १।११।३ पणयो नानशुर्मघम् १।१५।६, यजुर्वेद का कथन है–स विभेद बलं मघं २०।६८, वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे २०।६७। ऐसे अनेक मन्त्र हैं और उनमें विद्या, विज्ञान, ऐश्वर्य, धन, बल एवं ईश्वर आदि को मघ कहा है तथा देवराज इन्द्र का नाम मघवा या मघवान् है अतः स्पष्ट है कि यह नक्षत्र अशुभ नहीं है। इसके स्वामी पितर हैं और वेद में परमात्मा को भी पितर कहा है। यः पितरं न वेद १।१६४।२२ ऋग्वेद। मघा देव नक्षत्र है, उसके स्वामी पितर देवयान से आते हैं और वेद ने उनको सुकृत्य आदि कहा है। तैतिरीय ब्राह्मण और यजुः संहिता का कथन है–

उपहूता पितरो ये मघासु मनोजवसः सुकृतः सुकृत्याः।
ते नो नक्षत्रे हवमागमिष्ठाः। येऽमुंलोकं पितरःक्षियन्ति (वसन्ति)।
यांश्च विद्मो यान्न विद्मः। मघासु यज्ञं सुकृतं जुषन्ताम्॥
आयन्तु नः पितरः सोम्यासः पथिभिर्देवयानैः॥ (१६।५८ यजुः)

हमारे गाँवों के लोग भली भाँति जानते हैं कि मघा और स्वाती का पानी सबसे उत्तम होता है। स्वाती का जल दुर्लभ होता है और मघा का सुलभ। वह अनेक औषधों में काम आता है और पात्रों में रखा जाता है। मघा के शुभत्व का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वह वेदकाल से लेकर आज तक विवाह में शुभ माना गया है किन्तु दुर्भाग्य से आज का ज्योतिष उसे उग्र क्रूर मानता है, उसमें जन्मे बालक को कटुभाषी, कठोरचित्त, आदि कहता है और उसमें अनेक शुभ कर्मों का निषेध करता है। आश्चर्य है, मघा अशुभ है पर उससे बना माघ मास शुभ है।

पुष्य नक्षत्र विवाह में अशुभ

पुष धातु का प्रयोग पुष्टि में होता है। यजुर्वेदसंहिता ४।१६ में परमात्मा को पूषा (पुष्टिकर्ता) कहा है और २५।४५ में पुषं का अर्थ पुष्टिकर है। वेद और ज्योतिष, दोनों में पुष्य नक्षत्र के स्वामी देवगुरु बृहस्पति हैं, वह परम शुभ है गुरुवार की कक्षा में रखा गया है और शीघ्र कार्यसाधक (लघु–क्षिप्र) कहा गया है। वह सीमन्त, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, कर्णवेध, विद्यारंभ, उपनयन आदि सब संस्कारों में और वस्त्राभूषणधारण, शस्त्रधारण, जलाशयारंभ, गृहारंभ, गृहप्रवेश, राज्यभिषेक, यात्रा आदि सब कमों में शुभ माना गया है किन्तु ब्रह्मा के शाप से विवाह में निषिद्ध हो गया है। ब्रह्मा ने शाप इसलिए दिया कि पुष्य में विवाह होने से वे कामी हो गये।

पुराणों में ब्रह्मा के विवाह की कथा तो प्रसिद्ध नहीं है पर उनकी कामुकता की मिथ्या और अभद्र कथाओं से पुराण भरे हैं। सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री और पत्नी दोनों हैं। खेद है कि इस कथन की जाँच किये बिना हमने उसे चुपचाप यहाँ तक मान लिया कि ब्रह्मा की पूजा ही बन्द हो गयी। हिन्दू के घर में कई सौ नये देव आ गये पर ब्रह्मा का मन्दिर ढूँढ़ने पर क्वचित् ही मिलेगा। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा अब राजस और अपूज्य हो गये हैं। ज्योतिष में भी अन्धविश्वास की यही अन्धेर चल रही है।

शिवपुराण का कथन है कि सती–शंकर के विवाह में ब्रह्मा ही आचार्य थे। अग्नि की प्रदक्षिणा करते समय सती

के सुन्दर पैरों को देख कर उनका धोती में ही वीर्यपात हो गया, शंकर त्रिशूल लेकर वध करने दौड़े और विष्णु ने रक्षा की। भँगेड़ी–गँजेड़ी शंकर ने उनकी प्रकृति जानते हुए भी पार्वती के विवाह में उनको पुनः आचार्य बनाया और पार्वती के चरणों को देख कर उन्होंने पुनः वही कर्म किया। इस बार उनके वीर्य से वे साठ सहस्र बालखिल्य ऋषि पैदा हुए जो अभी भी सूर्य की प्रदक्षिणा कर रहे हैं। प्रसिद्ध कथा यह है कि ब्रह्मा अपनी पुत्री सरस्वती पर मोहित हुए, वह चार दिशाओं में और ऊपर भागी तो बारी बारी से उनको पाँच मुख निकल आये, शिव ने ऊपर वाला सिर काट दिया, ब्रह्मा चतुर्मुख हो गये, कन्या हरिणी बन पर आकाश में उड़ी और ब्रह्मा हरिण बन कर अभी भी उसका पीछा कर रहे हैं। इसलिए विवाह वृन्दावनकार कहते हैं कि ब्रह्मा ने पुष्य को शाप दे दिया और उसे विवाह नक्षत्रों से बहिष्कृत कर दिया।

पुष्यस्तु पुष्यत्यतिकाममेव प्रजापतेराप स शापमस्मात्।

इस कथन में अनेक शंकाएँ हैं। (१) ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं, परमात्मा हैं तो दूसरे देशों वाले विद्वानृ उनकी इन कथाओं को क्यों नहीं जानते? (२) संसार के सारे सौन्दर्य ब्रह्मा के बनाये हैं तो वे अपने बनाये सौन्दर्य को देख कर विक्षिप्त कैसे हो जाते हैं? (३) पहले पुष्य में विवाह होते थे तो क्या सब लोग ब्रह्मा की भाँति कामातुर होकर अपनी पुत्रियों के पीछे दौड़ते थे? ।५) पुष्य में विवाह करने वाले विदेशी उससे प्रभावित क्यों नहीं होते? (६) ब्रह्मा ने अपने विवाहकालीन अयनों, मासों, पक्षों तिथियों और मुहूर्तों को शाप क्यों नहीं दिया? क्या नक्षत्रों के प्रभाव से ही सारी घटनाएँ घटती हैं? यदि हाँ तो आप सब का फल क्यों लिखते हैं? (७) पुष्य नक्षत्र का काल कोई चेतन पदार्थ नहीं है अतः वह जान बूझ कर सबके विवाह में विघ्न नहीं डालता। तो ब्रह्मा ने उसे शाप क्यों दिया? क्या ब्रह्मा पागल है? (८) ब्रह्मा ने ऐसा काल क्यों बनाया?

सत्य यह है कि सरस्वती कोई देहधारिणी देवी नहीं है। विद्याा को ही सरस्वती कहते हैं और सरस्वान् (सागर) की भाँति उसका क्षेत्र विशाल है। सरस्वती केवल ब्रह्मा की पत्नी नहीं है और केवल ब्रह्मलोक में नहीं रहती। उसका सम्बन्ध हर व्यक्ति और हर लोक से है। बृहस्पति भी वाचस्पति कहे जाते हैं और यह उपाधि बहुतों को दी जाती है। ब्रह्मा यदि पापी होते तो उनके रोहिणी और अभिजित् नक्षत्र शुभ कर्मों में न लिये जाते और विवाहादि के कर्मकाण्ड में 'प्रजापतये स्वाहा' कह कर पहली आहुति ब्रह्मा को न दी जाती। आजकल चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र की सीमा में जितनी देर रहता है उसे हम पुष्य मानते हैं पर उसमें सब ग्रह घूमते हैं। उसे ब्रहस्पति ५ मास में और शनि एक वर्ष में भोगता है तो ब्रह्मा ने चन्द्रमा के काल को ही शाप क्यों दिया?

रोहिणी–मृगशीर्ष–नक्षत्र–कथा

वेद और ज्योतिष, दोनों में रोहिणी नक्षत्र के देव या स्वामी ब्रह्मा जी हैं। वे सृष्टिकर्ता हैं, परमात्मा हैं और उनके विषय में वेद कहते हैं कि वे सृष्टि पैदा होने के पूर्व विद्यमान थे, वे ही सारी सृष्टि के एक मात्र पति हैं और उन्होंने ही पृथ्वी, आकाश और द्युलोक को धारण किया है तो हम अन्य किस देव को आहूति दें!

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ब्रह्मा की प्रार्थना और स्तुति के वेदों में ऐसे अनेक मन्त्र हैं किन्तु पुराणों के कारण अब इस युग में वे तिरस्कृत हो गये हैं। पुराणों का काम एक ईश्वर से नहीं चलता इसलिए वे कहते हैं कि परमात्मा तीन हैं। (१)ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं, रजोगुणी हैं (२) विष्णु सात्विक हैं पर सृष्टिपालक मात्र हैं। वे सृष्टि की रचना नहीं कर सकते (३) शिव तमोगुणी हैं, बनाना नहीं जानते, केवल संहार करते हैं और भाँग–धतूरा खाते हैं पर पता नहीं क्यों, उनके मन्दिर सबसे अधिक हैं। किन्तु सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को अब हिन्दू नहीं पूजता। इसके कई कारणों में मुख्य है उनकी कामुकता। उनकी कन्या सरस्वती हरिणी बन कर भागी

और वे अभी भी हरिण वनकर उसका पीछा कर रहे हैं, यह कथा पीछे लिखी है। आपको शंका होगी कि सरस्वती को आकाश में उड़ना था तो वह हरिणी क्यों बनी, पक्षी क्यों नहीं बनी, हरिणी कैसे उड़ेगी। परन्तु शास्त्र में शंका करना घोर पाप है। वह हरिणी ही रोहिणी नक्षत्र है, किन्तु ज्योतिषी उसकी आकृति हरिणी सदृश न मान कर शकट (बैलगाड़ी पर रखे ढाँचे) सदृश मानते हैं और वह वस्तुत: है भी वैसी ही।

आकृति की इन दो विभिन्न कल्पनाओं से यह शिक्षा मिलती है कि हमें नक्षत्रों या राशियों की आकृतियों के आधार पर किसी का भूत, भविष्य और स्वभाव आदि नहीं वताना चाहिए। जिन तारों द्वारा मेष बनता है उन्हीं से वृष और सिंह भी बन सकते हैं। यहाँ त्रिकोणाकृति रोहिणी को वैलगाड़ी (शकट) और हरिणी, दोनों कहा गया है।

राजस ब्रह्मा हरिण वन कर हरिणी रूपधारिणी अपनी कन्या रोहिणी का पीछा करने लगे तो तामस शिव को न जाने क्यों, यह कर्म अच्छा नहीं लगा। उन्होंने व्याध वन कर ब्रह्मा के पेट में त्रिकाण्ड बाण मारा। आश्चर्य यह है कि यह घटना भूतकालीन मात्र नहीं है। आकाश में आज भी व्याधरूपधारी शिव, उनके श्वन्–प्रश्वन् नामक दो कुत्ते, त्रिकाण्डवाण मृगरूपी ब्रह्मा और मृगीरूपी रोहिणी आदि देखे जा सकते हैं। महाभारत का कथन है कि शिव ने ब्रह्मा को नहीं बल्कि दुष्ट यज्ञ को बाण से मारा और वह मृग वन कर भागा। शिव के सबसे प्रसिद्ध महिम्न नामक स्तोत्र में लिखा है कि शिवजी अभी भी पापी ब्रह्मा को खदेड़ रहे हैं।

प्रजानाथं नाथ प्रसभमधिकं स्वां दुहितरं, गतंरोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः॥

ततः स यज्ञं विव्याध रौद्रेण हृदि पत्रिणा।
अपक्रान्तस्ततो यज्ञो मृगो भूत्वा सपावकः॥
स तु तेनैव रूपेण दिवं प्राप्य व्यराजत।
अन्वीयमानो रुद्रेण युधिष्ठिर नभस्तले (महाभारत)॥

(पश्चिम) ¨: : : · : ·.· :····: . : श्वन् (पूर्व)

कृत्तिका रोहिणी शीर्ष मृग मृगव्याध

पुराणों के अनुसार सरस्वती देवी हरिणी बन कर उस दिशा में भागी जहाँ छः कृत्तिकाएँ वैठी थीं। सरस्वती आज कल ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के साथ रहती हैं और आवश्यकता पड़ने पर कभी-कभी मर्त्यलोक में आती हैं। एक बार देवों ने श्रीराम को वन भेजने के उद्देश्य से उन्हें ब्रह्मलोक से बुलाकर मन्थरा की जीभ पर वैठा दिया था। इसका अर्थ यह है कि पृथ्वी सरस्वती से विहीन है। सरस्वती ब्रह्मा के पास रहती हैं, उनकी पुत्री हैं, पत्नी हैं पर आकाश में मृगी वन कर अभी भाग भी रही हैं और ब्रह्मा उनका पीछा भी कर रहे हैं परन्तु सत्य यह है कि कृत्तिका के तारे न नारियाँ हैं, न सरस्वती हरिणी है, न वह रोहिणीपुंज बनी है न गाड़ी है, न मृगशिरा मृग है, न शिव व्याध हैं, न उनके साथ कुत्ते हैं, न ब्रह्मा कामी हैं, न कोई नक्षत्र अशुभ है। इसी प्रकार महाभारत का वह रूपक भी रूपक ही है जिसमें दुष्ट यज्ञ और अग्नि के आकाश में भागने का और शिव द्वारा खदेड़े जाने का वर्णन है। सरस्वती के विषय में वेदों का कथन है कि वह निराकार विद्या है और विद्वानों के साथ रहती है। वह कहती है कि मैं रुद्रों, वसुओं आदित्यों और मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि आदि देवों की सहचारिणी हूँ तथा जिससे प्रेम करती हूँ उसे ब्रह्मा, ऋषि और मेधावी बना देती हूँ।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।
यं कामये तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं सुमेधाम्॥

पूर्वा–उत्तरा–फाल्गुनी

फाल्गुन–फाल्गुनी शब्द शुभ हैं। इसलिए वैदिक साहित्य में फाल्गुन मास की बड़ी महत्ता है। वह वहाँ तपस्य कहा गया है और आज भी प्रमोद एवं उल्लास का मास माना जाता है। फाल्गुन के महत्त्व का सारा श्रेय उस फाल्गुनी नक्षत्र को है जो फाल्गुन में रात भर दिखाई देता है और जिसकी पूर्णिमा में चन्द्रमा फाल्गुनी में रहता है। यजुर्वेद २४।४ में फल्गू शब्द आया है और वहाँ उसका अर्थ है—फल को प्राप्त करने वाली। इस नक्षत्र के चार उज्ज्वल तारों से एक आयत बनता है और चारों की आकृतियाँ समान हैं पर ज्योतिष में दो अति शुभ और दो अति अशुभ हैं। पूर्वाफाल्गुनी में घात, अग्निदाह, शठता, विषदान आदि करने का और उत्तरा में सब शुभ और दो अति अशुभ हैं। पूर्वाफाल्गुनी में घात, अग्निदाह, शठता, विषदान आदि करने का और उत्तरा में सब शुभ कर्म करने का विधान है। पूर्वाफाल्गुनी में उत्पन्न बालक कामार्त, अभिमानी, धूर्त, क्रूर साहसी आदि होता है पर उत्तरा में उत्पन्न दाता, दयालु, सुशील, यशस्वी, मन्त्री और धीर आदि होता है। क्षण भर में इतना परिवर्तन हो जाता है।

ज्योतिष में पूर्वाफाल्गुनी के स्वामी भगदेव हैं और वेद में अर्यमा। ज्योतिष में आर्यमा उत्तरा के स्वामी हैं। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में दोनों में इतना फलभेद नहीं था। वस्तुतः अर्यमा और भग, दोनों नाम सूर्य के ही है। ऋग्वेद १।१६१।८ में अर्यमा का अर्थ न्यायकारी है और यजुर्वेद ३४।३६, ३४।३८ आदि अनेक मन्त्रों में भग का अर्थ भगवान्, परमात्मा, भजनीय, सूर्य, ऐश्वर्य, विद्वान् आदि है। शास्त्रों में ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, शोभा, माहात्म्य, बल, प्रयत्न, यश आदि को भग तथा ईश्वर को भगवान् और उनकी शक्ति को भगवती कहा गया है।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चापि षण्णां भग इतीरणा॥
भगं श्रीकाममाहात्म्यवीर्ययत्नार्ककीर्तिषु॥

दोनों फाल्गुनियों के स्वामी अर्यमा और भग (सूर्य) के विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।१।१) का कथन है कि आप फाल्गुनियों के और गायों (वाणी, भूमि, किरण आदि) के पति तथा सबके हितकारी हैं! हम जीव, संसार के पिता और कष्टों के निवारक आपकी शरण में हैं। आप ने सब भुवनों को जीता है और देवगण आपके चित्त का अनुसरण करते हैं। हे अर्यमन्! आप बुद्धिमान्, घोषकारी और निर्जर राजा हैं तथा फाल्गुनियों के स्वामी हैं। हे भगदेव! आप देवों में श्रेष्ठ हैं, दाता हैं, प्रदाता हैं और फाल्गुनियों में आविष्ट हैं अतः वे आप की महिमा को जानती हैं। आप कृपया हमें क्षत्रत्व, अजरत्व और बल दें तथा गोमान् और अश्ववान् बनावें। हम देवों के साथ रहें, उनकी आज्ञा मानें और फाल्गुनियाँ हम पर प्रसन्न हों।

गवाँ पतिः फल्गुनीनामसि त्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु।
तं त्वा वयं सवितारं सनीनां जीवा जीवन्तमुपसंविशेम॥
येनेमा विश्वा भुवनानि संजिता यस्य देवा अनुयन्ति चेतः।
अर्यमा राजा अजरस्तुविष्मान् फल्गुनीनामृषभो रोरवीति॥
श्रेष्ठो देवानां भगवो भगासि तत्त्वा विदुःफल्गुनीस्तस्य वित्तात्।
अस्मभ्यं क्षत्रमजरं सुवीर्यं गोमदश्वमत् सन्नुदेह॥
भगोह दाता भग इत्प्रदाता भगो देवीः फल्गुनीराविवेश।
भगस्येत्तं प्रसवं गमेम यत्र देवैः संघमादं मदेम॥

भगवान् श्रीकृष्ण के परममित्र और सुभद्रा के पति अर्जुन का एक पवित्र नाम फाल्गुन है और फाल्गुनी नक्षत्र का

एक नाम अर्जुनी है ये दोनों शब्द समानार्थक और पर्यायवाची हैं। ऋग्वेद १।१२२।५, ३।३६।२, ५।८४।२, ६।६।१ और ७।५५।२ में अर्जुन-अर्जुनी शब्दों के अर्थ हैं राजा, रूपवान्, सुन्दर वस्त्र, दिन और विदुषी नारी तथा वेद में पूर्वा उत्तरा, दोनों फाल्गुनियों के स्वामी सूर्य हैं अतः स्पष्ट है कि दोनों शुभ हैं। निश्चित है कि प्राचीन काल में इन दोनों में विवाहादि शुभ कर्म होते थे किन्तु बाद में इनका आधा भाग अशुभ माना जाने लगा। इसके पर्याप्त प्रमाण हैं। विवाहवृन्दावन में लिखा है कि प्राचेतस मुनि ने पूर्वाफाल्गुनी को विवाह में शुभ कहा है किन्तु उसमें सीता का विवाह हुआ और सीताराम जीवन भर दुःखी रहे इसलिए अब उसमें विवाह नहीं होना चाहिए।

प्राचेतसः प्राहः शुभं भगर्क्षं सीता तदूढा न सुखं सिषेवे।

परिणाम यह हुआ कि हमने चुपचाप इस कल्पना को वैज्ञानिक सिद्धान्त मान लिया। पूर्वाफाल्गुनी ही नहीं, हमारे देश में अनेक लोग आग्रहायण (अगहन) में विवाह करने से इसलिए डरते हैं कि वह सीताराम के लिए कष्ट प्रद रहा किन्तु इस मान्यता में अनेक शंकाएँ हैं।

(१) वाल्मीकि को प्राचेतस् कहते हैं। उन्होंने पूर्वाफाल्गुनी को शुभ कहा तो अब हम उसे अशुभ कैसे मान लें? (२) सीताराम के विवाह में उपस्थित उभयपक्षीय वसिष्ठ, वामदेव, शतानन्द आदि महर्षियों और महापण्डितों ने उसे अशुभ क्यों नहीं माना? (३) क्या वेदों ने उसे अज्ञानवश शुभ माना था? (४) जिस नक्षत्र में पचीसों गुणों के धाम भगदेव बैठे हैं वह अशुभ कैसे हो गया? (५) ज्योतिष ने उसके वैदिक स्वामी को बदल क्यों दिया? (६) क्या सीताराम के कष्ट का कारण एक मात्र पूर्वाफाल्गुनी का विवाह ही था? (७) रामावतार के पूर्व उनको अनेक शाप लगे थे। क्या वे कष्ट के हेतु नहीं हो सकता हैं? (८) संसार के प्रत्येक महान् पुरुष को अनेक कष्ट सहने पड़े हैं तो क्या उन सब के विवाह नक्षत्रों का त्याग कर दिया जाय? (९) सबके जन्म नक्षत्रों को अशुभ मान लिया जाय? (१०) सबके उपनयन, मुण्डन आदि के नक्षत्र अशुभ मान लिये जायँ? (११) आप राम के जन्म और विवाह आदि के वारों, तिथियों, मासों और पक्षों का परित्याग क्यों नहीं करते? (१२) फाल्गुनी का आधा भाग शुभ क्यों माना जाता है? (१३) आजकाल आप इस नक्षत्र में विवाह के अंगभूत कर्म हरिद्रालेपन, वरवरण (तिलक), कन्यावरण आदि क्यों करते हैं? (१४) वसिष्ठ, जनक, वामदेव आदि महर्षियों द्वारा निश्चित किये शुभ काल अशुभ हो गये तो आप उनकी पोथियों को प्रमाण क्यों मानते हैं और उनकी समालोचना को धर्मविरुद्ध क्यों कहते हैं? (१५) पूर्वाफाल्गुनी में विवाह नहीं सहा तो उस सीता से विवाह कैसे सह्य हो गया जिसके पिता माता का पता नहीं है, जो घड़े से पैदा हुई है और खेत में मिली है? (१६) दक्षिणायन में गृहप्रवेश आदि अनेक कर्म वर्जित हैं तो वसिष्ठ ने सीताराम का विवाह उसमें क्यों करा दिया? (१७) महान् कवि और रामभक्त श्री कृत्तिवास ने सीताराम के कष्टों का हेतु पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र को नहीं अपितु दुष्ट देवों को और विवाहकालीन लग्न को माना है। गोस्वामी तुलसीदास भी सारा दोष देवों को देते हैं और उनके लिए अनेक अपशब्दों का प्रयोग करते है। उनका कथन है–

सकल कहहिं कब होइहि काली। विघन मनावहिं देव कुचाली॥
तिन्हिं सोहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चाँदनि राति न भावा॥
सारद बोलि विनय सुर करही। बारहिं वार पायँ लै परहीं॥
बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि देव मति पोची॥
ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥
हरिष हृदय दशरथ पुर आई। जनु ग्रहदशा दुसह दुखदाई॥
नाम मन्थरा मन्दमति चेरि कैकई केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गयी गिरा मति फेरि॥ २। १२

परन्तु कृत्तिवास का कथन है कि देवों ने यह कुकर्म राम के विवाह के समय ही सम्पन्न कर दिया था। जनकपुर में वसिष्ठ ने दोनों पक्षों के विद्वानों की सम्मति से विवाह का लग्न निश्चित कर दिया तो स्वर्ग के देव घबरा गये। वे कहने लगे कि इस लग्न में विवाह हो गया तो राम को वनवास नहीं होगा, सीताराम का वियोग नहीं होगा और रावण मारा नहीं जायेगा इसलिए लग्न को भ्रष्ट करना आवश्यक है। तब उन्होंने चन्द्रमा को एक मनमोहनी नर्तकी बनाकर जनकपुर में भेज दिया और उसकी कला, एक एक अंग के सौन्दर्य तथा अभिनय को देख कर महर्षि वसिष्ठ, मुनिराज वामदेव, वीतराग जनक तथा अन्य योगी, विद्यावृद्ध, तपोवृद्ध पण्डित लग्न की सुध भूल गये। परिणाम यह हुआ कि विवाह ऐसे लग्न में हुआ जिसमें ग्रह प्रतिकूल थे।

वसिष्ठ सभार मध्ये जोतिष मेलिल।
पुनर्वसु कर्कटे ते कन्या लग्न हैल॥
ताहा ते विवाह विधि हइले घटन।
स्त्रीपुरुषे विच्छेद ना हय कदाचन॥
सेइ लग्न करिलये यत बन्धुजन।
स्वर्गे थाकि युक्ति करे यत देवगन॥
स्त्रीपुरुषे विच्छेद ना हय कालान्तरे।
के मने मारिबे तबे लंकार ईश्वरे॥
करह मंत्रणा एड़ बलि सारोद्धार।
लग्न भ्रष्ट कर गिया श्रीरामसीतार॥
नर्तकी हइया तबे यावो शशधर।
नृत्य कर गिया तुमि जनकेर घर॥
चन्द्रनृत्य देखि ते भूलिल सर्वजन।
ताहे मग्न कोथा लग्न के करे गणन॥

परन्तु ये सब की सब कवियों की मिथ्या कल्पनाएँ हैं और इसी कारण घटना के हेतु में इनमें घोर मतभेद है। सत्य यह है कि देवियों और देवों के विचार इतने कुत्सित नहीं होते। राम अयोध्या में रहकर भी रावण का वध कर सकते थे और वसिष्ठ के समय मेषादि लग्नों का प्रचलन नहीं था। हमारे सब कवि और ज्योतिषी इसे बल पूर्वक प्राचीन ऋषियों पर थोपते हैं और कई लाख वर्ष प्राचीन सिद्ध करते हैं। बड़े कष्ट का विषय है कि ये लोग ऋषियों की सन्तान होकर नक्षत्र और मुहूर्तों की अपेक्षा विलायती लग्न को विशेष महत्त्व देते हैं। इनके वसिष्ठ और जनक की दृष्टि में पूर्वाफाल्गुनी विवाह में तभी उपयुक्त है जबकि उसमें अनुकूल लग्न हो। प्रश्न यह है कि वैदिक साहित्य ने इतने महत्त्वपूर्ण लग्न की चर्चा क्यों नहीं की? वेद के नेत्र ज्योतिष में यह कहाँ से आ गया? (१८) देवों ने यह विघ्न विवाह के समय डाला कि वनगमन के समय? (१६) आप ऐसे देवों की पूजा क्यों करते है, उन्हें आहूतियाँ क्यों देते हैं और देव क्यों कहते हैं? (२०) क्या जड़ चन्द्रमा नतंकी बन सकता है और उसके अभिनय से विक्षिप्त होकर जनक, वसिष्ठ और राम लग्न को भूल सकते हैं? क्या आप के लग्नफल और नक्षत्रफल में इस कथातुल्य ही सचाई है?

वैदिक ज्योतिष के दो विवादास्पद स्थल

वैदिक साहित्य में पूर्वाफाल्गुनी सर्वत्र शुभ मानी गयी है परन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण के एक ही अनुवाक् (१।१।२) में उसके विषय में परस्पर विरुद्ध दो बातें लिखी हैं। (१) जो चाहे कि मेरी सन्तान दानी हो वह अर्यमा के नक्षत्र पूर्वा–फाल्गुनी

में अग्न्याधान करे। दाता को अर्यमा कहते हैं। (२) पूर्वा फाल्गुनी संवत्सर की अन्तिम और पापरात्रि है। इसमें अग्न्याधान करने वाला पापी होता है। उत्तरा फाल्गुनी संवत्सर की प्रथमा रात्रि है और मुख है। इसमें अग्न्याधान करने वाला प्रमुख और श्रेष्ठ होता है।

य: कामयेत दानकामा मे प्रजा: स्युरिति, स पूर्वयो: फल्गुन्योरग्निमादधीत।
अर्यमणो वा एतन्नक्षत्रं, अर्यमेति तमाहुर्यो ददाति॥
न पूर्वयो: फल्गुन्योरग्निमादधीत, एषा वै जघन्या रात्रि: संवत्सरय।
पृष्टित एव संवत्सरस्याग्निमाधाय पापीयान् भवति, उत्तरयोरादधीत॥
एषा वै प्रथमा रात्रि: संवत्सरस्य यदुत्तरे फल्गुनी।
मुखत एव संवत्सरस्याग्निमाधाय वसीयान् भवति॥

समाधान—(१) पूर्वा फाल्गुनी के फाल्गुनी और अर्जुनी, दोनों नाम शुभ हैं। ये सुशील, सौन्दर्य आदि अनेक गुणों के पर्यायवाची हैं। (२) यह प्राचीन काल में शुभ माना जाता था और सीताराम का विवाह इसी में हुआ था। (३) वेद में इसके स्वामी अर्यमा और ज्योतिष में भगदेव हैं। ये दोनों सात्त्विक हैं। (४) इसी ब्राह्मण में लिखा है कि भगदेव भगवान् हैं, दाता हैं, देवगण उनके अनुगामी हैं, वे सबके हितकारी हैं और पूर्वा फाल्गुनी में रहते हैं। (५) यहाँ लिखा है कि इसमें अग्न्याधान करने वाले की सन्तान शिष्ट और उदार होती है। पूर्वाफाल्गुनी के शुभत्व के ऐसे अन्य अनेक प्रमाण हैं। केवल एक स्थान में उसकी निन्दा उस प्रसंग में है जब वह वर्ष की अन्तिम रात्रि रहती है। लोकमान्य तिलक तथा अन्य अनेक विद्वानों ने सिद्ध किया है कि प्राचीन काल में वर्ष का और वार्षिक यज्ञ का आरंभ एक साथ होता था तथा वर्ष का प्रथम दिन या नक्षत्र आज की ही भाँति महोत्सव और हर्ष का दिन माना जाता था। चूँकि उस समय उत्तराफाल्गुनी वर्ष के आरंभ का और पूर्वाफाल्गुनी वर्षान्त का नक्षत्र था इसलिए एक को मुख और दूसरे को पाद एवं शुभाशुभ कहा गया किन्तु वैदिक साहित्य से यह बात सिद्ध हो जाती है कि यह वर्षारंभ बदलता रहता है और पीछे के एक ही अनुवाक् में चार वर्षारंभों का वर्णन है। इतना ही नहीं, भारत में आज भी हिन्दुओं में भिन्न-भिन्न अनेक वर्षारंभ हैं और सब वर्ष के प्रारंभ को नवरात्र और महोत्सव का दिन मानते हैं किन्तु इधर कई सहस्र वर्षों से पूर्वाफाल्गुनी कहीं भी वर्ष का अन्तिम नक्षत्र नहीं है। इस समय हम वर्षान्त फाल्गुन पूर्णिमा को नहीं बल्कि चैत्र की अमावास्या को मनाते हैं अर्थात् १५ दिनों के बाद वर्षारंभ करते हैं किन्तु हमें इस महत्त्वपूर्ण बात पर ध्यान देना है कि यदि फाल्गुन पूर्णिमा को ही वर्षान्त मान लें तो उस दिन किसी वर्ष में फाल्गुनी रहेगी तथा किसी दिन उत्तराफाल्गुनी। प्राचीन पंचांग में चाहे जो नियम रहा हो पर आज तो प्रतिवर्ष फाल्गुनी पूर्णिमा को पूर्वाफाल्गुनी ही नहीं रहती, उत्तरा और हस्त भी आ जाते हैं। हम मास को अमान्त मानें या पूर्णिमान्त किन्तु हर पंचांग में पूर्णिमा को १५ वीं और अमावास्या को ३० वीं तिथि मानते हैं इसलिए अब तो पूर्वाफाल्गुनी वर्ष का अन्तिम नक्षत्र नहीं ही है। जहाँ वह वर्णन है वहाँ उसका सम्बन्ध केवल वार्षिक यज्ञ से है, सब यज्ञों से भी नहीं। वैदिक साहित्य में बारह मासों के नाम चित्रापूर्णमासी, विशाखापूर्णमासी आदि हैं। इसका कारण यह है कि ये नक्षत्र फाल्गुनी की ही भाँति उन मासों की पूर्णिमा में आते हैं पर वे नक्षत्र अशुभ नहीं माने जाते। इसलिए हमें वेदवाक्यों के तात्पर्य पर ध्यान आवश्यक है।

वेद के नाम पर वंचना

वेदों का केवल ऊपरी अर्थ ग्रहण करने से हम वेदाभिप्राय से दूर चले गये हैं। इस कारण वेदों का अनेक प्रकार से विरोध हुआ है और अपने को वेदानुयायी कहने वाले अनेक ग्रंथों ने हमें बहुत दूर फेंक दिया है। ज्योतिष सम्बन्धी कुछ विचारणीय वैदिक विषय ये हैं-(१) वेद में सूर्य के रथ और अश्वों का वर्णन है पर ऋग्वेद (१।१५२।५) में यह भी लिखा है कि सूर्य का रथ और अश्व नहीं है। (२) ऋग्वेद (१०।७२।४) में लिखा है कि दक्ष से अदिति और अदिति से दक्ष उत्पन्न

हैं। (३) तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।५।२) में लिखा है कि स्वाती नक्षत्र में विवाहिता कन्या पति को इतनी प्रिय हो जाती है कि पुनः लौटकर पिता के घर नहीं आती। (४) वहीं लिखा है कि अभिजित् में यात्रा करने पर अजेय भी जीत लिया जाता है। अतः हमें वेद के ऊपरी अर्थ को न पकड़ कर उसके मूल भावार्थ में जाना है। ग्रंथों की स्थिति यह है कि (५) अथर्वज्योतिष में जन्म नक्षत्र से ३, ५, ७ नक्षत्रों को विपत्ति, प्रत्यरि और वध कहा है। आधुनिक ज्योतिष इसे नहीं मानता पर वरकन्या से जोड़ देता है। ये दोनों कर्म वेद विरुद्ध हैं। (६) वेद में चित्रा, मघा, रेवती और पुनर्वसु बहुधनदायक हैं पर नूतन ग्रन्थ इसे नहीं मानते। (७) आज धनिष्ठापंचक में अनेक कर्म वर्जित हैं और मरना भी भयावह है। (८) पारस्कर गृह्यसूत्र में चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा और अश्विनी विवाह में शुभ कहे हैं और अनुराधा–मघा नहीं पर आज का ज्योतिष इन दोनों सिद्धान्तों के विपरीत है। (९) तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।१।२) के अनुसार मूल में जन्म शुभ है और आज अति अशुभ है। (१०) वेदांग ज्योतिष के कई विषय नूतन और वेद विरुद्ध हैं। उसमें धनिष्ठा प्रथम नक्षत्र है। (११) यजुः ज्योतिष में आर्द्रा, चित्रा, विशाखा, श्रवण और अश्विनी उग्र हैं तथा मघा, स्वाती, ज्येष्ठा, मूल भरणी क्रूर हैं। यह कथन वेद और ज्योतिष दोनों के प्रतिकूल है। (१२) अथर्वज्योतिष में मुहूर्तों के श्वेत, सारभट आदि नाम हैं तथा करण, वार और योगों का भी वर्णन है। उनके नाम और फल, वेद और ज्योतिष दोनों से भिन्न हैं। (१३) महाभारत में ज्योतिष के अनेक वेद विरोधी उल्लेख हैं। (१४) हमारी पहली उपनिषद् यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय है पर आज अल्लोपनिषद् तथा सीता, राधा, भस्म, रुद्राक्ष और चन्दन की भी उपनिषदें प्रचलित हैं। अतः हमें अपने को वेदव्रती कहने वाले ग्रन्थों से सावधान रहना है। पूर्वाफाल्गुनी का विषय भी ऐसा ही है।

अश्लील नक्षत्र

सलिलं वा इदमन्तरासीत्। यदतरन् तत्तारकाणां तारकत्वम्।
य इह यजते, अमुं स लोकं नक्षते। तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्॥
देवगृहा वै नक्षत्राणि। अश्लीलनामँश्चित्रे नावस्येन्न यजेत।
यथा पापाहे कुरुते तादृगेव तत् (तै० ब्रा० १।५।२)॥

यह अनुवाक् बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें भी पूर्वाफाल्गुनी की ही भाँति दो परस्पर विरुद्ध बातें लिखी हैं। (१) तारों के बीच में जल था, ये तर गये अतः तारक हैं। जो इनमें यज्ञ करता है वह तर जाता है और नक्षत्रलोकों में जाता है। (२) अश्लील नाम वाले नक्षत्र में न यज्ञ का आरम्भ करे न उसे समाप्त करे क्योंकि वह पापदिन है।

पीछे आप ने वार्षिक यज्ञ का वर्णन सुना। जब यज्ञ वर्ष भर और मास भर चल रहे हैं तो उनमें सब नक्षत्रों का आ जाना निश्चित है अतः यह हो नहीं सकता कि अश्लील नाम वाले नक्षत्र में आहुतियाँ न दी जायँ और इससे बड़ी कठिनाई यह है कि किसी भी नक्षत्र का नाम अश्लील नहीं है। यह बात देव नक्षत्र और यम नक्षत्रों सम्बन्धी सायणभाष्य से और भी स्पष्ट हो जाती है। पीछे रोहिणी–मृगशिरा की जो कथा लिखी है वह अवश्य अश्लील कही जा सकती है पर वह वेदों में नहीं है और जहाँ है वहाँ नक्षत्रों के रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा नाम अश्लील नहीं हैं तथा वह कथा भी सत्य घटना नहीं बल्कि रूपक है, अर्थवाद मात्र है। आश्लेष का अर्थ आलिंगन भी होता है अतः उस श्लेष का अश्लील कह सकते हैं। एक विनोदशील कवि ने लिख भी दिया है—

पयोधरघनीभावस्तावदम्बरमध्यगः।
आश्लेषोपगमस्तत्र यावन्नैव प्रवर्तते॥

इसके दो अर्थ हैं—(आकाश में मेघों का घनीभाव तभी तक है जबतक आश्लेषा नहीं आती। (२) वस्त्र के नीचे कुचों का घनीभाव तभी तक है जब तक आलिंगन–मर्दन नहीं होता परन्तु यह अश्लीलता नहीं, शुचि शृङ्गार है किन्तु वेदों

के प्राचीन भाष्यों के पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों को अश्लीलता अति प्रिय है।) देखिए अथर्ववेद ६।९, २।३०, ३।२५, ६।७२, २०।१४१ आदि ऋग्वेद १०।१० का यमयमी संवाद, ऋग्वेद १।९२, १।१२४ आदि में उषा का वर्णन और एक यह मन्त्र—

उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्।

वाजनेयिसंहिता तथा तैत्तिरीयसंहिता के अश्वमेघ याग तो अश्लीलता की सीमा को पार कर चुके हैं। महर्षि दयानन्द ने उसका जो सात्त्विक अर्थ लगाया है उसके विरोध में स्वामी करपात्री जी ने लिखा है कि (अश्वमेघ में रानी स्वयमेव अश्व का लिंग खींच कर उसको अपनी योनि में स्थापित करती है। मन्त्र पढ़ा जाता है कि हे अश्व! इसकी योनि में शिश्न का संचार और वीर्य का आधान करो क्योंकि स्त्रियों का यही भोजन है और वे इसी कर्म से जीवित रहती हैं। पुरोहित गण उस समय यजमान की कुमारियों, पत्नियों और दासियों से अश्लील हास उपहास आदि करते हैं। कहते हैं कि योनि में प्रविष्ट होते समय शिश्न उत्थित और पुण्ड्राकार हो जाता है। ये सारे कर्म शास्त्रचोदित होने से पुण्यदायक हैं। 'सर्वमपि कृत्यं पुण्यायैव, शास्त्र चोदितत्वात्'। मैथुन के समय स्त्री का सारा शरीर पुरुष से व्याप्त हो जाने के कारण उसकी केवल जाँघ दिखाई देती है। महिषी का घोड़े के साथ सोना एक शुभ फलदायक तपस्या है। शास्त्र कहते हैं कि अश्वमेघ से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और यज्ञ में अश्लील भाषण से राज्य की समृद्धि होती है। उससे एक प्रकार का शुभ अदृष्ट उत्पन्न होता है, अतः दयानन्द का यह कथन कि–अश्लील भाषण से राज्यलक्ष्मी अस्थिर हो जायेगी–मूर्खजन प्रतारण, अज्ञान और वृथा प्रलाप है। जैसे कोई पिशाच अपनी खटिया पर सुलाने के लिए लम्बे मनुष्य को काट कर छोटा कर देता है और छोटे को खींच तान कर लम्बा कर देता है, उसी प्रकार दयानन्द वेद का सिर काट कर और हृदय वेध कर बलात्कारपूर्वक अर्थ लगाता है।''

पुराणों की स्थिति और भी विचित्र है। गर्गादि संहिताओं और ब्रह्मवैवर्तादि पुराणों के अनुसार कृष्ण के गोलोक में अरबों गोपियों के हावभाव, कटाक्ष, वेणीमोचन, नीवीमोचन, कुचमर्दन, दुकूलहरण, आलिंगन, चुम्बन, दन्तक्षत, नखक्षत, अधरपान और प्रलापादि ही सत्कर्म हैं। वेद की ऋचाएँ और अनेक ऋषि ही वहाँ गोपियाँ हैं, राधाकृष्ण मदिरापान करते हैं, एक दूसरे का चबाया पान खाते हैं, शिव वहाँ गोपी बनते हैं और इस ध्यान से मुक्ति मिलती है। अतः प्रश्न यह है कि जो वेद ऐसा अश्लील वर्णन करते हैं और गोपी बन कर श्रीकृष्ण के साथ ऐसी अश्लील रासलीला करते हैं वे नक्षत्रों के अश्लील नाम से क्यों घबराते हैं और यदि सचमुच घबराते हैं तो वेदमन्त्रों का ऐसा अर्थ कैसे हो सकता? सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि आप जिन नक्षत्रों को अशुभ मानते हैं उनके नामों में अश्लीलता का स्पर्श भी नहीं है जैसे–भरणी, आर्द्रा मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, विशाखा, ज्येष्ठा और मूल आदि। अतः स्पष्ट है कि कोई नक्षत्र अश्लील नहीं है। यहाँ इस शब्द का अभिप्राय कुछ और है।

वास्तविकता यह है कि मनुष्य सारी घटनाओं को अपनी भावनाओं के अनुसार देखते हैं। कोई सब कालमानों को शुभ समझता है, किसी के लिए भद्रा, भरणी और मंगल भी घातक हो जाते हैं, कोई कृष्ण को योगेश्वर मानता है, कोई रासविहारी कहता है, किसी के लिए अश्लीलता और रानी का घोड़े से मैथुन मुक्तिदायक है तो किसी के लिए राष्ट्रसेवा और ज्ञानोपलब्धि ही अश्वमेध है। कोई तारों को तारक, देवगृह और नक्षत्र समझता है तो किसी को ढूँढ़ने पर भी शुभ नक्षत्र नहीं मिलता। एक ज्योतिषी सूर्योदय और उषःकाल को शुभ मानता है और सन्ध्या तथा गोधूलि को पवित्र कहता है तो दूसरा उन्हीं कालों के विषय में लिखता है कि सूर्योदय काल में गृहारम्भ करने पर गृह बिजली से भस्म हो जायेगा और जन्मपत्री में सप्तम अष्टम स्थानों में सूर्य के रहने पर सर्वनाश हो जायेगा। हम शुभगति के लिए जगदम्बा के चरणों का ध्यान करते हैं और एक पण्डित जी के ब्रह्मा का उनको देख कर वीर्यपात होता है। हम यज्ञकुण्ड को देख कर प्रसन्न होते है पर रामाधार शास्त्री को उसकी योनि में अश्लीलता का दर्शन होता है—भिन्नरुचिर्हि लोकः।

अवशिष्ट नक्षत्रों का शुभत्व

यहाँ तक ज्येष्ठा, मूल, कृत्तिका, विशाखा, आश्लेषा, मघा, तीन पूर्वा, आर्द्रा और आश्लेषा नामक उन नक्षत्रों का शुभत्व सिद्ध किया गया जिन्हें आज का ज्योतिष तीक्ष्ण, दारुण, क्रूर और उग्र कहता है तथा जिनकी शान्ति का विधान बताता है। प्रसंगवशात् तीनों उत्तराओं, रोहिणी, मृग और पुष्य का भी विवेचन हुआ। शेष नक्षत्रों के विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण (३। १। १) की संमति यह हैं—

अश्विनी— दोनों अश्विनीकुमार सुनियन्त्रित अश्वों के साथ सुगति से अश्विनी नक्षत्र के साथ आ रहे हैं, शुभ हैं, अपने नक्षत्र का हवि से यजन कर रहे हैं, मधु से युत हैं, यजुः से प्रकाशित हैं, देवों के वैद्य हैं, हव्यवाह हैं, विश्वदूत हैं, अमृत संरक्षक हैं और कर्मफलदाता हैं। उन्हें नमस्कार है। उनका अश्विनी में वास है।

तदश्विनौ अश्वयुजोपयाताम्। शुभं गमिष्ठौ सुयमेभिरश्वैः।
स्वं नक्षत्रं हविषा यजन्तौ मध्वा सम्पृक्तौ यजुषा समक्तौ॥
यौ देवानां भिषजौ हव्यवाहौ विश्वस्य दूतो अमृतस्य गोपौ।
तौ नक्षत्रं जुजुषाणोपयातां नमोऽश्विभ्याम् कृणुमोऽश्वयुग्भ्याम्॥

रोहिणी—प्रजापति की पत्नी रोहिणी आवे। वह बहुरूपा, बृहती और तेजस्विनी है। वह हमारा यज्ञ सम्पन्न करे जिससे हम सुवीर हो कर सौ वर्ष जियें। रोहिणी देवी का सामने उदय हो रहा है। वह देवों की प्रिया है और सारे विश्व को प्रमुदित करती है। उसे हविष्य देने पर प्रजापति प्रसन्न होते हैं।

प्रजापते वेतु पत्नी रोहिणी विश्वरूपा बृहती चित्रभानुः।
सा नो यज्ञस्य सुविते दधातु यथा जीवेम शरदः सुवीराः॥
रोहिणी देव्युदगात् पुरस्तात् विश्वारूपाणि प्रतिमोदमाना।
प्रजापतिं हविषा वर्धयन्ती प्रियादेवानामुपयातु यज्ञम्॥

मृगशीर्ष—सोम राजा बहुधा जनता को समृद्ध करते हुए मृगशीर्ष के साथ आ रहे हैं। यह शुभ नक्षत्र उनका प्रिय धाम और प्रियों से प्रिय है। हम सोम और मृगशीर्ष को हवि दे रहे हैं। वे दोनों हमारे बल की वृद्धि और पशु प्राणियों की रक्षा करें।

सोमो राजा मृगशीर्षेणागात्। शिवं नक्षत्रं प्रियमस्य धाम।
आप्यायमानो बहुधा जनेषु। यत्ते नक्षत्रं मृगशीर्षं प्रियं राजन् प्रियतमम्॥
तस्मै ते सोम हविषा विधेम। शन्न एधि द्विपदे चतुष्पदे।

पुनर्वसु—पाप से रहित, विश्व की भर्त्री और प्रतिष्ठा अदिति देवी हम पर प्रसन्न हों। दोनों पुनर्वसु और देवगण पुनः पुनः आवें।

पुनर्नो देव्यदितिः स्पृणोतु एषा न देव्यदितिरनर्वा विश्वस्य भर्त्री जगतः प्रतिष्ठा।
पुनर्वसू नः पुनरेतां यज्ञं देवा अभियन्तु सर्वे। हविषा वर्धयन्ती प्रियं देवानामप्येतु पाथः॥

पुष्य—बृहस्पति पुष्य के पास आया। यह देवों में श्रेष्ठ और विजयी है। हमारे लिए सब दिशाएँ अभय हों। बृहस्पति और तिष्य चारों ओर से हमारी रक्षा करें। वे हमारे शत्रुओं के बाधक हों और हमें बलपति बनावें।

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानस्तिष्यं नक्षत्रमभिसम्बभूव।
श्रेष्ठो देवानां पृतनासु जिष्णुः। दिशः सर्वा अभयं नोऽस्तु॥
तिष्यो पुरस्तादुत मध्यतो नः। बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चात्।
बाधेतां द्वेषोऽभयं कृणुतं सुवीर्यस्य पतयः स्याम॥

हस्त–सविता देव सोने के रथ पर बैठ कर इच्छापूर्वक, इष्ट फलप्रद, सौभाग्ययुत हस्त के साथ आ रहे हैं। हम उस दाता को सदा पावें, वह हमें शश्वत अमृत दे और हम दायें हाथ से लें।

आयातु देवः सविता हिरण्येन सुवृता रथेन वहन्। हस्तं सुभगं प्रयच्छन्तं पपुरिं पुण्यं।
हस्तः प्रयच्छत्वमृतं वसीयः दक्षिणेन प्रतिगृभ्णीम एनत् दातारमद्य सविता विदेय॥

चित्रा—त्वष्टा (शत्रुनाशक, तेजस्वी, दुःखहारी) देव सुन्दर जाँघों वाली सुन्दरी युवती चित्रा के साथ आ रहे हैं। वह अमृतवर्षिणी और भुवन रक्षिणी है। वह हम पर अनुग्रह करे, बहुत दे और वीर प्रजा से, गायों से तथा अश्वों से सम्पन्न बनावे।

त्वष्टा नक्षत्रमभ्येति चित्रां शुभंशसं युवतिं रोचमानाम्। निवेशयन्नमृतं भुवनानि विश्वा।
तन्नक्षत्रं भूरिमस्तु प्रजां वीरवतीं सनोतु गोभिर्नो अश्वैः संयुनक्तु॥

स्वाती—तेजस्वी, इष्टप्रद, शब्दायमान वायुदेव सारे विश्व को प्रेरणा देते हुए निष्ट्या नक्षत्र के साथ आ रहे हैं। वे बहुप्रद हों और हमें शत्रुओं तथा कष्टों से पार कर दें।

वायुर्नक्षत्रमभ्येति निष्ट्यां तिग्मशृङ्गो वृषभो रोरुवाणः, समीरयन् भुवनानि विश्वा।
तन्नो वायुर्निष्ट्या शृणोतु भूरिदाऽस्तु यथा तरेम...॥

अनुराधा—अभिजित्–पूर्वदिशा में यह अनुराधा नाम का विचित्र नक्षत्र उदित हुआ है। इसमें मित्र (सूर्य) देव अन्तरिक्ष में स्थित सुवर्ण से निर्मित देवयान पथ से आ रहे हैं। ब्रह्मा ने जिसमें सबको जीता वह अभिजित् हमें जय और श्री दे।

चित्रं नक्षत्रमुदगात् पुरस्तात् अनूराधा इति यद् वदन्ति।
तस्मिन् मित्र एति पथिभिर्देवयानैर्हिरण्ययैर्विततैरन्तरिक्षे॥
यस्मिन् ब्रह्माऽभ्यजयत् सर्व तन्नो नक्षत्रमभिजिद्विजित्य श्रियं दधातु॥

श्रवण—यह अमृत की रक्षिका और विष्णु की पत्नी है। इसमें पुण्य वाणी सुनाई देती है और यह सन्ताप को हरती है। हम इसका यजन करते हैं। बहुप्रशंसित विष्णु तीन पगों में तीन भुवनों को नाप लेते हैं। वे श्रवण में स्थित हैं। श्रवण यजमान को पुण्यात्मा बना देती है।

शृण्वन्ति श्रोणाममृतस्य गोपां पुण्यामस्या उपशृणोमि वाचम्।
महीं देवीं विष्णुपत्नी मजूर्याम्। प्रतीचीमेनां हविषा यजामः॥
त्रेधा विष्णुरुरुगायो विचक्रमे दिवं पृथिवीमन्तरिक्षम्।
तच्छ्रोणेति श्रव इच्छमानापुण्यं श्लोकं यजमानाय कृण्वती॥

धनिष्ठा—आठों वसुदेव सौम्य हैं और धनिष्ठा की चार देवियाँ (तारे) अजरा हैं। हम इस पुण्यनक्षत्र को पावें। इसकी कृपा से हमें संवत्सर का अमृत प्राप्त हो, यह दक्षिण से आवे और हमारे शत्रुओं तथा पापों को समाप्त करे।

अष्टो देवा वसवः सोम्यासः चतस्त्रो देवीरजनाः श्रविष्ठाः।
संवत्सरीणाममृतं पान्तु। यज्ञं नः पान्तु दक्षिणतोऽभियन्तु।
पुण्यं नक्षत्रमभिसंविशाम मा नो अरातिरघशंसागन्॥

शतभिषक्—वरुण क्षत्रराज हैं और शतभिषक् उनका निवास है। वे दोनों सैकड़ों भैषज्य धारण करते हैं और सज्जनों की दीर्घायु देते हैं।

क्षत्रस्य राजा वरुणो वसिष्ठः शतभिषक्।
तौ देवेभ्यः कृणुतो दीर्घमायुः शतं सहस्त्रा भेषजानि धत्तः॥

रेवती—पूषा देव रेवती के साथ आ रहे हैं। वे दोनों पुष्टिपति, पशुपति और अन्नजन्य बल के पति हैं। वे सुमार्ग से आकर हमारी हवि लें और हमारे अन्न, गाय, अश्व आदि की रक्षा करें।

पूषा रेवत्यन्वेति पन्थाम् पुष्टिपती पशूपा वाजवस्त्यौ।
सुगैर्नो यानैरुपयातां, रक्षतु रेवती गावोश्वान् अन्वेतु पूषा....॥

इस प्रकार वेद और ब्राह्मण ग्रन्थ सब नक्षत्रों को शुभ मानते हैं पर ज्योतिष में लगभग आधे स्वभावतः अशुभ हैं और जो शुभ हैं वे भी कुछ वारों और तिथियों से मिलने पर भीषण हो जाते हैं। अशुभ वारों का ही नहीं, शुभ वारों का योग भी उन्हें दारुण बना देता है। गुरुवार शुभ है और फाल्गुनी शुभ है पर दोनों के योग से दग्ध योग बनता है। शुक्रवार और रोहिणी शुभ हैं पर उनके योग से भीषण यमघण्ट बन जाता है। आनन्दादि योग भी वारों और नक्षत्रों के योग से बने हैं जबकि वारों का आकाश से कोई सम्बन्ध नहीं है। १, २, ३, ७, ११ और १३ तिथियाँ शुभ हैं तथा उत्तराषाढ़ा, अनुराधा, उत्तरा, हस्त, रोहिणी और स्वाती नक्षत्र शुभ हैं पर शुभ शुभ के योग से वह मृत्यु योग बन जाता है जो कार्यारंभ करने वालों को छः मास के भीतर मार डालता है पर जो काम चालू हैं उनमें विघ्न नहीं डालता।

एषु कार्य कृतं चेत् स्यात् षण्मासांन्मरणं ध्रुवम्।

इसी प्रकार प्रत्येक मास में कुछ तिथि नक्षत्र शून्य हो जाते हैं। उनमें कार्यारंभ करने पर वंश और धन का ही नहीं, सर्वस्व का विनाश हो जाता है। वसिष्ठ ने लिखा है—

तिथयो मासशून्याख्या वंशवित्तविनाशदाः।
आसु श्राद्धं प्रकुर्वीत नैव मंगलमाचरेत्।
एषु कर्म कृतं सर्वं धनैः सह विनश्यति॥

दग्धयोग	रवि भरणी	सोम चित्रा	भौम उषा	बुध धनिष्ठा	गुरु उफा	शुक्र ज्येष्ठा	शनि रेवती
यमघण्ट	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृतिका	रोहिणी	हस्त
तिथि मृत्युयोग	१ उषा	२ अनुराधा	३ उत्तरा	५ मघा	६,११ रोहिणी	७ हस्त	१३ स्वाती
शून्य नक्षत्र	चैत्र अश्विनी	वैशाख चित्रा	ज्येष्ठ पुष्य	आषाढ़ पूषा	श्रावण उषा	भाद्र शत	पौष अश्विनी

	रोहिणी	स्वाती	उषा	धनिष्ठा	श्रवण	रेवती	हस्त
शून्य राशि	११	१२	२	३	१	६	४

आश्चर्य है, नक्षत्रों से ही राशियाँ बनती हैं पर यहाँ शून्य नक्षत्र और शून्य राशियों से कोई सम्बन्ध नहीं है। दोनों को मानने पर मास का विस्तृत भाग शून्य हो जायेगा। यहाँ ही नहीं, ज्योतिष में सर्वत्र नक्षत्रों और राशियों के फलों में घोर मतभेद है। आश्लेषा नक्षत्र बहुत अशुभ है। उसमें उत्पन्न बालक चोर, जुआरी और मूर्ख आदि होता है पर आश्लेषा की कर्क राशि अति शुभ है। उसमें चन्द्रमा स्वक्षेत्रीय रहता है और शुभफल देता है। कृत्तिका नक्षत्र अति अशुभ है। उसमें बच्चा पैदा होने पर और कार्यारंभ करने पर घर में आग लग जाती है किन्तु उसकी राशि वृष अति शुभ है। उसका चन्द्रमा उच्च और शुभ कहा जाता है। हर ग्रह के उच्च और स्वक्षेत्र में यह दृश्य विद्यमान् है। भरणी अशुभ है पर उसका सूर्य उच्च है। मकर का गुरु नीच है पर उसके तीनों नक्षत्र शुभ हैं। आर्द्रा, आश्लेषा, विशाखा, ज्येष्ठा और मूल आदि नक्षत्र अशुभ हैं पर उनकी मिथुन, कर्क, तुला, वृश्चिक और धन राशियों के फल शुभ हैं। नक्षत्रों के वर्ण, योनि और गण आदि में यही मतभेद है तो फल का निर्णय कैसे होगा!

जन्मकालीन नक्षत्र फल

१. **अश्विनी**—सत्यवादी, विनीत, सुखी, धनी, परोपकारी, सुपत्नीक।
२. **भरणी**—निन्दित, दुष्ट, जलभीरु, चंचल, घुमक्कड़, विनोदी।
३. **कृत्तिका**—भुक्खड़, मिथ्यावादी, कृतघ्न, दरिद्र, पापी, निर्दय।
४. **रोहिणी**—सुन्दर, सुशील, वक्ता, कृषिनिपुण, धर्मकर्मकुशल।
५. **मृगशीर्ष**—सत्संगी, विनम्र, सुखी, राजमान्य, धर्मात्मा, शस्त्रज्ञ।
६. **आर्द्रा**—बहुभक्षी, कृतघ्न, कुरूप, स्वार्थी, दयाहीन, दुराचारी।
७. **पुनर्वसु**—बहुमित्र, शास्त्रज्ञ, उदार, धनी, प्रतापी, क्षेत्रवान्, मेधावी।
८. **पुष्य**—प्रसन्न, विनीत, यशस्वी, धर्मात्मा, धनी, सुवाहनवान्।
९. **आश्लेषा**—दुष्ट, घुमक्कड़, कामुक, अपव्यायी, दूसरों को कष्टप्रद।
१०. **मघा**—विजयी, निष्ठुर, कटुभाषी, विद्यावान्, मेधावी, वीर।
११. **पूफा**—शूर, कामी, शिरावान्, अहंकारी, धूर्त, चतुर, त्यागी।
१२. **उफा**—दाता, दयालु, सुशील, यशस्वी, मन्त्री, धीर, गुणवान्।
१३. **हस्त**—दाता, यशस्वी, मनस्वी, धनी, धर्मात्मा, सर्वसुखसम्पन्न।
१४. **चित्रा**—विजयी, नीतिज्ञ, शास्त्रवेत्ता, वस्त्रप्रिय, मेधावी।
१५. **स्वाती**—राजमान्य, सुन्दर, स्त्रीभक्त, प्रसन्न, तेजस्वी, धनवान्।
१६. **विशाखा**—दुराचारी, बहुशत्रु, धातुवेत्ता, याजक।
१७. **अनुराधा**—सुरूप, कलावित्, विजयी, धनी प्रसन्न।
१८. **ज्येष्ठा**—सुरूप, यशस्वी, प्रतिष्ठित, प्रतापी, धनी, लोकमान्य।
१९. **मूल**—पितृमातृधनहन्ता, विजयी, हिंसक, बली, सुखी, धनी।
२०. **पूषा**—जलप्रिय, सुखी, सुशील, वक्ता, अतिधनी, विलासी।
२१. **उषा**—दाता, दयालु, विनीत, सुखी, विजयी, धनी, सदाचारी।

२२. अभिजित्—सुरूप, कुलदीपक, सज्जन, यशस्वी, स्पष्टवक्ता।
२३. श्रवण—शास्त्रज्ञ, विजयी, बहुपुत्र, धार्मिक, सज्जन, लोकमान्य।
२४. धनिष्ठा—सदाचारी दयालु, धनी, बली, सुखी, प्रतिष्ठावान्।
२५. शतभिषा—शीतभीरु, साहसी, निष्ठुर, चतुर, विजयी।
२६. पूभा—जितेन्द्रिय, बहुकलाविद्, मनीषी, विजयी।
२७. उभा—कुलश्रेष्ठ, धनी, उदार, शुभकर्मकारी।
२८. रेवती—सुशील, धनी, जितेन्द्रिय, मेधावी।

जन्मकालीन राशिफल

१. मेष—धनिक, परोपकारी, सुशील, नृपवल्लभ, गुणी, अल्पाहारी, देवद्विजभक्त, दाता, शूर, सेवकप्रिय, कामी, शाकाहारी, चपल, विदेशवासी, कुशांग, शीघ्रगामी, वातप्रकृति, द्विपत्नीक....।

२. वृष—सत्यभाषी, धनी, वक्ता, नारीभक्त, परोपकारी, दीर्घायु, पितृमातृगुरुभक्त, नृपवल्लभ, सभाचतुर, शीघ्र सन्तुष्ट, शान्त, सहिष्णु, मेधावी, अल्पकेश, शूर....।

३. मिथुन—चतुर मुखिया, मेधावी, सज्जन, मिष्ठान्नप्रिय, गुरुभक्त, अल्पापत्य, गुणी, दानी, सुखी, सत्यप्रिय सुन्दर, धर्मप्रिय, संगीतप्रिय, शास्त्रज्ञ, द्विपत्नीक, कामी.....।

४. कर्क—परोपकारी, सर्वसंग्रहतत्पर, पुत्रवान्, साधु, पितृमातृभक्त, ज्योतिषी, प्रियंवद, बहुमित्र, बहुपत्नीक स्त्रीजित्....।

५. सिंह—श्रीमान्, विद्यावान्, शूर, विदेशवासी, पिंगलाक्ष, क्रोधी, अल्पात्मज, सुशील, विजयी, रणाप्रिय, कलाज्ञ, सत्यवादी।

६. कन्या—धनी, बहुभृत्यवान्, प्रियभाषी, गुरुभक्त, देवद्विजभक्त, लोकप्रिय, विद्यावान्, कलावान्, बहुपुत्र....।

७. तुला—सर्वमान्य, धर्मात्मा, संग्रहतत्पर, अल्पापत्य, राजमान्य, पत्नीभक्त, द्विपत्नीक....।

८. वृश्चिक—क्रोधी, जनसन्तापप्रद, कलहप्रिय, विश्वासघाती, खल, मित्रद्रोही, असन्तोषी, पराक्रमी, बहुभृत्यवान द्विपत्नीक.....।

९. धनु—मेधावी, धर्मात्मा, राजमान्य, लोकमान्य वक्ता, कवि....।

१०. मकर—धीर, चतुर, दयालु, सत्यवादी, राजमान्य, सुन्दर.....।

११. कुंभ—दाता, प्रियभाषी, क्षीणकाय, मिष्टभोजी, धार्मिक, द्विपत्नीक....।

१२. मीन—धनी, विनीत, प्रसन्न, सुन्दर, सुखी, उदार....।

चोरी की वस्तु कहाँ

अन्धाक्ष पूर्व	मन्दाक्ष दक्षिण	मध्याक्ष पश्चिम	स्वक्ष उत्तर
४	५	६	७
८	९	१०	११

१२	१३	१४	१५
१६	१७	१८	१९
२०	२१	२२	२३
२४	२५	२६	२७
२८	१	२	३

ब्रह्मा ने नक्षत्रों के आधार पर यह ध्रुव विधान बना दिया है कि चुराई हुई वस्तु किस दिशा में गयी है और मिलेगी कि नहीं। पता नहीं, इस चक्र का आरम्भ रोहिणी नक्षत्र से क्यों किया गया है। चूँकि दिशाएँ चार हैं इसलिए नक्षत्रों को चार भागों में बाँटा गया है। यद्यपि नक्षत्र २७ ही हैं, पंचांगों में २७ लिखे जाते हैं, एक नक्षत्र का मान वृत्त का २७ वाँ भाग (१३। २०) होता है फिर भी कोष्टकों और दिशाओं की पूर्ति के लिए २७ मान लिये गये हैं। उत्तराषाढ़ा और श्रवण की कुछ घटियों से अभिजित् बनता है, उसकी पृथक् सत्ता नहीं है फिर भी उसे यहाँ सबके समान स्थान मिला है। रोहिणी में चोरी गयी वस्तु पूर्व दिशा में जायेगी। न ईशान कोण में, न अग्नि कोण में और वह झट मिल जायेगी, यह ब्रह्मविधान है। मृगशीर्ष में चुराने वाला चोर सामग्री लेकर केवल दक्षिण दिशा में जायेगा, दूर जायेगा किन्तु प्रयत्न करने पर सामग्री मिल जायेगी। आर्द्रा में चुराई वस्तु पश्चिम में जायेगी, दूर जायेगी, पता लग जायेगा पर मिलेगी नहीं। पुनर्वसु में गयी वस्तु उत्तर के अतिरिक्त अन्य दिशा में नहीं जायेगी और उसका पता नहीं लगेगा। चोरों को कदाचित् ज्ञात रहता है कि इस नक्षत्र में वस्तु चुराई है तो इस दिशा में और इतनी दूर जाना चाहिए। प्रथम विभाग के सात नक्षत्र अन्धे हैं, दूसरे भाग वालों को थोड़ा कम दिखाई देता है और चतुर्थ भाग वाले नक्षत्रों के नेत्र ठीक हैं। इसीलिए वस्तु का पता नहीं लगता। आप को चोरी के दिन का पता नहीं है तो ज्योतिषी प्रश्नकाल के नक्षत्र से इसी प्रकार सब कुछ बता देगा। इस विधान में कितनी सचाई है इसे इसके व्यवसायी जानते हैं और हताश हैं।

ज्येष्ठा, मूल, आर्द्रा, आश्लेषा, तीनों पूर्वा, भरणी, मघा, विशाखा, कृत्तिका तीनों उत्तरा और रोहिणी नक्षत्रों में तथा भद्रा आदि कुयोगों में जो धन दिया जाता है, धरोहर के रूप में रखा जाता है, खो जाता है या किसी काम में लगाया जाता है वह फिर मिलता नहीं।

हवन कब करें

हवन करने के पहले पता लगा लो कि इस समय पृथ्वी पर अग्नि है कि नहीं क्योंकि वह तीनों लोकों में घूमा करता है। जिस समय आकाश और पाताल में रहता है उस समय पृथ्वी पर नहीं। तब भोजन बनना बन्द हो जाता है, टाटा का यन्त्रालय बन्द हो जाता है और यज्ञ कुण्डों से अग्नि भाग कर न जाने कहाँ चला जाता है। तब सलाई इसलिए नहीं जलती कि पृथ्वी पर अग्नि नहीं है।

सैका तिथिर्वारयुता कृताप्ता शेषे गुणेभ्रे भुविवह्निवासः।
सौख्याय होमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च॥

अर्थ—तिथि में एक जोड़ो, वार जोड़ो, चार का भाग दो, शेष एक या दो बचें तो समझ लो कि अग्नि आकाश और पाताल में है। उस समय हवन करने पर मर जाओगे और धन का नाश हो जायेगा। शेष यदि शून्य हैं तो अग्नि पृथ्वी लोक में है और हवन करने पर सुखी हो जाओगे। तुम्हें शंका होगी कि अग्नि नहीं था तो आहुति जली कैसे, वह हमें दिखाई क्यों देता है, वारों का आकाश से क्या नाता है, याज्ञिक प्रतिदिन हवन क्यों करते हैं, विवाह उपनयन कथा आदि के हवनों में यह चक्र क्यों नहीं देखा जाता तथा वहाँ प्राण और धन का नाश क्यों नहीं होता। किन्तु शास्त्र में शंका करना नास्तिकता है।

सूर्य जिस नक्षत्र में स्थित है वहाँ से आरम्भ कर तीन–तीन नक्षत्रों में नवग्रह बारी–बारी से बैठे रहते हैं और देवों की दी हुई आहुतियाँ स्वयं निगल जाते हैं। शुभग्रह के खुले मुख में पहुँची आहुति शुभ फल देती है और पाप ग्रह के मुख में पहुँची देश का सर्वनाश कर देती है यह भार्गव आदि मुनियों का कथन है। भूल से यदि आहुति पापग्रह के मुख में चली गयी है तो पुनः शान्तियज्ञ करो और कुटुम्बी ब्राह्मण को दक्षिणा के साथ सवत्सा, अलंकृता गाय दो। तब प्राण और धन का नाश नहीं होगा।

सूर्य	सुख–धन नाश
बुध	बुद्धि–धन वृद्धि
शुक्र	धन–स्वर्ग लाभ
शनि	राज्य–धन नाश
चन्द्र	कृषिनाश
भौम	अग्नि से राष्ट्रनाश
गुरु	इष्ट राज्य लाभ
राहु	सर्वनाश
केतु	दरिद्रता मरण

सूर्यभात् त्रित्रिभे चान्द्रे सूर्यविच्छुक्रपंगवः। चन्द्रारेज्यागुशिखिनो नेष्टा होमाहुतिः खले॥
क्रूर ग्रहमुखे चैव संजाते हवने शुभे। शान्तिं विधाय गां दद्यात् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने॥ (मुहूर्तचिन्तामणि २। ३५)

यहाँ लिखा ग्रहक्रम न कक्षाओं के अनुसार है, न वारों के अनुसार। गृहप्रवेश के मुहूर्त वर्ष में कम से कम मिलते हैं और जो मिलते हैं उन्हें कुछ पण्डित इसलिए काट देते हैं कि या तो उस समय अग्निदेव पृथ्वी पर नहीं रहते अथवा आहुति पाप ग्रह के मुख में जा रही है। कुछ ग्रन्थों में लिखा है कि यह चक्र दुर्गाहोम, विवाह, गृहप्रवेश, उपनयन, विष्णु–प्रतिष्ठा, शिलान्यास आदि कुछ कर्मों में नहीं देखना चाहिए। सत्य यह है कि अग्नि एक सर्वव्यापी तत्त्व है और सर्वदा सर्वत्र रहता है।

हरि, अग्नि, पृथ्वी और जल के शयन

हरिशयन की कथा पीछे लिखी है। हरि की पत्नी का वैदिक नाम श्रोणा है और ज्योतिष में उसे श्रवण कहते हैं। श्रावणमास में सूर्यास्त होते ही पूर्वक्षितिज में श्रवण दिखाई देने लगता है, रात भर दिखाई देता है और पूर्णिमा को चन्द्रमाश्रवण का योग हो जाता है। इसी से इसे श्रावणमास कहते हैं। हरि को श्रोणा और श्रावण अति प्रिय हैं। हरि को केशव और नारायण भी कहते हैं। इसका कारण यह है कि वे क (जल) में शयन करते हैं और नार (जल) ही उनका अयन है। इसी से क्षीरसागरशायी कहे जाते हैं। ज्योतिष कहता है कि हरि अपनी धर्मपत्नी श्रोणा के साथ चार मास सोये रहते रहते हैं इसलिए हरिशयन के चार मासों में कोई शुभ कर्म मत करो किन्तु हमारे एक महाकवि का कथन है कि पलंग पर पत्नी के रहने पर मुझे पता ही नहीं लगता कि रात्रि के चार प्रहर कैसे बीत गये इसलिए श्रोणापति हरि का चार मास लगातार सोते रहना असंभव है। एक अन्य कवि का कथन है कि खटमल के भय से कमला कमल पर सोती हैं, शंकर हिमालय पर चले गये हैं और हरि क्षीरसागर में सो रहे हैं। तीसरे कवि का कथन है कि इस संसार का सार केवल ससुराल है इसलिए हर हिमालय पर और हरि क्षीरसागर में सो रहे हैं। चौथे कवि का कथन है कि विष्णु की पत्नी लक्ष्मी एक स्थान पर नहीं रहती। जो चार मास लगातार सोता है वह नृसिंह ही क्यों न हो, उसकी पत्नी तो चंचला हो ही जायेगी।

अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्॥ कमले कमला शेते हरः शेते हिमालये।
क्षीराब्धौ च हरिः शेते मन्ये मत्कुणशंकया॥ असारे खलु संसारे सारं श्वशुरमन्दिरम्।
ततः क्षीरार्णवे विष्णुर्हरः शेते हिमालये॥ तस्य कथं न चला स्यात्पत्नी विष्णोर्नृ सिंहकस्यापि।
मासांश्चतुरः शेते क्षीराब्धौ शेषपृष्ठे यः॥

इसलिए शुभ कर्मों में हरिशयन के चार मास निषिद्ध हैं। अग्निशयन हर मास में लगभग १५–२० दिन रहता है और

ज्योतिष का कथन है कि चन्द्रमा यदि सूर्य नक्षत्र से ५, ७, ९, १२, १६, २६ नक्षत्र दूर हो तो गृह और जलाशय आदि का आरम्भ मत करो क्योंकि इन समयों में पृथ्वी सोती है।

प्रभाकरात् पंचनगांकसूर्यनवेन्दुषड्विंशमितेषु भेषु।
शेते मही नैव गृहं विधेयं तडागवापी खननं न शस्तम्॥

अहिबलचक्र, धराचक्र आदि ग्रन्थों से भूमि के भीतर स्थित सोना, चाँदी, हीरा आदि रत्न, मिट्टी का तेल, कोयला आदि की खान, हड्डी, हण्डा और पानी आदि को ज्योतिषी देख लेता है। शुभ मुहूर्त में खोदने पर पानी मिलता है और अशुभ मुहूर्त में खोदने पर भाग जाता है। २७ दिनों में पानी की ९ स्थितियाँ हो जाती हैं। आज मीठा है, कल खारा है और परसों है ही नहीं। कूपजल बताने वाले सूर्यचक्र और रोहिणीचक्र, दो चक्र हैं पर दोनों में विरोध है। एक से जलाभाव आता है तो दूसरे से बहुत जल। वापीतड़ाग के चक्र इससे भिन्न हैं। सूर्य नक्षत्र से चन्द्रनक्षत्र की संख्या के आधार पर शुभाशुभ फल बताने वाले वृषवास्तु, कलशवास्तु, राहु, हल, काष्ठसंचय आदि नामों वाले अनेक चक्र हैं। उनमें कितनी सचाई है, इसे गाँवों के ज्योतिषी भली भाँति जानते हैं। काष्ठचक्र में लिखा है कि सूर्य-चन्द्रमा के नक्षत्रों में छः का अन्तर है तो लकड़ी गोहरी घर में रखो। तब उससे सरस पाक बनेगा किन्तु बाद के चार दिनों में रखोगे तो वे सब घर के किसी व्यक्ति का शव जलाने में काम आयेंगे। ११-१२ में सर्प-भय होगा और १२-२४ तक रखे ईधन से काढ़ा बनाना पड़ेगा।

शीघ्रस्वादु ३
निर्जल ३
स्वादुजल ३
निर्जल ३
स्वादुजल ३
खारा पानी ३
निर्जल ३
मीठा जल ३
खारा जल ३

सरसपाक ६
शवदाह ४
सर्प भय २
मित्राप्ति ४
रोगभय ४
काढ़ा ४
सुख ४

ज्वर का फल और शन्ति

वसिष्ठ मुनि कहते हैं कि स्वाती, ज्येष्ठा तीन पूर्वा, आर्द्रा और आश्लेषा में ज्वर आया तो देवों के वैद्य धन्वतरि भी मरने से नहीं बचा सकते। आर्द्रा आदि कुछ नक्षत्रों में किसी भी रोग का आरम्भ हो जाने पर शीघ्रातिशीघ्र मरना निश्चित है। कुछ नक्षत्रों के दिन निश्चित हैं और त्रिपुष्करादि योगों में एक के मरने पर कई का मरना ध्रुव है। भरणी, आश्लेषा, मूल, विशाखा, कृत्तिका और आर्द्रा में यदि किसी को साँप ने काट लिया तो उसके बचने की आशा छोड़ दो क्योंकि ये पाप नक्षत्र हैं। हाँ, शान्तियाग से सबको बचाया जा सकता है।

स्याद्रक्षितुं देवचिकित्सकोपि क्षितावशक्तः खलु रोगिणं च।
सुरक्षितो विष्णुरथेन सोपि प्राप्नोति कालस्य मुखं मनुष्यः॥
तदा नूनं भवेन्मृत्युः सुधासंसिक्तदेहिनः॥
सहजमरणयोगो रोगिणां कालहेतुः॥

वसिष्ठ ने लिखा है कि जिस नक्षत्र में रोग हुआ है उसके देवता की सोने की मूर्ति बनाओ, वस्त्र आदि से उसकी विधिवत् पूजा करो और दक्षिणा सहित सब ब्राह्मण को दे दो तो रोगी स्वस्थ हो जायेगा पर दक्षिणा अतुल हो। (२।४५)

ऋक्षेशरूपं कनकेन कृत्वा वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलधूपदीपैः।
पूजां विधायामयनाशनाय द्विजाय दद्यादतुलां शिवाय॥

कुछ नक्षत्रों के फल दिन	
भरणी	११
मघा	२०
पूफा	मृत्यु
हस्त	१५
स्वाती	मृत्यु
विशाखा	१५
अनु०	स्थिरता
उषा	एक मास
रेवती	स्थिर

पञ्चक मरण और शान्ति

दक्षिणायन में मरने वाले नरकगामी होते हैं। धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों में मरने वालों की अधोगति होती है और सन्तान के ऊपर विपत्तियाँ आती हैं। ज्योतिष और धर्मशास्त्र का आदेश है कि पंचक में कोई मरा तो उसका दाह मत करो, और सूतक के बाद शन्तियज्ञ करो। यह यज्ञ मलमास, खलमास और शुक्रास्त आदि दुष्ट समयों में न हो।

कुंभमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते।
न तस्योर्ध्वगतिर्दृष्टा सन्ततौ न शुभं भवेत्॥
न तस्य दाहः कर्तव्यो विनाशः स्वेषु जन्तुषु।
पंचकानन्तरं तस्य दाहः कार्यो विधानतः॥
अथवा तद्दिने कार्यो दाहस्तु विधिपूर्वकम्।
सूतकान्ते तदा पुत्रैः कार्यं शन्तिकपौष्टिकम्॥
न कुर्यात् गुरुशुक्रास्ते पौषे स्वापे मलिम्लुचे।
विलम्बितं प्रेतकार्यं न कुर्यात् दक्षिणायने॥

पंचकशान्ति का विधान लम्बा है। उसमें ब्राह्मण को शय्या, आसन, छाता, पात्र और दक्षिणा आदि देना पड़ता है। त्रिपुष्कर योग में तीन गाय या तीन गायों का मूल्य देने का आदेश है।

दद्यात्तद्दोषनाशाय गोत्रयं मूल्यमेव वा।

नक्षत्रों की तारासंख्या का प्रयोजन

कुछ लोगों को विश्वास है कि मेषादि राशियों के जैसे नाम हैं वैसी ही आकृतियाँ हैं और वैसे ही गुण हैं पर यह अन्धविश्वास है। आकाश में ये आकृतियाँ कहीं दिखाई नहीं देती हैं और जिन तारों से मेष बनता है उनसे वृष और सिंह भी बन सकते हैं। नक्षत्रों की आकृतियों की भी यही स्थिति है। अश्विनी न अश्वमुख सदृश है न पुनर्वसु गृह सदृश है। तारों की संख्या का प्रयोजन यह बताया गया है कि जिस नक्षत्र में विवाह हुआ है उसमें जितने तारे हैं उतने वर्षों के बाद शुभाशुभ फल मिलेगा पर यह कथन अन्य कथनों के विरुद्ध पड़ता है क्योंकि अनेक बार वर्ष या छः मास के भीतर ही फल प्राप्ति का वर्णन है। तारे कभी वर्ष बताते हैं तो कभी दिन। आचार्य वराहमिहिर ने लिखा है कि रोहिणी में पाँच तारे हैं इसलिए उसमें विवाह का शुभ फल पाँच वर्ष बाद मिलेगा पर ज्वर आया तो पाँच दिनों में चला जायेगा।

नक्षत्र	आकृति
अश्विनी	अश्व
पुनर्वसु	गृह
पुष्य	बाण
आश्लेषा	चक्र
मघा	भवन
विशाखा	तोरण
शताभिषा	वृत्त

नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकामितैः सदसत्।
दिवसैर्ज्वरस्य नाशो व्याधिश्चान्यस्य वै वाच्यः॥

गोविन्दाचार्य ने लिखा है कि ज्वरादि रोगों की जो दिवस संख्याएँ लिखी हैं उनमें मुनियों में मतभेद है पर वस्तुतः मतभेद नहीं है। वह फल कहीं नक्षत्र के किसी एक चरण का है और कहीं पूरे नक्षत्र का है। चित्रा में विवाह वर्जित है और उसमें एक तारा है अतः उसमें किसी ने विवाह कर लिया तो उसकी पत्नी कामातुर होकर, लोकलाज छोड़कर एक वर्ष के भीतर वेश्या हो जायेगी और मर जायेगी।

अब्दात् प्राणवियोगं त्वाष्ट्रे प्राप्नोति भूतसंसर्गात्।

त्यक्त्वा स्वज्ञातिकुलं कामपरा याति वेश्यात्वम्॥

इसी प्रकार आचार्य वराहमिहिर का कथन है कि ज्येष्ठा, विवाह में वर्जित है और उसमें तीन तारे हैं अत: उसमें विवाह का दुष्फल तीन वर्षों में मिलेगा। शतभिषा में सौ तारे हैं इसलिए उसका फल सौ दिनों में मिलेगा। यहाँ वर्ष दिन हो गया। नक्षत्रों के तारों की संख्या द्वारा शुभाशुभ का निर्णय एक हास्यास्पद कल्पना है। वस्तुत: शततारका में सौ तारे नहीं हैं। उसका पुराना नाम शतभिषक् है। यदि सौ मान लें तो भी प्रश्न उठता है कि क्या उसका फल सौ वर्षों में होगा? आर्द्रा, चित्रा, स्वाती और अभिजित् अति तेजस्वी हैं पर उनमें एक-एक ही तारे हैं। रेवती में ३२ और मूल में ११ तारे हैं, पुष्य में तीन बहुत छोटे तारे हैं, तीनों उत्तराओं में दो-दो ही तारे हैं तो क्या मूल-रेवती का प्रभाव इनसे अधिक है? सत्य यह है कि ठीक पूर्व में उदित होने से न कोई नक्षत्र श्रेष्ठ होता है, न वर्ष का प्रथम नक्षत्र होने से शुभ होता है, न वर्ष का अन्तिम नक्षत्र होने से अशुभ होता है, न तारासंख्या का कोई महत्त्व है, न कोई नक्षत्र अशुभ है। आकाश में स्थित तारे कई सौ वर्षों में गिने नहीं जा सकते। छ: सहस्र तो दूरबीन विना केवल नेत्र से दिखाई देते हैं।

धनिष्ठापुंज में नन्हें=नन्हें पाँच तारे हैं। उनके आधार पर धनिष्ठापंचक की रचना हुई और कहा गया कि धनिष्ठा से रेवती तक पाँच नक्षत्रों में मरने वाला निश्चित रूप से नरकगामी होता है, वह उत्तरायण में, काशी में और समाधि अवस्था में ही क्यों न मरे। वह महान् योगी, राष्ट्रसेवी, परोपकारी और पुण्यात्मा ही क्यों न हो। उसको नरक से बचाने के लिए धनिष्ठापंचक की ही भाँति शान्ति यज्ञ की रचना हुई है। शुभ नक्षत्र भी प्रत्येक कर्म में गृहीत नहीं हैं। हर कर्म के नक्षत्र भिन्न-भिन्न हैं। वरकन्या समानशील ही क्यों न हों, उनका विवाह तभी होगा जब नक्षत्रों के आधार पर बनी गणना बैठेगी। आप के गृह की लम्बाई चौड़ाई और ऊँचाई वही रहेगी जो नक्षत्र के अनुकूल होगी। पंचशलाका और सप्त शलाका चक्रों में सात-सात नक्षत्र चारों दिशाओं में बाँट दिये गये हैं और उनके अनेक फल लिखे हैं। पूर्व दिशा का स्वामी इन्द्र है और इन्द्र का नक्षत्र ज्येष्ठा है पर वह दिक्शूल है। लिखा है कि यदि जीवित रहना चाहते हो तो दिक्शूल के वार और नक्षत्रादि में यात्रा न करो जबकि विश्व के करोड़ों वाहनों में प्रतिदिन करोड़ों लोग यात्रा कर रहे हैं। यदि दिक्शूल सत्य होते तो सारी गाड़ियाँ उलट जाती किन्तु दिक्शूल की शान्तियाँ लिखी गयी हैं। नक्षत्रों के विधान बहुत लम्बे हैं। उनकी कुछ कथाएँ आगे यथास्थान पढ़ें।

वेदों का सुदिन शब्द

सुदिन के विषय में पीछे लिखा है। श्री शंकर बालकृष्ण जी दीक्षित का कथन है कि वेद में जो सुदिनादि शब्द आये हैं उनसे अनुमान होता है कि कुछ थोड़े से कालों में कुदिन की भावना भी रही होगी पर पता नहीं चलता, इसका आधार क्या था। मैं देखता हूँ कि वेदों में सैकड़ों मन्त्रों में यह प्रार्थना है कि हमारे सारे दिन सुदिन हों, प्रात: काल, मध्याह्न, सायंकाल और रातें शुभ हों, हमारे आगे-पीछे, दायें-बायें भद्राएँ रहें, हमारे लिए इन्द्रादि देव, आकाश, पृथ्वी वनस्पतियाँ, ग्रह, तारे, नक्षत्र आदि शान्तिप्रद और शं (शुभ) हों, हमें सब लोग मित्र की दृष्टि से देखें और हम सबको मित्र समझें। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि अग्रिम दिन, सब मनुष्य, देव और दिशाएँ अशुभ हैं बल्कि यह भाव है कि कल कोई दुर्घटना न घटे और हमारे सारे दिन सुदिन हों। कुछ मन्त्र ये हैं—

अहानि शं भवन्तु नः शं रात्रीः प्रतिधीयताम्।
शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः॥
द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्तिः।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥
यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
इमां मेऽग्ने समिधं जुषस्व सुदिनत्वे॥

ऋ० १०।७०।१ सुदिनत्वे अहनां। ऋ० ७।८८।४ सुदिना भवन्ति
ऋ० ७।११।२ सुदिनत्वअहनां २।२१।६, ३।८।५, ३।२३।४ (ऋग्वेद)।

सायणभष्य—हे अश्विनी! उस रथ से आओ जिसके योग से दिन सुदिन हो जाते हैं। हे अग्ने! उज्ज्वल होकर दिनों को सुदिन बनाओ॥ वरुण ने वसिष्ठ के दिनों को सुदिन बनाया। अग्नि की प्रार्थना से दिन सुदिन हो जाते हैं।

शं नः सोमो भवतु। शं नः सूर्य उरुचक्षाः। शं नः पर्वताः
सिन्धव आपः। शमु सन्तु गावः शं सरस्वती। अभयं नः
करत्यन्तरिक्षं अभयं मित्रादमित्रात् अभयं नक्तमभयं दिवा नः॥
चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामिनाकम्॥ १॥
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे॥ २॥
पुण्यं पूर्वाफल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवास्वाति सुखो में अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टं मूलम्॥ ३॥
अन्नं पूर्वा रासतां में अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आवहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्॥ ४॥
आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आवहन्तु ॥ ५॥ अथर्ववेद १६।७
यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयँश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु॥ १॥
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्रपद्ये क्षेमं प्रपद्ये नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु॥ २॥
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिव सूमृगं सुशकुनं मे अस्तु॥ ३॥ (अथर्व १६।८)

अर्थ—हमारे लिए सोम, सूर्य, पर्वत, सागर, गायें, सरस्वती शुभ हों। हमें मित्र, अमित्र, दिन, रात, नक्षत्र, ग्रह, किसी से भय न हो। आकाश में टेढ़ी-मेढ़ी गति से और वेग से चलने वाले ये चित्र विचित्र नक्षत्र बड़े सुन्दर हैं। मैं सुवेग, सुवाणी और सुमति चाहता हूँ, इसलिए इन नाकवासियों की सुवाणी से पूजा करता हूँ। हे अग्ने! हमारे लिए कृत्तिका, रोहिणी, मृग और आर्द्रा सुहव, भद्र और कल्याणकारी हों। पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा और मघा प्रकाशप्रद, सुचेष्ट, अनुकूल और सुमार्गद हों। फाल्गुनी, हस्त, चित्रा और स्वाती पुण्य, सुखद, स्वस्तिप्रद और शिव हों। विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल सुखद, सिद्धिप्रद और अहानिप्रद हों। पूर्वा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित् और श्रवण अन्न, पराक्रम और पुष्टि दें। शतभिषक्, प्रोष्ठपदा, रेवती और भरणी हमें बड़ाई, सुख, ऐश्वर्य और धन दें। ये अट्ठाईस नक्षत्र हमारे कल्याणकारक और योगक्षेमप्रद हों। अहोरात्रों को नमस्कार है। हे परमात्मा! हमारे सारे प्रभात, सायंकाल, दिन, रात और शकुन सु (शुभ) हो जायँ।

अग्रिम दिनों को सुदिन बनाने के लिए ही देवपूजन किया जाता है और हर पूजा के प्रारम्भ में यह कहा जाता है कि हे लक्ष्मीपते! मैं आप के उन चरणों की वन्दना कर रहा हूँ जिनके स्मरण से सब दिन सुदिन हो जाते हैं और लग्न बल, ताराबल, चन्द्रबल, दैवबल आदि प्राप्त हो जाते हैं। जिनके हृदयारविन्द में मंगलों के आयतन हरि का उदय हो गया हैं उनके लिए सब कार्यों में सर्वदा सुदिन और सुमंगल रखे हैं। उनकी हानि और पराजय कभी हो नहीं सकती। अतः स्पष्ट है कि यहाँ किसी नक्षत्र या तिथ्यादि के प्रति अशुभत्व की भावना नहीं है।

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेंऽघ्रियुगं स्मरामि॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममंगलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान् मंगलायतनो हरिः॥

वेद में नक्षत्रों को देवगृह और तारक कहते हुए सबकी प्रशंसा की गयी है और सब में अग्न्याधान का आदेश है पर साथ ही साथ यह भी कहा है कि अग्न्याधान में नक्षत्र न देखे। दूसरे मन्त्र में कहा है कि जिसे सोमयाग करना है वह न ऋतु देखे न नक्षत्र। सद्बुद्धि का उदय स्वयं ही समय से उत्पन्न होने वाली समृद्धि का दाता है। एक मन्त्र की व्याख्या में श्रीसायणाचार्य ने कहा है कि कृत्तिका से भरणी पर्यन्त २७ नक्षत्र जैसे सिद्धिप्रद हैं वैसे ही ब्राह्मण २८ वाँ नक्षत्र है। इसीलिए यज्ञों के प्रारम्भ में पुण्याहवाचन कराया जाता है। उसमें ब्राह्मण पुण्याहं, कल्याणं, स्वस्ति, अस्तुश्रीः, शान्तिरस्तु आदि आशीर्वाद देते हैं। ऐसे अनेक वचन हैं। उन सब का अभिप्राय यह है कि कोई नक्षत्र अशुभ नहीं है। भावी दिनों के सुदिनत्व के लिए यह ईश्वर–देव–ब्राह्मण का पूजन किया जाता है। अथर्वज्योतिष का कथन है कि पुण्याहवाचन से सारी सम्पदाएँ प्राप्त हो जाती हैं।

द्विजपुण्याहघोषेण कृतं स्यात् सर्वसम्पदम्। तस्मान्न नक्षत्रे आदधीत।
सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं सूर्क्षेन्न नक्षत्रम्। ब्राह्मणो वाष्टाविंशो नक्षत्राणां (शत ब्रा०)॥
यथा नक्षत्रयोगात् कालस्य कर्मयोग्यता तथा ब्राह्मणवचनात्, अतएव पुण्याहं वाचयन्ति (सायण)॥

नक्षत्रतारापरिचय

संसार में कुछ भी अचल नहीं है। पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने पूरे आकाश के ८४ भाग किये हैं। उनमें १२ (राशियाँ) क्रान्तिवृत्त पर, २८ उससे उत्तर और ४४ क्रान्तिवृत्त के दक्षिण हैं। उनमें से कुछ के नाम नीचे लिखे हैं। पाश्चात्यों की १२ राशियाँ समान नहीं हैं। सब तारों में थोड़ी सूक्ष्म गतियाँ हैं और भिन्न-भिन्न हैं। उनमें से कुछ नीचे लिखी हैं। पाश्चात्यों ने तेजस्विता के आधार पर तारों की प्रतियाँ निश्चित की हैं। मृगव्याध, अगस्त्य, आर्द्रा, मृग, हंस, अग्नि, प्रजापति, चित्रा, स्वाती, अभिजित्, ज्येष्ठा, श्रवण आदि तेजस्वी तारे प्रथम प्रति के हैं और अति मन्द ५–६ प्रति के हैं। ध्रुव तारे में ही नहीं, ध्रुवस्थान में भी थोड़ी गति है। १८वीं होरा के मध्य में उत्तर दिशा में उत्तर कदम्ब नाम का एक बिन्दु है और साढ़े तेईस अंश की त्रिज्या से उसके चारों ओर एक वृत्त खींचा गया है। उसे ध्रुवमार्ग कहते हैं। ध्रुवस्थान उसी में घूमता रहता है और उसमें नये नये तारे आते रहते हैं। ध्रुवमार्ग में ध्रुवस्थान की प्रदक्षिणा लगभग २५–२६ सहस्र वर्षों में होती है। आजकल ध्रुवतारा और ध्रुवस्थान में लगभग एक अंश का अन्तर है और वह २१०० ईसवी तक परमाल्प अर्थात् लगभग २७ कला हो जायेगा। ध्रुव और कदम्ब विषुव (नाडी) वृत्त और क्रान्तिवृत्त के केन्द्र हैं। विषुववृत्त और क्रान्तिवृत्त के सम्पात से जो राशि अंश गिने जाते हैं उन्हें आजकल सायन कहतें हैं और जो रेवती के अन्त से गिने जाते हैं उन्हें निरयण कहते हैं। सायन निर्विवाद है पर निरयण में अनेक मत हैं। सम्पात में सूर्य २१ मार्च को आता है। उस दिन अहोरात्र समान होते हैं। विषुववृत्त की दूरी अक्षांश कही जाती है और देशान्तर कहीं से भी नापा जा सकता है। २४वीं या शून्य होरा वाली रेखा मानचित्र में सम्पात के ऊपर से जाती है। क्रान्तिवृत्त से किसी ग्रह या तारे की दूरी जितनी रहती है उसको शर कहते हैं और विषुववृत्त सम्बन्धी दूरी को क्रान्ति कहते हैं। क्रान्तिवृत्त में नापा जानेवाला अन्तर जैसे सायनमान कहा जाता है उसी प्रकार विषुववृत्त में नापे जाने वाले अन्तराल को विषुवांश या विषुवकाल कहते हैं। ३६० अंश में २४ और १५ अंश में एक होरा होता है।

आजकल नक्षत्रचक्र का आरम्भ रेवती से माना जाता है पर रेवती में ३२ तारे हैं इसलिए आरम्भस्थान वादग्रस्त है। आचार्य वराहमिहिर से लगभग सौ वर्ष पूर्व ५७४ ईसवी के आसपास सम्पात रेवती में था। वैदिक आर्य आरम्भ स्थान बदलते रहते थे पर हम अभी उसे रेवती में ही मान रहे हैं। लोकमान्य तिलक रेवती के जीटा पिशियम तारे को आरम्भस्थान मानते थे। श्री व्यंकटेश बापू जी केतकर भी पहले उसी को मानते थे पर लोकमत प्रायः उसके प्रतिकूल था इसलिए बाध्य होकर उन्होंने म्यू पिशियम को आरम्भ स्थान माना। इस प्रकार दोनों में लगभग चार अंशों का अन्तर है। केतकर जी ने लिखा है कि सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थों ने चित्रा का भोग १८० अंश माना है इसलिए उसके सामने वाला बिन्दु ही रेवत्यन्त है। वह म्यूपिशियम के पास है। उसमें केवल १० कला का अन्तर है। यहाँ से नापा अन्तर निरयण भोग कहा जाता है। इस राशिचक्र को इंगलिश में Zodiac कहते हैं। नक्षत्रपुञ्जों में जो तारा सबसे तेजस्वी होता है वह योगतारा कहा जाता है। प्रकाश एक सेकण्ड में एक लाख ८६ सहस्र मील चलता है। इस प्रकार वह एक वर्ष में जितना चलता है उसे एक प्रकाशवर्ष कहते हैं। इसके द्वारा तारों की दूरी बताई जाती है। कुछ की दूरी नीचे लिखी है।

कुछ भागों और तारों के नाम

अरुंधती केश Coma	शर्मिष्ठा Cassiopeia	अगस्त्य Canopus
उच्चैः श्रवा Pegasus	सप्तर्षि Ursa Major	स्वाती Arcturus
कालिय Draco	तिमि Volans	अभिजित् Vega
गरुड Aquila	नौका Argo	आर्द्रा Betelgeuse
देवयानी Andromeda	कर्कट Circinus	त्रिशंकु Crux
ध्रुवमत्स्य Ursa Minor	प्रश्वा Canes Minor	श्रवण Altair
ययाति Perseus	भरत Orion	रोहिणी Aldebaran
वृषपर्वा CEpheus	श्वा Canis Major	ज्येष्ठा Antares

कुछ तारों की विकलात्मक वार्षिक गतियाँ

लुब्धक	प्रश्वा स्वाती	अभिजित्	मित्र	चित्रा
१.३२	१.२५	२.२८	०.३६	०.०६

कुछ तारों की दूरी के प्रकाशवर्ष

मित्र	लुब्धक	प्रश्वा	श्रावण	रोहिणी	अभिजित्	ध्रुव उत्तर
४.३५,	८.८१,	१०.८६,	१४.१७,	२१.७३,	२७.१६	४६.५५

नक्षत्र योगतारों के कदम्बाभिमुखी भोग और शर

तारे से विषुववृत पर जो लम्ब डाला जाता है वह क्रान्तिवृत्त में जहाँ मिलता है वहाँ ध्रुवाभिमुख भोग और शर ज्ञात होते हैं। तारे से क्रान्तिवृत्त पर जो लम्ब डाला जाता है उससे कदम्बाभिमुख भोग, शर ज्ञात होते हैं। जिन नक्षत्रों के शर अधिक नहीं हैं उनके ध्रुवाभिमुख और कदम्बाभिमुख भोगों में थोड़ा अन्तर रहता है, अधिक शर वालों में बढ़ जाता है। यहाँ

सूर्यसिद्धान्त, श्री शंकर बालकृष्ण जी दीक्षित और श्री व्यंकटेश बापू जी केतकर के कदम्वाभिमुख भोग और शर लिखे जा रहे हैं। लोकमान्य तिलक की अश्विनी का आरम्भ चार अंश पहले जीटा से होता है अत: दीक्षित और केतकर के भोगों में चार अंश जोड़ देने से उनके भोग हो जायेंगे। केतकर जी भी पहले यही मानते थे पर बाद में प्रबल लोकाचार से बाध्य होकर चित्रापक्ष में आ गये क्योंकि अधिक प्रचार उसी का है। यहाँ मानों के अंश कला लिखे हैं। योगतारों में मतभेद होने से कुछ स्थलों में थोड़ा सा अन्तर है।

नक्षत्र		सूर्यसिद्धान्त		केतकर		दीक्षित		शर
		भोन	शर	भोग	शर	भोग	शर	की दिशा
१	अश्विनी	११।५६	६।११	१०।७	८।२८	१०।८	८।२६	उ
२	भरणी	२४।३५	११।६	२४।२१	१०।२६	२४।२२	१०।२६	उ
३	कृत्तिका	३६।८	४।४४	३६।६	४।२	३६।६	४।२	उ
४	रोहिणी	४८।६	४।४६	४५।५६	५।२८	४५।५७	५।२८	द
५	मृग	६१।३	६।४६	५६।५१	१३।२३	५६।५१	१३।२३	द
६	आर्द्रा	६५।५०	८।५३	६४।५४	१६।२	६४।१६	६।४५	द
७	पुन	६२।५२	६।०	८६।२३	६।४०	८६।२४	६।४०	उ
८	पुष्य	१०६।०	०।०	१०४।५२	०।४	१०४।५३	०।४	उ
९	आश्लेषा	१०६।५६	६।५६	१०६।४८	५।५	११०।४४	१०।५६	द
१०	मघा	१२६।०	०।०	१२६।०	०।२७	१२६।०	०।२८	उ
११	पूफा	१३६।५८	११।१६	१३६।३४	६।४१	१३६।३४	६।४२	उ
१२	उफा	१५०।१०	१२।५	१४७।४७	१२।१६	१४७।४७	१२।१६	उ
१३	हस्त	१७४।२२	१०।६	१६६।३७	१२।११	१६६।३७	१२।११	द
१४	चित्रा	१८०।४८	११५०	१८०।०	२।२	१८०।०	२।३	द
१५	स्वाती	१८३।२	३३।५०	१८०।२३	३०।४६	१८०।२४	३०।४६	उ
१६	विशाखा	२१३।३०	११२५	२०१।१४	०।२०	२०१।१४	०।२०	द
१७	अनू०	२२४।५४	२।५२	२१८।४३	११५८	२१८।१४	११५८	द
१८	ज्येष्ठा	२३०।७	३।५०	२२५।५५	४।३३	२२५।५६	४।३३	द
१९	मूल	२४२।५२	८।४८	२४०।४४	१३।४७	२४०।४४		द
२०	पूषा	२५४।३६	५।२८	२५०।४४	६।२७	२५२।२८	२।७	द
२१	उषा	२६०।२३	४।५६	२५८।४८	३।२७	२६२।२४	१।२७	द
२२	अभि	२६४।१०	५६।५८			२६१।२८	६१।४४	उ
२३	श्रावण	२८२।२६	२६।५४	२७७।५५	२६।१८	२७७।५५	२६।१८	उ
२४	घनिष्ठा	२६६।५	३५।३३	२६३।३२	३३।२	२६३।३३	३३।२	उ
२५	शत०	३१६।५०	०।२८	३१०।४४	०।२३	३१७।४४	०।२३	द

२६	पूभा	३३४।२५	२२।३०	३३०।४१	१६।२३	३३०।४२	१६।२३	उ
२७	उभा	३४७।१६	२४।१	३५०।२८	२५।४०	३५०।२८	१२।३६	उ
२८	रेवती	३५६।५०	००	३५६।१६	३।४	३५६।२	०।१३	द
						३५६।१७	३।४	

नक्षत्रों के इंगलिश नाम और प्रतियाँ

नक्षत्र	इंगलिश	प्रति	नक्षत्र	इंगलिश नाम	प्रति
अश्विनी	बीटा एरायटीज	४.३	स्वाती	आर्कट्यूरस	१
भरणी	४१ एरायटीज़	४.१	विशाखा	बीटा लिब्रा	२.८
कृत्तिका	ईटाटारी	३	अनुराधा	डेल्टा स्कार्पी	२.५
रोहिणी	आल् डिबरान	१.१	ज्येष्ठा	अण्टारिस	१.३
मृग	लाँबड़ा ओरायन	१	मूल	लाँबड़ा स्कार्पि	१.८
आर्द्रा	ग्यामा जेमिनी	१.६	पूषा	एपूसिलान साजिटेरी	१.६
पुनर्वसु	पोलाक्स	१.२	उषा	सिग्मा साजिटेरी	२.१
पुष्य	डेल्टा कांक्री	४	अभि	अल्फा लिरि०	१
आश्लेषा	ज़ीटा हैड्री	३.३	श्रवण	आल्फा आक्वि०	१
मघा	रेग्युलस	१.३	घनिष्ठा	आल्फा डेल्फनी	३.६
पूफा	डेल्टा लीआनिस	२.६	शत	लांबडा आक्वेरी०	३.६
उफा	बीटा लीआनिस	२.२	पूभा	आल्फा पिगासी०	१.६
हस्त	गामा एपसिलान	२.७	उभा	आल्फा आंड्रो०	२.१
चित्रा	स्पायका	१.२	रेवती	जीटा पिशियम	५.४
			रेवती	म्यू पिशियम	४.५
ध्रुव	अर्सा मायनर	२.१	प्रजापति	डेल्टा आरिगा	४.५
ऋक्ष	,, मेजर	३	अगस्त्य	आल्फा आर्गुस	१
ब्रह्म	आरिगा	१	व्याध	कैनिस मेजर	१
अग्नि	बीटाटारी	१.८	हँस	आल्फा सिग्नी	१.३

आल्फा, बीटा, गामा आदि ग्रीक अक्षर हैं। ये नम्बर हैं और एरायटीज़, ओरायन, लीआनिस आदि नक्षत्रों के नाम हैं। एक-एक नक्षत्रपुंज में अनेक तारे हैं। यहाँ योगतारों के नाम दिये हैं। मघा, पुष्य, रेवती और शतभिषा के शर बहुत कम हैं अर्थात् ये क्रान्तिवृत्त से सटे हैं। इसीलिए भास्कराचार्य ने लिखा है—'पैत्रर्क्षपुष्यान्तिमवारुणानाम्'। स्वाती, अभिजित्, धनिष्ठा आदि दूर हैं। रोहिणी, मृग, आर्द्रा, चित्रा स्वाती, अभिजित्, श्रवण ज्येष्ठा आदि की प्रतियाँ बड़ी हैं इसलिए ये चन्द्रमा के पास रहने पर भी दिखाई देती हैं, रेवती-पुष्य आदि अल्प तेज वाली नहीं दिखई देतीं।

विचारणीय विषय यह है कि (१) हम प्रत्येक नक्षत्र का मान १३।२० मानते हैं पर यहाँ दो नक्षत्रतारों के बीच कहीं

एक अंश का अन्तर है (चित्रा–स्वाती), कहीं चार अंश का अन्तर है (पुष्य–आश्लेषा), कहीं २६ अंश का अन्तर है (आर्द्रा–पुनर्वसु) तो कहीं २४ का (उत्तराफाल्गुनीहस्त)। पुष्य, मघा, रेवती और शतभिषा के शर शून्य हैं तो अभिजित् का ६० अंश, स्वाती का ३४ अंश और धनिष्ठा का ३५ अंश है। इस स्थिति में प्रत्येक १३।२० पर परिवर्तित होने वाले फल तारों से सम्बन्धित नहीं हो सकते। अत: यदि स्थानों के ही फल सत्य हैं तो हम उन प्राकृतिक सायन मानों को महत्त्व क्यों न दें जिनके अनुसार ऋतुएँ बदलती हैं। (२) ज्योतिषशास्त्र मूल आदि कई नक्षत्रों में उत्पन्न बालकों को फेंकने का आदेश देता है और उनकी एक–एक घड़ियों का गणित करता है पर उन नक्षत्रों का आरम्भ स्थान ही वादग्रस्त है। हम मूल के योगतारे को महत्त्व दें या मूलपुंज को अथवा मूल के स्थान को? स्थान सायन लें या निरयण? तिलक का लें, या दीक्षित का या सूर्य सिद्धान्त का? (३) आप केवल नक्षत्रफल को इतना महत्त्व क्यों देते हैं? मूल में उत्पन्न जिन तुलसीदासों को आप ने फेंका उनके लग्न, नवांश, त्रिंशांश, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, वार, मुहूर्त आदि के फल क्या झूठे थे? (४) आकाश में नक्षत्रों के तारों से बड़े–बड़े अगस्त्य, अग्नि, प्रजापति, त्रिशंकु, सप्तर्षि आदि के तारे हैं। क्या उनका प्रभाव नहीं पड़ता? (५) आप विवाहमण्डप में विष्णु, यम, अग्नि, वरुण, इन्द्र, बृहस्पति तथा रुद्र देवों की पूजा करते हैं और उन्हें आहुतियाँ देते हैं किन्तु उनके परमप्रिय श्रवण, भरणी, कृत्तिका, ज्येष्ठा, पुष्य और आर्द्रा नक्षत्रों में विवाह नहीं करते। क्यों? (६) क्या निर्ऋति के नक्षत्र मूल से इन्द्र का नक्षत्र ज्येष्ठा तुच्छ है? (७) आप गृहप्रवेश में जिन बीस नक्षत्रों का परित्याग करते हैं उनकी और उनके देवों की वास्तुशान्ति में पूजा क्यों करते हैं। (८) चित्रा और स्वाती नक्षत्र यात्रा में क्यों वर्जित हैं? इनमें कौन से दोष हैं? नक्षत्रों के शुभाशुभत्व के विषय में ऐसे अनेक प्रश्न हैं। खेद का विषय है कि हम कान्तिवृत्त के आसपास के केवल २७–२८ नक्षत्रपुंजों से ही परिचित हैं जबकि पृथ्वी पर सबका प्रभाव पड़ता है। पाश्चात्य ज्योतिर्विद् करभ Camelus, सारथी Auriga, गवय Lumx, भूतप Bootes, शौरि Hercules, कालीय Draca, हंस Cygnus, देवयानी Andoromeda, शर्मिष्ठा Cassiopeia, ययाति Perseus, नौका Argo, तिमि Volans, यमुना Eridanus, जटायु Phoenise, अश्मन्त Fornasi, मुकुट Corona, वासुकि Hydra आदि विभागों से सुपरिचित हैं।

बृहत्संहिता में अनेक भयों का वर्णन

ज्योतिष महावृक्ष के संहिता सिद्धान्त और होरा नामक तीन स्कन्ध हैं। प्राचीन काल में इन तीनों की संहति को संहिता कहा जाता था (बृहत्संहिता १।९)। परन्तु इस समय जातक, मुहूर्त और शकुन आदि ने उनका पद ले लिया है तथा उन सब पर विदेशी राशियों का राज है। ज्योतिष में आचार्य वराहमिहिर का स्थान बहुत उच्च है। भास्कराचार्य ने भी अपने सिद्धान्त शिरोमणि में उनकी वन्दना की है और उन्होंने तीनों स्कन्धों पर लोकमान्य ग्रन्थ लिखे हैं किन्तु ऐसे महापुरुष भी परम्परागत एक दोष से दूषित हैं। उन्होंने गणित स्कन्ध के सभी स्थलों में कल्पना को अस्वीकार कर प्रत्यक्ष अनुभूति को ही प्रमाण माना है और पितामह तथा वसिष्ठ सिद्धान्त को भी दूरविभ्रष्ट कहने का साहस किया है। उन्होंने काल्पनिक राहु का और गर्ग का खण्डन किया है तथा मलेच्छों को ऋषिवत् पूज्य माना है पर अप्रत्यक्ष फलित के आरम्भ में ही लिख दिया है कि ज्योतिष आगम शास्त्र है अत: उसके मतभेदों में शंका मत करो, बहुमत को मान लो। ज्योतिष महासागर है, और उसका पार ऋषि ही पा सकते है, हम नहीं। फिर भी उन्होंने कई स्थानों पर लिख दिया है कि यह मुनियों का विवाद है, असंभव है, पर मैंने प्राचीन होने से उनके मत लिख दिये हैं। आचार्य ने अनेक भयों का वर्णन किया है। उनमें से कुछ आगे लिखे जायेंगे। यहाँ नक्षत्रों सम्बन्धी भय लिखे जा रहे हैं। संहिता में सार्वजनिक राष्ट्रीय भयों के वर्णन रहते हैं। व्यक्तिगत भय जातक और मुहूर्त ग्रन्थों में रहते हैं। विज्ञान का प्रचार ज्यों–ज्यों बढ़ेगा, इन भयों सम्बन्धी भय समाप्त होते जायेंगे।

कूर्म विभागाध्याय के भय

इस चतुर्दश अध्याय में कृत्तिकादि तीन–तीन नक्षत्रों के नव वर्ग बने हैं और प्रत्येक में अनेक देशों के नाम लिखे

हैं। पता नहीं, इन देशों का इन नक्षत्रों से क्या सम्बन्ध है और आरम्भ कृत्तिका से क्यों किया गया है। लिखा है कि जिस नक्षत्र में पाप ग्रह आ जाता है अथवा किसी अन्य दोष का सम्पर्क होता है उससे सम्बन्धित देशों पर अनेक विपत्तियाँ आती हैं। पता नहीं, यह निर्णय आचार्य ने किस आधार पर किया है। नव ग्रहों में सात पाप हैं, बृहस्पति शुक्र भी अनेक बार पाप हो जाते हैं और दोष कई सौ हैं अत: इस नियम को मानने पर किसी देश को शुभ समय मिलेगा ही नहीं। शंका होती है कि जो नक्षत्र तीक्ष्ण, उग्र, क्रूर और दारुण हैं उनसे सम्बन्धित देशों के सब लोग क्या वैसे ही होते हैं? इस कूर्म विभागाध्याय सदृश वर्णन भृगुसंहिता में भी आया है। यहाँ इससे आगे वाले नक्षत्रव्यूहाध्याय में भी भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में अनेक जातियों जन्तुओं और पदार्थों को सम्मिलित कर इसी प्रकार सबके शुभाशुभ फल कहे हैं। ग्रहभक्तियोगाध्याय में अनेक देश और जातियाँ नव ग्रहों में बाँट दी गयी हैं। उनमें चोर, कृषक, वैद्य, यशस्वी, याज्ञिक, कामुक, बधिक, पापी, पागल, बालक, गज, अश्व आदि के स्वामी भिन्न-भिन्न ग्रह हैं। वे ग्रह जब नीच में स्थित होंगे, पाप ग्रहों से दृष्ट या युत होंगे और उल्का आदि से विद्ध होंगे उस समय उनके वर्ग के लोग पीड़ित होंगे। ग्रहचार, सप्तर्षिचार, कूर्मविभाग, नक्षत्रव्यूह और ग्रह भक्ति के फलों में अन्तर पड़ना निश्चित है। उस समय बहुमत के आधार पर निर्णय का आदेश है। ग्रहयुद्धाध्याय, शशिग्रहसमागमाध्याय आदि में भी इसी प्रकार बहुमत से निर्णय होगा।

रोहिणी योगाध्याय

आचार्य ने इसकी प्रस्तावना में २४ वें अध्याय में लिखा है कि रोहिणी चन्द्रमा की प्रियतमा पत्नी है। उन दोनों के समागम के विषय में देवगुरु बृहस्पति ने सुमेरु पर्वत पर स्थित एक उपवन में नारद को जो बताया था तथा गर्ग, पराशर, काश्यप और माण्डव्य ने अपने शिष्यों को जो शिक्षा दी थी उसी को मैं यहाँ संक्षेप में लिख रहा हूँ किन्तु आचार्य के इस कथन में अनेक शंकाएँ हैं। कहाँ चला गया वह उत्तर ध्रुव का सोने का एक लाख योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत और चार सहस्र वर्ष पूर्व के वे दधि, दूध और घी आदि के सागर कहाँ चले गये? क्या उत्तर ध्रुव के पर्वत पर मनोरम उपवन की सत्ता सम्भव है? चारों युगों में जीवित रहने वाले नारद इस समय दिखाई क्यों नहीं देते? रोहिणी और चन्द्रमा के समागम और बृहस्पति की दुर्दशा का रहस्य आगे ग्रहाध्याय में पढ़ें और रोहिणी के फल की समीक्षा करें।

आचार्य लिखते हैं कि आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में जिस दिन चन्द्रमा और रोहिणी का योग हो उस दिन के चन्द्रबिम्ब-परिणाम, चन्द्रकान्ति, चन्द्रवर्ण, मार्ग, अनेक प्रकार के वायु और उत्पातों का निरीक्षण कर उन्हीं द्वारा पूरे वर्ष का भविष्य बताओ। उस दिन की स्थिति का सम्बन्ध सम्पूर्ण संवत्सर से है।

उस दिन बारह हाथ ऊँचे बाँस पर चार हाथ की पताका बाँधो। पताका किस दिशा या कोण में फहरा रही है, हवा कैसी चल रही है, इसी के आधार पर वर्षफल कहना है। रोहिणीचन्द्रयोग के दिन प्रथम प्रहर में सुन्दर हवा चली तो श्रवण के कृष्ण पक्ष में सुन्दर वृष्टि होगी। द्वितीय प्रहर में चली तो श्रावण शुक्लपक्ष में वर्षा होगी। इसी प्रकार आगे के छ: प्रहरों को आगे के छ पक्षों में बाँट दीजिए। रात्रि के चतुर्थ प्रहर में अच्छी हवा चली तो कार्तिक के शुक्लपक्ष में अच्छी वर्षा होगी। इस नियम में थोड़ा मतभेद भी है। पताका दायीं ओर घूम रही है कि बायीं ओर तथा उस समय शकुन कैसे हो रहे हैं, इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है। शकुनों का महत्त्व वायु से कम नहीं है। उस दिन घड़े में रखे बीज कितने दिनों में और कितनी संख्या में अंकुरित हुए, यह भी देखना होगा। पक्षी और पशुओं के शब्दों का भी विचार करना होगा। उस दिन के मेघ किस वर्ण और किस आकृति के हैं, इसका भी वर्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऊँट, कौवा, प्रेत और वानर की आकृति के शब्दरहित मेघ हों तो पानी नहीं बरसेगा। उस दिन चारों दिशाओं में चार कलश रख दें। सब पर श्रावण आदि चार मासों के नाम लिख दें। घड़ों पर चारों दिशाओं में स्थित देशों और ब्राह्मण आदि चारों वर्णों का भी नाम लिख दें। पानी बरसने पर जिस कलश में वर्षा का जितना पानी जमा हो उसी के अनुपात से उस दिशा और देश में वर्षा होगी। जिधर का घड़ा फूटा हो उधर का नाश

होगा २७। चन्द्रमा रोहिणी के दक्षिण से जाय तो सारे संसार को कष्ट होगा २८। उत्तर से जाने पर कल्याण और सुवृष्टि होगी २६। रोहिणी शकट के भीतर चन्द्रमा के चले जाने पर लोग आश्रयहीन होकर भीख माँगने लगेंगे ३०।

उदितं यदि शीतदीधितिं प्रथमं पृष्ठत एति रोहिणी।
शुभमेव तदा स्मरातुराः प्रमदाः कामिवशे च संस्थिताः॥ ३१॥
अनुगच्छति पृष्ठतः शशी यदि कामी वनितामिव प्रियाम्।
मकरध्वजबाणखेदिताः प्रमदानां वशगास्तदा नराः॥ ३२॥

चन्द्रमा का उदय पहले हो और रोहिणी क्षितिज के ऊपर उसके वाद में आवे तो यह शुभ फल होगा कि नारियाँ काम से व्याकुल होकर कामी पुरुषों के वश में हो जायेंगी। यदि चन्द्रमा का उदय रोहिणी के बाद हुआ तो पुरुष कामबाण से विद्ध होकर प्रमदाओं के वश में हो जायेंगे। इसके वाद इस विषय के भिन्न-भिन्न फल लिखे हैं कि रोहिणी नक्षत्र चन्द्रमा के किस कोने में स्थित है। रोहिणीचन्द्रयोग के दिन सायंकाल गायों के घर लौटते समय यदि उनके सामने बैल या कोई काला पशु आ जाय तो जान लो कि उस वर्ष में वृष्टि वहुत होगी और पशु श्वेत है तो लोगों को वता दो कि इस वर्ष वर्षा नहीं होगी, धान का बीज मत डालो यह केवल एक दिन की घटना का फल है। दूसरे दिन ऐसा हुआ तो उसका कोई फल नहीं होगा। रोहिणीचन्द्रयोग के दिन चन्द्रमा मेघों से ढका हो तो उस वर्ष में अनेक रोगों की वृद्धि होगी किन्तु अन्न और जल की कमी नहीं पड़ेगी। स्वाती आदि से चन्द्र के योग के भी इसी प्रकार अनेक फल लिखे हैं।

दृश्यते न यदि रोहिणीयुतश्चन्द्रमा नभसि तोयदावृते।
रुग्भयं महदुपस्थितं तदाभूश्च भूरिजलसस्यसंयुता॥ २४। ३६॥

मेरा निवेदन है कि आप दो तीन वर्ष आषाढ़ की अमावास्या के पास इस योग का निरीक्षण करें तो नक्षत्रों के सव फलों की सचाई और गंभीरता का तथा मूलादि नक्षत्रों में उत्पन्न बालकों को फेंकने के औचित्य का रहस्य ज्ञात हो जायेगा। उसी से शेष फलों के विषय में अनुमान कर लें।

●

अध्याय ६

गोल और खेचर

यह विश्व कब किससे पैदा हुआ और इसका प्रलय कब होगा, इसे कोई
श्व और विश्वनाथ के विषय में जितना जानते हैं और भविष्य में जितना
अज्ञात रहेंगे क्योंकि विश्व और विश्वनाथ अनन्त हैं।

वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

ज, नीहारिकाएँ, धूमकेतु, अशनि, ग्रह, उपग्रह आदि सदा घूमते रहते हैं
है। नेत्र से छ–सात सहस्र तारे दिखाई देते हैं। पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने
ते हैं। उनकी बीस प्रतियाँ हैं। प्रत्येक तारे के भीतर एक हलचल है। पत्थर
र वह जिन परमाणुओं से बना है वे हर स्थिति में क्रियाशील रहते हैं, उष्ण
शक्तियाँ रहती हैं और वे भीतर बाहर सर्वत्र काम करती हैं। यही स्थिति
की नीहारिकाएँ (Nebulas) अरबों तारों के समूह हैं और तारों का निजी
धे हैं और एक–एक लोक हैं। यही स्थिति हमारे सौर परिवार की है। सूर्य
ets) से घिरा है और सब एक दूसरे से बँधे है। धूमकेतुओं की पूँछें पिघल
s) इन्हीं के अंग हैं। आकाश में प्रति घण्टे १०–१४ उल्काएँ गिरती रहती
की होती हैं। उनमें से कुछ पृथ्वी तक चली आती हैं। जलने से बचे उनके
लोहा भी रहता हैं। इंग्लैण्ड के म्यूज़ियम में इनका विशाल संग्रह है। भारत
नि मिले हैं। पृथ्वी के वायु के भीतर आने पर उल्काएँ जल जाती हैं। वह
में भी इनका विस्तृत वर्णन है। सूर्य की प्रदक्षिणा करने वाले ग्रह भी कुछ
कर्षणविकर्षण की हलचल है किन्तु वे उल्काओं से भिन्न जाति के हैं।

ग्रहों और तारों का प्रभाव भी है। ग्रहों में सूर्य सबसे बड़ा और प्रभावशाली
नु सूर्यज्योति जैसे चन्द्रमा पर पहुँच कर शीतल, सुन्दर सह्य और सुखद हो
गुण कुछ परिवर्तित हो जाते हैं। प्रभाव में सूर्य के बाद दूसरा स्थान चन्द्रमा
पर प्रकाश और अन्धकार दोनों का प्रभाव पड़ता है तथा दोनों में कुछ
की बड़ी प्रशंसा है और उसे एक देवी मान कर आहुतियाँ दी गयी हैं।
के बाद गति अधिक होने के कारण चन्द्रमा सूर्य से ज्यों–ज्यों आगे बढ़ता
भाटे, स्त्रियों के मासिक धर्म तथा अनेक औषधियों और रोगों पर चन्द्रमा
है। हमारे शरीर में स्थित जलराशि पर भी उसका वैसा ही प्रभाव पड़ता है।
व सूर्य चन्द्र तुल्य नहीं होता क्योंकि वे छोटे हैं और हमसे दूर हैं परन्तु खेद

है कि हमारा जातकशास्त्र कुण्डली का फल कहने में सूर्य चन्द्र को अन्य ग्रहों से बहुत कम महत्त्व देता है। सूर्य चन्द्र एक-एक राशि के स्वामी हैं और छोटे ग्रह दो-दो राशियों के। जैसे प्रातःकाल और मध्याह्नकाल के तथा जेठ और माघ के सूर्य में अन्तर होता है उसी प्रकार सब ग्रह आकाश के भिन्न-भिन्न भागों में और भिन्न-भिन्न राशियों में रहने पर विभिन्न फल देते हैं। उनका बोध वैज्ञानिक पद्धति से होगा, काल्पनिक शास्त्रसे नहीं।

सूर्यग्रह का वैज्ञानिक स्वरूप

विज्ञान, सूर्य की प्रदक्षिणा करने वाले को ग्रह और ग्रहों की प्रदक्षिणा करने वाले पिण्डों को उपग्रह कहता है इसलिये सूर्य-चन्द्र को ग्रह नहीं मानता। प्राचीन ज्योतिष ने पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने वाले ज्योतिर्बिम्वों को ग्रह कहा है। ब्रह्माण्ड अनन्त है, सौरमण्डल उसका एक छोटा सा प्रदेश है, सूर्य उसके बीच में बैठा है और बुध, शुक्र, पृथ्वी आदि ग्रह उसकी सदा प्रदक्षिणा किया करते हैं। सूर्य २५-२७ दिनों में अपनी अक्षप्रदक्षिणा करता है। वह अपने पूरे सौर परिवार को लिये हुए एक महासूर्य की प्रदक्षिणा करता है जो उससे बहुत बड़ा है। पृथ्वी से सूर्य १३ लाख गुना से अधिक बड़ा है और उसमें पृथ्वी की अपेक्षा बहुत अधिक आकर्षण शक्ति है। सूर्य पर अनेक काले-काले धब्बे हैं, वे कुछ वर्षों में अधिक दिखाई देते हैं, उनके ह्रास-वृद्धि का नियम है और वे कई सौ मील लम्बे होते हैं। उन्हीं से यह ज्ञात हुआ कि सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है। कुछ धब्बे सूर्यास्त के समय नेत्र से भी दिखाई देते हैं। वराहमिहिर आदि ने इनका वर्णन किया है और वे आज भी देखे जा सकते हैं। सूर्य पर प्रति ११ वर्षों में विस्फोट होता है और पृथ्वी पर उसका दुष्प्रभाव पड़ता है। उससे सब प्राणी प्रभावित होते हैं। सूर्य से बहुत उष्णता निकलती है। उसकी किरणों के सात रंग हैं उनका प्रतीकात्मक वर्णन वेदों में भी है। सूर्य से जितनी उष्णता निकलती है, उसका दो अब्जांश मात्र पृथ्वी को मिलता है। अनेक धूमकेतु ऐसे हैं जो आकार में पृथ्वी ही नहीं, सूर्य से भी बड़े हैं पर उनमें आकर्षण शक्ति नहीं हैं। सूर्य का प्राकृतिक द्रव्य पृथ्वी से विरल है पर पृथ्वी से सूर्य का भार लगभग सवा तीन लाख गुना है। इसी कारण पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। सूर्य बाध्य करता है कि सब ग्रह उसकी प्रदक्षिणा करें क्योंकि सूर्य का द्रव्य सब ग्रहों के घटक द्रव्यों के योग का ७५० गुना है। जो ग्रह सूर्य से जितनी दूरी पर है उसकी गति उतनी ही कम है। बुध उसके अति निकट है अत: उसकी गति एक सेकण्ड में ३० मील है। यम सबसे दूर है अत: उसकी गति प्रति सेकण्ड में दो मील है। हमारे भास्करादि आचार्यों ने सब ग्रहों की योजनात्मक गति समान मानी है। इसका कारण यह है कि उस समय आज सरीखे उत्तम साधन नहीं थे। पृथ्वी सूर्य से सदा समान दूरी पर नहीं रहती। सूर्य के निकट आने पर उसकी गति बढ़ जाती है। ज्योतिषियों का अनुमान है कि जिस समय सूर्य पर धब्बे कम रहते हैं वह काल कृषि आदि के लिये अनुकूल रहता है और अधिक धब्बे भयावह होते हैं। इनके दर्शन का कालचक्र लगभग सवा ग्यारह वर्षों का है।

ग्रहों का सूर्य से सम्बन्ध

ग्रह	सूर्य से मध्यम अन्तर लाख मील	पृथ्वी से अन्तर लाख मील		व्यास मील मध्यम मान	अक्ष प्रदक्षिणा	सूर्य प्रदक्षिणा दिन	वेग प्रति सेकण्ड मील
		महत	लघु				
सूर्य०	०	९३८	९.८	८६००००	२६ दिन	०	०
बुध३५७	३५७	१३६९	४७७	२९९२	२४ घं०	८८	३०
शुक्र६६८	६६८	१६१०	२३६	७६६०	२४ घं०	२२५	२२
पृथ्वी	९२३			७९१८	२४ घं०	३६५.२६	१८.४

				४८ मि०			
मंगल	१४०७	२४७६	३३८	४२११	२४ घं०	६८७	१५
गुरु	४८०२	३६३२	४८३	८६०००	१० घं०	११.८६ वर्ष	८.१
शनि	८००५	१०१२६	७३७३	८६०००	१० घं०	२६.८६ वर्ष	५.६
प्रजापति यूरेनस	१७७१०	१६४६६	१६०००	३१७००		८४ वर्ष	४.२
वरुण नेपच्यून	२७७६०	२८६२८	२६५७२	३४५००		१६४.७८ वर्ष	३.४
यम प्लूटो	३७५००		२६७२			२४८ वर्ष	२

वैदिक सूर्य

शास्त्रों में सूर्य के द्वादशात्मा, दिवाकर, भास्कर, प्रभाकर, पूषण, विवस्वान्, सप्ताश्व, मार्तण्ड, द्युमणि, मित्र, विरोचन, ग्रहपति, सहस्रांशु, तेजोराशि, छायानाथ, कर्मसाक्षी, त्रयीदेह, जगन्नेत्र, लोकबन्धु और सविता आदि सैकड़ों पुनीत नाम हैं। वेदों में सूर्य ही विष्णु हैं। वाजसनेयिसंहिता (अध्याय ३३) में कहा है कि विशेष रूप से भ्राजमान तेजस्वी सूर्य स्वयं जगत् की रक्षा कर रहे हैं। वे सारे स्थावरों और जंगमों की आत्मा हैं, संसार के उत्पादक सविता हैं, परमात्मा हैं, उनकी अग्नितुल्य तेजस्वी किरणें अश्व हैं और सूर्य सबको पवित्र करने वाले पावक हैं। वे मित्र, वरुण और अग्नि के नेत्र हैं, तेज की सेना (समूह) हैं, भक्तों के तारक हैं और विश्व के प्रकाशक एवं पिता हैं। हे देव! आपके जाने के बाद रात्रि अपना वस्त्र फैलाती है। आप सचमुच बल से गुणों से और महिमा से देवों में असुर्य (महाबली) हैं, पुरोहित हैं और आप की ज्योति व्यापक है। आप सोने के रथ पर बैठ कर सब भुवनों का निरीक्षण करते और अमृत बरसाते हुए आ रहे हैं।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। विभ्राड् बृहत्....मध्वायुर्दधत् अभिरक्षति त्मना प्रजाः।
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य विश्वमाभासि रोचनम्॥
बण्महानसि सूर्य....देव महानसि। बट् सूर्य श्रवसा महानसि सत्रा देव महानसि।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्॥
निवेशयन्नमृतं सविता याति भुवनानि पश्यन्।

ऋग्वेद १।५०।४,८,११ तथा ५।४०।६ आदि में और ब्राह्मण ग्रन्थों में सूर्य की महिमा के ऐसे सैकड़ों वर्णन हैं। वेदों ने इसी प्रकार उषा, सन्ध्या, अहल्या, गोतम, अरुण, अश्विनी कुमार, सूर्या, चन्द्रिका, छाया, मेघ, विद्युत्, मरुत्, पृथ्वी, सागर और द्युलोक आदि अनेक जड़ पदार्थों का चेतन की भाँति वर्णन किया है परन्तु साथ ही साथ यह भी लिख दिया है कि सूर्य और सूर्यकिरण आदि पदार्थ न पुरुष हैं न स्त्री। इस बात को नेत्र वाले जानते हैं, अन्धे नहीं। इसे मेधावी कवि पुत्र ही जानता है और वह जानने पर पिता का पिता हो जाता है (ऋग्वेद १।१६।१६)

स्त्रियः सतीस्ता उभे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न विचेतदन्धः।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पिता सत्॥

वेदों के अनुसार आकाश ही क्षीरसागर है, सूर्य ही विष्णु है, उसकी किरणें ही सुर हैं, मेघ ही असुर हैं, दोनों का संघर्ष ही सागरमन्थन है, उससे उत्पन्न जल ही अमृत है, मेघों का भागना ही अमृत की चोरी है, बिजली ही मोहिनी नारी है, वर्षा ही शिव का वीर्यपात है, सूर्य का प्रकाश ही लक्ष्मी है, सूर्य की किरणें ही शेषनाग के सहस्र (अनेक) फण हैं और वे ही

सूर्यरूपी विष्णु की शय्या हैं। वेद में अनेक वार सूर्य को ही इन्द्र कहा है। ऋग्वेद १।३२ का कथन है कि इन्द्र मेघरूपी पर्वतों, सर्पो, गजराजों और राक्षसों का वक्षस्थल विदीर्ण कर पानी वरसाते हैं। वह पानी बछड़ों की ओर दौड़ती गायों की भाँति भाग कर समुद्र में जाता है। वृत्रासुर (मेघ) ने पानी के विलों को वन्द कर दिया था पर इन्द्र (सूर्य) ने उसे मार कर पानी बरसाया। तब पणियों द्वारा रोकी गायों की भाँति वहुत पानी वाहर आया।

अहन्नहिं प्रवक्षणा अभिनत् पर्वतानाम्॥ १॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अंजः समुद्रमवजग्मुरापः॥ २॥
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धाः पणिनेव गावः।
अपां विलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वानप तद्ववार॥ ११॥
अश्व्यो.....अवासृजः सर्तवे सप्तसिन्धून् १।३२।१२॥

सूर्य की किरणें भूमिस्थ जल को ऊपर ले जाती हैं, उसे घृत बना देती हैं और फिर उससे धरती को सींचती हैं। सूर्य एक पक्षी हैं, हंस है, गरुड़ है, उसके पंख सोने के हैं, वह आकाशरूपी सागर में रहता है, उर्वशी उसकी अप्सरा है। और वह नदियों के साथ आकर जल देती है। सूर्य सागरमन्थन कराता है, अमृत वरसाता है और विष भी देता है। वह विष सूर्य के काले धब्बों, उल्काओं और धूमकेतुओं में है। अनेक विषधर सर्प (धूमकेतु) सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। सूर्य कृष्ण (आकर्षण) है, कृष्ण रज से आवेष्टित है, एक गन्धर्व है और उसकी किरणें ही अप्सराएँ हैं।

(इसका विशेष विवरण आगे समुद्र मन्थन में पढ़े।)

विष्णोर्नु कं वीर्याणि। विष्णोः परमे पदे मध्व उत्सः॥
प्रतिद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। (ऋ० १।१५४।५)
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति॥
घृतेन पृथिवी व्युद्यते १।१६४।४७ नदीभिरुर्वशी ५।४।१९ नदीनामपावृणीद् गन्धर्वः।१०।३९।६ (ऋग्वेद)।
सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसः (यजुर्वेद)॥

अश्वमेध के अश्व का पूर्वार्ध काला और उत्तरार्ध श्वेत रहता है तथा उसके ललाट पर चिह्न रहता है। वह वर्ष भर घूमता है और यज्ञ में १२-१३ रस्सियों से बाँधा जाता है तथा रस्सियों में अन्य पशु बाँधे जाते हैं। राजा की चार रानियाँ सौ सौ दासियों के साथ आती हैं। इसके पूर्व दिग्विजय में युद्ध और धनापहरण होता है। विशेषज्ञों का कथन है कि यह वर्ष और वर्षा का वर्णन है। सूर्य ही राजा है वह वर्ष भर घूमता है, उषा ही अश्व का ललाट चिह्न है, रात्रि ही काला पूर्वार्ध है, दिन ही श्वेत पृष्ठार्ध है, १२-१३ मास ही १२-१३ रस्सियाँ हैं, ग्रह आदि ही उनमें बँधे पशु हैं और चार दिशाएँ ही चार पत्नियाँ हैं। सूर्य के भ्रमण में मेघ बाधक होते हैं। उनके जल का अपहरण ही धनापहरण और युद्ध है। पूरा सौरपरिवार सूर्य की रश्मियों में बँधा है और यह सृष्टियज्ञ है। ऋग्वेद १।१६३ में इस अश्व का जन्म आकाश रूपी समुद्र से कहा है और बताया है कि यह द्युलोक में बँधा है तथा इसके शृंग देदीप्यमान हैं।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान् उद्यन् समुद्रात्...अर्वन्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्॥
त्रीणि ते दिवि बन्धनानि हिरण्यशृंगः।

पुराणों की एक प्रसिद्ध कथा है कि वामन रूपधारी विष्णु ने तीन पगों में सब कुछ नाप कर वलि को पाताल भेज

दिया था। उसका रहस्य यह है कि सूर्यरूपी विष्णु उदयकाल में वामन रहते हैं पर मध्याह्न में तेजस्वी और विराट् होकर अन्धकार रूपी बलि को पाताल में भेज देते हैं। वे सूर्योदय, मध्याह्न और सूर्यास्त रूपी तीन पगों में पूरा आकाश नाप लेते हैं।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्

कहा जाता है कि पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है पर यह बात होती तो सब लोग सोने की थाली में खाते, कोई नारी सोने का आभूषण न पहनती और नेपाल के लोग विश्व में सबसे धनी होते क्योंकि वहाँ पारसनाथ हैं। वस्तुत: सूर्य ही पारस है और उसके स्पर्श से लोहारूपी काली रात सोनारूपी दिन हो जाती है। सूर्य ही शुक्लवस्त्र धारी चतुभुंज विष्णु हैं और चार दिशाएँ उनकी चार भुजाएँ हैं। इसी से कहा गया है–

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥

सूर्यकन्या उषा (अहल्या) सन्ध्या

सूर्योदय कालीन पूर्व क्षितिज की लालिसा उषा और सूर्यास्तकालीन पश्चिम क्षितिज की शोभा सन्ध्या है। ऋग्वेद का कथन है कि उषा सूर्य से पहले दिखाई देने के कारण सूर्य की माता है, सूर्य की किरणों से उत्पन्न होने के कारण पुत्री है और सूर्य की संगिनी होने के कारण उसकी प्रिया है। सूर्य उषा का प्रेमी है, जार है, सदा उसके पीछे लगा रहता है और उषा अपने जार सूर्य के नेत्रों (किरणों) से शोभित होती है। उषा सूर्योदय के पूर्व रथ पर बैठ कर तथा रथ में लाल घोड़ों और बैलों को जोत कर मनुष्यों के पास आती है। वह नर्तकी की भाँति कई रूप धारण करती है, हँसती है, मुस्कराती है, घर–घर जाती है, अपना स्तन खोल कर सबको दिखाती है, लाल वस्त्र पहनती है, अपनी भगिनी रात्रि को हटाती है और जार सूर्य को देखकर प्रसन्न होती है। उषा आकाश की कन्या है, प्रिया है, अश्विनीकुमारों की सखी है, सुमंगली है, सदा युवती रहती है, बालक सूर्य को गोद में ले कर आती है, इसके रथ पर देव बैठे हैं, यह देवों की प्रिया है, प्रकाश का द्वारा खोलती है, रात्रि के काले वस्त्र (गोतम) को हटाती है और इसकी किरणें गायों के यूथ तुल्य हैं। आकाश के पूर्वी भाग में लाल–लाल गौ माताएँ प्रकाशित हो रही हैं। ये कर्मकुशल नारियाँ हैं। उषा देवी अपनी माता द्वारा सजाई नारी है। ऋग्वेद में उषा के लगभग २० सूक्त हैं। उनके कुछ मन्त्र ये हैं–

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषमभ्येति पश्चात् १।११५॥ २
गृहं गृहमह्ना याति सिषासन्ती द्योतना १।१२३।४
कन्येव तन्वा शाशदानां एषि देवि...संस्मयमाना युवतिः पुरस्ताद्
आविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती १।१२३।१०
सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे भद्रा १।१२३।११
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य।
परा च यन्ति पुनराचयन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः १।१२३।१२
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष....।
ज्येतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं १।९२।४
योषा जारस्य चक्षसा विभाति १।९२।११ दिवो दुहित्रा १।१८३।२

सूर्य की पत्नी अश्विनी और पुत्र अश्विनीकुमार

वेद और ज्योतिष में अश्विनी नक्षत्र के स्वामी अश्विनीकुमार हैं। संस्कृत में शीघ्र को आशु और शीघ्रगामी को अश्व कहा जाता है, इसलिये वेद में सूर्य अश्व है, उसकी पत्नी अश्विनी है और पुत्र अश्विनीकुमार हैं। ज्योतिष में अश्विनी नक्षत्र की योनि घोड़ी है अत: वह यात्रादि चल कर्मों में ग्राह्य है और गृहारंभादि स्थिर कर्मों में नहीं। वेद में अश्विनी जुड़वें भाई हैं पर इस शब्द से कौन सा जोड़ा लिया जाय, इसका निर्णय न प्राचीन वेदज्ञ कर सके हैं न नवीन। निरुक्त (१२।१) का कथन है कि भिन्न-भिन्न आचार्यों के मत में आकाशपृथ्वी, दिनरात, सूर्यचन्द्र या दो पुण्यात्मा राजे अश्विनौ हैं।

कावश्विनौ। द्यावापृथिव्यौ इत्येके। अहोरात्रावित्येके।
सूर्याचन्द्रमसावित्येके। पुण्यकृतौ राजानावित्येके॥

ये आमने सामने स्थित भी माने जाते हैं इसलिये कुछ लोग गुरु और शुक्र ग्रहों को भी अश्विनौ कहते हैं। कुछ आचार्य उषा के बाद और सूर्योदय के पूर्व के काल को अश्विनौ मानते हैं। शास्त्रों में इसका एक नाम अरुण भी है। लिखा है—

पञ्चपञ्च उषः कालः सप्तपंचारुणोदयः।

अर्थात् सूर्योदय से पाँचघटी (दो घंटा) पूर्व उषा का और तीन घटी पूर्व अरुण या अश्विनौ का आगमन होता है। अरुण सदा सूर्य के पास रहता है इसलिये सूर्य का सारथी भी कहा जाता है। वेदों में अश्विनौ या अश्विनीकुमार का वर्णन ५० से अधिक सूक्तों में है। यह कहीं उषा का भाई, कहीं पति और कहीं पुत्र कहा गया है। ऋग्वेद (१।१५८।५, ६) में लिखा है कि अश्विनीकुमारों ने नदी में डूबते दीर्घतमा को मरने से बचाया। इसका भाव यह है कि सूर्योदय के समय सूर्य किरणों रूपी प्रकाशमयी नदी में दीर्घतम (घोर अन्धकार) डूव कर मरने जा रहा था पर उसके साथी अरुण (सूर्योदय के पूर्व के काल) ने उसे मरने नहीं दिया। वह प्रतिदिन आता है। आता ही नहीं, अपने पुत्रों (मुहूर्तादिकों) के साथ आता है।

पुराण कहते हैं कि उतथ्य की पत्नी ममता का पुत्र दीर्घतमा पेटी में बन्द कर वहाया गया, वाद में उसको अनेक पुत्र हुए, उसका नाम गोतमा हो गया और हम उसी गोतम मुनि की सन्तान हैं पर वेद में उतथ्य नहीं, औचथ्य शब्द है। यहाँ प्रेममय रात्रि ही ममता है, औचित्य (औचत्य उतथ्य) ही पिता है और घोर अन्धकार ही दीर्घतमा है। पुराण में दीर्घतमा को नदी में बहाने की कथा है पर वेद में सूर्यकिरणों का समूह ही वह नदी है जिसमें दीर्घतमा (अन्धकार) वह जाता है। ऋग्वेद (१०।४२।२) में अश्विनों से पूछा गया है कि आप दिन और रात में दिखाई नहीं देते, कहाँ रहते हैं? जैसे पत्नी, पति को और विधवा भाभी देवर को सुला देती है उस प्रकार आप को कौन सुलाता है?

कुहस्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
का वां शयुत्रा वि-(धवे) व देवर मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ॥

अत: स्पष्ट है कि अश्विनीकुमार दिनरात की सन्धि में दिखाई देने वाले दृश्य हैं। वेद में सूर्यकिरणों के गौ, सूर्या, उषा, अहल्या, सरण्यू आदि कई नाम हैं और सूर्य के त्वष्टा, विश्वकर्मा, इन्द्र, विष्णु आदि कई नाम हैं। आजकल विश्वकर्मा को त्वष्टा कहा जाता है पर महाभारत और भविष्य पुराण आदि में सूर्य ही त्वष्टा है। लिखा है—

विवस्वानंशुमाँस्त्वष्टा त्वष्टा तपति फाल्गुने।
अदित्यां द्वादशादित्यास्त्वष्टा विष्णुर्निगद्यते॥

सूर्य की किरण सूर्या ही त्वष्टा की कन्या है। प्रकाश, अन्धकार, दिन और रात्रि ही त्वष्टा (सूर्य) के पुत्रपुत्री हैं,

इनके नाम यमयमी भी हैं। और ये वेद में भाई बहन हैं। कहीं-कहीं काली रात्रि गोरे सूर्य की पत्नी भी कही गयी है। वह रात में सूर्य को अपनी गोद में छिपा लेती है और दिन में सूर्य रात्रि को अपनी गोद में छिपा लेता है।

सूर्या का विवाह

सूर्य की किरणें चन्द्रमा पर पड़ती हैं तो वेद में वह स्थिति चन्द्रमा का विवाह कही जाती है। ऋग्वेद में लिखा है कि सोम को पत्नी की और सूर्यकन्या सूर्या को पति की अभिलाषा हुई तो सूर्य ने उसे चन्द्रमा के पास पहुँचाया और उस समय अश्विनीकुमार बराती बने। सूर्या पर सोम और अश्विनीकुमार (अरुण) दोनों आसक्त थे पर वह अश्विनों को चाहती थी। इसलिये उनके रथ पर स्वयं आ बैठी। रथ को सूर्य चन्द्र खींच रहे थे, सूर्या का मन ही रथ था और आकाश ही चादर थी। अश्विनों के रथ में तीन पहिये (दिन, रात और प्रभात) थे। जब वे सूर्या के घर पहुँचे तो रथ का एक पहिया (रात्रि) टूट गया। इनके रथ को लाल घोड़े या लाल गधे खींचते हैं (आकाश की लालिमा ही वह अश्व या रासभ है)।

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा। सखाभूदश्विनोरुषा।
मनो अस्या अन आसीत्। अरुणेभिरश्वैरायाति सुयुजा रथेन॥ ऋग्वेद १०।८४।६,१०

सोम (चन्द्रमा) और सूर्या के इस विवाह का अथर्ववेद में विशद वर्णन है। उसका अर्थ यह है कि स्तुति योग्य गुण ही सूर्या कन्या के आँचल थे, कर्म और छन्द ही मुकुट थे, शारीरिक अग्निजन्य स्वास्थ्य ही पुरोहित (अग्रगामी) था और वधूवर एक दूसरे को चाहते थे ॥८॥ सोम आकाश में बैठा है ॥१॥ उसका आश्रय पा कर द्वादश आदित्य बली हो जाते हैं, पृथिवी पुष्ट हो जाती है, महान् हो जाती है और सोम नक्षत्रों के पास स्थित है॥२॥ सोम वायु का रक्षक है। जो सोम की किरणों को पीते हैं वह उन्हें परिपूर्ण करता है और सोम वर्षों की, मासों की आकृति है ॥४॥ इसके बाद ऊपर वाले ऋग्वेद के मन्त्र हैं। सूर्या पति के घर चली तो दोनों शुक्र (अश्विनी) ही बैल थे॥१०॥

दिवि सोमो अधिश्रितः ॥१॥ सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२॥
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः॥४॥
शुक्रावनड्वाहौ आस्तां यदयात् सूर्या पतिम्॥१०॥ (अथर्व १४।१)

ऋग्वेद में सोम और सूर्या विषयक एक ऐसा मन्त्र है जिसके अर्थ के विषय में कई लोगों को भ्रम है। यह मन्त्र अथर्ववेद में अधिक स्पष्ट है और उसका स्पष्ट अर्थ है कि मघा नक्षत्र से सम्बन्धित माघ मास में गायों (सूर्य की किरणों) का हनन हो जाता है अर्थात् वे दुर्बल और विरल हो जाती हैं तथा फाल्गुन में फिर विकसित हो जाती हैं। वेदों में सूर्य की किरणों को सैकड़ों बार गौ कहा गया है और माघ में उनका हनन या विरलत्व स्पष्ट है फिर भी एक आचार्य का अर्थ है कि मघा में गायों का हनन (वध) और फाल्गुनी में व्यूहन (फैलाना) होता है। दीक्षित जी का अर्थ है—दहेज वाली गायें मघा में हाँकी जाती हैं और फाल्गुनी में कन्या पति के घर जाती है।

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविताऽयमवासृजत्।
मघासु हन्यन्ते गावः फाल्गुनीषु व्युह्यते। अथर्व १४।१।१३
अघासु हन्यन्ते गावो अर्जुनीषु। ऋ० १०।८५।१३

आगे लिखा है कि सूर्या के आने के बाद चन्द्रमा तेजस्वी (नया) होने लगता है पर कुछ दिनों बाद पत्नी मेंआसक्त होकर अपने को उसके वस्त्र से ढँक लेता है अतः श्रीहत हो जाता है। यह क्रिया दाहिका, कटु तथा विषवत् होती है और इसका रहस्य ऋतुवेत्ता ब्राह्मण ही जानते हैं। जो सूर्या के इस विवाह का रहस्य जानता है वही विवाह योग्य है। इसका भावार्थ

यह है कि क्रमशः वढ़ता हुआ चन्द्रमा पूर्णिमा को पत्नी की श्वेत साड़ी ओढ़ लेता है पर बाद में श्रीहीन होने लगता है अतः संयम आवश्यक है।

क्वैकं चक्रं वामासीद्। नवो नवो भवति जायमानो। तिरसे दीर्घमायुः।
अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया। पतिर्यद्वध्वो वाससः स्वमंगं
अभ्यूर्णुते। तृष्टमेतत् कटुकं विषवत्। सूर्या यो ब्रह्मा वेद वाधूर्यमर्हति॥ ऋग्वेद १०।८५।२८

उपनिषदों का सूर्य

छान्दोग्य उपनिषद् (अध्याय ३) का कथन है कि आदित्य निश्चित रूप से देवों के मधु का छत्ता है और उसकी किरणें छत्ते में रहने वाली मधुमक्षिकाओं के बच्चे हैं। आदित्य की पूर्व दिशा वाली किरणें उसके पूर्व की मधुनाड़ियाँ हैं, ऋग्वेद रूपी भ्रमर हैं, पुष्प हैं, अमृत हैं और आप (जल) हैं। उनसे यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नादि रसों की उत्पत्ति होती है। यह आदित्य का रोहित रूप है।

आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवंशो मरीचयः पुत्रा।
तस्य ये प्रांचो रश्मयस्ता एव प्राच्यो मधुनाड्य ऋच एष
मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपः। तस्याभितप्तस्य।
यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत। एतद् रोहितं रूपम्॥

आदित्य की दक्षिण दिशा वाली किरणें भी मधु नाड़ियाँ हैं। यजुर्वेद के मन्त्र ही वहाँ भ्रमर और पुष्प हैं। उनसे यश आदि उत्पन्न होते हैं, वह आदित्य का शुक्ल रूप है। आदित्य की पश्चिमी रश्मियाँ भी मधुनाडियाँ हैं। वहाँ साम श्रुतियाँ ही मधुकर, पुष्प, जल और अमृत हैं। उनसे यश, वीर्य और अन्नादि रस उत्पन्न होते हैं। वह आदित्य का कृष्ण रूप है। इसकी उत्तरी रश्मियाँ मधुनाडियाँ हैं, अथर्वांगिरस श्रुतियाँ भौंरे हैं, इतिहास पुराण पुष्प हैं और वे अमृत जल हैं। उनसे तेज आदि रस उत्पन्न होते हैं। देवगण, मरुद्गण, आदित्यगण और साध्य आदि गण इन अमृतों को खाते नहीं, केवल देखकर उत्साहित और तृप्त हो जाते हैं। वे इन अमृतों के आश्रय से ही जीवित रहते हैं। जो इस अमृत को जानता है वह एक वसु हो जाता है, रुद्र आदित्य और मरुत् हो जाता है। वह अमृत और स्वाराज्य पाता है, जो इस ब्रह्मोपनिषद् को जानता है उसके लिये यह मधु का आकर सूर्य कभी अस्त नहीं होता। रात्रि कभी आती ही नहीं। जो आदित्य को ब्रह्म मानता है और जानता है उसके समीप शीघ्र ही सुघोष आते हैं और वे शान्ति देते हैं।

तदमृतं मुखेन देवा नाश्नन्ति न पिबन्ति दृष्ट्वा तृप्यन्ति।
स्वाराज्यं पर्येता। यो विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपासते।
एनं साधवो घोषा आगच्छेयुरुप निम्रेडेरन् ३।१९॥

उपनिषदों में सूर्य की महिमा का अन्यत्र भी वर्णन है। हम सन्ध्योपासन के समय सूर्य की ओर मुख कर के बैठते हैं और सूर्य को अर्घ्य देते हैं। वेदमाता गायत्री का देवता सूर्य है, सूर्य नमस्कार एक विशिष्ट यौगिक क्रिया है, सूर्य किरणें अनेक शारीरिक और मानस रोगों की महौषध हैं, उदयकालीन किरणों का विशेष महत्त्व है, अनेक योगी सूर्य की ओर पीठ करके उससे भोजन लेते हैं और सूर्यकिरणों से दूर रहने वाले सदा रोगी रहते हैं। पाँच देवों में सूर्य का विशिष्ट स्थान है।

सौर सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के लोग सूर्य को लाल फूल चढ़ाते हैं, लाल चन्दन लगाते हैं और लाल माला पहनते हैं। कुछ लोगों

की शंका है कि क्या ब्रह्माण्ड के एक कोने में स्थित सूर्य ईश्वर है। वेद में इसका उत्तर यह है कि सूर्य बहुत कुछ देता है, द्युलोकवासी है, दीप्तिमान है इसलिये देव है किन्तु परमात्मा नहीं है। वह परमात्मा के नेत्र से उत्पन्न है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत

ब्रह्मपुराण (अध्याय ३३) का कथन है कि सूर्य महान् है, आदिदेव हैं, सृष्टि के कर्ता, पालक और संहर्ता हैं, ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हैं पर खेद है कि आज ज्योतिष में सूर्य पापग्रह है और उसका वार पापवार है। खेद है कि हम आज सूर्य से कुछ लेने की वैज्ञानिक पद्धति से दूर हैं और उनकी याचना से बहुत कुछ पाना चाहते हैं।

आदिदेवोसि देवानामैश्वर्यं च त्वमीश्वरः।
आदिकर्तासि भूतानां देवदेवो दिवाकरः॥
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
त्वं कालः सृष्टिकर्ता त्वं भर्ता हर्ता तथा प्रभुः॥

जापान की सूर्य देवी

जापान देश प्राचीन काल से ही सद्गुणों के अनुकरण में अग्रगण्य, महान् पुरुषार्थी, ज्ञान–विज्ञान सम्पन्न, त्यागी और वीर रहा है। वहाँ का राष्ट्रधर्म शिन्तो है। उसके ये सिद्धान्त मन को मोह लेते हैं—सारा विश्व एक परिवार है, आलस्य छोड़ो, निश्छल प्रार्थना से देवों और परमात्मा का आसन हिल जाता है, पाप–पुण्य परछाई की भाँति साथ लगे रहते हैं, पुण्य ही ईशकृपा प्राप्ति का एक साधन है, मन्दिर में बैठकर उपवास करने से सत्कर्म करना अच्छा है, स्वर्ग–नरक हमारे मन में हैं, देवों को अपने सदाचार से प्रसन्न करो, पूजा प्रार्थना से नहीं, ईश्वर सत्य के प्रेमी की रक्षा अवश्य करते हैं। बौद्धधर्म के संयोग से इस धर्म का सौन्दर्य और भी निखर गया है फिर भी उसमें कुछ रूढ़ियाँ विद्यमान् हैं।

भारत की भाँति जापान के शिन्तो धर्म में भी नदियों, पर्वतों, वायु, समुद्र, अग्नि तथा पृथ्वी आदि में ८० लाख देवों और देवियों का निवास माना जाता है किन्तु उन सब में मुख्य हैं, सूर्य देवी (अनाटेरा सुओमीकामो)। इनके बाद वृष्टि देवता और चन्द्रदेवता का स्थान है। भारत के सूर्यवंश की भाँति जापान का राजवंश इसी देवी से उत्पन्न माना जाता है। इसी से वहाँ के सम्राट् मेकेडो ईश्वर तुल्य समझे जाते हैं।

हमारे यहाँ सूर्यपुरुष है पर जापान में स्त्री है। इंगलिश में जड़ पदार्थ नपुंसक लिंगी माने जाते हैं पर चन्द्रमा स्त्री है। उसमें शी मून का प्रयोग होता है। हमारे फलज्योतिष में भी चन्द्रमा स्त्री ग्रह है पर यह अन्धानुकरण है। सत्य यह है कि जड़ पदार्थ स्त्री या पुरुष नहीं होते।

पौराणिक सूर्य, सूर्या और अश्विनौ

वेद का यह आलंकारिक वर्णन पुराणों में अपने मूल से दूर चला गया है और इतिहास मान लिया गया है। उसकी कुछ कथाएँ हैं–(१) ब्रह्मपुराण (अध्याय ६) में लिखा है कि सूर्य की पत्नी संज्ञा से यम और यमी उत्पन्न हुए। संज्ञा को सूर्य का तेज सहन नहीं हुआ तो उसने अपने शरीर से अपने सदृश छाया नाम की नारी पैदा की। वही सवर्णा थी। संज्ञा घोड़ी (अश्विनी) का रूप धारण कर चली गयी और जाते समय कहती गयी कि मेरे बच्चों का पालन करना तथा सूर्य से कुछ मत कहना। छाया में सूर्य से शनि, सावर्णि मनु और तपती कन्या का जन्म हुआ। छाया अपने बच्चों को अधिक मानती थी। इससे संज्ञा का पुत्र यम दुखी था। एक दिन उसने छाया को मारने के लिये पैर उठाया तो छाया ने शाप दिया कि तुम्हारा पैर कट कर गिर जायेगा और उसमें कीड़े पड़ेंगे। उसने सूर्य को सब रहस्य बता दिया। सूर्य छाया का केश पकड़ कर मारने लगे और अश्व

का रूप धारण कर अश्वरूप धारिणी संज्ञा के पास पहुँच गये। उन्होंने उसके मुख में मैथुन करते हुए वीर्यपात किया, उसने पर पुरुष जानकर वीर्य को वाहर झटका, उसे सूँघा, गर्भवती हो गयी और तब उससे अश्विनी कुमार पैदा हुए। इस प्रकार सूर्य की सब ८ सन्तानें हैं।

आघ्रातमात्र शुक्रात्तु कुमारौ सम्बभूवतुः।
नासत्यश्चैव दस्रश्च यौ स्तुतावश्विनाविति॥

पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड ८) के अनुसार सूर्य की तीन पत्नियाँ थीं। राज्ञी से रैवत मनु, प्रभा से प्रभात और त्वष्टा की पुत्री संज्ञा से यम, यमुना नदी और वैवस्वत मनु का जन्म हुआ। संज्ञा के जाने के बाद छाया से सावर्णि मनु, शनि और तपती का जन्म हुआ। सूर्य ने यम का शापोद्धार किया कि तुम्हारे पैर के कीड़ों को मुर्गे खायेंगे। पैर सुन्दर हो जायेगा और तुम लोकपाल बनोगे। छाया को शाप दिया कि तुम्हारे दोष से तुम्हारा पुत्र शनि क्रूर हो जायेगा।

शनि शशाप मार्तण्डश्छायाकोपप्रधर्षितः।
त्वं क्रूरदृष्टिर्भविता मातृदोषेण पुत्रक॥

मत्स्यपुराण (अध्याय ॥) का भी कथन है कि सूर्य इसके बाद त्वष्टा के पास गये। उन्होंने बताया कि आप का तेज असह्य होने के कारण मेरी कन्या चली आयी। इस समय वह घोड़ी का रूप धारण कर मरु देश में तप कर रही है। इतना कहकर त्वष्टा ने सूर्य को यंत्र पर चढ़ाकर उनका शरीर खरादा। उससे तेज निकल कर विष्णु का सुदर्शन चक्र, शंकर का त्रिशूल तथा इन्द्र का वज्र बनाया और पैरों को छोड़ सूर्य के शेष शरीर को सुरूप बना दिया। धर्मशील मनुष्यों को चाहिए कि वे मूर्तियों और चित्रों में सूर्य के पैर न बनावें। इसके बाद कामातुर सूर्यदेव घोड़े का रूप धारण कर वहाँ गये जहाँ संज्ञा घोड़ी बनकर तप कर रही थी। सूर्य ने न जाने क्यों, उसके मुख द्वारा ही मैथुन करना चाहा। संज्ञा भयभीत हो गयी और उसने पराया पुरुष समझ कर मुख में डाले उनके वीर्य को दोनों नासापुटों द्वारा बाहर झटक दिया। भूमि पर गिरते ही उससे झट दो कुमार पैदा हो गये। नासिकाग्र से पैदा होने के कारण उन्हें नासत्य भी कहा जाता है।

अश्विनीरूपामास्थाय भूतले संप्रतिष्ठिता।
कामयामास कामार्तो मुख एव दिवाकरः॥
अश्वरूपेण महता तेजसा च समावृतः।
संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद् भयविह्वला॥
नासापुटाभ्यामुत्सृष्टं परोऽयमिति शंकया।
तद्रेतसा ततो जातौ अश्विनौ इति निश्चितम्॥
दस्त्रौ सुतत्वात् संजातौ नासत्यौ नासिकाग्रतः ३६

भागवत पुराण के अनुसार सूर्य को संज्ञा से श्राद्धदेव मनु, यम, यमी और अश्विनीकुमार तथा छाया से तपती कन्या, सावर्णि मनु और शनि पैदा हुए। कई पुराणों के मत में यमुना नदी ही यमी है और ताप्ती नदी ही तपती कन्या है किन्तु वस्तुतः यह धरती की नहीं, आकाश की कथा है। भविष्यपुराण का कथन है कि विश्वकर्मा के भाई सूर्य ने विश्वकर्मा की पुत्री से अर्थात् अपनी भतीजी सूर्या से विवाह किया तो उससे यम, यमी, मनु पैदा हुए और छाया से सावर्णि मनु, शनि और तपती का जन्म हुआ। पता लगने पर सूर्य ने छाया को भस्म कर दिया तो मनु और शनि ने पीटकर सूर्य को भगा दिया। वह संज्ञा के पास गया और उसका अश्विनी रूप देखकर अश्व बन गया तब अश्विनी (घोड़ी) संज्ञा से अश्विनीकुमार और रैवत मनु पैदा हुए। यहाँ सूर्य की ८, ९ सन्तानें हैं।

मनुर्यमो यमी चैव सावर्णिश्च शनैश्चरः।
अश्विनौ तपती चैव रैवतश्च रवेः सुताः॥
ततस्तु जनयामास संज्ञा सूर्यसुतं शुभम्।
रूपेण चात्मनस्तुल्यं रैवतं नाम नामतः (१।७६)॥

शंका—(१) क्या सूर्य चेतन प्राणी है और उसकी कई पत्नियाँ हैं? (२) पत्नियों की संख्या में, नामों में और सन्तान संख्या में, एक ही व्यास द्वारा लिखे पुराणों में इतना मतभेद क्यों है? (३) व्यास जी एक कथा को अपने कई ग्रन्थों में क्यों लिखते हैं? (४) संज्ञा को सूर्य का तेज असह्य था तो उसने सूर्य से संभोग कैसे किया? उनसे बात कैसे करती थी? वह जल क्यों नहीं गयी? (५) सूर्य और संज्ञा घोड़ा घोड़ी क्यों बने? क्या वे देव-देवी बने रहकर संभोग नहीं कर सकते थे? (६) संज्ञा को सूर्य का तेज असह्य था तो उसकी छाया को सह्य कैसे हो गया? (७) क्या कोई नारी पति के संयोग बिना अपने शरीर से कन्या निकाल सकती है? (८) सूर्य ने अपनी पत्नी के देह से उत्पन्न कन्या को पत्नी कैसे बनाया? (९) वे उसे पहचान क्यों नहीं सके? संज्ञा का भागना, जान क्यों नहीं गये? (१०) मानव विश्वकर्मा ने अपनी कन्या सूर्य से क्यों ब्याही ? (११)संज्ञा की कन्या छाया पैदा होते ही माता के वय की कैसे हो गयी? (१२) क्या घोड़ी घोड़ा मुख से मैथुन करते हैं? (१३) क्या पति के वीर्य को सूँघने से नारी गर्भिणी हो जाती हैं? (१४) क्या देव अपनी भतीजी से विवाह करते हैं? (१५) क्या ऐसे सूर्य की पूजा उचित है? (१६) क्या इस घटना के पूर्व आकाश में शनि नहीं था? धरती पर यमुना नहीं थी? स्वर्ग में यम नहीं थे? (१७) नहीं थे तो वेद में इनका वर्णन क्यों है? क्या वेद इस घटना के बाद बने है? (१८) सूर्य की इस दौड़ धूप के समय क्या आकाश का सूर्य अदृश्य था? (१९) सूर्य के शाप से शनि क्रूर हो गया, सूर्य किसके शाप से क्रूर और पापग्रह हो गया है? (२०) क्या किसी चेतन प्राणी का शरीर खरादा जा सकता है और खरादने के बाद वह जीवित रह सकता है? (२१) क्या खरादने पर वस्तु से तेज निकलता है और उसके चक्र, वज्र, त्रिशूल बनते हैं? (२२) वेद में इन्द्र के वज्र और शिव के पिनाक आदि का वर्णन है तो क्या वेद इस घटना के बाद बने हैं? (२३) क्या इन कथाओं से देवों की प्रतिष्ठा बढ़ती है? (२४) क्या हम कभी इस कथा के मूल में जाने का प्रयास करेंगे?

भविष्य पुराण में समाधान

प्रागुक्तेऽर्कस्य द्वे भार्ये राज्ञीनिक्षुभसंज्ञिते।
तयोस्तु राज्ञी द्यौर्ज्ञेया निक्षुभा पृथिवी स्मृता॥
क्षुभ संचलने धातुर्निश्चला तेन निक्षुभा।
राज्ञी संज्ञा प्रभा त्वाष्ट्री सरण्यू द्यौर्विभाव्यते॥
तस्यास्तु या तनुच्छाया निक्षुभा सा महीमयी॥
तापी नाम नदी चेयं विन्ध्यमूलाद् विनिःसृता।
अधिकं राजते यस्मात्तेन राजा रविः स्मृतः॥

अर्थ—आकाश का ऊपरी भाग द्यौ सूर्य की राज्ञी (रानी) है और क्षुब्ध न होने वाली निक्षुभा पृथ्वी ही दूसरी पत्नी है। रानी की संज्ञा, सरण्यू और प्रभा है तथा पृथ्वी ही छाया है। सूर्य दिन में रानी संज्ञा के पास रहता है और रात में अश्ववेग से छाया पृथ्वी के पास आ जाता है। उसको इन दोनों के संयोग से १० पुत्र-पुत्री उत्पन्न होते हैं। वे सब कालमान हैं। उनके नाम हैं—यम (दिन), यमी (रात), मनु (जागरणकाल उषा), तपती (उष्णकाल या मध्यदिन), अरुण, अश्विनीकुमार, सन्ध्या, शनि, प्रभात। सूर्य विराजमान होने से राजा है। वस्तुतः रात्रि ही सूर्य की पत्नी संज्ञा है और उषा ही उसकी कन्या छाया है। यह बात वेद से सिद्ध हो जाती है। ऋग्वेद (१०।१७) में स्पष्ट लिखा है कि रात्रि और उषा ही संज्ञा और छाया हैं। त्वष्टा

(सूर्य) अपनी कन्या सरण्यू (उषा) का विवाह प्रतिदिन करता है। वह समय सबके जागरण का होता है। सूर्यपत्नी रात्रि उस समय भाग जाती है। उसे सूर्य का तेज सहन नहीं होता और वह जाते समय अपने सदृश एक छाया नारी सूर्य को दे जाती है, उससे अश्विनीकुमार पैदा होते हैं, कलह होता है और रात्रि फिर सूर्य के पास आ जाती है।

त्वष्टा दुहित्रे बहतुं कृणोतीदं विश्वं भुवनं समेति।
यमस्य माता पर्युह्यमाना जाया विवस्वतो ननाश॥ १॥
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते।
उतावश्विनावभरद्....मिथुना सरण्यूः॥ २॥

सूर्य सम्बन्धी अन्य पौराणिक कथाएँ

(२) ब्रह्मवैवर्तपुराण (गणपति खण्ड १८) का कथन है कि एक बार शिव ने माली सुमाली नामक भक्तों के घातक सूर्य को त्रिशूल से मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। तब सूर्यपिता कश्यप मृत सूर्य को गोद में लेकर रोने लगे। उन्होंने शिव को शाप दिया कि तुम्हारे पुत्र गणेश का भी इसी प्रकार अंगभंग होगा। बाद में शिव ने सूर्य को जीवित कर उसे उसकी राशि में बैठा दिया।

एकदा शंकरः सूर्यं जघान परमक्रुधा।
जहार चेतनां तस्य स रथान्निपपात च॥
कृत्वा वक्षसि तं शोकाद्विललाप च कश्यपः।
शिवस्तं जीवयामास स्वराशि च जगाम सः॥

शंका—क्या सूर्य किसी मातापिता से उत्पन्न है? क्या कश्यप शिव से महान् है? क्या सूर्य पृथ्वी के एक कोने में समा सकता है? क्या सूर्य की आकाश में कोई निश्चित राशि है? क्या इस घटना के समय भारत में राशियों का प्रचार था? क्या राशि प्रचार के बाद सूर्य कभी धरती पर गिरा है? गणेशजन्म की कौन सी कथा सत्य है?

इसी पुराण की कथा है कि एक बार जमदग्नि मुनि स्तनभार से लटकी, अतिसूक्ष्मवस्त्र धारिणी और कटाक्षबाण चलाने वाली अपनी पत्नी रेणुका के साथ नर्मदा के तट पर दिन में ही संभोग में तत्पर थे। यह बात सूर्य को अच्छी नहीं लगी तो वे ब्राह्मण रूप धारण कर वहाँ पहुँच गये और बोले कि आप सदृश वेदवेत्ता को दिन में मैथुन नहीं करना चाहिए। जमदग्नि ने कहा कि कृष्ण के भक्तों के लिये कोई कर्म अशुभ नहीं होता और तेजस्वियों को कोई दोष नहीं लगता। आज तुमने मेरा रसभंग किया है इसलिये अब मेरे शाप से तुम पर पापग्रहों की दृष्टि का प्रभाव पड़ेगा, तुम्हें राहु ग्रसा करेगा और मेघ ढका करेंगे अतः कुछ समय तक अदृश्य हो जाया करोगे। लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, दशम और द्वादश स्थानों में अशुभ हो जाया करोगे। भार्या के वियोग से निस्तेज हो जाओगे और मालीसुमाली युद्ध में शंकर से पराजित हो जाओगे। सूर्य ने जमदग्नि को शाप दिया कि क्षत्रिय के हाथ से तुम्हारी पराजय और मृत्यु होगी (ब्रह्मवैवर्त श्रीकृष्ण–जन्मखण्ड ७६)

नवोढया सुन्दर्या स्तनभारेण नम्रया।
अतीव सूक्ष्माम्बरया कटाक्षयुतया तथा॥
निर्जने नर्मदा तीरे विजहार मुनीश्वरः।
न वासुदेवभक्तानां अशुभं विद्यते क्वचित्॥
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा।
मेघाच्छन्नः स्वल्पतेजा राहुग्रस्तो भविष्यसि॥

जन्मसप्तांकरिष्फाष्ट चतुर्थ दशमे तथा।
भार्यादुःखेनाल्पतेजाः शुंभुना च पराजितः॥

शंकाएँ

(१) ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्ण को प्रसन्न करने के लिये सब देव और मुनियों को कृष्ण का दास, कृष्ण का पुत्र और कृष्ण से नवीन कहता है। क्या श्री कृष्ण इससे प्रसन्न हो जायेंगे? (२) क्या एक ही व्यास ऐसी परस्पर विरुद्ध बातें लिख सकते हैं? क्या सूर्य ब्राह्मण बन कर घर-घर शिक्षा देते हैं? (४) क्या उन्होंने ऐसा कर के संसार को सुधार दिया? (५) क्या इस घटना के पूर्व सूर्यग्रहण नहीं लगता था? (६) और मेघ बादलों को भी ढक नहीं पाते थे? (७) क्या जमदग्नि के समय राशियों का और इस जन्मपत्री का प्रचार था? (८) सूर्य अपनी राशि में कैसे जा बैठा? क्या आकाश में उसकी कोई निश्चित कोठरी है? (९) क्या जमदग्नि के समय सूर्यराशि का निर्णय हो चुका था? (१०) क्या धर्मरक्षा के लिये अवतीर्ण भगवान श्री कृष्ण के लिये और उनके भक्तों के लिये कुछ भी अशुभ नहीं होता? क्या बड़े लोगों को पाप नहीं लगता?

(४) सूर्य, जमदग्नि और छाता जूता

महाभारत (अनुशासनपर्व ९५) की कथा है कि एक बार हमारे महान् गोत्र प्रवर्तक जमदग्नि मुनि अपनी पत्नी रेणुका के साथ धनुषक्रीड़ा कर रहे थे। वे धनुष से बाणों को फेंकते और रेणुका बार-बार ला कर दिया करती थीं। मध्याह्न होने पर उनके पैर जलने लगे और सिर सन्तप्त हो गया। एक वृक्ष की छाया में थोड़ा रुक गयीं और पति के शाप के भय से मुहूर्त भर में ही बाण लेकर आ गयीं। जमदग्नि ने देर होने का कारण पूछा तो वे काँपती हुई बोलीं कि हे नाथ! सूर्य के तेज से मेरे सिर और पैर में जलन हो रही थी इसलिये छाया में थोड़ा रुक गयी। सुबह से दोपहर तक पत्नी को धूप में दौड़ाने वाले मुनि ने कहा कि प्रिये! तुम्हें कष्ट देने वाले सूर्य को मैं अभी आकाश से गिरा रहा हूँ। उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ा कर ज्यों हो सूर्य की ओर मुख किया, सूर्यदेव ब्राह्मण का रूप धारण कर सामने आकर गिड़गिड़ाने लगे कि हे विप्रर्षे! आप सर्वज्ञ हैं, मैंने कोई अपराध नहीं किया है। मुझे गिराने से आपको कुछ नहीं मिलेगा। इससे मुनि का क्रोध शान्त नहीं हुआ तो सूर्य फिर बोले कि हे भगवन्! अपराधी हूँ और आप की शरण में हूँ, मेरी रक्षा करें। तब जमदग्नि ने हँस कर कहा कि मैं शरणागतों को नहीं मारता। निर्भय हो जाओ। सूर्य ने छाता-जूता देते हुए कहा कि महर्षे! मेरे ताप से सिर और पैर की रक्षा के लिये इनको ले लें। इन्हें संसार में कोई नहीं जानता, मैंने ही इनका अविष्कार किया है। ब्राह्मणों को इन दोनों के दान करने से अनन्त फल की प्राप्ति होगी। इसमें संशय करना पाप है। जो ब्राह्मण को सौ कमानियों वाला छाता देगा, इन्द्रलोक में अनन्त काल तक अप्सराएँ और देव उसकी सेवा करते रहेंगे। जूता देने वाला उससे ऊपर वाले उस गोलोक में जायेगा, जहाँ की कामिनियों के सौन्दर्य का वर्णन करने में कोई कवि समर्थ नहीं है।

महर्षे शिरसस्त्राणं छत्रं मद्रश्मिवारणम्।
प्रतिगृह्णीष्व पद्भ्यां च त्राणार्थं चर्मपादुके॥
छत्रोपानहमेतत्तु सूर्येणैव प्रवर्तितम्।
अद्यप्रभृतिचैवेह लोके सम्प्रचरिष्यति॥
शुभ्रं शतशलाकं यश्छत्रं दद्याद् द्विजातये।
शक्रलोके स वसति नात्र कार्या विचारणा॥
अप्सरोभिः सुरैश्चैव पूज्यमानो निरन्तरम्।
गोलोकं याति विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ॥

शंकाएँ—(१) मण्डप में वर के प्रविष्ट होते समय सर्व प्रथम उसके उपानह (जूते) निकलवाये जाते हैं और उस समय जो दो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनमें उपानह शब्द चार बार आता है तो क्या इस घटना के पूर्व जूता नहीं था? (२) क्या उस समय राजे नंगे पैर रहते थे? (३) क्या तब राजे छत्र धारण नहीं करते थे? (४) सूर्य में ग्रहण लगने का शाप जमदग्नि ने दो बार क्यों दिया? क्या पहला शाप व्यर्थ था? (५) जमदग्नि से बहुत प्राचीन वेदों में ग्रहण का यह वर्णन है—

यत्त्वा सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।(ऋ० ५।४०।५)

तो उन्होंने यह शाप क्यों दिया? (६) क्या बाण मार कर सूर्य को धरती पर गिराया जा सकता है? (७) क्या इसके पहले जमदग्नि के पैर कभी नहीं जले थे? (८) जमदग्नि को अपनी पत्नी पर ही इतनी दया क्यों आयी? दूसरों के भी पैर तो जल रहे थे? (९) सूर्य आजकल मानव रूप नहीं धारण करता क्यों? (१०) ब्राह्मण को जूता दे देने से ही स्वर्ग की कामिनियाँ मिल जाती हैं तो यज्ञ आदि कर्म क्यों किये जायँ?

(५) एक बार तपती रेत में पार्वती के पैर जल गये तो शिव ने त्रिशूल से मार कर सूर्य को गिरा दिया। वे काशी के उस लोलार्क कुण्ड में गिरे थे जहाँ आज भी भाद्रपद शुक्ल ६ को बहुत बड़ा मेला लगता है और नरनारी पुत्रलाभ के लिये लोलार्ककुण्ड में नहाते हैं। इस मास के कृष्णपक्ष में हलषष्ठी और आषाढ़ शुक्ल में स्कन्दषष्ठी मनायी जाती है। स्कन्द ही षष्ठी तिथि के स्वामी हैं।

(६) सूर्यसुतसुग्रीव और इन्द्रसुतबाली

वेदों में अनेक बार सूर्य को ही इन्द्र कहा गया है पर पुराणों में वे भिन्न-भिन्न दो देव हैं। कर्ण और अर्जुन सूर्य और इन्द्र के पुत्र कहे जाते हैं। एक कवि ने लिखा है कि मेरी पत्नी की कटि इतनी पतली है कि रात भर टटोलने पर भी मुझे नहीं मिली। कवि को रात के अन्धेरे में नहीं मिली पर हमारे सहस्राक्ष इन्द्र और भुवनभास्कर सूर्य को मध्याह्न में नहीं मिली। कई पुराणों और महिम्नस्तोत्र का कथन है कि एक बार कामी ब्रह्मा जी की कन्या सरस्वती पिता के भय से मृगी का रूप धारण कर आकाश में उड़ गयी। ब्रह्मा जी आज भी मृग का रूप धारण कर उसके पीछे दौड़ रहे हैं। शिव ने उनके पेट में त्रिकाण्ड बाण मारा है, वह अभी भी दिखाई दे रहा है। शिव खदेड़ रहे हैं फिर भी ब्रह्मा कन्या (रोहिणी) का पीछा छोड़ नहीं रहे हैं। वे ही ब्रह्मा जी विष्णु रूपी सूर्य और देवराज इन्द्र को ब्रह्मचर्य और अध्यात्म की शिक्षा देते हैं। अध्यात्मरामायण (७।३) में अगस्त्य मुनि श्रीराम को कथा सुना रहे हैं कि उत्तर ध्रुव पर सोने का एक लाख योजन ऊँचा सुमेरु नाम का पर्वत है। उसका मध्य शिखर मणि की भाँति प्रकाशमान है और उस पर ब्रह्मा का सौ योजन विस्तृत सभा भवन है। उसमें एक बार चार मुख वाले ब्रह्मा जो ध्यान में बैठे थे कि उनके नेत्रों से बहुत से दिव्य अश्रुबिन्दु गिर पड़े। ब्रह्मा जी ने उन्हें हाथ में लिया, कुछ सोचा तथा भूमि पर गिराया तो एक विशालकाय वानर पैदा हो गया। एक दिन वह पास वाली बावली में अपनी छाया देख, उसे वानर समझ कर लड़ने को कूदा तो झट एक मनोहारिणी कामिनी हो गया। देवराज इन्द्र उस दिन, दिन में १२ बजे ब्रह्मा की पूजा कर और उनसे अध्यात्मविद्या सीख कर लौट रहे थे। वे उस सुन्दरी के अंगों को देख कर कामातुर हो गये और उस पर टूट पड़े।

मेरोः स्वर्णमयस्याद्रेर्मध्यशृंगे मणिप्रभे।
तस्मिन् समास्ते विस्तीर्णा ब्रह्मणः शतयोजना॥
नेत्राभ्यां पतितं दिव्यमानन्दसलिलं बहु।
भूमौ पतितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः॥
दृष्ट्वा प्रतिकपिं मत्वा निपपात जलान्तरे।
अपश्यत् सुन्दरीं रामामात्मानं विस्मयं गतः॥

जन्मसप्तांकरिष्फाष्ट चतुर्थ दशमे तथा।
भार्यादुःखेनाल्पतेजाः शुंभुना च पराजितः॥

शंकाएँ

(१) ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्ण को प्रसन्न करने के लिये सब देव और मुनियों को कृष्ण का दास, कृष्ण का पुत्र और कृष्ण से नवीन कहता है। क्या श्री कृष्ण इससे प्रसन्न हो जायेंगे? (२) क्या एक ही व्यास ऐसी परस्पर विरुद्ध बातें लिख सकते हैं? क्या सूर्य ब्राह्मण बन कर घर-घर शिक्षा देते हैं? (४) क्या उन्होंने ऐसा कर के संसार को सुधार दिया? (५) क्या इस घटना के पूर्व सूर्यग्रहण नहीं लगता था? (६) और मेघ बादलों को भी ढक नहीं पाते थे? (७) क्या जमदग्नि के समय राशियों का और इस जन्मपत्री का प्रचार था? (८) सूर्य अपनी राशि में कैसे जा बैठा? क्या आकाश में उसकी कोई निश्चित कोठरी है? (९) क्या जमदग्नि के समय सूर्यराशि का निर्णय हो चुका था? (१०) क्या धर्मरक्षा के लिये अवतीर्ण भगवान श्री कृष्ण के लिये और उनके भक्तों के लिये कुछ भी अशुभ नहीं होता? क्या बड़े लोगों को पाप नहीं लगता?

(४) सूर्य, जमदग्नि और छाता जूता

महाभारत (अनुशासनपर्व ९५) की कथा है कि एक बार हमारे महान् गोत्र प्रवर्तक जमदग्नि मुनि अपनी पत्नी रेणुका के साथ धनुषक्रीड़ा कर रहे थे। वे धनुष से बाणों को फेंकते और रेणुका बार-बार ला कर दिया करती थीं। मध्याह्न होने पर उनके पैर जलने लगे और सिर सन्तप्त हो गया। एक वृक्ष की छाया में थोड़ा रुक गयीं और पति के शाप के भय से मुहूर्त भर में ही बाण लेकर आ गयीं। जमदग्नि ने देर होने का कारण पूछा तो वे काँपती हुई बोलीं कि हे नाथ! सूर्य के तेज से मेरे सिर और पैर में जलन हो रही थी इसलिये छाया में थोड़ा रुक गयी। सुबह से दोपहर तक पत्नी को धूप में दौड़ाने वाले मुनि ने कहा कि प्रिये! तुम्हें कष्ट देने वाले सूर्य को मैं अभी आकाश से गिरा रहा हूँ। उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ा कर ज्यों हो सूर्य की ओर मुख किया, सूर्यदेव ब्राह्मण का रूप धारण कर सामने आकर गिड़गिड़ाने लगे कि हे विप्रर्षे! आप सर्वज्ञ हैं, मैंने कोई अपराध नहीं किया है। मुझे गिराने से आपको कुछ नहीं मिलेगा। इससे मुनि का क्रोध शान्त नहीं हुआ तो सूर्य फिर बोले कि हे भगवन्! अपराधी हूँ और आप की शरण में हूँ, मेरी रक्षा करें। तब जमदग्नि ने हँस कर कहा कि मैं शरणागतों को नहीं मारता। निर्भय हो जाओ। सूर्य ने छाता-जूता देते हुए कहा कि महर्षे! मेरे ताप से सिर और पैर की रक्षा के लिये इनको ले लें। इन्हें संसार में कोई नहीं जानता, मैंने ही इनका अविष्कार किया है। ब्राह्मणों को इन दोनों के दान करने से अनन्त फल की प्राप्ति होगी। इसमें संशय करना पाप है। जो ब्राह्मण को सौ कमानियों वाला छाता देगा, इन्द्रलोक में अनन्त काल तक अप्सराएँ और देव उसकी सेवा करते रहेंगे। जूता देने वाला उससे ऊपर वाले उस गोलोक में जायेगा, जहाँ की कामिनियों के सौन्दर्य का वर्णन करने में कोई कवि समर्थ नहीं है।

महर्षे शिरसस्त्राणं छत्रं मद्रश्मिवारणम्।
प्रतिगृह्णीष्व पद्भ्यां च त्राणार्थं चर्मपादुके॥
छत्रोपानहमेतत्तु सूर्येणैव प्रवर्तितम्।
अद्यप्रभृतिचैवेह लोके सम्प्रचरिष्यति॥
शुभ्रं शतशलाकं यश्छत्रं दद्याद् द्विजातये।
शक्रलोके स वसति नात्र कार्या विचारणा॥
अप्सरोभिः सुरैश्चैव पूज्यमानो निरन्तरम्।
गोलोकं याति विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ॥

शंकाएँ—(१) मण्डप में वर के प्रविष्ट होते समय सर्व प्रथम उसके उपानह (जूते) निकलवाये जाते हैं और उस समय जो दो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनमें उपानह शब्द चार बार आता है तो क्या इस घटना के पूर्व जूता नहीं था? (२) क्या उस समय राजे नंगे पैर रहते थे? (३) क्या तब राजे छत्र धारण नहीं करते थे? (४) सूर्य में ग्रहण लगने का शाप जमदग्नि ने दो बार क्यों दिया? क्या पहला शाप व्यर्थ था? (५) जमदग्नि से बहुत प्राचीन वेदों में ग्रहण का यह वर्णन है—

यत्त्वा सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः। (ऋ० ५।४०।५)

तो उन्होंने यह शाप क्यों दिया? (६) क्या बाण मार कर सूर्य को धरती पर गिराया जा सकता है? (७) क्या इसके पहले जमदग्नि के पैर कभी नहीं जले थे? (८) जमदग्नि को अपनी पत्नी पर ही इतनी दया क्यों आयी? दूसरों के भी पैर तो जल रहे थे? (९) सूर्य आजकल मानव रूप नहीं धारण करता क्यों? (१०) ब्राह्मण को जूता दे देने से ही स्वर्ग की कामिनियाँ मिल जाती हैं तो यज्ञ आदि कर्म क्यों किये जायँ?

(५) एक बार तपती रेत में पार्वती के पैर जल गये तो शिव ने त्रिशूल से मार कर सूर्य को गिरा दिया। वे काशी के उस लोलार्क कुण्ड में गिरे थे जहाँ आज भी भाद्रपद शुक्ल ६ को बहुत बड़ा मेला लगता है और नरनारी पुत्रलाभ के लिये लोलार्ककुण्ड में नहाते हैं। इस मास के कृष्णपक्ष में हलषष्ठी और आषाढ़ शुक्ल में स्कन्दषष्ठी मनायी जाती है। स्कन्द ही षष्ठी तिथि के स्वामी हैं।

(६) सूर्यसुतसुग्रीव और इन्द्रसुतबाली

वेदों में अनेक बार सूर्य को ही इन्द्र कहा गया है पर पुराणों में वे भिन्न-भिन्न दो देव हैं। कर्ण और अर्जुन सूर्य और इन्द्र के पुत्र कहे जाते हैं। एक कवि ने लिखा है कि मेरी पत्नी की कटि इतनी पतली है कि रात भर टटोलने पर भी मुझे नहीं मिली। कवि को रात के अन्धेरे में नहीं मिली पर हमारे सहस्राक्ष इन्द्र और भुवनभास्कर सूर्य को मध्याह्न में नहीं मिली। कई पुराणों और महिम्नस्तोत्र का कथन है कि एक बार कामी ब्रह्मा जी की कन्या सरस्वती पिता के भय से मृगी का रूप धारण कर आकाश में उड़ गयी। ब्रह्मा जी आज भी मृग का रूप धारण कर उसके पीछे दौड़ रहे हैं। शिव ने उनके पेट में त्रिकाण्ड बाण मारा है, वह अभी भी दिखाई दे रहा है। शिव खदेड़ रहे हैं फिर भी ब्रह्मा कन्या (रोहिणी) का पीछा छोड़ नहीं रहे हैं। वे ही ब्रह्मा जी विष्णु रूपी सूर्य और देवराज इन्द्र को ब्रह्मवर्य और अध्यात्म की शिक्षा देते हैं। अध्यात्मरामायण (७।३) में अगस्त्य मुनि श्रीराम को कथा सुना रहे हैं कि उत्तर ध्रुव पर सोने का एक लाख योजन ऊँचा सुमेरु नाम का पर्वत है। उसका मध्य शिखर मणि की भाँति प्रकाशमान है और उस पर ब्रह्मा का सौ योजन विस्तृत सभा भवन है। उसमें एक बार चार मुख वाले ब्रह्मा जो ध्यान में बैठे थे कि उनके नेत्रों से बहुत से दिव्य अश्रुबिन्दु गिर पड़े। ब्रह्मा जी ने उन्हें हाथ में लिया, कुछ सोचा तथा भूमि पर गिराया तो एक विशालकाय वानर पैदा हो गया। एक दिन वह पास वाली बावली में अपनी छाया देख, उसे वानर समझ कर लड़ने को कूदा तो झट एक मनोहारिणी कामिनी हो गया। देवराज इन्द्र उस दिन, दिन में १२ बजे ब्रह्मा की पूजा कर और उनसे अध्यात्मविद्या सीख कर लौट रहे थे। वे उस सुन्दरी के अंगों को देख कर कामातुर हो गये और उस पर टूट पड़े।

मेरोः स्वर्णमयस्याद्रेर्मध्यशृंगे मणिप्रभे।
तस्मिन् समास्ते विस्तीर्णा ब्रह्मणः शतयोजना॥
नेत्राभ्यां पतितं दिव्यमानन्दसलिलं बहु।
भूमौ पतितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः॥
दृष्ट्वा प्रतिकपिं मत्वा निपपात जलान्तरे।
अपश्यत् सुन्दरीं रामामात्मानं विस्मयं गतः॥

इन्द्रो मध्याह्नसमये दृष्ट्वा नारीं मनोरमाम्।
कन्दर्पशरविद्धांगस्त्यक्तवान् वीर्यमुत्तमम्॥

हमारे दुर्वासा और नारदादि ऋषियों का शाप ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और सूर्यादि देवों को लगता है पर रावण, कंस, गज़नवी, गोरी आदि को नहीं लगता। इन्द्र को गौतम के शाप से एक सहस्त्र भग हो गये थे और बाद में वे नेत्रों में परिणत हो गये। इसी से वे सहस्त्राक्ष कहे जाते हैं किन्तु वे मध्याह्नकाल में भी वीर्यपातस्थल को देख न सके। उनका वीर्य कमर, नाभि और जाँघ आदि पर भी नहीं बल्कि उल्टी दिशा में सिर के बालों में गिर पड़ा। बच्चा रज और वीर्य के संयोग से पैदा होता है पर वहाँ केवल वीर्य से ही बाली पैदा हो गया। चूँकि वहाँ नारी का गर्भस्थान नहीं था इसलिये लाखों बाली पैदा होने चाहिए थे पर पता नहीं क्यों एक ही बाली उत्पन्न हुआ। इन्द्र उसको एक सुवर्ण का हार देकर स्वर्ग चले गये। इन्द्र कुछ ही दूर गये होंगे कि सूर्य देव आ गये और उनकी भी वही दशा हुई। जिस सूर्य के उदय से हम सबके नेत्र प्रकाशित हो जाते हैं उस सूर्य को भी संभोग स्थान नहीं दीखा किंवा काकली या विपरीतरति के प्रसंग में उसने कामिनी की ग्रीवा पर ही वीर्यपात कर दिया और उससे झट एक विशालकाय वानर पैदा हो गया। यहाँ भी न जानें क्यों लाखों शुक्राणुओं द्वारा एक वानर पैदा हुआ।

तामप्राप्यैव तद्बीजं बालदेशेऽपतद् भुवि। बाली समभवत्तत्र।
शक्रतुल्यपराक्रमः। तस्य दत्त्वा सुरेशानः स्वर्णमालां दिवंगतः।
भानुरप्यागतोवीर्यं ग्रीवादेशेऽसृजन्महत्....महाकायोभवद्धरिः॥

सूर्य ने तुरत हनुमान को बुलाया और उसे सुग्रीव के लिये समर्पित कर दिया। वह कामिनी दोनों पुत्रों को लेकर रात को सोई तो सबेरा होते–होते पुनः वानर हो गयी और पुत्रों को लेकर किष्किन्धा चली आयी। इस कथा में अनेक शंकाएँ हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि देवों के वीर्य से और मानवी के सम्पर्क से वानर क्यों पैदा हो गये। वस्तुतः इस कथा में जितनी सचाई है ठीक उतनी ही इन्द्र के नक्षत्र ज्येष्ठा के भीषण होने में, सूर्य के पापग्रह होने में और सूर्यादि ग्रहों के जातकोक्त फलों में है।

(६) महाभारत की कथा है कि कुन्ती ने सूर्य का ध्यान किया तो वे आ गये और कुन्ती की सुन्दरता से मोहित होकर संभोग की याचना करने लगे क्योंकि उसका तेज सूर्य सा था और सूर्य को स्वर्ग में कोई वैसी अप्सरा नहीं मिली थी। कुन्ती ने बार–बार प्रार्थना की कि आप मेरे आराध्य देव हैं, पिता हैं और मैं कुमारी कन्या हूँ पर सूर्य अपने को रोक न सके, परिणाम स्वरूप कुन्ती गर्भवती हो गयी और उसने कान से कर्ण को पैदा किया। आप कहेंगे कि कान से बच्चा नहीं पैदा होता और होने पर पर्दा फट जायेगा किन्तु जान लें कि त्रेता में कुंभकर्ण द्वारा निगले भालू वानर उसके कान–नाक से निकलते थे पर उसके कान का पर्दा अक्षत था। कुन्ती ने कर्ण को पानी में बहा दिया पर दूसरों से उत्पन्न युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को नहीं बहाया। इसी प्रकार सूर्य के पुत्र अश्विनीकुमार से उत्पन्न नकुल सहदेव को माद्री ने नहीं फेंका। वेदविज्ञ अभी तक निश्चित नहीं कर सके हैं कि अश्विनीकुमार क्या हैं। धर्मराज का भी बोध सबको नहीं है पर महाभारत के लेखक को उनका साक्षात्कार हुआ था।

(७) हमारे देश के वेदविदों को विश्वास है कि जिस मनुष्य ने किसी विषय से आचार्य किया है अथवा जो किसी विश्वविद्यालय का कुलपति है या वराहमिहिर, भास्कराचार्य, शंकराचार्य सरीखा विद्वान् है उसकी उल्टी को खाने वाला मनुष्य ठीक वैसा ही विद्वान् हो जाता है। इतना ही नहीं एक के वमन को चाट कर सैकड़ों–सहस्त्रों लोग वैसे विद्वान् हो सकते हैं परन्तु वह चटाने वाला विद्वान् स्वयं सब कुछ भूल कर निरक्षर हो जाता है। सारांश यह कि विद्या मस्तिष्क से निकाली जा सकती है और उसे लेकर क्षण भर में विद्यासागर हुआ जा सकता है। हमारे वैदिक इतिहास में लिखा है कि वेदों के महान् विद्वान् याज्ञवल्क्य ने गुरु से कुछ कहासुनी हो जाने पर उनके पढ़ाये सारे वेदों को उगल दिया। इस दृश्य को देख कर वहाँ उपस्थित कई सौ ब्राह्मण झट पक्षी बन गये, सारे वमन को चाट गये, महान् वेदवेत्ता हो गये और उसके बाद पक्षी से एक सेकण्ड में

पुन: ब्राह्मण बन गये। वे तीतर पक्षी बने थे अत: उनका जाना वेद तैत्तिरीय संहिता और कृष्ण यजुर्वेद हो गया जो चारों वेदों से अधिक है। याज्ञवल्क्य उसके वाद निरक्षर हो गये तो उन्होंने सूर्य से वेदों का अध्ययन किया। वही शुक्लयजुर्वेद है। हमारे शास्त्रों का कथन है कि सूर्य के मस्तिष्क में अथवा शरीर में वेदों की पर्वताकार राशि भरी है। इसीलिये वे त्रयीतनु और वेदमूर्ति कहे जाते हैं। पता नहीं क्यों, आजकल सूर्य ने वेदों का पढ़ाना बन्द कर दिया है।

(८) हनुमान् जी के तीन पिता बताये जाते हैं—केसरी, पवन और शंकर। गोस्वामी तुलसीदास आदि ने उन्हें ज्ञानियों में अग्रगण्य कहा है पर न जानें क्यों, वे सूर्य को मधुर फल समझते थे। हनुमान पर्वत को लेकर उड़ सकते थे पर बूटी को नही पहचानते थे। वे पैदा होते ही फल समझ कर सूर्य को निगल गये—'लील्यो ताहि मधुर फल जानू'। संयोग अच्छा था कि अभी उनको दाँत नहीं थे। होता तो सौरपरिवार की न जाने क्या दशा होती। जिस प्रकार राहु दानव से सैकड़ों–लाखों बार निगले–उगले जाने पर भी भाग्यशाली सूर्य–चन्द्र वच जाते हैं उसी प्रकार उस समय भी बच गये। फिर जो सूर्य विश्वकर्मा द्वारा मशीन पर खरादे जाने पर भी नहीं कटे वे हनुमान द्वारा कैसे चवाये जाते। वाद में हनुमान् ने उन्हीं से सब वेद पढ़े। गोसाईं जी का कथन है कि रामजन्मोत्सव का कौतुक देख कर सूर्यदेव चलना भूल गये। वे एक मास तक रुक कर महोत्सव देखते रहे, क्योंकि राम के पूर्वज सूर्य से पैदा हुए थे अत: सूर्य को उनके प्रति ममता थी। एक मास का दिन हो गया, रवि ही नहीं, उनके अश्व भी मोहित हो गये और इसका मर्म कोई जान न सका किन्तु हनुमान् ने उनसे वेद पढ़ने का प्रस्ताव रखा तो कहने लगे कि मैं कभी रुकता नहीं, प्रति क्षण चलता ही रहता हूँ और व्रेद की पढ़ाई आमने–सामने वैठ कर होती है। हनुमान ने कहा कि जो बाल हनुमान प्रकाश से भी द्रुतगति से चल कर सूर्य को निगल जाता है वह सूर्य के साथ चल सकता है और पीठ की ओर भी चल सकता है। वही हुआ और सूर्य ने द्विज के अतिरिक्त दूसरे को न पढ़ाये जाने वाले वेद हनुमान को पढ़ाये। वानर वेदमन्त्रों का शुद्ध उच्चारण कैसे करेगा, यह शंका मूर्खों की है। गोसाईं जी कहते हैं कि सूर्य और हनुमान की यह लीला देख कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्रादि लोकपालों की आँखें चौंधिया गयीं और वे घवरा उठे।

कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेहि जात न जाना॥
मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जाने कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ, निसा कवन विधि होइ॥
यह रहस्य काहू नाहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना॥
भानु सों पढ़न हनुमान गये भानुमन अनुमानि सिसुकेलि किये फेरफार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगनमन क्रम को न भ्रम कपि बालकबिहार सो॥
कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो....॥ (हनुमानवाहुक)

(६) साढ़े आठ लाख मीलों से अधिक व्यास वाला सूर्य मानवी अदिति से पैदा हुआ है। (१०) सूर्य की मानवी पत्नी से इक्ष्वाकु आदि मानव पैदा हुए हैं। (११) सूर्य की मानवी कन्या इला का लिंग हर मास में वदल जाता था और दोनों स्थितियों में उससे बच्चे पैदा होते थे। (१२) सूर्य के पौत्र पुरुरवा से चन्द्रवंश चला पर उसकी पत्नी उर्वशी अप्सरा थी, आकाश में उड़ती थी और अनेक पति बना चुकी थी। (१३) याज्ञवल्क्य ने सूर्य से वेद पढ़े और यह जाना कि सूर्य से चन्द्रमा एक लाख योजन ऊपर है। (१४) सूर्य की माता अदिति है और पिता कश्यप हैं। ये दोनों मनुष्य हैं। (१५) वराहपुराण (अध्याय २०) का कथन है कि संवत्सर एक चेतन प्राणी है, साक्षात् हरि है और १२ मास अदिति–कश्यप के चेतन पुत्र हैं। वे सब देहधारी मानव हैं और आदित्य हैं। पुराणों में सूर्य के विषय में ऐसी चित्र–विचित्र अनेक कथाएँ हैं।

कश्यपाच्च बभूवुर्हि आदित्या द्वादश प्रभो।
ते च मासास्त आदित्याः स्वयं संवत्सरो हरिः॥

सूर्यपुत्र अश्विनीकुमार का चरित्र

वेदों में अश्विनीकुमार सूर्योदय और अरुणोदय के पूर्व के दो काल और रात्रि के पुत्र हैं अथवा जल-अग्नि, सूर्य-चन्द्र, अग्नि वायु, वायु-विद्युत् आकाश-पृथ्वी आदि के युग्म हैं पर पुराणों में सदेह जुड़वें भाई हैं, देवों और च्यवन ऋषि के वैद्य हैं तथा नकुल-सहदेव के पिता आदि हैं। सूर्य का तेज इनकी माता को सहन नहीं हुआ इसलिये वह भाग गयी पर वह सुग्रीव की माता, कुन्ती, हनुमान और याज्ञवल्क्य को सहन था। इनकी भगिनियाँ यमुना और ताप्ती नदियाँ बन गयी और विष्टि भीषण भद्रा हो गयी। पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड ८) में लिखा है—

शनिस्तपोबलाच्चापि ग्रहाणां समतां गतः॥
यमुना तपती चैव पुनर्नद्यौ बभूवतुः।
विष्टिर्घोरात्मिका तद्वत् कालत्वेन व्यवस्थिता॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण (ब्रह्मखण्ड १०) के अनुसार अश्विनीकुमार ने तीर्थयात्रा के लिये जाती हुई एक शान्ता ब्राह्मणी को देखा और बार-बार निषेध तथा प्रार्थना करने पर भी उसके साथ एकान्त पुष्पोद्यान में बलात्कार किया। यद्यपि ब्राह्मणी ने वीर्य को भूमि पर गिरा दिया तो भी उससे सुवर्ण सी कांति वाला एक पुत्र पैदा हो गया। लज्जित ब्राह्मणी उसे लेकर पति के पास गयी और सब कुछ बता दिया किन्तु ब्राह्मण ने पुत्र और पत्नी, दोनों का परित्याग कर दिया। ब्राह्मणी गोदावरी नदी हो गयी और पुत्र को अश्विनीकुमार ने वैद्यक, ज्योतिष तथा शिल्प पढ़ाया।

गच्छन्तीं तीर्थयात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः।
ददर्श कामुकः शान्तां पुष्पोद्याने तु निर्जने॥
तया निवारितो यत्नात् बलेन बलवान् सुरः।
अतीव सुन्दरी दृष्ट्वा वीर्याधानं चकार सः॥
द्रुतं तत्याज गर्भं सा पुष्पोद्याने मनोहरे।
सद्यो बभूव पुत्रश्च तप्तकांचनसंनिभः १२८॥
सपुत्रा स्वामिनो गेहं जगाम व्रीडिता तदा।
स्वामिनं कथयामास यन्मार्गे दैवसंकटम्॥
विप्रो रोषेण तत्याज तनयं तं स्वकामिनीम्।
सरिद् बभूव योगेन सा च गोदावरी स्मृता॥

वह पुत्र गणक और वैद्य होने से वेदवहिष्कृत हो गया। ब्राह्मण ने अश्विनीकुमार को शाप दे दिया कि तुम रोगी और यज्ञबहिष्कृत हो जाओगे। तब सूर्य भगवान दोनों जुड़वे पुत्रों (अश्विनौ) को लेकर ब्राह्मण की शरण में आये और प्रार्थना करने लगे कि भारद्वाज मुनीश्वर! आप ब्राह्मण हैं, आप ही लोगों के दिये जल, फल आदि से ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देव जीते हैं। ब्राह्मण से बड़ा कोई देवता नहीं है। शरण में आये मेरे पुत्रों का, कृपा करके उद्धार करें। सूर्यनारायण की यह प्रार्थना सुनकर ब्राह्मण ने अश्विनीकुमार को पूज्य और यज्ञाधिकारी बना दिया और सूर्य पुत्रों के साथ अपनी कक्षा में चले गये।

क्षमस्व भगवन् विप्र विष्णुरूप युगे-युगे।
मम पुत्रापराधं तु भारद्वाज मुनीश्वर॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सुराः सर्वे च सन्ततम्।
भुंजते ब्रह्मदत्तं हि जलपुष्पफलादिकम्॥

अश्विनी (घोड़ी) के पुत्र देव अश्विनीकुमार उस स्वर्ग के वैद्यराज हैं जहाँ अगणित अप्सराएँ रहती हैं। वे अति रूपवती हैं और सर्वदा १८ वर्ष की रहती हैं परन्तु देवीभागवत आदि पुराणों में विस्तार से लिखा है कि वे दोनों भाई अप्सराओं को छोड़ च्यवन ऋषि की पत्नी के सौन्दर्य से मोहित होकर धरती पर तपोवन में आ गये। उनकी अन्य भी ऐसी अनेक कथाएँ हैं।

चन्द्रमा का वैज्ञानिक और वैदिक स्वरूप

पृथ्वी का व्यास लगभग ८००० मील है, इस पर लगभग १०० मील तक भूवायु रहता है और मेघ, विद्युत् आदि इसी के भीतर रहते हैं। इस भाग को अन्तरिक्ष और इसके बाहर वाले को द्यौ कहते हैं। पृथ्वी से चन्द्रमा का मध्यम अन्तर २४०००० मील है और वह १६००० मील घटता-बढ़ता रहता है। चन्द्रमा का व्यास लगभग २१६० मील अर्थात् पृथ्वी के एक चौथाई से थोड़ा अधिक है। चन्द्रमा से पृथ्वी का क्षेत्रफल लगभग १३ गुना, भार ८१ गुना और आकार ४६ गुना है। चन्द्रमा के पृष्ठ पर अनेक पर्वतश्रेणियाँ हैं और ज्वालामुखी पर्वतों के कई सहस्र प्रशान्त अवशेष हैं पर जल, वायु और प्राणी नहीं हैं। चन्द्रमा को अपनी धुरी पर घूमने में २६॥ दिन लगते हैं और उसके दिन रात पृथ्वी के दिन रात से १५ गुने लम्बे होते हैं। चन्द्रमा पर मनुष्य पहुँच चुका है अतः उसके विषय में बहुत सी बातें जानी जा चुकी हैं। चन्द्रमा कोई देव नहीं बल्कि पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने वाला एक छोटा सा जड़ उपग्रह है। उसकी स्थिति और प्रभाव के प्रबोध से बहुत कुछ पाया जा सकता है पर पूजा प्रार्थना से कुछ नहीं। वह न हमारी प्रार्थना सुनता है न पूजा आहुति लेता है।

चन्द्रमा या अन्य ग्रह कभी किसी तारे के पास नहीं पहुँच सकते अतः उनके विवाहादि रूपक मात्र हैं। ग्रह जिस नक्षत्र की सीध में दिखाई देते हैं उनमें स्थित मान लिये जाते हैं। चन्द्रमा एक स्थान से चल कर पुनः २७, ३२ दिनों में वहीं आ जाता है इसलिये एक नाक्षत्रमास २७ दिन १६ घटी का माना जाता है और २७-२८ नक्षत्र माने जाते हैं। ये तारे न समान दूरी पर हैं, न एक वृत्त में हैं। सूर्यमार्ग और चन्द्रमार्ग (क्रान्तिवृत्त-विमण्डल) में लगभग सवा पाँच अंश का कोण बनता है। क्रान्तिवृत्त से ग्रह या तारे की दूरी को शर कहते हैं। जिस तारे का शर सवा पाँच अंश से कम है उसे कभी-कभी चन्द्रमा ढक देता है। इस आच्छादन क्रिया को पिधान कहते हैं। २८ नक्षत्रों के मध्यम शर पीछे लिखे हैं। उनमें कुछ उत्तर और कुछ दक्षिण हैं। तेजस्वी तारों का ही पिधान दृष्टिगोचर होता है। जो मन्द हैं वे चन्द्रमा के प्रकाश में छिप जाते हैं। तेजस्वी तारे प्रथम प्रति के माने जाते हैं। संस्कृत में चन्द्रमा को सुधांशु, सुधाकर, ओषधीश, कुमुदबन्धु, सोम, मृगांक, द्विजराज, कलानिधि, शशधर, नक्षत्रेश, अब्ज, निशापति आदि तथा उसकी किरणों को चन्द्रिका, कौमुदी, ज्योत्स्ना आदि कहते हैं। यजुर्वेद में उसे आह्लादकारक और विद्वान् आदि तथा ऋग्वेद में अमृतवर्षी, सुखदाता आदि कहा है। विदुषी नारी का नाम चन्द्रा है। सोम शब्द के भी सारे अर्थ शुभ हैं। कहीं अशुभत्व का स्पर्श नहीं है। कुछ मन्त्र ये हैं—

शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि॥ ४। १८
अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियं ॥ १२। १०४
चन्द्रे ज्योते ८। ४३ (यजुर्वेद) चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं....॥ ३। ३। ५
यच्छतु चन्द्रा उपमं नो॥ ७। ३६। ७
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य।
मूर्धानाभा सोम वेन आभूषन्ती सोम वेदः॥ १। ४३। ९ ऋग्वेद

चन्द्रमा का पौराणिक और ज्योतिष रूप

क्रान्तिवृत्त का प्रत्येक २७ वाँ भाग एक नक्षत्र है और वास्तविक नक्षत्र यही है। पंचागों में इसी का गणित किया जाता है और यह निराकार काल है पर आज के ज्योतिष में इन २७ निराकार कालों को घोड़ी, हथिनी, कुतिया, कुत्ता, बाघ,

हरिण, बिल्ली, चूहा, साँप, नेवला, गाय, भैंस, मछली, भेंड़ा, बैल केकड़ा मगर, बिच्छू, देव, राक्षस, ब्राह्मण, ब्राह्मणी आदि कहा जाता है। विवाह के समय इसी मिथ्या कल्पना के आधार पर वर–वधू की गणना की जाती है और अनेक बार गणना वैठ जाने के बाद भी विवाह इसलिये निरस्त हो जाता है कि कन्या राक्षसी है, ब्राह्मणी है, बाघिन है या मंगली है। गृह बनाने में गृहपति और गृह के नक्षत्रों की भी गणना की जाती है। देश का महान् दुर्भाग्य है कि आज का उच्च शिक्षित हिन्दूसमाज भी इस कल्पना को सत्य मानता है और उसके फलों से भयभीत है। यद्यपि इन समयों का तारों से कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी जोड़ा गया है और उस पर भाँति–भाँति की कथाएँ लिखी गयी हैं। कुछ ये हैं—

चन्द्रविवाह और दारुणनक्षत्र

रोहिणी में पाँच तारे हैं। उसका योगतारा आल्डिबरा तेजस्वी होने के कारण चन्द्रमा के निकट रहने पर भी दिखाई देता है और वह दृश्य मनोहर होता है। पुनर्वसु, मघा, चित्रा और ज्येष्ठा के योग भी सुन्दर होते हैं पर उनमें रोहिणीचन्द्रयोग वाली छटा नहीं रहती। महाकवि कालिदास ने–'चित्राचन्द्रमसोरिव' लिखा है किन्तु रोहिणीयोग सबसे निराला होता है। प्रथम प्रति के अन्य स्वाती, आर्द्रा, अभिजित् और श्रवण के तारे योग के समय बहुत दूर पड़ जाते हैं। यद्यपि चन्द्रमा कभी भी किसी तारे के पास नहीं पहुँच सकता क्योंकि वे चन्द्रमा से अरबों–खरबों योजन दूर हैं फिर भी पुराण कहते हैं कि दक्ष प्रजापति ने अपनी २७ कन्याओं का विवाह चन्द्रमा से कर दिया पर वह केवल रोहिणी के पास जाता था और अन्यों से दूर रहता था। इस कारण वे तीक्ष्ण और दारुण वचन कहने लगीं। तब चन्द्रमा ने शाप दिया कि तुम तीक्ष्ण, दारुण, उग्र, क्रूर हो जाओगी और तुममें कोई शुभ कर्म नहीं करेगा। दक्ष के समझाने पर चन्द्रमा नहीं माना तो उनकी नाक से निकला कृशकाय, दण्डधारी, कामातुर और भीषण यक्ष्मा रोग चन्द्रमा के शरीर में घुस गया। इसी कारण चन्द्रमा कृष्णपक्ष में क्षीण होने लगता है। इस कथा में यह भी लिखा है कि चन्द्रमा को कृत्तिकादि चार नक्षत्रों ने कटु वचन कहे थे पर उसने कृत्तिकादि नव को शाप दिया था।

सोमायादात् स्वतनया दक्षस्तु सप्तविंशतिः।
रोहिणीं भजतेऽतोऽन्या अमर्षवशमागताः॥
रोहिणीं मलिनां दृष्ट्वा क्रुद्धश्चन्द्रः शशाप ताः।
यस्मान्ममपुरस्तीक्ष्णा उग्रावाचः समीरिताः॥
तीक्ष्णा उग्रा इति ख्यातिं प्राप्स्यथ त्रिदशेष्वपि।
नोपयुक्ता भविष्यध्वं नवैताः कृत्तिकादयः॥
निश्चक्राम तदा यक्ष्मा दक्षस्य नासिकाग्रतः।
दण्डहस्तः कृश भीमो नारीसंभोगलोलुपः॥

शंकाएँ—द्विजराज चन्द्रमा ने रोहिणी के अतिरिक्त शेष सब नक्षत्रों को शाप दिया था तो द्विज उनमें मुहूर्त कैसे बताते हैं? (२) कुछ पुराण कहते हैं कि कृत्तिकादि चार ने तीक्ष्ण वचन कहे थे पर चार में तो रोहिणी भी है? (३) यहाँ लिखा है कि सोम ने कृत्तिकादि नव को शाप दिया था। तब आप मृग, पुनर्वसु, पुष्य को तीक्ष्ण और दारुण क्यों नहीं मानते? उनमें शुभकर्म क्यों करते हैं? (४) जब वेद और पुराण, दोनों नक्षत्रों का आरंभ कृत्तिका से करते हैं, आप आज भी विंशोत्तरी दशा का आरंभ कृत्तिका से करते हैं और अपने अबकड़ा चक्र में वस्तुतः प्रथम नक्षत्र कृत्तिका को मानते हैं तो अन्य कर्मों में अश्विनी को प्रथम नक्षत्र क्यों मानते हैं? (५) सम्पात के चल होने के कारण यदि आपने कृत्तिका के स्थान में अश्विनी को रख दिया तब तो इस समय भाद्रपदा को प्रथम नक्षत्र मानना चाहिए क्योंकि सम्पात २३ अंश से अधिक पीछे खिसक आया है? (६) सम्पात को कृत्तिका से अश्विनी में ले आने वाले आप के दीर्घदर्शी पूर्वज इस समय आपके लिये अनुकरणीय क्यों नहीं हैं? (७) जो कृत्तिका में था वह भाद्रपदा में आ गया तो आप तारों को नक्षत्र क्यों मान रहे हैं? (८) चन्द्रमा की २७

पत्नियों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र आदि अनेक देवों की पत्नियाँ हैं तो द्विजराज चन्द्र ने उनसे विवाह क्यों किया? (६) गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार करने वाले महापापी चन्द्रमा में शाप देने की शक्ति कहाँ से आ गयी? उसका शाप कैसे लग गया? (१०) शापित मघा तथा मूल में विवाह सदृश शुभ कर्म क्यों होता है? विवाह के अंगभूत तिलक और हरिद्रादि कर्म क्यों किये जाते हैं? (११) मघामूल को शाप नहीं लगा तो अन्य सात को भी नहीं लगा होगा। उनमें विवाह क्यों नहीं होता? (१२) तीनों पूर्वाओं में विवाह के अंगभूत कर्म होते हैं पर विवाह नहीं होता। क्यों? (१३) रोहिणी चन्द्रमा को अतिप्रिय है, रोहिणी का चन्द्रमा उच्चस्थ कहा जाता है पर ज्योतिष शास्त्र यह भी कहता है कि रोहिणीशकट में चन्द्रमा के पहुँचने पर पूरे विश्व में आग लग जाती है, हाहाकार मच जाता है। क्यों? (१४) अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि नाम एक एक नक्षत्र के नहीं, नक्षत्रपुंजों के हैं। किसी में ३२, किसी में १०० और किसी में ११ तारे हैं। तो क्या चन्द्रमा का विवाह २७ कन्यासमूहों से हुआ था? (१५) क्या करोड़ों योजनों की दूरी पर स्थित ये तारे आपस में कभी मिल सकते हैं? (१६) क्या अतिदूरस्थ इन जड़ों में कभी वार्तालाप और विग्रह हो सकता है?

ज्योतिष के आज के भीषण शप्त नक्षत्र

तीक्ष्ण–दारुण	स्वामी	उग्रक्रूर	स्वामी
पूर्वाफाल्गुनी	भगदेव	आर्द्रा	महादेव
पूर्वाषाढ़ा	जलदेव	आश्लेषा	सर्पदेव
पूर्वाभाद्रपदा	अजपाद	ज्येष्ठा	इन्द्रदेव
मघा	पितृदेव	मूल	निर्ऋति
भरणी	यमदेव		

चन्द्रशाप की अन्य कथाएँ

चन्द्रमा के शाप की कथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में दूसरे प्रकार से लिखी है। उसका कथन है कि दक्षप्रजापति ने चन्द्रमा को शाप दिया तो वह शिव की शरण में गया। शिव ने उसके अपराध पर ध्यान न देकर उसे सिर पर चढ़ाया और आभूषण बना लिया। दक्ष ने शिव से उसे माँगा तो शिव ने नहीं दिया। दक्ष उन्हें शाप देने को उद्यत हुए तो वे भाग कर अपने इष्टदेव कृष्ण की शरण में चले गये। कृष्ण एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर आये, शिव के मस्तक पर बैठे चन्द्रमा से दूसरा चन्द्रमा निकाला और उसे दक्ष को दे दिया। दक्ष ने उसे यक्ष्मा (तपेदिक=टीबी) रोग से ग्रस्त देखकर कृष्ण से प्रार्थना की तो वह शापमुक्त हो गया और शुक्ल पक्ष में बढ़ने लगा। कृष्ण सबको वर देकर घर गये और चन्द्रमा दिन रात २७ पत्नियों से विहार करने लगा।

रोहिणी रसभावेन चकार शशिनं वशम्।
ततः श्वशुरशापेन क्षयग्रस्तो बभूव सः॥
वपुष्यर्धे क्षीयमाणे शंकरं शरणं ययौ।
अमरो निर्भयो भूत्वा स तस्थौ शिवशेखरे॥
दक्षस्तमुद्यतः शप्तुं कृष्णं सस्मार शंकरः।
चन्द्रं चन्द्राद् विनिष्कृष्य दक्षाय प्रददौ च सः॥
यक्ष्मग्रस्तं च तं दृष्ट्वा दक्षस्तुष्टाव माधवम्।
पक्षे पूर्णं क्षतं पक्षे तं चकार स्वयं हरिः॥

दक्षश्चन्द्रं गृहीत्वा च कन्याभ्यः प्रददौ पुनः।
चन्द्रस्ताश्च परिप्राप्य विजहार दिवानिशम्॥

शंकाएँ–(१) एक ही व्यास के लिखे पुराणों की कथाओं में इतना मतभेद क्यों हो जाता है? वे विभिन्न कवियों की कल्पनाएँ तो नहीं हैं? (२) दक्ष ने २७ कन्याओं का विवाह एक पुरुष से क्यों कर दिया? आकाश में देवों की कमी कहाँ थी? (३) आकाश के सारे तारे पुराणों के कथनानुसार अप्सराएँ हैं, देवियाँ हैं, देव हैं तो उनके विवाह किससे हुए हैं? उनके पुत्र-पुत्रियों के नाम क्या हैं? (४) प्रत्येक नक्षत्र का घनफल चन्द्रमा से करोड़ों गुना अधिक है तो नक्षत्र पत्नी का काम कैसे करेंगे? (५) दक्ष ने चन्द्रमा को क्षय रोग होने का शाप क्यों दिया? क्षयरोगी, दक्ष की कन्याओं की इच्छापूर्ति कैसे करेगा? प्रजापति को इतना ज्ञान भी नहीं है? यह तो कन्याओं पर ही कोप हो गया? (६) शिव ने चन्द्रमा को समझा बूझा कर वापस क्यों नहीं किया? सत्ताईस पत्नियों को परित्यक्ता क्यों बना दिया? पत्नियों को शिव ने किस अपराध का दण्ड दिया? (७) शिव ने ऐसे अपराधी को सिर पर कैसे धारण कर लिया? (८) क्या चन्द्रमा शिव के सिर पर ही मल मूत्र करता था? (९) चन्द्रमा को एक खूँटे से बाँध कर और पत्नी से दूर कर क्या शिव ने उसका उपकार किया? (१०) गुरुपत्नीगामी कामी चन्द्रमा पत्नी बिना वहाँ कैसे बैठा रह गया? (११) चन्द्रमा को सिर पर बाँधने वाले शिव का उठना, बैठना, सोना कैसे होता था? (१२) वे उस स्थिति में पार्वती के साथ एकान्तवास कैसे करते थे? (१३) गुप्त बात कैसे करते थे? (१४) पार्वती उसका विरोध क्यों नहीं करती थीं? (१५) आज के माप से चन्द्रमा का पृष्ठफल लगभग डेढ़ करोड़ वर्गमील है और पुराने सिद्धान्तानुसार इससे अधिक है। क्या शंकर पार्वती के शरीर इससे बड़े थे? वे कितनी लम्बी धोती-साड़ी पहनते थे और कितने ऊँचे घर में रहते थे? (१६) दक्ष प्रेम से माँग रहे थें तो शिव ने उनके दामाद को दे क्यों नहीं दिया? (१७) क्या चेतन चन्द्रमा को आभूषण बनाया जा सकता है? (१८) क्या पूरे विश्व के नाथ शिव को दक्ष शाप दे सकते हैं? (१९) विश्वनाथ कृष्ण की शरण में क्यों गये? क्या शंकर से कृष्ण श्रेष्ठ हैं? (२०) कृष्ण ने पुत्रप्राप्ति के लिये शंकर की आराधना क्यों की? (२१) क्या चन्द्रमा का घटना बढ़ना कृष्ण के जन्म के बाद होने लगा है? कृष्ण के जन्म के अर्थात् आज के ५०० वर्ष के पूर्व क्या चन्द्रमा सर्वदा पूर्ण रहता था? (२२) कृष्णावतार के पहले शंकर का इष्टदेव और कौन था? (२३) शंकर किस कारण उसको छोड़ कर कृष्ण के भक्त हो गये? (२४) क्या वह मर गया? (२५) क्या एक चन्द्रमा से दूसरा चन्द्रमा निकल सकता है? (२६) शिव के सिर पर बैठने के बाद चन्द्रमा का क्षयरोग समाप्त क्यों नहीं हुआ? (२७) चन्द्रमा का घटना बढ़ना आज भी दीख रहा है तो हम कैसे मानें कि कृष्ण ने उसके रोग को समाप्त कर दिया? (२८) क्या चन्द्रमा सचमुच २७ पत्नियों से विहार करता है? (२९) चन्द्रमा से सम्बन्धित नक्षत्र फलों में क्या इतनी ही सचाई है?

चन्द्रमा की लक्ष्मी आदि पत्नियाँ

चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ किया, उसकी दक्षिणा में ब्राह्मणों को तीनों लोक दे दिये और यज्ञ में आयी देवियाँ चन्द्रमा की सुन्दरता देख कामबाण से व्यथित हो गयीं। वे अपने पतियों को छोड़ चन्द्रमा के पास आ गयीं तो चन्द्रमा ने भी निर्भय होकर उन्हें अपनी पत्नी बना लिया। वे नव देवियाँ हैं-विष्णु की पत्नी लक्ष्मी, ब्रह्मा की पत्नी तुष्टि, कश्यप की पत्नी वसु, सूर्यपत्नी प्रभा, अग्निपत्नी द्युति, कर्दमपत्नी सिनीवाली, हविष्मान् पत्नी कुहू, जयन्तपत्नी कीर्ति और नन्दीपत्नी धृति। विष्णु, सूर्य अग्नि और कश्यप आदि देव शस्त्र, शाप और मन्त्रों द्वारा चन्द्रमा का कुछ बिगाड़ न सके। वह अपने तपोबल से सातों लोकों और दसों दिशाओं का स्वामी बना रहा (मत्स्यपुराण अध्याय २३)।

ततः समाप्तेऽवभृथे तद्रूपालोकनेच्छवः।
कामबाणाभितप्तांग्यो नवदेव्यः सिषेविरे॥
लक्ष्मीर्नारायणं त्यक्त्वा सिनीवाली व कर्दमम्।

द्युतिर्विभावसुं त्यक्त्वा तुष्टिर्धातारमव्ययम्॥
प्रभा प्रभाकरं त्यक्त्वा हविष्मन्तं कुहूः स्वयम्।
कीर्तिर्जयन्तभर्तारं वसुर्मारीचकश्यपम्॥
धृतिस्त्यक्त्या पतिं नन्दिं सीममेवाभजत्तदा।
एवं कृतापचारस्य तासां भर्तृगणस्तदा॥
न शशाकापचाराय शापैः शस्त्राभिस्तदा।
तथाप्यराजत विधुर्दशधा भावयन् दिशः॥
सप्तलोकैकनाथत्वं अवाप तपसा तदा।

शंकाएँ—(१) क्या चन्द्रमा सातों लोकों और दशों दिशाओं का स्वामी है? (२) यदि हाँ तो आप यज्ञों में अन्य लोकपालों और दिक्पालों की पूजा क्यों करते हैं? (३) क्या वह तारों और सूर्य से बड़ा और महान् है? यदि ये दोनों बातें सत्य हैं तो उसने क्या पाने के लिये राजसूय यज्ञ किया है? (४) क्या चन्द्रमा को यह अधिकार है कि वह सारा ब्रह्माण्ड दान करे? (५) दान दे दिया तो उसके पास क्या बचा? (६) लक्ष्मी, द्युति, प्रभा, कीर्ति, वसु आदि देवियाँ चन्द्रमा को देख कामातुर हो गयीं? क्या वह विष्णु और सूर्य आदि से अधिक तेजस्वी है? यह स्पष्ट है कि चन्द्रमा की शोभा सूर्य किरणों की ही देन है तो सूर्यपत्नी प्रभा सूर्य को छोड़ चन्द्रमा पर कैसे मोहित हो गयी? (७) क्या चन्द्रमा का पृष्ठभाग सुन्दर है? (८) क्या लक्ष्मी आदि देवियाँ इतनी भ्रष्ट हैं? यदि हाँ, तो आप जगदम्बा आदि कह कर उनकी पूजा क्यों करते हैं? (९) क्या ये देवियाँ चन्द्रमा के पापों को भुला कर उसकी सुन्दरता पर आत्मसमर्पण कर देती हैं? (१०) आजकल ये चन्द्रमा की ही पत्नियाँ हैं क्या? यदि सूर्य, विष्णु, कश्यप, अग्नि, कर्दम और नन्दी के शाप और मन्त्र पापी चन्द्रमा को ठीक न कर सके तो हम शाप और मन्त्र के प्रभाव की कथाओं को काल्पनिक क्यों न कहें? (१२) ये देव चन्द्रमा के राजसूय यज्ञ में क्यों आये? (१३) चन्द्रमा ने आहुतियाँ क्यों दीं? (१४) क्या प्रभा के भाग जाने पर चन्द्रमा के पृष्ठ पर सूर्य की किरणें नहीं पड़ती थीं? अग्नि अपना काम नहीं करता था? (१५) क्या हम इसी पापी चन्द्र की सन्तान हैं? अपने वृद्धप्रपितामह कश्यप की पत्नी से संभोग करने वाले चन्द्रमा को आप द्विजराज क्यों कहते हैं और उसे आहुति क्यों देते हैं?

अत्रि और चन्द्रमा

पद्मपुराण की कथा इन दोनों से भिन्न है। वहाँ सृष्टिखण्ड अध्याय १२ में लिखा है कि एक बार महर्षि अत्रि के नेत्र से जल गिरा और उसकी ज्योति से सारा विश्व प्रकाशित हो गया। दिशाओं ने स्त्रियों का रूप धारण कर उसे ग्रहण किया तो वे सब गर्भवती हो गयीं परन्तु उसको सहन न कर सकीं। उनका गर्भपात हो गया। तब ब्रह्मा ने उन गर्भों को एकत्रित कर अनेक शस्त्रधारी एक युवा मनुष्य बना दिया और ब्राह्मणों ने उसे अपना राजा मान लिया। वही चन्द्रमा है। चन्द्रमा बड़ा दानी है। उसने पृथ्वी पर एक विशाल यज्ञ किया और दक्षिणा में तीनों लोक ब्राह्मणों को दे दिया पर ऐसे शुभ कामों में लगे रहने पर भी उसकी कामवासना शान्त नहीं हुई। यहाँ तक कि उसने गुरु की भार्या तारा को भी अपनी पत्नी बना लिया।

अथ सुस्राव नेत्राभ्यां जल तत्रात्रिसंभवम्।
विश्वं तद् द्योतयत् तच्च जगृहुर्वनिता दिशः॥
मुमुचुर्धारणेऽशक्ता एकीकृत्य च तद् विधिः।
युवानमकरोच्चन्द्रं द्विजानां सोऽभवत् पतिः॥

चन्द्रमा ने एक दिन देवों के गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को उद्यान में टहलते देखा। वह पुष्पों के आभूषणों से शोभित थी, कृशांगी और सुनयना थी, स्तनभार के कारण झुक कर चलती थी और विशाल नितम्बों वाली थी। चन्द्रमा ने उसे

पकड़ लिया। वह भी उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर उससे रमण करने लगी और अन्त में उसके घर चली गयी। इधर बृहस्पति जी उसकी विरहाग्नि में जल रहे थे।

कदाचिदुद्यानगतामपश्यद् बृहन्नितम्बां स्तनभारनम्राम्।
केशेषु जग्राह विविक्तदेशे साऽपि स्मरार्ता सह तेन रेमे॥
स तां गृहीत्वा स्वगृहं जगाम तप्तो गुरुस्तद्विरहाग्निनाऽभूत्॥

देवों के शाप और आशीर्वाद अमोघ होते हैं तथा उनमें अपार शक्ति होती है। इसीलिये उनकी पूजा की जाती है और यज्ञों में उन्हें आहुतियाँ दी जाती हैं परन्तु दूसरों को मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण और यज्ञादि की विधियाँ सिखाने वाले देवगुरु बृहस्पति जी चन्द्रमा को न मार सके, न पागल बना सके, न अपने वश में कर सके और न शाप दे सके। उनका सारा ज्ञान, सारा शास्त्राध्ययन और वागीश विशेषण निरर्थक हो गया। काम से सन्तप्त गुरु ने अपनी भार्या माँगी तो कामातुर चन्द्रमा ने देना अस्वीकार कर दिया। उसने शिव, ब्रह्मा, इन्द्रादि लोक पालों, सिद्धों, साध्यों और मरुत् आदि देवों का कहना भी नहीं माना। तब शिव कुपित हो गये और एक पद्म वेताल एवं पिशाचादिकों को लेकर युद्ध के लिये चल पड़े किन्तु चन्द्रमा भी उनसे लड़ने को तैयार हो गया। ब्रह्मा ने देखा कि तीनों लोक भस्म हो जायेंगे अतः विवाद को समाप्त किया, तारा बृहस्पति को दी गयी, उससे उत्पन्न पुत्र बुध चन्द्रमा को दे दिया गया और चन्द्रमा पापग्रह मान लिया गया।

शशाक शापं न च दातुमस्मै न मन्त्रशस्त्राग्निविषैरनेकैः।
तस्यापकर्तुं विविधैरुपायैर्नैवाभिचारैरपि वागधीशः॥
स याचयामास ततस्तु देवं सोमं स्वभार्या मदनेन तप्तः।
न दत्तवान् कामसुखे विमुग्धस्तदा शिवः क्रोधपरो बभूव॥
पद्मेन चैकेन तथार्बुदानां वेतालभूतादियुतो जगाम।
सोमोऽप्यगात्तत्र रणाय धाता निवारयामास च तं कथंचित्॥

श्रीमद्भागवत पुराण (६। ६४) कथन है कि चन्द्रमा अत्रि मुनि के नेत्र से उत्पन्न हुआ और वह ब्राह्मणों, नक्षत्रों और औषधियों का पति बना दिया गया। उसने बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण किया तो शिव और इन्द्रादि देवों ने बृहस्पति का पक्ष लिया तथा शुक्राचार्य ने चन्द्रमा का। ब्रह्मा ने गर्भवती तारा बृहस्पति को दिला दी पर लजाती तारा ने सभा में कह दिया कि गर्भ चन्द्रमा का है। इसलिये पुत्र बुध चन्द्रमा का हो गया। बुध का पुत्र पुरुरवा हुआ, उसने उर्वशी अप्सरा से विवाह किया तो जातवेदा (अग्नि) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और वह दक्षिणाग्नि, आहवनीय और गार्हपत्य नामक तीन भागों में विभक्त कर दिया गया। तीनों वेद भी पुरुरवा से ही उत्पन्न हैं अतः वह तीन वेदों और तीन अग्नियों का पिता है। उर्वशी से आयु, श्रुतायु आदि अन्य छः पुत्र भी उत्पन्न हुए। यही चन्द्रवंश है और इसी में जह्नु, कुशिक, गाधि, विश्वामित्र, मधुच्छन्दा, देवरात, नहुष, सुहोत्र, गृत्समद, शौनक, दीर्घतमा, धन्वन्तरि, दिवोदास, अलर्क, संजय, संकृति, ययाति, यदु, अनु, दुष्यन्त, भरत, रन्तिदेव, गर्ग, वत्स, कुरु, शन्तनु धृतराष्ट्र पाण्डु और अर्जुन आदि महापुरुष उत्पन्न हुए हैं।

तस्य दृग्भ्योऽभवत् पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल।
पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात् तारां नामाहरद् बलात्॥
बुधात् पुरुरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः।
त्रेतायां सम्प्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत॥
अरणीमन्थनाज्जातो जातवेदा विभावसुः।
त्रय्या सा विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत्॥

पुरुरवस एवासीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप।
अग्निना प्रजया राजा लोकं गन्धर्वमेयिवान्॥ ६।१५।४६

ब्रह्मवैवर्तपुराण (श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८०) की कथा इन तीनों पुराणों से भिन्न है। वहाँ लिखा है कि एक बार बृहस्पति की नवयौवना, रत्नभूषणभूषिता, सिन्दूरालंकृता पत्नी तारा को चन्द्रमा ने भाद्रपद मास की चतुर्थी को पकड़ लिया और बलपूर्वक रथ पर बैठा लिया। जव वह चुम्बन के बाद संभोग के लिये उद्यत हुआ तो तारा ने गिड़गिड़ाते हुए कहा कि मैं पतिव्रता हूँ, तुम्हारे गुरु की पत्नी हूँ और तुम्हारी माता हूँ अतः मुझे छोड़ दो पर चन्द्रमा नहीं माना तो तारा ने शाप दे दिया कि तुम्हें राहु और मेघ ग्रसा करेंगे, तुम पर पाप ग्रहों की दृष्टि पड़ा करेगी और तुम कलंकी तथा यक्ष्मा रोग से ग्रस्त हो जाओगे। तारा ने कामदेव को शाप दिया कि कोई तेजस्वी पुरुष तुम्हें भस्म कर देगा। फिर भी चन्द्रमा ने रोती और विलाप करती तारा को छोड़ा नहीं। उसे गोद में लेकर पर्वतों पर, नदीतटों पर और मनोहर पुष्पोद्यानों में घूम घूम कर, शरीर में चन्दन, केसरादि लगा-लगाकर और मदिरा पी-पी कर उसके साथ पुष्पशय्या पर रमण करता रहा। वह दिन रात संभोग में आसक्त रहने लगा।

बृहस्पति का शत्रु होने पर भी शुक्राचार्य ने उसे समझाया कि तारा को लौटा दो पर वह नहीं माना। इसी बीच देवसेना के साथ शिव आ गये और उन्होंने शुक्र से कहा कि चन्द्रमा को शीघ्र बुलाओ नहीं तो मैं उसका सिर काट दूँगा और दैत्यों का संहार कर दूँगा। शुक्राचार्य ने निवेदन किया कि हे प्रभो! चन्द्रमा को क्षमा करें। बृहस्पिति भी सदाचारी नहीं है। उन्होंने अपने बड़े भाई उतथ्य की पत्नी ममता के साथ यही कर्म किया था। उसी पाप के कारण चन्द्रमा ने उनकी पत्नी का धर्म भ्रष्ट किया है। ऐसा कहने के बाद शुक्र ने तारा और चन्द्रमा को शिव के सामने उपस्थित कर उन्हें सौंप दिया। शिव ने चन्द्रमा को अपनी चरणधूलि से पवित्र कर गले लगा लिया, मस्तक पर हाथ फेर कर उसे अभयदान दिया, क्षीरसागर में नहला कर निष्पाप बनाया, उसके शरीर के दो टुकड़े किये और एक को अपने ललाट पर धारण कर लिया। चन्द्रमा ने लज्जित होकर शरीर छोड़ दिया, ब्रह्मा ने उसे क्षीरसागर में डाल दिया, चन्द्रमा के पिता अत्रि मुनि वहाँ आकर रोने लगे, उनके अश्रुबिन्दु क्षीरसागर में गिरे और तब चन्द्रमा जीवित एवं निष्पाप होकर बाहर निकल आया। ब्रह्मा और शंकर ने उसका अभिषेक किया, उसे ब्राह्मणों का राजा बनाया और कहा कि भाद्रपद मास की चतुर्थी को तुमने गुरुपत्नी का सतीत्व नष्ट किया था अतः उस दिन दूषित रहोगे और उस पाप के कारण तुम्हारे मण्डल में मृगाकार कलंक सदा बना रहेगा। उसके बाद चन्द्रमा तारा से उत्पन्न पुत्र बुध को लेकर आकाश में उड़ गया और बृहस्पति जी अपनी पतिव्रता धर्मपत्नी को लेकर घर आ गये। इस कथा को सुनने से मनुष्य निष्पाप और निष्कलंक हो जायेंगे, उनके यश, धन और आयु की वृद्धि होगी तथा मंगल और हर्ष की प्राप्ति होगी।

पुरा तारा गुरोः पत्नी नवयौवनमण्डिता।
सिन्दूरबिन्दुना युक्ता सूक्ष्मवस्त्रा च सुस्तनी॥
रथमारोहयामास चन्द्रस्तां कामपीडितः।
संभोगं कर्तुमुद्यन्तं तमुवाच गुरुप्रिया॥
त्यज मां त्यज मां चन्द्र गुरुपत्नीं पतिव्रताम्।
पुत्रस्त्वं तव माताहं........शशाप च॥
राहुग्रस्तो घनग्रस्तः पापदृश्यो भविष्यसि।
कलंकी यक्ष्मणा ग्रस्तस्ततः कामं शशाप सा॥
तेजस्विना केनचित्त्वं भस्मीभूतो भविष्यसि।
क्रोडे निधाय प्रययौ रुदन्तीं तां तथापि सः॥

शैले शैले नदीतोरे पुष्पोद्याने मनोहरे।
रम्यायां पुष्पशय्यायां स रेमे तारया सह॥
मधुपानरतो देवो बुबुधे न दिवानिशम्॥
शंभुस्तं प्रीतियुक्तस्तु वासयामास वक्षसि॥
दत्वा तन्मस्तके हस्तं कृपालुरभयं ददौ।
द्विखण्डं कृतवानर्धं ललाटे धृतवान् शिवः॥
बृहस्पतिर्ययौ गेहे गृहीत्वा तां पतिव्रताम्।
गृहीत्वा च सुतं चन्द्रो नमस्कृत्य शिवं ययौ॥
एतच्छ्रुत्वा च निष्पापो निष्कलंको नरो भवेत्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वसम्पत्करं परम्॥

शंकाएँ

(१) क्या किसी मनुष्य के नेत्र जल की ज्योति से सारा विश्व प्रकाशित हो सकता है? (२) क्या दिशाएँ स्त्रियाँ बन सकती हैं? (३) क्या स्त्रियाँ किसी भी नेत्रजल से गर्भवती हो सकती हैं? (४) क्या वे जल को देख कर कामातुर हो सकती हैं? (५) क्या अनेक पतित गर्भों को जोड़ कर एक मनुष्य बनाया जा सकता है? (६) क्या जड़ चन्द्रमा यज्ञ करता है? (७) इतना बड़ा यज्ञ करने वाला चन्द्रमा गुरुपत्नीगामी हो गया तो यज्ञ से क्या लाभ हुआ? (८) एक पुराण में लिखा है कि तारा कामातुर होकर अपनी इच्छा से चन्द्रमा के घर चली गयी। दूसरे में लिखा है कि रोती गिड़गिड़ाती तारा को चन्द्रमा घसीट ले गया। ये दोनों पुराण एक ही व्यास के लिखे हैं। क्या यह संभव है? (९) देवों के गुरु बृहस्पति चन्द्रमा का कुछ भी बिगाड़ न सके तो हम मंत्रादि की शक्ति पर कैसे विश्वास करें? (१०) देवगुरु ने पर पुरुष में रत और उससे पुत्र उत्पन्न करने वाली पत्नी को घर में कैसे रखा? (११) चन्द्र और गुरु सदृश देव इतने कामी हैं तो हम देवों की पूजा क्यों करें तथा देवत्व को श्रेष्ठ क्यों मानें? (१२) क्या चन्द्रमा पर त्रिदेवों का भी कोई वश नहीं चलता? (१३) क्या शिव के सैनिक भूत प्रेत हैं? (१४) क्या आकाश में अप्सराएँ रहती हैं? वे आजकल क्यों नहीं आती हैं? (१५) क्या चन्द्रवंशियों के पूर्वज वर्णसंकर हैं और अप्सरा से उत्पन्न हैं? (१६) क्या वेद और अग्नि पुरुरवा राजा से उत्पन्न हैं? (१७) क्या वे पुरुरवा के पहले नहीं थे? (१८) क्या इस घटना के पूर्व चन्द्रमा मेघों और राहु से ग्रस्त नहीं होता था? (१९) क्या इसके पूर्व चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि नहीं पड़ती थी? चन्द्रमा किसकी दृष्टि से प्रकाशित होता है? (२०) क्या इसके पूर्व चन्द्रमा घटता बढ़ता नहीं था? (२१) शिव ने ऐसे पापी चन्द्रमा को सिर पर क्यों धारण किया? (२२) क्या शरीर का दो टुकड़ा होने पर कोई जीवित रह सकता है? (२३) वह क्षीरसागर कहाँ चला गया जो चन्द्रमा से और लवण सागर से अनेक गुना बड़ा था? (२४) मृत चन्द्रमा अश्रुबिन्दु से जीवित कैसे हो गया? (२५) अत्रि मुनि के अश्रु में चन्द्रमा उत्पन्न करने की शक्ति थी तो लाखों चन्द्रमा क्यों नहीं उत्पन्न हो गये? (२६) चन्द्रमा द्वारा बार-बार अपमानित ब्रह्मा ने उसका स्वयं अभिषेक क्यों किया? (२७) क्या यह जड़ चन्द्र ब्राह्मणों का राजा है? (२८) क्या चन्द्र कलंक मृगाकार है? (२९) बुध को लेकर आकाश में उड़ जाने वाला चन्द्रमा क्या पहले धरती पर था? (३०) क्या इस कथा के श्रवण से आज तक कोई मनुष्य निष्पाप, निष्कलंक, दीर्घायु, धनी, यशस्वी, प्रसन्न, विद्वान् और सुखी होता देखा गया है? क्या इस कथा को ग्राह्य मानने पर संसार में कोई सदाचारी रह पायेगा? वस्तुतः इन कथाओं में तारे को ही तारा मान लिया गया है।

चन्द्रमा का पौत्र पुरूरवा

पुराणों के अनुसार चन्द्रमा के पुत्र बुध के पुत्र पुरुरवा से आकाश की उर्वशी अप्सरा ने इस प्रतिज्ञा के साथ विवाह

किया कि वे मैथुन के अतिरिक्त कभी नंगे न दिखाई दें। उर्वशी की भेड़ों के दो बच्चों की सदा रक्षा करें तथा उर्वशी को केवल घी खिलावें। उर्वशी को आयु आदि छः पुत्र हुए। इन्द्र की आज्ञा से गन्धर्वों ने भेड़ों के बच्चे चुरा लिये क्योंकि इन्द्र को उर्वशी का अभाव खल रहा था। पुरुरवा बच्चों को पकड़ने दौड़े तो गन्धर्व विजली की भाँति चमकने लगे। उर्वशी ने उस प्रकाश में राजा को नंगा देखा और स्वर्ग चली गयी। यही उर्वशी वेश्या वसिष्ठ और अगस्त्य की माता है।

वेदमत—परन्तु उषा के वर्णन की भाँति वेद में ये सारे वर्णन आकाश से सम्बन्धित हैं। वेद में सूर्य की किरणें ही गाय, अश्व और अप्सरा हैं। सूर्य पुरुरवा है और उषा ही उर्वशी है। वह पुरुरवा (सूर्य) को नंगा नहीं देखती। सूर्य का पूर्णोदय ही उसका नंगा होना है। उस समय उर्वशी नहीं रहती। दिन और रात (यमयमी) उषा के पास रहते हैं। ये ही भेड़ के दो बच्चे हैं। ये कभी भी उर्वशी का संग नहीं छोड़ते। ऋग्वेद में लिखा है कि पुरुरवा पैदा हुआ तो अप्सराएँ उसे देखने आयीं पर हरिणी और अश्व की भाँति भाग गयीं। वेद कहते हैं कि उर्वशी से सारा अन्तरिक्ष भर जाता है। यहाँ सूर्य की किरणें ही उर्वशी और अप्सरा हैं।

पुराणों में उर्वशी और पुरुरवा का पुत्र आयु है पर यजुर्वेद में ये तीनों अग्नि के नाम हैं। अग्ने....उर्वश्यसि आयुरसि पुरुरवा असि (५। २) पुराणों में इस आयु का पुत्र नहुप इन्द्र हो जाता है, अगस्त्य के सिर पर लात मारता है और फिर पृथ्वी पर गिरता है किन्तु वेद का कथन है कि मेघों का बरसना ही नहुष का गिरना है और अगस्त्य के उदय से उसका सम्बन्ध है। नहुष सूर्य के नीचे है और इन्द्र (सूर्य) नाहुषों (मेघों) में प्रकाशित होता है। पुराणों में नहुष के पुत्र ययाति की पत्नी, वृपपर्वा की कन्या है पर वेद में मेघ ही वृषपर्वा है। पुराणों में ययाति के यदु, तुर्वश, पुरु, द्रुह्यु और अनु पाँच पुत्र हैं किन्तु ऋग्वेद कहता है कि हम अग्नि से तुर्वश और यदु का आवाहन करते हैं, अन्तरिक्ष का मार्ग पुरु है, सूर्य द्वारा यदु जाते हैं, अग्नि पुरुप्रिय है, द्युलोक अनु का घर है, पुरु सूर्य के आश्रित हैं, इन्द्र माया से पुरुरूप बन जाता है और यदुओं, तुर्वशुओं, पुरुओं एवं अनुओं में अग्नि का वास है।

अग्निना तुर्वशं यदुं हवामहे १। ३६। १७, समुद्रं...पारया तुर्वशं यदुम् १। १७४। ६, अन्तरिक्षे....पुरुभुजा ८। १०। ६, यदुषो यासि सूर्येण रोचसे ८। ६। १७, हव्यावाहं पुरुप्रियम् १। १२। २, अनु प्रत्नस्यौकसः ८। ६६। १८, पुरु रेतो दधिरे १०। ६४। ५, इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ६। ४७। १८, प्रातरग्निः पुरुप्रियः ५। १८। १, यदिन्द्राग्नी यदुपु तुर्वशेपु द्रुह्युपु अनुपु पुरुपु स्थः १। १०८। ८, आयातं नहुषः अन्तरिक्षात् ८। ८। ३, सूर्यामासा विचरन्ता दिवि नहुषी १०। ६२। १२।

पुराण कहते हैं कि चन्द्रमा अत्रि मुनि के नेत्र के जल से उत्पन्न है पर वेद में अत्रि कोई मुनि नहीं हैं। अथर्ववेद (काण्ड २) में लिखा है कि उदित और अस्त होता हुआ सूर्य भूमि के कीड़ों को मारे। हम अत्रि, कण्व, जमदग्नि और अगस्त्य की भाँति ज्ञान से क्रिमियों को पीस रहे हैं, तो क्या अत्रि कीड़ों को मारते हैं? यहाँ सूर्य ही अत्रि है। वह कीड़ों को मारता है।

उद्यन्नादित्यः क्रमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः २। ३२। १
अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा संपिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥ २। ३२। ३

यजुर्वेदसंहिता (३४। ५५) का कथन है कि सप्तर्षि हमारे शरीर में बैठे हैं और बृहदारण्यक उपनिषद् २। २। ४ का कथन है कि दो-दो नाक, कान, घ्राण और वाणी क्रमशः विश्वामित्र, जमदग्नि, गोतम, भरद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि नामक सप्तर्षि हैं। सब कुछ जीभ का अन्न है इसलिये वह अत्रि है।

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।

सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥
इमावेव गौतमभरद्वाजावयमेव गोतमोऽयं भरद्वाजः।
इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निः॥
इमावेव वसिष्ठकश्यपौ अयमेव वसिष्ठोऽयं कश्यपः।
वागेवात्रिः वाचान्नमद्यतेऽत्ति अत्रिः सर्वस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति....॥

ऐतरेय आरण्यक का कथन है कि महर्षियों के सारे नाम प्राण से संवन्धित हैं। प्राण सबका मित्र होने से विश्वामित्र है, भरणकर्ता होने से भरद्वाज है, अंगों का रस होने से अंगिरस है। बृहती वाक् का स्वामी होने से बृहस्पति और वाचस्पति है, तथा त्राणकर्ता होने से अत्रि है। वेद में अगस्त्य उसे कहा है जो अग (पर्वत) की भाँति निश्चल है। आकाश में सप्तर्षि और अगस्त्य नाम के तारे भी हैं। ऋग्वेद १।११६।८ में लिखा है कि अश्विनों ने शीतल जल से प्रज्वलित अग्नि को बुझाया, अत्रि को बचाया और प्रकाश दिया। ऋग्वेद १०।३६।६ का कथन है कि अत्रि को बाँध कर अग्निकुण्ड में डाल दिया गया था। तब अश्विनों ने कुण्ड को जल से शीतल किया। इन मन्त्रों का भाव यह है कि विद्वानों ने मीठे उपदेश से विग्रह को शान्त किया और सन्तों को बचाया। अत्रि सम्बन्धी ऐसे अनेक मन्त्रों में अत्रि कोई एक मनुष्य नहीं है। अत्रि, अगस्त्य, भरद्वाज आदि नाम वाले ऋषि तो थे ही पर उनके नाम तेजस्वी और सत् पदार्थों के नाम पर रखे गये थे, वे स्वयं जड़ पदार्थ नहीं थे। उनके जन्म की असंभव और अश्लील कथाएँ काल्पनिक हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा न सागर से उत्पन्न है न अत्रि ऋषि के अश्रु से। ज्योतिष के चन्द्रमा सम्बन्धी फलादेशों में भी ऐसी ही कल्पनाओं का प्राधान्य है।

गंगा का आगमन और रात्रि

महाभारत में लिखा है कि शन्तनु के राज्य में सूखा पड़ा तो उन्होंने भाई देवापि को बुला कर आर्ष्टिषेण से यज्ञ कराया। वर्षा हो गयी, शन्तनु ने गंगा से विवाह किया और भीष्म पैदा हुए। ऋग्वेद १०।६८ में वर्षा का वर्णन है और उसमें शन्तनु, देवापि तथा आर्ष्टिषेण शब्द आये हैं। सुश्रुत में वर्षाकालीन साँवा, तिन्नी आदि अन्नों को शन्तनु कहा है। उनकी वृद्धि के लिये आर्ष्टिषेण (बिजली) और देवापि (जलशक्ति)गंगा को धरती पर लाते हैं। वेद में लिखा है कि विष्णुप्रद (आकाश) में मधु के स्रोत हैं, दुधारू गायें हैं, मेघरूपी घोंसलों में जल रूपी पक्षी रहते हैं, मेघरूपी साँप रहते हैं और इन्द्र उन्हें नीचे गिराते हैं। अत्रि वाली कथा का भी वर्षा से सम्बन्ध है। वस्तुतः अग्नि कुण्ड में डाले एवं जलते अत्रि को पानी बरसा कर मेघ और अश्विनी कुमार ही बचाते हैं।[1]

मंगलग्रह का वैज्ञानिकरूप

हमारी पृथ्वी मंगल और शुक्र ग्रहों के बीच में है। मंगल कभी पृथ्वी के बहुत निकट ४८७ लाख मील दूरी पर आ जाता है और कभी २३३३ लाख मील दूर चला जाता है इसलिये कभी छोटा और कभी बड़ा दिखाई देता है। इसका वर्ण स्वभावतः लाल है पर यह कभी-कभी बहुत लाल हो जाता है और इसीलिये अग्नि, अंगारक तथा लोहितांग कहा जाता है! इसी कारण ज्योतिषी इसे क्रूर ग्रह मानते हैं। वक्री और अल्पगति वाला मंगल और भी भयानक समझा जाता है। पाश्चात्य ज्योतिषियों ने उसको युद्ध के देव का मार्स नाम दिया है। यह ६८७ दिनों में सूर्य की प्रदक्षिणा करता है। मंगल का व्यास ४२२१ मील अर्थात् लगभग पृथ्वी का आधा है। इसका घनफल पृथ्वी का षष्ठांश और द्रव्य नवमांश है। इस पर अहोरात्र २४॥ घण्टे

---

१. इस विषय की विस्तृत जानकारी के लिए श्री रघुनन्दन शर्मा की वैदिक सम्पत्ति, श्रीशिवशंकर शर्मा का वैदिक इतिहासार्थ निर्णय और मेरी गंगाकथा पढ़ें।

का होता है। मंगल पर जल और वायु हैं अत: प्राणी भी होंगे। मंगल का वातावरण सुखद होने की सम्भावना है। कदाचित् इसी कारण इसे मंगल कहा गया है। मंगल और पृथ्वी में बहुत समानता है। इसी कारण यह भूमि का पुत्र कहा जाता है। वैज्ञानिकों ने मंगल के विषय में बहुत जाना है। सूर्य से दूर होने के कारण यह आकाश में सरलता से देखा जाता है। मंगल एक बार उदित हो जाने पर २१-२२ मासों तक दिखाई देता रहता है। ७८० दिवसों में यह एक बार उदित और अस्त आदि होता है। इसे अमाकाल कहते हैं।

ग्रहलाघव का कथन है कि मंगल उदित होने के १० मास बाद वक्री होता है, फिर दो मास के बाद मार्गी होता है और उसके दस मास बाद अर्थात् उदय के २२ मास बाद अस्त हो जाता है। यह चार मास तक अस्त रहता है। लाल रंग का द्योतक होते हुए हमारे यहाँ मांगलिक भी माना गया है, इसलिये इसका नाम मंगल है।

मंगल की तीन पौराणिक कथाएँ

पुराणों में ग्रह तारे, पर्वत, नदी, जल, पृथ्वी, अग्नि, सरस्वती, लक्ष्मी, श्रद्धा, मैत्री आदि अनेक जड़ पदार्थ और गुण चेतन मान लिये गये हैं। मंगल ग्रह कहीं शिव का और कहीं विष्णु का पुत्र है तो कहीं शुक्र ग्रह ही मंगल वन बैठा है। (१) ब्रह्मवैवर्त पुराण (ब्रह्मखण्ड अध्याय ६) का कथन है कि पृथ्वी एक बार विष्णु भगवान् का सुन्दर रूप देख कर कामातुर हो गयी। यह अक्षतयौवना सुन्दरी नारी वन कर हँसती हुई मलयागिरि के निर्जन वन में विराजमान तथा रत्नाभरणों से भूषित विष्णु के पलंग पर जाकर सो गयी। विष्णु ने उसकी मनोभावना को जान कर उसके साथ कामशास्त्र की सब विधियों से संभोग किया। तब वह संभोग सुख से मूर्छित हो गयी। हरि ने बड़े बड़े नितम्बों एवं विशाल स्तनों वाली उस निद्रिता एवं मृततुल्या कामिनी को वक्षस्थल से लगाया, उसके अधरों का चुम्बन किया, उसमें वीर्याधान किया और तदुपरान्त उसे उसी मूर्छित अवस्था में छोड़ अन्यत्र प्रस्थान किया।

देवगण स्वर्ग की उर्वशी नाम्नी अप्सरा की कामपूर्ति नहीं कर पाते, इसलिये वह प्राय: मर्त्यलोक में घूमा करती है। उसकी दृष्टि में धरती के मानव स्वर्गीय देवों की अपेक्षा अधिक सशक्त हैं। उर्वशी उसी मार्ग से किसी जार के पास जा रही थी। उसने पृथ्वी को जगाया और उसके मुख से सारा वृत्तान्त सुना। पृथ्वी ने कहा कि मैं विष्णु के वीर्य को धारण करने में असमर्थ हूँ। उर्वशी ने उसे मूँगे की एक खदान में गिरा दिया तो उससे सूर्य सा तेजस्वी एवं मूँगे के समान लाल शरीर वाला मंगल पैदा हो गया। बाद में उसका विवाह मेधा से हुआ। वह तेजस्वी देव है, नारायण का पुत्र है और पापग्रह भी है।

उपेन्द्ररूपमालोक्य कामार्ताऽभूद् वसुन्धरा।
विधाय सुन्दरी वेशमक्षता प्रौढयौवना॥
मलये निर्जने रम्ये रत्नभूषणभूषितम्॥
सस्मिता तस्य तल्पे सा सहसा समुपस्थिता।
नानाप्रकारश्रृङ्गारं स चकार तया सह।
मृतेव निद्रितेवासीद् बीजाधानं कृते हरौ॥
बृहन्नितम्बां विपुलस्तनीं संभोगमूर्छिताम्।
क्षणं वक्षसि कृत्वा तां तदोष्ठं च चुचुम्ब सः॥
विहाय तत्र रहसि जगामान्यत्र माधवः।
उर्वशी पथि गन्छन्ती बोधयामास तां मुने॥
प्रवालस्याकरे त्रस्ता वीर्यन्यासं चकार सा।
ततः प्रवालवर्णश्च कुमारः समपद्यत॥

तेजसा सूर्यसदृशो नारायणसुतो महान्।

(२) पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड अध्याय ८३) का कथन है कि एक बार अन्धक नाम का दैत्य पार्वती को देख कामातुर हो गया, उसका शिव से युद्ध होने लगा और शुक्राचार्य मरे दैत्यों को संजीवनी विद्या द्वारा जिलाने लगे। नन्दी ने पकड़ कर उन्हें शिव को दिया, शिव निगल गये किन्तु बाद में उन्होंने शुक्र को भूमि पर उगल दिया। चूँकि शुक्र भूमि पर गिरे इसलिये भौम (मंगल) कहे जाने लगे।

दैत्योऽन्धको शिवां दृष्ट्वा कामस्य वशगोऽभवत्।
दैत्यान् रणे मृतांस्तत्र शुक्राचार्यो ह्यजीवयत्॥
अगिलद् भार्गवं शंभुः पश्चादुद्गीर्णवांश्च तम्।
भूमौ निपतितो गर्भस्ततो भौम इति स्मृतः॥
कर्तव्यं पूजनं चास्य चतुर्थ्यां भौमवासरे।

(३) शिवपुराण (पार्वतीखण्ड १०) का कथन है कि एक बार शंकर का श्रमजन्य पसीना ललाट से भूमि पर गिर पड़ा और वह रक्तवर्ण, चतुर्भुज एवं सुन्दर शिशु होकर रोने लगा। पृथ्वी देवी शंकर से डरती हुई कुछ सोचने के बाद सुन्दरी नारी का रूप धारण कर वहाँ आयीं और शिशु को गोद में लेकर स्तन पिलाने लगीं तथा उसका मुख चूमने लगीं। शंकर की कृपा से वह बालक मंगल ग्रह हो गया और काशी में कुछ दिनों तक शिव की आराधना करने के बाद आकाश में शुक्र के ऊपर चला गया।

प्रभोर्ललाटदेशात्तु यत्पृषत् श्रमसंभवम्।
पपात धरणौ तत्र सम्बभूव शिशुर्द्रुतम्॥
चतुर्भुजोऽरुणाकारो रमणीयाकृतिर्मुने।
रुरोद हि शिशुस्तत्र धृत्वा सुस्त्रीतनुं क्षितिः॥
स्तन्यं सा पाययत्प्रीत्या क्रोडे च निदधे शिशुम्।
चुचुम्ब तन्मुखं स्नेहाद् ग्रहोऽभूत् शंकरेच्छया॥
काश्यां स शिवमाराध्य शुक्रादुपरि संस्थितः।

वेद और ज्योतिष का मंगल

पुराणों में मंगल ग्रह कहीं अशुभ नहीं है। इसका नाम ही मंगल है। वाजसनेयि संहिता का अग्रिम मन्त्र मंगल ग्रह का ही प्रतीत होता है। लिखा है—यह सुमंगल है, ताम्रवर्ण है, अरुण है, बभ्रु है, अनेक रुद्रों से घिरा है, मृड (मंगलप्रद) है, इसकी ग्रीवा नील है, वर्ण लोहित है, यह आकाश में सरक रहा है और गोपालों एवं पानी भरने वाली नारियों से दृष्ट है। इस मंगल को नमस्कार है।

असौ यस्ताम्रो अरुण उतः बभ्रुः सुमंगलः।
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशो वैषां हेडईमहे॥ १६। ६
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा अदृशन् अदृशन्नुदहार्यः स दृष्टो मृड याति नः॥ १६। ७

इससे सिद्ध है कि वेद में मंगल शुभ है पर आज के ज्योतिष में वह घोर पाप ग्रह है, क्रूर है और सब शुभ कर्मों में त्याज्य है। मंगली कन्या और मंगला वर से लोग घबरा जाते हैं। रवि मंगल वारों में कन्या की विदाई नहीं होती और महापात्र

भी बिदा नहीं होता। मुहूर्तचिन्तामणि का आदेश है कि मंगलवार को केवल घात, दाह, विषदान और शठों के कर्म करो। शुभ कर्म नहीं।

तस्मिन् घाताग्नि शाठ्यानि विषकर्मादि सिद्ध्यति॥

बुध का वैज्ञानिक रूप

बुध ग्रह सूर्य के सवसे निकट है, सवसे छोटा है और सूर्य से २७ अंश से अधिक दूर कभी नहीं जाता। आकार की विशालता के अनुसार ग्रहों का क्रम यह है–बुध, मंगल, शुक्र, पृथ्वी, शनि, गुरु। सूर्य के द्रव्य इन सव के योग से अधिक है, गुरु के द्रव्य पिछले पाँच के द्रव्यों के योग से अधिक हैं, शनि के द्रव्य पिछले चार के योग से अधिक हैं और यही स्थित पृथ्वी और शुक्र की है। चन्द्रमा की ही भाँति बुध की भी कलाओं की क्षयवृद्धि होती है और इससे भी सूर्य में छोटा सा बिन्दु रूप ग्रहण लगता है। जिन देशों में सन्ध्या लम्बी होती है वहाँ के वड़े-वड़े ज्योतिषी भी इसे नेत्रों से नहीं देख सके। यह ३४८ दिनों में छः बार उगता है और छः बार अस्त होता है। उगने पर २१ से ४३ दिनों तक दिखाई देता है और अस्त होने पर कभी ६ दिनों में तथा कभी ४३ दिनों में दिखाई देता है। ग्रहलाघव के अनुसार यह नियम है—पूर्वास्त के ३२ दिन बाद पश्चिमोदय, उसके ३२ दिन वाद बक्री, उसके ३ दिन बाद पश्चिमास्त, उसके १६ दिन बाद पूर्वोदय, उसके ३ दिन बाद मार्गी और उसके ३२ दिन बाद पूर्वास्त। इस प्रकार मध्यम मान से ११८ दिनों में इसके उदयास्त का एक चक्र पूरा होता है।

चन्द्रमा द्वारा तारों और बुधादि का पिधान

सूर्य और चन्द्रमा के भ्रमण मार्ग एक दूसरे को दो स्थानों में काटते हैं। वे ही निराकार राहुकेतु हैं। वहाँ सवा पाँच अंश का कोण बनता है। वे दोनों लगभग साढ़े अठारह वर्षों में क्रान्तिवृत्त की एक परिक्रमा करते हैं। क्रान्तिवृत्त में साढ़े तेईस अंश का कोण बनता है। क्रान्तिवृत्त, विषुववृत्त और चन्द्रवृत्त (विमण्डल) के कारण चन्द्रमा की स्थिति यह होती है कि वह यदि किसी एक तारे का पिधान करने लगा तो लगभग दो वर्षों तक हर प्रदक्षिणा में करता है, फिर साढ़े अठारह वर्षों तक नहीं करता और पुनः करने लगता है। जो तारे क्रान्तिवृत्त के पास हैं उनका पिधान वह साढ़े अठारह वर्षों में दो बार करता है। इसका भाव यह है कि एक बार करने लगा तो दो वर्षों तक करता है और पुनः एक बार दो वर्षों तक करता है।

चन्द्रमा कभी-कभी बुधादि ग्रहों का भी पिधान करता है और कभी-कभी किसी तारा और ग्रह का एक साथ पिधान करता है। बुध का एक नाम रौहिणेय है। अमरकोश में लिखा है–'रौहिणेयो बुधः सौम्यः' इसका अर्थ यह है कि बुध ग्रह रोहिणी और सोम, दोनों का पुत्र है। इस कथन का सम्बन्ध इसी पिधान से है। एक बार ऐसा प्रसंग आया कि चन्द्रमा ने रोहिणी नक्षत्र के पास स्थित बुध को ढक दिया और किसी ज्योतिषी ने रोहिणी एवं बुध, दोनों को चन्द्रबिम्ब से बाहर निकलते देखा तो कह दिया कि रोहिणी और चन्द्रमा के समागम से बुध ग्रह पैदा हुआ है।

यह दृश्य प्रायः ज्येष्ठ मास की अष्टमी के आस-पास ही देखने को मिलता है क्योंकि बुध सर्वदा सूर्य के पास रहता है और सूर्य ज्येष्ठ मास में रोहिणी में पहुँचता है। पूर्णिमा के पास की तिथियों में चन्द्रमा अधिक प्रकशमान् रहता है अतः पिधान देखने में थोड़ी कठिनाई होती है और अष्टमी तिथि के आस पास सुविधा रहती है। पुराणों ने शुक्र को मघापुत्र और मंगल को अषाढाभू कहा है। ये नाम भी इसी प्रकार पड़े होंगे। बृहस्पति की पत्नी तारा कही गयी है। वह भी रोहिणी ही होगी और बृहस्पति की कथा का भी इस बुधपिधान से सम्बन्ध हो सकता है।

तारे सूर्य से लाखों गुना बड़े हैं पर दूर रहने से छोटे दिखाई देते हैं। फिर भी सैकड़ों तारे बुध से अधिक तेजस्वी दिखाई देते हैं। सच पूछिए तो बुध को हमारे देश के बड़े-बड़े ज्योतिषी और पंचांग वनाने वाले भी नहीं पहचानते क्योंकि सूर्य

के बहुत निकट होने के कारण बहुत कम दिखाई देता है और सबसे छोटा ग्रह है अतः सिद्ध है कि दूर रहने पर तारों का प्रभाव उसी प्रकार बुध से अधिक पड़ता है जैसे दूरस्थ बड़े बल्ब का निकटस्थ दीपक से अधिक प्रभाव पड़ता है, किन्तु खेद है कि हम मृगव्याध, चित्रा, रोहिणी, अगस्त्य, आर्द्रा, स्वाती आदि तारों से भी अधिक महत्त्व बुध को देते हैं। इतना ही नहीं, जन्मपत्री के फलादेश में उसका महत्त्व सूर्य-चन्द्र से कम नहीं है। सूर्य-चन्द्र एक-एक राशियों के स्वामी हैं बुध की दो राशियाँ हैं। प्राचीन ज्योतिषियों ने छोटा और अल्पतेजस्वी होने से ही शनि और बुध को नपुंसक कहा था पर वह नपुंसक ही इस समय चन्द्रवंशियों का पितामह है और सूर्य-चन्द्र से महान् है। चित्रा और चन्द्रमा का योग बड़ा मनोहारी होता है। महाकवि कालिदास ने सीताराम को चित्राचन्द्र की उपमा दी है। पर पुराणों में बुध चित्रा का पति है, चन्द्र का पुत्र है और चैत्रमास का पिता है।

वैज्ञानिक और पौराणिक बृहस्पति

इसको देवगुरु और आंगिरस आदि भी कहते हैं। तेजस्विता में इसका शुक्र के बाद दूसरा स्थान है। इसकी अमाप्रदक्षिणा ४०० दिवसों में होती है। ग्रहलाघव के अनुसार यह अस्त होने के एक मास बाद उदित होता है, उसके सवा चार मास के बाद वक्री होता है, पुनः चार मास बाद मार्गी होता है और फिर उसके सवा चार मास बाद अस्त होता है। यह मध्यम मान है। इसका व्यास ८६००० मील है। घनफल पृथ्वी का १२४० गुना और द्रव्य ३०० गुना है। प्राचीन ऋषियों ने इसीलिये इसको गुरु (भारी) कहा है। यह एक सेकेण्ड में आठ मील चलता है। इसमें थोड़ा निजी प्रकाश और थोड़ी उष्णता भी है।

यह सूर्य की अपेक्षा हमसे दूर है और सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है फिर भी जन्मपत्री में सूर्य चन्द्र से अधिक महत्त्वपूर्ण है। सूर्य पाप ग्रह है और उसकी किरण से प्रकाशित होने वाले गुरु शुक्र शुभग्रह हैं। सूर्य चन्द्र एक-एक राशि के स्वामी हैं पर गुरु, शुक्र आदि दो-दो के। इसका कारण यह है कि ग्रहों और तारों का भाग्य ज्योतिषियों की मुट्ठी में है।

देव हमारे पूज्य हैं पर पुराणों के मत में देवों के पूज्य बृहस्पति अपनी गर्भवती भाभी से संभोग कर भरद्वाज को पैदा करते हैं, उनकी पत्नी तारा पुंश्चली है और पुत्र बुध दोगला है। ज्योतिषशास्त्र में बृहस्पति पुष्यनक्षत्र के स्वामी हैं पर उसमें विवाह होने से ब्रह्मा इतने कामी हो गये कि शिव के बाण से घायल होकर भी अभी मृग बन कर पुत्री रोहिणी के पीछे दौड़ रहे हैं। ब्रह्मा ने पुष्य को इसी कारण शाप दे दिया है। आजकल उसमें विवाह नहीं होता।

वैदिक बृहस्पति

पुराणों में बृहस्पति के पिता का नाम अंगिरा है पर वेद में अंगिरा कोई एक मानव नहीं है। शब्द बहुवचनान्त है। ऋग्वेद का कथन है कि अंगिरस् आकाश के पुत्र हैं तथा उनमें इन्द्र और अग्नि श्रेष्ठ हैं। ऋग्वेद ४। ५० के ११ मन्त्रों में बृहस्पति शब्द १० बार आया है। अन्य वेदों में भी अनेक बार आया है और वहाँ प्रायः उसका अर्थ परमात्मा है क्योंकि वह बृहतों का पति है किन्तु कई स्थानों में उसका बृहस्पति ग्रह के रूप में भी वर्णन है क्योंकि उसे आकाश की महान् ज्योति और पुष्य नक्षत्र के पास स्थित कहा है। मन्त्र ये हैं—

त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तमः। ऋ० १। ३१। २अंगिरस्तम इन्द्रः। ऋ० १। १३०। ३
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ऋ० ४। ५०। ४
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः तिष्यं नक्षत्रमभिसंबभूव। तै० ब्रा० ३। १। १
बृहस्पतिर्नः परिपातु २०। ८६। ११ बृहस्पतिः समजयत्॥ २०। ६०। ३ अथर्ववेद

बृहस्पति और पुष्य नक्षत्र का योग मनोहर होता है। वेद में बृहस्पति पुष्य का स्वामी कहा गया है और आज का ज्योतिष भी गुरु-पुष्य को शुभ कहता है। चूँकि बृहस्पति का अर्थ परमात्मा या ब्रह्मा भी है इसलिये बृहस्पति पुष्य के योग को ब्रह्मा-पुष्य का विवाह भी कहा जा सकता है क्योंकि वेद में चन्द्रमा से सूर्यकिरणं के संयोग को सूर्याचन्द्र का विवाह कहा है। जो पुराण रोहिणीमृग के चित्र को सरस्वती ब्रह्मा का कामयुद्ध कहते हैं वे वृहस्पतिपुष्य के योग में भी अश्लीलता देख सकते हैं और ब्रह्मा द्वारा पुष्य को शाप दिला सकते हैं। वस्तुतः आज इसी कल्पना के आधार पर पुष्य नक्षत्र विवाहादि में निषिद्ध हो गया है। पुराणों में भाई उतथ्य की पत्नी ममता के साथ बृहस्पति के व्यभिचार का और दीर्घतमा (गोतम) के जन्म का जो अश्लील वर्णन है वह भी वेद में आकाश की ही कथा है। ऋग्वेद (१।१५८) में स्पष्ट लिखा है कि सूर्य प्रकाश रूपी नदी में दीर्घतम डूब रहा था।

न मा गरन्नद्यो मातृतमाः....५॥ दीर्घतमा मामतेयो...६॥

चन्द्रमा, तारा और बृहस्पति सम्बन्धी कथा के विषय में ऋग्वेद का कथन है कि बृहस्पति ने अपनी पत्नी जुहू छोड़ी, सोम राजा ने उसे पुनः भेजा, मित्रावरुण ने समर्थन किया और अग्नि ने हाथ पकड़ कर स्वयं पहुँचाया। तव सोम द्वारा लायी जाया को बृहस्पति ने पुनः स्वीकार कर लिया।

सोमो राजा ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छद्....अग्निर्हस्तगृह्या निनाय १०।१०६।२
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीताम् १०।१०६।५

वैदिक ज्योतिष के अनुसार इस कथा का अर्थ यह है कि सोमराजा का हर मास में पुष्य से संयोग होता है पर बृहस्पति उसे छोड़ने के १२ वर्ष बाद फिर वहाँ आते हैं तथा इस बीच में मित्र, वरुण और अग्नि देव उससे कई बार मिल लेते हैं। विद्वानों ने इसके आध्यात्मिक अर्थ भी लगाये हैं। वेदों ने ईश्वर (ब्रह्मा) को बृहस्पति और बुद्धिपति कहा है। ज्योतिष ने बृहस्पति ग्रह को परमात्मा का ज्ञान और सुख, शुक्र को कामदेव, चन्द्रमा को मन और बुध को वचन कहा है (बृहज्जातक)। बुद्धि पोषिका होने से पुष्य है और तारिका होने से तारा है। यही जुहू है। इसके पास बृहस्पति (ज्ञान सुख) कभी-कभी आते हैं पर काम आदि सर्वदा चक्कर काटते रहते हैं। यही है बृहस्पति और तारा की कथा का वैदिक तथ्य।

वैज्ञानिक, वैदिक और पौराणिक शुक्र

शुक्र पर घना वातावरण है और मेघ हैं अतः वहाँ जीवधारी भी हो सकते हैं। सूर्य और पृथ्वी के बीच में शुक्र के आ जाने पर भी कभी-कभी छोटा सा ग्रहण लगता है। उसको अधिक्रमण कहते हैं। उस स्थिति में सूर्य पर एक छोटा सा काला धब्बा चलता दिखाई देता है। शुक्र गुरु से छोटा है पर उससे तेजस्वी दिखाई देता है। इसका हेतु यह है कि वह बृहस्पति की अपेक्षा सूर्य और पृथ्वी के निकट है। वह सूर्य से ४७ अंश से अधिक दूरी पर कभी नहीं जाता। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि सब ग्रह सूर्य की ही प्रदक्षिणा करते हैं, पृथ्वी की नहीं।

कुछ लोगों का कथन है कि वेदों में शुक्र का स्पष्ट वर्णन नहीं है अतः आर्य शुक्र से परिचित नहीं रहे होंगे पर वेदों में तो नमक का भी वर्णन नहीं है तो क्या लवण पर्वत के पास रहने वाले आर्य लवण से अपरिचित थे। क्या सागरों से सुपरिचित जाति लवण से अपरिचित रह सकती है? जो आर्य बृहस्पति से परिचित थे वे तेजो मूर्ति शुक्र से अपरिचित कैसे रह सकते हैं? वेद में अग्नि को, वीर्य को और तेज आदि को शुक्र कहा है पर कुछ मन्त्र विचारणीय हैं। उनका सम्बन्ध शुक्र ग्रह से भी हो सकता है।

शुक्रं त्वा शुक्र आधूनोमि...८।४८॥ तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि १।३१॥ तदेवाग्निस्तदादित्य-

स्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ३२।१॥ शुक्रः शुक्रशोचिषा ७।१३॥ सोमाय ब्रूतात् शुक्रस्ते ४। २४॥ शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च....ज्योतिष्मान् शुक्रश्च १७। ८०॥ शुक्रो देवेषु रोचते ११। ५४॥ पूयमानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी ८। ५७॥ स्वर्ण शुक्रः स्वर्णसूर्यः स्वाहा १८। ५०॥ हरिरन्यस्यां भवति स्वधावान् शुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ३३। ५॥ (यजुर्वेद)

पाश्चात्यों ने शुक्र ग्रह को सौन्दर्य की देवी वीनस्·(Venus) का नाम दिया है और यह नाम वेद में है। हम रुद्राभिषेक के समय एक मन्त्र में कहते हैं कि अहाहा! वेनस् उदित हो गया। यह ज्योति का पुंज है, प्रकाश का निधान है, सूर्य का शिशु है, अन्धकार को दूर करता है, जल देता है और विप्रों का पूज्य है (युज–७। १६)।

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं नं विप्रा मतिभी रिहन्ति॥ (ऋ० सं० १०।१२३।१)

कुछ लोग इस मन्त्र को सूर्यपरक कहते हैं पर यहाँ सूर्यशिशु शब्द प्रत्यक्ष है। चन्द्रमा से शुक्र अधिक तेजस्वी है। चन्द्रमा सूर्य से १२ अंश दूर जाने पर दिखाई देता है पर शुक्र ८ ही अंश पर। वह रात्रि की सर्वश्रेष्ठ ज्योति है। रात्रि में इसके प्रकाश में परछाई दिखाई देती है और यह दिन में भी देखा जा सकता है। इसकी कला की क्षयवृद्धि नेत्र से भी देखी जा सकती है। तेजस्विता के कारण ही इसका नाम शुक्र पड़ा। इंगलिश में मास को मन्थ कहते हैं और वेद में चन्द्र के भी मास और मन्थी नाम हैं। इंगलिश में शुक्र को वेनस् कहते हैं और यहाँ भी चन्द्र के साथ वेन्स नाम आया है।

सूर्यमासा विचरन्ता दिवि। ऋ० १०। ६२। १२॥ सूर्यमासा मिथ उच्चरातः ऋ० १०। ८६। १०॥ चक्षुषी ह वास्य शुक्रामन्थिनौ। चन्द्र एव मन्थी। अयं वेनश्चोदयत्। शतपथ ब्राह्मण ४। २। १।

पौराणिक शुक्र

वेद में शुक्र एक ग्रह है और शुभ है पर पुराणों में दैत्यगुरु है। पद्मपुराण (उत्तरखण्ड अध्याय १८) का कथन है कि एक बार जालन्धर दैत्य और शिव का युद्ध चल रहा था और शुक्राचार्य संजीविनी विद्या द्वारा जालन्धर के मृत सैनिकों को जिला रहे थे। शिव ने मारना चाहा तो शुक्र ने कहा कि ऐसा करने पर आप को ब्रह्महत्या लगेगी क्यों कि मैं ब्राह्मण हूँ। तब शिव ने शुक्र को एक नारी की योनि में बन्द कर देना चाहा। ऐसा सोचते ही उनके तृतीय नेत्र से लम्बे–लम्बे केशों, भीषण नेत्रों, बड़े–बड़े स्तनों और विशाल पेट वाली एक नंगी कृत्या (राक्षसी) निकल पड़ी। शिव ने उससे कहा मैं जालन्धर को जब तक मार न डालू तब तक तुम शुक्र को अपनी योनि के भीतर दबा कर रखो। इस बात को सुन कर शुक्राचार्य दैत्यों के साथ भागे। भागते–भागते गिर पड़े, हँसती हुई कृत्या ने केश पकड़ कर उन्हें खींचा, नंगा किया, उनका आलिंगन किया, उन्हें चूमा, योनि में डाला और जालन्धर को देख अदृश्य हो गयी। समुद्र का पुत्र जालन्धर मारा गया, उसकी मज्जा से पृथ्वी भर गयी, मेदिनी कही जाने लगी, उसके रक्त से कैलास के उत्तर शोणितपुर बन गया, उसके पर्वताकार मांस को शिव के गण खा गये और शुक्राचार्य तब तक उस राक्षसी की योनि में पड़े रहे।

मन्त्रोदकेन चाभ्युक्ष्य दैत्यानुत्थापयत् कविः।
ब्रह्महत्या मयि हते तव रुद्र भविष्यति॥
इति श्रुत्वा कवेर्वाक्यं शूलं तत्याज शंकरः।
तृतीयनयनात्तस्य वस्त्रहीना महोदरी॥
लम्बस्तनी योनिदंष्ट्रा कृत्या जाताऽतिभीषणा।
शिवस्तामाह कृत्ये त्वं स्वयोनौ क्षिप दुर्मतिम्॥

यावज्जालन्धरं हन्मि शुक्रं तावद् भगे वह।
पपात भूमौ तां दृष्ट्वा कविर्दैत्याः प्रदुद्रुवुः॥
नग्नमालिंग्य योनौ सा हसन्ती तं दधार च।
यावज्जालन्धरो बाणं सन्दधेऽदृश्यतां गता॥

शंकाएँ—(१) क्या मरे हुए मनुष्यों को जिलाया जा सकता है? मरे जीव तो यमराज के यहाँ चले जाया करते हैं। क्या शुक्राचार्य संजीवनी विद्या द्वारा उन्हें बुला लेते थे? (२) शिव ने ब्रह्महत्या के भय से शुक्राचार्य पर त्रिशूल नहीं चलाया तो राम ने करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या क्यों की? (३) सब ब्राह्मणों को परमात्मा शिव ही किसी न किसी बहाने मारते हैं, तो क्या उनको ब्रह्महत्या लगती है? (४) जो शिव इच्छा मात्र से अपने शरीर से राक्षसियाँ पैदा करते हैं वे इच्छा मात्र से ही शुक्राचार्य या जालन्धर को मार क्यों नहीं डालते? (५) क्या शिव के गण राक्षसों का मांस खाते हैं? (६) शिव के नेत्र से उत्पन्न नारी ने शुक्राचार्य को अपनी योनि से बाहर कब निकाला? (७) वह योनि से निकल कर आकाश में कब पहुँचा और सनातनधर्मी हिन्दुओं को ही क्यों सताने लगा? (८) वह दायें और सामने होने पर मुसलमानों और नास्तिकों को क्यों नहीं सताता? (९) योनि के बन्द हो जाने पर वह नारी मूत्रावरोध से मर क्यों नहीं गयी? (१०) पृथ्वी के मेदिनी बनने की कई कथाएँ हैं। उनमें कौन सी सत्य है? (११) क्या पृथ्वी में मनुष्य का मेद सना हुआ है? (१२) कितना बड़ा था वह दानव कि उसकी मज्जा से पृथ्वी भर गयी? (१३) ऐसी अपवित्र पृथ्वी विष्णु की पत्नी कैसे हो गयी? (१४) हम इसकी मिट्टी को शरीर पर कैसे लगावें? (१५) क्या जालन्धर समुद्र से उत्पन्न है? वह उसके भीतर जीवित कैसे रहा? (१६) क्या रक्त से नगर बनता है?

पद्मपुरण (उत्तरखण्ड ९६) का कथन है कि एक बार देवराज इन्द्र और देवगुरु बृहस्पति शंकर के दर्शन को कैलास गये तो उन्होंने वहाँ एक भीषण मनुष्य देखा। इन्द्र ने उससे पूछा कि शिव कहाँ हैं तो वह बोला नहीं। तब इन्द्र ने उसका सिर काट दिया। शिव के कोप से इन्द्र का वज्र भस्म हो गया और कण्ठ नीला पड़ गया। तब वे दोनों शिव की प्रार्थना करने लगे। दयालु शिव ने उसकी सुरक्षा के विचार से उस सिर को गंगासागर में फेंक दिया। उसके रुदन से धरती काँपने लगी और ब्रह्मा वहाँ आ गये। वह ब्रह्मा की मूँछ–दाढ़ी नोचने लगा तो ब्रह्मा के नेत्र से जल बहने लगा। तब ब्रह्मा ने उसका नाम जलंधर रख दिया और वह समुद्र का पुत्र हो गया। ब्रह्मा ने शुक्राचार्य को बुला कर उस समुद्र के पुत्र का विवाह कालनेमि की कन्या वृन्दा से कर दिया, उसे राजा बना दिया और शुक्र उसके सहायक हो गये। एक दिन उसने कटे सिर वाले राहु को देखकर शुक्र से पूछा कि यह कौन है। शुक्राचार्य ने बताया कि देवों ने अमृत के लिये तुम्हारे पिता समुद्र का मन्थन किया, दैत्यों को पराजित किया, सारा अमृत ले लिया, सब रत्न ले लिये और उसी प्रसंग में इसका सिर काट दिया। यह सुनकर जलंधर ने देवों से युद्ध आरंभ कर दिया।

पुरा शक्रः शिवं द्रष्टुमगात् कैलासपर्वतम्।
जलंधरं करे धृत्वा प्राक्षिपत् लवणांभसि॥
ब्रह्माणमग्रहीत् कूर्चे...जलंधर इति ख्यातः।
उद्योगमकरोत्तूर्णं सर्वदेवजिगीषया॥

देवगण विष्णु की प्रार्थना करने लगे किन्तु लक्ष्मी ने कह दिया कि समुद्र से उत्पन्न होने के कारण जलन्धर मेरा भाई है और अवध्य है। तब नारद ने जलन्धर को पार्वती के अपहरण की संमति दी। उसने राहु को दूत बना कर शिव के पास भेजा और पार्वती को माँगा। तब देवों से जलन्धर का युद्ध होने लगा। शुक्राचार्य ने उसमें मरे दैत्यों को मंत्रपूत जल से जिला दिया। उधर द्रोणपर्वत से जड़ी लाकर देवगुरु भी देवों को जिलाने लगे। जलन्धर ने द्रोण पर्वत उखाड़ कर सागर में डुबो दिया और स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया। तब शिव के मुख से एक ऐसी राक्षसी पैदा हुई जिसकी जाँघें ताड़ वृक्ष तुल्य थीं और जो अपने

स्तनों से वृक्षों को हिला देती थी। वह शुक्र को अपनी योनि में दबा कर आकाश में उड़ गयी। वे अभी उसी में पड़े हैं।

तत्र युद्धे हतान् दैत्यान् भार्गवस्तूदतिष्ठिपत्।
विद्यया मृतजीविन्या मन्त्रितैस्तोयबिन्दुभिः॥
दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेरंगिरासुतः।
जीवयामास देवान् स प्राक्षिपत् सागरे च तम्॥
अथ रुद्रमुखात् कन्या बभूवातीवभीषणा।
भार्गवं स्वभगे कृत्वा जगामान्तर्हितं नभः॥

पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय १००

शंकाएँ–(१) सर्वव्यापी शिव क्या कैलासादि सीमित स्थानों में रहते हैं? (२) क्या वे हमारे गाँवों के मन्दिरों में नहीं हैं? (३) हम उन्हें पूरे भारत के मन्दिरों में क्यों ढूँढें? (४) क्या वे विश्वनाथ, रामेश्वर आदि के पुजारियों को मिले हैं? (५) देवों के राजा ने द्वारपाल का सिर क्यों काटा? (६) क्या इन्द्र भी नीलकण्ठ हैं? (७) इन्द्र का वज्र भस्म हो गया तो अब वे वज्री क्यों कहे जाते हैं? (८) क्या वज्र (बिजली) समाप्त हो गया है? (९) भगीरथ का जन्म इस घटना के बहुत बाद हुआ है तो गंगा और गंगासागर कहा से आ गये? (१०) उसके रोने से धरती–आकाश काँप गये और ब्रह्मलोक से ब्रह्मा आ गये तो कितना घोर था उसका रोदन? (११) ब्रह्मा ने उसका क्या बिगाड़ा था कि वह उनकी दाड़ी नोचने लगा? (१२) सिर को हाथ नहीं होते तो वह दाढ़ी कैसे नोच रहा था? (१३) लक्ष्मी को कितने भाई हैं और समुद्र से कितने रत्न निकले हैं? (१४) जो पहले शिव का भक्त, गण और द्वारपाल था वह जलन्धर होने पर पार्वती को पत्नी कैसे बनाने लगा? (९४) पैर से हीन राहु कैसे चलता था? (१६) क्या द्रोण पर्वत समुद्र में डुबोया जा सकता है? (१७) राक्षसी शुक्र को योनि में दबा कर आकाश में उड़ गयी तो क्या यह युद्ध इसी धरती पर हुआ था? क्या गुरु–शुक्र धरती पर रहते हैं? (१८) यदि शुक्र अभी उसकी योनि में पड़े हैं तो हमें दिखाई कैसे देते हैं?

इस कथा का वैदिक रहस्य

मेघ ही जल को धारण करने वाला जलन्धर है और मेघ जीता–मरता रहता है। आकाश में सूक्ष्म जल का सागर है, उसी में जलंधर मेघ रहता है, इसीलिये वह सागर का पुत्र है और वह जब मरता है तो अपने रक्त, मांस, मज्जा आदि से अर्थात् जल से धरती को गीली कर देता है। यह शोणित (जल) सबसे अधिक पर्वतों पर गिरता है क्योंकि पर्वत ही जलन्धर को रोक कर द्रवित करते हैं। इसलिये शोणितपुर, द्रोण और कैलास पर्वतों पर है। वहाँ शिव के गण अर्थात् सूर्य की किरणें उसके मांस को अर्थात् हिम को खा जाती हैं और हिम जल बन कर सागर में चला जाता है। यही शिव के गणों द्वारा जलन्धर के मांस का भक्षण और रक्त का पान है। ये गण शिव के नेत्र से अर्थात् सूर्य से उत्पन्न होते हैं। सूर्य रश्मियाँ ही शिवगण हैं। सूर्य की किरणों से मेघों का संघर्ष ही शिव और जलंधर का तथा देवों और दैत्यों का युद्ध है तथा शुक्र का मेघों में छिपना ही राक्षसी की योनि में बन्द होना है। मेघरूपी यह राक्षसी सदा नंगी रहती है। आकाश की शोभा ही विष्णु (सूर्य) की पत्नी लक्ष्मी है इसलिये आकाश रूपी सागर का निवासी जलन्धर लक्ष्मी का भाई है। मेघों को वेदों ने गिरि भी कहा है। उनका समुद्र में पहुँचना ही जलंधर का और द्रोण का समुद्र में डूबना है। मेघ का विवाह मेघवृन्द से होता है। यही जलन्धर और वृन्दा का विवाह है। पवनदेव मेघों को सदा चलाते रहते हैं। उस समय मेघ स्थिर और मेघ के पास का ग्रह या तारा चल प्रतीत होता है। यह ग्रहचलन ही राक्षसी को देख कर शुक्राचार्य का भागना है। जलन्धर को विष्णु और शिव दोनों मारते हैं। सूर्य किरणें विष्णु हैं और झंझावात से युत बिजली रुद्र है। वृन्दा या जलंधर के देह से गण्डकी नदी पैदा होती है। यह वर्षा का आलांकारिक

वर्णन है। वृन्दा, जलन्धर आदि नारी नर नहीं हैं।

वैज्ञानिक और पौराणिक शनि

शनि अस्त होने के सवा मास बाद उगता है, उसके साढ़े तीन मास बाद बक्री होता है, उसके साढ़े चार मास बाद मार्गी होता है और उसके साढ़े तीन मास बाद अस्त होता है। इस प्रकार उसका अमाप्रदक्षिणाकाल (१।+ ३॥+४॥+३॥=१२॥।) ३८० दिनों का होता है। शनि एक सेकण्ड में छः मील चलता है पर उसकी कक्षा बहुत बड़ी है। उसका व्यास एक करोड़ साठ लाख मील से अधिक है अतः उसकी प्रदक्षिणा करने में उसे साढ़े उन्तीस वर्ष लग जाते हैं इसीलिये लोग उसे शनैश्चर और मन्द कहते हैं पर वह वस्तुतः शनैश्चर नहीं है फिर भी उसकी अंशात्मक मन्दगति और अल्पतेज के आधार पर हरदेश के ज्योतिषियों ने उसे पापग्रह मान लिया है और यूरोप ने तो उसको क्रूर और अविवेकी पिशाच सैटर्न का नाम दे दिया है। शनि सवा दस घण्टे में अपने अक्ष की प्रदक्षिणा करता है। उस पर एक ऐसा विशाल तेजोवलय है जो अन्य ग्रहों पर नहीं है। शनि में थोड़ा स्वकीय तेज और उष्णत्व भी है और उसके चारों ओर मेघ दिखाई देते हैं। उसके लगभग दस उपग्रह हैं। शनि एक तेजस्वी ग्रह है और सूर्य का पुत्र है पर ज्योतिषियों ने उसे असित (काला) और पंगु की उपाधि दी है। यद्यपि वह गोरा और तीव्रगतिमान् है पर हम ज्योतिष की बात मान लें तो भी राम और कृष्ण काले थे तथा गोस्वमी तुलसीदास ने राम की मन्द गति के विषय में लिखा है—

सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजुकुञ्जरवरगामी।
चलत राम सब पुर नरनारी। पुलक पूर तनु भये सुखारी॥

ज्योतिष में शनि शूद्र है, नपुंसक है और उसकी दृष्टि भीषण है। आज हिन्दू को सबसे अधिक भय उसी का है। उसकी एक कथा यह है—

शनि दृष्टि

पार्वती के यहाँ गणेश जी के जन्म का शुभ समाचार सुन कर बधाई देने के लिये देवों, गन्धवों, किन्नरों और अप्सराओं के साथ-साथ सूर्य के पुत्र और कृष्ण के परम भक्त शनैश्चर भी आये किन्तु उन्होंने शिशु की ओर देखा नहीं। पार्वती ने हेतु पूछा तो बोले कि मैं विषयों से विरक्त और तपस्या में रत हूँ। कृष्ण का भक्त हूँ और सर्वदा उनका ध्यान किया करता हूँ। मेरा विवाह रूपवती एवं मुनिमानस मोहिनी चित्ररथ गन्धर्व की कन्या से हुआ है। एक बार वह मासिक धर्म की निवृत्ति के बाद सुन्दर आभूषणों, वस्त्रों, पुष्पहारादिकों से अलंकृत होकर मेरे सामने आयी। यद्यपि शास्त्र बार-बार कहते है कि मासिक शुद्धि के बाद धर्मपत्नी से संभोग न करने पर ऐसा पाप लगता है जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है फिर भी मैं कृष्ण के ध्यान में ही निमग्न रहा। पत्नी ने कहा कि कृपया मेरी ओर एक बार दृष्टिपात तो कर दें परन्तु मेरा ध्यान नहीं टूटा। तब ऋतुधर्म के नष्ट हो जाने से मेरी कुपिता पत्नी ने पास आकर शाप दे दिया कि तुम जिस वस्तु को देखोगे वह नष्ट हो जायेगी। बाद में ध्यान क्रिया समाप्त होने पर मैंने उसे सन्तुष्ट करने का बहुत प्रयास किया। वह भी अपनी शीघ्रता पर पछताने लगी किन्तु उसमें शाप को हटाने की क्षमता नहीं थी। इसलिये हे माता! मैं किसी भी वस्तु को नहीं देखता। यह सुन कर पार्वती, किन्नरियाँ और नतंकियाँ ठहाका मार कर हँसने लगी।

आजगाम महायोगी सूर्यपुत्रः शनैश्चरः।
किं न पश्यसि मां साधो बालकं वा ग्रहेश्वर॥
आबालात् कृष्णभक्तोऽहं कृष्णध्यानैकमानसः।
तपःसुनिरतः शश्वत् विषये विरतः सदा॥

पिता ददौ विवाहे तु कन्यां चित्ररथस्य मे।
एकदेयमृतुस्नाता मुनिमानसमोहिनी॥
रत्नालंकारसंयुक्ता सुवेशं स्वं विधाय च।
ध्यायमानं हरेः पादं सा मां पश्येत्युवाच ह॥
शशाप मामपश्यन्तं ऋतुनष्टा च कोपतः।
त्वया दृष्टं च यद्वस्तु मूढ सर्वं विनश्यति॥
अहन्तु विरते ध्यानेऽतोषयं तां तदा सतीम्।
शापं मोक्तुमशक्ता सा पश्चात्तापं चकार च॥
तेन मातर्न पश्यामि किंचिद् वस्तु स्वचक्षुषा।
जहास पार्वती चोच्चैर्नर्तकी किन्नरीगणः॥

पार्वती के अतिशय आग्रह से बाध्य होकर शनि ने पार्वती का तो नहीं पर बायीं आँख के एक कोर से गणेश का मुख देख लिया। देखते ही उनका मस्तक कट गया और उड़कर गोलोक में कृष्ण के पास पहुँच गया। गोद में लिये बालक के रक्त से पार्वती नहा उठीं, मूर्छित हो गयीं और पूरे कैलास शिखर पर हाहाकार मच गया। इस स्थिति को जानकर कृष्ण के दास विष्णु गरुड़ पर सवार होकर आ गये। उन्होंने पुष्पभद्रा नदी के तट पर हथिनियों के बीच सोये एक गजराज का सिर काट दिया, हथिनियों का विलाप सुनकर गजराज के शरीर से नया सिर निकाल दिया, उसे जिला दिया और उसका मस्तक लाकर गणेश के सिर पर लगा दिया। गणेश जी उठे पर गजानन हो गये। पार्वती ने शनि को शाप दिया कि तुम अंगहीन हो जाओगे। इससे कश्यप, यम और सूर्य रुष्ट हो गये तथा सूर्य ने शाप दे दिया कि तुम्हारे पुत्र का भी अंग भंग होगा। बाद में ब्रह्मा के समझाने पर पार्वती ने शापमोचन किया कि तुम ग्रहराज, योगीश्वर और चिरंजीवी हो जाओगे किन्तु मेरे शाप के कारण एक पैर से थोड़ा लँगड़े रहोगे।

सव्यलोचनकोणेन ददर्श स शिशोर्मुखम्।
विच्छेद मस्तकं तस्य तस्थौ च नतमस्तकः॥
विवेश मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलोकमीप्सितम्।
गजेन्द्रं निद्रितं विष्णुर्ददर्श सुरतश्रमात्॥
विच्छेद मस्तकं तस्य....जीवयामास तं पुनः।
रुचिरं तच्छिरः कृत्वा योजयामास बालके॥
ग्रहराजो भव शने मद्वरेण हरिप्रियः।
चिरंजीवी च योगीन्द्रः किंचित् खंजो भविष्यसि॥

शंकाएँ—(१) क्या गणेश का जन्म कृष्ण के बाद हुआ है? (२) क्या कृष्ण के पूर्व गणेश–पूजा नहीं होती थी? (३) गोसाईं जी तो कहते हैं कि शिव के विवाह में भी गणेशपूजा हुई थी। वे अनादि हैं। (४) क्या पार्वतीसुत गणेश और पार्वती के विवाह में पूजे जाने वाले गणेश एक हैं? (५) गणेश कितने हैं? (६) कृष्ण का ध्यान करने वाले शनि कृष्ण–जन्म के पहले किसका ध्यान करते थे? उसे उन्होंने छोड़ क्यों दिया? (७) विषयों से विरक्त शनि ने विवाह क्यों किया? (८) भक्त अपने भगवान् का अनुकरण करता है। कृष्ण को तो करोड़ों पत्नियाँ थीं। वे रासलीला करते थे। इसी ग्रन्थ के अनुसार राधा का खाया पान चबाते थे तो भक्त ऐसा क्यों हो गया? (९) पत्नी ने ऐसा शाप क्यों दिया। इससे तो शनि की दृष्टि से उसका, उसके बच्चे का, गाँव केऔर देश भर के लोगों का गला कट सकता था? (१०) क्या शनि की पत्नी में शाप देने की शक्ति थी? थी तो उसने शनि का ध्यान भग्न क्यों नहीं कर दिया? उसको कामातुर क्यों नहीं बना दिया? (११) जो शाप दे सकती

थी वह क्या शाप का विमोचन नहीं कर सकती थी? (१२) क्या शनि सर्वदा आँख पर पट्टी बाँधे रहता था? (१३) क्या उसकी दृष्टि से कटे सब गले कृष्ण के पास पहुँच जाते थे? (१४) गणेश का गला वहीं भूमि पर क्यों नहीं गिरा? (१५) क्या आकाश में स्थित कृष्ण के गोलोक को किसी ने देखा है? (१६) कृष्ण गोलोक में रहते हैं कि मथुरा-द्वारिका में? (१७) क्या विष्णु कृष्ण के दास हैं? (१८) यदि हाँ, तो कृष्ण को विष्णु का अवतार क्यों कहा गया है? (१९) विष्णु ने किस अपराध में गज का सिर काटा? (२०) जो कृष्ण गज के गले से नया सिर निकाल सकते थे उन्होंने गणेश की धड़ से ही नया सिर क्यों नहीं निकाल दिया? (२१) उन्होंने अपने लोक में पहुँचे गणेश के मस्तक को ही क्यों नहीं मँगा लिया? (२२) क्या मनुष्य के गले पर हाथी का सिर बैठ सकता था? (२३) क्या हाथी के मुख से मानव की भाषा बोली जा सकती है? (२४) शनि प्रति दिन पूरे संसार को देख रहा है तो धरती के सब प्राणियों के सिर कट क्यों नहीं जाते? वृक्ष गिर क्यों नहीं पड़ते? (२५) पार्वती ने शनि को शाप दिया तो अपने पुत्र का मस्तक ठीक क्यों नहीं कर दिया? (२६) पुराणों में गणेश के जन्म की परस्पर विरुद्ध १०-१५ कथाएँ हैं। उनमें से कौन सी सत्य है? (२७) क्या शनि ग्रहराज है? (२८) क्या शनि लँगड़ा है? (२९) क्या कोई गन्धर्व अपनी कन्या का विवाह जड़ ग्रह से कर सकता है? ३० क्या शनि ग्रह कृष्णावतार के पहले नहीं था?

ग्रहों की दृष्टि

ग्रहों और तारों का प्रकाश ही उनकी दृष्टि है और वह हम पर सदा पड़ता रहता है। चन्द्रमा सूर्य की दृष्टि से प्रकाशित होता है और चन्द्रमा की दृष्टि से ही समुद्र में ज्वार भाटा आता है। प्रत्येक ग्रह और प्राणी की यही स्थिति है। काव्य में नारी के कटाक्षबाण का विस्तृत वर्णन है पर वह पुरुष में भी होता है। नारी ग्रन्थलेखिका होती तो वह पुरुष के ही कटाक्ष की महत्ता का वर्णन करती। कटाक्ष का ही नहीं, ग्रहों और मानवों के पूरे शरीर का प्रभाव पड़ता है परन्तु ज्योतिष शास्त्र में कथित दृष्टि वाला नियम अनुभूति पर नहीं बल्कि कल्पना पर आश्रित है।

दृष्टिनियम

१ पाद	२ पाद	३ पाद	४ पाद
३	५	४	७
१०	९	८	
शनि	गुरु	मंगल	सब

जन्मपत्री

२			१२
३	१		११
४			१०
५	७		९
६			८

ज्योतिष कहता है कि ३,१० स्थानों को सब ग्रह एक चौथाई दृष्टि से, ५,९ को आधी दृष्टि से, ४,८ को तीन चारण से और सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं किन्तु शनि, गुरु और मंगल इन दो-दो स्थानों को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

शंकाएँ

(१) सातवें को अर्थात् सामने वाले स्थान को सब ग्रह पूर्ण दृष्टि से देखते हैं, यह नियम तर्क संगत है पर शनि ३,१० को पूर्ण दृष्टि से देखेगा तो अन्य ग्रह क्यों नहीं देखेंगे? (२) शनि ३ को पूर्ण दृष्टि से देखेगा तो ११ को क्यों नहीं? वह भी तो उतनी ही दूरी पर है? (३) शनि १० को पूर्ण दृष्टि से देखेगा तो ४ को क्यों नहीं? वह भी तो उतना ही दूर है? (४) ग्रहों की दृष्टि सात ही स्थानों पर पड़ती है, पाँच पर नहीं। वे हैं—१,२,६,११,१२। जो ६ के दायें बायें तीन-तीन स्थानों को देख रहे हैं वे बीच वाले ६ को क्यों नहीं देखेंगे? (५) जो १ में बैठा है वह ४५ अंश की दूरी पर स्थित २,१२ को क्यों नहीं देखेगा?

(६) सूर्य लालटेन या दीया नहीं है कि उसके पास अन्धेरा रहेगा? प्रकाश के पुंज ग्रह जहाँ बैठे हैं उसे क्यों नहीं देखेंगे? (७) बृहस्पति ५ और ७ को पूर्ण दृष्टि से देखता है तो यह कैसे संभव है कि उन दोनों के बीच वाले ६ पर उसकी दृष्टि ही न पड़े? (८) मंगल ७,८ को पूर्ण दृष्टि से देखता है पर ६ पर उसकी दृष्टि पड़ती ही नहीं, यह कैसे शक्य है? (९) मंगल ४ को पूर्ण दृष्टि से देखता है तो १० को क्यों नहीं देखेगा? (१०) एक पाद, दो पाद, तीन पाद की दृष्टि वाला नियम सूर्य, चन्द्र, बुध और शुक्र में क्यों नहीं लगता? (११) शनि यदि अपने पास की १,२,१२ राशियों को नहीं देख पाता तो पार्वती का शाप सत्य कहाँ हुआ? (१२) ज्योतिष के अनेक आचार्यों ने इस पाद दृष्टि को नहीं माना है। क्यों?

सत्य यह है कि पर्वतों, वृक्षों, मनुष्यों और पशु आदिकों के शरीर का जो भाग सूर्य के सामने पड़ता है उस पर किरणें अधिक पड़ती हैं और पीछे वाले पर कम पड़ती हैं पर पड़ती सर्वत्र हैं। सूर्योदय के बाद घर के भीतर वाले कमरों में भी सूर्य का प्रकाश पहुँच जाता है अतः यह संभव नहीं है कि १,२,१२,६ और ११ स्थानों पर दृष्टि पड़े ही नहीं। पास वाले स्थानों १,२,१२ पर तो और अधिक प्रकाश पड़ता है। यही स्थिति हर ग्रह और तारे की है अतः दृष्टि वाला नियम अन्य अनेक नियमों की भाँति मिथ्या है।

शनिकृत रोहिणी शकट भेद

एक बार राजा दशरथ के ज्योतिषियों ने उनसे कहा कि शनि ग्रह रोहिणी शकट के पास पहुँच गया है। यदि उसने शकट का भेदन कर दिया तो बारह वर्षों का अकाल पड़ेगा। वसिष्ठ ने कहा कि यह प्रजापति (ब्रह्मा)का नक्षत्र है। इसका भेद हो जाने पर प्रजा जीवित नहीं रहेगी। इस बात को सुनने के बाद दशरथ महाराज रथ पर बैठ कर झट उस रोहिणीपुञ्ज के पास पहुँच गये जो पृथ्वी से अरबों योजन दूर है। सोने के रथ पर बैठे दशरथ ने जब धनुष पर संहारक अस्त्र चढ़ाया तब भयभीत शनि उनके पुरुषार्थ की भूरि भूरि प्रशंसा करने के बाद बोला कि आप वर माँगें। राजा ने कहा कि जब तक सूर्य, चन्द्र और सागर विद्यमान् हैं, आप रोहिणी शक्ट का भेद न करें। शनि ने बात मान ली।

रघुवंशेऽति निख्यातो राजा दशरथोऽभवत्।
कृत्तिकान्ते शनिं ज्ञात्वा दैवज्ञैर्ज्ञापितश्च सः॥
रथमारुह्य वेगेन गतो नक्षत्रमण्डलम्।
हसित्वा तद्भयात् सौरिरिदं वचनमब्रवीत्॥
तुष्टोऽहं तव राजेन्द्र वरं ब्रूहि किमिच्छसि।
रोहिणीं भेदयित्वा तु न गन्तव्यं कदाचन॥

तब राजा ने प्रार्थना की कि कृष्ण वर्ण वाले, गहरे नेत्र, लम्बी दाढ़ी और लम्बी जटाओं वाले, सर्वभक्षी; भीषण, कपाली, अधोदृष्टि और मन्दगति वाले, स्थूल रोम वाले, तप से देह को कृश कर सर्वदा योगाभ्यास में रत रहने वाले और अपने दृष्टिपात से सबका समूल नाश कर देने वाले शनि देव! आपको नमस्कार है।

नमः कृष्णाय नीलाय दीर्घश्मश्रुजटाय च।
सर्वभक्षाय भीमाय कोटराक्षकपालिने॥
अधोदृष्टे मन्दगते स्थूलरोम्णे नमोनमः।
तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च॥
त्वया विलोकिताः सर्वे नाशं यान्ति समूलतः।

उस समय शनि ने दशरथ से कहा कि जिसकी जन्मपत्री में लग्न, चतुर्थ, अष्टम और द्वादश स्थानों में मैं रहूँगा वह

वालक मर जायेगा। उसके वचाने का उपाय यह है कि मेरे (शनि) वार में मेरी लोहे की मूर्ति बनाओ और शमीपत्र, उड़द, तिल आदि से उसकी पूजा करो। वह मूर्ति, दक्षिणा, काली गाय, काला वैल आदि ब्राह्मण को दो तथा मेरे स्तोत्र का पाठ कराओ। ऐसा करने पर मैं कष्ट नहीं देता। जन्म लग्न की ही भाँति जन्म राशि से अशुभ स्थानों में मेरे रहने पर अर्थात् मेरी अढ़ैया में, साढ़े साती में, महादशा में और अन्तर्दशा में इन पदार्थों के साथ नीलम, सोना, कस्तूरी, महिषी, कालावस्त्र और जूता आदि देने पर मैं रक्षा करता हूँ और अन्य ग्रहों की पीड़ा से वचाता हूँ।

मृत्युं मुत्युगतो दद्यां जन्मन्यन्ते चतुर्थके।
शमीपत्रैः समभ्यर्च्य प्रतिमां लोहजां मम॥
माषौदनतिलैर्मिश्रं दद्यात् लोहं च दक्षिणाम्।
कृष्णां गां वृषभं वापि यो वै दद्याद् द्विजातये॥
मद्दिने तु विशेषेण स्तोत्रेणानेन पूजयेत्।
तस्य पीडां न चैवाहं करिष्यामि कदाचन॥
गोचरे जन्मलग्ने वा दशास्वन्तर्दशासु च।
रक्षामि सततं तस्य पीडां चापि ग्रहस्य च॥

पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय ३४

शंकाएँ-(१) रोहिणी के पाँच तारे एक दूसरे से करोड़ों योजन दूर हैं। उनसे कोई शकट नहीं बनता। केवल शकट की आकृति दिखाई देती है तो शनि शकट पर कैसे पहुँचा? (२) रोहिणी शकट शनि से अरवों मील दूर है और शनि अपनी कक्षा छोड़कर कभी कहीं जाता नहीं दीखता तो वह रोहिणी के पास कैसे पहुँच गया? (३) ज्योतिषशास्त्र में शुक्र और शनि परस्पर अति मित्र हैं और रोहिणी की वृष राशि शुक्र का क्षेत्र है। तो अति मित्र की राशि में वैठा शनि अशुभ कैसे हो गया? (४) वह लग्नकुण्डली आदि में परम शुभ क्यों माना जाता है? (५) शनि या कोई ग्रह रोहिणी की सीध में रहने पर क्या रोहिणी शकट का भेद करता है? क्या रोहिणी नाम की गाड़ी को तोड़ता है? (६) इस कथा में लिखा है कि रोहिणी तारा शनि ग्रह से सवा लाख योजन दूर है। क्या ऐसा कहने वाला कवि ज्योतिर्विद् और दिव्यद्रष्टा हो सकता है? (७) रोहिणी तारा पृथ्वी से अरबों योजन दूर है। दशरथ का रथ वहाँ कैसे पहुँच गया? (८) राम को लंका में जाने के लिये पुल वनाना पड़ा। दशरथ का वह रथ उस समय कहाँ था? (९) जो शनि सारे संसार को समाप्त करने की शक्ति रखता है और जिसके दृष्टिपात से गणेश का गला कट गया उसके सामने दशरथ जीवित कैसे रहे? (१०) रोहिणी शकट का भेद करना और न करना क्या शनि के हाथ में है? क्या कोई ग्रह अपनी कक्षा के बाहर जा सकता है? (११) क्या सृष्टि के अन्त तक शनि कभी रोहिणीशकट के बीच से नहीं जायेगा? (१२) क्या शनि की ऐसी भीषण मानवाकृति है? (१३) जो दशरथ से डर रहा है उसमें वर देने की शक्ति कहाँ से आ गयी? (१४) क्या दशरथ के समय में १२ राशियों वाली यह जन्मपत्री बनती थी। (१५) क्या जिनकी कुण्डली में लग्न, चतुर्थ आदि में शनि रहता है वे बालक मर जाते हैं? (१६) क्या ज्योतिष का कोई ग्रन्थ इसका समर्थक है? (१७) क्या दशरथ के समय सप्त वार प्रचलित थे? (१८) दोनों का यह लम्बा विधान लिखने वाले क्या अर्थलोलुप नहीं हैं?

राहु–केतु चेतन ग्रह

पुराणों में पर्वत, सागर, ग्रह, मास आदि भी चेतन प्राणी हैं, उनको पुत्र–पुत्री हैं, वे सव भागवत की कथा सुनने आते हैं और चारों वेद राम–कृष्ण की प्रार्थना करते हैं। प्राणप्रतिष्ठा करने पर पाषाण और काष्ठ भी चेतन हो जाते हैं। राहु–केतु ग्रह कक्षाओं के दो निराकार सम्पात हैं और ग्रहणकालीन राहु–केतु से उनका कोई नाता नहीं है। सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण के समय उन दोनों की राशियाँ पंचांगों में सूर्य–चन्द्रमा से वहुत दूर रहती हैं। प्रश्न यह है कि सूर्य–चन्द्र की कक्षाओं के

सम्पात यदि ग्रह हैं तो अन्य ग्रहों की कक्षाओं के सम्पात क्यों नहीं? धूमकेतुओं की कक्षाओं के सम्पात ग्रह क्यों नहीं? वराहमिहिर और कल्याण वर्मा आदि ने सात ही ग्रहों के फल क्यों लिखे और अष्टकवर्ग आदि में सात ही ग्रह क्यों हैं? राहु-केतु कुछ राशियों के स्वामी क्यों नहीं माने गये? राहु-केतु के नाम पर कुछ वार क्यों नहीं बने?

पुराणों में राहु सिंहिका राक्षसी का पुत्र है और छल से अमृत पीते समय विष्णु ने उसका सिर काट दिया है। पर यह कथा काल्पनिक है। इसका रहस्य आगे पढ़ें। वस्तुतः पृथ्वी की छाया ही राहु है और रात्रि भी पृथ्वी की छाया ही है। हम रात भर राहु के पेट में रहते हैं, सुख पाते हैं और वृक्ष की छाया में विश्राम करते हैं। वह भी राहु (छाया) ही है। छाया में थोड़ा प्रकाश भी रहता है। इसी कारण राहु को तम के साथ स्वर्भानु भी कहा जाता है। तम उत्तरायण और शुक्लपक्ष में भी रहता है। ज्योतिष में देवालय, गृहारंभ, जलाशयारंभ और वधू के तृतीय आगमन के राहु भिन्न-भिन्न हैं और एक ही समय उनके सिर भिन्न-भिन्न दिशाओं में रहते हैं पर ये सब मिथ्या और काल्पनिक हैं।

नूतन ग्रह यूरेनस (पितामह या प्रजापति)

इंग्लैण्ड का हर्षल नामक ज्योतिषी स्वयं दूरबीन बनाता था। उसने १३।३।१७८१ को दूरबीन से मिथुन राशि में एक ज्योति देखी और परीक्षण से निश्चित किया कि यह एक ग्रह है। पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने ग्रहों को प्राचीन ग्रीक रोमन देवों के नाम दिये हैं। वे बृहस्पति को ज्यूपिटर और शनि को सैटर्न कहते हैं। प्राचीन ग्रीक देवों में ज्यूपिटर का पिता सैटर्न और सैटर्न का पिता यूरेनस है इसलिये इस नूतन ग्रह को यूरेनस नाम दिया गया। यूरनेस ज्यूपिटर का पितामह है इसलिये भारतीय ज्योतिषियों ने इसे देवों का पितामह प्रजापति (ब्रह्मा) कहा। इसको सूर्य की प्रदक्षिणा करने में ८४ वर्ष लगते हैं। इसका व्यास ३२ सहस्र मील है और यह सूर्य से लगभग १७७ कोटि मील दूर है। बहुत दूर होने से बड़े बड़े वैज्ञानिक भी प्रजापति के विषय में बहुत सी बातें नहीं जान सके हैं परन्तु इससे सर्वथा अपरिचित कल्पनाचार्यों ने इसका नाम सुनते ही इसके विषय में ऐसी बातें लिख डाली हैं जिन्हें सुन कर इसके सूक्ष्म अध्ययन में रत हर्षल, एरी, ह्युजिंस, बोवर्ड, आडाम, लह्वरिअर और लालांडी आदि भी चकित हो जायेंगे।

कल्पनाप्रिय पण्डितों का इसके विषय में निर्णय है कि यह शनि से बलवान् और खल ग्रह है। इसके प्रभाव से युद्ध, रोग, वियोग और आकस्मिक घटनाएँ होती हैं। यूरेनस के प्रभाव से ही नूतन रोग हो रहे हैं और आकाश दूषित हो रहा है। शनिग्रह १०-११ राशियों का स्वामी था पर उसने अपनी वातुल कुंभ राशि अपने पिता यूरनेस को दे दी। इसका अर्थ यह है कि अब शनि कुंभ का स्वामी नहीं है। यह पाप ग्रह १-८ राशियों में अशुभ और ७-११ में बलवान् होता है। यह ११।५। १६३६ ईसवी में मेषस्थ शनि से युत हुआ। इसी से द्वितीय महायुद्ध हुआ। यह सामान्यतः ५, ६, १०, ११ स्थानों में शुभ और अन्यत्र अशुभ माना जाता है। इसका संक्षिप्त फल यह है—यह लग्नस्थ होने पर अशुभ होता है पर वहाँ ३, ७, ११ राशियाँ हों तो बालक को आविष्कारक और मेधावी बना देता है। अन्य स्थानों में यह फल देता है-(२) पारिवारिक कष्ट, धनहानि (३) भ्रातृकष्ट, यात्रा (४) कष्ट, कलह, धनहानि (५) पुत्र-हानि, विद्या-हानि (६) मामा-नाश, रोग-वृद्धि (७) स्त्री-सुख-नाश (८) आत्म-हत्या, रक्तपात, अतिकष्ट (६) धर्मज्ञानवृद्धि (१०) उन्नति (११) (१२) धनहानि, वैर। जन्मपत्री में पंचम या सप्तम में हो तो नर-नारी दुराचारी होते हैं। पुरुष की जन्मपत्री में चन्द्रमा से और स्त्री की कुण्डली में सूर्य से युत हो तो विवाह नहीं होना चाहिए। होने पर अनेक अमंगल होंगे। इसी प्रकार अन्य भी मनमाने फल लिखे गये हैं।

घोर आश्चर्य है कि जो ज्योतिषी नेत्रों से प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले सूर्यादि ग्रहों के वास्तविक स्थान, कक्षाक्रम और प्रभाव को कई सहस्र वर्षों में नहीं जान सके तथा उनके विषय में एकमत नहीं हो सके वे नेत्र से दिखाई न देने वाले यूरेनस के सूक्ष्म प्रभाव को अपनी दिव्य दृष्टि से दस बीस वर्षों में ही जान गये। इन्होंने इसके प्रभाव के विषय में अनेक ऐसी बातें भी लिखी हैं जो परस्पर विरुद्ध हैं। यथा ५, ६, १०, ११ स्थानों में स्थित यूरेनस शुभ भी होता है और अशुभ भी। ये फल तो

अविश्वसनीय हो जाते हैं किन्तु ज्योतिषी को यह सुविधा रहती है कि वह चूहे की भाँति अपनी वनाई अनेक विलों मेंसे किसी एक में घुसकर वाहर निकल जाता है और अपने को प्रत्येक स्थिति में दिव्यद्रष्टा सिद्ध कर देता है। प्रश्न यह है कि अव हम कुंभ को शनि की राशि मानें या यूरेनस की? वेटे ने वाप को अपनी राशि क्यों दे दी? अन्य ग्रहों ने उसे अपनी राशियाँ क्यों नहीं दीं? क्या राशियाँ ग्रहों की व्यक्तिगत सम्पत्ति और बाँटने की वस्तुएँ हैं? क्या शनि को कुंभराशि किसी को दान देने का अधिकार है?

आजकल वर और वधू, दोनों पक्षों की सब माँगों का समाधान हो जाने पर भी गणना न बैठने के कारण अथवा कुण्डली न मिलने पर अनेक विवाह निरस्त हो जाते हैं और दोनों पक्ष मन मसोस कर वैठ जाते हैं। प्रजापति का मिथ्या फल लिखने वालों ने इसमें अनेक नयी वाधाएँ खड़ी कर दी हैं। उनका कथन है कि उनके पंचम भाव में स्थित होने पर नर-नारी दुराचारी हो जाते हैं और विवाह अशुभ हो जाते हैं?

नेपच्यून (वरुण) ग्रह

इंग्लैण्ड के आडाम्स और फ्रांस के लवरिअर नामक ज्योतिषियों ने नेपच्यून का पता सन् १८४६ ईसवी में लगाया। यह सूर्य से लगभग २७७ करोड़ मील दूर है और १६४ वर्षों में उसकी प्रदक्षिणा करता है। वैज्ञानिक इससे सम्वन्धित कुछ वातें जान चुके हैं और शेष को जानने के प्रयास में हैं पर दिव्य दृष्टि वाले फलितज्ञों ने इसके फल के विषय में वहुत कुछ लिख डाला है। उनके कथनानुसार यह जलीय ग्रह है। इसे गुरु ने अपनी जलीय राशि मीन दे दी है अत: अव यही मीन राशि का स्वामी है और इसी से भारतीयों ने इसका नाम वरुण रख दिया है। यह इतना प्रभावशाली है कि योग होने पर सब ग्रहों को अपने प्रभाव से रंग देता है। यह १, ५, ६ स्थानों में शुभ, ३, ७, १०, ११ में मध्यम और २, ४, ६, ८, १२ में अशुभ होता है। इसको ३, ४, ७, ११, १२ राशियाँ प्रिय हैं और शेष अप्रिय हैं। इसके लग्नादि १२ भावों में स्थित होने पर ये फल होते हैं—१ गौर, निद्रालु, प्रवासी, २ दरिद्र कुटुम्बहानि, ३ कृषिहानि, बन्दी, ४ मातृकष्ट आदि, ५ पुत्र-पुत्रीवान्, ६ अतिसार, संग्रहणी, मूत्ररोग, विश्वासघात, ७ सुन्दर, सुस्त्रीक, स्त्रीकष्ट आदि। वस्तुत: भावों के फल के साथ-साथ ग्रहदृष्टि और ग्रहयोग आदि का भी विचार किया जाता है अत: भावफल निश्चित नहीं हैं।

शंका होती है कि जब अतिशय प्रभावशाली वरुण ग्रह सब ग्रहों को अपने रंग में रंग देता है तव तो वराहमिहिर आदि प्राचीन आचार्यों ने ग्रहों के और ग्रहयुतियों के जो फल लिखे हैं वे सब संशयास्पद और मिथ्या हो गये क्योंकि उन्हें यूरेनस, नेपच्यून, प्लूटो, सिरिस, वेस्ता आदि अनेक ग्रहों का और उनके प्रभावों का पता नहीं था। दूसरी शंका यह है कि अव हम कुंभ और मीन को शनि और गुरु की राशियाँ मानें या प्रजापति और वरुण की?

प्लूटो (यम) और एरास आदि लघु ग्रह

श्री पर्सिवल लवेल को प्लूटो की जिज्ञासा हुई और उसकी वेधशाला के महान् गणितज्ञ C. W टाम्बू ने २३। १। १९३० ईसवी को उसका पता लगाया। यह २४८ वर्षों में सूर्य की प्रदक्षिणा करता है। पता नहीं, इधर ज्योतिषियों ने इसे किस राशि और किस वार का स्वामी माना है।

महान् पाश्चात्य ज्योतिषी टिटिअस ने सन् १७७२ ईसवी में सूर्य से ग्रहों की दूरी का एक नियम वताया और यह निश्चित हुआ कि मंगल-गुरु के बीच में भी कोई ग्रह है। यह अनुमान केप्लर के समय से ही चला आ रहा था। अव वहाँ एरास, सिरिस, वेस्ता, पालास, जूनो, फ्लोरा और हिजिया आदि १७५० ग्रह प्राप्त हुए हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि ये एक ही ग्रह के टुकड़े हैं। प्रश्न यह है कि (१) यूरेनस और नेपच्यून कुछ राशियों के स्वामी हैं तो प्लूटो और ये ग्रह क्यों नहीं? (२) भारतीय ज्योतिष ने दो निराकार ग्रहकक्षाओं के दो निराकार और अदृश्य सम्पातों को राहु-केतु मान लिया और लिख दिया

कि ये ६–१२ राशियों के स्वामी हैं तथा ३–९ राशियाँ इनके उच्च हैं– 'राहोः कन्या गृहं प्रोक्तं राहूर्च्चं मिथुनं स्मृतम्'। तो इन ग्रहों की राशियाँ और उच्च–नीच क्यों नहीं? (३) आपने सात वारों को सात ग्रहों में बाँट दिया, उसे सत्य मान लिया, वारों के लम्बे चौड़े फल लिख दिये और वार–तिथि–नक्षत्र के योग से भले बुरे सैकड़ों योग बना डाले तो ये ग्रह कुछ वारों के स्वामी क्यों नहीं? (४) यदि वार और राशियाँ प्राकृतिक हैं और उनका प्रभाव पड़ता है तो इनकी संख्या बढ़ावें अथवा प्रत्येक वार और राशि के कई स्वामी मानें। (५) जो प्राचीन ज्योतिषी इन विषयों को नहीं जानते थे वे एक राशि और एक वार के छोटे–छोटे सैकड़ों टुकड़े कर के उनका सूक्ष्मातिसूक्ष्म फल कहते हैं और ग्रहदशाओं द्वारा एक–एक घटी का फल बताते हैं तो हम उन पर विश्वास कैसे करें? उनकी दिव्यदृष्टि ने इन्हें क्यों नहीं देखा?

पापग्रह

वेद ने जिसे विष्णु कहा है, जो सारे स्थावर–जंगम की आत्मा है और जिसके प्रकाश से सब ग्रह प्रकाशित होते हैं वह सूर्य ज्योतिष में पाप है और उसका वार पाप है तथा सब शुभ कर्मों में वर्जित है। विश्वकर्मा कहते हैं कि लग्न में सूर्य बैठा हो अर्थात् सूर्योदय हो रहा है तो उस समय गृहारंभ करने से घर पर बिजली गिरती है। आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि तुला के सूर्य के उदय काल में जन्मा बालक अन्धा होता है। क्षीणचन्द्र, सूर्य, मंगल और शनि पापग्रह हैं तथा इनसे युत होने पर बुध भी पाप हो जाता है।

क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः।

सारांश यह कि सात में पाँच ग्रह पाप हैं। वराह के समय तक राहु–केतु ग्रह नहीं थे। उन्होंने बृहज्जातक में सात के ही फल लिखे हैं। राहु–केतु को ग्रहत्व प्राप्त हो जाने के बाद मुहूर्तमार्तण्डकार ने इस श्लोक में संशोधन करते हुए बताया कि ग्रह नव हैं और उनमें सात पाप तथा दो (गुरु–शुक्र) शुभ हैं–

क्षीणेन्द्वर्कयमारराहुशिखिनः पापा बुधस्तैर्युतः।

बुध पापग्रह से युत होने पर पाप कहा जाता है पर वह पाप सूर्य के सर्वदा साथ रहता है। २७ अंश से दूर कभी जाता ही नहीं और अन्य पापों से मिला करता है। यह शुद्र और नपुंसक होने से और भी घृणास्पद है फिर भी क्षत्रियों के चन्द्रवंश का आदिपुरुष है। चन्द्रमा वेद और पुराण में द्विजराज है। सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा है पर ज्योतिष में वैश्य और स्त्री है। गाँव की भाषा में बनियाँ की बिटिया है। पुराणों में यह शिव का आभूषण है, शिव के ससुर दक्ष प्रजापति का दामाद है, २७ नक्षत्रों का पति है पर ज्योतिष की दृष्टि में दोषागार है। आप गुलाब और कमल के लालफूल को शुभ मानते हैं, पुष्पित पलाशवन की शोभा से मुग्ध हो जाते हैं, लाल ओठों की बिम्बाफल से उपमा देते हैं, पत्नी का पैर लाल रंग से रँगवाते हैं और उसे लाल सिन्दूर से सौभाग्यवती बनाते हैं पर रवि और मंगल ग्रह लाल होने से पाप हो गये हैं। इसी कारण मंगल अंगारक, लोहितांग, रक्ता और क्षत्रिय कहा जाता है। मन्दगति होने से शनैश्चर काला और पाप कह दिया गया, यूरेनस उससे भी मन्दगति और पाप है। प्लूटो का नाम ही यम है। केवल दो ग्रह शुभ हैं पर गुरु अस्त होने पर अर्थात् सूर्य के पाप रहने पर पाप हो जाता है। गुरु का सूर्य परम मित्र है पर उसकी सिंह राशि में गुरु के पहुँचने पर वर्ष भर के लिये सब शुभ कर्म बन्द कर दिये जाते हैं। जन्मपत्री में केन्द्राधीश होने पर गुरु–शुक्र पाप हो जाते हैं और शुक्र के सामने या दायें रहने पर युद्ध यात्रा, द्विरागमन आदि कई कर्म दस मास के लिये रोक दिये जाते हैं। इनके पापग्रह होने की अन्य स्थितियाँ आगे लिखी हैं। यहाँ एक का निरीक्षण करें–शत्रुक्षेत्र, नीचराशि और अष्टमादि स्थानों में ग्रह बलहीन हो जाते हैं पर दिग्बल का महत्त्व अधिक है। वराहमिहिर ने लिखा है कि सूर्य, गुरु और शुक्र दिन में बली तथा रात में निर्बल होते हैं। चन्द्र, मंगल और शनि रात में बली होते हैं और दिन में बलहीन हो जाते हैं। पापग्रह कृष्णपक्ष में पाप हो जाते हैं। सब ग्रह वक्री, अतिचारी और अस्त आदि होने पर पाप हो जाते

हैं। ज्योतिप में ग्रहों की दीप्त आदि अनेक अवस्थाओं का वर्णन है। उनके अनुसार शुभग्रह भी अनेक वार पाप हो जाते हैं। इसलिये ज्योतिषी को शुभग्रह, और शुभमुहूर्त ढूँढ़ने पड़ते हैं और पद-पद पर यजमानों से शान्तियज्ञ कराने पड़ते हैं।

ग्रहादिविषयक अकारण भय

पीछे द्वितीय अध्याय में मिथ्या भयों के विषय में कुछ शास्त्रमत लिखे हैं। ज्योतिष में कई सहस्र मिथ्या भयों का विस्तृत वर्णन है। लिखा है कि हिरन, गधा, भैंसा, हाथी, गीध, कौवा, बाघ, मगर आदि के सदृश आकृति वाले मेघों से सूर्य ढक जाय तो राष्ट्र को भीषण भय होगा। चन्द्रमा का दक्षिणा शृंग ऊँचा होने पर भय होगा, मंगल के वक्री होने पर भय होगा, ग्रहण लगने पर भय होगा, शनि के लाल होने पर भय होगा, पताका दक्षिण ओर फहराने पर भय होगा, उल्का की आकृति बन्दर या मगर सदृश होने पर भय होगा, लाल और पीली हो तो भय होगा, ग्रहों के अस्त होने पर भय होगा और मलमास खलमास आदि में विवाह करने पर भय होगा। छिपकली कहाँ गिरी, गिरगिट किधर दौड़ा, ख़ंजन का मुख किधर था, छींक कितनी वार आयी, खुजलाहट कहाँ हुई, स्वर कौन सा चला, ये सव भय के सागर हैं। हितोपदेश का कथन है कि मूढों के लिये पद-पद पर शोक के सहस्रों और भय के सैकड़ों स्थान हैं। वे उनको डराते हैं पर पण्डितों से डरते हैं। अज्ञ मनुष्य छोटे से कार्य का प्रारंभ करके ही व्यग्र हो जाता है किन्तु धीर पुरुष महारंभ में भी निराकुल रहते हैं। अच्छे से अच्छे पदार्थ में भी एक दो दोष तो रहते ही हैं। सारे खाद्यान्नों और सभी पेयों में अनेक दोषों की शंकाएँ की जा सकती हैं, किन्तु ऐसा करने पर तो जीना भी दूभर हो जायेगा। मनुष्य की किसी कार्य में प्रवृत्ति ही नहीं होगी। इसलिये आपत्तिकाल आने पर वृद्धों के वचन का आश्रय ग्रहण कर उत्साहपूर्वक कर्म में प्रवृत्त होना चाहिए। अथर्ववेद में प्रोत्साहन और प्रार्थना है कि ऐ मेरे प्राण! जैसे सूर्य-चन्द्र और सत्यवादी वीर कभी भयभीत नहीं होते उसी प्रकार तुम निर्भय रहो। हे विश्वनाथ! हमारे गृह मधुरभाषी, सत्यवादी, भाग्यशाली, प्रीतिभोजकारक, हास्यमोदयुत एवं तृप्त हों और हमारे अज्ञानजन्य भय समाप्त हों। आप ने अपनी सहस्र धाराओं से सूर्य, चन्द्रमा और तारों को निर्भय और पूत किया है। आप ज्योतियों की ज्योति और भुवनों के राजा हैं। अतः हमें कृपया ऐसा आत्मबल दें कि हम किसी से न डरें और हमारे विचार पवित्र हों, शिवसंकल्पवान् हों।

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढं आविशन्ति न पण्डितम्॥
आरभन्तेल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारंभेऽपि सुधियः तिष्ठन्ति च निराकुलाः॥
शंकाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले।
प्रवृत्तिः कुत्र कर्तव्या जीवितव्यं कथं नु वा॥
सर्वत्रैवं विचारेण भोजनेऽप्यप्रवर्तनम्॥
सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्त हसा मुदाः।
अक्षुध्या अतृष्यासो गृहा मास्मद् बिभीत न॥
येन पूतौ सूर्याचन्द्रमसौ नक्षत्राणि भूतकृतः सह येन पूताः।
तेनासहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्। एको भुवनस्य राजा॥
यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिश्यतः एवा मे प्राण मा बिभेः॥

हे शकधूम! नक्षत्रों ने तुम्हें अपना राजा वनाया है अतः तुम हमारी और राष्ट्र की रक्षा करो। हे नक्षत्रराज! तुमने हमारे सारे सायंकालों, रात्रियों और दिवसों को मंगल कारक बनाया है और हमें निर्भय किया है इसलिये तुम्हें नमस्कार है।

शकधूम नक्षत्राणि यद्राजानमकुर्वत।

भद्राहमस्मै प्रायच्छन् इदं राष्ट्रमसादिति॥
यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा।
तस्मै ते नक्षत्रराज शमधूम सदा नमः॥ (अथर्ववेद ६।१२।४)

परन्तु वेदनेत्र ज्योतिष के महान् आचार्य श्री बराहमिहिर ने भी अगणित नि:सार भयों का विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने गणित–स्कन्ध के प्रत्येक स्थल में कल्पना का तिरस्कार कर प्रत्यक्ष को प्रमाण माना है, पितामह और वसिष्ठ तक के सिद्धान्तों को दूरविभ्रष्ट कह दिया है, म्लेच्छों को ऋषिवत् पूज्य कहा है और काल्पनिक राहु को तथा उसकी सर्पाकार आकृति को अस्वीकार कर दिया है पर अप्रत्यक्ष और काल्पनिक प्रकरण का आरंभ होते ही सावधान कर दिया है कि ज्योतिष आगमशास्त्र है, उसमें तुम स्वयं कोई संशोधन करने का साहस मत करो क्योंकि तुम ऋषि नहीं हो। ऋषियों में मतभेद हो तो बहुमत को मान लो पर शंका मत करो।

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः॥
पौलिश अतिस्फुटोसौ तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः।
स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ दूरविभ्रष्टौ॥ (पं० सि० १।४)
ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये॥ (बृहत्संहिता ६।७)

उनकी बृहत्संहिता के १२ अध्यायों (८६–९७) में शकुनों का वर्णन है। आचार्य ने लिखा है कि हर देश और काल के शकुनों के भिन्न भिन्न फल होते हैं। इनमें से १०–२० शकुन प्रतिदिन आते हैं। आचार्य ने सहस्रों का संग्रह किया है। अन्य भी अनेक अध्याय शकुन सदृश ही हैं। निश्चित है कि उनकी आत्मा इन्हें मिथ्या समझती रही होगी पर उन्होंने मुनिमत होने से लिख दिया है क्योंकि अपने बृहज्जातक में लिखा है कि मैंने पुरानी पोथियों के अनुसार वज्रादि योग लिख तो दिये पर वे असंभव हैं। क्योंकि सूर्य से चतुर्थस्थान में बुध और शुक्र कभी जा नहीं सकते। ऐसी टिप्पणी करने वाले मेधावी आचार्य की आत्मा अवश्य कहती रही होगी कि बुध और शुक्र सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं, पृथ्वी की नहीं पर वे संकोच और भयवश नहीं कह सके। यह कह दिया—

पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः।
चतुर्थभवने सूर्यात् ज्ञशुक्रौ भवतः कथम्॥

सूर्यसम्बन्धी मिथ्या भय (बृहत्संहिता)

आचार्य ने अपनी बृहत्संहिता के आदित्यचार नामक तृतीय अध्याय में बताया है कि प्राचीन और नवीन उत्तरायणारंभ में अन्तर है तथा हमें नवीन को मानना है क्योंकि वही प्रत्यक्ष है किन्तु सूर्य पर दिखाई देने वाले धब्बों के विषय में लिखा है कि ग्रहण के बिना त्वष्टा नाम का ग्रह सूर्य को तमयुक्त करता हो तो सात राजाओं का और शस्त्र, अग्नि, दुर्भिक्ष आदि से जनता का नाश होता है। राहु के तामस कीलक आदि नाम वाले ३३ पुत्र हैं। उन्हें सूर्य में देख कर वर्ण, स्थान और आकृति से फल कहे। ये सूर्यमण्डल में अशुभ और चन्द्रमा में शुभ होते हैं। चन्द्रमा में भी कौआ, कबन्ध और शस्त्रादि की आकृतियाँ अशुभ होती हैं। जिन देशों में सूर्य बिम्ब स्थित तामस, कीलक आदि का दर्शन होता है वहाँ का राजा कष्ट पाता है। मुनि लोग क्षुधा से पीड़ित होकर निर्मांस बालकों के साथ परदेश चले जाते हैं। मेघ पानी नहीं बरसते, नदियाँ सूख जाती हैं और चोरों का भय बढ़ जाता है। सूर्यबिम्ब में दिखाई देने वाला केतु दण्डाकार हो तो राजा की मृत्यु होती है। छिन्न मस्तक मनुष्य दीखे तो रोग भय और काक दिखाई दे तो दुर्भिक्ष एवं तस्कर भय होता है। वह श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण हो तो क्रमशः

ब्राह्मणादि चारों वर्णों का नाश करता है। ये चिह्न सूर्यमण्डल में जिस दिशा में दिखाई देते हैं उसी दिशा में स्थित लोगों को नाना प्रकार के भय प्राप्त होते हैं। सूर्य के ऊपरी भाग की किरणें ताम्रवर्ण की हों तो सेनापति का, पीली हों तो राजपुत्र का और श्वेत हों तो पुरोहित का नाश होता है। धूमवर्ण हों तो डाकुओं से और शस्त्र प्रहारों से जनता व्याकुल हो जाती है। सूर्यमण्डल रूक्ष हो और उसका वर्ण श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण दिखाई दे तो क्रमशः चारों वर्णों का नाश होता है। जिस राजा के जन्म–नक्षत्र के समय सूर्यमण्डल में छिद्र दिखाई दे उसका नाश होता है। सूर्यमण्डल घड़े सरीखा दिखाई दे तो मनुष्यों का नाश होता है, और छाते सदृश हो तो देश नष्ट होता है।

सतमस्कं पर्व विना त्वष्टानामार्कमण्डलं कुरुते।
स निहन्ति सप्तभूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः॥ ३। ६
तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवस्त्रयस्त्रिंशत्।
वर्णस्थानाकारैस्तान् दृष्ट्वार्के फलं ब्रूयात् ३। ७॥
ते चार्कमण्डलगताः पापफलाश्चन्द्रमण्डले सौम्याः।
ध्वांक्षकबन्धप्रहरणरूपाः पापाः शशांकेऽपि ३। ८॥

इस अध्याय के ४० श्लोकों में सूर्यबिम्ब सम्बन्धी अन्य भी अनेक फल लिखे हैं पर ये सब पुरानी कल्पनाएँ हैं। इस युग में सूर्यबिम्ब का विस्तृत अध्ययन हुआ है। वैज्ञानिकों ने दूरबीन, वर्णलेखक (Spectroscope) आदि द्वारा दिव्यदृष्टि प्राप्त की है। ग्रहों, नीहारिकाओं, धूकेतुओं, सूर्यप्रभामण्डल (Corona), तेजोगोल (Photosphere), तेजःशृंग (Protuberance, Prominence, Flame) आदि का उन्होंने विस्तृत अध्ययन किया है किन्तु भयभीत नहीं हुए हैं। हमारे प्राचीन ज्योतिषियों ने नेत्र से या नलिका आदि से सूर्य के काले धब्बे देखे थे। वे आज भी सूर्योदय और सूर्यास्तकाल में कभी कभी देखे जा सकते हैं किन्तु वैज्ञानिकों का कथन है कि दूरबीन से सूर्य के विम्ब पर भिन्न–भिन्न आकृतियों के अनेक काले काले धब्बे और उनके चारों ओर तैरते हुए अगणित श्वेत तेजःकण प्रायः दिखाई देते हैं। चूँकि सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है इसलिये एक ही धब्बा भिन्न–भिन्न समयों में भिन्न–भिन्न आकृतियाँ ग्रहण कर लेता है। इन धब्बों का पता सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही लग गया। धब्बों से ही यह ज्ञात हुआ कि सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है। सूर्यबिम्ब का अक्षप्रदक्षिणाकाल सर्वत्र समान नहीं है। सूर्य के विषुवृत्त की अपेक्षा ध्रुवों की प्रदक्षिणा में अधिक समय लगता है। सूर्य की अक्षप्रदक्षिणा २५–२७ दिनों में होती है। सूर्यबिंब की पूर्वदिशा में कोई धब्बा दिखाई देने लगता है। भिन्न–भिन्न वर्षों में इनकी संख्या न्यूनाधिक हुआ करती है। कुछ चिह्न प्रति वर्ष दिखाई देते हैं। कोई वर्ष उनसे रिक्त नहीं रहता। न्यूनाधिकत्व में भी एक निश्चित क्रम है। उसका मध्यम मान लगभग सवा ग्यारह वर्ष है। ये धब्बे सूर्य के विषुवतृत्त की दोनों ओर तीस अंश पर्यन्त ही स्पष्ट दिखाई देते हैं। उनका कुछ फल होता हो तो वह अभी अज्ञात हैं। हमारे यहाँ लिखे हास्यास्पद फलों को आप नीचे के श्लोक में पढ़ें।

प्रहरणसदृशैर्जलदैः स्थगितः सन्ध्याद्वयेऽपि रणकारी।
मृगमहिषविहगखरकरभसदृशरूपैश्च भयदायी ३। ३५॥

दोनों सन्ध्याओं (सूर्योदय–सूर्यास्त) में सूर्यबिम्ब यदि किसी शस्त्र तुल्य आकृति वाले मेघ से आच्छादित हो जाय तो युद्ध होगा। मेघ का आकार मृग, भैंसा, पक्षी, गधा या हाथी सरीखा हो तो विविध भयों की प्राप्ति होगी पर शस्त्र सैकड़ों प्रकार के हैं। बादल किसी भी आकृति का हो, उसकी तुलना किसी न किसी शस्त्र से की जा सकती है और हृदय के भयभीत होने पर शुभ आकृति भी अशुभ प्रतीत होगी। पक्षी अनेक प्रकार के हैं। बादल की एक ही आकृति को आप गृध्र, राजहंस, गरुड़ आदि कई शुभ–अशुभ नाम दे सकते हैं। अश्व और खर की आकृति में बहुत अन्तर नहीं होता और यहाँ तो मृग और गज की आकृतियों को भी भयदायी कहा है। हमें सोचना है कि सूर्य को ढँकने वाले बादलों की आकृतियों से क्या हमारे शुभाशुभ का सम्बन्ध हो सकता है? सूर्य के वर्णों के यहाँ अनेक फल लिखे हैं किन्तु वैज्ञानिकों ने सब वर्णों के हेतु और उनके

भद्राहमस्मै प्रायच्छन् इदं राष्ट्रमसादिति॥
यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा।
तस्मै ते नक्षत्रराज शमधूम सदा नमः॥ (अथर्ववेद ६।१२।४)

परन्तु वेदनेत्र ज्योतिष के महान् आचार्य श्री बराहमिहिर ने भी अगणित निःसार भयों का विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने गणित-स्कन्ध के प्रत्येक स्थल में कल्पना का तिरस्कार कर प्रत्यक्ष को प्रमाण माना है, पितामह और वसिष्ठ तक के सिद्धान्तों को दूरविभ्रष्ट कह दिया है, म्लेच्छों को ऋषिवत् पूज्य कहा है और काल्पनिक राहु को तथा उसकी सर्पाकार आकृति को अस्वीकार कर दिया है पर अप्रत्यक्ष और काल्पनिक प्रकरण का आरंभ होते ही सावधान कर दिया है कि ज्योतिष आगमशास्त्र है, उसमें तुम स्वयं कोई संशोधन करने का साहस मत करो क्योंकि तुम ऋषि नहीं हो। ऋषियों में मतभेद हो तो बहुमत को मान लो पर शंका मत करो।

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः॥
पौलिश अतिस्फुटोसौ तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः।
स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ दूरविभ्रष्टौ॥ (पं० सि० १।४)
ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये॥ (बृहत्संहिता ६।७)

उनकी बृहत्संहिता के १२ अध्यायों (८६-९७) में शकुनों का वर्णन है। आचार्य ने लिखा है कि हर देश और काल के शकुनों के भिन्न भिन्न फल होते हैं। इनमें से १०-२० शकुन प्रतिदिन आते हैं। आचार्य ने सहस्रों का संग्रह किया है। अन्य भी अनेक अध्याय शकुन सदृश ही हैं। निश्चित है कि उनकी आत्मा इन्हें मिथ्या समझती रही होगी पर उन्होंने मुनिमत होने से लिख दिया है क्योंकि अपने बृहज्जातक में लिखा है कि मैंने पुरानी पोथियों के अनुसार वज्रादि योग लिख तो दिये पर वे असंभव हैं। क्योंकि सूर्य से चतुर्थस्थान में बुध और शुक्र कभी जा नहीं सकते। ऐसी टिप्पणी करने वाले मेधावी आचार्य की आत्मा अवश्य कहती रही होगी कि बुध और शुक्र सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं, पृथ्वी की नहीं पर वे संकोच और भयवश नहीं कह सके। यह कह दिया—

पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः।
चतुर्थभवने सूर्यात् ज्ञशुक्रौ भवतः कथम्॥

सूर्यसम्बन्धी मिथ्या भय (बृहत्संहिता)

आचार्य ने अपनी बृहत्संहिता के आदित्यचार नामक तृतीय अध्याय में बताया है कि प्राचीन और नवीन उत्तरायणारंभ में अन्तर है तथा हमें नवीन को मानना है क्योंकि वही प्रत्यक्ष है किन्तु सूर्य पर दिखाई देने वाले धब्बों के विषय में लिखा है कि ग्रहण के बिना त्वष्टा नाम का ग्रह सूर्य को तमयुक्त करता हो तो सात राजाओं का और शस्त्र, अग्नि, दुर्भिक्ष आदि से जनता का नाश होता है। राहु के तामस कीलक आदि नाम वाले ३३ पुत्र हैं। उन्हें सूर्य में देख कर वर्ण, स्थान और आकृति से फल कहे। ये सूर्यमण्डल में अशुभ और चन्द्रमा में शुभ होते हैं। चन्द्रमा में भी कौआ, कबन्ध और शस्त्रादि की आकृतियाँ अशुभ होती हैं। जिन देशों में सूर्य बिम्ब स्थित तामस, कीलक आदि का दर्शन होता है वहाँ का राजा कष्ट पाता है। मुनि लोग क्षुधा से पीड़ित होकर निर्मांस बालकों के साथ परदेश चले जाते हैं। मेघ पानी नहीं बरसते, नदियाँ सूख जाती हैं और चोरों का भय बढ़ जाता है। सूर्यबिम्ब में दिखाई देने वाला केतु दण्डाकार हो तो राजा की मृत्यु होती है। छिन्न मस्तक मनुष्य दीखे तो रोग भय और काक दिखाई दे तो दुर्भिक्ष एवं तस्कर भय होता है। वह श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण हो तो क्रमशः

ब्राह्मणादि चारों वर्णों का नाश करता है। ये चिह्न सूर्यमण्डल में जिस दिशा में दिखाई देते हैं उसी दिशा में स्थित लोगों को नाना प्रकार के भय प्राप्त होते हैं। सूर्य के ऊपरी भाग की किरणें ताम्रवर्ण की हों तो सेनापति का, पीली हों तो राजपुत्र का और श्वेत हों तो पुरोहित का नाश होता है। धूमवर्ण हों तो डाकुओं से और शस्त्र प्रहारों से जनता व्याकुल हो जाती है। सूर्यमण्डल रूक्ष हो और उसका वर्ण श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण दिखाई दे तो क्रमशः चारों वर्णों का नाश होता है। जिस राजा के जन्म-नक्षत्र के समय सूर्यमण्डल में छिद्र दिखाई दे उसका नाश होता है। सूर्यमण्डल घड़े सरीखा दिखाई दे तो मनुष्यों का नाश होता है, और छाते सदृश हो तो देश नष्ट होता है।

सतमस्कं पर्व विना त्वष्टानामार्कमण्डलं कुरुते।
स निहन्ति सप्तभूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः॥ ३।६
तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवस्त्रयस्त्रिंशत्।
वर्णस्थानाकारैस्तान् दृष्ट्वार्के फलं ब्रूयात् ३।७॥
ते चार्कमण्डलगताः पापफलाश्चन्द्रमण्डले सौम्याः।
ध्वांक्षकबन्धप्रहरणरूपाः पापाः शशांकेऽपि ३।८॥

इस अध्याय के ४० श्लोकों में सूर्यबिम्ब सम्बन्धी अन्य भी अनेक फल लिखे हैं पर ये सब पुरानी कल्पनाएँ हैं। इस युग में सूर्यबिम्ब का विस्तृत अध्ययन हुआ है। वैज्ञानिकों ने दूरबीन, वर्णलेखक (Spectroscope) आदि द्वारा दिव्यदृष्टि प्राप्त की है। ग्रहों, नीहारिकाओं, धूकेतुओं, सूर्यप्रभामण्डल (Corona), तेजोगोल (Photosphere), तेजःशृंग (Protuberance, Prominence, Flame) आदि का उन्होंने विस्तृत अध्ययन किया है किन्तु भयभीत नहीं हुए हैं। हमारे प्राचीन ज्योतिषियों ने नेत्र से या नलिका आदि से सूर्य के काले धब्बे देखे थे। वे आज भी सूर्योदय और सूर्यास्तकाल में कभी कभी देखे जा सकते हैं किन्तु वैज्ञानिकों का कथन है कि दूरबीन से सूर्य के बिम्ब पर भिन्न-भिन्न आकृतियों के अनेक काले काले धब्बे और उनके चारों ओर तैरते हुए अगणित श्वेत तेजःकण प्रायः दिखाई देते हैं। चूँकि सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है इसलिये एक ही धब्बा भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न आकृतियाँ ग्रहण कर लेता है। इन धब्बों का पता सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही लग गया। धब्बों से ही यह ज्ञात हुआ कि सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है। सूर्यबिम्ब का अक्षप्रदक्षिणाकाल सर्वत्र समान नहीं है। सूर्य के विषुवृत्त की अपेक्षा ध्रुवों की प्रदक्षिणा में अधिक समय लगता है। सूर्य की अक्षप्रदक्षिणा २५-२७ दिनों में होती है। सूर्यबिंब की पूर्वदिशा में कोई धब्बा दिखाई देने लगता है। भिन्न-भिन्न वर्षों में इनकी संख्या न्यूनाधिक हुआ करती है। कुछ चिह्न प्रति वर्ष दिखाई देते हैं। कोई वर्ष उनसे रिक्त नहीं रहता। न्यूनाधिकत्व में भी एक निश्चित क्रम है। उसका मध्यम मान लगभग सवा ग्यारह वर्ष है। ये धब्बे सूर्य के विषुववृत्त की दोनों ओर तीस अंश पर्यन्त ही स्पष्ट दिखाई देते हैं। उनका कुछ फल होता हो तो वह अभी अज्ञात हैं। हमारे यहाँ लिखे हास्यास्पद फलों को आप नीचे के श्लोक में पढ़ें।

प्रहरणसदृशैर्जलदैः स्थगितः सन्ध्याद्वयेऽपि रणकारी।
मृगमहिषविहगखरकरभसदृशरूपैश्च भयदायी ३।३५॥

दोनों सन्ध्याओं (सूर्योदय-सूर्यास्त) में सूर्यबिम्ब यदि किसी शस्त्र तुल्य आकृति वाले मेघ से आच्छादित हो जाय तो युद्ध होगा। मेघ का आकार मृग, भैंसा, पक्षी, गधा या हाथी सरीखा हो तो विविध भयों की प्राप्ति होगी पर शस्त्र सैकड़ों प्रकार के हैं। बादल किसी भी आकृति का हो, उसकी तुलना किसी न किसी शस्त्र से की जा सकती है और हृदय के भयभीत होने पर शुभ आकृति भी अशुभ प्रतीत होगी। पक्षी अनेक प्रकार के हैं। बादल की एक ही आकृति को आप गृध्र, राजहंस, गरुड़ आदि कई शुभ-अशुभ नाम दे सकते हैं। अश्व और खर की आकृति में बहुत अन्तर नहीं होता और यहाँ तो मृग और गज की आकृतियों को भी भयदायी कहा है। हमें सोचना है कि सूर्य को ढँकने वाले बादलों की आकृतियों से क्या हमारे शुभाशुभ का सम्बन्ध हो सकता है? सूर्य के वर्णों के यहाँ अनेक फल लिखे हैं किन्तु वैज्ञानिकों ने सब वर्णों के हेतु और उनके

आने के क्रम बताये हैं। यहाँ लिखा है कि सूर्यमण्डल पर काली रेखा दिखाई दे तो राजा को मंत्री मार डालेगा।

कृष्णा रेखा सवितरि यदि हन्ति ततो नृपं सचिवः ३। ३२

चन्द्रमा सम्बन्धी भय

चन्द्रमा यदि ज्येष्ठा आदि चार नक्षत्रों के दक्षिण से जाय तो बीजों, वनों और जलचरों का नाश होता है तथा भीषण अग्निभय होता है। विशाखा और अनुराधा के दक्षिण से जाने पर भी अनेक दुष्फल होते हैं। इसी प्रकार उसके कई नक्षत्रों के योगों के फल लिखे हैं। चन्द्रमा का जब आधे से कम भाग प्रकाशित होता है तब दो सींगे दिखाई देती हैं। ग्रन्थों में उनके आधार पर तेजी–मन्दी आदि अनेक फल कहे गये हैं। चन्द्रमा की आकृति नौका और हल सरीखी हो तो नाविकों और कृषकों को कष्ट होता है तथा धनुष सरीखी हो तो युद्ध होता है। चन्द्रमा का शृंग दक्षिण–उत्तर लम्बा हो तो भूकम्प आता है और दक्षिण शृंग ऊँचा हो तो व्यापारियों का नाश होता है तथा अनावृष्टि और दुर्भिक्ष आते हैं। चन्द्रमा का शृंग उत्तर दिशा में ऊँचा हो तो अन्न की वृद्धि होती है और दक्षिण में ऊँचा हो तो दुर्भिक्ष आता है। इस प्रकार इस अध्याय के ३२ श्लोकों में चन्द्रमा के वर्ण और वेध आदि का विस्तृत फल बताते हुए अन्तिम श्लोक में लिखा है कि शुक्लपक्ष में कोई तिथि बढ़ जाय तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और प्रजा की वृद्धि होती है, तिथि घट जाय तो उनकी हानि होती है, समान रहने पर सम फल होता है और कृष्णपक्ष में ये सारे फल उलट जाते हैं।

शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे प्रवृद्धिं ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च।
हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन॥

परन्तु यहाँ दक्षिणायन और दक्षिण गोल की ही भाँति बिना सोचे समझे दक्षिण शृंग को अशुभ कहा है। उसका तेजीमन्दी से कोई सम्बंध नहीं है। चन्द्रमा की आकृति न नौका, हल और धनुष सरीखी होती है न उससे मल्लाहों, कृषकों और धनुर्धरों का कोई सम्बन्ध है। ग्रह तो सब गोल हैं तो क्या वे गेंद के सब खिलाड़ियों को कष्ट देते हैं? तिथियों की वृद्धि का सम्बन्ध ब्राह्मणों और क्षत्रियों मात्र से जोड़ना भी दुराग्रह है। तिथि का घटना–बढ़ना कोई आकस्मिक घटना नहीं है तथा शुक्ल और कृष्ण पक्ष में उसका भिन्न फल नहीं होता। यहाँ चन्द्रमा को सलिलमय कहा है पर वह परम्परा से सुनी हुई बात है। चन्द्रमा पर जल है ही नहीं। अन्य कथनों और फलादेशों की भी यही स्थिति है।

सूर्यचन्द्रग्रहण [राहुखण्डन]

आचार्य वराहमिहिर यहाँ पौराणिक राहु का खण्डन करते हुए लिखते हैं कि राहु यदि सिरधारी, शरीरधारी और राशिमण्डल में चलने वाला कोई ग्रह होता तो अपने से छः राशि पर स्थित सूर्य–चन्द्र को नहीं ग्रसता। राहु को मुख और पुच्छ होते तो वह मुख और पुच्छ के बीच में स्थित राशियों को भी ग्रस लेता। यदि दो राहु होते तो ग्रस्तास्त और ग्रस्तोदित चन्द्रग्रहण के समय सूर्य भी ग्रस्त हो जाता क्योंकि दोनों राहु (केतु) समान गति वाले हैं। राहु ग्रसता तो सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण एक ही दिशा से होता किन्तु यहाँ तो चन्द्रमा का ग्रहण पूर्व से और सूर्य का पश्चिम से प्रारंभ होता है। चन्द्रग्रहण सब देशों में एक रूप दिखाई देता है पर सूर्यग्रहण नहीं। चन्द्रमा का आवरण (भूछाया) विशाल होने से अर्धग्रस्त चन्द्रमा का शृंग स्थूल होता है पर सूर्यग्रहण में आच्छादक (चन्द्रमा) स्वल्प होने से शृंग तीक्ष्ण रहता है अतः राहु कोई कारण नहीं है, न तो उसका कोई बिम्ब है। इसके आगे आचार्य ग्रहण का वास्तविक कारण बताते हुए कहते हैं कि दिव्य दृष्टि वाले मुनियों ने यही कारण बताया है। राहु निष्प्रयोजन और काल्पनिक है।

यदि मूर्तो भविचारी शिरोथवा भवति मण्डली राहुः।

भगणार्धेनान्तरितौ गृह्णाति कथं नियतचारः॥ ४॥
अथवा भुजगेन्द्रतनुः पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णाति।
मुखपुच्छान्तरसंस्थं स्थगयति कस्मान्न भगणार्धम्॥ ६॥
राहुद्वयं यदि स्यात् ग्रस्तेस्तमितेऽथवोदिते चन्द्रे।
तत्समगतिनान्येन ग्रस्तः सूर्योपि दृश्येत॥ ७॥
एवमुपरागकारणमिदं उक्त दिव्यदृग्भिराचार्यैः
राहुरकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः ५। १३

गर्ग के ग्रहणकाल का खण्डन

गर्गाचार्य ने लिखा है कि दिग्दाह, उल्का, भूकम्प आदि उत्पात ग्रहण की सूचना देते हैं। ग्रहण के पूर्व अष्टमी तिथि को जल में तेल डाले, वह जिस दिशा में फैले उधर ही ग्रहण का स्पर्श और उसकी विपरीत दिशा में मोक्ष होगा। आचार्य वराह इसके खण्डन में लिखते हैं कि किसी उत्पात या निमित्त से ग्रहण का ज्ञान नहीं होता। वे तो ग्रहण के अतिरिक्त समयों में भी हुआ करते हैं। गर्गाचार्य पाँच ग्रहों के योग में भी ग्रहण को संभव वताते हैं किन्तु वराह कहते हैं कि न तो पाँच ग्रहों के संयोग से ग्रहण का होना संभव है न अष्टमी को पानी में तेल डालने से ग्रहण की दिशा का ज्ञान होता है। गर्गाचार्य कहते हैं कि ज्योतिषियों ने जो समय निश्चित किया है उससे पूर्व या पश्चात् ग्रहण लगे तो उसे वेलाहीन और अतिवेल कहते हैं। उन दोनों का फल है—गर्भनाश, शस्त्रकोप, पुष्पफलनाश, धान्यनाश और अनेक भय। पर वराहमिहिर कहते हैं कि ये फल मिथ्या हैं। गणितज्ञ का बताया समय कभी अन्यथा हो ही नहीं सकता। समय टल जाता है तो ज्योतिषी का दोप है। मैंने यह फल इसलिये लिख दिया कि पुरानी पोथियों में लिखा था।

न कथञ्चिदपि निमित्तैर्ग्रहणं विज्ञायते, निमित्तानि।
अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्यथोत्पातरूपाणि॥ ५।१६
पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य संवभो भवति।
तैलं च जलेऽष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः॥५।१७॥
वैलाहीने पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च।
अतिवेले कुसुमफलक्षयो भयं सस्यनाशश्च॥ ५। २४
हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात्।
स्फुटगणितविदः कालः कथञ्चिदपि नान्यथा भवति॥ ५। २५

सूर्य–चन्द्र–ग्रहण के भय

सूर्य–चन्द्र का ग्रहण एक प्राकृतिक और नियमित घटना है तथा उसमें भय का कोई कारण नहीं है किन्तु यहाँ नाना भयों का वर्णन है। लिखा है कि एक मास में सूर्य–चन्द्र दोनों के ग्रहण लग जायें तो नृपों की सेना में खलबली मच जाती है शस्त्रकोप होता है और वे आपस में लड़ कर नष्ट हो जाते हैं। ग्रहण लगे रहने की स्थिति में सूर्य–चन्द्र का उदय या अस्त हो जाय तो शारदीय अन्न और राजा का नाश होता है तथा दुर्भिक्ष और रोग आते हैं। अर्धोदित ग्रहण से निषादों और यज्ञों का नाश होता है। इसी प्रकार अग्रिम श्लोकों में भिन्न–भिन्न समयों के अनुसार अग्निजीवी, ब्राह्मण, कृषक, व्यापारी, क्षत्रिय, सेनापति, राजा, मंत्री, वैश्य, शूद्र, चौपायों, चोरों आदि के नाश का वर्णन है। ग्रास वाला समय अशुभ तथा मोक्ष वाला शुभ बताया गया है। ग्रहण उत्तरायण में लगे तो ब्राह्मण–क्षत्रिय का और दक्षिणायन में लगे तो वैश्य–शूद्र का नाश होता है। दक्षिण, उत्तर

पश्चिम और पूर्व दिशाओं में दिखाई दे तो क्रमशः वैश्य, ब्राह्मण, शूद्र और क्षत्रिय का तथा कोणों में दिखाई दे तो म्लेच्छ आदि का नाश करता है। दिशाओं के अन्य फल हैं—जलचर, हाथी, गाय, वैल, कृषक, बीज और नौकरी करने वालों का नाश। मेष आदि बारह राशियों में ग्रहण लगे तो भिन्न-भिन्न अनेक प्रान्तों, जातियों और व्यवसायियों को पीड़ा देता है। इनमें से किसी भी राशि में लगने वाला ग्रहण शुभ नहीं है। इसके बाद दस प्रकार के ग्रहणों का वर्णन है। ग्रहण दायें भाग में लगा कि बायें में, तृतीयांश चतुर्थांश लगा कि आधा या पूरा, राहु का वर्ण श्वेत था या हरा, उस पर किस-किस ग्रह की दृष्टि पड़ रही थी, उस समय कौन सी हवा चल रही थी, इत्यादि ये सब फल अशुभ हैं। कार्तिक आदि बारह मासों में ग्रहण लगने पर किन-किन प्रान्तों, जातियों और पदार्थों का नाश होता है तथा ग्रहण सम्बन्धी अन्य कौन से कुयोग हैं, इसका विस्तृत वर्णन ६८ श्लोकों में है। किसी भी मास का ग्रहण शुभ नहीं है। इसके बाद मोक्ष का वर्णन है।

दक्षिणकुक्षिविभेदो दक्षिणपार्श्वेन यदि भवेन्मोक्षः।
पीडा नृपपुत्राणां अभियोज्या दक्षिणा रिपवः॥ ५।८४

यदि चन्द्रग्रहण में दक्षिण कुक्षिका विभेद हो अर्थात् दक्षिण पार्श्व में मोक्ष हो तो नृपपुत्रों को पीड़ा होती है और दक्षिण के राजा आपस में लड़ते हैं किन्तु यह योग संभव ही नहीं है। यहाँ सूर्य और चन्द्रमा के साथ-साथ मंगलादि अन्य पाँच ग्रहों के भी ग्रहण के फल लिखे हैं। वे हैं भिन्न-भिन्न देशों, मनुष्यों और पदार्थों के नाश। किन्तु सत्य यह है कि ग्रहण से किसी का नाश नहीं होता। वह सूर्योदय की भाँति नियमित रूप से होने वाली एक घटना है। सूर्योदय हर २४ घण्टे बाद होता है और ग्रहण १८ वर्ष बाद। सब ग्रहण इतने ही समय में बार-बार आते हैं। सूर्योदय सर्वदा ठीक २४ घण्टे बाद नहीं होता। उसी प्रकार इसमें भी थोड़ा अन्तर पड़ता रहता है। कभी-कभी सूर्य-चन्द्र मेघ से ढँक जाते हैं और कभी-कभी चन्द्रमा तथा पृथ्वी की छाया से। बस इतना ही अन्तर है। प्राचीन काल में इससे लोग बहुत डरते थे। इसकी अनेक कथाएँ हैं पर आज वैसी स्थिति नहीं है।

मंगलचार और भय

मंगल शुभ नाम है और वह ग्रह गोल है पर संहिता में भीषण है और उसके पाँच मुख हैं। उष्णमुख, अश्रुमुख, सर्पमुख, रुधिरमुख और असि या मूसलमुख। इनके फल हैं-अग्निजीवी सोनार, लोहार, आदि को कष्ट, रसों में दोष, रोगवृद्धि, सूखा, सूअर, कुत्ता, बिल्ली, बाघ, साँप आदि से पीड़ा, मुखरोग और चोरभय आदि। फाल्गुनी में उगा मंगल आषाढ़ में वक्री हो जाय तो तीनों लोकों को पीड़ित करता है। श्रवण में उदित मंगल पुष्य में वक्री हो तो राजा का और उस नक्षत्र के व्यूह में स्थित देशों का विनाश करता है। इसी प्रकार षष्ठाध्याय में अन्य नक्षत्रों और मंगल के लाल आदि वर्णों के अनेक फल लिखे हैं। मंगल कभी मंगलप्रद भी होता है, यह ढूँढ़ना पड़ेगा। पता नहीं, इसका यह नाम किस मूर्ख ने रखा।

बुधचार और उत्पात

३४८ दिनों में बुध के उदय और अस्त छः बार होते हैं पर वराहमिहिराचार्य का कथन है कि बुध का उदय उत्पात से रहित कभी होता ही नहीं। उसके उदयकाल में जल, अग्नि और वायु के भय अवश्य होंगे और मँहगाई अवश्य आयेगी अर्थात् हर दो मास के बाद उत्पात का आगमन निश्चित है।

नोत्पातपरित्यक्तः कदाचिदपि चन्द्रजो व्रजत्युदयम्।
जलदहनपवनभयकृत धान्यार्घक्षयविवृद्ध्यै च॥

बुध किसी भी नक्षत्र का भेद करते हुए जाय तो अवृष्टि, शस्त्रपीड़ा, क्षुधा और रोगभय आते हैं तथा प्रजा पीड़ित

होती है। प्राणियों के मांस, रक्त, आदि सप्त धातुओं का तथा व्यापारी, वैद्य, घोड़ा, जलीय पदार्थ और नौका जीवियों का नाश हो जाता है। सत्ताईस में केवल तीन नक्षत्र बचे हैं। बुध की कई प्रकार की गतियों का वर्णन है। उसका केवल एक चतुर्थांश शुभ है। लिखा है—

ऋज्वी हिता प्रजानामतिवक्रार्घं विनाशयति।
शस्त्रभयदा च वक्रा विकला भयरोगसंजननी॥ ७।१६

ऋज्वी शुभ, अतिवक्रा दुर्भिक्षदा, वक्रा शस्त्रभयदा और विकला भयरोगदा होती है। पौष, आषाढ़, श्रावण, वैशाख और माघ में बुध दिखाई दे तो पुरे संसार को भय होता है। और आश्विन–कार्तिक में दिखाई देने पर शस्त्र, चोर, अग्नि, रोग, जल और भूख से कष्ट होते हैं। बुध के अस्त होने पर कोई नगर शत्रुओं से घिर गया तो वह उदय होने पर ही मुक्त होगा। इसके बाद उसके रंगों के फल लिखे हैं। इन्हें पढ़ने पर ज्ञात होता है कि इस ग्रह का बुध और सौम्य नाम रखने वाले अनाड़ी थे।

बृहस्पति, शुक्र और शनि के भय

बृहस्पति के १२ वर्षों के यहाँ, नक्षत्रों के आधार पर कार्तिकादि १२ नाम रखे हैं और उनके भिन्न-भिन्न फल लिखे हैं। वेदोक्त पाँच संवत्सरों के भी पृथक् पृथक् फल लिखे हैं। बृहस्पति नक्षत्रों के उत्तर से जाने पर शुभ और दक्षिण से जाने पर अशुभ बताया है। बृहस्पति सामान्यत: एक राशि अर्थात् सवा दो नक्षत्रों में एक वर्ष रहता है। यहाँ नक्षत्र-संख्या के कई फल लिखे हैं। उसके लाल, पीले, श्याम, हरे और अग्नि वर्णों के फल हैं-शस्त्रभय, रोग, युद्ध, तस्करभय, अनावृष्टि और अग्निभय, वह दिन में दिखाई दे तो राजा की मृत्यु होगी। इसके बाद ६० संवत्सरों का फल है। अशुभ नाम वाला पूरा वर्ष अशुभ रहेगा।

शुक्र की नव वीथियाँ, तीन मार्ग और छ: मण्डल हैं। मार्गों में मतभेद है इसलिये आचार्य ने अपनी गणित-क्षेत्र वाली विचारपद्धति का परित्याग कर लिखा है कि हमारे लिये सब ऋषि मान्य हैं अत: बहुमत से काम लो, स्वयं तर्क मत करो, मैं बहुतों का मत लिख दे रहा हूँ (१।७)। यहाँ लिखा है कि शुक्र भिन्न-भिन्न वीथियों और नक्षत्रादिकों में रहने पर भिन्न-भिन्न नृपों, देशों, जातियों और वस्तुओं का नाश करता है। शुभ फल थोड़े से हैं।

चतुर्दशीं पंचदशीं तथाष्टमीं तमिस्रपक्षस्य तिथिंभृगोः सुतः।
यदा व्रजेद् दर्शनमस्तमेति वा तदा मही वारिमयीव लक्ष्यते॥ ६।३६

(१) अर्थात् कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, अमावस्या और अष्टमी में उसका उदय या अस्त हो तो पृथ्वी जलमयी हो जाती है (२) गुरु और शुक्र आमने-सामने हों तो प्रजा रोग, भय शोक और वृष्टि के अभाव से पीड़ित हो जाती है। (३) शुक्र के आगे कोई ग्रह हो तो मनुष्य नाग और विषधरों में युद्ध होता है, वायु से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, मित्रों में मित्रता का, ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व का और वर्षा का अभाव हो जाता है, वज्रपात होता है, म्लेच्छ और काले जन्तुओं को पीड़ा होती है, दक्षिण दिशा में स्थित लोगों को नेत्र आदि रोग होते हैं और अन्य भी सैकड़ों विपत्तियाँ आती हैं। इसके बाद शुक्र के भिन्न-भिन्न वर्णों के फल लिखे हैं। (४) शुक्र सूर्यास्त से पहले दिखाई दे तो भयप्रद होता है।

(१) सारे विश्व की बात छोड़ें, केवल भारत में प्रतिवर्ष किसी न किसी प्रान्त में भीषण बाढ़ आती है पर उसका उपरोक्त नियम से सम्बन्ध नहीं रहता। उस बाढ़ का दूसरा हेतु भी हो सकता है पर इस नियम की जाँच करने पर आप निराश होंगे। (२) गुरु-शुक्र लगभग प्रतिवर्ष आमने-सामने आते हैं पर ये विपत्तियाँ नहीं आतीं। (३) शुक्र के सामने सदा ही कोई न कोई ग्रह या नक्षत्र रहता है अत: ये फल सत्य होते तो विश्व के सारे पदार्थ, नृप, मानव और व्यवसाय समाप्त हो गये होते।

(४) सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के पूर्व शुक्र दो घंटे तक देखा जा सकता है पर भय नहीं होता बल्कि आनन्द मिलता है अत: ये सब मिथ्या कल्पनाएँ हैं।

शनि भिन्न-भिन्न २७ नक्षत्रों में रहने पर किन-किन जातियों देशों और पदार्थों का नाश करता है तथा उसके भिन्न रंगों का क्या फल है, इसका वर्णन २० श्लोकों में है। प्रत्येक नक्षत्र का फल अशुभ है। काले या नीले को छोड़ उसके सब वर्ण अशुभ हैं। वह श्वेत, पीला या लाल हो तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का तथा काला होने पर शुद्रों का नाश करता है। सब फल लिखने के बाद आचार्य अन्त में कहते हैं कि यह मुनियों का प्रवाद है। इति मुनिप्रवादः १०। २१॥

धूमकेतुओं के भय

११ वें अध्याय में आचार्य ने लिखा है कि मैं यह केतुचार गर्ग, पराशर, असित, देवल और अन्य मुनियों के केतुचार के आधार पर लिख रहा हूँ। ये केतु आकस्मिक उत्पात स्वरूप हैं अत: इनके उदयास्त के काल गणित द्वारा नहीं जाने जा सकते। ये द्यौ, अन्तरिक्ष और भूमि, तीनों में घूमते हैं। कुछ मुनि १०१ और कुछ एक सहस्त्र केतु बताते हैं पर नारद का कथन है कि एक ही केतु अनेक रूप धारण कर लेता है। भटोत्पल ने लिखा है कि कुछ धूमकेतु नियमित वर्षों में दिखाई देते हैं अर्थात् वे ग्रहों की भाँति अपनी दीर्घ कक्षाओं में घूमते रहते हैं। पितामह केतु ५०० वर्षों में, उद्दालक श्वेतकेतु ११० वर्षों में और काश्यप श्वेतकेतु १५०० वर्षों में पुन: दिखाई देते हैं।

इस युग में पश्चिम में धूमकेतुओं (Comets) का विस्तृत अध्ययन हुआ है। कोपर्निकस, गैलिलियो, कान्ट हर्षल, न्यूटन, लॉकियर आदि ज्योतिर्विदों ने इनके अध्ययन में बहुत परिश्रम किया है। इनकी पूछें सूर्य की विपरीत दिशा में रहती हैं। इनमें घनत्व कम रहता है इसलिये पारदर्शक होती हैं। किसी-किसी धूमकेतु को २-३-४ पूँछें होती हैं। इनके द्रव्य विरल होते हैं। इनकी दीर्घवृत्त, परवलय और अतिपरवलय नाम की तीन कक्षाएँ होती हैं। ग्रहों की कक्षाएँ प्राय: वृत्ताकार होती हैं। इसलिये उनमें केन्द्रच्युति (केन्द्र से दूरी) कम रहती है किन्तु केतुओं की कक्षाएँ बहुत लम्बे दीर्घवृत्त के आकार की होती हैं अत: उनमें केन्द्रच्युति अधिक होती है। अतिपरवलय में घूमने वाले केतुओं का पुन: दर्शन नहीं होता। धूमकेतुओं की गति द्वारा गणक उनकी कक्षा के आकार का पता लगा लेते हैं। लम्बे दीर्घवृत्त में सूर्य की प्रदक्षिणा करने वाले अनेक धूमकेतुओं और उनके नियमित प्रदक्षिणा काल का पता लगा है। किसी का काल तीन वर्ष है तो किसी का सौ के आस पास। चूँकि धूमकेतुओं की कक्षा बहुत लम्बी होती है इसलिये वे कुछ ही दूर तक दिखाई देते हैं। उनकी कक्षाएँ एक दूसरे को काटती हैं। उल्काओं से धूमकेतु का घनिष्ठ सम्बन्ध है। केतु कोई ठोस वस्तु नहीं है। वह छोटे-बड़े रोड़ों का समूह है। पृथ्वी कई बार केतु की पूँछ में से निकल गयी किन्तु उस समय ऐसा पता नहीं लगा कि हम किसी घने वायुमंडल या आँधी में हैं। पृथ्वी के पास आने पर आकर्षण के कारण धूमकेतुओं के शरीर में स्थित रोड़े ही हमें उल्का के रूप में दिखाई देते हैं। वे उल्काप्रस्तर (अशनि) के रूप में पृथ्वी पर भी आ जाते हैं। पूँछें केवल सूर्य के प्रकाश से ही नहीं चमकतीं, उनमें निजी प्रकाश भी होता है। कुछ केतुओं की पूँछें इतनी लम्बी होती हैं कि सूर्य से पृथ्वी तक आ जाती हैं। संभव है, भविष्य में कभी किसी धूमकेतु से हमारी पृथ्वी लड़ जाय। उस स्थिति में उस पुच्छलतारे के रोड़े अगणित उल्काओं के रूप में पृथ्वी पर गिरेंगे। उनमें से अधिकांश तो वायुमण्डल में ही जल जायेंगे पर कुछ पृथ्वी पर भी आ जायेंगे किन्तु इससे किसी भयंकर क्षति की संभावना नहीं है। सन् १८६१ और १९१० ईसवी में पृथ्वी निश्चित रूप से केतु की पूँछ से टकराई थी पर इसका पता केवल गणना से ही चला, कोई दुर्घटना नहीं हुई। केतुओं की आकृतियाँ बदलती रहती हैं। कभी-कभी उनके टुकड़े भी हो जाते हैं। कक्षाओं से प्रतीत होता है कि ये सौर परिवार के ही सदस्य होंगे।

हैली (१६५६-१७४२)

सन् १६८० में एक धूमकेतु दिखाई पड़ा। न्यूटन ने बताया कि धूमकेतुओं में भी आकर्षण नियम लागू है। तब से

उनकी गति का विचार होने लगा। न्यूटन के मित्र हैली (Halley) ने सर्वप्रथम गणना करके बताया कि यह दीर्घवृत्त में चल रहा है और इसका प्रदक्षिणाकाल ७६ वर्ष है। पहले तो लोगों का विश्वास नहीं हुआ पर वाद में उसकी बात सत्य सिद्ध हुई। तभी से उसका नाम हैली केतु रख दिया गया। १९१० के सितम्वर में वह पुनः दिखाई पड़ा, तव छोटा था किन्तु तीन ही मास में पृथ्वी का ३० गुना हो गया। सूर्य के निंकटतम आने पर उससे छोटा अर्थात् पृथ्वी का १५ गुना हो गया। जून १९१० में उसका व्यास पृथ्वी के व्यास से ४० गुना और आयतन ६४ सहस्र गुना था। १९१० में पृथ्वी उसकी पूँछ में आ गयी और १९११ के अप्रैल तक उसका व्यास पृथ्वी का चार गुना मात्र रह गया। इसी प्रकार कुछ अन्य केतु भी घटते-बढ़ते हैं।

हैली की भाँति ही हमारे यहाँ भी प्राचीन काल में उनके कश्यप और श्वेतकेतु आदि नाम रखे गये होंगे। आचार्य वराहमिहिर ने इस अध्याय के १० से ४२ श्लोकों तक इनके अनेक भीषण नाम लिखे हैं। वे हैं—नृपविरोधकर, भयप्रद, मृत्युसुत, जनमारक, क्षुद्भयप्रद, युगान्तकारक, तीव्रफलप्रद, अतिकष्टप्रद, पाप, भीषण, भयंकर, अग्निभयद, क्रूर, उग्र, अवृष्टिकर, रोगप्रद, कपालफल, शस्त्रकोपकर, प्रजाक्षयकर आदि। थोड़े से शुभ फलप्रद भी हैं किन्तु अब विद्वत्समाज केतुओं से अधिक परिचित हो गया है अतः वे भय समाप्त हो गये हैं। दूरवीन का आविष्कार हो जाने से अव पहले की अपेक्षा अधिक धूमकेतु देखे जा रहे हैं।

उल्का आदि से भय

अधिकाधिक मुनियों का कथन है कि स्वर्ग का सुख भोगने के वाद वहाँ से गिरने वाले प्राणी उल्का हैं पर गर्ग कहते हैं कि ये लोकपालों द्वारा छोड़े अस्त्र हैं। उल्काओं के उल्का, अशनि, धिष्ण्य, विद्युत् और तारा नामक पाँच भेद हैं। भीषण शब्द करती हुई अशनि चक्र की भाँति घूमती है और मनुष्य, पशु, पाषाण, गृह, वृक्ष आदि पर गिरती है। उल्का का मस्तक विशाल होता है। वह पुरुष इतनी लम्बी होती है और गिरते समय बढ़ती जाती है। लिखा है कि प्रेत, शस्त्र, गधा, ऊँट, मगर, वन्दर, मृग, हल, गोह, साँप, धूम आदि सदृश आकृतियों वाली तथा दो सिर वाली उल्काएँ भयंकर होती हैं। पताका, मछली, हाथी, पर्वत, कमल, चन्द्रमा, अश्व हंस और शंख सदृश उल्काएँ शुभ होती हैं किन्तु सत्य यह है कि आकृति से शुभाशुभत्व का कोई सम्बन्ध नहीं है और हम मृग को अशुभ एवं शंख को शुभ क्यों मानें? आगे लिखा है कि भ्रमण करने वाली उल्का विपत्ति की सूचना देती है। श्वेत, लाल, पीली, काली, क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का नाश करती है सिर, वक्ष, पार्श्व और पुच्छ पर रुकने वाली भी क्रमशः चारों वर्णों का नाश करती हैं। उत्तर दिशा में गिरी उल्का ब्राह्मणों का नाश करती हैं। पूर्वादि दिशाओं में गिरने पर क्रमशः क्षत्रियादि तीन वर्णों का नाश करती है। उल्का की आकृति कैसी है, किस दिशा या विदिशा में गिर रही है, किस नक्षत्र का वेध कर रही है, किस समय गिरती है, कैसा शब्द करती है, किस स्थान पर गिरती है, आकाश में कितनी देर रुकती है, किस रंग की है, इत्यादि के यहाँ विस्तृत फल लिखे हैं और प्रायः वे सव भीषण हैं।

दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि तान्युल्काः।
धिष्ण्योल्काशनिविद्युत्तारा इति पञ्चधा भिन्नाः॥ १॥
अशनिः स्वनेन महता नृगजाश्वमृगाश्मवेश्मतरुपशुषु।
निपतति विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थाना॥ ४॥
उल्का शिरसि विशाला निपन्ती वर्धते प्रतनुपुच्छा।
दीर्घा च भवति पुरुषं भेदा बहवो भवन्त्यस्याः॥ ८॥
शुक्ला रक्ता पीता कृष्णा चोल्का द्विजादिवर्णघ्नी।
क्रमशश्चौरान् हन्युर्मूर्धोरः पार्श्वपुच्छस्थाः॥ १४॥

यहाँ बताया गया कि श्वेत वर्ण वाली, सिर पर रुकने वाली और उत्तर दिशा में गिरने वाली उल्काएँ केवल ब्राह्मणों

का नाश करती हैं तथा अन्य उल्काएँ अन्य वर्णों का विनाश करती हैं पर यह सब अन्धविश्वास है। उल्का, धूमकेतु, ग्रह और मेघ जाति नहीं पहचानते। पानी और धूप सब पर गिरते हैं। अन्य फल भी ऐसे ही हैं। कुछ लोग समझते हैं कि उल्का के रूप में तारे टूट कर गिरते हैं पर ऐसा होता तो तारों की संख्या कम हो जाती क्योंकि वे प्रति घण्टे में १०-२० की संख्या में सदा गिरते रहते हैं। वे आधी रात के बाद अधिक दिखाई देते हैं और उष्ण कटिबन्ध में तेजस्वी रहते हैं। वैज्ञानिकों का कथन है कि करोड़ों अशनि विविध कक्षाओं में सूर्य की प्रदक्षिणा कर रहे हैं। चूँकि हमारी पृथ्वी भी सूर्य की प्रदक्षिणा कररही है इसलिये अशनियों से उसका संयोग हो जाया करता है। यदि हम प्रति सेकण्ड में उल्का की मध्यम गति २५ और पृथ्वी की १६ मील मानें तो दोनों का योग ४४ मील के लगभग हो जाता है। इसी वेग के कारण उल्का (Shooting Star) भूवायु में आने पर जल उठती है। वह पृथ्वी से लगभग सौ मील से कम दूरी पर दिखाई देती है और लगभग ७५ मील पर जलने लगती है। पृथ्वी पर गिरे अशनि से इसका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है कि आकाशस्थ पिण्डों में कौन कौन से द्रव्य रहते हैं। यद्यपि उसमें पृथ्वी-स्थित द्रव्य ही पाये जाते हैं किन्तु पृथ्वी में उस प्रकार का सम्मिश्रण नहीं मिलता। श्रीव्यंकटेश बापूजी केतकर ने अपने नक्षत्रविज्ञान में लिखा है कि मैने सन् १८८५ ईसवी की २७ नवम्बर को बागलकोट में एक ऐसी उल्का-वृष्टि अपनी आँख से देखी जिसमें सायंकाल से मध्यरात्रि पर्यन्त लाखों बाण छूट रहे थे। वे लिखते हैं कि उल्का और सूर्य की परिक्रमा करने वाले धूमकेतुओं का निकट सम्बन्ध है। अब यह बात सिद्ध हो चुकी है। धूमकेतु ज्यों-ज्यों सूर्य के पास जाता है त्यों-त्यों सूर्य के विद्युत् प्रसारण के कारण धूमकेतु के विरल द्रव्यों के फौवारे छूटने लगते हैं। वे सूर्य की विरुद्ध दिशा में जाकर पूँछ का आकार ग्रहण कर लेते हैं और पुन: लौटकर धूमकेतु के पास नहीं आते। इस सतत क्षय के कारण वे कुछ दिनों में समाप्त हो जाते हैं। उनकी पूँछ के विस्खलित भाग ही उल्का के रूप में घूमते रहते हैं। सन् १८२६ ई० में बीला नाम का एक नवीन धूमकेतु दिखाई पड़ा। सन् १८४६ में उसके दो भाग हो गये और कुछ दिनों में वे दोनों अदृश्य हो गये किन्तु उसी समय से उनकी कक्षा में भ्रमण करने वाली उल्काओं का एक नवीन उद्गम स्थान उत्पन्न हो गया। आकाश में उल्काओं के कुछ नियमित उद्गम स्थान हैं। नष्ट धूमकेतुओं की कक्षा का पृथ्वी की कक्षा से जहाँ संयोग होता है उसे उल्का का उद्गमस्थान कहते हैं। प्रतिवर्ष पृथ्वी जव इस सम्पात में पहुँचती है, उल्काओं की भरमार हो जाती है किन्तु प्रतिवर्ष उल्कावृष्टि समान रूप से नहीं होती क्योंकि वे धूमकेतुखण्ड समान घने नहीं होते। पृथ्वी अनेक बार दो खण्डों के बीच से ही निकल जाती है। कितने धूमकेतु ऐसे हैं जो आकार में पृथ्वी क्या, सूर्य से भी वड़े हैं पर उनमें आकर्षण शक्ति नहीं है। उनके द्रव्य विरल हैं। जब पृथ्वी किसी वर्ष संयोग वशात् घनद्रव्य वाले खण्ड के बीच से जाती है तब सन् १८८५ की भाँति उल्कावृष्टि होती है। उल्कावृष्टि के कुछ विशिष्ट निर्धारित समय हैं। वह बिल्कुल आकस्मिक घटना नहीं है। सात तो प्रसिद्ध उल्कोद्गम हैं। अगस्त और नवम्बर की उल्कावृष्टि दर्शनीय होती है। वह क्रमश: रात्रि में १० वजे और एक बजे के वाद होती है तथा बादल न रहने पर स्पष्ट दिखाई देती है। जिस स्थान से निकलने वाली उल्काएँ दूर न जाकर वहीं समाप्त हो जायँ उसे ही उद्गम स्थान समझना चाहिए। दीक्षितजी लिखते हैं कि १८८५ की २७ नवम्बर को एक लाख से अधिक उल्काएँ गिरी थीं। किसी अशनि में पाषाण अधिक रहता है और किसी में लोहा। भिन्न-भिन्न देशों में गिरे अशनि द्रव्यों में प्राय: समानता है। उनमें ४० प्रतिशत सिलिका, २५ प्रतिशत लोहा और कुछ निकेल आदि मिलते हैं। ब्रिटिश म्यूज़ियम में एक ३॥ टन का अशनि है। दक्षिण अमेरिका में ७ फुट लम्बा एक १५ टन वज़न का अशनि है। हमारे यहाँ बम्बई और कलकत्ता में भी उनका संग्रह किया गया है। अगस्त की ९,१०,११ तारीख के आसपास प्रति वर्ष उल्कावृष्टि हाती है। आकाश स्वच्छ रहने पर सहस्रों उल्काएँ गिरती दिखाई देती हैं। नवम्बर की २७ तारीख को अगस्त से अधिक उल्काएँ गिरती हैं। इसके अतिरिक्त ९-१० अप्रैल, २५-३० जुलाई, १६-२३ अक्टूबर और ६-१३ दिसम्बर को भी प्रतिवर्ष थोड़ी उल्कावृष्टि होती है। वृहत् संहिता में लिखा है-

अम्बरमध्याद् बह्व्यो निपतन्त्यो राजराष्ट्रनाशाय ३३।११

आकाश से बहुत सी उल्काएँ गिरें तो राजा और राष्ट्र का नाश होता है। दीक्षितजी लिखते हैं कि प्राचीनकाल में

अन्य राष्ट्रों की भी सामान्य जनता की ऐसी ही धारणा थी किन्तु उल्काओं से परिचित हो जाने के कारण अब वह भय समाप्त हो गया है।

परिवेष (मण्डल) में भय

संमूर्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः।
नानावर्णाकृतयस्तन्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः ३४।१॥

आचार्य का कथन है कि पवन द्वारा मण्डलीभूत सूर्य और चन्द्रमा की किरणें विरल मेघ पर मूर्छित होकर आकाश में मण्डल के रूप में दिखाई देती हैं। यह मण्डल प्रतिपदा आदि चार तिथियों में दिखाई दे तो क्रम से ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों का नाश होता है। इस प्रकार के अन्य फल भी लिखे हैं। उनमें कितने सचाई है, इसके प्रबोध के लिये एक श्लोक पर ध्यान दें। आगे कुसुमलताध्याय में लिखा है कि सायंकाल में लाल मेघ दिखाई दें तो युद्ध होगा जब कि संध्याकाल में पश्चिमाकाश स्वभावतः सदा लाल रहता है। इसी श्लोक में यह भी लिखा है कि मेघ की आकृति पताका, छाता, पर्वत, हाथी, घोड़ा आदि सरीखी हो तो जय होगी और कुत्ता, विल्ली, आदि सरीखी होगी तो उपद्रव होंगे। संहिता–स्कन्ध के सारे फल ऐसे ही हैं।

ध्वजातपत्रपर्वतद्विपाश्वरूपधारिणः।
जयाय सन्ध्ययोर्घना रणाय रक्तसन्निभाः ३०।२७॥

ठीक इसी प्रकार आगे भूकम्प के विषय में लिखा है कि कश्यप के मत में जलचर प्राणियों के धक्के से भूकम्प आता है परन्तु गर्ग का कथन है कि पृथ्वी के भार से थके दिग्गजों के विश्राम के समय भूकम्प आता है। बहुमत शेषनाग के मस्तकों के पक्ष में है।

इन्द्रधनुष और इन्द्रध्वज में भीषण भय

आचार्य वराहमिहिर का कथन है कि सूर्य की किरणें पवन से विघट्टित होकर मेघयुत आकाश में इन्द्रधनुष बन जाती हैं किन्तु कश्यप का मत है कि नागराज अनन्त के कुल में उत्पन्न सर्पों के निःश्वास से इन्द्रधनुष बनता है। संहिता–ग्रन्थों में परिवेष और गन्धर्व नगर आदि की भाँति भिन्न–भिन्न वर्णों और देशों आदि के लिये इसके भी अनेक फल लिखे हैं पर सत्य यह है कि इन्द्र धनुष अपने सौन्दर्य की ही भाँति मांगलिक होता है और उसमें भयों की कल्पना केवल भ्रम है।

ग्रह–शान्ति और गृह–प्रवेश आदि के सब यज्ञों में बहुत प्राचीन काल से इन्द्रध्वज के पूजन की और उसे ईशान कोण में गाड़ने की परम्परा चली आ रही है। ग्रन्थों में इन्द्रध्वज के चतुष्कोण बनाने का विधान है पर पता नहीं क्यों, आजकल वह त्रिकोण बनाया जाता है। हम इन्द्रध्वज को इस समय एक बाँस में बाँध देते हैं पर यह कर्म शास्त्र–विरुद्ध और अशुभ है। इसके विषय में वराहमिहिर ने अपनी संहिता के ४३ वें अध्याय में विस्तार से लिखा है कि एक बार देवगण राक्षसों से पराजित हो जाने पर ब्रह्मा को लेकर विष्णु के पास गये और अपनी व्यथा सुनाई तो उन्होंने एक ध्वज दिया। देवता उसके प्रताप से विजयी हो गये। चेदिदेश के राजा वसु को इन्द्र ने भी बाँस का एक वैसा ही ध्वजदण्ड दिया था और बताया था कि इसकी पूजा करने वाला सर्वदा विजयी रहेगा। आचार्य ने उसके निर्माण और पूजन की आगम शास्त्र से यह विधि बताई है कि शुभ दिन, मुहूर्त, नक्षत्र और शकुनों में ज्योतिषी बढ़ई को साथ लेकर वन में जाय। वृक्ष काटने से पूर्व यह देख ले कि वह जला, टूटा, टेढ़ा, लताओं से घिरा, बहुतपक्षी युत, काँटेदार और स्त्री नाम वाला न हो। यहाँ वृक्ष के अन्य भी लक्षण बताये हैं पर यह नहीं लिखा है कि नाम यदि संस्कृत में पुल्लिंग और ग्रामभाषा में स्त्रीलिंग हो तो काटे या नहीं। पहले वृक्ष की पूजा करे। उसके बाद

सूर्योदय के समय पूर्व या उत्तर मुख से काटे। टाँगा चलाते समय उससे मधुर शब्द निकले। जर्जर और कठोर शब्द निकलने पर घोर अनिष्ट होगा।

छिन्द्यात् प्रभातसमये वृक्षमुदक्प्राङ्मुखोपि वा भूत्वा।
परशोर्जर्जरशब्दो नेष्टः स्निग्धो घनश्च हितः ४३।१६॥

वृक्ष यदि दक्षिण, पश्चिम या अग्नि आदि कोण में गिरे तो उसे छोड़ दे। लकड़ी लाद कर पुर में लाते समय गाड़ी का अरा, पहिया, धुरा या कुलावा टूट जाय तो क्रमशः सेना में भेद, सेना–नाश, धन–नाश और बढ़ई का नाश होगा, इसलिये लकड़ी वहीं छोड़ दे। दूसरी लावे। सुगन्ध, माला, धूप तथा शंख, तुरही आदि की ध्वनि के साथ राजा उसे पुर में स्वयं प्रवेश करावे। प्रवेश के समय मुहूर्त में कोई दोष न हो। सुन्दर वेषधारी ब्राह्मण, मंत्री, पुरोहित और ज्योतिषी साथ में हों, नगर विधिवत् सजाया हो, दूकानें सजी हों, वेदध्वनि हो रही हो तथा श्वेत और त्रिरूप पताकाएँ फहरा रही हों। इस बात का ध्यान रखे कि कोई लाल, पीली, या अन्य वर्ण की पताका लेकर कहीं से सामने न आ जाय। नट और वेश्याएँ सड़कों पर नाच–गा रही हों तथा सब लोग प्रसन्न हों: नगर में प्रवेश करते समय संयोगवशात् कोई हाथी, घोड़ा या मनुष्य गिर पड़े अथवा किन्हीं दो प्राणियों में युद्ध हो जाय तो समझ ले कि विपत्ति आने वाली है और अब तक की सारी सावधानी व्यर्थ है। बढ़ई उसे काट कर खराद पर चढ़ावे। उस समय राजा रात्रि में एकादशी का जागरण करे। पुरोहित श्वेत वस्त्र पहन कर इन्द्र और विष्णु के मंत्रों से हवन करे। हवन करते समय इस बात की परीक्षा करे कि अग्नि की लपट किस दिशा में जा रही है। यदि अग्नि का आकार शुभ है, अग्नि सुगन्धयुत और निर्मल है तब तो फल शुभ है अन्यथा अशुभ है।

आचार्य कहते हैं कि इसे मैंने योगयात्रा में विस्तार पूर्वक कहा है। वहाँ लिखा है कि सारे यत्न करने के बाद यदि हवन के समय अग्नि कृश हो, विपरीत दिशामें झुक रही हो, वामावर्त हो, अधिक धूमयुत हो, सिमसिमा रहा हो, उसकी शिखा कपिल, पीत, बभ्रु या हरित् वर्ण हो, उसमें से सुन्दर शब्द न निकल रहा हो, पुरोहित तथा अन्य लोग व्याकुल हो रहे हों, धूम से अशुभ आकृतियाँ बन रही हों तो समझ ले कि विपत्ति आने वाली है। अग्नि की परीक्षा करने के बाद गुड़, पूप, पायस और दक्षिणा आदि से ब्राह्मणों की पूजा करे। उसके बाद श्रवणनक्षत्र से युत द्वादशी में ध्वज को उठावे। ध्वज में सात शक्रकुमारियाँ बनावे और उसे विश्वकर्मा, ब्रह्मा, शंकर, वरुण, अग्नि, बृहस्पति, त्वष्टा, वायु तथा मुनियों के दिये आभूषण पहनावे। ध्वज के प्रवेश करते समय, स्नान के समय उठाते समय, उसे भूषण और माला पहनाते समय शास्त्रोक्त मंत्रों को पढ़े। मंगलमंत्र और आशीर्वाद पढ़े जा रहे हों, वेदध्वनि हो रही हो, ढोल, मृदंग शंख और भेरी आदि मंगल वाद्य बज रहे हों, जय जयकार हो रहा हो, तथा राजा ध्वज उठावे। उसके हाथ में दही, अक्षत, लाजा, घी, शहद और माला हो। पहले ध्वज को शत्रुनगर की ओर झुकावे। उठाते समय न शीघ्रता करे न विलम्ब। उस समय माला या कोई आभूषण गिर जाय तो पुरोहित से शान्ति करावे, अन्यथा अनिष्ट फल होगा ४३। ६१ जंगल में जाने और लकड़ी काटने से लेकर इन्द्रध्वज के खड़ा करने तक सारे कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो जायँ तो भी गाड़ देने के बाद यदि उस पर मांसाहारीपक्षी उल्लू, कौवा या श्वेत चील बैठ गयी तो राजा को महान् भय होगा। नीलकण्ठ के बैठने पर युवराज को और बाज के बैठने पर राजा के नेत्र को भय होगा। ध्वज का छत्र भंग होने पर राजा की मृत्यु, मधुमक्खी बैठने पर चोर भय, उल्का गिरने पर पुरोहित का नाश और वज्रपात होने पर रानी की मृत्यु होगी। पीछे के सारे मांगलिक शकुन, सारा पूजा पाठ, सारी दक्षिणा और हवनादि क्रियाएँ व्यर्थ हो जायेंगी। ध्वज की उत्तर दिशा में कोई उत्पात हुआ तो ब्राह्मणों को, पूर्व में होने पर क्षत्रियों को, दक्षिण में अपशकुन होने पर वैश्यों को और परिचम में होने पर शूद्रों को महती ग्लानि का सामना करना पड़ेगा। इन्द्रध्वज उठाते समय कोई रस्सी टूट जाय तो बालकों को और तोरण काष्ठ टूटने पर राजमाता को पीड़ा होगी। तोरण के पास बालक या चारण जैसी चेष्टा करेंगे, भविष्य में वैसा ही फल होगा।

इन्द्रध्वज के स्थापन और पूजन आदि की यह सारी विधि नारायण ने देवों को बतायी है और उसके संबन्ध में

शकुन-अपशकुन गर्गादि महर्षियों ने बताये हैं, अत: उनके फल में सन्देह का अवकाश नहीं है। ऐसे इन्द्रध्वज के रहते हुए इन्द्र बार-बार असुरों से पराजित क्यों हो जाते हैं, आपको यह शंका अवश्य होगी। मैं समझता हूँ, उनके ध्वज पर कौवा बैठ गया होगा। आप अपने यज्ञ के इन्द्रध्वज पर कौवा न बैठने दें और मुझे तो अब इन्द्रध्वज गाड़ने का साहस ही नहीं रह गया है। कौन कहे कि आओ बैल, मुझे मारो। जब देखो, उस पर एक कौआ बैठा रहता है।

खंजनदर्शन में भय

भद्र, सम्पूर्ण, रिक्त और गोपीत नामक चार प्रकार के खंजन होते हैं। जिसके गले में काली बिन्दी हो और कपोल श्वेत हो वह रिक्त होता है। पीला खंजन गोपीत कहा जाता है। ये दोनों क्लेशकर और सर्वनाशक हैं। पूरा काला और काले गले वाला, ये दोनों शुभ हैं। विशेष द्रष्टव्य यह है कि खंजन किस स्थान में बैठा था। घर के कोने में मिट्टी के ढेले पर, अटारी पर बैठा हो तो अशुभ है। सूर्यास्त काल में दिखाई देने पर भी अशुभ है। घर की छत पर दिखाई दे तो धन-नाश होता है। कीचड़ में बैठा हो तो स्वादिष्ट भोजन मिलता है। खंजन जिस दिशा में दिखाई दे उधर के देश जीते जा सकते हैं। वह खजाने पर मैथुन करता है, काच पर उलटी करता है और कोयले पर मल करता है। हमारे आचार्य गण ललकार कर कहते हैं कि यह ध्रुव सत्य है। विश्वास नहीं है तो धरती खोद कर देख लो।

तत्कौतुकापनयनाय खनेद् धरित्रीम् ४५।१२

गन्धर्वनगर में भय

इसके विषय में वैज्ञानिकों का कथन है कि सूर्योदय और सूर्यास्तकाल में जब सूर्य क्षितिज के नीचे रहता है तब भी हमें कुछ देर तक दिखाई देता है। आलोकरश्मियों के आवर्तन के कारण ऐसा होता है। सूर्यकिरणें पृथ्वी के निकट की सघन वायु के पर्त से होकर दर्शक की आँखों तक पहुँचते-पहुँचते आवर्तन के कारण मुड़ जाती हैं। इस प्रकार क्षितिज के नीचे स्थित हमें ऊपर दिखाई देने लगता है। वायु के भिन्न भिन्न स्तर यदि विभिन्न तापक्रम पर हुए तो घनत्व बदल जाने के कारण उनकी आवर्तन शक्ति एक सी नहीं रह जाती। फल स्वरूप इन विभिन्न वायुस्तरों से होकर जाने वाली रश्मियाँ अपना मार्ग थोड़ा बदल देती हैं। यदि किसी कारण इन वायुस्तरों का तापक्रम निरन्तर बदलता रहा तो उसी के अनुसार आलोकरश्मियाँ भी अपना मार्ग निरन्तर बदलती रहती हैं। दुपहरिया के नाचने और आँवें के ऊपर वाले दृश्य का भी यही कारण है। आकाश के ग्रह और नक्षत्र आदि भी आवर्तित किरणों द्वारा अपने वास्तविक स्थान से कुछ ऊपर उठे दिखाई देते हैं। सच पूछें तो हमें कोई भी पदार्थ ठीक नहीं दिखाई देता। नाव में खड़ा व्यक्ति मछली को वास्तविक स्थान से कुछ ऊपर उठी देखता है। बाल्टी में डाली सीधी लकड़ी हमें पानी के ऊपर टेढ़ी दिखाई देती है। यह आलोकरश्मियों के आवर्तन का चमत्कार है।

ध्रुवप्रान्त में हिम के स्पर्श से धरती के पास वाले वायुस्तर विशेष ठण्ढे हो जाते हैं। उस स्थिति में क्षितिज के नीचे वाले जहाज और गाँव आवर्तित किरणों की सहायता से ऊपर दिखाई देने लगते हैं। विलियम स्कोरेस्बी ने क्षितिज से १७ मील आगे वाले जहाज को देखा था। मारीशस द्वीप के समुद्र तट पर एक नाविक को २०० मील दूरी पर स्थित एक जहाज स्पष्ट दीखा था। इस क्रिया को अंग्रेजी में लूमिंग (Looming) कहते हैं। आवर्तन के कारण ही सूर्य हमें सायं-प्रात: चिपटा दिखाई देता है। इटली और सिसली द्वीप के बीच मेसिना जलडमरू-मध्य में एक विचित्र प्रकार की मरीचिका दिखाई देती है। प्रात: सिसली के तट पर किसी ऊँचे स्थान पर खड़े दर्शक को कभी-कभी आकाश में प्रात: टेढ़े-मेढ़े घरों और जहाजों आदि की धुँधली सी आकृति दिखाई देती है। वह बराबर बदलती रहती है। प्रात:कालीन कोहरे पर प्रकाशरश्मियों के आवर्तन-परावर्तन के कारण ही यह दृश्य दिखाई देता है। इसी प्रकार ठण्ढे देशों के समुद्रतट पर कभी-कभी आकाश में किसी जहाज का बिम्ब दीखने लगता है। मरुस्थल की तपती हुई भूमि में यात्री को कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है कि कुछ दूरी पर पानी से भरा

ृश्य भी दिखाई देते हैं। तारकोल से पुती हुई काली सड़क पर भी
ो हैं। बस में बैठा यात्री कभी-कभी बस के ऊपर लिखे यात्रा स्थलों
ा देखता है और चकित होता है। यह सब गन्धर्व नगर है। यद्यपि
ता में उसके भी भीषण फल लिखे हैं। यह विश्वास ठीक वैसा ही
लीला मान लेना। पीछे लिखे अयनों, मासों, तिथियों, नक्षत्रों और
कि उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशाओं में गन्धर्वनगर दिखाई
गन्धर्वनगर श्वेत, लाल, पीला या काला हो तो क्रमशः ब्राह्मण,
तोरण आदि से युत अनेक रंगों और आकृतियों वाला गन्धर्वनगर
अश्वादिकों का रक्तपान करेगी।

वराजदोषदं खपुरम्।
मभावाय ॥ ३६।१
पुरं पताकाध्वजतोरणान्वितम्।
पिबत्यसृग्भूरिरणे वसुन्धरा ॥ ३६।५

ौर शरद् के भय

और मांगलिक तारा है पर उसके विषय में पुराणों में चित्र विचित्र
ाय १२ में लिखा है कि विन्ध्यपर्वत सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये
दिया, मुनियों का पेट फाड़ने वाले देवरिपु वातापी को खाकर पचा
दिशा को विभूषित किया। अगस्त्य के उदय से वर्षा का दूषित जल
त्र हो जाता है। अहा हा! शरद्ऋतु आ गयी। यह कितनी सुन्दर है।
त चक्रवाक उसके ताम्बूल से लाल ओठ हैं, सस्वन हंस श्वेत दाँत
पर बैठी भ्रमरपंक्ति उस कामातुरा विदग्धा नारी की चंचल वेणी
। अगस्त्य ऋषि भगवान् शंकर के मित्र वरुणदेव के पुत्र हैं। इनके
द्धापूर्वक अर्घ्य देने वाला राजा विजयी और नीरोग होता है। सात
ण वेदवेत्ता हो जाता है और अन्य वर्ण भी वांछित फल पाते हैं।

ी शोभा का विस्तृत और मनोहरी वर्णन किया है तथा पीछे लिखा
ाज ज्योतिष ने इस सौम्या सुन्दरी को अशुभ कह कर इसमें सारे
कियाँ दे दे कर सुला दिया है। यह हरिशयन का निषिद्ध काल हो
र उसके फलों में भी भयों का जाल बिछा है। लिखा है कि उसका
तो गायों को पीड़ा, कम्पित हो तो अन्य भय, लोहित हो तो दुर्भिक्ष
या स्फटिक के समान हो तो शुभ फल होता है। उसके धूमकेतु
ोते हैं किन्तु अब अगस्त्य तारे की काल्पनिक कथा और भीषण
कोई भय नहीं है। अगस्त्य का बिम्ब धूमकेतुओं और उल्काओं
परिवर्तन नियमित है। पुराणों की बात मानें तो अगस्त्य शिव के
ऋतु के मित्र हैं अतः शरद् में विवाह करने से सबकी कृपा प्राप्त

होगी। अगस्त्य का अस्त तव होता है जव सूर्य रोहिणी में रहता है और उसके हस्त में आगमन के समय उदय हो जाता है पर अस्तकाल में वह आकाश छोड़ कर कहीं भाग नहीं जाता, केवल सूर्य के सान्निध्य के कारण हमें नेत्रों से दिखाई नहीं देता।

श्री केतकर जी का समाधान

हमारे देश के भूषण, महान् ज्योतिर्विद और तपस्वी श्री व्यंकटेश बापू जी केतकर ने इस कथा के विषय में अपने नक्षत्रविज्ञान ग्रन्थ में लिखा है, "आज के लगभग १५ सहस्र वर्ष पूर्व अगस्त्य तारा नीलगिरि के केवल दक्षिण दिखाई देता था। भूगर्भशास्त्रीय शोधों से ज्ञात होता है कि उस समय कच्छ, सिंध, मारवाड़, वायव्यप्रान्त, विहार, वंगाल और कोंकणपट्टी तक के प्रान्त समुद्र के नीचे थे और मध्यप्रान्त से नीलगिरि तक एक द्वीप वन गया था। चूँकि इसके उत्तर भी समुद्र था, इसलिये हिमालय की नदियाँ वहीं सागर में गिरती थीं। पौराणिक नाम जम्वूद्वीप से भी यह वात सिद्ध होती है। आगे चल कर समयानुसार ध्रुवस्थान बदलते रहने के कारण विन्ध्यपर्वत पर अगस्त्य तारा दिखाई देने लगा। अगस्त्य क्रमशः ऊपर उठने लगा और लोग कहने लगे कि उसने विन्ध्य को रोक दिया है। विन्ध्य पर्वत २२ अक्षांश पर है और आज से लगभग ६००० वर्ष पूर्व अगस्त्य तारा दक्षिण ध्रुव से २२ अंश की दूरी पर था। अगस्त्य सरीखे तेजस्वी तारे का क्षितिज पर अकस्मात् दर्शन होने से जनता को यह एक संस्मरणीय घटना (Epoch) प्रतीत हुई और पुराणों में उसका वर्णन आलंकारिक रूप से किया गया।

भूगर्भीय उलट फेर के कारण उत्तर के समुद्र का तल धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा और समुद्र समाप्त हो गया। वहाँ कच्छ आदि देश और नदियाँ दिखाई देने लगीं। इस घटना से अगस्त्य का कुछ भी सम्वन्ध नहीं था परन्तु साथ ही साथ आगमन के कारण इसका यश उन्हें दिया गया और अगस्त्य ऋषि ने सारा समुद्र तीन आचमन में पी डाला, यह मनोरंजक पौराणिक कथा उत्पन्न हुई। जम्वूद्वीप का द्वीपत्व नष्ट होने के आसपास वर्तमान आगरा तक समुद्र था। आगे चल कर समुद्र के साथ साथ यमुना भी धीरे धीरे पूर्व दिशा में उतरने लगी। स्वतंत्र रूप से समुद्र में गिरने वाली गंगा आदि नदियाँ अव यमुना में गिरने लगीं। प्रयाग में आप देखेंगे कि भागीरथी से चौड़ी और गहरी यमुना शान्ति से वहती चली जा रही है और गंगा दौड़ कर उससे मिलती है। कपिल के शाप से राजा सगर के ६०००० पुत्र दग्ध हो गये अर्थात् सागर समाप्त हो गया, इससे गंगा उत्पन्न हुई। इस प्रकार इस घटना का कई कथानकों से संवन्ध है। परशुराम ने सह्याद्रि से वाण मार कर समुद्र को १२ योजन पीछे हटा दिया, इसका अभिप्राय यह है कि कोंकणपट्टी समुद्रतल से ऊपर आ गयी।"

वेदों का रचनास्थल

वेदों के रचनास्थल के विषय में विद्वानों में वहुत मतभेद है। लोकमान्य तिलक के मत में वह स्थान उत्तर ध्रुव है, पाश्चात्य विद्वानों के मत में मध्य एशिया है और श्रीसम्पूर्णानन्द जी के मत में भारत का सप्तसिन्धु प्रदेश है किन्तु अगस्त्य इन तीन में से किसी भी स्थान में दिखाई नहीं देता और वेद में जिस अगस्त्य का वर्णन है वह केवल ऋषि ही नहीं, अगस्त्य तारा भी है अतः स्पष्ट है कि प्राचीन आर्य सारी धरती से परिचित थे और पूरी धरती में रहते थे। अगस्त्य-सम्वन्धी ऋग्वेद के मन्त्र ये हैं-१।१७६।४ में लोपामुद्रा का नाम भी आया है। वह अगस्त्य की पत्नी है।

सूनोर्मानेनाश्विना....अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना....१।११७।११
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं वलमिच्छमानः १।१७६।६
एष वां स्तोमो अश्विनावकारि...अगस्त्ये नासत्या मदन्ता १।१८४।५
किन्नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे विद्मा ते मनो १।१७०।३
युवां....अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव...१।१८०।८

सप्तर्षिमण्डल में भय

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में लिखा है कि वसिष्ठादि महर्षि ध्रुव के पास वाले तारों में भी रहते हैं। वे वहाँ के
ं के यज्ञों में आकाश और पृथ्वी दोनों स्थानों से आते हैं।

दिग्भ्यो निमन्त्रिताश्चैनमभिजग्मुर्महर्षयः । न भौमान्येव
धिष्ण्यानि हित्वा ज्योतिर्मयान्यपि॥ १५। ५९

किन्तु सत्य यह है कि आकाश के सुन्दर तारों के नाम पर महर्षियों के नाम बाद में रखे गये हैं और वे सब मांगलिक
आचार्य वराहमिहिर ने सप्तर्षियों के विषय में यहाँ लिखा है कि उत्तर दिशा एक सौभाग्यवती हँसती हुई युवती है। वह
कावली आभूषण और श्वेतकमल की माला पहने है और ध्रुव तथा सप्तर्षियों को देख कर नाच रही है।

सैकावलीव राजति ससितोत्पलमालिनी सहासेव।
नाथवतीव च दिग् यैः कौबेरी सप्तभिर्मुनिभिः॥

हमारे ज्योतिषशास्त्र में दक्षिणायन अशुभ है और पूरा हिन्दूसमाज दक्षिण दिशा से भयभीत है। किसी को साहस
हीं है कि गृह का द्वार दक्षिण ओर कर दे। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि रावण अभी भी दक्षिण में बैठा है और उधर जाने पर
ा जायेगा। वह यमराज की दिशा है। कई पुराणों ने भी लिख दिया है कि सब भीषण नरक दक्षिण में ही हैं (देखिए, आगे
गोल वर्णन) उत्तर में ध्रुव और सप्तर्षि हैं इसलिये वह शुभ है पर हमें जानना चाहिए कि दक्षिण में अगस्त्य और मृगव्याध
कर हैं, मलयाचल नरतुरग और शिखावल (Mensa, Cantaurus, Pavo) हैं तथा मृग, आर्द्रा, हस्त, आषाढ़ा और रेवती
ादि नक्षत्र हैं। आकाश में ये तारे हैं तो धरती पर सागर, कृष्णा कावेरी, नर्मदा, गोदावरी, रामेश्वर, विष्णुकांची शिवकांची,
ष्मेवर, वैद्यनाथ, मीनाक्षी, मल्किार्जुन, नागेश्वर, भीमशंकर, त्रयम्बकेश्वर और पञ्चवटी हैं। शंकराचार्य, रामदास समर्थ,
ावजी, तुकाराम, महर्षि रमण तथा महान् ज्योतिर्विदों की जन्मभूमियाँ हैं और भारतमाता का पूरा शरीर है तो दक्षिण दिशा
यावह कैसे हो सकती है। यहाँ लिखा है कि युधिष्ठर के समय में सप्तर्षि मघा में थे और उन्हें एक नक्षत्र पार करने में सौ
र्ष लगते हैं पर नक्षत्रों में इतनी गति नहीं है। नीचे चार नक्षत्रों की विकलात्मक वार्षिक गतियाँ लिखी हैं।

आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।। ३॥
एकैकस्मिनृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम्॥ ४॥
लुब्धक १.३२ स्वाती २.२८। अभिजित् ०.३६। चित्रा ०.०६

यहाँ मरीचि, वसिष्ठ, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु ऋषियों में कुछ द्रव्य और गन्धर्व, देव दानव, शक,
न, ब्राह्मण आदि बाँट दिये गये हैं और लिखा है कि आकाश में जिस ऋषि की आकृति निर्मल रहेगी उस वर्ग का कल्याण
ा और जो ऋषि, उल्का आदि से आहत होगा अथवा मलिन होगा उसका वर्ग विनष्ट हो जायेगा, पर सत्य यह है कि
ल्काएँ सप्तर्षियों से बहुत नीचे हैं और सप्तर्षियों के मलिनत्व में हमारे नेत्रों का दोष है। वे मलिन होते ही नहीं और सप्तर्षियों
भिन्न भिन्न देशों में एवं वर्गों में बँटवारा अप्राकृतिक और अज्ञानजन्य है।

खगोलाध्याय में यहाँ तक ग्रहों के वैज्ञानिक, वैदिक, पौराणिक और ज्योतिष सम्बन्धी स्वरूपों का, उनसे उत्पन्न
ों का तथा धूमकेतु, उल्का, इन्द्रधनुष, गन्धर्वनगर, अगस्त्य आदि खेचरों सम्बन्धी काल्पनिक भयों का संक्षिप्त वर्णन
ा। आचार्य वराहमिहिर के कथनानुसार उन्होंने अपने समय में उपलब्ध ग्रहों और शकुनादिकों के फलों (भयों) का एक
ा सा भाग लिखा है किन्तु उन्होंने जितना लिखा है उसका एक शतांश भी सत्य होता तो धरती पर प्राणियों का कहीं दर्शन

ही नहीं होता। भयों के कुछ विषय आगे यथास्थान लिखे हैं। आचार्य ने प्राचीन ग्रन्थों के अनेक शकुनों को छोड़ दिया है और स्वरशास्त्र, छींकशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, पाशिकशास्त्र, ताजिकशास्त्र आदि को छुआ ही नहीं है। खंजन, छिपकली और गिरगिट सम्बन्धी भी कुछ ही बातें लिखी हैं। मैंने यहाँ उनके तलवार, मुकुट, मुर्गा, बकरा, हाथी, घोड़ा आदि के अशुभ लक्षणों और उनसे उत्पन्न भयों को नहीं छुआ है। सबका संग्रह करने पर भयों का एक सागर बन जायेगा। ताजिक, जातक, मुहूर्त, प्रश्न और गोचर की पोथियाँ भी इसी लेखनी, इसी स्याही और इसी मस्तिष्क से लिखी गयी हैं अत: उनमें भी उतनी ही सचाई है जितनी इन भयों में। ग्रहों सम्बन्धी कुछ अन्य विषय ये हैं।

ग्रहों के अस्त का भय

ग्रहों के अस्त दो प्रकार के होते हैं। (१) जब वे क्षितिज के नीचे चले जायें। (२) जब वे सूर्य के पास चले जायें। ज्योतिष शास्त्र पापग्रहों के अर्थात् सूर्य, मंगल और शनि के अस्त को अशुभ नहीं कहता पर शुभग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र) के अस्त में विवाह, यात्रा, गृहप्रवेश और युद्धादि सब काम बन्द कर देता है। वस्तुत: ग्रहों का क्षितिज के नीचे जाना ही अस्त है क्योंकि उस समय उनकी किरणें हमारे शरीर पर नहीं पड़तीं पर ज्योतिषी उसे अशुभ नहीं मानते। वे सूर्य के सान्निध्य को ही भीषण कहते हैं जब कि इस समय ग्रह अधिक तेजस्वी हो जाते हैं और उनकी किरणें हम पर पड़ती रहती हैं (यह बात आगे सिद्ध की गयी है) आजकल ग्रह दूरबीनादिकों से उस समय भी देखे जा सकते हैं जब हम उन्हें अस्त मानते हैं। सचमुच अस्तकाल में ग्रह आकाश छोड़ कर कहीं भाग नहीं जाते और सत्य तो यह है कि सूर्य-चन्द्र को छोड़ शेष ग्रह समाप्त हो जायें तो भी हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया कि मंगल और गुरु के बीच में किसी समय हमारी पृथ्वी से नब्बे गुना बड़ा एक ग्रह था पर अब टूट जाने से उसके कुछ टुकड़े मात्र रह गये हैं और वे दिखाई नहीं देते अर्थात् वह ग्रह सदा के लिये अस्त हो गया है। आकाशगंगा के पास अलगोल और मिरा आदि अनेक ऐसे रूपविकारी तारे हैं जो कभी अदृश्य हो जाते हैं और कभी दिन में भी दिखाई देते हैं। वेद में कृत्तिका के अम्बा, दुला आदि सात तारों का उल्लेख है पर आज छ: ही दिखाई देते हैं। आकाश में ऐसी घटनाएँ सर्वदा होती रहती हैं अत: किसी ग्रह का कुछ दिनों के लिये सूर्य के पास चला जाना भयावह नहीं है। उसकी किरणें पृथ्वी पर आती ही रहती हैं और अनेक बार अधिक मात्रा में आती हैं किन्तु ज्योतिष फिर भी कहता है कि गुरु के अस्त में विवाह करने पर वर मर जायेगा, शुक्र का अस्त है तो कन्या मर जायेगी, चन्द्रास्त है तो दोनों मर जायेंगे, ग्रहों की बाल्यावस्था है तो स्त्री मर जायेगी, वृद्धावस्था है तो पुरुष मर जायेगा और उपनयन करने पर ब्रह्मचारी मर जायेगा। जीना चाहते हो तो गुरु, शुक्र और चन्द्रमा की अस्त, बाल, वृद्ध आदि अवस्थाओं में कुछ न करो। भरद्वाज, वसिष्ठ, नारद आदि मुनियों और श्रीपति आदि आचार्यों का कथन है कि गुरु-शुक्र के अस्त में विवाह, उपनयन, गृहप्रवेश, यात्रा आदि करने पर मरना निश्चित है। शुक्र मलिन हो, किसी ग्रह से पराजित हो, नीच हो, वक्री हो, अस्त हो, शत्रु या पाप ग्रह से युत हो, दृष्ट हो, उसके नवांश में हो तो यात्रा आदि कर्म मत करो। करने पर लक्ष्मी, आयु और बल की हानि होगी। इन स्थितियों में युद्धयात्रा के लिये प्रस्थान करने वाला प्रबल नरपति भी शत्रुओं के वश में हो जाता है। शुक्र ही नहीं, गुरु की भी ये सारी स्थितियाँ उतनी ही अशुभ और भय तथा रोग आदि को देने वाली होती हैं (मुहूर्तचिन्तामणि-पीयूषधारा टीका)।

गुरोरस्ते पतिं हन्यात् शुक्रस्यास्ते तु कन्यकाम्। हन्यादुभौ क्षीणचन्द्रे वृद्धभावे नरन्तथा॥ ततो बाल्ये च वृद्धत्वे विवाहं नैव कारयेत्। व्रतबन्धे बटोर्मृति:। दूरेणैव जिजीविषु: परिहरेदस्तंगते भार्गवे॥

(मु० चि० १।४७ टीका)

विवाहो व्रतबन्धो वा यात्रा वा गृहकर्म च।
अस्तंगते गुरौ शुक्रे ध्रुवं मृत्युं विनिर्दिशेत्॥
विवर्णे विजिते नीचे वक्रिते वा सितेऽस्तगे।

शत्रुग्रहयुते वाऽपि तदंशे तन्निरीक्षिते॥
यात्रां नैव प्रकुर्वीत लक्ष्म्यायुर्बलहानिदाम्॥ (भारद्वाज)
प्रस्थितो नरपतिः प्रबलोपि क्षिप्रमेव वशमेति रिपूणाम्।
शुक्रे वास्तंगते जीवे चन्द्रे वास्तमुपागते॥
तयोर्बाल्ये वार्धके च सा यात्रा भयरोगदा॥ (वसिष्ठ)
नीचगोरिगृहस्थो वा वक्रगो वा पराजितः।
यातुर्भंगप्रदः शुक्रः स्वोच्चस्थश्चेत् धनप्रदः॥(११।४१)

मंगल, बुध और सूर्य के अस्त

ज्योतिष ने मंगल के भी अस्त होने और सामने रहने में भीषण दोष बताये है। शुक्र और गुरु की ही भाँति बुध का अस्त भी अशुभ है किन्तु बुध प्राय: अस्त रहता है। उसके दिखाई देने के अवसर बहुत कम आते हैं। वह सूर्य से २७ अंश से अधिक दूरी पर कभी जाता ही नहीं क्योंकि सूर्य की प्रदक्षिणा करने वाले ग्रहों में वह सूर्य का सबसे निकटवर्ती है। ज्योतिषी उसे सूर्य से तेरह अंश दूर रहने पर अस्त मानते हैं किन्तु वह १७ अंश दूर रहनेपर ही अदृश्य हो जाता है। ३४८ दिनों में वह छ: बार अस्त होता है और अस्त होने पर अनेक बार तो ४३ दिनों तक अदृश्य रहता है। यह हमारे देश की बात है। शीत प्रधान देशों में तो वह कभी दिखाई ही नहीं देता। विश्व के प्रख्यात ज्योतिषी कोपर्निकस पूरे जीवन में बुध का दर्शन न कर सके। यदि उन देशों के लोग शत्रु का आक्रमण होने पर बुध के दर्शन की प्रतीक्षा करें तो क्या स्थिति होगी? मंगल की स्थिति उससे भी विचित्र है। वह तो पाँच मास तक लगातार अस्त रहता है। केवल मंगल और शुक्र के अस्त संमुखत्व को घातक मानने पर हमें अनेक बार शत्रु के सामने जाने में डेढ़ वर्ष तक रुकना होगा अत: यह फल मान्य नहीं अपितु विचारणीय है।

ग्रहों के अस्त से भयभीत होकर सैकड़ों शुभ कर्मों को बन्द करते देख हमारे उन ओजस्वी पूर्वजों की आत्मा अपने बच्चों की नपुंसकता पर अवश्य दुखी होती होगी जो ग्रहराज सूर्य के अस्त को भी अस्त नहीं मानते थे। उनका कथन है कि यह सूर्य न कभी अस्त होता है न उगता है। हम जब उसको अस्त मानते हैं, वह अस्त नहीं होता अपितु दिन के अन्त में जाकर अपने को पूर्व दिशा की ओर घुमा देता है। रात्रि को आगे और दिन को पीछे कर देता है। जब हम प्रात: काल उसका उदय मानते हैं, वह वस्तुत: रात्रि के अन्त में आकर अपने को उलट देता है। दिन को आगे और रात्रि को पीछ कर देता है। वह अस्त तो कभी होता ही नहीं।

स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति।
तं यदस्तमेतीति मन्यन्ते अह्न एव तदन्तमित्वात्मानं विपर्यस्यते।
रात्रीमेवावस्तात् कुरुतेऽहः परस्तात्।
अथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते।
अहरेवावस्तात् कुरुते रात्रीं परस्तात्।
स वा एष न कदाचन निम्रोचति॥ (ऐत० ब्रा० ४। ६)

वेदों में और वैदिक साहित्य में अनेक बार सूर्य को ही शुक्र (तेजस्वी, बली आदि) कहा गया है और हम सर्वदा सूर्यास्त में ही विवाह करते हैं इसलिये सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते सूर्यशिशु शुक्र के अस्त को अशुभ मानना व्यामोह है। मन्त्र ये हैं—

रुद्राः संसृज्य....तेषां भानुरजस्त्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते (यजुः ११।५४)।

असौ वा आदित्यः शुक्रः (६। ४। २।२१)।
यदेषतपति शुक्रः (४।५।६।६ शत० ब्रा०)।

ग्रह अस्त होने के कुछ दिन पूर्व वृद्ध, उदित होने के बाद कुछ दिनों तक बाल और उलटा चलने पर वक्री माना जाता है। इन सब का विवरण आगे लिखा है परन्तु इन कथनों में अनेक शंकाएँ हैं। (१) इन दोषों को संसार के अन्य देश तथा भारत के ईसाई और मुसलमान नहीं मानते तो विवाह, यात्रा और गृहारंभादि करने पर उनका सर्वनाश क्यों नहीं हो जाता? (२) जो आचार्य पृथ्वी को स्थिर मानते थे अर्थात् ग्रहों के अस्त और वक्रादि अनेक स्थितियों की उपपत्ति नहीं जानते थे उन्हें इन अस्तादि दोषों के सूक्ष्म परिणाम को जानने की दिव्यदृष्टि कैसे प्राप्त हो गयी? (३) गुरु, शुक्र आदि सब ग्रह सूर्य की ही किरणों से प्रकाशित होते हैं परन्तु हमारे प्रान्त में शतप्रतिशत विवाह सूर्यास्त में अर्थात् रात्रि में होते हैं। सूर्यास्त में विवाह हो सकता है तो गुरु–शुक्र के अस्त में क्यों नहीं? (४) क्या गुरु–शुक्र के अस्त का वातावरण पर प्रभाव पड़ता है? क्या आपको उसका अनुभव होता है? (५) शुक्र के उदित रहने पर भी विवाह के समय वर–वधू पर उसकी किरणें नहीं पड़तीं क्योंकि प्रहर रात्रि (६ बजे) के बाद वह सदा क्षितिज के नीचे रहता है, तो उसके उदय से क्या लाभ हुआ?

ग्रह हमारे शरीर में है

सत्य यह है कि शरीर में स्थित गुरु और शुक्र का सदा उदित रहना और वक्री न होना आवश्यक है। शिवसंहिता और गरुड़ पुराण आदि अनेक ग्रन्थों में लिखा है कि सूर्यादि सब ग्रह शरीर के नादचक्र, बिन्दुचक्र, नेत्र और हृदय आदि स्थानों में बैठे हैं तथा उनका अस्त होना भयावह है। शुक्र का शुक्र (वीर्य)से और गुरु का सम्बन्ध बुद्धि से है (आगे इसकी विस्तृत मीमांसा की गयी है।)

नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे च चन्द्रमाः।
कुजो लोचनयोर्ज्ञेयो बुधश्च हृदि संस्थितः।
विष्णुस्थाने गुरुं विन्द्यात् शुक्रे शुक्रो व्यवस्थितः।
नाभिचक्रे स्थितो मन्दो देहेऽस्ति ग्रहमण्डलम्॥

बाबा गोरखनाथ और ग्रह

पीछे वारप्रकरण में बाबा गोरखनाथ और शिव के चौघड़िया और दोघड़िया मुहूर्तों का परिचय दिया गया है। उनमें आपस में ही घोर विरोध है। उसका कारण यह है कि वे पण्डितों की हवाई कल्पनाएँ हैं और बाबा पर बलपूर्वक थोपी गयी हैं। बाबा ऐसे विषयों का सदा विरोध करते थे। भगवान् शंकर के अवतार बाबा गोरखनाथ ने हमें सैकड़ों उच्च शिक्षाएँ दी हैं पर भक्तनामधारी हम विषयपरायण मानव उन्हें सदा विपरीत दिशा में घसीटते रहे हैं। यह निश्चित है कि सात्त्विक आहार विहार के अभाव में कोई मनुष्य योगीश्वर नहीं हो सकता पर हमारे पुराणों ने योगीश्वर शिव को भाँग, धतूरा, अफीम खिलाया है, गाँजा पिलाया है, मद्यमांस का सेवन कराया है और उनके परस्त्रीगमन का वर्णन किया है। आज भी गँजेड़ी–भँगेड़ी लोग गाँजा–भाँग सेवन के समय शिव का नाम लेते हैं और धतूरा चढ़ाये बिना उनकी पूजा पूरी नहीं होती पर बाबा गोरखनाथ की शिक्षा है–

आफू खाय भाँग भसकावे तामें बुद्धि कहाँ ते आवे।
चढ़ता पित्त उतरता बाई ताते गोरख भाँग न खाई॥
अमली को ध्यान वेश्या को मान गिरही को ज्ञान महा अज्ञान।

वारों और ग्रहों के विषय में उनका आदेश है कि इनसे मत डरो। ये सब तुम्हारे शरीर के भीतर स्थित हैं। सूर्य–चन्द्र

तुम्हारे आँख–कान में है, मंगल मुख पर, बुध हृदय में, गुरु नाभि और मति में, शुक्र वीर्य में, शनि गुदा में राहु वायु में और केतु नासिका में बैठा है। नवग्रह और सातवारों को शरीर के भीतर जानो तथा संयम और नियम से इन्हें नियन्त्रित करो।

गोरख जोगी कथै विचार ये तत (तत्त्व) जीतैं सातो वार
वेदपुरान पढ़ै चित्त लाइ विद्या किन्तु ब्रह्मथेर थाइ
मच्छिन्द्रप्रसादे जती गोरख कहै सात वार कोई बिरला लहै
आदित आंख्या सोम श्रवण मंगल मुख पर बाण
बुध हिरदै गुरु नाभि मति शुक्र ते इन्द्री जाण
शनी गुदा महँ राहु वायु ते केतु नासिका रहै
सप्त वार अरु नवग्रह देवता काया भीतर गोरख कहै

ग्रहयोग का भय

ज्योतिष पाँच, छः सात, आठ ग्रहों के योग को भी भयंकर मानता है। उसका कथन है कि इस स्थिति में उत्पन्न शिशु प्रायः दरिद्र और मूर्ख होते हैं। मान सागरी–ग्रहयागाध्याय में लिखा है—

प्रायो दरिद्रो मूर्खश्च षड्भिर्वा पञ्चभिर्ग्रहैः॥ ८॥

संवत् २०१८ की माघी अमावास्या (४। २। १९६२ ई०) को अष्टग्रहीयोग हुआ था। उन समय ज्योतिषियों और अन्य भविष्यवक्ताओं के कथन से जनता अतिशय भयभीत हो गयी थी और चारों ओर बड़े बड़े यज्ञ, कीर्तन और पाठ होने लगे थे। ऐसा लगता था कि प्रलय काल आ रहा है, अब धरती आकाश फट जायेंगे पर हुआ कुछ नहीं। यद्यपि हमें आकाश में कुछ दीवारों, पर्वतों या ऐसे बाँधों का दर्शन नहीं होता जो उसको अनेक भागों में विभाजित करते हों पर ज्योतिषियों ने ऐसे बाँधों की कल्पना की है। एक ग्रह तीन राशि एक अंश (३। १) हो और दूसरा ३। २९ हो तो वे कर्कराशि के दो बाँधों में बँधे माने जाते हैं। जब कि दोनों में २८ अंश का अन्तर है। इस स्थिति को दो ग्रहों का योग कहा जाता है पर यदि एक ग्रह ३। २९ हो और दूसरा ४। १ हो अर्थात् दोनों में केवल दो अंश का अन्तर हो तो योग नहीं माना जाता क्योंकि दोनों के बीच में आकाश में एक बहुत ऊँची दीवार या पर्वतमाला मान ली गयी है। यह है ज्योतिष की लीला। संवत् २०१८ में शनि ९। ४, सूर्य ९। २२ और राहु ९। २९ था फिर भी अष्टग्रही योग मान लिया गया क्योंकि सबकी राशि एक थी, बाँध एक था जब कि यह काल्पनिक बाँध भी प्रतिवर्ष ५०.२ विकला चलता है। किन्तु आप को जानना चाहिए कि ग्रहों में बहुत दूरी है अतः उनका योग कभी हो ही नहीं सकता। एक सीध में आने पर कुछ शुभ या अशुभ प्रभाव हो सकता है पर उसका बोध वैज्ञानिक बुद्धि और प्रयोग से होगा, काल्पनिक विद्या से नहीं।

कोई अंग्रेजी पढ़ा ज्योतिषी या व्यास इंगलिश में किसी प्राचीन भ्रम का समर्थन करता है तो हमें उसका कथन देववाणी सा लगता है किन्तु अब निर्भीक होकर ज्योतिष की उन इंगलिश पत्रिकाओं से पूछना है कि अष्टग्रही वाली आपकी भविष्यवणी मिथ्या क्यों हो गयी? विश्व के महान् भविष्यवक्ता सन् १९८० में विश्वसंहार की जो भविष्यवाणी कर रहे हैं वह भी इसी प्रकार मिथ्या होगी और तृतीय विश्वयुद्ध भी ग्रहस्थिति पर नहीं, सामाजिक स्थिति के आधार पर होगा।

ग्रहराशियोग में भय

सात ग्रहों में मित्र, सम और शत्रु भाव है। ज्योतिष का पूरा भवन इसी आधार पर स्थित है। सूर्य का गुरु मित्र है और गुरु का सूर्य परन्तु गुरु की धन और मीन राशियों में सूर्य की स्थिति को खलमास कहा जाता है। ये दोनों मास सब शुभ कर्मों में त्याज्य हैं। इसी प्रकार सूर्य की राशि सिंह में उसके मित्र गुरु के पहुँचने पर पूरा वर्ष विषाक्त हो जाता है। ऐसी मकर आदि

अन्य भी कई राशियाँ हैं। उनकी कथा आगे पढ़ें।

ग्रहों के जन्म के देश, नक्षत्र और तिथि आदि

आकाश का सर्वदा सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले आर्य शनि और बुधादि ग्रहों से सुपरिचित न हों, यह असंभव है किन्तु वेदों में न तो नवग्रह या सप्तग्रह शब्द है, न ग्रहों की भाँति की आकृतियाँ हैं न उन्हें आहुति देने के मन्त्र हैं फिर भी ज्योतिष और आधुनिक कर्मकाण्ड ने इस विषय में आश्चर्यजनक बातें लिखी हैं। ज्योतिष कहता है कि आहुति किसी भी देव को दो, वह ग्रहों के मुख और उदर से होकर ही देवों के पास जायेगी और पाप ग्रह के मुख में पहुँचने पर होता का सर्वनाश कर देगी। हम जानते हैं कि सब ग्रहपिण्ड गोल हैं पर यहाँ उनकी आकृतियाँ त्रिकोण, चतुष्कोण, पञ्चकोण, वर्गाकार और सूप आदि सदृश भी मानी गयी हैं। ये भिन्न-भिन्न ऋषियों की सन्तान और अनेक देवों के दास बताये गये हैं। सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि नक्षत्रमानों और तिथियों की उत्पत्ति सूर्य-चन्द्र से होती है पर यहाँ सब ग्रहों की जन्मतिथियाँ लिखी हैं। सूर्य सप्तमी को और चन्द्रमा चतुर्दशी को पैदा हुआ है पर प्रश्न यह है कि सूर्य-चन्द्र थे ही नहीं तो इस क्रिया के लेखक मुनियों को ७-१४ तिथियों का ज्ञान कैसे हुआ। नक्षत्र में भी यही प्रश्न है। लिखा है कि सूर्यादिकों के जन्म कलिंग, सागर और अवन्ती आदि में हुए तो क्या सूर्य, चन्द्र, भौम आदि के पैदा होने के पहले कलिंग, अवन्ती और मगधादि देश बन चुके थे? और उन देशों के एक कोने में ये ग्रह पैदा हो गये? यहाँ वासिष्ठी हवनपद्धति के ग्रहों के कुछ आवाहनमन्त्र लिखे जा रहे हैं जिनमें उनके जन्मस्थान, आकार, जन्मतिथि, जन्मनक्षत्र और गोत्रादि लिखे हैं। नीचे के चक्र में उनके कुछ अन्य गुण भी लिखे हैं।

वासिष्ठी के कुछ मन्त्र ये हैं—(१) सप्तम्यां विशाखान्वितायां कलिंगे जातं कश्यपगोत्रं लोहितवर्णं वर्तुलाकृतिं मण्डलमध्यस्थं प्राङ्मुखं द्विभुजं पद्महस्तं सप्ताश्वरथवाहनं क्षत्रियाधिपतिमीश्वराधिदैवतमग्निप्रत्यधि-दैवतसहितं सूर्यमावाहयामि। (२) चतुर्दश्यां कृत्तिकान्वितायां समुद्रे जातमत्रिगोत्रं श्वेतवर्ण चतुरस्राकृतिं मण्डलात् पूर्वदक्षिणदिक्स्थं पश्चिमाभिमुखं दशाश्वरथवाहनं विशां पतिमुमाधिदैवतं जलप्रत्यधिदैवतसहितं चन्द्रमावाहयामि॥ (३) दशम्यां पूर्वाषाढान्वितायां अवन्त्यां जातं भारद्वाजगोत्रं त्रिकोणं दक्षिणाभिमुखं मेषवाहनं क्षत्रियाधिपतिं...भौममावाहयामि॥ (४) अमावास्यायां आश्लेषान्वितायां जातं जैमिनिगोत्रं धूम्रवर्णं ध्वजाकृतिं कपोतवाहनं अन्त्यजाधिपतिं केतुमावाहयामि॥

इस कथन की अनेक बातों के सम्बन्ध में हमें सोचना है कि (१) क्या बुध का हरा और शनि का काला रंग होता है? (२) क्या इनको ब्राह्मण, अन्त्यज आदि जातियाँ हैं? (३) क्या ये त्रिकोण, चतुष्कोण और बाणादि सरीखे हैं? (४) क्या ये भेंड़, कबूतर, सिंह, रथ और अश्वादि पर चलते हैं? (५) क्या ये बुलाने पर सैकड़ों रूप धारण कर सहस्रों यागमण्डपों में एक साथ आ जाते हैं? (६) आते हैं तो हमें दिखाई क्यों नहीं देते? (७) संकट काल में बुलाने पर क्यों नहीं आते? (८) जलियाँ वाले बाग में क्यों नहीं आये? (९) क्या इनके भिन्न-भिन्न, लिंग, योनियाँ, दृष्टियाँ और स्थान आदि हैं? (१०) क्या वे विभिन्न दिशाओं में मुख करके बैठे रहते हैं? ऐसे अनेक प्रश्न हैं।

ग्रहों के कुछ गुण

	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
गुण	सत्त्व	सत्त्व	तम	रज	सत्त्व	रज	तम	तम	तम
लिंग	नर	नारी	नर	नपुं०	नर	नारी	नपुं०	नर	नर
जाति	क्षत्र	वैश्य	क्षत्र	वैश्य	विप्र	विप्र	शूद्र	अन्त्य	अन्त्यज
मुख	पूर्व	पर	दक्षिण	उत्तर	उत्तर	पूर्व	पर	दक्षिण	दक्षिण
दृष्टि	नभ	सम	नभ	तिर्यक्	सम	तिर्यक्	अधः	अधः	अधः

रंग	लाल	श्वेत	लाल	हरा	पीत	श्वेत	काला	काला	काला
वय	वृद्ध	मध्य	युवा	बाल	वृद्ध	मध्य	जीर्ण	वृद्ध	वृद्ध
रस	कटु	क्षार	तिक्त	मिश्र	मिष्ट	मिष्ट	तिक्त	तिक्त	तिक्त
स्थान	वन	जल	वन	ग्राम	ग्राम	जल	वन	वन	वन
प्रकृति	पाप	सौम्य	पाप	शुभ	शुभ	शुभ	पाप	पाप	पाप
आकार	लघु	लघु	लघु	लघु	दीर्घ	लघु	दीर्घ	दीर्घ	दीर्घ
कालबल	दिनार्ध	अपरार्ध	दिनार्ध	प्रातः	प्रातः	अपरार्ध	सायं	सायं	सायं
योनि	पशु	साँप	पशु	पक्षी	मनुष्य	मानव	पक्षी	साँप	साँप
लोक	भूमि	भूमि	पाताल	नभ	नभ	पाताल	नाग	नाग	नाग
प्रकृति	पित्त	कफ	पित्त	सम	सम	कफ	वात	वात	वात
देव	शिव	उमा	स्कन्द	विष्णु	इन्द्र	शची	ब्रह्मा	सर्प	ब्रह्म
देव	अग्नि	जल	भूमि	जल	ब्रह्म	इन्द्र	यम	यम	यम
गोत्र	कश्यप	अत्रि	भारद्वाज	अत्रि	अंगिरा	भार्गव	कश्यप	पैठीनस	जैमिनि
आकार	वृत्त	चौकोन	त्रिकोण	बाण	चौकोन	पंचकोण	धनुष	सूप	ध्वज
वाहन	रथ	रथ	मेष	सिंह	सिंह	अश्व	गृध्र	सिंह	कपोत
जन्मतिथि	७	१४	१०	१२	११	६	८	१५	३०
जन्मर्क्ष	विशा	कृत्तिका	पूषा	धनि	उफा	पुष्य	रेवती	भरणी	आश्ले-
जन्मदेश	कलिंग	समुद्र	अवन्ती	मगध	सिन्धु	भोजकट	सौराष्ट्र	बर्बर	बर्बर

नवग्रहपूजन में स्वामी करपात्री जी का मत

यद्यपि वेदों में सप्तग्रह या नवग्रह शब्द नहीं और आज जिन वेदमन्त्रों से बुध, शनि आदि की पूजा की जाती है उनमें बुध, शनि आदि शब्द भी नहीं हैं फिर भी स्वामी जी कहते हैं कि वेदों में ग्रहपूजन है। अथर्ववेद में ग्रह, राहु और केतु शब्द आये हैं—शन्नो दिविचरा ग्रहाः १९।९।७॥ 'शन्नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा। शन्नो मृत्युर्धूमकेतुः १९।९।१०॥'

परन्तु प्रथम मन्त्र से शनि आदि ग्रहों का ग्रहण सिद्ध नहीं होता क्योंकि ग्रह शब्द के अनेक अर्थ हैं और द्युलोक में अनेक ग्रह हैं। द्वितीय मन्त्र में चान्द्रमसग्रह की चर्चा है पर चान्द्रमस ग्रहों का आज पता नहीं है। यहाँ बहुवचन का प्रयोग है। कुछ लोग इनका सम्वन्ध नक्षत्रों से जोड़ते हैं। धूमकेतु कोई ग्रह नहीं होता। यजुर्वेद संहिता में ग्रहशब्द अनेक स्थानों में आया है। कुछ मन्त्र ये हैं—

(१) उपयामगृहीतोसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम....ग्रहान्....अहं सूर्यमुभयतो ददर्श ८।९॥ (२) ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिं ९।४॥ (३) यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैस्तोमाश्च विष्टतीः १९।२८॥ (४) अविर्न मेषो अमृतो ग्रहाभ्याम् १९।९०॥ (५) इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्यां श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्यां १९।९१॥

इनमें ग्रह शब्द का सम्बन्ध सूर्यादि ग्रहों से नहीं है। शतपथ ब्राह्मण (४।६।५।२, ३, ४ आदि) में वाणी, नाम, अन्न, अंग आदि को ग्रह कहा है क्योंकि ये बहुत कुछ ग्रहण करते हैं। प्राण, जिह्वा, चक्षु, श्रोत्र भी ग्रहण करते हैं इसलिये वे आठ ग्रह हैं (शत० १४।६।२।१)। यज्ञमण्डप में जिन पात्रों में सोम रखा जाता है उनको भी ग्रह कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण। ४।२।1 में दो पात्रों के नाम शुक्र और मन्थी है। चन्द्रमा भी मन्थी है। ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में यह वर्णन है कि द्युलोक में पाँच उक्ष घूम रहे हैं, कुछ सुपर्ण हैं और चन्द्रमा है पर ये सुपर्ण और उक्ष ग्रह ही हैं, यह सिद्ध नहीं किया जा सकता।

पतन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षण: १ । १३५ । ६ ॥ ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपस: १ । ६४ । २ ॥ ते स्यन्द्रासो नोक्षण: ५ । ५२ । ३ ॥ दिव्यं सुपर्णं वायसं १ । १६४ । ५२ ।। चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि १ । १०५ ।१ ।। अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिव: १ । १०५ ।१० ॥ सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिव: १ । १०५ । ११ (ऋग्वेद) । अग्निर्मूर्धा दिव: ककुत्पति: पृथिव्या: । अयमपां रेतांसि जिन्वति (यजु १३ । १४) ॥

मंगल—आजकल मंगल के पूजन और हवन में यजु: संहिता का ऊपर वाला—'अग्निर्मूर्धा' मन्त्र पढ़ा जाता है। इसके विषय में स्वामी जी कहते हैं, 'अग्नि आकाश का सिर है, दिशाओं और पृथ्वी का पति है तथा आकाश से गिरे जल को अन्न में परिणत करता है। मन्त्र में यद्यपि मंगल शब्द नहीं है फिर भी मंगल अग्नि की भाँति लाल है और वर्षा कराता है अत: अग्नि की प्रार्थना से उसकी प्रार्थना हो गयी।'

शंकाएँ—(१) यह मन्त्र यजु: संहिता १५ । २० में भी आया है। दोनों स्थानों में इसका देवता अग्नि लिखा है और स्वामी जी के मान्य भाष्यकारों उवट और महीधर ने भी इसे स्वीकार किया है। इसके आगे-पीछे के मन्त्र भी अग्नि सम्बन्धी ही हैं तो क्या स्वामी जी सदृश महान् पुरुष को मन्त्रार्थ के साथ ऐसा बलात्कार करना समुचित है? (२) मन्त्रकर्ता को यदि मंगल ग्रह अभीष्ट था तो क्या उसे 'मंगलो मूर्धा' नहीं लिखने आता था? (३) क्या सर्वव्यापी अग्नि की भाँति मंगल ग्रह भी आकाश का मूर्धा हो सकता है? (४) क्या वह किसी ककुत् (दिशा) का पति है? (५) वेद का प्रथम शब्द और प्रथम देव अग्नि है तथा वहाँ उसे परमात्मा माना गया है। क्या मंगल ग्रह वैसा है? (६) आप लाल होने से मंगल को अग्नि मान लेते हैं तो क्या सब लाल पदार्थ अग्नि हैं? लाल तो बन्दर का भी एक अंग है। टमाटर भी लाल है। (७) वेदों ने सूर्य और इन्द्र को अनेक बार वर्षाकारक कहा है। क्या मंगल को भी कहीं वैसा कहा है? (८) क्या मंगल जलकण को अन्न बना देता है? यहाँ मंत्र में अन्न शब्द कहाँ है?

(१) असौ यस्ताम्रो अरुण उतबभ्रु: सुमंगल: ॥ (यजुर्वेद १६ । ६)
(२) उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वम् ॥ (यजुर्वेद १८ । ६१)

अच्छा होता कि आप यहाँ के प्रथम मन्त्र को मंगल-मन्त्र मानते जिसमें मंगल, ताम्र और अरुण शब्द आये हैं। बुध के पूजन में आजकल द्वितीय मन्त्र पढ़ा जाता है। इसका अर्थ है-हे अग्न्देिव! जागो और यजमान की कामनाएँ पूर्ण करो। यहाँ बुध ग्रह की नहीं बल्कि अग्नि की प्रार्थना है पर स्वामी जी कहते हैं-

बुध—'मन्त्र में बुध शब्द न रहने पर भी काम चल जाता है क्योंकि बुध ग्रह अग्नि सा तेजस्वी है, अग्नितत्त्व प्रधान है, और ज्ञान प्रकाश से पूर्ण है। अग्निप्रधान होने से उसकी गति अधिक है। वह २१ दिनों में एक राशि पार कर लेता है। वेद में अग्नि को वाक् भी कहा है और अग्निरूपी बुध वाणी में रहता है। ये दोनों बुद्धि के अधिष्ठाता हैं। इनमें भेद नहीं है अत: अग्नि के मंत्र के पाठ से बुध की प्रार्थना हो जाती है।'

शंकाएँ-(१) इन्द्र की भाँति अग्नि वेद का मुख्य देव है। वेद का आरंभ अग्नि शब्द से होता है और वेद में वह ईश्वर है तो क्या बुध ग्रह भी ईश्वर है? (२) वेद में अग्नि के पचासों विशेषण हैं। क्या बुध उनका अधिकारी है? (३) क्या बुध को जगाना पड़ता है? (४) क्या वाणी में बुध ग्रह का वास है? (५) क्या बुध ग्रह में ज्ञान का प्रकाश है? क्या उसने हमें ज्ञानी बना दिया है? (६) पुराणों में लिखी बुध के जन्म की फूहड़ कथाएँ क्या अग्नि पर लागू होंगी? (७) अग्नि शब्द से आप कितने पदार्थों का ग्रहण करेंगे? (८) क्या बुध अग्नि सा तेजस्वी और लाल है? (९) क्या आपने बुध ग्रह को कभी देखा है? (१०) कर्मकाण्डियों ने उसे हरा क्यों कहा है? (११) आप लाल होने से मंगल और बुध दोनों को अग्नितत्त्वप्रधान मान लेते हैं तो क्या दोनों के गुण समान हैं? (१२) मंगल मेष और वृश्चिक का स्वामी है पर बुध मिथुन और कन्या का। दोनों में इतना अन्तर कैसे हो गया? (१३) ग्रहमैत्री में दोनों एक दूसरे के शत्रु क्यों है? (१४) मंगल रात भर सहज ही दिखाई देता है पर कुछ

प्रयास करने पर भी कभी-कभी दिखाई देता है। इतना अन्तर क्यों? (१५) मंगल पचीस मासों में केवल एक बार अस्त होता है पर बुध तेरह बार। (१६) मंगल उगने पर २२ मास दिखाई देता है पर बुध केवल एक मास। मंगल-बुध के गुणविभेद की कुछ बातें ये हैं-(१७) मंगल-पापग्रह, पुरुष, क्षत्रिय, लाल, बनचर, युवा, शुष्क, तामस, त्रिकोण। बुध-शुभग्रह, नपुंसक, शुद्र, हरा, ग्रामचर, बालक, सजल, सात्त्विक, बाणाकार। (१८) सूर्य अग्नि का भण्डार है और आप मंगल-बुध को भी अग्नितत्त्वात्मक कहते हैं तो तीनों को समान होना चाहिए पर ऐसा है नहीं तो कहाँ गया अग्नितत्त्व? (१९) चूँकि सूर्य और मंगल में बुध से अधिक अग्नि है इसलिये आपके सिद्धान्तानुसार इन दोनों की गतियाँ बुध से अधिक होनी चाहिए पर स्थिति इसके ठीक विपरीत है, क्यों? (२०) ग्रहों में चन्द्रमा की गति सबसे अधिक है तो क्या उसमें सूर्य और मंगल से अधिक अग्नितत्त्व है? (२१) शनि सूर्य का पुत्र है, लाल है पर उसकी गति सबसे कम है। क्या हो गया उसके अग्नि को? (२२) अंशात्मक गति को न मानें तो योजनात्मक गति ले लें। वह आपके नियमानुसार सूर्य, मंगल, बुध आदि में अधिक होनी चाहिए क्योंकि वे अग्निमय हैं पर आपके शास्त्रानुसार सब ग्रहों की वह गति समान है। श्री भास्कराचार्य ने लिखा है—

समागतिस्तु योजनैर्नभस्सदां सदा भवेत्।
कलादि कल्पनावशान् मृदुद्रुता च सा स्मृता॥

ऐसा क्यों हो रहा है? (२३) अग्नि से उत्पन्न प्रकाश एक सेकण्ड में १८६००० मील चलता है पर बुध केवल ३० मील। क्यों? (२४) आप वेदों में बुध को हरा और बाणाकार बनाते हैं। क्या वह ऐसा है? (२५) जिसमें अग्नि-तत्त्व प्रधान है वह बुध हरा कैसे हो गया? वह हमें हरा दिखाई क्यों नहीं देता? (२६) आप कहते हैं कि इस मन्त्र का ऋषि सौम्य है अर्थात् बुध है तो मन्त्र का ऋषि और देवता एक कैसे हो गया? विनियोग में दोनों पृथक् क्यों बताये जाते हैं? (२७) क्या सौम्य शब्द से बुध ग्रह का ग्रहण होगा? क्या इस श्रुति को जड़ बुध ने सुना था? (२८) आप अग्नि विषयक एक मन्त्र को मंगल का और दूसरे को बुध का कहते हैं तब तो विद्युत्, सब तारे और सब ग्रह अग्निमन्त्र के अधिकारी हो जायेंगे क्योंकि सब चमक रहे हैं। सत्य यह है कि बुध ग्रह अग्निवत् प्रकाशमान् नहीं है। विश्वविख्यात ज्योतिर्विद् कोपर्निकस बहुत प्रयास करने पर भी उसे अपने जीवन में नहीं देख सका। हमें भी वह सूर्योदय के पूर्व और सूर्यास्त के बाद भी कभी-कभी कुछ ही मिनटों तक प्रयास करने पर दिखाई देता है। वेद के प्राचीन उवट आदि भाष्यकारों ने भी इस मन्त्र का, स्वामी जी वाला अर्थ नहीं लिखा है।

शुक्र का मन्त्र है-अन्नात् परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रियस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु (वाज० सं० १९।७५)॥

शुक्र—स्वामी जी ने इसका अर्थ लिखा है-'प्रजापति अन्न से चूये रस को ब्रह्म की सहायता से पीता है और क्षात्रबल को अपने वश में कर लेता है। वश में करना ही पीना है। दैत्य क्षत्र हैं और वे शुक्राचार्य के वश में रहते हैं। अन्न के रस से शुक्र (वीर्य) बनता है। शुक्र ग्रह उसका अधिष्ठाता है।' पर इस मन्त्र में यह कहाँ लिखा है कि दैत्य क्षत्र हैं और शुक्राचार्य के वश में हैं? आप पौराणिक गाथा को यहाँ क्यों घुसेड़ रहे हैं? इस मन्त्र के शुक्र शब्द का क्या शुक्र ग्रह से कुछ भी सम्बन्ध है? क्या इस मन्त्र के किसी शब्द से शुक्र ग्रह और वीर्य का सम्बन्ध जुड़ता है? वेदों में अग्नि, वीर्य, तेज और ज्येष्ठ मास आदि के लिये शुक्र शब्द प्रयुक्त है, तो क्या उन मन्त्रों को शुक्र ग्रह के साथ इसी प्रकार जोड़ देना धर्मसंगत है?

वैदिक शुक्र

वेदों में शुक्र का वर्णन है। चूँकि यह शब्द तेजस्विता द्योतक है इसलिये शुक्र ग्रह को यही नाम दिया गया है। यजुः संहिता (७।१६) के पीछे लिखे 'अयं वेनस्' मन्त्र में इसे सूर्य का शिशु, ज्योति का भण्डार और वेनस् कहा है। पश्चिम में भी इसे वेनस् (Venus)ही कहा जाता है। वहाँ यह सौन्दर्य का प्रतीक है। वाजसनेयि संहिता का कथन है कि हे शुक्र! तुम तेज

हो, अमृत हो, आयुरक्षक हो, कवि हो, सूर्यसुत हो, अमृत की रशना हो तथा सूर्य के उदय से अश्विनों के बाहु से और पूषा के हाथ से सम्बन्धित हो अतः कृपया हमारी आयु की रक्षा करो। सूर्य देवों का चक्षु है और अपने उदय से पूर्व शुक्र को भेज देता है। यह शुक्रोदयकालीन प्रभात का वर्णन है।

तेजोसि शुक्रममृतमायुष्पा आयुर्मे देहि। देवस्यत्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे (२२।१)॥ इमामगृभ्णन् रशनाममृतस्य...कन्या (२२। २)॥ तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि। तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् (वाजस, संहिता)॥

खेद है कि इतने सुखद विशेषणों से युत शुक्र ग्रह आज यात्रा में और युवती की विदाई आदि में सामने तथा दायें पड़ने पर मारक समझा जाता है और शुक्र सम्बन्धी अनेक मन्त्रों के रहते हम उसके पूजन और हवन में वह मन्त्र पढ़ते हैं जिसमें शुक्र ग्रह की चर्चा ही नहीं है।

शनिमन्त्र (यजुःसंहिता ३६।१२)
शन्नी देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्त्रवन्तु नः॥

शनि—स्वामीजी इसकी व्याख्या लिखते हैं—'देदीप्यमान जल अर्थात् जलरूप शनिदेव हमारे पान (तृप्ति) के लिये सुखरूप हों और रोगों का नाश करें। इस मन्त्र में शनि शब्द नहीं है, दैवी जल की प्रार्थना है तो भी जल की प्रार्थना से शनि की प्रार्थना हो जाती है। शनि में जलतत्त्व प्रधान है और वह जल बरसाता है। जल शीतल है, शीतल आलसी होता है इसलिये शनि मन्द और शनैश्चर कहा गया है। जल और शनि सूर्य के पुत्र हैं। जलस्वरूप होने से ही शनि मकर-कुंभ (जलीय) राशियों का स्वामी है।'

शंकाएँ—(१) स्वामी जी कहते हैं कि जल की प्रार्थना से शनि की प्रार्थना हो जाती है क्योंकि उसमें जलतत्त्व की प्रधानता है। तब तो जल की प्रार्थना से वरुण, सोम और शिव की भी प्रार्थना हो जायेगी क्योंकि वरुण और सोम जल के देव हैं और अष्टमूर्ति शिव जलरूप हैं। (२) जलतत्त्व तो सब मनुष्यों और पशु-पक्षियों में विद्यमान् है तो क्या जल की प्रार्थना से सबकी प्रार्थना हो जायेगी? (३) क्या जड़ जलतत्त्व हमारी प्रार्थना सुनता है? (४) इस मन्त्र में जल और शनि की प्रार्थना है या परमात्मा से प्रार्थना की गयी है कि दैवी जल हमारा कल्याणकारी हो? (५) शनि की कृपा चाहने वाले शनि न कह कर जल क्यों कहते हैं? (६) क्या शंनः और शनि में कोई सम्बन्ध है? (७) क्या शंनः का अर्थ शनि हो सकता है? (८) क्या शनि ग्रह सूर्य का पुत्र या टुकड़ा हो सकता है? (९) क्या चेतन के शरीर का टुकड़ा चेतन हो सकता है? (१०) क्या वह हमारी प्रार्थना सुन सकता है? (११) शनि ग्रह के पिण्ड में क्या अधिक जल है? इसका क्या कोई प्रमाण है? (१२) क्या शनि पानी बरसाता है? (१३) वेदों ने इन्द्र, सूर्य और मेघ आदि को वर्षाकारी कहा है तो वे शनि का नाम भूल क्यों गये? (१४) आप कहते हैं कि शनि और जल, दोनों सूर्य के पुत्र हैं अतः दोनों के गुण समान हैं तो क्या विभीषण और रावण के गुण समान हैं? काई और कमल के गुण समान हैं? (१५) क्या सागर से उत्पन्न अमृत और विष के गुण समान हैं? (१६) जल में मन्दता का कौन सा गुण है? (१७) क्या शीतप्रदेश के लोग उष्णप्रदेश के निवासियों की अपेक्षा मन्दबुद्धि और आलसी होते हैं? (१८) हमारे ज्योतिष ग्रन्थों का कथन है कि सब ग्रहों की योजननात्मक गति समान है। तो फिर शनि मन्द कैसे हो गया? (१९) अग्नि और जल देव हैं तो वे सबके घरों को जलाते और डुबोते क्यों हैं? (२०) यदि शनि जलीय होने से मकर कुंभ राशियों का स्वामी है तो वह मीन राशि का स्वामी क्यों नहीं हो गया? (२१) क्या मीन का स्वामी गुरु भी जलमय है? (२२) कुछ तारों से यदि मगर, मछली आदि की आकृतियाँ बन जायँ तो क्या वहाँ जल पहुँच जायेगा? (२३) क्या उनकी सीध में आये ग्रह और विमानादि जलमग्न हो जाते हैं? (२४) क्या घर में मछली का चित्र टाँगने पर वर्षा होने लगती है? (२५) क्या जलीय राशियों में उत्पन्न बालकों के शरीर में अधिक जल रहता है? क्या उनमें उन राशियों के गुण होते हैं? (२६) क्या

मीनराशि की आकृति मछली सरीखी है? (२७) कर्क के स्वामी चन्द्रमा में क्या केकड़े के गुण हैं? (२८) जलमय होने से शनि जलीय राशियों का स्वामी है तो क्या यह नियम अन्य ग्रहों में भी है? क्या मंगलबुध की राशियाँ १,८,३,६ अग्निमयी हैं? (२९) शनि के मन्त्र में जलवाची आप: शब्द बहुवचनान्त है इसलिये स्वामी जी ने शनि को भी बहुवचनान्त कर दिया है तो क्या शनि अनेक हैं? (३०) क्या वे जल और आप: की भाँति नपुंसक और स्त्री हैं?

शन्नो मृत्युर्धूमकेतु: का अर्थ है–मृत्युस्वरूप धूमकेतु हमारे लिये शुभ हो किन्तु स्वामी जी लिखते हैं–'अग्नि धूमकेतु है और केतुग्रह की आकृति पताका सदृश मानी गयी है। उसकी पूजा भी ठीक है क्योंकि हम आजकल राष्ट्रध्वज की पूजा करते हैं।'

किन्तु (१) यहाँ अग्नि को धूमकेतु नहीं बल्कि धूमकेतु को मृत्यु कहा है। ज्योतिषशास्त्र भी धूमकेतुओं को भीषण मानता है। वेदों में अग्नि के अनेक शुभ विशेषण हैं। वह मृत्यु नहीं है। (२) यज्ञों में केतु की आकृति पताका सदृश अवश्य बनती है परन्तु गणितज्योतिष में राहुकेतु दो निराकार कक्षाओं के निराकार सम्पात हैं अत: उनकी कोई आकृति नहीं है। आकाश के सारे साकार बिम्ब गोल हैं। ग्रह त्रिकोण, चतुष्कोण, बाणाकार और पताका सदृश नहीं होते। ये सब झूठी कल्पनाएँ हैं। (३) स्वामी जी केतु ग्रह को पताका सदृश और राष्ट्रध्वज की भाँति पूज्य मानते हैं पर सत्य है कि पताकाधारिणी भारतमाता न कोई चेतन देवी हैं न राष्ट्रध्वज कोई चेतन देव है। दोनों के रूप बदलते रहते हैं और हमारे देश में अनेक ध्वज हैं। कर्तव्य से पराङ्मुख होकर भारत माता की तथा राष्ट्रध्वज की पूजा करते रहने और उन्हें आहुतियाँ देने से न भारत की रक्षा होगी न हमारी। हमें दोनों का सम्मान करते हुए उनके मूल अर्थ को जानना है।

वस्तुत: स्वामी जी ने मंगल आदि के मन्त्रों में ग्रहों का नाम न रहने पर भी उनके पाठ का जो औचित्य सिद्ध किया है वह उनकी नयी युक्ति है। पुरानी युक्ति यह है कि नाम के एक–दो अक्षरों से ही नाम का काम चल जाता है। अम्बे, धू, अग्नि, पंचनद्य: और हिरण्य शब्दों के आ जाने से ही आम्रपल्लव, धूप, दीप, पंचामृत और दक्षिणा दान के काम हो जाते हैं। इसी प्रकार बुध्यस्व और शन्नो कहने से बुध और शनि की पूजा हो जाती है, मन्त्र का अर्थ कुछ भी हो। महर्षि दयानन्द ने वेद के तरुतारं शब्द से उसमें तार टेलीफोन का अस्तित्व सिद्ध किया है, इस कारण श्री करपात्री जी ने कई बार उन्हें कटु शब्द कहे हैं पर स्वयं नामों के अभाव में भी वेदों में वारों, राशियों और मंगलादि के पूजन का अस्तित्व सिद्धि किया है, यह आश्चर्य की बात है। वे पुन: लिखते हैं कि—

ग्रहशान्ति—'नक्षत्रों और ग्रहों के उत्पातों का वर्णन एवं उनकी शान्ति का विधान अथर्ववेद से सम्बद्ध है। अथर्ववेद १९।७ में नक्षत्रों की नामावली है अत: सिद्ध है कि ग्रह–नक्षत्र–पूजा वैदिक है। सती के विवाह के असफल होने का कारण यह था कि उसमें नवग्रहों की विधिवत् पूजा नहीं हुई थी। शिवपुराण (अध्याय २९) में सती स्वयं कहती हैं कि हे शिव! आप ने विधिवत् विवाह नहीं कराया और मेरे पिता दक्ष ने नवग्रहों की पूजा नहीं की, इसी से कष्ट आये हैं।

दक्षकन्या यदाऽहं वै पित्रा दत्ता तव प्रभो।
यथोक्तविधिना तत्र विवाहो न कृतस्त्वया॥
न ग्रहा: पूजितास्तेन दक्षेण जनकेन मे।
ग्रहाणां विषयस्तेन सच्छिद्रोऽयं महानभूत्॥

अथर्ववेद में प्रार्थना है कि मित्रादि देव, पृथ्वी आकाश के उत्पात और गगनचारी ग्रह हमारे लिये शान्तिप्रद हों तथा कहा है कि कुछ ग्रहयोगों से नारियाँ विधवा हो जाती हैं।

शं नो मित्र: शं वरुण: शं विवस्वान् शमन्तक:।
उत्पाता: पार्थिवान्तरिक्षा: शन्नो दिविचरा ग्रहा: ॥१९।९।७॥

ग्राह्या गृहाः संसृज्यन्ते स्त्रिया यन् म्रियते पतिः।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो यः क्रव्यादं निरादधत्॥१२।२।३६॥

उनकी शान्ति के लिये ग्रहशान्ति विधियाँ बतायी गयी हैं। उन्हें अवश्य करना चाहिए। ग्रहों के मन्त्रों से उनकी प्राणप्रतिष्ठा हो जाती है। प्रतिष्ठा के बल से यदि पाषाण भी देव प्रतिमा हो जाता है तो मन्त्र पढ़ने से देव क्यों नहीं आवेंगे? वे मूर्तियों में प्रतिष्ठित क्यों नहीं हो जायेंगे? वेदों में पृथ्वी और ग्रहों की प्रार्थना है अतः स्पष्ट है कि वे चेतन देव हैं।''

उत्तरपक्ष–(१) अथर्ववेद में नक्षत्रों की नामावली है पर उससे ग्रहों और नक्षत्रों की पूजा सिद्ध नहीं होती। वहाँ ईश्वर से प्रार्थना है कि हमारे लिये सब नक्षत्र मांगलिक हों। अथर्ववेद में तो वहीं यह भी प्रार्थना है कि आकाश, पृथ्वी, सागर, पर्वत, गायें, पशुसमूह, पत्थर, उल्काएँ, प्रातःकाल, सायंकाल, हमारी पाँचों इन्द्रियाँ, मन और सुकर्मियों के सुकर्म हमारे लिये मांगलिक हों। वहाँ अहोरात्र को बार बार नमस्कार किया गया है (१६।६)। तो क्या हम पुरुषार्थ और इन्द्रिय–संयम को छोड़ इन सब की पूजा और शान्तियज्ञ करने लग जायँ?

स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगम् शंनो भूमिः शमुल्काः।
शं गावो नक्षत्रमुल्काभिहतं अभिचारा देशोपसर्गाः रायः॥
शं नो अद्रिः शं सुकृतां सुकृतानि वात औषधीः प्रदिशः॥
इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि।
यैरेव संसृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः॥ नमोहोरात्राभ्यामस्तु॥

(२) स्वामी जी पुराण का प्रमाण देकर सिद्ध करते हैं कि नवग्रह की पूजा न होने से सती का विवाह निष्फल हो गया पर सब पुराण एक दूसरे के विरोधी हैं। जो देव एक पुराण में सबका पिता और पूज्य है वही दूसरे में दूसरों का पुत्र और दास है और पुराण असंभव बातों से भरे पड़े हैं। उनमें सब ग्रहों की अश्लीलतम कथाएँ लिखी हैं तो हम उनकी हर बात कैसे मानें? (३) क्या आप को विश्वास है कि दक्ष और सती के समय नवग्रहपूजा होती तो वे उसे न करते? (४) आप सती और शिव को जगदम्बा और जगत्पिता मानते हैं तो क्या उनके लिये भी नवग्रहादि सैकड़ों देवों का पूजन आवश्यक है? और क्या पूजा न करने पर वे देव जगदीश को सताते हैं? (५) आज हिन्दू के अतिरिक्त जो जातियाँ विवाह में नव ग्रह का पूजन नहीं करतीं, क्या उनके विवाह निष्फल हो जाते हैं? (६) क्या हमारी विवाहपद्धति में नवग्रहपूजन और नवग्रहों को आहुति देने का विधान है? (७) नवग्रहादि की पूजा करने वालों के विवाह क्यों निष्फल हो जाते हैं? राम का विवाह क्यों कष्टप्रद रहा? (८) सतीकथा में पचीसों असंभव बातें लिखी हैं। एक ओर सती जगदम्बा हैं तो दूसरी ओर राम को नहीं पहचानतीं, सीता का रूप धारण कर उनकी परीक्षा लेती हैं, विश्वनाथ की आज्ञा नहीं मानतीं, सती का शव कन्धे पर ले कर विश्वनाथ पागलों की भाँति दौड़ते हैं और विष्णु उनका शरीर चक्र से टुकड़े करते हैं। ऐसी पचीसों अभद्र बातों से वह कथा भरी है। (९) नवग्रह पूज्य हैं तो उनसे करोड़ों गुना बड़े अगणित तारे क्यों नहीं? हम किस की पूजा करें? (१०) स्वामी जी ने ऊपर लिखे १२।२।३६ मन्त्र के अर्थ में ग्रहदशा और ग्रहयोग की बात लिख कर मन्त्रार्थ को उसके मूल स्थान से बहुत दूर पटक दिया है। मन्त्र में तो ग्रह शब्द ही नहीं है। मन्त्र का सीधा अर्थ है–पति के मरने पर स्त्री के लिये गृह ग्राह हो जाता है। (११) आप कहते हैं कि नवग्रह–पूजा से वैधव्य योग समाप्त हो जाते हैं पर उसमें यदि सचाई होती तो हमें विधवाओं का यह क्रन्दन नहीं सुनना पड़ता। (१२) मन्त्र के बल से यदि पाषाण देव हो जाते और मन्त्रों द्वारा बुलाने पर देव भागे भागे आते तो मुसलमान मूर्तियों को तोड़-तोड़ कर और उन्हें अपने घरों और मसजिदों की सीढ़ियों में लगा कर पैर से कुचलते नहीं और उनकी रक्षा में करोड़ों हिन्दू काटे नहीं जाते।

ग्रह चेतन–स्वामी करपात्री जी कहते हैं, '(१) वेदों में पृथ्वी और ग्रहों की प्रार्थना है अतः निश्चित है कि वे चेतन

देव और पूज्य हैं। (२) बायबिल कुरान आदि अनार्य ग्रन्थों से प्रभावित दयानन्द ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी देव को उपासना योग्य नहीं मानते और भ्रम से सत्यनिष्ठ मानवों को ही देव कहते हैं किन्तु (३) वेदों में देव मनुष्यों से भिन्न हैं और वे तथा ग्रह उपास्य हैं। (४) मनुष्य मूर्ख और दुराचारी भी होते हैं पर देव सर्वदा विद्वान् और सदाचारी होते हैं। ऋग्वेद में लिखा है—

मानुषीणामुत दैवीनां ३।३४।२॥ देवानामुत मर्त्यानां ६।१५।१३
देवा उत मर्त्यासः ८।४८।१ अमृतानामुत मर्त्यानां १०।३३।८

अतः मनुष्यों को देव कहना अनुचित है। पृथ्वी, जल और ग्रहों में देव बैठे हैं तथा आकाश के सब तारे पुण्यात्माओं के प्रकाशमय स्वरूप हैं। उनमें कुछ आजान देवों के प्रभामण्डल भी हैं। निरुक्तकार का कथन है कि पृथ्वी, जल, पवन आदि जड़वत् प्रतीत होते हैं पर उनके देव चेतन हैं। पृथ्वी ने नारी रूप धारण कर ब्रह्मा से बात की थी अतः सूर्यादि ग्रहों को जड़ मानना और उनके देवत्व में शंका करना अज्ञान है।"

उत्तर–(१) स्वामी जी कहते हैं कि वेद में पृथ्वी और ग्रहों की प्रार्थना है अतः निश्चित है कि वे चेतन देव हैं और पूज्य हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि वेद सारे जड़ों और चेतनों का वर्णन आलंकारिक भाषा में करते हैं और उन्हें देव कहते हैं। यह बात वेद में लिखी भी है। वेदों में धनुष, बाण, तरकस, सील, लोढ़ा, ढाल, फाल, गृह, शंख, मेघ, अंजन, दिन, रात, उषा, सन्ध्या, पूर्णिमा, अमावास्या, मास, पक्ष, ऋतु, जल, विष, सुवर्ण, भात, श्रद्धा, क्रोध, गोंद, दुन्दुभि, स्वप्न, काम, मेखला, दाँत आदि भी देव हैं और उनकी भी प्रार्थनाएँ हैं तो क्या हम इन सब की पूजा–प्रार्थना करें और इन्हें आहुतियाँ दें? निरुक्त का कथन है कि जो हमें कुछ देते हैं, दीप्त हैं, तेजस्वी हैं या द्युलोक में रहते हैं वे देव हैं। इस परिभाषा के अनुसार ग्रह, तारे, अग्नि, वायु, पृथ्वी, पर्वत, नदियाँ आदि देव हैं। धनुष, बाण, रेल,मोटर, लाठी, बन्दूक, छाता, जूता आदि भी हमें कुछ देते हैं अतः देव हैं तो क्या हम इन सब की पूजा करें? सत्य यह है कि नदियाँ, अग्नि, वायु आदि जान बूझ कर हमें कुछ नहीं देते। वह उनकी प्रकृति है और हम विज्ञानवान् हों तो वे जो देते हैं उससे पचास गुना उनसे ले सकते हैं। इन जड़ पदार्थों को देने का ज्ञान नहीं होता। इसी कारण नदियाँ हमें डुबो देती हैं, अग्नि जला देता है और वायु हमारा घर उजाड़ देता है पर ज्ञानी के देश में नदियों से नहरें निकाली जाती हैं, अग्नि से अनेक काम लिये जाते हैं और पवन से पंखे तथा अनेक यन्त्र चलते हैं। धरती का ऊसर वाला भाग हमें कुछ नहीं देता था पर अब बहुत कुछ देने लगा है इसलिये पृथ्वी, नदी, अग्नि, पवन और सूर्यादि की पूजा अज्ञान है तथा उनको अपने वश में करना ज्ञान है, विज्ञान है। ज्ञानी उनसे बहुत कुछ पायेगा और अज्ञानी सर्वदा अपने धन, समय और बल का अपव्यय करता रहेगा।

(२) पूज्य केवल एक देवों का देव ईश्वर है पर उसकी पूजा पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और स्तोत्रपाठ आदि से नहीं अपितु सत्कर्म, सदाचार और परोपकार से होती है। योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में और भागवत् (१०।२४ आदि) में कहा है कि सिद्धियाँ प्राप्त करना चाहते हो तो परमात्मा की पूजा अपने सत्कर्मों से करो। वे उसी के पुष्प, धूप आदि को स्वीकार करते हैं जिसका मन संयमित है, जो सदाचारी है। जो सब प्राणियों में विराजमान ईश्वर की उपेक्षा करते हैं उनकी पूजा विडम्बना है, पाखण्ड है और वे मूढ़ अग्नि में नहीं बल्कि राख में हवन कर रहे हैं। वे कभी भी शान्ति नहीं पा सकते। देवों की और मेरी वास्तविक पूजा यह है कि दूसरों को मित्र की दृष्टि से देखो, दान दो, सम्मान दो, नमस्कार करो और समझो कि परमात्मा की एक कला इनमें भी बैठी है। भगवान् नन्द बाबा से कहते हैं कि इन्द्रादि देव ईश्वर नहीं है अतः वे कर्मफल को टाल नहीं सकते तो फिर हम उनकी उपासना क्यों करें? उस कर्म को ही देव क्यों न मान लें जिससे ईश्वर प्रसन्न होते हैं। अपने पति को छोड़ अनेक जारों के पास दौड़ने वाली नारी वेश्या कही जाती है तो क्या हम परमात्मा के अतिरिक्त सैकड़ों देवों के पूजक हो कर वेश्या बन जायें?

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा। तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥ भस्मन्येव जुहोति सः। भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति॥ अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा। प्रणमेद् बहु मानयन्। ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति॥ सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते। किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम्। तस्माद् विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा॥

रही एक की भइ अनेक की वेश्या बहुत भतारी।
कह कवीर काके सँग जरिहै वहुत पुरुष की नारी॥
नारि कहावै पीउ की रहै और सँग सोय।
जार मीत हिरदय बसै खसम खुसी का होय॥ (कबीर)

(३) दयानन्द केवल विद्वानों को नहीं बल्कि धर्मनिष्ठ विद्वानों को देव मानते हैं क्योंकि विद्वान् तो रावण भी था। विद्वान् तो हर अध्यापक, वकील, डाक्टर और इंजीनियर हैं पर वे सब धर्मात्मा नहीं हैं। इसलिये योगिराज भर्तृहरि ने लिखा है कि अपने सुख की उपेक्षा कर परोपकार में कष्ट उठाने वाले मनुष्य देव हैं स्वार्थ परमार्थ दोनों को देखने वाले मानव हैं। केवल स्वार्थी राक्षस हैं और दूसरों का निष्कारण अहित करने वाले पता नहीं कौन हैं। 'ते के न जानीमहे' पुराणों में भी इस विषय का विशद वर्णन है। क्या महर्षि रमण, तैलंगस्वामी, श्यामाचरण लाहिड़ी, दयानन्द, राजाराम मोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, तिलक, गांधी, सुभाष, सावरकर, चन्द्रशेखर और भगत सिंह आदि देव नहीं हैं? भिन्न-भिन्न विषयों में अनेक आविष्कार करने वाले वैज्ञानिक क्या देव नहीं हैं? क्या देव होने के लिये सूर्य-चन्द्र की भाँति जड़ होना आवश्यक है? क्या पत्थर की मूर्तियाँ ही देव होती हैं? मनुष्यों को देव कहना अनुचित है तो वेदों ने यह क्यों कहा कि-'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव'। माता, पिता और गुरु क्या मनुष्य नहीं हैं? आप नारद को देवर्षि क्यों कहते हैं? अद्वैतवादी सन्यासी अपने को ब्रह्म और शिव कहते हैं। अहं ब्रह्मास्मि, शिवोहं आदि उनके महावाक्य हैं। प्रश्न यह है कि मनुष्य ब्रह्म और शिव हो सकता है तो देव क्यों नहीं? हमारे सर्वश्रेष्ठ पुराण भागवत में राम-कृष्ण ही नहीं, परशुराम, कपिल, बुद्ध और व्यास ही नहीं, मछली, सूअर और कछुआ भी भगवान् के अवतार हैं। भागवत के अनुसार भगवान् के असंख्य अवतार हैं और सारे ऋषि-मुनि हरि की कला हैं।

अवतारा असंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। ऋषियो मुनयो गावो
देवमातर एव च। कलाः सर्वा हरेरेव स प्रजापतयस्तथा॥

गोस्वामी तुलसीदास के कथनानुसार श्रीराम के अठारह पद्म सेनापति और सब सैनिक देव थे। यदि वानर, भालू, मछली और कच्छप आदि देव हो सकते हैं तो दयानन्द ने धर्मनिष्ठ मानवों को देव कह कर क्या अपराध कर दिया?

(४) स्वामी करपात्री जी कहते हैं कि दयानन्द बायबिल और कुरान आदि अनार्य ग्रन्थों से प्रभावित होकर एकेश्वरवादी हो गये और नवग्रहादि पूजन का विरोध करने लगे पर सत्य यह है कि दूरदर्शी-मेधावी मनुष्य अपने आप एकेश्वरवाद पर पहुँच जाते हैं। हमें सोचना है कि बायबिल और कुरान के लेखक क्या पढ़ कर एकेश्वरवादी बने थे। विचारशील मनुष्य अनेक देवों की सत्ता सिद्ध हो जाने पर भी उपासना उस एक की ही करते हैं जो देवों का देव है। योगेश्वर कृष्ण ने इन्द्रादि बहुदेवों के उपासक नन्द बाबा को यही बताया था। महर्षि दयानन्द वेदवेत्ता थे और वेद एकेश्वरवाद के मन्त्रों से भरे हैं। चार-पाँच मन्त्र ये हैं—

एको देवो द्यावाभूमी जनयन् १७।१६ यो देवानां नामधा एक एव १७।२७॥ तदेवाग्निस्तदादित्यः ३२।१ एषो ह देवः प्रदिशो नु सर्वास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ३२।४ (यजुर्वेद)। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति (ऋग्वेद)॥

(५) स्वामी करपात्री जी कहते हैं कि 'देव सर्वदा सदाचारी रहते हैं। वे कभी भी असत् कर्म नहीं करते' परन्तु यह बात उन ग्रन्थकारों के लेख से सिद्ध नहीं होती जो स्वामी जी के परम मान्य हैं। वेद के प्राचीन भाष्यकारों ने अथर्व संहिता (४।३४) के भाष्य में लिखा है कि देवों के स्वर्ग में बहुत स्त्रियाँ हैं, वहाँ शिश्नदाह नहीं होता, सुरा की धाराएँ हैं और देव उन्हें पीते हैं।

नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहुस्त्रैणमेषाम् २॥
घृतह्रदाः सुरोदकाः....एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः ६॥

पुराणों के अनुसार स्वर्ग की अप्सराएँ सबकी भोग्या हैं। सुरेश ने अहल्या का सतीत्व नष्ट किया, यज्ञ का घोड़ा चुराया और उसके कारण राजा सगर के पुत्रों ने इतना बड़ा सागर खोद डाला तथा एक नारी के बालों पर वीर्यपात कर मूर्ख बाली को पैदा किया। वे बैलों को पका कर खाते हैं और राम के राज्याभिषेक में विघ्न डालने के लिये सरस्वती को मन्थरा की जीभ पर भेजते हैं। पवनदेव ने अञ्जना के साथ बलात्कार कर हनुमान को पैदा किया, सूर्य ने अनेक पाप किये, देवों ने अभद्र विधि से अगस्त्य और वसिष्ठ को पैदा किया, दैवों के गुरु, बृहस्पति ने भाभी के साथ बलात्कार कर भारद्वाज को पैदा किया और विश्वामित्र के तप में देवों ने विघ्न डाला तो वे सदाचारी और पूज्य कहाँ रह गये? गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है–

ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराई बिभूती॥
मघवा महा मलीन। तिमि सुरपतिहिं न लाज।
काक समान पाकरिपु रीती। सरिस स्वान मघवान...आदि॥

सूर्य से वेदाध्ययन

स्वामी जी इसके आगे लिखते हैं कि 'याज्ञवल्क्य ने वेदों का अध्ययन सूर्य से किया था। हयग्रीव राक्षस (शंखासुर) वेदों को चुरा ले गया था। विष्णु भगवान ने उसका वध किया और वेद ब्रह्मा को दे दिये। ब्रह्मा ने उनका आधा भाग सूर्य में छिपा दिया और आधा वसिष्ठ आदि को पढ़ाया। याज्ञवल्क्य ने गुरु से झगड़ा होने पर पढ़े वेद को उगल दिया और सूर्य के घोड़ों के शरीर में प्रविष्ट होकर सूर्य से पुनः चारों वेद पढ़े। अतः याज्ञवल्क्य को वेद पढ़ाने वाले सूर्य जड़ नहीं हो सकते। वेद अनन्त हैं और वे सब सूर्य के पास हैं। यह बात वायुपुराण आदि से ज्ञात होती है। स्कन्दपुराण (नागरखण्ड २७८) में लिखा है–'

स तथेति प्रतिज्ञाय प्रविश्यादित्यवाजिनः।
कर्णेऽपठत्ततो वेदाँश्चतुरोऽपि च तन्मुखात्॥"

यहाँ स्वभावतः अनेक शंकाएँ होती है। (१) उन वेदों का क्या स्वरूप था जिन्हें हयग्रीव चुरा ले गया। क्या वेद पुस्तकाकार हैं? हयग्रीव ने वेद क्यों चुराये? (२) यदि पुस्तक नहीं चुराई तो क्या स्वर और गीत चुराये जा सकते हैं? (३) क्या वेद उगले जा सकते हैं? (४) याज्ञवल्क्य ने जो मन्त्र उगले वे तैत्तिरीयसंहिता में हैं पर उन्होंने सूर्य से जो शुक्ल यजुर्वेद पढ़ा उसमें भी तो वे ही तैत्तिरीयसंहिता वाले मन्त्र हैं। उन्होंने वे उगले मन्त्र पुनः क्यों पढ़े? (५) स्कन्दपुराण के ऊपर वाले श्लोक में लिखा है कि याज्ञवल्क्य ने सूर्य से चारों वेद पढ़े परन्तु प्रसिद्ध कथा यह है कि शुक्ल यजुर्वेद पढ़ा। दोनों में से कौन सी कथा सत्य है? (६) याज्ञवल्क्य ने सूर्य के घोड़ों के शरीर में घुस कर वेद क्यों पढ़े? क्या वे मानव शरीर से वेद नहीं पढ़ सकते थे?

(७) क्यां घोड़े वेद पढ़ते और सुनते हैं? (८) अकेले याज्ञवल्क्य सूर्य के सात घोड़ों में कैसे प्रविष्ट हो गये? (६) बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य का उपदेश है कि सूर्य पृथ्वी के पास है और चन्द्रमा सूर्य से एक लाख योजन ऊपर है। क्या ऐसे मनुष्य की चेतन सूर्य से सम्पर्क और अध्ययन वाली कथा कभी सत्य हो सकती है? (१०) स्वामी जी जिस पुराण को गप्प को सत्य मानने का दुराग्रह करते हैं वे कितने असत्य हैं, इसकी कथा आगे भूगोलाध्याय में पढ़ें। उनके मिथ्यात्व के ऐसे सहस्रों प्रमाण हैं। स्वामी जी सूर्य को इसलिये चेतन मानते हैं कि वह सात घोड़ों के रथ पर बैठ कर वेद पढ़ाता है परन्तु वेदों ने स्वयं कह दिया है कि यह वर्णन आलंकारिक है। ऋग्वेद के इन मन्त्रों का मनन करें–

अमी ये सप्तरश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता १।१०५।६॥
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत् १।१५२।५
सप्तयुंजन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः १।१६४।२॥
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः।
सप्तस्वसारो अभिसंनवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम॥ १।१६४।३

इन मन्त्रों में स्पष्ट वर्णन है कि सूर्य के पास न अश्व है, न लगाम है, न रथ है। उसकी सात प्रकार की रश्मियाँ (किरणें) ही सात अश्व हैं। उसके संवत्सररूपी रथ में एक ही चक्र है और सात नामों वाला एक ही अश्व उस रथ को खींचता है। रथ के पहिये में तीन नाभियाँ (शीत, गर्मी, वर्षा) है और वह पहिया अजर है। कभी जीर्ण नहीं होता न टूटता है। सारे भुवन उसी रथ पर स्थित हैं। ये सात नाम गायों के हैं, किरणों के हैं और ये सात बहनें हैं। इसी सूक्त के ११ वें और १२ वें मन्त्रों में बताया है इस चक्र में बारह अरे लगे हैं। वे कभी जीर्ण नहीं होते और उनमें ७२० (दिन–रातरूपी) पुत्रों के जोड़े स्थित हैं। इसके क्षण, मुहूर्त, प्रहर, दिवस और पक्षरूपी पाँच पाद हैं और छः ऋतुओं रूपी अरे भी हैं। अतः स्पष्ट है कि घोड़ा वाली बात मिथ्या और काल्पनिक है।

द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः॥
पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं षडरं आहुरर्पितम्॥

स्वामी जी इसके आगे लिखते हैं कि 'ग्रह और देव अनेक देह धारण कर एक साथ होने वाले सब यज्ञों में पहुँच जाते हैं। वेद में अश्व, रथ, धुरा, मूसल, खंभा, धनुष आदि को देव कहा है। वह सत्य है। देव इनका रूप धारण कर प्रार्थी की कामना पूर्ण कर देते हैं। पृथ्वी, बिजली, ग्रह आदि देवता हैं। सूर्यदेव अपने मण्डल में भी हैं और पृथक् भी हैं। सूर्य सचमुच पुरुष बन कर कुन्ती के पास गया था। इन्द्र ने भेंड़ बन कर मेघातिथि का पुत्र हरा था। ये कथाएँ वेदसंमत हैं अतः ग्रहों के जड़ होने पर भी उनमें बैठे देव चेतन हैं। व्यासादि महर्षि उनसे बात करते थे। देवों के प्रभाव से उनको अर्पित थोड़ी सी आहुति पर्वताकार हो जाती है। प्राचीन काल में देव ब्राह्मणों की मुट्ठी में रहते थे और पुरोहित द्वारा विशिष्ट आहुति देने पर मूसलाधार वर्षा करने लगते थे।'

स्वामी जी के इस कथन में अनेक शंकाएँ हैं–(१) देह धारण कर किसी एक लोक में रहने वाले जड़ ग्रह और हमारे अपरिचित चेतन देव लाखों शरीर धारण कर हर यज्ञशाला और मन्दिर में पहुँच जाते हैं, इस बात का कथनी के अतिरिक्त एक भी ठोस प्रमाण है क्या? (२) क्या देव खंभा, मूसल आदि में बैठ कर उन्हें चेतन और इष्टप्रद बना देते हैं? (३) यदि यह सत्य है तो इन्होंने सहस्रों वर्षों के घोर संकटकाल में आकर हमारी सहायता क्यों नहीं की? संसार को सुखो क्यों नहीं बनाया? (४) देवों को दी हुई आहुति पर्वताकार हो जाती है तो हमें दिखाई क्यों नहीं देती? (५) देवगण आहुति का कौन

सा भाग खाते हैं? कच्चा अन्न या जला अन्न या उसका गन्ध? क्या वह गन्ध पुष्पादिकों से अधिक सुगन्धित होता है? (६) देव यज्ञों से प्रसन्न होकर मूसलाधार वृष्टि करते हैं तो हमने रेगिस्तानों को उपजाऊ क्यों नहीं बना दिया? (७) पर्वतों पर, समुद्रों में और चेरापूँजी में बहुत वर्षा होती है। क्या वहाँ यज्ञ होते हैं? क्या जापान, अमेरिका आदि में यज्ञों से वर्षा होती है? (८) देवों और द्विजों में इतनी शक्ति थी तो उन्हें देवालयों, द्विजों और देश की दुर्दशा कैसे सह्य हुई? (९) मीमांसा में शब्द ही देव हैं तो हम सूर्य, प्रजापति, इन्द्र आदि शब्दों को ही देव क्यों न मान लें? (१०) ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है कि साकार ब्रह्मा की साकार पत्नी सावित्री के उदर से चार वेद, छ शास्त्र, वर्ष, मास, ऋतु, वार, तिथि, घटी, पल, और सब राग, रागिनी, ताल, आदि पैदा हुए। वे सब देहधारी हैं और यज्ञों में आहुतियाँ लेने आते हैं। क्या पुराणों के और आप के कहने से हम इस बात को सत्य मान लें?

सुषुवे सा चतुर्वेदान् तर्कव्याकरणादिकान्।
वर्षं मासमृतुं वारान् तालरागक्षणादिकान्॥ (ब्रह्मखण्ड ८)

सबसे बड़ी दो कठिनाइयाँ हैं। श्री आदिशंकराचार्य ने ब्रह्म सूत्र के अपने भाष्य में स्वामी जी की ही भाँति लिखा है कि 'आजकल देवों का साक्षात्कार नहीं हो रहा है पर प्राचीनकाल में होता था। पुराने लोगों के लिये वह भी प्रत्यक्ष था जो हमारे लिये अप्रत्यक्ष है। हमने सुना है कि प्राचीन व्यासादि महर्षि देवों से प्रत्यक्ष व्यवहार करते थे।'

अस्माकमप्रत्यक्षमपि भवति चिरन्तनानां प्रत्यक्षम्।
व्यासादयो देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवहरन्ति स्मेति स्मर्यते॥''

परन्तु स्वामी करपात्री जी सदृश सर्वज्ञ योगी को जिन देवों का दर्शन नहीं हुआ, श्री शंकराचार्य को नहीं हुआ और जैमिनी जिन्हें केवल शब्दमात्र कहते हैं उन्हें व्यासादिकों ने देखा होगा, इसे हम कैसे मान लें?

•

अध्याय ७

पृथ्वी का वैज्ञानिक रूप (भूगोल)

पृथ्वी का व्यास लगभग ८००० मील है। उस पर स्थल का क्षेत्रफल लगभग साढ़े पाँच करोड़ वर्गमील और जलीय भाग का क्षेत्रफल लगभग सवा चौदह करोड़ वर्गमील है। दोनों में ५, १३ का अनुपात है। पृथ्वी के सभी स्थलभागों का आकार त्रिभुज सा है और उनका शीर्षकोण दक्षिण दिशा में है। पृथ्वी पर जल और स्थल ठीक आमने सामने हैं। पृथ्वी के केन्द्र से जाने वाली प्रत्येक रेखा के एक ओर जल और दूसरी ओर स्थल है। भूगर्भशास्त्रियों का अनुमान है कि पहले पृथ्वी के सब भाग सटे थे और पानी में पैर रखे बिना पूरी पृथ्वी की पैदल यात्रा की जा सकती थी। ये स्थल भाग किसी उत्पात के कारण पृथक् हो गये हैं। जो भूमध्यसागर पहले एक झील मात्र था वही आज अफ्रीका को योरप से पृथक् कर रहा है। दोनों महाद्वीप जिब्राल्टर के पास सटे से हैं। लालसागर का संकीर्ण जलभाग बीच में न होता तो एशिया और अफ्रीका मिले होते। स्वेज मनुष्यों ने बनायी है। लालसागर के दक्षिणी भाग में बाबुलमण्डव या अश्रुद्वार पर दोनों एक दूसरे को छूना चाहते हैं। बेयरिंग जलडमरूमध्य के पास एशिया के ईशान कोण में नयी धरती पुरानी से मिलने जा रही है। सोवियतसंघ और अलास्का में बहुत कम अन्तर है। एशिया के अग्निकोण में आस्ट्रेलिया तक छोटे-छोटे द्वीपों का पुल सा बँधा है। इन्हें किसी भौतिक उत्पात ने तोड़ा है। अफ्रीका को यदि पश्चिम की ओर सरकाया जाय तो उसका वायव्यकोण वाला निकला भाग दक्षिणी और उत्तरी अमेरिका के बीच वाले रिक्त स्थान को भर देगा। उत्तरी अमेरिका और ग्रीनलैण्ड के बीच के सब टापू एक में मिल जायेंगे। ऐसे अनेक स्थल हैं। विज्ञान के मत में पृथ्वी एक ग्रह है। वह वर्ष भर में सूर्य की एक प्रदक्षिणा करती है और एक अहोरात्र में अपनी धुरी पर घूमती है। इस वैज्ञानिक सत्य को भारत में आज के २६०० वर्ष पूर्व बुद्ध भगवान् ने और १५०० वर्ष पूर्व आर्यभट ने बताया था पर रुढ़िवाद की प्रबलता ने उसे दबोच लिया। प्राचीन आर्य पृथ्वी को वसुन्धरा कहते थे। आज के विज्ञान ने पृथ्वी के भीतर स्थित अनेक वसुओं (द्रव्यों) का पता लगाया है।

हमारे सर्वश्रेष्ठ पुराण भागवत का भूगोल-खगोल

कहा जाता है कि महाभारत, अठारह पुराण और ब्रह्मसूत्र एक ही व्यासदेव की रचनाएँ हैं परन्तु यह असंभव है क्योंकि जो देव पुराण में सब देवों का स्वामी, पिता और महान् है वही दूसरे में किसी एक का दास, पुत्र और तुच्छ है तथा पुराणों में अनेक विषयों में अत्यधिक मतभेद हैं इसलिए वे एक व्यास की रचना नहीं हो सकते। महर्षि पंतजलि ने अपने योगशास्त्र में ज्योतिष के विषय में लिखा है कि सूर्य में संयम करने से सब भुवनों का, चन्द्रमा में संयम करने से तारों और ग्रहों का तथा ध्रुव में संयम करने से ध्रुवादिकों की गति का बोध हो जाता है-भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ३। २६, चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानं ३।२७, ध्रुवे तद्गतिज्ञानं ३। २८ अतः व्यास जी सदृश महान् योगी वह भूगोल और खगोल कभी नहीं लिख सकते जो महाभारत और पुराणों में लिखा है। पुराणों के, राशि और वार आदि सम्बन्धी वर्णन उनके नवीनत्व को और भी स्पष्ट कर देते हैं। पुराणों में कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण और लोकहितावह बातें भी लिखी हैं। संभव है, वे व्यासदेव की हों। खेद है कि हमारे देश में इधर तीन सहस्र वर्षों में बुद्ध के अतिरिक्त कोई ऐसा योगी पैदा नहीं हुआ जिसने पंतजलि के कथनों को प्रत्यक्ष कर दिखाया हो। उससे अधिक कष्ट का विषय यह है कि पतंजलि के योगसूत्र के व्यास भाष्य में पुराणों वाला वही झूठा भूगोल-खगोल वर्णित है।

भागवत (१।४) में लिखा है कि व्यास जी ने वेदों की संहिताएँ तो बना दीं पर उनमें शूद्रों और नारियों आदि को अधिकार नहीं था इसलिए उनके उद्धार के लिए महाभारत लिखा, अन्य पुराण लिखे, फिर भी उनका हृदय सन्तुष्ट नहीं हुआ। वे चिन्तित होकर सरस्वती के तट पर बैठे सोच रहे थे कि मेरा काम अधूरा है। तब तक वहाँ नारद जी आ गये। उन्होंने कहा कि आप ने धर्मादि पुरुषार्थों का निरूपण तो कर दिया पर कृष्ण की लीला नहीं लिखी अतः पिछला सब कौवा का काँव काँव है। तब वे भागवत पुराण लिखने बैठे और उसे लिख कर प्रसन्न एवं पूर्णकाम हो गये। उन्होंने इसमें लिखा है कि जैसे नदियों में गंगा, देवों में विष्णु और विष्णु के दासों में शिव सबसे बड़े हैं उसी प्रकार यह सबसे उत्तम ग्रन्थ है। इसमें असत्य और कपट से हीन धर्म का वर्णन है, त्रितापनाशक कल्याणप्रद ज्ञान का संग्रह है और वेदों का सारांश है। सत्यलोक में बैठे ब्रह्मा जी ने एक बार तराजू के एक पलड़े पर भागवत को और दूसरे पर मुक्ति और ज्ञान के अन्य श्रेष्ठ साधनों को रखा तो भागवत भारी (महान्) सिद्ध हो गया और दूसरे ऊपर टँग गये।

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्॥
एवं प्रवृत्तस्य तदा नातुष्यद्धृदयं ततः।
वितर्कयन् विविक्तस्थः सरस्वत्यास्तटे शुचौ।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा....॥ (१। ५। १०)
निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा॥ (१२।१३।१६)
सत्यलोके तुलां बध्वाऽतोलयत् साधनान्यजः।
लघून्यन्यानि जातानि गौरवेऽभूदिदं महत्॥
वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।

अन्य शास्त्र और पुराण भ्रम पैदा करते हैं, उन्हें सुनना व्यर्थ है किन्तु यह ज्ञान और मुक्ति का दाता होने से गरज रहा है। एक सहस्त्र अश्वमेघ और अन्य सैकड़ों यज्ञ इसके सामने तुच्छ हैं। इसका आधा या चौथाई श्लोक सुन लेने से अनेक यज्ञों के फल मिल जाते हैं। मन की शुद्धि के लिए संसार में इससे महान् अन्य कोई साधन नहीं है। दिन रात पापों में डूबे, क्रोधी, कुटिल, कामी, मिथ्याभाषी, परधनहारी, परस्त्रीगामी, शराबी, पिशाच की भाँति निर्दय, हिंसक और महालोभी इसे सुनने से निष्पाप हो जाते हैं। इसके सामने गंगा, गया; काशी और प्रयागादि सारे तीर्थ तुच्छ हैं। इस बात में सन्देह करने वाले पापी हैं। ब्रह्मादि देव कहते हैं कि जिन्होंने भागवत की पोथी नहीं सुनीं वे चाण्डाल हैं, गधे हैं, पापी हैं, नरपशु हैं, मुर्दे हैं, पृथ्वी पर भार हैं, अपना जन्म व्यर्थ गँवा रहे हैं और उन्हें धिक्कार है।

अश्वमेधसहस्त्राणि वाजपेयशतानि च।
शुकशास्त्रकथायास्तु कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः।
एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति॥
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा पठेद् भागवतं तु यः।
नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥
एतस्मादपरं किंचिन् मनःशुद्ध्यै न विद्यते।
श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा॥
श्रीमद्भागवताख्योयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि॥

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररताः कुमार्गगाः।
क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्तिते॥
पञ्चोग्रपापाश्छलशाठ्यकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये।
ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते॥
जीवच्छवो निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथावचनं न किंचित्।
धिक् तं नरं पशुसमं भुवि भाररूपं एवं वदन्ति दिवि देवसरोजमुख्याः॥

परन्तु सत्य यह है कि इस ग्रन्थ के लेखक व्यास नहीं हैं क्योंकि (१) इसमें व्यास और व्यासपुत्र शुकदेव की वन्दना है। (२) उसमें उन राशियों का वर्णन है जो व्यास के समय भारत में प्रचलित नहीं थीं। (३) व्यास जी स्वयं अपने मुख से यह नहीं कह सकते कि मैं ईश्वर का अवतार हूँ, सर्वज्ञ हूँ...आदि। अन्य भी कारण हैं। इस पर व्यास का नाम उसी प्रकार बलपुर्वक चिपकाया गया है जैसे अन्य अनेक ग्रन्थों पर वाल्मीकि, मनु, पराशर, गर्ग, सूर्य, मृगु, रावण आदि के नाम लिख दिये गये हैं। यह पुराण, पुराणों में सर्वश्रेष्ठ होने पर भी पूज्य है या नहीं, इसके परीक्षण के अनेक स्थल हैं। उनमें से एक भूगोल–खगोल यहाँ लिखा जा रहा है।

नाग, कच्छप, वराह, दिग्गज

पुराणों का कथन है कि पृथ्वी को यदि अनेक देवों ने सँभाल कर रखा न होता तो वह पाताल में जाकर अथवा पानी में डूब कर नष्ट हो गयी होती। उन देवों में वास्तुपुरुष का विशिष्ट स्थान है (उसकी कथा आगे वास्तु प्रकरण में पढ़ें) उसके अतिरिक्त शेषनाग, कच्छप, वराह और दिग्गज हैं। गृहारंभ में गृह की स्थिरता और कुशलता के लिए इन सब की पूजा की जाती है। वराह की उत्पत्ति की परस्पर–विरुद्ध कई कथाएँ हैं। मत्स्यपुराण (अध्याय २४८) का कथन है कि यह पूरा ब्रह्माण्ड सुवर्ण का है। पहले पहल इसके ऊपरी भाग से जो जल गिरा वह सोने का समेरु पर्वत हो गया। पृथ्वी को उसका और अन्य पर्वतों का भार सहन नहीं हुआ तो वह नीचे गिरने लगी। उसने विष्णु की प्रार्थना की तो वे दो सौ योजन ऊँचा वराह बनकर समुद्र में डूबी पृथ्वी को रसातल से उठा ले आये।

तत्र यत् सलिलं स्कन्नं ततोऽभूत् कांचनो गिरिः।
पर्वतैर्बहुभिः पृथ्वी विषमा व्यथिताऽभवत्॥

उसके विपरीत श्रीमद्भागवत् (३।१३) का कथन है कि पृथ्वी पानी में डूब कर रसातल चली गयी थी। ब्रह्मा जी उसे लाने की चिन्ता में थे, तब तक उनकी नाक से एक नन्हा सा वराह निकल पड़ा और वह थोड़ी ही देर में पर्वताकार हो गया। वह पहले आकाश में उड़ कर मेघों को तोड़ने लगा और बाद में उसने जल में डूबी पृथ्वी को रसातल से लाकर उसकी स्थापना जल के ऊपर कर दी। तभी से वह जल पर तैर रही है। वह वराह भगवान का अवतार है और उसीने हिरण्यकशिपु के भाई हिरण्याक्ष का वध किया था। वह पृथ्वी शेषनाग के शिरों पर है, वे कछुए के ऊपर हैं और कछुवा वराह की पीठ पर है। सामान्य इतिहास यही है पर श्री भास्कराचार्य की आत्मा इसे नहीं स्वीकार करती थी इसलिए उन्होंने कहा कि यह सब पुराणों का मत है। एतत् सर्वं पुराणाश्रितम्। उन्होंने इसका खण्डन करते हुए लिखा है कि पृथ्वी को धारण करने वाला यदि कोई देहधारी है तो उसको किसने धारण किया है? पुनः उस धारक को किसने धारण किया है? अन्त वाला यदि अपनी शक्ति से आकाश में निराधार स्थित है तो यह क्यों न मान लिया जाय कि पृथ्वी आकाश में निराधार लटकी है? वह तो अष्टमूर्ति भगवान् शंकर की एक मूर्ति है।

मूर्तो धर्ता चेद् धरित्र्यास्ततोन्यस्तस्याप्यन्यो चैवमत्रानवस्था।
अन्ते कल्प्या चेत् स्वशक्तिः किमाद्ये किं नो भूमेः साष्टमूर्तेश्च मूर्तिः॥

गजराजों की जो कथा वाल्मीकि रामायण (१।३०) में है उसका सारांश यह है कि एक बार देवराज इन्द्र ने राजा सगर के अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा चुरा लिया। वहाँ दिव्य दृष्टि वाले कई सहस्र मुनि, अनेक नृप और अयोध्या के लाखों मनुष्य बैठे थे पर यज्ञस्थल से जाते घोड़े को किसी ने नहीं देखा। यद्यपि कोई चोर घोड़ा चुरा कर भूमि में नहीं गाड़ता पर न जाने क्यों, सगर के पुत्र घोड़ा पाने के लिए भूमि खोदने लगे। उस समय उन्होंने पूर्व में धरती के नीचे विरुपाक्ष नामक पर्वताकार उस दिग्गज को देखा जिसने पर्वतों, वनों और नदियों आदि से युत पूरी धरती सिर पर उठायी थी। वह जब थक कर सिर हिलाता है तो भूकम्प आ जाता है। इसी प्रकार उन्होंने दक्षिण में, महापद्म, पश्चिम में सौमनस और उत्तर में भद्र नामक दिग्गज को देखा। पता नहीं क्यों, यहाँ चार ही दिग्गजों का वर्णन है जब कि वे आठ माने जाते हैं। ज्योतिष शास्त्र में गज का अर्थ आठ होता है।

खन्यमाने ततस्तस्मिन् ददृशुः पर्वतोपमम्।
दिशागजं विरूपाक्षं धारयन्तं महीतलम्॥ १३॥
सपर्वतवनां कृत्स्नां पृथिवीं रघुनन्दन।
धारयामास शिरसा विरूपाक्षो महागजः॥ १४॥
खेदाच्चालयते शीर्षं भूमिकम्पस्तदा भवेत्।
दक्षिणस्यामपि दिशि ददृशुस्ते महागजम्॥ १७॥
महापद्मं महात्मानं सुमहत्पर्वतोपमम्।
शिरसा धारयन्तं गां विस्मयं जग्मुरुत्तमम्॥ १८॥
पश्चिमायामपि दिशि महान्तमचलोपमम्।
दिशागजं सौमनसं ददृशुस्ते महाबलाः॥ २०॥
उत्तरस्यां रघुश्रेष्ठ ददृशुर्हिमपाण्डुरम्।
भद्रं भद्रेण वपुषा धारयन्तं महीमिमाम्॥ २२॥

पुराणों में पृथ्वी नारंगी या गेंद की भाँति गोल नहीं बल्कि कुंभार के चाके की भाँति चपटी है। इसमें भी कई मत हैं। उसे कुछ पुराण दर्पण की भाँति चपटी, कुछ कच्छप की पीठ सरीखी और कुछ कमलपुष्पवत् मानते हैं।

आदर्शोदरसन्निभा भगवती विश्वंभरा कीर्तिता।
कैश्चित् कैश्चन कूर्मपृष्ठसदृशी कैश्चित् सरोजाकृतिः॥

भागवत के मत में पृथ्वी कुंभकार के चाक की भाँति चपटी है, गोल है, उसके बीचों बीच जम्बूद्वीप है और उसके बीच में एक लाख योजन ऊँचा सोने का सुमेरु पर्वत है। वह शिखर पर ३२००० योजन चौड़ा, मूल में १६००० योजन विस्तृत और पृथ्वी के भीतर १६००० योजन घुसा है। मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद नामक चार पर्वत उसके आधार हैं। वे सब ११००० योजन ऊँचे और उतने ही विस्तृत हैं। उन पर ११०० योजन ऊँचे, ११०० योजन विस्तृत और ११०० योजन मोटे आम, जामुन, कदम्ब और वट के वृक्ष हैं। आम के वृक्ष से पर्वतशिखर सदृश विशाल एवं अमृत से मीठे फल गिरते हैं और उनसे लाल रंग का अति सुगन्धित रस बहने लगता है। पूर्वदिशा में उसकी अरुणोदा नदी बहती है और वह इलावृत्त के पूर्वी भाग के सिंचाई के काम आती है। पार्वती जी की दासियाँ उसको पीती हैं अतः उनके शरीर से छुई हवा चारों दिशाओं की दस दस योजन भूमि को और आकाश को सुगन्धित कर देती है। इसी प्रकार ११०० योजन ऊँचे जामुन के वृक्ष से हाथी सदृश

बड़े-बड़े और काले-काले तथा गुठली से विहीन फल गिरते हैं। उनके रस से दक्षिण में जम्बूनदी बहती है। चूँकि जामुन के रस से लगातार भीगने पर मिट्टी सोना हो जाती है इसलिए उसके दोनों किनारे सोने के हैं। देवियाँ उससे गहने बनवाती हैं। सुपार्श्व गिरि के कदम्ब वृक्ष से मधु की पाँच विशाल धाराएँ निकल कर इलावृत्त के पश्चिमी भाग को सींचती और सुवासित करती हैं। वे सब पाँच पोरसा गहरी हैं। जो इनका मधु पीते हैं उनकी साँस से निकला वायु चारों और सौ-सौ योजन वायुमण्डल को सुगन्धित कर देता है। कुमुद पर्वत के वटवृक्ष की जटाओं से अनेक नद निकलते हैं। उनमें दूध, दही, घी, गुड़, मधु आदि की धाराएँ ही नहीं बहती, अन्न, वस्त्र, आभूषण शय्या आदि भी भरे रहते हैं। वहाँ सारे इच्छित भोग मिल जाते हैं। उनके कारण वहाँ की प्रजा के शरीर में झुर्रियाँ नहीं पड़तीं, बुढ़ापा नहीं आता, बाल नहीं पकते, थकावट नहीं आती, शरीर कभी कान्तिहीन और कुरूप नहीं होता तथा रोग नहीं आते। मेरु के चारों ओर अठारह सहस्र योजन लम्बे और दो सहस्र योजन ऊँचे २० पर्वत हैं। उनके अतिरिक्त आठ अन्य पर्वत हैं जिनमें दक्षिण ओर कैलास है। इनसे घिरा सुवर्णपर्वत मेरु अग्नि सा जगमगाता है। उस पर दस सहस्र योजन लम्बी ब्रह्मा जी की नगरी है और उसके चारों ओर आठ लोकपालों की स्वर्ण की नगरियाँ हैं। इलावृत्त में केवल शिव पुरुष हैं और शेष सब स्त्रियाँ हैं। वहाँ पहुँचने पर पुरुष स्त्री हो जाते हैं। वहाँ पार्वती और उनके अरबों सखीसमूहों से शिव सदा घिरे रहते हैं और विष्णु का भजन किया करते हैं।

इलावृत्ते भगवान् भव एक एव पुमान्। यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावः।
स्त्रीगणार्बुदसहस्त्रैरवरुध्यमानो गृणन् भजे त्वां (भागवत ५।१७।१६)

(यह वर्णन शून्य अक्षांश के निकट वाले प्रदेश का है। आज कल यहाँ एक लाख योजन ऊँचा कोई सोने या पत्थर का पर्वत नहीं है। यह टुण्ड्राप्रदेश कहा जाता है। यहाँ वर्ष में कम से कम आठ मास तक तापमान हिमांक से नीचे रहता है, वर्ष भर तुषारपात होता है, छ-छ मास के दिन-रात होते हैं, आम, जामुन आदि के वृक्ष कभी उग ही नहीं सकते लोग पशु की खाल के वस्त्र पहनते हैं, मछली खाते हैं, हड्डी का भाला बनाते हैं, बिना पहिये की गाड़ी को कुत्ते खींचते हैं और इनका घर बर्फ की सिल्लियों से बनता है। आज कल इन्हें एस्कीमो कहा जाता है। ये सील मछली की चर्बी जलाकर घरों को गरम करते हैं और शून्य अक्षांश वाला स्थान बिलकुल निर्जन है)।

इलावृत्त के चारों ओर अन्य आठ वर्ष (खण्ड) हैं। भद्राश्वखण्ड वाले हयग्रीव की, हरिवर्ष वाले नरसिंह की, केतु-माल वाले हृषीकेश की, रम्यक वाले मत्स्यावतार की, हिरण्मय वाले कच्छप की, कुरुवर्ष वाले वराह की और किम्पुरुष वाले सीताराम की पूजा करते हैं। इनमें भारत कर्मक्षेत्र है और शेष आठ पृथ्वी के स्वर्ग हैं। उनमें देव रहते हैं, दस सहस्र वर्ष जीते

जम्बूद्वीप
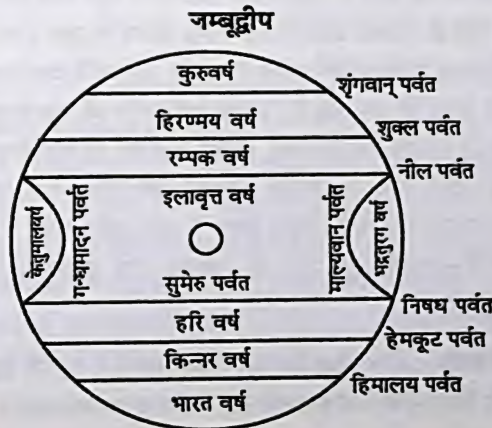
हैं, सदा युवक और प्रसन्न रहते हैं, वज्रदेह होते हैं, उनमें दस सहस्त्र हाथियों का बल होता है, वे दीर्घकाल तक संभोग करते हैं और उनकी पत्नियाँ पतियों की मृत्यु के एक वर्ष पूर्व केवल एक बार गर्भवती होती हैं। वहाँ सदा त्रेतायुग और वसन्त रहता है। वृक्षशाखाएँ पुष्पों और फलों से लदी रहती हैं, शीतल मन्द सुगन्ध पवन बहता रहता है, सरोवरों में कमल खिले रहते हैं और देवगण सुन्दरियों के साथ स्वच्छन्द विहार करते हैं। वहाँ विष्णु भगवान अनेक रूप धारण कर सदा विराजमान रहते हैं।

भागवत (५।२४) में लिखा है कि जैसे चूहे धरती के भीतर बिल में रहते हैं उसी प्रकार दानव, दैत्य आदि धरती के भीतर अतल, वितल आदि सात लोकों में रहते हैं। वे सातों दस-दस सहस्त्र योजनों पर स्थित हैं। वे लोक स्वर्ग से अच्छे हैं और उनके विभवपूर्ण मणिमय भवनों में, उद्यानों में, जलाशयों में और क्रीड़ास्थलों में लोग विलास करते हैं। वहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं जाता। नागों के मस्तकों की मणियों से प्रकाश मिलता है। वहाँ के निवासियों के शरीर में झुर्री नहीं पड़ती, वृद्धावस्था नहीं आती, केश नहीं पकते और शरीर कभी कान्तिहीन नहीं होता। अतल लोक में स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली (अर्थात् व्यभिचारिणी) नाम की नारियाँ रहती हैं। वे पुरुषों को वह हाटक नामक रस पिला देती हैं जिसे पीने पर उनमें दस सहस्त्र हाथियों का वल हो जाता है। तब वे उनकी मोहक चितवन, मुस्कान, आलाप, आलिंगन और संभोग आदि का आनन्द लूटते हैं। उसके नीचे वितल लोक में अपने भूतगणों और पार्वती के साथ हाटकेश्वर शिव रहते हैं। शिव और पार्वती के तेज से वहाँ हाटकी (सोने की) नदी बहती है, वह सोना उगलती है और स्त्रियाँ उससे आभूषण बनवाती हैं। सुतल में राजा बलि का, तलातल में मय का महातल में सर्पों का, रसातल में दैत्यों और पाताल में वासुकि आदि अनेक नागों का राज्य है। उसके ३००० योजन नीचे एक सहस्त्र मस्तकों वाले भगवान् अनन्त नाग हैं। पृथ्वी उनके एक सिर पर टँगी है। वे नीलाम्बर, सोने का कुण्डल और वैजयन्ती माला आदि पहनते हैं। नागों की युवती कन्याएँ उनके शरीर पर जब अरगजा, चन्दन आदि का लेप करती हैं तव वे कामातुर हो जाते हैं।

शुकदेव जी परीक्षित को बताते हैं कि पितरगण दक्षिण दिशा में पृथ्वी के नीचे और जल के ऊपर रहते हैं तथा वहीं सूर्य के पुत्र यमराज का लोक है। वे वहाँ अपने भयंकर दूतों के साथ रहते हैं और रौरव, कुंभीपाक, अन्धकूप, सूकरमुख, सूचीमुख, पूयोद, असिपत्रवन, लालाभक्ष आदि सहस्त्रों भीषण नरकों की व्यवस्था करते हैं। सारांश यह कि सारे देव लोक, पितृलोक, स्वर्ग और नरक इसी धरती पर हैं।

भागवत के अनुसार जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है और वह उतने ही क्षेत्रफल वाले लवणसागर से घिरा है। लवणसागर प्लक्षद्वीप से घिरा है और वह जम्बूद्वीप का दो गुना है। जम्बूद्वीप वाली जामुन सा ही उसमें एक सोने का पकड़ीवृक्ष है और यहाँ के मनुष्य सहस्त्र वर्ष जीते हैं। इसी प्रकार सात सागर और सात द्वीप एक दूसरे से घिरे हैं। ये सातों सागर राजा प्रियव्रत के रथ के पहिये से खुदे हैं। सबके अन्त में ६४ लाख योजन विस्तृत पुष्कर द्वीप है। इसके बीच में मानसोत्तर पर्वत है और वह पुष्कर द्वीप को दो भागों में विभाजित करता है। उसके आगे मीठे जल का सागर है। सुमेरु से मानसोत्तर पर्वत तक जितनी भूमि है उतनी ही मीठे सागर के उस पार है। उसके आगे दर्पण सी सुवर्ण भूमि है और उसके आगे लोकालोक पर्वत है। वह इतना ऊँचा और चौड़ा है कि ग्रहों को ही नहीं, ध्रुवादि तारों की भी किरणें उसके उस पार नहीं जा पातीं। प्रकाश लोकालोक के इस पार ही रहता है। तीनों लोक ५० करोड़ योजन हैं और लोकालोक उन सब का चतुर्थांश है। उसकी चार दिशाओं में विधाता ने चार गजराज स्थापित किये हैं। किस सागर के आगे कौन सागर है, इस विषय में पुराणों में मतभेद है। भास्कराचार्य के अनुसार क्रम यह है—लवण, दूध दही, घी, इक्षुरस, मद्य, स्वादुजल। भागवत का क्रम यह है—लवण, इक्षुरस, सुरा, घी, दूध, दही, स्वादुजल।

योजनमान—पृथ्वी का व्यास ८००० मील है। उसे भास्कराचार्य ने १५८१ योजन और भागवत ने करोड़ों योजन कहा है इसलिए आजकल योजन के भिन्न-भिन्न मान बताये जाते हैं किन्तु भास्कराचार्य ने स्पष्ट लिख दिया है कि २४ अंगुल

का हाथ, चार हाथ का दण्ड, २००० दण्ड का कोस और चार कोस का योजन होता है। एक मील में १७६० गज और ३५२० हाथ होते हैं अर्थात् १०० मील में ११ योजन होते है अतः योजनमान विवादास्पद नहीं है।

भागवत (४। २२) में जो खगोल का वर्णन है उसके अनुसार शुक्र से दो लाख योजन ऊपर बुध है, सूर्य से एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा है, और पाँच ग्रह नक्षत्रों से ऊपर हैं। पृथ्वी के भीतर सात लोक हैं, प्रत्येक में दस सहस्त्र योजन का अन्तर है, उसी में शिव रहते हैं, उधर ही नरक हैं और ये सब शेषनाग एवं दिग्गजों के सिर पर हैं। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि एक व्यास के रचित पुराणों में ग्रहों के व्यास, पृथ्वी से दूरी और कक्षाक्रम आदि में घोर मतभेद है। देखिए अग्निपुराण और लिंगपुराण आदि। यह है पुराणों की महत्ता और भागवत की श्रेष्ठता।

भूगोल (भागवत का) खगोल

द्वीप–सागर	लाख योजन	ग्रहादि और बीच की दूरी के योजन		
जम्बूद्वीप	१	ध्रुव	शुक्र	पृथ्वी पृष्ठ
क्षारसागर	१	१३ लाख	२ लाख	१००००
प्लक्षद्वीप	२	सप्तर्षि	नक्षत्र	अतल
इक्षुसागर	२	११ लाख	३ लाख	१००००
शाल्मलीद्वीप	४	शनि	चन्द्रमा	वितल
सुरासागर	४	२ लाख	१ लाख	१००००
कुशद्वीप	८	गुरु	सूर्य	सुतल
घीसागर	८	२ लाख	१० सहस्त्र	१००००
क्रौंचद्वीप	१६	मंगल	राहु	तलातल
क्षीरसागर	१६	२ लाख	१० सहस्त्र	१००००
शाकद्वीप	३२	बुध	१००००	महानल
दधिसागर	३२	२ लाख	सिद्धचारण	२००००
पुष्करद्वीप	६४	शुक्र	१००००	पाताल
स्वादुसागर	६४	२ लाख	पृथ्वीपृष्ठ	नरक

इस भूगोल–खगोल के वर्णन में सर्वत्र कल्पनाओं का जाल बिछा है। इसे पढ़ कर स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि जो इस पृथ्वी को नहीं जान सका वह दूरस्थित ग्रहों को तारों को, धूमकेतुओं को और उनके प्रभावों को कैसे जान पायेगा? हम उसके फलादेश और उपदेश पर कैसे विश्वास करें? श्री भास्कराचार्य और आचार्य लल्ल ने इसके विरोध में लिखा है कि यदि धरणी समतल है और सूर्य सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करता है तो वह सबको एक साथ दिखाई क्यों नहीं देता? यदि सोने का सुमेरु पर्वत रात्रि होने का कारण है तो वह हमें सूर्यास्त के समय दिखाई क्यों नहीं देता? क्या सूर्य एक पर्वत की ओट में १२ घंटे छिपा रह सकता है? सुमेरु पर्वत उत्तर दिशा में है तो सूर्य हमें सर्वदा उत्तर की ओर ही क्यों नहीं दीखता? उसका दक्षिणायन क्यों होता है? हमें दूर के वृक्ष पूरे–पूरे दिखाई क्यों नहीं देते? नाव का पहले ऊपरी भाग ही क्यों दीखता है? लोकालोक पर्वत तारों से ऊँचा है? वह है कहाँ?

यदि सपा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः।
उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन् किमु नैररमैररिव नेक्ष्यते॥
यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः स न दृश्यते।
उदगयं ननु मेरुरथांशुमान् कथमुदेति च दक्षिणभागके॥ (भास्कर)
समता यदि विद्यते भुवस्तरवस्तालनिभा बहूच्छ्रयाः।
न कथं हि दृष्टिगोचरा नुरहोयान्ति सुदूरसंस्थिताः॥ (लल्ल)

क्या सूर्य लोकालोक पर्वत पर सुमेरु की प्रदक्षिणा करता है? क्या अनेक पर्वतों की ऊँचाई एक हो सकती है? क्या शों का क्षेत्रफल एक हो सकता है? क्या अनेक वृक्षों की मोटाई समान हो सकती है? यहाँ भारत से भिन्न देशों को कहा है परन्तु भागवत आदि अनेक पुराणों में लिखा है कि स्वर्ग के देव भारत में जन्म लेने के लिए तरसते हैं। ार्य ने स्वयं भी पुराणों के अनुसार उत्तर ध्रुव से भिन्न देशों को नरक कहा है।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
वसन्ति मेरौ सुरसिद्धसंघा और्वे च सर्वे नरकाः सदैत्याः॥

इस स्थिति में हम किस पुराण के कथन को सत्य मानें? यहाँ शंकर के कई निवास स्थानों का वर्णन है। कैलासादि नसे भिन्न हैं तो साकार शंकर कहाँ रहते हैं? क्या धरती के भीतर के बिलों में उद्यानों, सरोवरों, स्वर्गोपम–देशों और ी पुरी की सत्ता संभव है?

अग्नि और सुमेरु पर्वत का जन्म

एक बार ब्रह्मा और शिव, विष्णु के दर्शनार्थ श्वेतद्वीप गये। वहाँ विष्णु के शरीर से उत्पन्न नाचती हुई युवतियों के और स्तनादिकों को देख कर ब्रह्मा का वीर्यपात हो गया। उन्होंने उसे वरुण के गृहक्षीरसागर में डाला तो उससे एक बालक उत्पन्न हुआ और धीरे–धीरे ब्रह्मा के पास आ गया। वरुण छीनने लगे तो विष्णु ने निर्णय सुनाया कि वीर्य और ननुसार यह बालक दोनों का है। वही अग्नि है। शिव की प्रार्थना पर विष्णु ने उसे दाहिका शक्ति दी। इसके पूर्व संसार नहीं था।

श्वेतद्वीपं ययुर्विष्णुं द्रष्टुं ब्रह्मशिवादयः।
विष्णुगात्रोद्भवाः कन्यास्तत्रासन् गीततत्पराः॥
तासां तु विपुलां श्रोणिं कठिनं कुचमण्डलम्।
सस्मितं मुखपद्मं च दृष्ट्वाभूत् कामुको विधिः॥
चच्छाद पतितं वीर्यं लज्जया वाससा विभुः।
क्षीरोदे प्रेषयामास संगीते विरते च तत्॥
उत्थितश्च जलाद् बालः प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा।
विष्णुश्च दाहिकां शक्तिं ददौ तस्मै शिवाज्ञया॥

एक बार स्वर्ग की एक नृत्यसभा में रंभा की कटि देख कर अग्नि का वीर्यपात हो गया और उससे एक लाख योजन पर्वत बन गया। वह उठा कर उतरी ध्रुव पर रख दिया गया।

विलोक्य रंभासुश्रोणि सकामोऽभूत् हुताशनः।
पपात वीर्यं चच्छाद स सुमेरुर्बभूव ह॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखण्ड अध्याय १२६)

समुद्रों को खोदने की कथाएँ

भागवत एवं अन्य पुराणों के अनुसार समुद्रों को खोदने और धरती पर गंगा को ले आने की परस्पर विरुद्ध अनेक कथाएँ हैं। भागवत के पंचमस्कन्ध के प्रारम्भ में लिखा है कि राजा प्रियव्रत विरागी थे। नारद के आग्रह पर उन्होंने विवाह किया तो पहली पत्नी से दस और दूसरी से तीन पुत्र हुए। प्रियव्रत ने ग्यारह अरब वर्षों तक राज्य किया। एक बार उन्होंने देखा कि सूर्य सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं तो धरती के आधे भाग में दिन रहता है पर आधे में अँधेरा हो जाता है। इससे दुखी होकर उन्होंने सूर्यसदृश ज्योतिर्मय रथ पर सवार होकर सुमेरु की सात प्रदक्षिणा की तो उनके भारी रथ के पहियों से पृथ्वी पर सात सागर खुद गये और बीच-बीच में सात द्वीप बन गये। इसके विपरीत इसी पोथी के ९।८ का कथन है कि देवराज इन्द्र ने राजा सागर के अश्वमेघ का घोड़ा चुरा लिया। सगर के पुत्रों ने उसे ढूँढ़ते हुए सारी धरती खोद डाली और उससे सात सागर तैयार हो गये। इसी से समुद्र को सागर कहते हैं। इसके विपरीत व्यास के ही लिखित ब्रह्मवैवर्त पुराण (कृष्णजन्मखण्ड २) का कथन है कि कृष्ण की विरजा नाम की गोपी एक बार नदी हो गयी किन्तु कृष्ण को दुखी देख कर पुनः मानवी बन गयी और उसके बाद उसको सात पुत्र हुए। माता के शाप से वे ही बाद में एक दूसरे से दूने सात सागर बन गये।

उच्चै रुरोद श्रीकृष्णो विरजाभूद्यतो नदी।
दधार गर्भमीशस्य पश्चात् सर्वान् शशाप च॥
सप्तद्वीपे समुद्रास्ते सप्त तस्थुर्विभागशः।
कनिष्ठज्येष्ठपर्यन्तं द्विगुणं द्विगुणं मुने॥

शंकाएँ—(१) वेदों में बार-बार सौ वर्ष की आयु के लिए प्रार्थना है तो राजा की आयु अरबों वर्ष कैसे हो गयी और (२) इस वेदविरुद्ध बात का समर्थक भागवत वेद का सार कैसे हो गया? (३) क्या राजा ने सात बार मेरु की प्रदक्षिणा कर संसार से रात्रि समाप्त कर दी? (४) क्या रात्रि बुरी वस्तु है? (५) क्या सूर्य घोड़े पर घूमता है? (६) क्या कोई रथ सूर्य की गति से दौड़ सकता है? (७) पृथ्वी के ये सात गड्ढे दूध, दही, घी आदि से कैसे भर गये? (८) समुद्र की गहराई छ-सात मील तक है तो क्या रथ के पहिये इतना धँसे थे? (९) यदि हाँ तो सूर्य के साथ कैसे चल रहे थे? (१०) प्रियव्रत के रथ और घोड़ों की ऊँचाई कितनी थी? (११) क्या वे रथ और घोड़े बीच वाले पर्वतों को तोड़ते जा रहे थे? (१२) क्या इसके पूर्व सागर नहीं थे? नदियों का पानी कहाँ जाता था? (१३) प्रियव्रत से प्राचीन वेदों में सागरों का वर्णन क्यों है? (१४) क्या ये द्वीप और सागर वृत्ताकार हैं? (१५) रथ ने पूरे जम्बूद्वीप की प्रदक्षिणा की तो बीच में सागर कहाँ से आ गये? (१६) प्रियव्रत का रथ एक सागर बना कर दूसरी प्रदक्षिणा करने चला तो बीच में सागर क्यों नहीं बने? (१७) सब सागर एक में मिल क्यों नहीं गये? (१८) क्या सब द्वीप और सागर समानान्तर हैं? (१९) रथ सूर्य सा तेजस्वी था तो पृथ्वी के सब पदार्थ भस्म क्यों नहीं हो गये? (२०) इतिहास लेखक जीवित कैसे रह गये? सागर खोदने की कौन सी कथा सत्य है? (२१) सगर के पुत्रों ने इतनी विस्तृत और छ मील गहरी धरती खोदी तो मिट्टी कहाँ गयी (२२) वे समुद्र के बीच से मिट्टी लेकर पैदल चलने पर कितने वर्षों में किनारे आते थे? (२३) राजा सगर ने टिटिहिल से क्यों विवाह किया? (२४) गरुड़ पक्षी की भगिनी से मानव पुत्र कैसे उत्पन्न हो गये? (२५) चुराते समय वहाँ बैठे अगणित मनुष्यों ने घोड़े को देखा क्यों नहीं? (२६) क्या चोर घोड़े को भूमि में गाड़ते हैं? (२७) सागर के किनारे रहने वाले आस्ट्रेलिया, जापान, न्यूजीलैण्ड, वर्मा, इंगलैण्ड, अमरीका आदि सैकड़ों देशों के रहने वाले लोग सागर के निर्माता प्रियव्रत, सगर और विरजा आदि को क्यों नहीं जानते? (२८) लवणसागर नहीं सूखा तो

कैसे सूख गये? इस कथा में अनेक शंकाएँ हैं। सबसे बड़ी यह है कि
ग्रन्थ भागवत में इतना मतभेद कैसे हो गया? क्या भागवत के भी कई

आगमन की कथाएँ

ने बलि को छलने के लिए वामन से विराट् बन कर अपना पैर ऊपर
ायी। पता नहीं, वह छेद बन्द हो गया है या ब्रह्माण्ड के बाहर से अभी
नारायण की भुजा पर त्रिशूल चलाया तो तीन गंगाएँ पैदा हो गयीं। पता
ंगा को कश्यप ले आये हैं, (४) शिवपुराण में गोतम ले आये हैं (५)
ुसार सरस्वती के शाप से विष्णु की मानवी पत्नी गंगा नदी हो गयी।
ुद्र को भरने के लिए गंगा लायी गयी। (८) देवी भागवत के अनुसार
९) उसी ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि गंगा राधा-कृष्ण के शरीर से
ी के पसीने से पैदा हुई हैं।

पीढ़ी पूर्व के हरिश्चन्द्र गंगा के घाट पर पहरा देते थे। हरिश्चन्द्र के
न सब से प्राचीन वेद में गंगा का वर्णन है। भागवत के अनुसार गंगा
किनारे चलते-चलते सुमेरु पर्वत पर स्थित ब्रह्मपुरी तक पहुँच सकते
य पर आयी तो क्या वह एक पर्वत से कूद कर दूसरे पर आयी? भारत
उन दोनों स्थानों के बीच में सर्वत्र उसकी अखण्ड धारा दिखाई देती है
और हिमालय के बीच में वह दिखाई क्यों नहीं देती? भागवत के
ऊँचे ऊँचे पर्वत हैं और उन पर्वतों के बीच में पर्वतों से बहुत नीचे
पर नहीं गयी तो मैदान में आकर हिमालय पर कैसे चढ़ गयी? क्या
न्य विसंगतियाँ भी है (देखिए मेरी गंगाकथा)।

न का समुद्रमन्थन

नि के मूत्र से भरा है और कुछ का कथन है कि गंगा के आगमन के
्वी के लगभग तीन चतुर्थांश भाग पर फैले इस विशाल लवण-सागर
उत्पन्न १४ रत्नों की उत्पत्ति की पुराणों में परस्पर-विरुद्ध कई कथाएँ
चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, विष बाद में निकला किन्तु भागवत में इसके
चन्द्रमा समुद्र से उत्पन्न नहीं हुआ है। भागवत ८।५।३४ के अनुसार
ने इसी पृथ्वी पर स्थित सुमेरु पर्वत से ब्रह्मा को और कैलास से शिव
समुद्रमन्थन करा रहा हूँ।

मो हे देवा मम भाषितम्।
श्रेयो वः स्याद्यथा सुराः॥ ८।६।१८

हर दिशा में उड़ने लगा (दिशि दिश्युपर्यधो विसर्पत् ८।७।१९) तो

शिव उसे पी गये। उसके बाद घोड़ा, हाथी, कल्पवृक्ष और करोड़ों अप्सराओं की उत्पत्ति हुई। अप्सराओं के वस्त्र बड़े सुन्दर थे। पानी से निकलने पर भी भीगे नहीं थे। उनके गले में सोने के हार थे। अपनी मनोहारी गति और विलासी कटाक्ष से सबका मन मोह रही थीं। उनके बाद वे लक्ष्मी निकलीं जो अपने यौवन और सौन्दर्य से सबको पागल बना रही थीं। उनके गालों पर कुण्डल लटक रहे थे, कमर वहुत पतली थी, स्तन सटे थे, समान थे और चन्दनकेसर से लिप्त थे। वे मुस्करा रही थीं, उनका उदर मन्द था और पायजेब बज रहे थे।

ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः।
रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः॥ ८। ८। ७
चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं सव्रीडहासं दधती सुशोभनम्।
स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं निरन्तरं चन्दनकुंकुमोक्षितम्॥ ८। ८। १८

लक्ष्मी जी अपने स्तनों को खोल कर चल रही थीं क्योंकि वे यदि आँचल और चादर से ढँके होते तो भागवतकार उन पर पोते चन्दन–केसर को निहार न पाते और वे सटे हैं तथा समान हैं, इस बात को जान न पाते। पानी में डूबी लक्ष्मी के स्तनों का चन्दन–केसर धुला नहीं। उसमें कुछ मिलाया रहा होगा। वेद के मत में आकाश ही सागर है, सूर्य ही विष्णु हैं, उनकी किरणों की सम्पत्ति और शोभा ही उनकी श्री और लक्ष्मी नाम की दो पत्नियाँ है और उनको स्तन, कटि, उदर, कुण्डल आदि नहीं थे।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपम्॥

लक्ष्मी और वारुणी के वाद वैद्यराज धन्वन्तरि जी अमृत कलश लेकर प्रकट हुए। पानी में डुबे रहने पर उन्हें साँस लेने में कभी कष्ट नहीं होता था। विष्णु ने उसे ले लिया और मोहिनी नारी का रूप धारण कर सारा अमृत देवों को पिला दिया। सात्त्विकता की साक्षात् मूर्ति और योगेश्वर कृष्ण के भक्त भागवत के लेखक वहाँ वैठे थे। मोहिनी के विषय में वे लिखते हैं कि उसके अंग आकर्षक थे, यौवन के कारण स्तन उभरे थे, उनके भार से कमर पतली हो गयी थी, उदर कृश हो गया था, नितम्वों पर करधनी चमक रही थी, भौंरे उन पर टूट पड़ते थे और वह अपने हावभाव, मुस्कान, तिरक्षी चितवन आदि से सबकी कामवासना उद्दीप्त कर रही थीं।

नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम्।
भ्रूविलासावलोकैश्च काममुद्दीपयन् मुहुः ८। ८। ४६

मोहिनी की साड़ी सरकी तो उसे देखकर शिव का वीर्यपात हुआ, उससे सोना चाँदी की खानें वनीं और थोड़ा सा वीर्य लाखों वर्ष बाद अंजना के कान में डाला गया तो हनुमान जी पैदा हो गये। भागवत के अनुसार चन्द्रमा समुद्रमन्थन से पहले था और अमृत वितरण के समय विष्णु को सूर्य–चन्द्र ने ही बताया कि यह राहु है। इसी से वह विष्णु को नहीं बल्कि सूर्यचन्द्र को ग्रसता है। विष्णु ने उनकी रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र की नियुक्ति कर दी है इसलिए ग्रहण के समय सूर्य–चन्द्र के पास राहु थोड़ी ही देर तक रह पाता है। ग्रसता है, उगलता है और डर कर चल देता है। भागवतकार की दिव्यदृष्टि के अनुसार सूर्य से चन्द्रमा वड़ा है और चन्द्रमा से राहु वड़ा है। सूर्य, चन्द्र और राहु के मण्डल क्रमशः १०, १२ और १३ सहस्र योजन हैं। राहु बड़ा न होता तो सूर्य–चन्द्र को कैसे निगल पाता। चन्द्रमा सूर्य से एक लाख योजन ऊपर है तथा राहु के नीचे सिद्धलोक है और उसके नीचे भूत–प्रेतों का लोक यह आकाश है। अमृत के वाद समुद्र से अगणित अप्सराएँ निकलीं। भिन्न भिन्न ग्रन्थों में उनकी संख्याएँ विभिन्न हैं। वाल्मीकि रामायण (१।४५) का कथन है कि अप् (जल) से उत्पन्न होने के कारण ही वे अप्सरा कही जाती हैं। उनकी संख्या साठ करोड़ थी पर उनकी दासियाँ अगणित थीं।

अप्सु निर्मथनादेव रसात्तस्माद् वरस्त्रियः।
उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन्॥ ३३॥
षष्टिः कोट्योऽभवँस्तासामप्सराणां सुवर्चसाम्।
असंख्येयास्तु काकुत्स्थ यास्तासां परिचारिकाः॥ ३४॥

भागवत में लिखा है कि समुद्र से उत्पन्न सुरा, असुरों ने ले ली किन्तु वाल्मीकि रामायण (बालकण्ड अध्याय ४५) कथन है कि दैत्य सुरा को छूते ही नहीं और इसीलिए असुर कहे जाते हैं, सुरा एक अच्छा पेय है इसलिए सुरगण उसे न्नता से पीते हैं। वह वरुणदेव की कन्या है, वारुणी है।

दितेः पुत्रा न तां राम जगृहुर्वरुणात्मजाम्।
अदितेस्तु सुता वीर जगृहुस्तामनिन्दिताम्॥ ३७॥
असुरास्तेन दैतेयाः सुराश्चैवादितेः सुताः।
हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन् वारुणीग्रहणात् सुराः॥ ३८॥

शंकाएँ–(लवणसागर आज भी विद्यमान् है तो दूध, दही, मदिरा आदि के सागर समाप्त क्यों हो गये? (२) एक यास के लिखे ग्रन्थों में इतना मतभेद क्यों है? (३) व्यास जी एक ही बात अपने हर ग्रन्थ में क्यों लिखते हैं? (४) क्या ब्रह्मा की पुरी पृथ्वी पर ही है? यदि यह सत्य है तो सरस्वती और ब्रह्मा को ब्रह्मलोक और सत्यलोक से बुलाने की कथाएँ क्यों लिखी ? (५) क्या ब्रह्मा और शिव से विष्णु बड़े हैं? (६) क्या घड़े में रखा विष उड़ने की वस्तु है? (७) हाथी, अश्व, कामधेनु, ारुणी देवी, धन्वतरि वैद्य और अप्सराओं का खारे पानी के या दूध के सागर में डूबा रहना कैसे सम्भव है? (८) समुद्र मन्थन समय उनके शरीर घुन क्यों नहीं गये? (९) जो व्यास जी चारों वेद, ब्रह्मसूत्र, महाभारत और १७ पुराण लिखने के बाद सन्तुष्ट थे वे नारी क्षणभंगुर शरीर का ऐसा अश्लील वर्णन क्यों करने लगे? (१०) सुरा (वारुणी) पेय है कि नारी है? (११) या सूर्य, चन्द्र और राहु कभी देहधारी हो सकते हैं? (१२) क्या चन्द्रमा को सूर्य से बड़ा और ऊपर कहने वाला मनुष्य ज्ञानी और दिव्य द्रष्टा हो सकता है? (१३) सुरा यदि नारी है, विष यदि बात करता है तो हम अमृत को भी एक देहधारी मानव क्यों मान लें? (१४) वेद का कथन है— 'चन्द्रमा मनसो जातः'। अर्थात् चन्द्रमा परमात्मा के मन से उत्पन्न है तो हम उसे अत्रि नेत्राश्रु से या सागर से उत्पन्न कैसे मानें? (१५) क्या राहु का कोई लोक है और उसमें भूत प्रेत रहते हैं? (१६) सूर्य और न्द्रमा दस सहस्र वर्षों तक राहु के साथ समुद्र मथते रहे, घूमते फिरते रहे तो उसे पहचान क्यों नहीं सके? वह पंक्ति में साथ ठ कर अमृत कैसे पी गया? (१७) शिव ब्रह्मा को पैदा करने वाले विष्णु उसे क्यों नहीं पहचान सके? (१८) ग्रहण के समय र्य चन्द्रमा के पास राहु थोड़ी ही देर क्यों बैठता है? बहुत देर तक बैठकर उन्हें खा क्यों नहीं जाता? (१९) सूर्य चन्द्र का ण लगभग प्रतिवर्ष होता है। उसे सुदर्शन चक्र रोक क्यों नहीं देता? उसकी नियुक्ति से क्या लाभ हुआ? (२०) क्या सूर्य, द्र और तारे एक दूसरे के पास पहुँच सकते हैं? क्या वे अपनी कक्षा छोड़कर करोड़ों मील दूर जा सकते हैं? (२१) क्या वे पस में बातचीत कर सकते हैं? (२२) गला कटने पर राहु–केतु मर क्यों नहीं गये? क्या अमृत गला कटे को बचा सकता (२३)राहु को हाथ, पैर, पेट, गुदा, लिंग आदि नहीं है तो वह इनका काम किससे लेता है? (२४) केतु को मस्तिष्क, नेत्र, न, मुख, आदि नहीं हैं तो वह इनका काम किससे लेता है? (२५) वेद में सूर्य ही विष्णु हैं तो वे पुराणों में चतुर्भुज कैसे ाये? (२६) वेदानुयायी पुराणों ने सूर्य को विष्णु से भिन्न क्यों माना? (२७) क्या किसी ने सूर्य–चन्द्र के साकार रूपों को है? (२८) राहु अपना गला काटने वाले विष्णु को नहीं ग्रसता और केवल बताने वाले सूर्य चन्द्र को ग्रसता है। क्यों?) एक सुदर्शनचक्र सूर्य और चन्द्रमा, दोनों के पास कैसे रहता है और दोनों की रक्षा कैसे करता है? (३०) विष्णु ने ा चक्र सूर्य–चन्द्र के पास भेज दिया तो क्या वे अब चक्रविहीन हैं? (३१) क्या वेद विष्णु चक्रधारी चतुर्भुज हैं? (३२) में सूर्य को ही विष्णु कहा गया है तो विष्णु, विष्णु की रक्षा कैसे करते हैं? (३३) सूर्य, चन्द्रमा और उनके ग्रहण दिखाई

देते हैं तो वह चक्र क्यों नहीं दिखाई देता? (३४) विष्णु ने दैत्यों को साँप के मुख की ओर रखकर जलाया, अमृत नहीं दिया और पीने वाले राहु का गला काट दिया। क्या वह विश्वासघात नहीं है? ऐसे विष्णु अवतार लेकर धर्म की और सन्तों की रक्षा कैसे करेंगे, पाप और पापियों का नाश कैसे करेंगे और जनता को भली प्रेरणा कैसे देंगे? (३५) विष्णु यदि भगवान् हैं तो उन्हें पापी दैत्यों की आवश्यकता क्यों पड़ी? (३६) यदि दैत्यों की सहायता बिना विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र आदि देव समुद्र नहीं मथ पाते तब तो दैत्य ही बड़े हैं। (३७) यदि यह विष्णु की लीला है तो हमें इससे क्या शिक्षा मिलती है? क्या हम भी दैत्यों से मित्रता करें? (३८) क्या विष्णु, ब्रह्मा, शिव, और इन्द्रादि देवों के लोकों में कहीं अमृत नहीं था? (३९) आकाश में ग्रहों से भी बहुत ऊपर रहने वाले सारे देव अमृत के लिए यदि इस धरती पर ही आते हैं तब तो बैकुण्ठ, साकेत, गोलोक, मणिद्वीप, शिवलोक आदि से यह धरती ही श्रेष्ठ है। तब हम उन लोकों के लिए तप क्यों करें? (४०) भागवत के अनुसार ब्रह्मा और शिव इसी धरती के मेरु पर्वत पर और कैलास पर्वत पर रहते हैं। समुद्र मन्थन के समय वे यहीं से बुलाये गये थे। भागवत ने इन्द्रादि का निवास भी सुमेरु पर्वत का ही एक भाग माना है तो क्या उनके आकाशस्थ स्वर्गादि लोक मिथ्या हैं?

मत्स्यपुराण का समुद्र मन्थन

भागवत के अनुसार चन्द्रमा समुद्र से उत्पन्न नहीं है। वह पहले से ही है किन्तु मत्स्यपुराण (अध्याय ४९) के अनुसार वह समुद्र मन्थन में सबसे पहले निकला है। लिखा है कि शिव ने दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य को यह संजीवनी विद्या सिखाई थी जिससे मरे जीव भी जी जाते हैं। शुक्र ने उसके प्रभाव से देवासुर युद्ध में मरे सब असुरों को जिला दिया वे जीवित ही नहीं हुए, अमर हो गये। तब ब्रह्मा के आदेश से देवों ने अमृत पाने के लिए क्षीरसागर के मन्थन की योजना बनायी। देवों ने मन्दर पर्वत से मथनी बनने की प्रार्थना की। उसने बलि के आदेश से मथनी बनना तो स्वीकार कर लिया पर पूछा कि मुझे धारण कौन करेगा। तब विष्णु के चतुर्थांश कूर्म और शेषनाग आधार बनने को तैयार हो गये। नाग ने मन्दराचल को उखाड़ कर क्षीरसागर में फेंक दिया और कच्छप को नीचे बैठा दिया।

प्रार्थितो मन्दरः प्राह यद्याधारो भवेन्मम।
ततस्तु निर्गतौ देवौ कूर्मशेषौ महाबलौ॥

शेषनाग रस्सी बने, विष्णु कच्छप बने और ३६ सहस्र वर्षों से अधिक काल तक सागर मथा जाता रहा। उस समय १०००० योजन ऊँचा और लाखों योजन लम्बा चौड़ा मन्दर पर्वत घुमाया जाने लगा तो उस पर स्थित लाखों करोड़ों, हाथी, घोड़े, सूकर, मृग, गाय बैल और अन्य पशु तथा फलों और फूलों से लदे करोड़ों वृक्ष दूध सागर में गिर पड़े। उन सब के शरीर धुन उठे, चूर्णित हो गये और दूध में मिल गये तो सारा दूध दही की भाँति गाढ़ा हो गया और जीवों के रक्त, मज्जा, मांस आदि के सम्पर्क से मदिरा बन गया। देव-दानव उसके गन्ध को सूँघ कर प्रसन्न हो गये और उसे पी-पी कर बली हो गये।

दिव्यं वर्षशतं साग्रं मथितः क्षीरसागरः।
भ्राम्यमाणेततः शैले योजनायुतशेखरे॥
निपेतुर्हस्तियूथानि वराहशरभादयः।
श्वापदायुतलक्षाणि तथा पुष्पफलद्रुमाः॥
क्षीरमम्बुधिजं सर्वं दधिरूपमजायत।
तदम्बु वारुणी जातं संसर्गात् जीवमेदसाम्॥
वारुणीगन्धमाघ्राय मुमुदुर्देवदानवाः।
तदास्वादेन बलिनोऽथा शेषं जगृहुर्जवात्॥

फिर मन्थन आरम्भ हुआ तो जल के और पाताल के भयभीत जीव आपसी टकराव से मरने लगे और मन्दर पर्वत ने उसके शरीर धुन दिये। पर्वत के ऊपर से पुनः वृक्ष गिरने लगे और उनके संघर्षण से भीषण आग उत्पन्न हो गयी। उसने अवशिष्ट वृक्षों, लताओं, औषधियों और भागते हुए पशुओं को जला दिया। इन्द्र ने मेघों के जल से वह आग बुझा दी और तब पर्वत से महावृक्षों के, महौषधियों के तथा अन्य अनेक प्रकार के रस बहकर सागर में आने लगे। देवगण उन्हें पीकर अमर हो गये और उनके शरीर तपाये सोने की भाँति चमकने लगे। सागर का जो दूध दही बन गया था वह पुनः दूध हो गया और दूध से घी बन गया किन्तु अमृत नहीं मिला। तब विष्णु के आदेश से दैत्यों और देवों ने पुनः सागर को मथना प्रारम्भ किया तो सबसे पहले वह चन्द्रमा निकला जो प्रसन्न था, शीतल था, उज्ज्वल था और सौ सूर्यों के समान था।

तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता महाद्रिणा।
पातालतलवासीनि विलयं समुपागमन्॥
न्यपतन्पतगोपेताः पर्वताग्रान् महाद्रुमाः॥
तेषां संघर्षणाच्चाग्निरर्चिभिः प्रज्वलन्मुहुः॥
ददाह कुञ्जरान् सिंहान् मृगादींश्च विनिःसृतान्।
तमग्निं शमयामास वासवो मेघवारिणा॥
ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागरांभसि।
ततः शतसहस्रांशुसमान इव सागरात्।
प्रसन्नाभः समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः॥
औषधीनां द्रुमाणां च तैरसैरमृतोपमैः।
अमरत्वं सुरा जग्मुः कांचनच्छविसन्निभाः॥

उसके बाद क्षीरसागर से लक्ष्मी देवी, सुरा देवी, श्वेताश्व, पारिजात वृक्ष आदि की उत्पत्ति हुई। उसके बाद भयंकर धूम उत्पन्न हुआ और उस धूम से मच्छर, डँस, भ्रमर, मक्खी, टिड्डी, गिरगिट और अन्य अनेक भीषण जन्तुओं की उत्पत्ति हुई। उसके बाद हालाहल विष पैदा हुआ। उसका शरीर लम्बा था, केश अग्नि की भाँति लाल थे; नेत्र भीषण थे, और शरीर सोना, मोती के हारों तथा पीताम्बर आदि से शोभित था। उसको देखकर कुछ लोग मूर्छित हुए, कुछ मर गये और कुछ उल्टी करने लगे। उसकी साँस से विष्णु, इन्द्र आदि देव जलने लगे। भगवान् ने पूछा कि तुम कौन हो और क्या करने से प्रसन्न होंगे? वह बोला कि मैं कालकूट विष हूँ और सब देवों, दानवों को समाप्त करने आया हूँ। तब सब भयभीत देव ब्रह्मा और विष्णु को लेकर शिव के उस धाम पर गये जो मुक्तामालाओं, मणियों की सीढ़ियों और रत्नों के स्तम्भादिकों से बना था। वे प्रार्थना करने लगे कि आप ही ब्रह्मा, विष्णु आदि सब कुछ हैं। इस विष ने हमारे विष्णु को काला कर दिया है, कितनों को मूर्छित कर दिया है और कितनों को मार डाला है। तब बैल पर सवार शिव वहाँ आकर विष को बायें हाथ से पी गये। इसके बाद पुनः समुद्र मथा जाने लगा तो धन्वन्तरि वैद्य, सबके चित्त को मथने वाली सुनेत्रा मदिरा और अमृत आदि उत्पन्न हुए। गरुड़ जो अमृत का कलश लेकर भाग गये पर बाद में लौट आये। विष्णु ने अमृत केवल देवों को पिलाना चाहा पर राहु दैत्य वेष बदल कर देवों के बीच आ बैठा और विष्णु ने विना पहचाने उसे भी अमृत पिला दिया किन्तु सूर्य और चन्द्रमा ने बता दिया। तब विष्णु ने राहु का सिर काट दिया। इसी से वह अमावास्या में सूर्य को और पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा को ग्रसता है।

अनन्तरमपश्यंस्ते धूममम्बरसंनिभम्।
दग्धाश्चाप्यर्धदग्धाश्च तेन जाताः सुरासुराः॥
अनन्तरं समुत्पन्नास्तस्मातृ डुण्डुभजातयः।
मशका भ्रमरा दंशा मक्षिकाः शलभादयः॥

ततो विषं समुत्पन्नं रक्तकेशं महातनुम्।
श्वासेन तस्य निर्दग्धास्ततो विष्णिवन्द्रदानवा:॥

शंकाएँ–(१) मत्स्यपुराण में लिखा है कि चन्द्रमा समुद्र से निकला है तो क्या समुद्रमन्थन के पूर्व आकाश में चन्द्रमा नहीं था? वेद समुद्रमन्थन से पहले के हैं और उनमें चन्द्रमा से सम्बन्धित तिथियों और नक्षत्रों का वर्णन है। तिथि नक्षत्र चन्द्रमा से ही बनते हैं तो वे वेद में कहाँ से आ गये? क्या समुद्रमन्थन के पूर्व अमावास्या–पूर्णिमा का अभाव था? यज्ञ कैसे होते थे? (२) भागवतकार ने यह क्यों लिखा कि चन्द्र पहले से था? (३) गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि मरे को सुधा का सरोवर भी जिला नहीं सकता। 'मुये करै का सुधा तड़ागा'। किन्तु इसके विपरीत यह भी लिखा है कि इन्द्र ने अमृत की वर्षा की तो राम के मरे वानर–भालू जी उठे और मरे राक्षस नहीं जिये। 'सुधावृष्टि भइ दुहुँ दल ऊपर जिये भालुकपि नहि रजनीचर' इस स्थिति में हम गोसाईं जी और पुराणों पर कैसे विश्वास करें? (४) देव अमर हैं तो वे मरने से डरते क्यों हैं? (५) समुद्रमन्थन के पूर्व देव अमर नहीं थे क्योंकि उनके पास अमृत नहीं था। मिलने पर मोहिनीरूप धारी विष्णु ने कुछ देवों को पिलाया और ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ इन्द्र को दे भी दिया। तुलसीदास के कथनानुसार राम की सेना में १८ पद्म सेनापति (यूथप) थे अत: पूरी सेना कई सहस्र पद्म रही होगी। उसके मरे सैनिकों पर इन्द्र ने अमृत की वर्षा की तो इन्द्र के पास बंगाल की खाड़ी या अरव सागर के पानी से कम अमृत नहीं रहा होगा। कैसा था वह कलश जिसमें यह सब अमृत भरा था? उसको धन्वन्तरि कैसे उठा लाये और गरुड़ लेकर कैसे उड़ता रहा? (६) शिव ने शुक्राचार्य को वह संजीविनी विद्या सिखाई थी जो मृतकों को जिला देती है तो फिर शिव सती का शव लेकर बिलखते हुए विश्व भर में घूमते क्यों रहें? उन्होंने संजीविनी से या इन्द्र ने अमृत से सती को जिला क्यों नहीं दिया? (७) शुक्राचार्य ने इससे अपने शिष्य भृगुवंशियों को क्यों नहीं जिला दिया? (८) क्या इस संजीवनी और अमृत को किसी ने देखा है? (९) शिव ने मरों को जिला कर इससे अपनी ब्रह्महत्या समाप्त क्यों नहीं कर दी? (१०) मन्दर पर्वत चेतन है और मनुष्य की भाषा में विष्णु से बात करता है तो वह मथनी बनने पर जीवित कैसे रहा? (११) विष्णु को समुद्र इतने सहस्र वर्षों तक क्यों मथवाना पड़ा? क्या वे यह कार्य थोड़े समय में नहीं निपटा सकते थे? (१२) शेषनाग पर्वत को पकड़े खड़े थे तो पृथ्वी किसके सिर पर टिकी थी? (१३) भागवत के अनुसार शिव विष्णु के सर्वश्रेष्ठ दास हैं। तो वे दैत्यों के पक्षधर कैसे हो गये? (१४) वलि ने समुद्रमन्थन में अपने शत्रु देवों की सहायता क्यों की? (१५) मत्स्य पुराण ने सूर्य और नाग को विष्णु का एक चतुर्थांश और वाल्मीकि ने दशरथ के चारों पुत्रों को विष्णु का एक एक चतुर्थाश कहा है तो जीव ईश्वर के अंश कैसे हो सकते हैं? चार चतुर्थांश के बाद वचता ही क्या है? (१६) शुक्र के पास संजीविनी थी तो उन्होंने अपने शिष्यों को अमृत के लिए क्यों कष्ट दिया? (१७) क्या एक साँप मन्दराचल पर्वत को उखाड़ कर फेंक सकता है? (१८) क्या शेषनाग और मन्दर पर्वत देवों और मनुष्यों से मानवी भाषा में बात करते हैं? (१९) क्या साँप को रस्सी बनाया जा सकता है? उससे मथने पर उसका शरीर प्रत्येक गाँठ पर उखड़ नहीं जायेगा? (२०) समुद्र को मथने पर जब सब वृक्ष, पशु और जलचर धुन उठे, चूर्ण हो गये तो उसके जल के भीतर बैठे धन्वन्तरि वैद्य चन्द्रमा, अप्सराएँ, लक्ष्मी, हाथी, अश्व, वारुणी देवी, कल्पवृक्ष और कामधेतु के शरीर कैसे सुरक्षित रह गये? (२१) क्या दूध में पशुओं, वृक्षों आदि को डालकर मथने पर बलदात्री मदिरा बन जाती है और उससे सुगन्ध आती है? (२२) क्या देव मदिरा पीते हैं? (२३) क्या मदिरा से मिश्रित सागर के जल को पीने से शरीर सोने की भाँति चमकने लगता है? (२४) क्या समुद्र ३६०० वर्षों से अधिक काल तक मथा जाता रहा? (२५) क्या इतने समय तक देवगण यज्ञों में नहीं जाते थे? आहुतियाँ नहीं लेते थे? (२६) क्या दैत्यगण संसार को त्रास देना छोड़कर समुद्रमन्थन में लगे रहे? (२७) सूर्य और चन्द्रमा को राहु अमावास्या और पूर्णिमा को ही क्यों निगलता है? क्या उसे अन्य तिथियों में भूख नहीं लगती? (२८) क्या केवल निगलने और उगलने से उसकी क्षुधातृप्ति हो जाती है? (२९) वह उन दोनों को खा क्यों नहीं जाता? (३०) पंचांगों में लिखे राहु–केतु ग्रहणों के समय क्या सूर्य चन्द्र के पास रहते हैं? (३१) यदि नहीं तो ग्रहण से उनका क्या सम्बंध है? (३२) भागवत के मत में शिव विष्णु के सबसे बड़े सेवक हैं तो जिस

परन्तु ऋग्वेद में मुख्य समुद्र आकाश ही है। वह घृत समुद्र है, मधु समुद्र है, क्षीर समुद्र है और अमृतादि का समुद्र है। ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल के ६२ से ७२ तक ११ सूक्त मित्रवरुण के हैं। उनमें लिखा है कि हे मित्रावरुणदेव! आप राजा हैं, आकाश–पृथ्वी को धारण करते हैं, अपने तेज से हमें जीवन देते हैं, औषधियों का संवर्धन करते हैं, पृथ्वी के पोषक हैं अतः कृपया जलवृष्टि करें। आपके पास घृत के समुद्र हैं, आप आकाश से मधु की वर्षा करते हैं, भुवनों के सम्राट् है अतः हम धन और वृष्टि की याचना कर रहे हैं। आप चित्र विचित्र मेघों के साथ आकाश में रहते हैं, वे मायावी असुर हैं, घोष करते हैं और बरसते हैं। आपकी माया आकाश में स्थित है। ज्योतिषमान् सूर्य अपने आयुध के साथ उसमें घूम रहा है। आप उसे वृष्टि और मेघों से घेरते हैं। आकाश में मधुमान् और मोहक मेघ घूम रहे हैं। वे विचित्र, जलवती और तेजस्वी सुवाणी बोलते हैं। आप कृपया वर्षा करें। आपकी गायें और समुद्र जलमय और मधुमय हैं, आप क्षत्रिय हैं, भूप हैं, गोप हैं, समुद्रस्वामी हैं, कृपया हमें घृत और मधु से नहलायें, सींचें।

अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा इव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ५। ६२। ३॥
घृतस्य वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ५। ६२। ४
सम्राजावस्य भुवनस्य...वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे।
चित्रेभिरभ्रैरुपतिष्ठथो खं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ५। ६३। ३
माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम्।
तमभ्रेण वृष्ट्या पर्जन्य मधुमन्त ईरत् ५। ६३। ४ वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते ५। ६३। १॥
वाचं सु मित्रावरुणाविरावती पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम्।
अभ्रा वसत मरुतः सुमायया द्यां वर्षयतं ५। ६३। ६
इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो ५। ६६। २
उक्षतं घृतेन ७। ६२। ५, घृतस्य...ददीरन् ७। ६४। १ उक्षेथां ७। ६४। ४
आ राजाना गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया वृष्टिमिन्वतम् ७। ६४। २

वेदों में ऐसे अनेक मन्त्र हैं जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि आकाश ही मुख्य समुद्र है और जल ही मधु, घृत, दूध, अमृत मदिरा और दधि आदि है। ज्योतिष के पाश्चात्य विद्वान् हमारी आकाशगंगा को 'मिल्की वे' अर्थात् क्षीरपथ कहते हैं अतः आकाश ही क्षीरसमुद्र है। पृथ्वी पर कहीं भी दूध दही, घी आदि के सागर नहीं हैं। आकाश का वर्ण स्वभावतः श्वेत है और वह तारों तथा सूर्यादि के प्रकाश से और भी श्वेत हो जाता है अतः क्षीरसमुद्र है। निघण्टु में जल के क्षीर, मधु, अमृत, घृत, वन, विष, क्षेम, रस, भेषज, सुख, शुभ, व्योम, अन्न, सत्य, सर्पि, पवित्र, हेम, शम्बर, शुक्र, तेज आदि सौ नाम हैं। इसलिए आकाश अनेक पदार्थों का समुद्र है और उसका ऊपर वाला नीला भाग शिव की जटा है। आकाश एक कुंभ है और ब्रह्मा का कमण्डुल है। अमरकोश में उसका नाम विष्णुपद है। इसका अर्थ विष्णु का चरण नहीं बल्कि विशाल स्थान है। आकाशगंगा यहीं से प्रतिवर्ष निकलती है। जैसे धनवान् को धनी और बलवान् को बली कहा जाताहै उसी प्रकार भगवान् भगी हैं। वेद में सुरेश इन्द्र ही भगवान् या भगी हैं और मेघ ही उनका रथ है इसलिए मेघ भगीरथ है। इन्द्र का एक नाम मेघवाहन है। यह भगीरथ (मेघ) आकाशगंगा को लेकर चलता है और मेघनाद ही भागीरथ का शंखनाद है। समुद्र का मन्थन अमृत के लिए हुआ था और वेद में जल को अमृतोपस्तरण, अमृतापिधान; शिवतमरस, आनन्दभू, तेजोबलद, स्नेहमयी माता, ज्योति, महौषध और मधु आदि कहा है।

अमृतोपस्तरणमसि, अमृतापिधानमसि, मधुक्षरन्ति, सिन्धवः, आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता

**न ऊर्जे दधातन, महेरणाय चक्षसे, यो वः शिवतमो रसः, उशतीरिव मातरः, यजुः ११।५०
आपो ज्योती रसोऽमृतम्। ऋ० १।५।१। अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्। ऋ० १।४।४
अपो याचामि भेषजं समुद्रो मूलं वीरुधाम्। ऋ० ३।२४।६**

ऋग्वेद का कथन है कि जल प्राण है। शतपथ ब्राह्मण में जल को अनेक बार अमृत, शान्ति और अन्नप्रद आदि कहा है। यजुर्वेद १६।७३ आदि में जल को स्पष्ट रूप से क्षीर कहा है—अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत्। इदं पयोऽमृतं मधु। अमरकोश ने जल को जीवन और अमृत इसलिए कहा है कि वह कभी भीं मरता नहीं है, जलाने पर वाष्प में परिणत हो जाता है। आकाश इस अमृत का और क्षीर का सागर है। वेदों में सूर्य ही विष्णु है और वह अपनी श्री और लक्ष्मी नाम्नी दो पत्नियों के साथ इसी में रहता है और अमृत की वर्षा करता है।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्न्यौ॥ निवेशयन्नमृतम्॥

सूर्यरूपी विष्णु सूर्योदय, मध्यह्न और सूर्यास्त रूपी तीन पगों में पूरे आकाश को नाप लेते हैं। उस समय अन्धकाररूपी राजा बलि पाताल लोक में चला जाता है। वामनावतार की कथा का बीज इसी में है; ये सूर्यरूपी विष्णु प्रारम्भ (उदय काल) में वामन रहते हैं पर मध्याह्न में विराट् हो जाते हैं। उनके पैर लम्बे हो जाते हैं और मस्तक ऊपर चला जाता है।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्। यजुर्वेद ५।१५॥

सूर्य की सहस्त्रों किरणें ही शेषनाग के सहस्त्रों फण हैं और वे उन्हीं के शरीर पर सोते हैं। यही है विष्णु का शेषशय्या पर शयन। पुराणों का कथन है कि देवों और दैत्यों ने मिलकर विष्णु की आज्ञा से समुद्र मन्थन किया। इनकी अदिति और दिति नाम की दो माताएँ हैं पर पिता एक कश्यप हैं। इस कथा का विवरण आगे गोत्रप्रकरण में पढ़ें। अभी इतना समझ लें कि कश्यप, दिति और अदिति नर–नारी नहीं हैं। जगत् का पिता और द्रष्ट्रा (पश्यक) ही कश्यप है। वेद में लिखा है कि दक्ष से अदिति का और आदिति से दक्ष का जन्म हुआ। यह बात नर–नारी रूप में असम्भव है। इसका भावार्थ यह है कि उषा के बाद या उषा से सूर्य का जन्म होता है तथा सायंकाल में सूर्यास्त के बाद सूर्य से उषा (सन्ध्या) पैदा होती है। देव और असुर एक ही कश्यप (सूर्य) के पुत्र हैं। वेद में बारंबार सूर्य की तेजोमयी किरणों का देव या सुर तथा अति बली काले–काले मेघों के शम्बर, नमुचि और वृत्र आदि असुर कहा है। इन दोनों के संघर्ष से आकाशरूपी क्षीर सागर का मन्थन होता है और हमें अमृतरूपी जल की प्राप्ति होती है।

ईडेऽन्यं वो असुरं ७।२।३ असुरो मयोभुः ५।४२।१, वृत्रघ्ना १।१७५।५, वृत्रघ्नी ६।६१।७, न ज्यायानस्ति वृत्रहन् ४।३०।१, उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ४।३०।१४, शम्बराणि पर्वतं २।२४।२, यमश्विना नमुचेरासुरात् १६।३४, शिरोदासस्य नमुचेर्मथायन् ५।३०।८॥

ऋग्वेद और युजर्वेद के इन मन्त्रों में तथा अन्य अनेक मन्त्रों में मेघों को ही असुर, वृत्र, शम्बर और नमुचि कहा है। निघण्टु में मेघ के असुर, शम्बर, नमुचि, वृत्र, गोत्र, अद्रि, ग्रावा, गिरि, वराह, रैवत, सर्प और व्रज आदि तीस नाम हैं, पुराणों में समुद्र के मन्थन द्वारा जिन १४ रत्नों की जल से उत्पत्ति का वर्णन है वह सर्वथा असम्भव है। लक्ष्मी, चन्द्रमा, वारुणी देवी, धन्वन्तरि वैद्य, रंभादि कई करोड़ अप्सरा, ऐरावत, उच्चैःश्रवा, कामधेनु, कल्पवृक्ष आदि का पानी के भीतर जीवित रहना और मन्थन के बाद उनके शरीर का क्षत–विक्षत न होना अशक्य है पर आकाश रूपी क्षीरसागर में सम्भव है। सूर्य की किरणों की शोभा और सम्पत्ति ही लक्ष्मी और श्री हैं, वरुणदेव द्वारा बरसाया जल ही वारुणी है और आकाश के तारे ही मणियाँ, शंख, गन्धर्व एवं अप्सराएँ हैं। इस विषय में वेदों का कथन है कि आकाश के सूक्ष्म और स्थूल अप् (जल) में जो

सरकती हैं वे अप्सराएँ हैं। तारों के साथ-साथ उषा, सन्ध्या और बिजली भी अप्सराएँ हैं। यजुर्वेदसंहिता (अध्याय १८) में कई प्रकार के गन्धर्वों और अप्सराओं का वर्णन है—

ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसः ३८
संहितो विश्वसामासूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसः ३६
सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसः ४०
इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरसः ४१
भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः ४२
प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरसः ४३

इन मन्त्रों का भावार्थ यह है कि अग्नि गन्धर्वो है, औषधियाँ अप्सराएँ है। सूर्य गन्धर्व है और उनकी सुन्दर किरणें अप्सराएँ हैं। चन्द्रमा गन्धर्व है और तारे उसकी अप्सराएँ हैं। वायु गन्धर्व है और पानी अप्सराएँ हैं। यज्ञ गन्धर्व है और भाँति भाँति की दक्षिणाएँ उसकी अप्सराएँ हैं तथा मन एक गन्धर्व है और वेदों की ऋचाएँ (मन्त्र) उसकी अप्सराएँ हैं।

हम लोग आजकल गन्धवों और अप्सराओं (वादकों और वेश्याओं) को आदर की दृष्टि से नहीं देखते। अमरकोश ने भी अप्सराओं को स्वर्ग की वेश्या कहा है किन्तु वेद में परमेश्वर और महान् देव गन्धर्व हैं तथा अप्सराएँ अनवद्या (अनिन्दिता) कही गयी हैं। वैदिक ज्योतिष के अनुसार सब देव और सब ग्रह सदा सब तारों में घूमते रहते हैं अर्थात् तारकाएँ सबकी भोग्या हैं अतः यह आलंकारिक वर्णन है और ऋग्वेद (१।१६४।१६) में इसका स्पष्ट रहस्य बता दिया गया है। सारांश यह कि न तो तारे स्त्रियाँ हैं न ग्रह पुरुष हैं। अथर्ववेद (२।२) का कथन है कि विश्वावसु विश्वनाथ है, सब भुवनों का पति है, उसका नाम मृड (सुखदाता) है और ये मनमोहिनी अप्सराएँ उसकी पत्नियाँ हैं, अनिन्दिता हैं और पूज्या हैं। उन्हें नमस्कार है।

मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवाः ॥ २॥
अनवद्या मनोमुहः। ताभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥ ५॥

वस्तुतः यह वर्णन विश्वनाथ शंकर का है। वे विश्व के वसु और मृड हैं, तारे उनकी जटा में स्थित हैं, चन्द्रमा उनका मुकुट मणि है, आकाशगंगा उनके कपर्द में है और मेघरूपी अहि उनके शरीर में लिपटे हैं। वे आकाश में स्थित अनेक विषों को पीते हैं और हमें अमृत देते हैं। वेद कहते हैं कि सूर्य, चन्द्र, वायु, वाणी, अन्न, फल आदि में अमृत है। अमरकोश में गोदुग्ध, घृत, इक्षुरस और बिना माँगे मिले पदार्थ को अमृत तथा त्रिफल, गुरुच आदि को अमृता कहा है। वैद्यक शास्त्र में हित आहार अमृत है और गीता में यज्ञ से बचे अन्न को अमृत कहा है। अमृत को देव पीते हैं इसलिए वे अमृतांधस् कहे जाते हैं। इन अमृतों की प्राप्ति का प्रयास ही समुन्द्र मन्थन है और उसे वैद्यराज धन्वन्तरि देते हैं। वे समुद्र से अमृत कलश लेकर आते हैं, विष्णु के अवतार हैं और साक्षात् शंकर हैं। उनके विषय में ऋग्वेद का कथन है कि हे अर्हन्! आप दया के सागर हैं, हमारे विषों को पीते हैं और वैद्यनाथ हैं।

अर्हन्निदं दयसे विश्वम्। भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि।

संस्कृत में जल का एक नाम इरा है। इरा से बना मेघ ही ऐरावत हाथी है। उसकी ध्वनि ऊँची होती है। अतः वही उच्चैः श्रवा अश्व है। मेघ जलरूपी अमृत देता है अतः कल्पवृक्ष और कामधेनु है। बिजली और जलस्रोत ही वेद में उर्वशी हैं और सूर्य ही पुरूरवा है। निघण्टु (१।१०)में मेघ सर्प हैं, सूर्य किरणें गरुड़ हैं और गरुड़ को देखकर मेघसर्प द्रवित हो जाता है, पानी बरसता है। ऋग्वेद का कथन है कि मेघ वे घोंसले हैं जिनमें गरुड़ पक्षी रहते हैं। वे जल (अमृत) को लेकर भागते

गरुड़ हैं।

द्रमाविवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे॥ ऋ० १०।११४।४
यः समुद्रादुदाचरत्॥ अथर्ववेद॥ ४।५।६॥

क्षी या अश्वरूपी सूर्य के निकलने का वर्णन है। सायणाचार्य ने आकाश को ही सागर
हिनी रूप का वर्णन है। वेद में बिजली ही मोहिनी है, उसे देख कर विश्वावसु मृड
। वही वर्षा है और उसी से वृषाकपि उत्पन्न होता है। समुद्रमन्थन की कथा में कहीं
लेकर भागने का वर्णन है। उसका भाव वैदिक भाषा में यह है कि काले मेघ और
ा करते हैं। समुद्र मन्थन में सर्वप्रथम विष उत्पन्न होता है। वर्षा का न होना, वर्षा के
वष है। इसी क्षीरसागर में अनेक उल्काएँ हैं, धूमकेतु हैं, बमों, पटाखों, वाहनों और
यों के मनोभाव हैं और सूर्य के वे काले धब्बे हैं जिनसे विस्फोट होते हैं। वैद्यनाथ
हैं और उनके मस्तिष्क में अमृत का कुंभ है। उनके अनेक नाम और अनेक रूप हैं।
न आर्द्रा है। उनका हृदय स्नेह से सदा आर्द्र रहता है। उन्हें अन्नपूर्णा और लक्ष्मी भी
ाद पुनर्वसु (अन्नपूर्णा और लक्ष्मी) का आगमन होता है और तब पुष्य आता है पर
ष्ट पौष को तथा भाद्रपदा और रेवती (धनवती) विशिष्ट मास को खलमास कहता

लिखा है कि रुद्र ने अपने भालाग्नि को समुद्र में फेंका तो उससे जलन्धर पैदा हुआ।
हीं-कहीं जलन्धर को विष्णु ने मारा है। वस्तुतः सूर्य के शरीर से उत्पन्न अग्नि (ताप)
घ) बनता है और उसे पुनः सूर्य ही धरती पर गिराता है, मारता है। जहाँ विष्णु द्वारा
घवृन्द ही वृन्दा है और सूर्य ही विष्णु है।

कुम्भ का पर्व और मेला

रम्भ हुआ, इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है क्योंकि इसका कोई ऐतिहासिक
कि इसका वर्णन वेदों में है परन्तु वेदों के जिन मन्त्रों में कुम्भ शब्द आया है उनका
कथन है कि जैसे कुठार से वन को काटा जाता है उसी प्रकार इन्द्र ने वृत्र रूपी या नवीन
दियाँ बहाईं। यही स्थिति अन्य मन्त्रों की भी है। चार मन्त्र देखें।

बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भं इन्द्रो अरदन्न सिंधून्॥ ऋ०
नानसिंचतं सुरायाः। ऋ० १। ११६। ७॥ कुम्भो वनिष्ठुः। यजुः
नतुर्धा ददामि। अथर्व ४। ३४। ७॥

इनका मेले या समुद्र मन्थन से कोई नाता नहीं है। पुराण एक बार कहते है कि कोई
इसी कारण दूसरा ब्रह्माण्ड रचने में समर्थ विश्वामित्र भी त्रिशंकु को स्वर्ग नहीं भेज
परन्तु पुराण दूसरी बार यह भी कहते हैं कि दुर्वासा, दिलीप, दशरथ और अर्जुनादि
रते थे। पुराणों का कथन है कि एक बार दुर्वासा मुनि राजाओं से प्राप्त एक पुष्पमाला
ने वह ऐरावत हाथी के गले में डाल दी और उसने माला भूमि पर गिरा दी। दुर्वासा
ाण कर दिया, वे विष्णु के पास गये, विष्णु ने उन्हें अमृत की प्राप्ति के लिए पृथ्वी

पर स्थित विशाल दूध सागर के मन्थन का आदेश दिया और कहा कि आधा अमृत दैत्यों को दिया जायेगा। दूध समुद्र मथा जाने लगा, मन्दर पर्वत मथनी बना, वासुकि सर्प रस्सी वना और धन्वन्तरि वैद्य अमृत के कुम्भ को लेकर वाहर आ गये। उनसे दैत्यों ने छीना, दैत्यों को वहका कर मोहिनी रूप धारी विष्णु ने लिया, मोहिनी से गरुड़ ने लिया, वे उसे लेकर वृन्दावन भागे, कालीदह के पास कदम्ब पर बैठे और वहाँ कुम्भ से एक बूँद अमृत भूमि पर टपक पड़ा। तभी से वहाँ कुम्भ मेला लगता है। गरुड़ ने कुम्भ को वृन्दावन के अतिरिक्त आकाश में आठ स्थानों में और पृथ्वी पर केवल भारत में हरद्वार, उज्जैन, नासिक और प्रयाग, चार स्थानों में रखा। अतः यहीं कुम्भ मेला लगता है। कहा जाता है कि कुम्भ जिन ग्रह स्थितियों में चार स्थानों में छलका था उन्हीं में कुम्भ पर्व मनाया जाता है परन्तु इस विषय में शास्त्रार्थ होते रहते हैं। यह परम्परा समुद्रमन्थनकाल से ही प्रचलित मानी जाती है पर सत्य यह है कि धरती पर कहीं दूध का सागर न है, न कभी था और न इन पर्वो का सम्बन्ध उन राशियों से है जिनका प्रचार हुए लगभग ढाई सहस्र वर्ष हो रहे हैं। अतः ये सब बैठे ठाले कवियों की मिथ्या कल्पनाएँ हैं।

उज्जैन का कुंभमेला सिंहस्थ पर्व कहा जाता है। बीच में एक अर्थकुंभी भी लगती है। इन सब के विषय में पुराण कहते हैं कि सहस्र अवश्मेध करने से, सौ वार वाजपेय यज्ञ करने से, लाख बार पृथ्वी के सब तीर्थो की यात्रा करने से, गंगा-यमुना में सहस्त्रों बार कार्तिक-माघ में नहाने से और नर्मदा में कोटि बार स्नान से जो पुण्य मिलता है वह एक कुंभ स्नान से प्राप्त हो जाता है और कोटि जन्म के पाप भस्म हो जाते हैं।

> **अश्वमेधसहस्रेषु वाजपेयशतेषु च।**
> **सहस्रकार्तिकस्नाने माघस्नानशतेषु च॥**
> **वैशाखे नर्मदायां च कोटिस्नानेन यत्फलम्।**
> **लक्षप्रदक्षिणे भूमेः कुंभस्नानेस्ति तत्फलम्॥**

शंकाएँ—(१) स्वर्ग गमन के दो सिद्धान्तों में हम किसे सत्य मानें? (२) त्रिशंकु वाराणसी से बहुत दूर दक्षिण दिशा में दिखाई देता है तो उसकी लार वाराणसी जनपद में कैसे गिरी? कर्मनासा को तो दक्षिण में होना चाहिए था? (३) क्या एक मनुष्य की लार से नदी पैदा हो सकती है? (४) क्या कर्मनासा के जल में लार का कोई गुण है? क्या उस पर मक्खियाँ बैठती हैं? (५) योग शास्त्र का कथन है कि जिसने अपनी, क्रोध आदि क्लिष्ट मनोवृत्तियों का निरोध कर लिया है उसी को सिद्धि प्राप्त होती है तो दुर्वासा के शाप और आशीर्वाद में शक्ति कहाँ से आ गयी? और देवराज को मनुष्य का शाप कैसे लग गया? (६) कुंभ का मुख खुला नहीं था तो बार-बार अमृत छलकता क्यों था? यदि खुला था तो जलचर उसे पी क्यों नहीं गये? (७) रखने पर छलका तो लेकर उड़ते समय क्यों नहीं छलका? (८) कहा जाता है कि सागर से निकले अमृत को देवों में बाँट देने के बाद जो थोड़ा अमृत बचा था उसे इन्द्र ने अपने पास रख लिया और बहुत दिनों बाद राम के कई पद्म संख्या वाले मृत सैनिकों पर बरसा कर उन्हें जिला दिया। अतः निश्चित है कि इसके पूर्व सागर से निकला अमृत बहुत अधिक रहा होगा। तो वह एक कुंभ में कैसे समा गया? (९) यदि कुम्भ किसी महासागर तुल्य था तो उसे लेकर गरुड़ या जयन्त कैसे उड़े और उसे लेकर एक कदम्बवृक्ष की डाल पर कैसे बैठ गये? क्या वह यमुनातट पर स्थित कदम्ववृक्ष भी कई करोड़ योजन लम्बा चौड़ा था? (१०) देवगण दैत्यों से हार चुके थे तो विष्णु ने उनसे यह क्यों कहा कि आधा अमृत दैत्यों को दिया जायेगा? (११) विष्णु ने अमृत कुंभ को सागर में क्यों छिपाया था? क्या उनके पास और कोई अच्छा स्थान नहीं था? (१२) जिस छेदहे कुम्भ से स्थान-स्थान पर पर अमृत चूता रहा उसमें इतने दिनों तक बचा कैसे रह गया? (१३) क्या देवों को अमृत पाने के लिए धरती पर आना पड़ता है? (१४) यदि यह सत्य है तो स्वर्गलोक की इतनी प्रशंसा क्यों? (१५) दुर्वासा ने अपनी पहनी माला देवराज को क्यों दी? क्या वे अपने को सुरेश से बड़ा समझते थे? (१६) सारे विश्व के स्वामी विष्णु ने ये चार पावन तीर्थ केवल भारत में ही क्यों बनवाये? (१७) क्या सचमुच अमृत नाम का ऐसा कोई पेय है जिसे पी लेने के बाद प्राणी अमर और तृप्त हो जाता है? (१८) यदि है तो देवगण यज्ञ की आहुतियों के अभिलाषुक क्यों हैं? (१९) गरुड़ या जयन्त अमृत लेकर

) से अमृत क्यों छीना? क्या वे अमृत की रक्षा में विष्णु की अपेक्षा अधिक
नवी भाषा में बात करता है? (२२) क्या गरुड़, हंस, मयूर और चूहा आदि
ही सुपर्ण और गरुत्मान् (गरुड़) कहा है तो सचमुच कौन गरुड़ है?

पुनम्मि दिव्यं सुपर्णं वयसा बृहन्तम्। तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपं स्वो
पर्णोऽसि गरुत्मान्...गायत्रं चक्षु...छन्दांस्यंगानि यजूंषि नाम साम ते
र्जन्यः...२४। ३४॥ सुपर्णोऽसि गरुत्मान्...भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा
अप्सवन्तरा सुपर्णो धावते दिवि...हरिरेति ३३। ६० सुपर्णस्ते गन्धर्वाणां
।३। १६॥ यजुः संहिता॥

र्ण और गरुत्मान् कहा है जो अपने तेज से द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथ्वी और सब
है, छन्द अंग है, सामवेद शरीर है, यज्ञ पुच्छ है, नक्षत्र पाद है और अन्य
विस्तृत वर्णन है तो हम गरुड़ को पक्षी कैसे मान लें? वेद का कथन है कि
तु मास आदि सारे कालमान उसके एक-एक अंग हैं तो क्या हम इसे गरुड़

त्यों ने छीन लिया और इन्द्र के पुत्र जयन्त ने छल से ले लिया। देवों ने उसकी
नियुक्त किया और जयन्त उसे लेकर स्वर्ग की ओर चले तो प्रयागादि चार
पहुँचने में १२ वर्ष लगे। इसलिए कुम्भ पर्व १२ वर्ष के बाद मनाया जाता है।
को कद्रु की कारा से छुड़ाना चाहते थे इसलिए वे अमृत ले आये और लाते

गया कि देवों को? (२) कौन सी कथा सत्य है? (३) हरद्वार प्रयाग आदि
नीं? (४) आज से करोड़ों वर्ष पूर्व यदि किसी स्थान में एक बिन्दु अमृत गिरा
गे। (५) क्या उन स्थानों में कोई ऐसी विशेषता दिखाई देती है जिसके आधार
पेक्षा पावन है (६) यदि ऐसा है तो वह पावनता वर्ष के कुछ ही दिनों में क्यों
क्या यहाँ नहाने वाले निष्पाप हो जाते हैं? क्या उनके शरीर और चित्तवृत्ति
ट होने का एक भी लक्षण दिखाई देता है?

सूर्य ने फूटने से, चन्द्रमा ने गिरने से, बृहस्पति ने दानवों से और शनि ने इन्द्र
ये सब देहधारी जीव हैं? कुम्भ पर्व के काल के विषय में बहुत मतभेद है।
राशि में हों, बृहस्पति मेष में हो और माघ की अमावास्या हो तो प्रयाग में
हस्पति वृष में और सूर्य कुम्भ में होना चाहिए। एक कहता है कि उज्जैन के
हता है कि गुरु सिंह में हो और सूर्य मेष में हो तथा तीसरा कहता है वैशाख
ाण का कथन है कि सूर्य मेष में और गुरु कुम्भ में हो तो हरद्वार में पर्व मनाया
को नासिक में कुम्भपर्व मनाया जाय पर कुछ लोग सिंह राशि के पक्ष में हैं।
नहीं है शंका यह है कि (९) क्या इन पर्वों में गंगा, यमुना और क्षिप्रा आदि

दिग्विजय की जाती थी, उसमें अनेक लोग, काटे और लूटे जाते थे। बाद में

अनेक पशु आहुति और भोजन के लिए काटे जाते थे, वे स्वर्ग पहुँच जाते थे और द्विजों को दक्षिणा में अनेक वस्तुएँ मिलती थीं किन्तु कुछ दिनों वाद स्वर्गलाभ और पुण्यलाभ का वह विधान समाप्त हो गया। हाँ, दुर्गा को बकरा, भैंसा और मदिरा चढ़ाना अभी बन्द नहीं हुआ है। इसी प्राचीन काल में लोग मुक्तिलाभ एवं ईश्वर कृपा के लिए कई विधियों से प्रयाग में आत्महत्या करते थे और वहाँ अनेक शव देखे जाते थे। महाराज हर्षवर्धन के समय चीनीयात्री ह्वेनसांग ने यह दृश्य देखा था। वहाँ कुछ लोग फाँसी लगाते थे, कुछ संगम में कूद कर प्राणत्याग करते थे और कुछ शरीर को सुखा कर धीरे-धीरे मरते थे पर आज वह श्रद्धा समाप्त हो गयी है। इतना ही नहीं, आज के धार्मिक व्यक्ति को वे पुराने भक्त मूढ़ प्रतीत होते हैं पर संगम में डुबकी लगाने से पापनाश एवं पुण्यलाभ में इनको भी दृढ़ विश्वास है और गंगायमुना का जल कितना दूषित हो गया है, इसकी कोई चिन्ता नहीं है। प्रसन्नता की वात है कि यहाँ भारत के हर प्रान्त और हर सम्प्रदाय के भक्त और विद्वान् आते हैं पर खेद का विषय है कि इन्होंने विचारविमर्श और सत्संग द्वारा परस्परविरोधी सम्प्रदायों की संख्या घटाई नहीं बल्कि बढ़ाई है और सब अपनी अपनी डफली और अपने-अपने राग में निमग्न हैं। साधुओं के पागला बावा, लट्ठमार बाबा, गुण्डा स्वामी, फक्कड़ बाबा, ठाढ़ेश्वरी, हँडिया वावा, मूर्खानन्द, मुसटण्डा स्वामी, अघोरी बाबा, भूतनाथ, गोरनाथ आदि चित्र विचित्र नाम हैं और इनके अखाड़ों के नाम हैं- निरंजनी, निर्वाणी, जूना उदासीन, निर्मल, अग्नि, वैष्णव, पंचायती, नागा, आवाहन और आनन्द आदि। इनमें अनेक उच्चकोटि के सन्त और साधक भी हैं। इनके हनुमान् गोरख, दत्तात्रेय, गणेश, दुर्गा, सूर्य, कपिल, भैरव, गायत्री, शिव और विष्णु आदि अनेक इष्ट देव हैं। जहाँगीर द्वारा लिखाई एक किताब में इनके गूदड़ , सूखड़, भूखड़ आदि कई सौ नाम लिखे हैं। इनमें अवधूतनी और नागा महिलाएँ भी हैं। उनका भी जुलूस निकलता है। संगम में सर्वप्रथम कौन स्नान करे, इस बात को लेकर इनमें बहुत दिनों से संग्राम होता चला आ रहा था और लाखों साधु मर चुके थे। जहाँगीर ने यह दृश्य देखा था। नागावैरागियों का यह युद्ध इतिहास में प्रसिद्ध है। इसने सन् १६४० में हरद्वार में भीषण रूप धारण कर लिया था। उसमें बहुत से मुण्डी (वैरागी) हारे और मारे गये। इसी प्रकार १६६० में वे नासिक में बृहत् संख्या में मारे गये। १७६० में हरद्वार में शैव-संन्यासी और वैष्णव वैरागियों के युद्ध में १८०० मारे गये। १७६६ ईसवी में शैवों और सिक्खों के संघर्ष में ५०० शैव तथा २० सिख मारे गये। इसी प्रकार १६०६ ईसवी का प्रयाग का स्नानयुद्ध प्रसिद्ध है। उसमें मुख्य रूप से निर्मोहियों और दिगम्बरों का युद्ध हुआ था। बाद में अंग्रेजी सरकार ने शान्ति के लिए स्नान का क्रम बना दिया। इस समय क्रम यह है-शैवनागा, वैष्णव वैरागी, नानक उदासी, निर्मल सिख, निरंजनी अखाड़ा...आदि। फिर भी कुचल कर मरने का क्रम समाप्त नहीं हुआ है। इनमें हरद्वार की सन् १८२०, १६४० आदि की घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। खेद है कि प्रयागकल्पवासियों से भरी पूरी एक बस सई में गिरी और कोई भी जीवित नहीं वचा। भीड़ के कारण ऐसी अन्य घटनाएँ भी होती रहती हैं। सवसे अधिक कष्ट की बात यह है कि साधुगण अभी भी सवको एक परमेश्वर का पुत्र नहीं समझते। उनमें छोटे-वड़े की भावना बनी है और वे समन्वय, अभ्युदय एवं नि:श्रेयस की त्रिवेणी से दूर हैं।

वास्तविक कुम्भपर्व

वास्तविक कुम्भपर्व और वास्तविक संगमस्नान के निरूपण से हमारे वेद, शास्त्र और पुराण भरे हैं। यहाँ गरुड़-पुराणसार की कुछ बातें लिखी जा रही हैं। सब ग्रह, सब सागर, सारे भुवन, सब नदियाँ और सब द्वीप तुम्हारे शरीर में स्थित हैं। भूलोक नाभि में, स्वर्ग हृदय में, ब्रह्मा जी का सत्यलोक मस्तक में और महर्लोक कण्ठ में है। लवणसागर मूत्र में, सुरासागर कफ में, क्षीरसागर रस में और घृतसागर मज्जा में है। नादचक्र में सूर्य, वीर्य में शुक्र, बुद्धि में वृहस्पति, नेत्र में मंगल, हृदय में बुध, नाभि में शनि, मुख में राहु और वायुस्थान में केतु बैठा है। सत्संग और विवेक मनुष्य के दो निर्मल नेत्र हैं। इन्हीं से सत्य का दर्शन होगा। कुछ लोग कुछ नामों के जप से सन्तुष्ट हैं, कुछ अन्न-जल के त्याग से शरीर को सुखा कर मुक्ति पाना चाहते हैं, कुछ लम्बे-लम्बे यज्ञों में लगे हैं तथा कुछ तीर्थों में भगवान् को ढूँढ़ रहे हैं। ये मूढ़ हैं और माया से मोहित हैं। इन अविवेकियों से पूछो कि बिल पर लाठी मारने से कहीं साँप मरता है? शरीर को सुखाने से या पानी में नहाने से मन कैसे निर्मल

होगा? कुछ ने जटा बढ़ा ली है, कुछ मृगचर्म पहने हैं, कुछ दिगम्बर हैं, कुछ गुफा में रहते हैं, कुछ गंगादि नदियों और सागरों आदि में स्नान के लिए दौड़ रहे हैं। उन्हें श्वान, मृग, गधा, भालू, चूहे, सियार आदि का निरीक्षण करना चाहिए। उन्हें सोचना चाहिए कि जन्म से मरण पर्यन्त गंगादि नदियों के जल में रहने वाले मेढक, मछली आदि क्या मुक्त हो जायेंगे? बहुत से ग्रन्थों को पढ़ने वाले जान लें कि दीपक की बत्ती मात्र से प्रकाश नहीं मिल पाता। मुक्ति, स्वर्ग और ईश्वरकृपा की प्राप्ति का एक ही साधन है कि उस ज्ञान के सागर में नहाओं जो सत्य और अनुभूति के जल से भरा है। लोग कहते हैं कि कुंभमेला का प्रचलन श्रीआदिशंकराचार्य ने किया है पर वे स्वयं कहते हैं कि गंगा और सागरादि में नहाने से, नाना प्रकार के उपवासों से और दान आदि से सौ जन्म में भी मुक्ति नहीं मिल सकती। ये सब ज्ञानहीन कर्म हैं।

भुवनानि च सर्वाणि पर्वतद्वीपसागराः। आदित्याद्या ग्रहाः सन्ति शरीरे पारमार्थिके॥
भूर्लोको नाभिमध्येस्ति स्वर्लोको हृदये तथा। सत्यलोको ब्रह्मरन्ध्रे कण्ठदेशे महस्तथा॥
क्षारोदो वर्त्ततेमूत्रे श्लेष्मसंस्थः सुरोदधिः। रसोदधिं रसे विद्यान्मज्जायां घृतसागरः॥
नादचक्रे स्थितः सूर्यः शुक्रेशुक्रो व्यवस्थितः। लोचनस्थः कुजो ज्ञेयो हृदये च स्थितो बुधः॥
नाभिस्थाने स्थितो मन्दो मुखे राहुः प्रकीर्तितः। वायुस्थाने स्थितः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलम्॥
सत्संगश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम्। नाममात्रेण सन्तुष्टानियमैः कायशोषणैः॥
मन्त्रोच्चारणहोमाद्यैर्भ्रामिताः क्रतुविस्तरैः। मूढा विमुक्तिमिच्छन्ति ममस्मायाविमोहिताः॥
देहदण्डनमात्रेण का मुक्तिरविवेकिनां। बल्मीकताडनादेव मृतः कुत्र महोरगः॥
जटाभाराजिनैर्युक्ता गतव्रीडा दिगम्बराः। आजन्ममरणान्तं च गंगादितटिनीस्थिताः॥
मण्डूकमत्स्यप्रमुखा योगिनस्ते भवन्तिकिम्। जम्बूकाखुमृगाद्याश्च तापसास्ते भवन्ति किम्॥
प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य च दर्पणम्। न निवर्तेत तिमिरं कदाचिद्दीपवार्तया॥
ज्ञानहृदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥
क्रियते गंगासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहीनं सर्वमनेन मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन॥

कुम्भ मेले के कुछ दोष

(१) मेले में आये उच्चकोटि के विद्वान् और सन्त मकरसंक्रान्ति में नहा कर पुण्य कमाने की प्रेरणा तो देते हैं पर इस मोटी और छोटी सी बात पर ध्यान नहीं देते कि वे हर पर्व को २३–२४ दिन बाद मना रहे हैं। मकरसंक्रान्ति उस तिथि को लगती है जब दिन सबसे छोटा होता है और जब सूर्य का उदय क्षितिज में उत्तर ओर खिसकने लगता है। यह घटना २२ दिसम्बर को घटती है पर हमारे धर्मगुरु उस पर्व को १४ जनवरी को मानते हैं। वे यह सोचने का कष्ट नहीं उठाते कि हमारे ज्योतिर्विद् पूर्वजों ने कृत्तिका को प्रथम नक्षत्र न मान कर वेद के विरुद्ध अश्विनी को प्रथम नक्षत्र क्यों मान लिया। (२) हमारी पोथियों में लिखा है कि 'रा' कहने से सब पाप भाग जाते हैं और 'म' कहने पर उनके आने का द्वार बन्द हो जाता है। गंगा से सौ योजन दूर रह कर कोई मनुष्य गंगा कह दे तो सब पाप भस्म हौ जाते हैं और मनुष्य विमान में बैठ कर विष्णु धाम में पहुँच जाता है। अपने जीवन में अगणित पाप करने वाले अजामिल ने नारायण नामक बेटे को पुकारा तो विष्णु के गण उसे वैकुण्ठ में उठा ले गये। भागवत या गीता आदि के एक श्लोक का चतुर्थांश पढ़ने या सुन लेने से पाप भस्म हो जाते हैं और एक सहस्र अश्वमेध एवं गंगा का पुण्य मिलता है। महावीर शब्द का उच्चारण करते ही भूत रोग और सारे कष्ट भाग जाते हैं।

रकारोच्चारणादेव बहिर्निर्यान्ति पातकाः।
पुनर्न प्रविशन्तीह मकारोस्ति कपाटवत्॥

तुलसी रा यह कहते ही निकसत पाप पहाड़।
अन्तर आवत देत नहिं देत मकार किवाड़।
गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥
नासै रोग हरै सब पीरा जपत निरन्तर हनुमत बीरा॥

पापनाश और अतुल पुण्यलाभ के हमारे यहाँ ऐसे सैकड़ों उपाय बताये हैं तो आप प्रयागादि में बुला कर जनता और सरकार को इतना कष्ट क्यों देते हैं तथा दोनों के समय, श्रम और धन का अपव्यय क्यों करते हैं? (३) क्या ये सिंद्धान्त मनुष्य को पाप से धनार्जन और सुखोपभोग करने में उत्साहवर्धक नहीं हैं? (४) आपके मान्य धर्मग्रन्थ बार-बार कहते हैं कि करोड़ों कल्प बीत जाने पर भी मनुष्य अपने पापों का फल भोगने से बच नहीं सकता। फल भोगे बिना पाप कभी भी कटते नहीं तो क्या यह कथन काक भाषण है? (५) क्या हमारे नूतन धर्मगुरुओं ने संसार में और हृदय में विद्यमान् अमृतकुम्भ को पाने और देने का कभी भी प्रयास किया है? क्या इन मेलों से देश और जनता का कोई लाभ हुआ है? (६) जिन्हें अपने निवास स्थान पृथ्वी के ही मानचित्र का पता नहीं है तथा जो चन्द्रमा को सूर्य से बड़ा एवं ऊपर कहते हैं उनके बताये स्वर्ग संस्थान पर और स्वर्गप्राप्ति के उपायों पर हम कैसे विश्वास करें?

जैनधर्म का भूगोल खगोल

जैनियों का भूगोल-खगोल भी प्रायः भागवत सरीखा ही है। उसमें भी जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है किन्तु भागवत का योजन चार कोस का है और जैनों का दस सहस्र कोस का। इस प्रकार जम्बूद्वीप एक अरब कोस का हो जाता है। जैनधर्म में भी पृथ्वी गोल नहीं बल्कि कुंभार के चाके सी चपटी है, उसमें प्रत्येक द्वीप एक समुद्र से घिरा है और उस समुद्र को दूसरे द्वीप ने घेर रखा है। भागवत में सात द्वीप और सात सागर हैं पर जैनों के पन्नवणा सूत्र के अनुसार उनकी संख्या लम्बी है। चालीसवें समुद्र के विस्तार की संख्या में २० अंक हैं। जम्बूद्वीप में दो-दो सूर्य-चन्द्र हैं पर पुष्कर सागर में ४१२। विजया नगरी दो करोड़ ४० लाख कोस लम्बी-चौड़ी है। सूर्य एक देव है, वितंसक विमान पर रहता है, उसको चार पटरानियाँ हैं और प्रत्येक के पास चार-चार सहस्र दासियाँ हैं। भागवत में प्रियव्रत, मार्कण्डेय और दुर्वासा की आयु लाखों वर्ष है पर ऋषभदेव की आयु २१ अंकों में लिखी जाती है। अजितनाथ, संभवनाथ आदि की भी वही स्थिति है। उनके शरीर १५०० हाथ लम्बे हैं और कुरुक्षेत्र में ८४००० नदियाँ हैं।

सूफीमत के भूगोलखगोल और स्वर्गनरक

ईश्वर ने अपने शरीर से एक ज्योति पैदा की, उसे प्रेम से देखा, लजाये और पसीना आ गया। उन्होंने उससे अनेक आत्माएँ रचीं। ज्योति को फिर देखा, फिर पसीना आया उससे एक सिंहासन बनाया और उससे नीचे आठ स्वर्ग रचे। वे मोती, कस्तूरी, सोना, चाँदी, मूँगा आदि सदृश हैं और उनके नाम आनन्दवन, शाश्वतवन आदि हैं। प्रथम स्वर्ग में (तूबा) आनन्द वृक्ष की जड़ है और उसकी शाखाएँ हर स्वर्ग में फैली हैं। उनके हर भवन पर एक शाखा लटकी है। इन स्वर्गों में पुण्यात्माओं के लिए भव्य भवन हैं, मनोहर उद्यान हैं, नदियाँ हैं, हूरें (अप्सराएँ) हैं और गिल्में (युवकदास) हैं। इनमें नीचे छः सागर हैं, सागरों के नीचे सात आकाश हैं और वे कोहकाफ पर्वत पर टिके हैं। सबसे नीचे वाले आकाश के नीचे पानी का सागर है। सूर्य, चन्द्र और तारे उसमें तैरते रहते हैं। वह वायु पर टिका है। उसका एक बूँद जल भी धरती पर नहीं आता। उस सागर के बीच में धरती की सीध में एक अन्य सागर भी है। उसी का जल वर्षा में धरती पर आता है। उसकी प्रत्येक बूँद के साथ एक देवदूत नीचे आता है और बूँद को यथास्थान रखता है। उन देवों के शरीर प्रकाश के होते हैं अतः आपस में टकराते नहीं।

पृथ्वी चपटी है, कोहकाफ से घिरी है, उसके भीतर आठ पर्वतमालाएँ हैं और इन आठ पर्वतों के बीच सात सागर

हैं। इन पर्वतों और सागरों में जिन्नों और परियों का निवास है। बाहर वाले पर्वत को एक विशालकाय साँप ने लपेट रखा है। इस धरती के नीचे छ: अन्य धरतियाँ भी हैं। परमात्मा के आदेश से उन सब को एक देवदूत ने अपने कन्धे पर रोक रखा है, उसके पैर के नीचे एक शिला है, शिला के नीचे साँड़ है, साँड़ के नीचे मछली है, मछली सागर में हैं और उस सागर के नीचे क्रमश: सात नरक हैं तथा उनके नीचे अन्धकार आदि हैं।

परमात्मा ने चन्द्रलोक को अलरूह से बनाया। इसमें आदम रहते हैं। बुध और शुक्र ग्रहों में देवदूत हैं। सूर्य लोक में इद्रीस, यीशु, सोलमन आदि मसीहे और पैगम्बर हैं। मंगललोक में मृत्युदूत अजरायल रहते हैं। बृहस्पति में पशु, पक्षी, मनुष्यादि की आकृतियों वाले माइकेल आदि दयालु देवदूत हैं तथा शनि में अन्य देवदूत रहते हैं। शनि सबसे पहले मुहम्मद की ज्योति से बना है। इसके ऊपर सितारों का लोक है।

इस्लाम का कथन है कि मृतक को कब्र में सुलाने के थोड़ी ही देर बाद आसमान से दो फरिश्ते आ कर उसे जिला देते हैं, उससे अनेक प्रश्न पूछते हैं, उसकी नाना दुर्दशा करते हैं, उसके शरीर के टुकड़े करते हैं और फिर जिला देते हैं। फरिश्तों के आदेश से वह मृतक अपनी अँगुली की लेखनी से और थूँक की स्याही से कफन पर जीवन भर की सारी घटनाएँ लिखता है। फरिश्ते उसे उसके गले में बाँध देते हैं और अन्त में ईश्वर उसी के आधार पर निर्णय सुनाते हैं। कयामत (महाप्रलय) के दिन सूर्य और पृथ्वी स्थिर हो जाते हैं, सूर्य पृथ्वी के अति निकट आ जाता है, वन भस्म हो जाते हैं, तारे टूट टूट कर गिर जाते हैं, समुद्र सूख जाते हैं और पृथ्वी एक समतल मैदान हो जाता है। तब वहाँ सृष्टि के आरंभ से महाप्रलयकाल तक के छोटे–बड़े–मकोड़े, जलचर–थलचर, पशु–पक्षी, वानर–मानव आदि सब प्राणी इकट्ठे हो जाते हैं और साकार ईश्वर एक सिंहासन पर बैठ जाते हैं। सबके पुण्य–पाप तराजू पर तौले जाते हैं और निर्णय हो जाने के बाद वे सब सरात नामक उस पुल से स्वर्गों और नरकों में भेजे जाते हैं जो बाल से पतला और तलवार से तीक्ष्ण है। स्वर्ग और नरक आठ आठ हैं। जिन्होंने अपने जीवन में अनेक बकरे आदि काटे हैं तथा अन्य पुण्यकार्य किये हैं वे महात्मा शीघ्रगामी अश्व पर बैठ कर उसी पुल से जन्नत (स्वर्ग) चले जाते हैं और इस्लाम के इन सिद्धान्तों पर विश्वास न लाने वाले काफिर (नास्तिक) जहन्नुम (नरकों) में भेज दिये जाते हैं। वे पुल से जाते समय उस सागर में गिर पड़ते हैं जिसका हमारी वैतरणी सरीखा पानी सदा खौलता रहता है। स्वर्ग में अतिशय सुन्दर हूरें (अप्सराएँ), गिलमान (सुन्दर पुरुष दास,) नाना प्रकार की शराब और विलास की अन्य सामग्रियाँ भरी रहती हैं। बन्दों, हूरों और गिलमों को कभी बुढ़ौती नहीं आती। एक–एक बन्दे को ७०, ७०, ७२, ७२ हूरें–गिल्में मिलते हैं। जहन्नुम की स्थिति हमारे नरकों सी होती है।

स्वर्ग, पितृलोक और नरक

प्राय: हर धर्म के पुराण स्वर्ग और नरक को आकाश में मानते हैं और वहाँ मरने के बाद ही पहुँचा जाता है पर हमारे पुराणों में भूमि पर भी स्वर्ग–नरक का वर्णन है। देवीभागवत (३। १३) में भी लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्रादि देव सुमेरु पर्वत पर रहते हैं किन्तु भास्कराचार्य ने पितृलोक चन्द्रमा के ऊपर वाले भाग पर माना है। यह भी पुराणों का ही मत है।

> चकार ब्रह्मलोकं च मेरुशृंगे मनोहरम्। शिवोपि परमंस्थानं कैलासाख्यं चकरह॥ वैकुण्ठं भगवान् विष्णू रमारमणमुत्तमम्। स्वर्गस्त्रिविष्टपो मेरुशिखरोपरि कल्पितः। तच्च स्थानं सुरेन्द्रस्य नानारत्नोपशोभितम् (देवीभागवत)॥ विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति (भास्कर)॥

भागवत, गरुड़पुराण आदि पुराणों ने वैतरणी को पीब, रक्त आदि से भरी भीषण नदी कहा है पर महाभारत वनपर्व

(अध्याय ८३) में लिखा है कि त्रिविष्टप में जाओ, वहाँ पुण्य नदी वैतरणी में नहाओ और शिव की पूजा करो तो परम गति पाओगे। यह ग्रन्थ भी व्यास का ही लिखा है।

ततः त्रिविष्टपं गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रणाशिनी॥
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम्।
सर्पपापविशुद्धात्मा लभते परमां गतिम्॥

गरुड़पुराण में स्वर्ग, नरक और वैतरणी

वेदों में शंख चक्र गदाधारी विष्णु का और उनके वाहन गरुड़ पक्षी (टिटिहिल) का वर्णन नहीं है। वहाँ आलंकारिक भाषा में परमात्मा को ही दिव्य सुपर्ण और गरुत्मान् कहा है किन्तु पुराणों में विष्णु गरुड़ से बात करते हैं। वही वार्तालाप गरुड़पुराण है। उसके स्वर्ग नरक भागवत के विपरीत हैं, आकाश में हैं। लिखा है कि मरते समय यम के दो नंगे, खड़े बालों वाले, काले कलूटे तथा दण्डपाशधारी भीषण दूत आते हैं। वे दाँतों को कटकटाते रहते हैं और अंगुष्ठ मात्र मृत पुरुष को बुरी तरह मारते–पीटते आकाश में ले जाते हैं। उस समय दस दिनों तक जो पिण्ड दिये जाते हैं उन्हीं से मृतक का नया शरीर बनता है। किस पिण्ड से कौन अंग बनता है, इस विषय में पुराणों में मतभेद है।

पाशदण्डधरौ नग्नौ दन्तैः कटकटायतौ।
ऊर्ध्वकेशौ काककृष्णौ वक्रतुण्डौ नखायुधौ॥
प्रथमेऽहनि यो पिण्डस्तेन मूर्धा प्रजायते।
ग्रीवास्कन्धौ द्वितीयेन दशमेन क्षुधातृषा॥

मृतक को मार्ग में क्रूर, आपत्ति, कष्ट, रुदन, शीत और सन्तप्त आदि नामों वाले १६ भीषण पुर मिलते हैं और वह ८६००० योजन चलने के बाद धर्मराज के यहाँ पहुँचता है। उस मार्ग में वह काँटे , छुरे की धार, जलते अंगार और त्रिशूलों पर, जोंकों से भरी खौलते कीचड़ में, विषैले धुँयें में तथा साँप, बिच्छू, गीध, वाघ, काक आदि के समूहों में होकर छटपटाता हुआ जाता है। उस मार्ग के बीच उसको रक्त, पीव, विष्ठा और मूत्रादि से भरे अनेक लम्बे–लम्बे ताल मिलते हैं और ८०० मील चौड़ी वह वैतरणी नदी मिलती है जो पीव, रक्त, हड्डी, मांस, मज्जा, केश, जोंक, मछली, मगर, काले साँप और बिच्छू आदि अनेक भीषण जन्तुओं से भरी है। उन जन्तुओं के मुख सुई सरीखे होते हैं नदी के ऊपर अनेक गीध, कौवे आदि मँडराया करते हैं। वहाँ न वृक्ष की छाया है, न पीने को पानी है, न खाने को अन्न है। बारह सूर्य तपते रहते हैं और लोग छटपटाते रहते हैं। यात्री को कहीं बाघ और कुत्ते नोचते हैं, तो कहीं कौवे और गीध शरीर खोदते हैं। कहीं अंगार और पत्थर की वर्षा होती है तो कहीं रक्त, पीब, कीचड़ और जलते पानी की (गरुडपुराणसार २)।

कण्टकैर्विध्यते क्वापि क्वचित् सर्पैर्महाविषैः।
वृश्चिकैर्दश्यते क्वापि क्वचिद्दह्याति चाग्निना॥
भक्ष्यते स श्वभिर्व्याघ्रैर्याति सन्तप्तकर्दमे।
क्वचिदंगारवृष्टिश्च विष्ठापूर्णा ह्रदाः क्वचित्॥
शतयोजनविस्तीर्णा घोरा वैतरणी नदी।
अस्थिवृन्दतटा दुर्गा मांसशोणितकर्दमा॥
अगाधा क्वथते सा च कटाहन्तर्घृतं यथा।

काकैर्गृध्रैर्वज्रतुण्डैः सेविता कृष्णपन्नगैः॥

वैतरणी का पानी कड़ाहे में रखे घी की भाँति खौलता रहता है। नदी के बिच्छू यात्री को डंक मारते हैं, काले साँप डँसते हैं, नदी के भँवर पाताल में ले जाते हैं और बाद में यमदूत बाहर निकाल कर उनके नाक–कान में फन्दा डाल कर घसीटते हैं। तब वे उल्टी करते हैं, उसी को खाते हैं और विलाप करते हैं कि हाय हाय! हमने न गंगा स्नान किया, न व्रत उपवास द्वारा शरीर सुखाया, न पुराणों की कथा सुनी, न ब्राह्मणों के चरण पूजे। स्त्रियाँ बिलखती हैं कि पिछले जन्मों के पापों के कारण अनेक कष्ट देने वाला यह नारी शरीर मिला पर हमने न तो पति की पर्याप्त सेवा की न विधवा होने पर चिता पर शरीर जलाया।

नासाग्रपाशकृष्टाश्च कर्णपाशैस्तथा परे।
वमन्तो रुधिरं वक्त्रात् तदेवाश्नन्ति ते पुनः॥
न पूजिता विप्रगणाः सुरापगाः श्रुतं पुराणं न सुरा न पूजिताः।
पतिव्रतं नैव कदापि पालितं वह्निप्रवेशों ने कृतो मृते पतौ॥
वैधव्यामासाद्य तपो न सेवितं व्रतोपवासैर्न विशोषिता तनुः॥

गोदान—नरक और वैतरणी के कष्ट से बचने के लिए गरुड़ पुराण में अन्तर्धेनु, रुद्रधेनु, ऋणधेनु, मोक्षधेनु आदि के दान का आदेश है। लिखा है कि मनुष्य जन्म से लेकर मरण तक रात में, दिन में, प्रातः, सायंकाल में और पिछले जन्मों में जितने भी मानसिक, वाचिक और शरीरिक पाप किये रहता है, उन सब को यह गोदान समाप्त कर देता है। चूँकि ब्राह्मण की दी गयी गाय वैतरणी से पार कर देती है, तार देती है, इसलिए बैतरणी कही जाती है। दान का विधान यह है कि पहले एक लम्बा गड्ढा खोदो और उसे वैतरणी नदी समझ लो। उसमें ईख की एक नौका बना कर डाल दो। उस पर ताँबे के पात्र में यमराज की सोने की मूर्ति रखो। पात्र में वस्त्र बिछा हो और यमराज के हाथ में डण्डा हो। एक ऐसी काली या पाटला (लालश्वेत) गाय मँगाओ जो सुलक्षणा हो, दूध देने वाली हो और बछड़े के साथ हो। गाय को माला आदि से अलंकृत करो, उसकी सींगों को सोने से, खुरों को चाँदी से और शरीर को दो वस्त्रों से ढँको। गले में घण्टा बाँध दो और दुहने के लिए काँसे की एक बाल्टी मँगा लो। काँसे के पात्र में घी भर कर तथा दान की अन्य सामग्री नाव पर रखो और नाव को पट्टसूत्र से ढँक दो। गाय की पूँछ पकड़ो, ब्राह्मण को आगे करो, वैतरणी पार हो जाओ, चन्दन, पुष्प, माला आदि से ब्राह्मण को पूजो और प्रार्थना करो कि हे देव! आप साक्षात् विष्णु हैं, जगन्नाथ हैं, शरणागतवत्सल हैं और भवसागर में निमग्न दुखियों के त्राता हैं अतः कृपया मुझे बचा लें। महाघोर यममार्ग में पड़ने वाली ८०० मील चौड़ी भीषण वैतरणी नदी को पार करने के लिए मैं आप को यह गाय दे रहा हूँ। इसके बाद गाय से प्रार्थना करो कि हे माता! तुम वहाँ मेरी प्रतीक्षा करना और मुझे पार कर देना। इसके बाद गाय और ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करके सारी सामग्री एवं दक्षिणा ब्राह्मण को दे दो। ऐसा करने पर मनुष्य सुखपूर्वक धर्मराज के यहाँ पहुँच जाता है और वैतरणी उसके मार्ग में दीखती ही नहीं। इसलिए केवल मरणकाल में ही नहीं बल्कि गंगादि तीर्थों में, ब्राह्मणों के घरों में सूर्य–चन्द्र ग्रहण में, संक्रान्ति में, अमावास्या में, दोनों अयनों के आरम्भ में, युगादि में, मन्वादि में, व्यतीपात में और अन्य पुण्य कालों में इसी प्रकार ब्राह्मण को गाय देते रहो तो तुम्हें मरने पर नरक और वैतरणी का दर्शन नहीं होगा।

गौरियं तीर्यते यस्मात्तस्माद् वैतरणी स्मृता।
कृष्णां व पाटलां वापि धेनु कुर्यादलंकृताम्॥
स्वर्णशृंगीं रौप्यखुरां कांस्यपात्रोपदोहिनीम्।
कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां कण्ठघण्टासमन्विताम्॥

नावमिक्षुमयीं कृत्वा पट्टसूत्रेण वेष्टयेत्।
यमं हैमं न्यसेत्तत्र लोहदण्डसमन्वितम्॥
सालंकाराणि वस्त्राणि ब्राह्मणाय प्रकल्पयेत्।
पूजां कुर्याद् विधानेन तस्य पुष्पाक्षतादिभिः॥
प्रार्थयेत्त्वं जगन्नाथः शरणागतवत्सलः।
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर॥
यममार्गे महाघोरे तां नदीं शतयोजनाम्।
तर्तुकामो ददाम्येतां तुभ्यं वैतरणीं नमः।
धेनुके मां प्रतीक्षस्व यमद्वारे महापथे॥
चन्द्रसूर्योपरागेषु संक्रान्तौ च युगादिषु।
अन्येषु पुण्यकालेषु कुर्याद् गोदानमुत्तमम्॥

शंकाएँ—(१) मरने के बाद भी यदि शरीर रहता है तो पिण्डदान द्वारा नया शरीर क्यों बनवाया जाता है? (२) क्या भात के पिण्डों से नया शरीर बन सकता है? (३) जिन जातियों में पिण्डदान नहीं होता उनके पितर क्या शरीरहीन रहते हैं? (४) किस दिन के पिण्ड से शरीर का कौन सा अंग बनता है, इस विषय में गरुड़पुराण और प्रेतमंजरी आदि ग्रंथों में मतभेद क्यों है? (५) किसी पोथी में मृतक का शरीर अंगुष्ठमात्र और किसी में हाथ भर का क्यों लिखा है? (६) गरुड़पुराण के मत से प्रथम दिन के पिण्ड से सिर, दूसरे से कन्धा, तीसरे से हृदय और दसवें दिन के पिण्ड से भूख-प्यास बनते हैं तो हृदय और भूख-प्यास आदि से विहीन शरीर हमारी पूजा कैसे लेता है और अपना काम कैसे करता है? (७) वह यममार्ग में कैसे चलता है और कैसे यातनाएँ भोगता है? (८) पुराणादिकों का कथन है कि मरने के बाद भी सूक्ष्म शरीर रहता है, समाप्त नहीं होता। तो क्या वह कथन झूठा है? (९) यममार्ग में बारह सूर्य तपते हैं और अग्नि, शस्त्र, विष आदि की सर्वदा वर्षा होती रहती है तो मृतकों की खाने वाले कुत्ते, गीध, कौवे आदि वहाँ जीवित कैसे रहते हैं? (१०) जो यमराज पापियों को मरने के बाद इतना कष्ट देते हैं वे मरने के पहले ही कष्ट देते तो संसार में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापन हो जाता। कोई पाप करता ही नहीं। वे ऐसा क्यों नहीं करते। (११) गरुड़पुराण में लिखा है कि कर्मों के फल भोगने ही पड़ते हैं। बिना भोगे वे कोटिकल्पों में भी समाप्त नहीं होते (५।५७)।

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृत कर्म शुभाशुभम्॥

तो फिर वे गंगा में नहाने से और ब्राह्मण को गाय आदि देने से कैसे समाप्त हो जाते हैं? (१२) क्या एक गाय ८०० मील चौड़ी खौलते पानी वाली वैतरणी को पार कर जायेगी? (१३) नदी में रहने वाले भीषण जन्तु उसे क्यों नहीं खायेंगे? (१४) गोदान करने वाले को यह वैतरणी दिखाई क्यों नहीं देती? (१५) बार-बार गोदान करने पर भी परिवर्तित न होने वाली आँखे क्या मरने पर बदल जाती हैं? (१६) एक पुराण कहता है कि गाय वैतरणी पार कर देती है। दूसरा कहता है कि वैतरणी अदृश्य हो जाती है। हम किसकी बात मानें? (१७) राजा सगर के पुत्र शरीर भस्म होने पर कपिलाश्रम के पास पड़े रहे और लाखों वर्ष बाद गंगा के आने पर तरे। यमदूतों ने उन्हें इतने दिनों तक वहाँ कैसे रहने दिया? (१८) राजा त्रिशंकु अनेक यज्ञ करने के बाद भी अभी आकाश में टँगे हैं। यमदूत उन्हें कहीं ले क्यों नहीं गये? (१९) कोई मनुष्य सदेह स्वर्ग नहीं जा सकता तो विश्वामित्र सदृश महाज्ञानी ने त्रिशंकु को स्वर्ग पहुँचाने का प्रयास क्यों किया? क्या वे इस विधान से अनभिज्ञ थे? (२०) राजा दशरथ कैकेयी सहित तथा रथ और घोड़ों सहित इन्द्र की सहायता के लिए अनेक बार स्वर्ग कैसे चले गये? (२१) सात सौ नारियों से विवाह करने वाले तथा एक तपस्वी के घातक दशरथ को इन्द्र ने स्वर्ग में कैसे घुसने दिया? (२२) अध्यात्मरामायण

और वाल्मीकिरामायण का कथन है कि राजा दशरथ वहाँ एक बहुत बड़ी सेना लेकर गये थे।

पुरा देवासुरे युद्धे राजा दशरथः स्वयम्।
जगाम सेनया सार्धं त्वया सह शुभानने॥

तो देवों ने उन सैनिकों को स्वर्ग में क्यों घुसने दिया? (२३) दशरथ के घोड़े आकाश में कैसे उड़ते रहे और इतनी दूर कैसे पहुँच गये? (२४) दोनों रामायणों में लिखा है कि राजा दशरथ के रथ धुरा टूट गया या धुरे की कील टूट गयी तो दशरथ को पता नहीं लगा पर कैकेयी ने उसमें हाथ डाल कर संभाल लिया। शंका होती है कि (२५) राजा ने पहले से रथ की जाँच क्यों नहीं करायी? (२६) उन्हें पता क्यों नहीं लगा? (२७) वे पत्नी को राक्षस–युद्ध में क्यों ले गये? (२८) पत्नी रथ के साथ कैसे दौड़ रही थी? उसके पैर कहाँ चलते थे? (२६) धूरे या कील के स्थान में हाथ कैसे काम करता रहा? (३०) राजा धुरा, कील, बाण आदि अतिरिक्त सामग्री साथ में क्यों नहीं ले गये? (३१) राजा दशरथ इन्द्र से बली थे तो यज्ञों में (इन्द्राय स्वाहा) क्यों करते थे? (३२) अर्जुन कई बार इन्द्र की सभा मैं कैसे पहुँच गये? (३३)उर्वशी रात को अर्जुन के पास कैसे आ गयी? इस स्वर्ग कथा में अन्य अनेक शंकाएँ हैं।

वैदिक स्वर्ग, नरक और पितृलोक

वेद इन तीनों को आकाश में ही मानते हैं। ऋग्वेद के यम पितरों और देवों के साथ रहते हैं तथा पितृपति कहे जाते हैं। वेदों में यमलोक, यमदूत, यमराज और उनके कुत्तों का वर्णन है। कुत्ते दो हैं, चार आँखों वालें हैं, चितकबरे हैं और भीषण हैं। यमदेव सूर्य के पुत्र और यमी के भाई हैं। वेद में अग्नि से प्रार्थना की जाती है कि आप मृतक के शरीर को पूरा समाप्त न कर दें ताकि वह पुनः जन्म ले। इसे पितरों के पास भेज दें। शव को चिता पर रखने के बाद भूमि से प्रार्थना की जाती है कि इसने बहुत दक्षिणा दी है अतः कष्ट न पावे। लिखा है कि जो शूर युद्ध में मरते हैं अथवा जो सहस्त्रदक्षिणा देते हैं वे देवों के पास जाते हैं। दक्षिणा देने वाले स्वर्ग में देवों से मिलते हैं, अद्‌भुत सुख, अमृत और तेज पाते हैं तथा उन पर आकाश से मधुवृष्टि होती है। वहाँ वैवस्वत यम का वास है और गीतों का नाद है।

अतिद्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितृन्त्सुविदत्रानुपेहि यमेन सधमादं मदन्ति १०।१४।१०॥
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षुसौ।
ताभ्यामेनं परिदेहि राजन् स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि १०।१४।११
उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् १०।१४।१२
मैनमग्ने विदहो माभि शोचो मास्यं त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोथमैनं प्रहिणुतात् पितृभ्यः १०।१६।१
सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः १०।१६।३
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् १०।१६।४
अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो...आयुर्वसान संगच्छतां तन्वा १०।१६।५
उपसर्प मातरं भूमिं...दक्षिणावत एषा त्वा पातु १०।१८।१०
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः १।१५४।२
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः।

ये वा सहस्त्रदक्षिणास्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् १।१५४।३ ऋग्वेद

यहाँ प्रथम मन्त्र में सारमेय, श्वान, चतुरक्ष और शवल शब्द आये हैं। सारमेय और श्वान का एक ही अर्थ है पर यहाँ वे दोनों विशेष्य–विशेषण हैं। महर्षि दयानन्द ने यहाँ दिन और रात को ही दो श्वान माना है। यमराज को सूर्य का पुत्र (वैवस्वत) कहा जाता है। दिन–रात भी सूर्यपुत्र हैं। उन्होंने सारमेय का अर्थ सरमा (उषा) की पुत्री किया है। वे चार आँखों वाले चतुरक्ष हैं अर्थात् चारों ओर देखते हैं। उनकी गति तीव्र है इसलिए वे श्वान हैं। वे काले–गोरे होने से शबल हैं और मनुष्य की आयु को कम करते हैं।

ऋग्वेद में दक्षिणा का वहुत महत्त्व है। स्वर्गसुख का वह मुख्य साधन है। अश्व, गज, सुवर्ण, रत्न, दासी, अन्न, शय्या आदि का दान देने वाले स्वर्ग में उच्च पद पाते हैं, यमलोक में सूर्य के साथ रहते हैं, अमर हो जाते हैं और दीर्घायु होते हैं (देखिए आगे दक्षिणाप्रकरण)। ऋग्वेद में कबूतर और उल्लू को यमदूत कहा है (देखिए शकुन प्रकरण)।

अनस्थाः पूताः पवेनन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः स्वर्गे लोके वहुस्त्रैणमेषाम् ४।३४।२
विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदाचन। आस्ते यम
उपयाति देवान् स गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ४।३४।३
विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानृ यमः परिमुष्णाति रेतः।
रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वातिदिवः समेति ४।३४।४
एतास्त्वाधारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमानाः ४।३४।५
घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ४।३४।६
इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्।
क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपाधेनुः कामदुधा में अस्तु ४।३४।८

अर्थ—जो यजमान उपर्युक्त विधि से पका कर ब्राह्मण को ओदन (भात) देते हैं वे शुद्ध और शुचि होकर शुद्ध शुचि लोक में जाते हैं। स्वर्गलोक में बहुत सी स्त्रियाँ हैं। वहाँ शिश्नदाह नहीं होता। इस ओदन को पकाने वाले दरिद्र नहीं होते। वे यम के पास जाते हैं और गन्धर्वों तथा देवों के साथ प्रसन्न रहते हैं। यम उनके रेतस् को नहीं चुराते। वे रथ पर चलते हैं और पक्षी होकर स्वर्ग में पहुँच जाते हैं। स्वर्ग में मधु की धाराएँ मिलती हैं। तुम्हें स्वर्ग में वे घृत के सरोवर तथा मधु, सुरा, क्षीर, जल, दधि आदि की धाराएँ प्राप्त हों। मैं यह ओदन ब्राह्मणों में रखता हूँ। यह धेनु मेरे लिए कामदुघा हो।

ऋग्वेद में नरक की यातनाओं का स्पष्ट उल्लेख नहीं है पर यम, यमदूत और पृथ्वी के नीचे गर्त एवं अन्धकार का उल्लेख है। वाजसनेयिसंहिता ३०।५ में 'नारकाय वीरहणं' वाक्य आया है। और ४०/२ में लिखा है कि हत्या करने वाले पापी लोग मरने के बाद अन्धकार से आवृत असुर लोकों में जाते है अतः किसी का धन मत लूटो।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
तांस्ते–प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महतो जनाः॥

तैत्तिरीय आरण्यक में विसर्पी, अविसर्पी, विषादी और अविषादी नामक चार नरकों का वर्णन है पर यातनाओं का पैराणिक वर्णन नहीं है। अथर्ववेद में कुछ है।

स्वर्ग–नरक की योगियों की परिभाषा

हमारे वेदों और अन्य ग्रन्थों में स्वर्ग प्राप्ति का मुख्य साधन यज्ञ है, पर बाद में हिंसात्मक तामस यज्ञों का घोर विरोध होने लगा। उपनिषदों ने, गीता ने, जैनियों ने, बौद्धों ने और अनेक सम्प्रदायों ने योगयज्ञ, ज्ञानयज्ञ और कर्मयाग आदि की प्रशंसा की तथा भागवत ने भी लिखा कि (१) तम की वृद्धि ही नरक है और सत्त्वगुण का पूर्णोदय ही स्वर्ग है। (२) आचार्य शबर ने लिखा कि प्रीति और शान्ति ही स्वर्ग है। (३) महाभारत (शान्तिपर्व २८।४२) ने लिखा कि किसी ने इन आँखों से स्वर्ग देखा नहीं है फिर भी हमें आगमों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए क्योंकि वैसा करने पर लोग सत्कर्म में श्रद्धा छोड़ कर पथभ्रष्ट हो जायेंगे। (४) ब्रह्मपुराण (२२।२४) का कथन है कि जिस स्थिति में अन्तरात्मा को सन्तोष और शान्ति की प्राप्ति होती है वह स्वर्ग है और उसके विपरीत नरक है। (५) विष्णुपुराण (२।६।४६) का कथन है कि पाप में प्रवृत्ति ही नरक है और पुण्य में प्रीति ही स्वर्ग है। (६) बौद्धों के धम्मपद में स्वर्ग, नरक, यमराजा और यमलोक आदि शब्द आये हैं पर उनके अभिप्राय भिन्न हैं। उसमें लिखा है कि पापी यहाँ और वहाँ शोकमग्न रहता है पर पुण्यात्मा सर्वत्र प्रसन्न रहता है। १।१५ उसके द्वीप को बाढ़ डुबो नहीं पाती २।५। वह प्रज्ञा रूपी पर्वत पर खड़ा रहता है २।८। यमराज को नहीं देखता ४।३ उसकी गति अज्ञेय है ७।३। उसे देव चाहते हैं ७।५। वह जहाँ रहता है वह स्थान स्वर्ग है ७।९। उसे ब्रह्मा, देव गन्धर्व और मार जीत नहीं सकते ८।६। आकाश में, समुद्र में, पर्वतों में और सारे विश्व में कोई ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ छिप कर पापी कर्मफल से बच सके ९।१२ वह नरक भोगता है। २२।१ (७) श्री शंकराचार्य ने मणिरत्न माला में तृष्णाक्षय को स्वर्ग और देह तथा नारी के प्रति मोह को नरक कहा हैं।

(१) नरकस्तम उन्नाहः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः॥
(२) अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वः पदास्पदम्।
(३) न दृष्टपूर्वप्रत्यक्षं परलोकं विदुर्बुधाः।
आगमांस्त्वनतिक्रम्य श्रद्धातव्यं बुभूषता॥
(४) आत्मप्रीतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः॥
(५) नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तमाः॥
(६) पव्वतहो अवेक्खति। अदस्सनं मच्चराजस्स।
नेव देवो न गन्धब्बो न मारो सह ब्रह्मना॥
(७) को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः तृष्णाक्षयः स्वर्गपदम्॥

स्वामी करपात्री जी और स्वर्ग

''वेदों' का मुख्य कर्म यज्ञ है और यज्ञ से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। लिखा है—स्वर्गकामो यजेत। किन्तु दयानन्द स्वर्ग को नहीं मानते। वे कहते हैं कि यज्ञ से स्वर्ग नहीं मिलता, वायुमण्डल की शुद्धि होती है। किन्तु यह कथन मीमांसा शास्त्र से अनभिज्ञ किसी मूर्ख को ही शोभा देता है और नास्तिकता का प्रचारक है। क्या उनके कथन का समर्थक कोई वेदमन्त्र है? सीमित घी, अन्न और औषध आदि को जलाने से असीमित दुर्गन्ध का निवारण कैसे हो जायेगा? अश्वमेधादि बड़े-बड़े यज्ञ परोपकार के लिए नहीं किये जाते। दक्षिणा से मोल लिये पुरोहितों और यजमान के कर्मो का फल केवल यजमान को मिलता है। यज्ञ का फल केवल स्वर्ग प्राप्ति है, वृष्टि आदि नहीं। धुआँ तो कारखानों से भी निकलता है। होम से सुगन्ध का मिश्रण होगा, दुर्गन्ध का नाश नहीं। उसे तो प्रकृति करती है। वायुशुद्धि के लिए होम किया जाता है तो मन्त्र क्यों पढ़े जाते हैं? विद्वान् देव नहीं होते। आकाश में स्वर्ग है और वहाँ इन्द्रादिदेव रहते हैं।''

शंका—(१) पुराणों में इन्द्रालोक के अतिरिक्त साकेतलोक, गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक, सत्यलोक और मणिद्वीप आदि अनेक श्रेष्ठ लोकों का वर्णन है और वे सब अपने को ही श्रेष्ठ कहते हैं तो उनमें से स्वर्ग कौन सा है? (२) वेद के लगभग हर प्रार्थना मंत्र में शंनः शब्द का प्रयोग है। उसका अर्थ यह है कि आप हम सब का (नः) कल्याण करें तो यह कैसे माना जाय कि यज्ञ केवल स्वार्थ के लिए किये जाते हैं। गीता में लिखा है कि यज्ञ से वृष्टि होती है और यज्ञ में वेदमन्त्रों द्वारा यह प्रार्थना की जाती है कि हे परमात्मा! यहाँ यथेष्ट वृष्टि हो—

यज्ञाद् भवति पर्जन्यः। पर्जन्योऽभिवर्षतु॥

तो यह कैसे कहा जा सकता है कि यज्ञ का वृष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं है। यज्ञ में यह प्रार्थना की जाती है कि ब्राह्मण ब्रह्मवर्चसी हों, राजा शूर हों, गायें दुधारू हों, नारियाँ पतिव्रता हों, वृष्टि पर्याप्त हो, औषधियाँ फलवती हों और हम सब सुखी रहें। हम किसी के धन का अपहरण न करें, सब लोग कान से सदा भद्र सुनें, हम सबको मित्र की दृष्टि से देखें, साथ साथ चलें-बोलें, हमारे मन्त्र और समितियाँ समान हों, हृदय समान हों, किसी से द्वेष न हो, हमारे पीने-खाने के स्थान समान हों, सम्पूर्ण आकाश शान्त हो, पृथिवी शान्त हो और हम सब धनी हों। ऐसे कई सहस्र मन्त्रों के रहते यह कैसे कहा जा सकता है कि यज्ञ केवल स्वार्थ के लिए किये जाते हैं और ब्राह्मण उसमें बिक जाते हैं।

आब्रह्मन् ब्राह्मणों ब्रह्मवर्चसी जायतां राजन्यः शूरो दोग्ध्री धेनुः।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयो योगक्षेमो नः॥
मा गृधः कस्यस्विद्धनं, भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम, मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥ संगच्छध्वं संवदध्वं समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः। द्यौः शान्तिः, वयं स्याम पतयो रयीणां, भूरिदा भूरि देहि नः॥

आप के श्रौतयागों का मुख्य कर्म नाना प्रकार के पशुओं की बलि और मदिरा आदि का प्रयोग है। आप के मान्य भाष्यकारों सायण, उक्त और महीधर ने तैतिरीय संहिता और यजुः संहिता के भाष्यों में जिस अश्लील भाषा और जिन लज्जास्पद विधानों का समर्थन किया है उन्हें देख-सुनकर लज्जा भी भाग जायेगी। (उसका एक अंश पीछे १४५ पृष्ठ में देखें) वहाँ लिखा है—

"तावुभौ चतुरः पदः प्रसारयावः, एवं संवेशनप्रकारः। हे अश्वमहिष्यौ! युवां स्वर्गे लोके-अस्यां यज्ञभूमौ आच्छादयतम्। एष वै स्वर्गोलोको यत्र पशुँ संज्ञपयन्ति लिंगे यौनौ प्रविष्ट स्त्रियो जीवन्ति। महिषी स्वयमेव...॥"

यहाँ उस यज्ञभूमि को स्वर्ग कहा है जहाँ रानियाँ लम्बी सूइयाँ अश्व के पूरे शरीर में चुभोती हैं और उसका लिंग अपने हाथ से पकड़ कर....। तो क्या ऐसी यज्ञभूमि स्वर्ग होती है? क्या ऐसे कर्मों का फल स्वर्गप्राप्ति है? क्या ऐसा स्वर्ग कोई पावन स्थल हो सकता है? क्या पशुओं के रक्त, मांस, मज्जा, मदिरा की आहुति लेने वाले प्राणी देव होते हैं? क्या इस क्रिया को पाप कहने वाले बौद्धादि और इस अर्थ को न स्वीकार करने वाले दयानन्द अपराधी और मूर्ख हैं? क्या आप के पास गाली के अतिरिक्त चार्वाक के इन यज्ञों और स्वर्ग सम्बन्धी प्रश्नों का कोई समाधान कारक उत्तर है? क्या स्वर्ग से लौटे किसी व्यक्ति ने वहाँ की स्थिति बताई है? क्या चन्द्रमा को सूर्य से विशाल कहने वाला मनुष्य विश्वसनीय और स्वर्ग का द्रष्टा हो सकता है।

पृथ्वी चला या अचला

सारे विश्व की जनता बहुत दिनों से यह मानती चली आ रही थी कि पृथ्वी चपटी है, बैल की सींग पर स्थित है या दिग्गजों और शेषनाग के सिर पर टिकी है तथा भूकम्प और उल्कापात आदि के विषय में उसकी चित्रविचित्र कल्पनाएँ थीं परन्तु बाद में वे समाप्त हो गयीं फिर भी विश्व का एक उच्चशिक्षित वर्ग अभी भी उनसे चिपका है। हमारे यहाँ बुद्धदेव के बाद

आर्यभट (४९९ ईसवी) ने कहा कि जैसे तीव्रगति से चलने वाली नाव में बैठा मनुष्य किनारे के वृक्षों को विपरीत गति से पीछे की ओर जाता देखता है उसी प्रकार तीव्र गति से चलती हुई पृथ्वी पर बैठे हमलोगों को नक्षत्र चलते हुए दिखाई देते हैं पर सत्य यह है कि वे अचल हैं और पृथ्वी चलती है।

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम्॥

श्री आर्यभट जानते थे कि पृथ्वी वर्ष भर में सूर्य की प्रदक्षिणा करती है, एक अहोरात्रा में अपनी धुरी पर घूमती है और अपने आसपास के १२ योजन वायुमण्डल को लेकर चलती है परन्तु श्रीपति, लल्ल और भास्कर आदि ने वुद्ध और आर्यभट के विरोध में लिखा कि यदि पृथ्वी चलती तो उड़ते हुए पक्षी पुनः लौटकर अपने घोंसले में नहीं आ पाते। चूँकि पृथ्वी बहुत वेग से पूर्व को ओर जाती मानी जा रही है अतः यह बात सत्य होती तो मेघ भागते हुए देशों पर पर्याप्त पानी न बरसा पाते। पताकाएँ सदा पश्चिम ओर फहरातीं, पर्वत और गृह गिर जाते तथा बाण और मेघ सदा पश्चिम ओर ही जाते। मन्दगमन माना नहीं जा सकता क्योंकि पृथ्वी एक दिन में अपनी पूरी प्रदक्षिणा कर लेती है। भास्कराचार्य ने लिखा कि रे बौद्ध! तुझे यह बुद्धि कैसे उत्पन्न हो गयी कि पृथ्वी चलती है। ऐसा होता तो हाथ से उछाली वस्तु पुनः हाथ पर आ ही नहीं पाती।

यद्येवमम्बरचरा विहगाः स्वनीडमासादयन्ति न खलु भ्रमणे धरित्र्याः।
किं चाम्बुदा अपि न भूरिपयोमुचः स्युः देशस्य पूर्वगमनेन चिराय हन्त॥
भूगोलवेगजनितेन समीरणेन केत्वादयोप्यपरदिग्गतयः सदा स्युः।
प्रासादभूधरशिरांस्यपि संपतन्ति तस्माद् भ्रमत्युडुगणस्त्वचलाचलैव॥
यदि च भ्रमति क्षमा तदा स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः।
इषवोभिनभः पमुज्झिता निपतन्तः स्युरपांपतेर्दिशि॥
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो वरुणाभिभुखो व्रजेद् घनः।
अथ मन्दगमात् तथा भवेत् कथमेकेन दिवा परिभ्रमः॥
भूः खेऽधः खलु यातीति बुद्धिर्बौद्ध मुधा कथम्।
जाता यातं तु दृष्ट्वापि खे यत्क्षिप्तं गुरु क्षितिम्॥

भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में लिखा है कि पृथ्वी के चारों ओर १२ योजन (१०० मील) तक भूवायु है। पृथ्वी उससे बँधी है। मेघ और बिजली आदि उसी के भीतर हैं।

भूमेर्बहिर्द्वादशयोजनानि भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम्।

अतः पिछले आक्षेपों का इससे उत्तर दिया जा सकता था कि पृथ्वी इन सब को लेकर चलती है परन्तु विरोधियों को यह बात स्वीकार नहीं थी। ज्योतिष के महान् विद्वान् श्रीबापूदेव शास्त्री और श्री सुधाकर द्विवेदी ने अपने 'प्राचीन ज्योतिषाचार्याशय' वर्णन में अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया है कि भारत के प्राचीन आचार्यों को पृथ्वी का चलत्व ही अभिप्रेत था पर वे पुराणों के संकोचवश कह नहीं सके। कर्मकाण्डी भी सूर्य की स्थापना ग्रहवेदी के मध्य में ही करते हैं।

पृथ्वी चलती है

ग्रहगणित सम्बन्धी ऐसे पचीसों प्रश्न हैं जिनके उत्तर, पृथ्वी को चला माने बिना नहीं मिलते और चला मान लेने

पर दो क्षेत्रों द्वारा ही सबका समाधान हो जाता है। वराहमिहिर और भास्कर सदृश मेधावी आचार्यों के मस्तिष्क में निश्चित रूप से प्रश्न उठे होंगे परन्तु संकोचवश लोकमान्यता के विरुद्ध वे पृथ्वी को चला नहीं कह सके। कुछ प्रश्न और उनके उत्तर ये हैं।

प्रश्न—(१) हमारे गणित ज्योतिष के प्रत्येक ग्रन्थ में ग्रहों के स्पष्टीकरण की तीन विधियाँ हैं। एक चन्द्रमा की, दूसरी बुध और शुक्र की तथा तीसरी मंगल, गुरु और शनि की। सब ग्रह यदि एक नियम से पृथ्वी की ही प्रदक्षिणा कर रहे हैं तो स्पष्टीकरण की विधियों में इतना अन्तर क्यों है। (२) ग्रह कभी तो हमारे बहुत निकट आ जाते हैं और कभी अतिशय दूर चले जाते हैं। यदि वे एक वृत्ताकार मार्ग में हमारी पृथ्वी की ही प्रदक्षिणा कर रहे हैं तो इतना अन्तर क्यों पड़ता है। यदि आप यह उत्तर दें कि ग्रहों के भ्रमणवृत्त का केन्द्र पृथ्वी के केन्द्र में न होकर दूर है (यस्मिन वृत्ते भ्रमति खचरो नास्य मध्यं कुमध्ये) तो भी समाधान नहीं होगा क्योंकि मंगल कभी तो हमसे २३३३ लाख मील दूर रहता है और कभी पृथ्वी से केवल ३३८ लाख मील दूर। तो क्या आपके बताये हुए हेतु से कभी इसका समाधान हो सकता है? (३) हम किसी वृत्त के भीतर उसके केन्द्र में अथवा केन्द्र से कुछ दूरी पर बैठे हों तो वृत्त की परिधि में एक नियमित गति से सर्वदा घूमने वाला पदार्थ बीच में कभी भी उलटा चलता हुआ नहीं दिखाई देगा, तो ग्रह बीच-बीच में वक्री क्यों हो जाते हैं? (४) सातों ग्रह एक ही पृथ्वी की एक ही विधि से सतत प्रदक्षिणा कर रहे हैं तो क्या कारण है कि मंगल, गुरु, शनि, बुध और शुक्र वक्री होते हैं पर सूर्य-चन्द्र कभी नहीं? (५) शुक्र एक बार दो-ढाई मास तक अस्त रहता है पर दूसरी बार केवल सात दिन। बुध में भी यह वैषम्य रहता है। क्यों? (६) शुक्र की गति कभी घटते-घटते शून्य हो जाती है और कभी बढ़कर ७५ कला से अधिक। किसी वृत्त की परिधि में घूमने वाले पदार्थ की गति का ऐसा वैचिञ्य उस वृत्त के बीच में स्थित मनुष्य को कैसे दिखाई देगा जब कि वह पदार्थ सदा एक गति से चलता है? (७) सूर्य, बुध और शुक्र, तीनों अपनी-अपनी कक्षाओं में भिन्न-भिन्न गतियों से पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर रहे हैं तो जिस प्रकार हम रात में मंगल, गुरु और शनि को आकाश के मध्य में देखते हैं उसी प्रकार, बुध और शुक्र का भी आधी रात के समय दर्शन होना चाहिए पर वह कभी भी नहीं होता। इसका क्या कारण है? (८) बुध, शुक्र, और सूर्य, तीनों भिन्न-भिन्न गतियों से पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर रहे हैं तो जैसे सूर्य और गुरु में अथवा सूर्य और मंगल में १८० अंश तक का अन्तर हो जाता है उसी प्रकार बुध और शुक्र को भी कभी-कभी सूर्य से १८० अंश दूर जाना चाहिए पर ऐसा कभी नहीं होता। वे सूर्य से २७ अंश और ४७ अंश से दूर कभी जाते ही नहीं। क्यों? (९) सब ग्रहों के उदय और अस्त के नियम भिन्न हैं। चन्द्रमा प्रतिमास में अस्त होता है, बुध का अस्त वर्ष में छः बार होता है, मंगल पाँच मासों तक लगातार अस्त रहता है और अन्यों के अन्य नियम हैं। क्यों? ऐसे अनेक प्रश्न हैं। ग्रहलाघव के अनुसार पाँच ग्रहों के उदय, अस्त, वक्रत्व आदि के अन्तराल ये हैं—

	पूर्वास्त	पश्चिमोदय	वक्रत्व	पश्चिमास्त	पूर्वोदय	मार्गत्व	पूर्वास्त
बुध	२० दिन	३२ दिन	३ दिन	१६ दिन	३ दिन		३२ दिन
शुक्र	२ मास	८ मास	२२ दिन	८ दिन	२२ दिन		८ मास
	अस्त	उदय	वक्रत्व	मार्गत्व	अस्त		
मंगल		४ मास	१० माह	२ मास	१० मास		
गुरु		१ मास	४। मास	४ मास	४। मास		
शनि		१। मास	३॥ मास	४॥ मास	३॥ मास		

उत्तर-(१) अनेक प्रश्नों का उत्तर यह है कि ग्रहों के भ्रमणमार्ग वृत्ताकार नहीं बल्कि अण्डाकार (Ellipse) दीर्घवृत्त हैं। इसमें दो केन्द्र होते हैं। उनमें से एक में सूर्य रहता है। सब ग्रह सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं। पृथ्वी स्वयं एक ग्रह है

और सूर्य की ही प्रदक्षिणा करती है। चन्द्रमा पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है इसलिए वह ग्रह नहीं उपग्रह है। चन्द्रमा पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है और पृथ्वी सूर्य की। इसलिए इन दोनों के स्पष्टीकरण की पृथक् विधियाँ हैं। बुध और शुक्र ग्रह पृथ्वी और सूर्य के बीच में पड़ते हैं। ये अन्तर्वर्ती कहे जाते हैं किन्तु मंगल, गुरु और शनि बहिर्वर्ती हैं। इसी कारण इनके स्पष्टीकरण की चार विधियाँ हो जाती हैं। एक ही पृथ्वी की सब ग्रह प्रदक्षिणा करते तो एक ही विधि रहती है।

उत्तर–(२) ग्रह वृत्त में नहीं बल्कि उस अण्डाकार मार्ग दीर्घवृत्त में घूमते हैं जिसके दो केन्द्र होते हैं। इस कारण वे पृथ्वी से और सूर्य से कभी-कभी बहुत दूर चले जाते हैं तथा कभी निकट आ जाते हैं। (३–४) ग्रहों की दो गतियाँ हैं। एक यह कि वे २४ घण्टों में पूरे आकाश की प्रदक्षिणा कर लेते हैं। दूसरी यह कि वे एक तारे से दूसरे के निकट जाते दिखाई देते हैं। यद्यपि ग्रहों से नक्षत्र बहुत दूर हैं किन्तु नक्षत्रमण्डल ही ग्रहगति नापने का एक मात्र साधन है। कभी-कभी ग्रह पूर्व दिशा के नक्षत्र की ओर न जाकर उलटा चलता दिखाई देता है। यही वक्रत्व है। नीचे के चक्र में सूर्य के चारों ओर कखगघ नाम की शुक्रकक्षा है, उसके चारों ओर पृथ्वीकक्षा है और सबसे ऊपर पफबभम नक्षत्रमण्डल है। हम पृथ्वी के पृबिन्दु से शुक्र की स्थिति देखते हैं। अपनी कक्षा में घूमता हुआ शुक्र क ख ग घ च बिन्दुओं में आने पर नक्षत्रमण्डल में क्रमशः प फ ब भ म
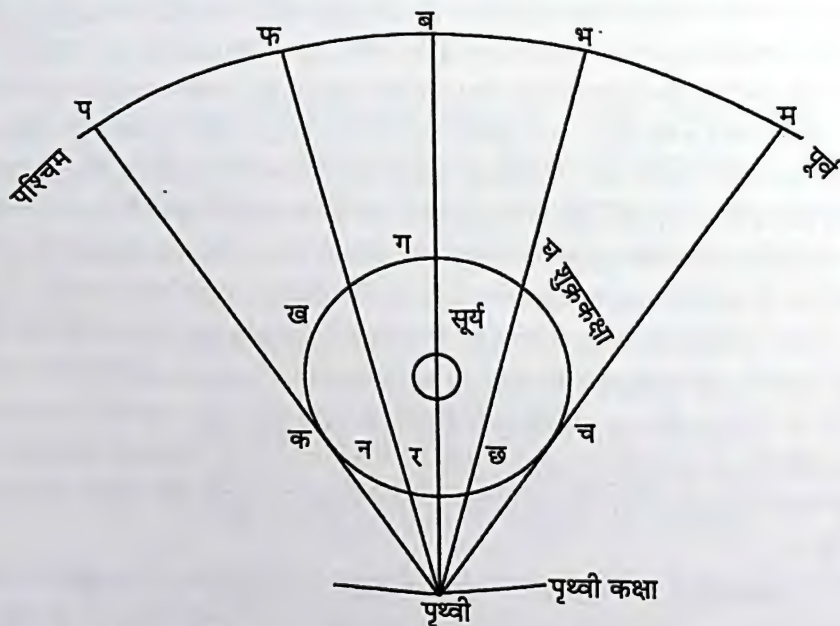
बिन्दुओं में दिखाई देता है। ग बिन्दु में आने पर वह सूर्य की सीध में होने से अदृश्य हो जाता है। वस्तुतः वह ख से घ बिन्दु तक हमें दिखाई नहीं देता। इसी को अस्तकाल कहते हैं। घ बिन्दु में उदित होने के बाद वह आठ मास में च बिन्दु पर पहुँचता है और वहाँ से वक्री हो जाता है। वह अपने मार्ग में तो सीधा ही चलता है परन्तु च से आगे बढ़ने पर नक्षत्र मण्डल में म से भ की ओर अर्थात् पश्चिम जाता दिखाई देता है। यह स्थिति क बिन्दु में पहुँचने तक रहती है। च छ र न क बिन्दुओं में स्थित शुक्र हमें नक्षत्रमण्डल में क्रमशः मभबफप में दीखता है। यही उसका लगभग पौने दो मास का वक्रकाल है। द्वितीय प्रश्न का एक उत्तर यह है कि र बिन्दु में पहुँचा शुक्र हमारे निकटतम और ग बिन्दु में स्थित दूरतम रहता है। ये दोनों मान २३६ लाख मील और १६१० लाख मील होते हैं।

शुक्र की गति लगभग १६ मासों तक स्थिर और अधिक रहती है। इसके ठीक मध्य में उसका दो ढाई मासों का

अस्त होता है। उस समय गति अधिकतम रहती है और वक्रारंभ में शून्य हो जाती है। वक्रकाल के मध्य में पुनः अस्त होता है। इस समय गति सर्वाधिक रहती है। क विन्दु से चलने पर गति क्रमशः बढ़ती है, ग में परमाधिक होती है और च में शून्य हो जाती है। हमारी पृथ्वी बुध-शुक्र की कक्षाओं के वाहर है। केन्द्र में होती तो गति में इतनी विषमता न आती।

अस्तकालीन शुक्र अति तेजस्वी

(५) अपनी कक्षा में ख-घ बिन्दुओं के बीच स्थित शुक्र को अस्त कह कर ज्योतिषशास्त्र जब ढाई मासों में सब मांगलिक क़र्मों को रोक देता है उसी समय वह पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति सबसे अधिक तेजस्वी रहता है। उस समय उसके सामने वाले भाग पर सूर्य की सीधी किरणें पड़ती हैं। यद्यपि सूर्य के निकट होने से उस समय वह हमें नेत्र से दिखाई नहीं देता पर उसकी उज्ज्वल किरणें पृथ्वी पर अधिकतम मात्रा में आती हैं। न-छ विन्दुओं के बीच में स्थित शुक्र भी अस्त कहा जाता है। चूँकि यह क्षेत्र ख-घ की अपेक्षा वहुत छोटा है इसीलिए यह अस्त केवल ७-८ दिनों का होता है। शुक्र और बुध के दो अस्तकालों के दिनों में अधिक अन्तर का यही हेतु है। पृथ्वी को स्थिर मानने पर इसका उत्तर नहीं मिलता। यहाँ पृथ्वी को स्थिर इसलिए दिखाया गया है कि उसकी (सूर्य की) गति बुध-शुक्र से कम है। (६) यदि हम किसी वृत्त के केन्द्र में बैठे हों तो उसकी परिधि में घूमने वाले पदार्थ की गति सदा समान दिखाई देती है पर आकाश की स्थिति इसके विपरीत है। यहाँ च बिन्दु में पहुँचा शुक्र थोड़ी देर तक स्थिर सा हो जाता है, उसकी गति शून्य प्रतीत होने लगती है और बाद में क्रमशः बढ़ने लगती है। (७) अपनी पूरी कक्षा में भ्रमण करने पर भी शुक्र हमें सर्वदा प और म बिन्दुओं के बीच में ही दिखाई देता है अर्थात् सूर्य से ४७ अंश से दूर कभी नहीं जाता। यही कारण है कि वह रात में आकाश के मध्य में दिखाई नहीं देता। सूर्यास्त के अधिक से अधिक (४७ × ४) १८८ मिनट बाद क्षितिज के नीचे चला जाता है। यही स्थिति बुध की भी है। उसकी तो सूर्य से अधिकतम दूरी २७ अंश ही है। पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है और चन्द्रमा पृथ्वी के चारों और घूमता है इसलिए सूर्य-चन्द्र कभी भी वक्री नहीं होते।

टिटिअस का नियम

पृथ्वी को स्थिर मान लेने पर ग्रहकक्षाक्रम में कई दोष आ जाते हैं। आजकल सूक्ष्मयन्त्रों द्वारा ग्रहों की लगभग वास्तविक दूरियाँ ज्ञात हो गयी हैं। हम शुक्र को सूर्य के पास और बुध को दूर मानते हैं तथा बुध को पृथ्वी के पास और शुक्र को दूर मानते हैं। ये दोनों बातें प्रत्यक्ष के विरुद्ध हैं। सूर्य से ग्रहों की दूरी में एक नियम है। उसी से यूरेनस, नेपच्यून आदि नूतन ग्रहों का पता लगा है। सन् १७७२ ईसवी में टिटिअस ने इस नियम का पता लगाया और वोर्ड ने उसको प्रकाशित किया।

सूर्य से ग्रहों की दूरी का अनुपात

बुध	शुक्र	पृथ्वी	मंगल	अवान्तरग्रह	गुरु	शनि	यूरेनस	नेपचून	प्लूटा
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
०	३	६	१२	२४	४८	९६	१९२	३८४	७६८
४	७	१०	१६	२८	५२	१००	१९६	३८८	७७०
३.९	७.२	१०	१५.२ (वास्तविक)			९५.४	१९१.८	३९४.६	

सूर्य से ग्रहों की दूरी (लाख मीलों में) और प्रदक्षिणा काल

बुध	३६०	८८ दिन

शुक्र	६७२	२२५ दिन
पृथ्वी	६३०	३६५ दिन
मंगल	१४१५	६८७ दिन
गुरु	४८३३	११–८६ वर्ष
शनि	८८६१	२६.४६
यूरेनस	१७८३०	८४ वर्ष
नेपचून	२७६३०	१६४ वर्ष
प्लूटो	३६६६०	२४८.५ वर्ष

सूर्य से बुध ३६० लाख मील दूर है और शुक्र ६७२ लाख मील दूर। दोनों में मध्यम मान से ४ और ७ का अनुपात है। सूक्ष्म मान नीचे की पंक्ति में लिखा है। अवान्तर ग्रह अनेक हैं। उनके नाम हैं–सिरीज, पालाज, जूनो, वेस्टा, ऐस्ट्रेआ, हेवे, आइरिस, लोरा, मेंटिस आदि। इनमें पर्याप्त दूरी है। सामने वाले अंक उनकी सूर्यप्रदक्षिणा के काल हैं। वैज्ञानिकों ने उनके पृथ्वी से अन्तर, कक्षाकेन्द्रच्युति, विक्षेप, व्यास, घनत्व, द्रव्य अक्षप्रदक्षिणाकाल, कक्षा से विषुववृत्त का कोण, आकर्षण शक्ति, गति, आकार, उप्णता आदि का भी निर्णय किया है।

मंगल, गुरु और शनि

मंगल दो साल के बाद वक्री होता है। दो मास के वक्रत्व काल में वह अति तेजस्वी दिखाई देता है। उसके अतिशय रक्तवर्ण और उलटी गति को देख कर भय होने लगता है कि राजा या राष्ट्र पर कोई संकट आयेगा। वक्रकाल के मध्य में वह सूर्य से १८० अंश की दूरी पर रहता है। पृथ्वी को चल मान लेने पर मंगल, गुरु और शनि सम्बन्धी इस प्रकार की अनेक शंकाओं का समाधान हो जाता है। स्थिर मानने पर कोई उत्तर नहीं है।

अपनी कक्षा में घूमती हुई पृथ्वी जब न ब फ प त बिन्दुओं पर आयेगी तब उसको मंगल नक्षत्रमण्डल में १, २, ३, ४, ५ बिन्दुओं में दिखाई देगा। ब से प बिन्दु तक वह अस्त रहेगा और पृथ्वी से उसका अन्तर अधिकतम हो जायेगा। जब पृथ्वी त से आगे थ की ओर चलेगी, मंगल उलटा चलता दिखाई देगा। त से न तक पृथ्वी की स्थिति में वह हमें ५ से १ तक
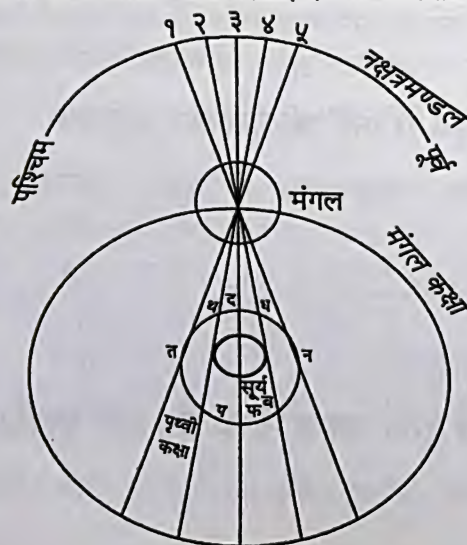
उलटा चलता दिखाई देगा। पृथ्वी के द विन्दु में आने पर वक्रकाल का मध्य रहेगा। उस समय मंगल पृथ्वी के अति निकट और सूर्य के ठीक सामने १८० अंश पर रहने से अति तेजस्वी दिखाई देगा। इसमें भय या आश्चर्य की कोई बात नहीं है किन्तु संहिता ग्रन्थों में इनके अनेक भयंकर फल लिखे हैं।

स्वामी करपात्री जी के मत में पृथ्वी अचला

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा ३२। ६॥ आयं गौः पृश्निरक्रमीत् ३। ६

महर्षि दयानन्द ने इन यजु:संहिता के मन्त्रों से पृथ्वी को चला सिद्ध किया है। उसके खण्डन में स्वामी करपात्री जी ने वेदार्थ पारिजात में लिखा है कि "आयं शब्द पुल्लिंगी है अत: गौ का अर्थ पृथ्वी नहीं है। निरुक्त ने पृथ्वी को गौ कहा है पर वहाँ उसका अर्थ है दूरगता। गमन करने वाली नहीं। पृश्नि का अर्थ अन्तरिक्ष नहीं, सूर्य है। द्वितीय मंत्र में दृढ़ा का अर्थ अचला है। दयानन्द की व्याख्या अविचारित है। पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है, यह कथन पाश्चात्यों का पुच्छग्रहण और अल्पज्ञों का प्रतारण है। तेरहवीं शती में पैथागोरस, केपलर, न्यूटन आदि ने पृथ्वी को चल कहा। भारत में आर्यभट ने आर्यभटीय में पहले पृथ्वी को स्थिरा और सूर्य को चल कहा था किन्तु उसे लल्ल, वरामिहिर आदि के आगे प्रतिष्ठा नहीं मिली। तब उसने केवल प्रतिष्ठा के लिए आर्यभटीय नाम से ही दूसरा ग्रन्थ लिखा और उसमें भूभ्रमण सिद्ध किया। तब लल्ल और वराहमिहिर आदि ने प्रबल युक्तियों से उसके पक्ष को धूल में मिला दिया। फिर भी उसका मत रुढ़ हो गया और पाश्चात्य शिक्षा के कारण उसका प्रसार हो गया। दयानन्द ने उससे प्रभावित होकर वेदमन्त्रों द्वारा उसे सिद्ध करने का निरर्थक प्रयास किया है। आर्यभट ने लिखा है कि तीव्र गति से चलने वाली नाव में बैठे लोगों को नदी-तट के वृक्ष उल्टे चलते प्रतीत होते हैं। ठीक उसी प्रकार नक्षत्र हमें पश्चिम ओर जाते दिखाई देते हैं पर वस्तुत: वे अचल हैं। पृथ्वी ही पूर्व की ओर चल रही है। किन्तु यह कथन मन्द है और सर्वथा मिथ्या है। ऐसी अनुभूति भ्रान्त मनुष्य को होती है। सत्य यह है कि जैसे वृत्ताकार चबूतरे पर बैठे लोग चबूतरे के चारों और दौड़ते घोड़ों को देखते हैं उसी प्रकार हम ग्रहों को देखते हैं। इसमें भ्रान्ति नहीं है। पृथ्वी यदि प्रति सेकेण्ड १७ मील की गति चलती तो उस पर सदा भीषण आँधी चलती रहती, घर और वृक्ष गिर जाते, पक्षी घोंसले में न आ पाते, पताकाएँ सदा पश्चिम ओर फहरातीं, धुआँ सदा पश्चिम जाता और ध्रुव तारा सदा एक स्थान में दिखाई न देता। पृथ्वी यदि वायु को लेकर चलती तो पूर्व में फेंकी गेंद की गति दूनी हो जाती। अथर्ववेद ६। ४४। १,६। ८८। १ और १०। ८। २ में पृथ्वी को स्थिर कहा है।"

उत्तर-(१) यद्यपि वेदमन्त्रों द्वारा पृथ्वी को चला सिद्ध करना कठिन है किन्तु अचला सिद्ध करना भी सरल नहीं है। ऊपर वाले 'आयं गौ:' मन्त्र में आयं और गौ: दोनों शब्द पुल्लिंगी हैं इसलिए महर्षि दयानन्द ने पृथ्वीगोल शब्द का प्रयोग किया है। गोल शब्द पुल्लिंगी है। (२) करपात्री जी कहते हैं कि यह मन्त्र अग्नि के उपस्थान का है, पृथ्वी का नहीं किन्तु इस मन्त्र में अग्नि शब्द नहीं है और इसके पूर्व वाले मन्त्र में पृथ्वी का वर्णन है। मन्त्र है-

भूर्भुव: स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ३। ५

इसमें अग्नि स्थापन के लिए पृथ्वी को सम्बोधित किया गया है। (३) दृढ़ा का अर्थ स्थिरा नहीं बल्कि पुष्टा, कठोरा, अतिशया, तीव्रा, मूर्तिमती, मोटी और समर्था आदि होता है (अमरकोश)। अत: दृढ़ा विशेषण से पृथ्वी अचला सिद्ध नहीं होती। (४) आप कहते हैं कि निरुक्त ने पृथ्वी को दूरगता कहा है तो जो दूर तक जाती है वह अचला कैसे होगी? निघण्टु में पृथ्वी के प्रथम नाम हैं-गौ: गमा। ये दोनों शब्द गमन से सम्बन्धित हैं और निघण्टु में पृथ्वी के रिप:, निर्ऋति:, पूषा आदि नाम पुल्लिंगी भी हैं। (५) आपने नीचे लिखे अथर्ववेद के जिन मन्त्रों से पृथ्वी को अचला सिद्ध किया है उनमें आकाश को, सारे विश्व को, राजा को और इन्द्र, वरुण, वृहस्पति को स्थिर एवं ध्रुव कहा है तथा प्रार्थना है कि तुम्हारा रोग स्थिर हो, तुम्हारी

समिति ध्रुव हो और तुम ध्रुव एवं अच्युत होकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो।

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद्विश्वमिदं जगत् ६। ४४। १
ध्रुवाद्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्॥ ६। ८८। १
ध्रुवन्त इन्द्रश्चाग्निश्च....समितिः....ध्रुवोच्युतः प्रमृणीहि शत्रून् ६। ८८। ३

तो क्या आकाश, जगत्, राजा, इन्द्र, बृहस्पति, समिति और यजमान खूँटे की भाँति एक स्थान पर गड़े रहते हैं। वस्तुतः अपने कार्य में नियमितता ही स्थिरत्व और ध्रुवत्व है, पृथ्वी का अपनी कक्षा में नियमपूर्वक चलते रहना ही स्थिरत्व है, शरीर के सब अंगों और वायुओं का नियमित होना ही रोग की स्थिरता है और यहाँ यही प्रार्थना है। (६) ऋग्वेद बार-बार कहता है कि सूर्य ने पृथ्वी को धारण किया—

उक्षा दाधार पृथिवीं, दाधारपृथिवीमभितः, अदधात् सूर्येण।

अतः स्पष्ट है कि पृथिवी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। वेदों में सूर्य भी चल है अतः सिद्ध है कि वह पूरे सौर परिवार के साथ उस तेज की प्रदक्षिणा करता है जिसके चक्षु से स्वयं उत्पन्न हुआ है। चक्षोः सूर्यो अजायत। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्थिर बुद्धिवाले मनुष्य की बहुत प्रशंसा की है। वहाँ बुद्धि का संयमित होना ही स्थिरता है, बुद्धि अचला नहीं होती।

स्वामी करपात्री जी कहते हैं कि पृश्नि का अर्थ सूर्य है, अन्तरिक्ष नहीं। किन्तु वे इससे पृथ्वी का चलत्व सिद्ध कर रहे हैं। अब तो स्पष्ट हो गया कि गौः (पृथ्वी) पृश्निः (सूर्य) अक्रमीत्, अर्थात् पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। (७) पृथ्वी को चल कहना पाश्चात्यों का पुच्छग्रहण नहीं है, वैदिक और भारतीय विज्ञान का उद्घोष है। पाश्चात्यों ने यह हमसे सीखा है। यदि पाश्चात्यों का हो तो भी ग्राह्य है। ज्ञान किसी से भी लिया जा सकता है। (८) आप सूर्य-सिद्धान्त और भास्कराचार्य के ज्योतिष को विशुद्ध भारतीय समझते हैं पर उन दोनों का मूलाधार पाश्चात्य राशियाँ हैं। सूर्य ने अपना सिद्धान्त पश्चिम के मय दानव को पढ़ाया था, यह बात उसमें लिखी है और वराहमिहिर तो स्वयं ही इस शास्त्र को यवनों की देन स्वीकार करते हैं—म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्। अतः हमारा वर्तमान ज्योतिष ही पाश्चात्यों का पुच्छग्रहण है। उसका वैदिक ज्योतिष से कोई नाता नहीं है। (९) आप को जानना चाहिए कि पाइथेगोरस का काल बहुत पुराना है और केप्लर न्यूटन का १७वीं शताब्दी है, १३वीं नहीं। (१०) आचार्य आर्यभट ने न तो बारी-बारी से दो आर्यभटीय लिखे थे न पृथ्वी को कभी अचला कहा था। उन्होंने लिखा है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और एक पल में छ कला चलती है। आर्यभट ने बार-बार भूभ्रमण शब्द का प्रयोग किया है। हाँ, आर्यभट दो हैं और दूसरे का काल शक ८७५ है। (११) स्वामी जी कहते हैं कि वराह और लल्ल के सामने आर्यभट को प्रतिष्ठा नहीं मिली तो उसने प्रतिष्ठा पाने के लिए दूसरा आर्यभटीय लिखा और उसमें पृथ्वी को चल कह दिया किन्तु स्वामी जी को पता नहीं कि आर्यभट के समय वराहमिहिर और लल्ल का जन्म ही नहीं हुआ था और जब उन दोनों को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई तब श्री आर्यभट वैकुण्ठ धाम में प्रतिष्ठा पा रहे थे। वराह और लल्ल में भी लगभग डेढ़ सौ वर्षों का अन्तर है। (१२) आर्यभट ने प्रतिष्ठा के लोभ से नहीं बल्कि झूठी प्रतिष्ठा को लात मारकर समाज को सत्य का बोध कराने के लिए पृथ्वी को चल कहा। हमारी और आप की भाँति वे भी जानते थे कि पृथ्वी को साँप के सिर पर और हाथियों के दाँतों पर स्थित कहकर अन्धविश्वासों का समर्थन करने से ही प्रतिष्ठा और दक्षिणा मिलती है। तम से ज्योति की ओर ले जानेवाले तो ब्रूनो की भाँति सदा जीवित जलाये जाते हैं। (१३) आर्यभट धूलिसात् नहीं हुए। अब तो उन्हें धूलिसात् कहने वालों की स्थिति दयनीय समझी जाती है। (१४) स्वामी जी पाश्चात्य ज्ञान को हेय कहते हैं पर वस्तुतः अनेक विषयों में हम उनके ऋणी हैं। (१५) स्वामी जी ने पृथ्वी के चलत्व में वे ही दोष दिखाये जो अनेक बार कहे गये हैं और जिनका खण्डन हो चुका है। (१६) स्वामी जी कहते हैं कि पृथ्वी चलती तो ध्रुव स्थिर कैसे रहता? इसे इसका उत्तर उन ज्योतिषियों से पूछना चाहिए जो नक्षत्रमण्डल को चल कहते हैं। इसका एक ही उत्तर पर्याप्त है कि पृथ्वी का ध्रुव इतना दक्षिण

ध्रुवों की ओर रहता है। हाँ, ध्रुव तारा ध्रुव नहीं है, स्थान ध्रुव है और थोड़ी सी गति उस स्थान में भी है। (१७) स्वामी जी चबूतरे की उपमा देकर पृथ्वी को कदाचित् पुराणों की भाँति चपटी कहना चाहते हैं किन्तु इसमें अनेक प्रश्न खड़े हो जाते हैं। सात अश्व या मनुष्य यदि भिन्न-भिन्न गतियों से भिन्न-भिन्न गोल मार्गों में पृथ्वी की प्रदक्षिणा करें तो वे कभी कभी आमने-सामने भी आ जायेंगे किन्तु बुध और शुक्र ग्रह सूर्य से १८० अंश की दूरी पर कभी नहीं आते और वे मंगल, गुरु तथा शनि की भाँति रात भर कभी दिखाई नहीं देते। इसका एक ही कारण है कि वे पृथ्वी की नहीं, सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं। पृथ्वी को स्थिर मानने में अनेक आपत्तियाँ हैं। उनमें से कुछ पीछे लिखी हैं। स्वामी जी को पृथ्वी के चारों ओर स्थित भूवायु में भी संशय है क्योंकि वे कहते हैं कि पृथ्वी चलती तो घर और वृक्ष गिर जाते किन्तु पृथ्वी को स्थिर मानने वाले भास्करादि आचार्यों ने भी लिखा है कि उसके चारों ओर १२ योजन (१०८ मील) तक भूवायु है और पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। वह बाहर के पदार्थों को खींचती है और वायु को लपेटे रहती है।

> आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
> आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं रवे॥

हमारे सब पुराणों और महाभारत ने चन्द्रमा को सूर्य से एक लाख योजन ऊपर तथा आकार में बड़ा कहा है और योगी जनक की महती विद्वत्परिषद् में योगिराज याज्ञवल्क्य कह रहे हैं कि आदित्यलोक चन्द्रलोक में ओतप्रोत हैं, आदित्य-लोक से चन्द्रलोक बड़ा है, ऊपर है, उसके ऊपर नक्षत्रलोक है और उसके ऊपर देवलोक है। देवलोक से ऊपर क्रमशः इन्द्र, प्रजापति और ब्रह्म के लोक हैं तथा मनुष्य इस लोक को छोड़ने के बाद क्रमशः वायु, सूर्य और चन्द्रमा के लोकों में जाता है।

> कस्मिन्नु खल्वादित्यलोका ओताश्च प्रोताश्चेति चन्द्रलोकेषु गार्गित। कस्मिन्नु खलु चन्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति नक्षत्रलोकेषु गागीर्ति। कस्मिन्नु खलु नक्षत्रलोका... देवलोकेषु...इन्द्रप्रजापतिब्रह्मलोकेषु ३। ६ यदा वै पुरुषोऽस्माल्लोकात्प्रैति स वायुमागच्छति, ऊर्ध्वमाक्रमते स आदित्यमागच्छति। तस्मै स तत्र विजिहीते ऊर्ध्वमाक्रमते चन्द्रमसमाग-च्छति...५। १० बृहदारण्यकोपनिषद्॥

इन ग्रन्थों को पढ़ने के बाद अन्तरात्मा कहती है कि ये कथन योगिराज व्यास और याज्ञवल्क्य के नहीं हो सकते क्योंकि महर्षि पतंजलि ने अपने योगशास्त्र (३। २६, २७, २८) में लिखा है कि योगी को सब भुवनों, ताराव्यूह और ध्रुवादि की गति-स्थिति का पूर्ण बोध रहता है। यदि ये वचन सचमुच व्यास और याज्ञवल्क्य के हैं तब वे योगी और ज्ञानी नहीं हैं तथा उनके वचन और ग्रंथ हमें मान्य नहीं हो सकते। अतः स्वामी करपात्री जी सदृश योगाभ्यासी, तन्त्रागमज्ञ, विविधविद्याविशेषज्ञ, बहुदेवाराधक भक्त और राजनीतिज्ञ व्यक्ति को ऐसा नहीं कहना चाहिए। उनके इन लेखों को पढ़कर सामान्य जनता नास्तिक हो जायेगी और कहेगी कि तुम्हारे सारे शास्त्र असत्य हैं तथा योग, तन्त्र, देवाराधन, शास्त्राध्ययन आदि का श्रम निरर्थक है। वैदिक यज्ञों से और पृथ्वी के चलत्व आदि से सम्बन्धित दयानन्द के अर्थ यदि खींचातानी के हों तो भी वे लोकोपकारक तथा हमारे धर्म और सम्मान के संरक्षक हैं। स्वामी जी जिस अर्थ और सिद्धान्त का समर्थन करते हैं वे सत्य हों तो भी धर्मविरुद्ध और हमारी प्रतिष्ठा के घातक हैं। आज का तटस्थ विद्वत्समाज उनकी इस बात को कभी भी स्वीकार नहीं करेगा कि वेदमन्त्र पढ़कर, की जानेवाली हिंसा, हिंसा नहीं होती और वेद की अश्लीलता समुचित है। दयानन्द ने अपने भाष्य में अनेक स्थलों में यह सिद्ध कर दिया है कि वेद की अन्तरात्मा की यही पुकार है। उन सिद्धान्तों का कोई विधर्मी भी विरोध नहीं करेगा।

बुद्ध आर्यभट और दयानन्द की विशेषताएँ

बुद्ध भगवान् इतिहास के वे प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने पृथ्वी को चला कहा और गालियाँ सुनीं। भारत में बुद्ध ही एक

ऐसे महामानव पैदा हुए जिनके उपदेशों को विधर्मियों और विदेशियों ने नतमस्तक होकर सुना, अपना राष्ट्रीय धर्म वनाया और इस क्रिया में एक बूँद रक्त नहीं गिरा। बुद्ध ने अपने महान् त्याग से और ज्ञानादि से विरोधियों को भी अपना भक्त बना दिया और वे उन्हें विश्वनाथ का अवतार मानने लगे। बुद्ध का पञ्चशील वेदों का अनुगामी है पर उन्होंने वैदिक यज्ञों का विरोध किया। यदि यज्ञ सम्बन्धी दयानन्द का भाष्य झूठा है और सायण, उवट एवं महीधर आदि के भाष्य सत्य हैं तो वेद पर कोई भी श्रद्धा नहीं रख सकता। उसे वेदों को छोड़ कर बुद्ध की भाँति भागना ही होगा।

हम आर्यभट के ऋणी हैं। उनकी अनेक विशेषताएँ हैं। उन्होंने चारों युगों को समान कहा, शंकु और स्वयंवह यन्त्र बनाये, ज्यामिति में अनेक आविष्कार किये और उसके श्रेणी व्यवहार का उल्लेख किया। वे यह जानते थे कि ग्रहों में निजी प्रकाश नहीं है। वे सूर्य से प्रकाशित होते हैं, सूर्य की परिक्रमा करते हैं और उनका भ्रमणमार्ग वृत्त नहीं अण्डाकार है। उन्होंने परिधि और व्यास के सम्बन्ध (पाई π) का मान ३. १४१६ बताया जो आधुनिक मान ३.१४१५६ के अतिशय निकट है। भास्कराचार्य ने इसे ३९२७÷१२५०=३.१४१६ कहा है। आर्यभट ने राहुवाद का खण्डन करते हुए बताया कि चन्द्रग्रहण के समय चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ती है और सूर्यग्रहण में सूर्य को चन्द्रमा ढँक देता है। भास्कराचार्य ने उनके राहुखण्डन को तो मान लिया पर भूभ्रमण को नहीं। आर्यभट ने छाया, छत्र, यष्टिक, कपाल आदि यन्त्रों का भी वर्णन किया है। सूक्ष्म और पक्षपात रहित दृष्टि से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि उस महापुरुष में इस युग के कई आविष्कारों तुल्य प्रतिभा विद्यमान थी। यदि उन्हें उनकी योग्यता का पुरस्कार मिला होता तो वे संसार को बहुत कुछ देकर जाते। खेद है कि उन्होंने ज्योतिष में अन्धविश्वास विहीन एक वैज्ञानिक पद्धति की स्थापना की पर रूढ़िवाद ने उसे आगे नहीं बढ़ने दिया। प्रभु की इतनी ही कृपा रही कि वे ब्रूनो की भाँति जीवित जलाये नहीं गये। कोपनिकस (१४७३-१५४७ ईसवी) ने कहा कि पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है और अपनी धुरी पर भी घूमती है। इस कारण वह विश्विख्यात और विश्वमान्य हो गया पर उसके एक सहस्र वर्ष पूर्व इस बात को बताने वाले आर्यभट को हम अभी भी गाली दे रहे हैं और एक लाख पुरस्कार पा रहे हैं तो कैसे होगी सत्य की विजय और कैसे बढ़ेगा देश आगे!!

महर्षि दयानन्द ने बहुत सोच समझ कर और परमात्मा की कृपा प्राप्त कर पृथ्वी को चला कहा, सूर्य और पूरे सौर परिवार को गतिमान कहा, गणित और वैज्ञानिक ज्योतिष को ग्राह्य कहा, फलित ज्योतिष्ज्ञ के दोषों की व्याख्या की, पाश्चात्य ज्ञान का अन्धानुकरण नहीं किया, अंग्रेजों के दु:स्वार्थ और अनाचार को तथा पाश्चात्य संस्कृति के दोषों को पहचाना, उनसे घृणा की और उन्हें यहाँ से हटाने की प्रेरणा दी। श्रीमती ऐनी बेसेंट ने लिखा है कि स्वामी दयानन्द वह प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने क़हा कि भारत भारतीयों का है। सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थाना के समय उन्होंने कहा था कि विदेशी यहाँ राजा होकर नहीं रहेंगे।

उन्होंने प्राणप्रतिष्ठा, अस्पृश्यतावाद, बालविवाह, विधवातिरस्कार, स्त्रियों की अशिक्षा आदि अनेक दोषों को बता कर सोते आर्यों को जगाया और वेदमन्त्रों का ऐसा अर्थ किया जिसे पढ़ने पर आँखें खुल जाती हैं, आत्मा गद्‌गद् हो जाती है और हृदय चिल्लाने लगता है कि भगवान् शंकर ने कृपा करके हमारे उद्धार के लिए अपना एक गण भेजा है, इसके चरणों में चलो। अत: सत्य यह है कि बुद्ध, आर्यभट और दयानन्द प्रात: स्मरणीय देव हैं तथा तीनों आर्यभट हैं।

धर्म का विज्ञान पर धावा

कोपर्निकस का जन्म १४७३ ईसवी में हुआ था। वे रोम में गणित के अध्यापक थे। उन्होंने बताया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है और उसी से दिन-रात होते हैं। जिआर्डेनो ब्रूनो उनके सिद्धान्त का प्रचार करने लगे और इसी कारण सन् १६०० में चौराहे पर जीवित जला दिये गये। गैलिलियो का जन्म सन् १५६४ ई० में हुआ था। उन्होंने १६२२ ई० में एक ऐसा ग्रन्थ लिखा जिसमें कोपर्निकस के सिद्धान्त का समर्थन था। चूँकि यह बात धर्मविरुद्ध थी इसलिए उस समय के पोप अष्टम

अर्वन ने ग्रन्थ की सारी प्रतियाँ अपने अधिकार में ले लीं और गैलिलियों को इन्क्विजिशन के सामने अपराधी के रूप में उपस्थित होना पड़ा। उन्होंने पोप के सामने घुटना टेक कर शपथ खाई कि अव मैं भविष्य में कभी भी पृथ्वी को चल नहीं कहूँगा। फिर वे रोम में बन्दी बना लिये गये और अन्धे होकर मर गये। पृथ्वी के चलाचलत्व सदृश अन्य भी अनेक विवाद धर्म और विज्ञान के वीच में चल रहे हैं परन्तु हमारे यहाँ अभी एम०एस०सी० उपाधि वाले भी कहते हैं कि भूकम्प के समय पृथ्वी के किंचित् हिल जाने से हाहाकार मच जाता है तो उसकी इतनी तीव्रगति कैसे संभव है। यदि वेद से यह सिद्ध हो गया कि पृथ्वी स्थिर है तो उसे चल कहने का साहस कुछ ही लोगों को होगा।

□□

अध्याय ८ राशि प्रकरण

भारत में गणित का आदान–प्रदान

प्राचीन आर्यों का कथन है कि उदार चरित वाले मनुष्य सारी वसुधा को अपना देश, सारे मानव समाज को अपना कुटुम्ब और विश्व के सब ज्ञानियों को देव मानते हैं। वे परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हमें उन देवों की भद्रा सुमति, ज्ञान और सख्य प्राप्त हो, सारा ब्रह्माण्ड शान्त रहे, सब लोग सुखी रहें, सबके हृदय समान हों, सब साथ चलें, प्रेम से बोलें और अपना ज्ञान दें–लें।

> उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।
> संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
> देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम्।
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु द्यौः शान्तिः सर्वंशान्तिः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्॥

इसीलिए आचार्य वराहमिहिर ने पाश्चात्य गणितज्ञों को ऋषि कहा है और भारत का अन्य देशों से ज्ञान का आदान–प्रदान चलता रहा है। हाँ, इस बात का खेद अवश्य है कि हम इस समय केवल शिष्य हैं, परमुखापेक्षी हैं, शोध से विमुख हैं, अपने अपूर्णज्ञान को पूर्ण समझते हैं और कुछ पाने के लिए श्रम की अपेक्षा देवकृपा को अधिक महत्त्व देते हैं किन्तु हमारे पूर्वजों ने प्राचीनकाल में विश्व को बहुत दिया है।

विश्व को भारत की देन

श्री अवधेश नारायण सिंह ने अपने 'हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास' में लिखा है कि ब्राह्मणसाहित्यकाल (ई० पू० लगभग २०००–१०००) के बाद दो सहस्र वर्षों से अधिक समय तक भारत अविच्छिन्न उन्नति और महत्त्वपूर्ण शोधों का क्षेत्र बना रहा। विदेशी आक्रमणकारी हिन्दूसमाज में घुल गये और उन्होंने नया रक्त जोड़ कर हिन्दुत्व को और शक्तिशाली बनाया। उस समय ब्राह्मणों ने निर्धनता स्वीकार की पर वे सदा विज्ञान, कला, धर्म और दर्शन की उन्नति में लगे रहे। इस कारण वे राजा–प्रजा सबके पूज्य बने रहे। वह काल ई०पू० ४०० ईसवी तक रहा।'

भारत में अति प्राचीनकाल से दशगुणोत्तर संख्या का प्रचार है। ऋग्वेद में इसके अनेक उदाहरण हैं। साथ ही साथ बड़े बडे अंकों की सूचक संख्याएँ रही हैं। जबकि यूनान के पास $१०^{४}$ (मिरियड) और रोम के पास $१०^{३}$ (मिले) से बड़ी संख्या नहीं थी। यहाँ १८ संख्याओं के नाम प्रसिद्ध हैं। विश्व में आज भी ऐसी वैज्ञानिक पद्धति अन्यत्र नहीं है। आर्किमिडीज से अनेक शताब्दी पूर्व हिन्दू ऐसी अंक श्रेणी बनाने में सिद्धहस्त थे जिससे ब्रह्माण्डतुल्य बालू के ढेर के कण गिन लिये जायँ। (देखिए बोद्धग्रन्थ ललितविस्तर)। लिखने की प्रथा वेदकाल में भी थी। यजुर्वेद में $१०^{१२}$ तक की संख्या लिखी है। यहाँ शून्य और स्थानमान सिद्धान्त के आविष्कार के बाद भी एक से नव तक अंकों के प्राचीन चिह्नों का ही प्रयोग होता रहा। इसे जान कर अन्य देशों ने अपने देश के उन संकेतों को छोड़ दिया जिनका स्थानीय मान से सम्बन्ध नहीं था और भारतीय शून्य एवं स्थानमान को स्वीकार कर लिया। प्रोफ़ेसर हैल्सटेड ने लिखा है कि निरर्थक शून्य को स्थान, संज्ञा, आकृति, संकेत और शक्ति प्रदान करना हिन्दुओं की एक विशेषता है।

ख़लीफ़ा अलमंसूर के समय (७५३–७७४ ई०) अरब में हिन्दू अंकों का प्रवेश हुआ और अरबी गणित पर उनका विशेष प्रभाव पड़ा। ईसा की दूसरी शताब्दी में शून्य का आविष्कार नहीं हुआ था। उस समय भारतीय अंक अलेक्ज़ेंड्रिया लाये गये और वहाँ से उनका प्रसार रोम तथा अफ्रीका तक हुआ। ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक ये अंक यूरोप में और सातवीं शताब्दी के आरंभ में यूफ्रेटिज़ नदी तक पहुँच गये। जाहिज़, अलमसूदी और इब्न तमीम आदि ने लिखा है कि नव चिह्नों और शून्य के आविष्कार भारतीय हैं। अंकों के साथ वर्गमूल निकालने की विधि भी ८वीं सदी के लगभग, अरब पहुँचाई गयी। शतपथ ब्राह्मण में काल विभाग का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन मिलता है। वहाँ का प्राण १÷१७ सेकण्ड के बराबर है। त्रैराशिक के सम्बन्ध में पश्चिम, भारत का ऋणी है। अरब और लैटिन ग्रन्थों में भारतीय नाम 'त्रैराशिक ही ग्रहण किया गया है। अरब में यह नियम संभवत: आठवीं शताब्दी में पहुँचा और वहाँ से यूरोप में गया। वहाँ इसकी अत्यधिक प्रशंसा हुई और इसे 'स्वर्णनियम' की उपाधि से विभूषित किया गया। अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने लिखा है कि भाषा, दर्शन, नव अंक, शून्य और दश गुणोत्तर संख्या आदि के अतिरिक्त भारत ने संसार को अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति और ग्रहगणित में बहुत कुछ दिया है। दशमलव भी भारत की ही देन है।'

मास बारह ही क्यों

भारत के किस मनुष्य ने कब, किस सिद्धान्त का अविष्कार किया यह ज्ञात नहीं है क्योंकि ग्रन्थ में अपना नाम न देने की भारतीय परम्परा बहुत पुरानी है परन्तु संस्कृत और अन्य भाषाओं के अनेक शब्दों का साम्य यह सिद्ध कर देता है कि यह भारत की ही देन है। पहले मासों के नामों और संख्या का निरीक्षण करें।

इस समय विश्व के प्राय: हर देश में माससंख्या बारह है परन्तु बारह ही क्यों, इसका उत्तर केवल हिन्दू के पास है। बारह का उत्तर वही दे पायेगा जिसका वर्ष सौर (सूर्यसम्बन्धी) और मास चान्द्र होगा क्योंकि एक सौरवर्ष में चन्द्रमा बारह बार पूर्ण होता है अथवा अमावास्या बारह बार आती है। मुसलमानों का सूर्य से कोई नाता नहीं हैं। उनके मास चान्द्र हैं। इसीलिए वे हर ऋतुओं में आते रहते हैं। मुहर्रम कभी जाड़े में, कभी गर्मी में और कभी वर्षा में पड़ता है। इसके विपरीत अधिक मास की व्यवस्था के कारण आर्यमास सर्वदा एक ऋतु में पड़ते हैं। इंगलिश लोगों का वर्ष तो सौर है पर मासों का चन्द्रमा से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए मास बारह ही क्यों, इसका उत्तर उनके पास भी नहीं है और उनके यहाँ मासों की बारह संख्या संशोधन के बाद की है। पहले दस ही मास थे। उन्हें बीच में अनेक बार सुधार करना पड़ा है।

ईसवी सन् का मूल रोमन संवत् है। यूनान के पहले ३६० दिनों का ओलिम्पियद् संवत् चलता था। olympian का अर्थ है विशिष्ट या महत्त्वपूर्ण। वह रोमनगर की. प्रतिष्ठा के दिन से चला। उसमें १० मास थे। वर्ष मार्च से प्रारंभ होकर दशाम्बर में समाप्त होता था। March शब्द का अर्थ है प्रस्थान करना या प्रारंभ करना। यह मास हमारे चैत्र में आता है अर्थात् इनका वर्षारंभ पहले हमारे साथ होता था। अन्तिम चार मासों के नामों का अन्तिम शब्द अम्बर है। यह संस्कृत का है। संस्कृत में आकाश को अम्बर कहते हैं और भारत के मास किसी मनुष्य से नहीं अपितु आकाश से सम्बन्धित हैं। हमारे प्रथम मास का नाम चैत्र इसलिए है कि उसका आरंभ होते ही सायंकाल में सूर्यास्त के समय पूर्वक्षितिज में अम्बर में चित्रानक्षत्र का उदय हो जाता है और वह अम्बर में रात भर दिखाई देता है। पुन: सूर्योदयकाल में नीचे चला जाता है और प्रत्येक चैत्रपूर्णिमा में पूर्णचन्द्र चित्रा में आ जाता है। इसी प्रकार बारहों मास अम्बर से सम्बन्धित हैं (देखिये पृष्ठ ४४)। क्राइस्ट भारत आये थे और इस सिद्धान्त से परिचित थे। इसीलिए इंगलिश मासों के साथ अम्बर (आकाश) शब्द लगा है। इंगलिश में Septem, Sept और Septi शब्दों का अर्थ है सप्तम या सात। यह संस्कृत के सप्तम और सप्त से लिया गया है। इसमें अम्बर जोड़ने से सेप्टाम्बर या सप्ताम्बर बन जाता है और यह मास सदा हमारे सातवें मास आश्विन में आता है। इस गणना में भारतीय पूर्णिमान्त मास का ही महत्त्व है; अमान्त का नहीं। इंगलिश में आठ तारों वाली वीणा को Qctachord, आठ के समूह को

अध्याय ८ राशि प्रकरण

भारत में गणित का आदान–प्रदान

प्राचीन आर्यों का कथन है कि उदार चरित वाले मनुष्य सारी वसुधा को अपना देश, सारे मानव समाज को अपना कुटुम्ब और विश्व के सब ज्ञानियों को देव मानते हैं। वे परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हमें उन देवों की भद्रा सुमति, ज्ञान और सख्य प्राप्त हो, सारा ब्रह्माण्ड शान्त रहे, सब लोग सुखी रहें, सबके हृदय समान हों, सब साथ चलें, प्रेम से बोलें और अपना ज्ञान दें–लें।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।
संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम्।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु द्यौः शान्तिः सर्वशान्तिः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।।

इसीलिए आचार्य वराहमिहिर ने पाश्चात्य गणितज्ञों को ऋषि कहा है और भारत का अन्य देशों से ज्ञान का आदान–प्रदान चलता रहा है। हाँ, इस बात का खेद अवश्य है कि हम इस समय केवल शिष्य हैं, परमुखापेक्षी हैं, शोध से विमुख हैं, अपने अपूर्णज्ञान को पूर्ण समझते हैं और कुछ पाने के लिए श्रम की अपेक्षा देवकृपा को अधिक महत्त्व देते हैं किन्तु हमारे पूर्वजों ने प्राचीनकाल में विश्व को बहुत दिया है।

विश्व को भारत की देन

श्री अवधेश नारायण सिंह ने अपने 'हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास' में लिखा है कि ब्राह्मणसाहित्यकाल (ई० पू० लगभग २०००–१०००) के बाद दो सहस्त्र वर्षों से अधिक समय तक भारत अविच्छिन्न उन्नति और महत्त्वपूर्ण शोधों का क्षेत्र बना रहा। विदेशी आक्रमणकारी हिन्दूसमाज में घुल गये और उन्होंने नया रक्त जोड़ कर हिन्दुत्व को और शक्तिशाली बनाया। उस समय ब्राह्मणों ने निर्धनता स्वीकार की पर वे सदा विज्ञान, कला, धर्म और दर्शन की उन्नति में लगे रहे। इस कारण वे राजा–प्रजा सबके पूज्य बने रहे। वह काल ई०पू० ४०० ईसवी तक रहा।'

भारत में अति प्राचीनकाल से दशगुणोत्तर संख्या का प्रचार है। ऋग्वेद में इसके अनेक उदाहरण हैं। साथ ही साथ बड़े बडे अंकों की सूचक संख्याएँ रही हैं। जबकि यूनान के पास $१०^{४}$ (मिरियड) और रोम के पास $१०^{३}$ (मिले) से बड़ी संख्या नहीं थी। यहाँ १८ संख्याओं के नाम प्रसिद्ध हैं। विश्व में आज भी ऐसी वैज्ञानिक पद्धति अन्यत्र नहीं है। आर्किमिडीज से अनेक शताब्दी पूर्व हिन्दू ऐसी अंक श्रेणी बनाने में सिद्धहस्त थे जिससे ब्रह्माण्डतुल्य बालू के ढेर के कण गिन लिये जायँ। (देखिए बोद्धग्रन्थ ललितविस्तर)। लिखने की प्रथा वेदकाल में भी थी। यजुर्वेद में $१०^{१२}$ तक की संख्या लिखी है। यहाँ शून्य और स्थानमान सिद्धान्त के आविष्कार के बाद भी एक से नव तक अंकों के प्राचीन चिह्नों का ही प्रयोग होता रहा। इसे जान कर अन्य देशों ने अपने देश के उन संकेतों को छोड़ दिया जिनका स्थानीय मान से सम्बन्ध नहीं था और भारतीय शून्य एवं स्थानमान को स्वीकार कर लिया। प्रोफ़ेसर हैल्सटेड ने लिखा है कि निरर्थक शून्य को स्थान, संज्ञा, आकृति, संकेत और शक्ति प्रदान करना हिन्दुओं की एक विशेषता है।

ख़लीफ़ा अलमंसूर के समय (७५३–७७४ ई०) अरब में हिन्दू अंकों का प्रवेश हुआ और अरबी गणित पर उनका विशेष प्रभाव पड़ा। ईसा की दूसरी शताब्दी में शून्य का आविष्कार नहीं हुआ था। उस समय भारतीय अंक अलेक्जेंड्रिया लाये गये और वहाँ से उनका प्रसार रोम तथा अफ्रीका तक हुआ। ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक ये अंक यूरोप में और सातवीं शताब्दी के आरंभ में यूफ्रेटिज नदी तक पहुँच गये। जाहिज़, अलमसूदी और इब्न तमीम आदि ने लिखा है कि नव चिह्नों और शून्य के आविष्कार भारतीय हैं। अंकों के साथ वर्गमूल निकालने की विधि भी ८वीं सदी के लगभग, अरब पहुँचाई गयी। शतपथ ब्राह्मण में काल विभाग का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन मिलता है। वहाँ का प्राण १÷१७ सेकण्ड के बराबर है। त्रैराशिक के सम्बन्ध में पश्चिम, भारत का ऋणी है। अरब और लैटिन ग्रन्थों में भारतीय नाम 'त्रैराशिक ही ग्रहण किया गया है। अरब में यह नियम संभवत: आठवीं शताब्दी में पहुँचा और वहाँ से यूरोप में गया। वहाँ इसकी अत्यधिक प्रशंसा हुई और इसे 'स्वर्णनियम' की उपाधि से विभूषित किया गया। अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने लिखा है कि भाषा, दर्शन, नव अंक, शून्य और दश गुणोत्तर संख्या आदि के अतिरिक्त भारत ने संसार को अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति और ग्रहगणित में बहुत कुछ दिया है। दशमलव भी भारत की ही देन है।'

मास बारह ही क्यों

भारत के किस मनुष्य ने कब, किस सिद्धान्त का अविष्कार किया यह ज्ञात नहीं है क्योंकि ग्रन्थ में अपना नाम न देने की भारतीय परम्परा बहुत पुरानी है परन्तु संस्कृत और अन्य भाषाओं के अनेक शब्दों का साम्य यह सिद्ध कर देता है कि यह भारत की ही देन है। पहले मासों के नामों और संख्या का निरीक्षण करें।

इस समय विश्व के प्राय: हर देश में माससंख्या बारह है परन्तु बारह ही क्यों, इसका उत्तर केवल हिन्दू के पास है। बारह का उत्तर वही दे पायेगा जिसका वर्ष सौर (सूर्यसम्बन्धी) और मास चान्द्र होगा क्योंकि एक सौरवर्ष में चन्द्रमा बारह बार पूर्ण होता है अथवा अमावास्या बारह बार आती है। मुसलमानों का सूर्य से कोई नाता नहीं है। उनके मास चान्द्र हैं। इसीलिए वे हर ऋतुओं में आते रहते हैं। मुहर्रम कभी जाड़े में, कभी गर्मी में और कभी वर्षा में पड़ता है। इसके विपरीत अधिक मास की व्यवस्था के कारण आर्यमास सर्वदा एक ऋतु में पड़ते हैं। इंगलिश लोगों का वर्ष तो सौर है पर मासों का चन्द्रमा से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए मास बारह ही क्यों, इसका उत्तर उनके पास भी नहीं है और उनके यहाँ मासों की बारह संख्या संशोधन के बाद की है। पहले दस ही मास थे। उन्हें बीच में अनेक बार सुधार करना पड़ा है।

ईसवी सन् का मूल रोमन संवत् है। यूनान के पहले ३६० दिनों का ओलिम्पियद् संवत् चलता था। olympian का अर्थ है विशिष्ट या महत्त्वपूर्ण। वह रोमनगर की प्रतिष्ठा के दिन से चला। उसमें १० मास थे। वर्ष मार्च से प्रारंभ होकर दशाम्बर में समाप्त होता था। March शब्द का अर्थ है प्रस्थान करना या प्रारंभ करना। यह मास हमारे चैत्र में आता है अर्थात् इनका वर्षारंभ पहले हमारे साथ होता था। अन्तिम चार मासों के नामों का अन्तिम शब्द अम्बर है। यह संस्कृत का है। संस्कृत में आकाश को अम्बर कहते हैं और भारत के मास किसी मनुष्य से नहीं अपितु आकाश से सम्बन्धित हैं। हमारे प्रथम मास का नाम चैत्र इसलिए है कि उसका आरंभ होते ही सायंकाल में सूर्यास्त के समय पूर्वक्षितिज में अम्बर में चित्रानक्षत्र का उदय हो जाता है और वह अम्बर में रात भर दिखाई देता है। पुनः सूर्योदयकाल में नीचे चला जाता है और प्रत्येक चैत्रपूर्णिमा में पूर्णचन्द्र चित्रा में आ जाता है। इसी प्रकार बारहों मास अम्बर से सम्बन्धित हैं (देखिये पृष्ठ ४४)। क्राइस्ट भारत आये थे और इस सिद्धान्त से परिचित थे। इसीलिए इंगलिश मासों के साथ अम्बर (आकाश) शब्द लगा है। इंगलिश में Septem, Sept और Septi शब्दों का अर्थ है सप्तम या सात। यह संस्कृत के सप्तम और सप्त से लिया गया है। इसमें अम्बर जोड़ने से सेप्टाम्बर या सप्ताम्बर बन जाता है और यह मास सदा हमारे सातवें मास आश्विन में आता है। इस गणना में भारतीय पूर्णिमान्त मास का ही महत्त्व है; अमान्त का नहीं। इंगलिश में आठ तारों वाली वीणा को Qctachord, आठ के समूह को

Octad और Oct को आठ कहते हैं। यह आक्ट शब्द संस्कृत के अष्ट से बना है। इनका अष्टाम्बर या आक्टूबर मास सर्वदा हमारे आठवें मास कार्तिक में आता है।

November में तो सीधे-सीधे नवम अम्बर लिखा है। इंगलिश में नव-नव वर्षों पर होने वाली क्रिया को नवेनियल Novennial कहते हैं। यह मास सदा हमारे नवममास अगहन में पड़ता है। अंग्रेजी में Decennary का अर्थ है दशक, Deccennial का अर्थ है दस वर्ष में होने वाला और December का अर्थ है दशक, अम्बर (मास)। यहाँ दश और दशम शब्द स्पष्ट हैं। इंगलिश के Decigram, Decillion, Decimal और Decimet आदि शब्द भी ध्यान देगे योग्य हैं। इनमें सारे डेसी दस से सम्बन्धित हैं। इंगलिश के जुलाई-अगस्त मास जूलियस सीज़र और आगस्टस से सम्बन्धित हैं। रोमन सम्राट् जूलियस सीज़र ने ३६५-२५ दिनों का सौरवर्ष चलाया। उसके पूर्व यूनानी चान्द्रवर्ष और चान्द्रमास मानते थे। उनके छ मास ३० दिनों के और छ २६ दिनों के थे तथा वर्ष ३५४ दिनों का था। बाद में सोलन ने अधिमास पद्धति चलायी। ईजिप्ट के लोग ३६० दिनों में सौरवर्ष पूरा करके उसमें ५ दिन मिला देते थे। पारसियों की भी यही पद्धति है। रोमनसंवत् में छठी शताब्दी में डायोनिसियस ने पुनः संशोधन किया परन्तु २७।५५ पल का अन्तर तब भी पड़ता रहा। वह १७३६ में ११ दिनों का हो गया। उस समय पोपग्रेगरी की आज्ञा से ३ सप्ताम्बर को १४ सप्ताम्बर माना गया और चौथे वर्ष फरवरी २६ दिनों की कर दी गयी। वर्ष का प्रारम्भ २५ मार्च से न कर प्रथम जनवरी से कर दिया गया। इस आदेश को इटली, डेनमार्क और हालैण्ड ने उसी समय मान लिया पर जर्मनी और स्विट्जरलैण्ड ने १७५६ में, इंगलैण्ड ने १८०६ में, प्रशिया ने १८३५ में, आयरलैण्ड ने १८३६ में और रूस ने १८५६ में प्रचलित किया। ईसवी सन् की गणना क्राइस्ट के जन्म के तीन वर्ष बाद से की जाती है। जूलियस सीज़र ने ई०पू० ४६ में वर्षारंभ को ६७ दिन आगे कर दिया था। पहले वर्षारंभ २५ मार्च को अर्थात् उस समय होता था जब दिनरात समान होते हैं। वैदिक वर्षारंभ, वसन्तारंभ और देवयानारंभ यही है। जनवरी से वर्षारंभ का अर्थ है, उत्तरायण के पास वर्षारंभ करना। पहले फरवरी अन्तिम मास था। इसी से तिथि उसी में बढ़ाई जाती है। इसमें भारत से कुछ अवश्य लिया गया है।

इंगलिश अंक तथा कुछ अन्य शब्द

संस्कृत में इण् (गतौ) धातु में कन् प्रत्यय करने से 'एक' शब्द बनता है। इन् ही वन् है। इसी प्रकार अनेक शब्दों में साम्य है।

इन्	वन्	पञ्च	पन्त	अष्ट	एट	सप्तति	सेवन्टी
द्वि	टू	पञ्च	फाइव	अष्ट	आक्ट	अशीति	एट्टी
त्रि	थ्री	षष्	सिक्स	नवन्	नाइन	नवति	नाइनटी
चत्वारि	फ़ोर	षष्ठ	सिक्स्थ	दस	डेस	शत	सेन्ट
चतुर्थ	फ़ोर्थ	सप्तन्	सेवन्	षष्टि	सिक्स्टी	लक्ष	लैक्स
मातर्	मदर्	पितर	फ़ादर	भ्रातर्	ब्रदर	स्वसर्	सिस्टर
सूनु	सन	मानव	मैन	मन्त्री	मिनिस्टर	उक्ष	आक्स
चरित्र	कैरेक्टर	झम्प	जम्प	डमरू	ड्रम	प्राप्ति	प्राफ़िट
सूप	सूप	पुरीक	पार्क	यष्टिक	स्टिक	तैल	आयल
दन्त्य	डेंटल	पाद्य	पैडल	जानु	नी	वृक	वुल्फ
हृत्	हार्ट	तरु	ट्री	स्तृ	स्टार	चक्र	सर्कल
गौ	काउ	मूषक	माउस	उलूक	आवुल	उपरि	ओव्हर

मन	माइण्ड	हस्त	हैण्ड	मुख	माउथ	नास्टि	नाट
सभ्य	सिविल	ऋत	राइट	अन	अन	नो	नो
अहं	आइअैम	यूयं	यू	शर्कर	शूगर	पथ	पाथ
नाम	नेम	समिति	कमेटी	वक्र	कर्व	विधवा	विडो
नव	न्यू	ग्रन्ति	ग्लैण्ड	मिश्र	मिक्स	भ्रष्ट	वर्स्ट
नक्त	नाइट	अधिवक्ता	ऐडवोकेट	ज्यामिति	ज्योमेट्री	त्रिकोणमिति	ट्रिग्नोमेट्री
अन्तरिम	इण्टरिम	अन्तराल	इण्टरवाल	परिमिति	परिमेटर	द्वार	डोर
अन्तर	अण्डर	मास	मन्थ	दशमलव	डेसिमिल	अष्ट	आक्तो (ग्रीक)

डाक्टर टी० वरी ने अपने ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखा है कि वेद के अनेक शब्द आज के संस्कृत में अप्रचलित हैं पर अवेस्ता में हैं और दोनों के समान शब्दों की सूची बहुत लम्बी है।

संस्कृत	अवेस्ता	अर्थ	संस्कृत	अवेस्ता	अर्थ
नेमि	नएम	आधा	दानु	दानु	झरना
अत्क	अद्क	वस्त्र	ग्ना	गना	देवपत्नी
अम	अम	बल	चनस्	चनह्	सुख
अर्वन्त	अउर्वन्त	अश्व	जनि	जइनि	स्त्री
मीढ	मिज़्द	पुरस्कार	प्रितु	पितु	भोजन
आध्र	आद्र	निम्न	तितउ	तितउ	चलनी
गातु	गातु	निवास	तोक्मन्	तओख्मन्	बीज

असुर	अहुर	सोम	होम	अहि	अजि	सेना	हेना
हस्त	जस्त	बाहु	बाजु	छन्द	जन्द	अश्व	अस्प
जिह्वा	हिज्वा	आहुति	आजुति	आर्य	अइर्य	विश्व	विस्प
अहि	अजहु	तुरीय	तुईर्य	दधाति	ददाइति	आर्यानां	ईरानम्
पंचम	पक्थ	सप्तम	हफ्थ	अष्टम	अश्तम	नवम	नआम
दशम	दसम्	त्रिंशत्	थिंसस्	होतृ	होतर्	यम	यिम
श्वाशुर	कुसुर	स्वप्न	कफ्न	अज	अज	जानु	जानु
अस्मि	अह्मि	अवस्ता	अवस्था	सर्व	सब्व	क्षेत्र	खेत्त
सत्य	सच्च	सन्ति	हेन्ति	मास	माह	वराह	वराज़
अर्यमन्	एर्यमन्	वैद्य	वैध्य	मन्त्र	मन्थ्र	मनस्	मनो
भ्रातर्	ब्रातर्	दुहितर्	दुग्धर्	मित्र	मिथ्र	यज्ञ	यस्न

संस्कृत—अरबी—फारसी

आपात्	आफ़त	शती	सदी	मेघ	मेह	यव	जो
हस्त	दस्त	सहस्र	हज़ार	भ्रम	वहम	शालि	शाली

पाद	पा	शृंगाल	शगाल	औरस	वारिस	शाखा	शाख
शिर	सर	मातर	मादर	हर्म्य	हरम	क्षत	खत
तनु	तन	भ्रातर	बिरादर	बलोच्च	बलोच	श्वेत	सफेद
द्वि	दो	दुहितर्	दुख्तर	शर्करा	शक्कर	नास्ति	नेस्त
चत्वारि	चहार	श्वशुर	खुसुर	ताम्बूल	तम्बूल	नमः	नमाज
पञ्च	पञ्च	विधवा	बेवा	कर्पूर	काफ़ूर	बन्ध	बन्द
नव	नौ	तारा	सितारा	गोधूम	गन्दुम	मद्य	मय
दश	दह	मास	माह	माष	माश	अधिकार	अख्तियार
शास	शाह	स्तन	सीना	जाल्म	ज़ालिम	शरद	सर्द
शुष्क	खुश्क	जीवन	जान	गान्धार	क़न्दहार	आर्यान्	ईरान
श्रेष्ठ	शेख़	असुर	असीर	स्थान	स्तान	पुष्ट	पोख्त
कौपीन	कफन	कोटपाल	कोतवाल	आप	आब	लोहित	लहू
प्रतिष्ठान	पठान	उष्ट्र	ऊँट	विष्टर	बिस्तर	अन्तकाल	इन्तक़ाल
अष्ट	हश्त	छाया	साया	एक	एकन्	मेष	मेशा

भारत में राशियों और होरा का आगमन

पीछे लिखे शब्दसाम्य से यह बात सिद्ध हो जाती है कि भारत ने प्राचीनकाल में विश्व को बहुत कुछ दिया है। आज के दो ढाई सहस्र वर्ष पूर्व हमने पश्चिम से कुछ लिया भी है पर उसका बहुत दुरुपयोग किया है। पाश्चात्य ज्योतिष बारह राशियों पर आधारित रहा है और हमारा २७ नक्षत्रों पर। हमने राशियों और वारों से सम्बन्धित ज्योतिष के कुछ विषय पश्चिम से लिये पर राशियों और वारों के कई सौ टुकड़ों द्वारा एक ऐसा काल्पनिक जाल बुना जिससे अपूरणीय क्षति हुई और हो रही है। प्राचीन आर्य जानते थे कि वर्ष में ३६५.२५ दिन होते हैं पर वे वर्ष में समान १२ सौरमास भी मानते थे। इसलिए उन्होंने वर्ष के ३६० और ७२० भागों का भी वर्णन किया है (देखिये पृष्ठ २७ और ७५)। इसीलिए वृत्त में ३६० अंश माने गये हैं। आजकल की १२ राशियों का काम प्राचीन काल में इन्हीं मधुमाधव आदि और अरुण आदि सौर मासों से लिया जाता था। आजकल मेषादि बारह राशियों का सम्बन्ध अश्विनी आदि नक्षत्रों से है अतः निश्चित है कि भारत में वैदिक कृत्तिकादि गणना का परित्याग कर अश्विन्यादि गणना का प्रारम्भ हो जाने के बहुत दिनों बाद मेषादि राशियाँ विदेशों से आयी हैं। प्राचीन होती तो कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र मेषराशि में रहते। वेदांग ज्योतिष और महाभारत आदि में इन राशियों का कहीं भी उल्लेख नहीं है। इनकी आकृतियाँ आजकल मेष, वृष आदि सरीखी नहीं हैं और प्राचीनकाल में रही होंगी, यह भी सिद्ध नहीं हो पाता। वार आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व खाल्डिया, ग्रीस या ईजिप्त से यहाँ आये। अधिक संभावना खाल्डिया की है। राशियाँ वारों के ५०० वर्ष बाद आयी हैं। इस काल में थोड़ा सा अन्तर भी हो सकता है।

एक राशि के दो समान भागों को होरा कहा जाता है। राशियाँ १२ हैं और होराएँ २४। आजकल हम ज्योतिष को होराशास्त्र कहते हैं किन्तु हमारे वेदों में, वेदांगों में और संस्कृत भाषा के किसी भी कोश में होरा शब्द नहीं है। हमारे ज्योतिष ग्रन्थों में होरा का प्रमुख सम्बन्ध अहोरात्र के उन २४ भागों से है जिन्हें इंगलिश में आवर्स (Hours) कहते हैं। सारांश यह कि वार, राशियाँ और होरा निश्चित रूप से विदेशी हैं। आचार्य वराहमहिर ने बृहज्जातक में लिखा है कि कुछ लोगों के मत में अहोरात्र शब्द के आदि अन्त अक्षरों के लोप से होरा शब्द बना है पर इस बात को न तो उनका हृदय मानता था न आज का विद्वत्समाज मानने को तैयार है। उनकी १२ राशियों की नामावली यह है–

क्रियतावुरिजितुमकुलीरलेयपार्थोनजूककौर्प्याख्या:।
तौक्षिक आकोकेरो हृद्रोगश्चान्त्यभं चेत्थम्(बृ० जा० १।८)॥
होरोत्यहोरात्रविकल्पमेके वांछन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्(बृ०जा० १।३)॥

राशियों के अनेक नाम

	संस्कृति	ग्रीक	लैटिक	इंगलिश	फारसी	अरबी
१.	मेष क्रिय	Krios	Aries	Ram	बरे	हमल
२.	बृष तावुरि	Tauros	Taurus	Bull	गत्व	सौर
३.	मिथुन जितुम	Zidom	Gemini	Twins	दोपेकर	बोवझ
४.	कर्क कुलीर	Kulira	Cancer	Crab	खरचंग	सरतान
५.	सिंह लेय	Lemon	Leo	Lion	शीर	अशद
६.	कन्या पार्थोन	Parthenos	Virgo	Virgin	खुशे	सोमबोल
७.	तुला जूक	Zukon	Libra	Balance	त्राजु	मीज़ान
८.	वृश्चिक कौर्प्य	Korpion	Scorpio	Seorpion	कज़दुम	अकरव
९.	धन तौक्षिक	Toxogek	Sagittarious	Arecher	कमान	कौश
१०.	मकर आकोकेरी	Aikokeroms	Cpricornus	Got	बोझ	जध्य
११.	कुम्भ हृद्रोग	Udrox	Aquarius	Water...	दुल	दलव
१२.	मीन चेत्थं	Piscium	Pisces	Fishes	माही	हुत

इस चक्र के निरीक्षण से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि ये नाम ग्रीक हैं अत: इनसे सम्वन्धित शास्त्र भी विदेशी ही होगा। इस विषय में भारत के और पश्चिम के ज्योतिर्विदों में कुछ विषयों में मतैक्य है और कुछ में मतभेद है। इसकी कुछ वातें श्रीशंकर वालकृष्ण जी दीक्षित के ग्रन्थ से दी जा रही हैं।

डा० थीबो का मत—अव इस विषय में सन्देह नहीं रह गया है कि भारत में आधुनिक ज्योतिप के मूलतत्त्व ग्रीस से आये हैं। उनका उल्लेख पौलिश और रोमक सिद्धान्तों में है। रोमक सिद्धान्त में वर्ष सायन है और अहर्गणसाधन यवनपुर के सूर्यास्त से है (सूर्योदय से नहीं)। अलेक्ज़ेण्डिया ही यवनपुर प्रतीत होता है। पौलिशसिद्धान्त में उज्जयिनी का देशान्तर यवनपुर से बताया गया है। वह.७।३८ है और काशी का ८।५१ है। भारत में दिन का आरंभ सूर्योदय से होता है।

कोलब्रूक का मत—हिन्दुओं ने द्रेष्काण पद्धति दूसरों से ली है क्योंकि यह शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है अत: हिन्दूफलज्योतिष भी पराया हो सकता है। कुण्डलीप्रथा ईजिप्त, खाल्डिया या ग्रीस की होगी। हिन्दुओं का गणित फलादेश के लिए है अत: वह भी वाहरी होगा और वाद में परिपक्व अवस्था में पहुँचाया गया होगा। भारतीय वार-वार यवनाचार्य और रोमक का नाम लेते हैं। केन्द्रच्युत वृत्त, प्रतिवृत्त और नीचोच्चवृत्त आदि अनेक विषयों में हिन्दुओं का टालमी और हिपार्कस आदि से साम्य है अत: उन्होंने इन्हें ग्रीकों से लेकर वाद में बढ़ाया होगा।

ह्विटने का मत—ग्रीक और हिन्दू ज्योतिष में अनेक सिद्धान्त समान हैं। ग्रहों की दीर्घवृत्त कक्षा के स्थान में दोनों ने प्रतिवृत्त की कल्पना की है। दोनों ने सूर्य की कक्षा और मध्यम गति के समान ही वुध शुक्र की कक्षा और मध्यमगति मानी है। आधुनिक मतानुसार बुध शुक्र की वास्तविक कक्षा को दोनों ने उनकी शीघ्रकक्षा मानी है और उस शीघ्र कक्षा का मध्य, दोनों ने स्पष्ट सूर्य नहीं वल्कि मध्यम सूर्य माना है। दोनों ने बहिर्वर्ती ग्रहों का केन्द्र सूर्य न मान कर पृथ्वी को माना है। हिन्दुओं

की पद्धति ऐसी असम्बद्ध और मनमानी कल्पनाओं से भरी है जिनके लिए सृष्टि में कोई आधार नहीं हैं। इसके कुछ उदाहरण हैं–ग्रहों के कक्षामान, युगपद्धति, कलियुग के आरंभ में सब ग्रहों को एकत्रित अथवा अति संनिकट मानना, वहाँ से गणित का आरंभ करना, कुछ काल में ग्रहों के एकत्र होने की कल्पना द्वारा उनके युगभगण की संख्या और मन्दोच्च पातों की भगण संख्या लिखना तथा जीटापीशियम आदि किसी स्थिर तारा को आरंभ स्थान मानना। इन बातों से सिद्ध होता है कि हिन्दुओं का ज्योतिषशास्त्र एक ऐसे वर्ग से उत्पन्न हुआ है जिसे अपने बड़प्पन को किसी महान् राष्ट्र के शास्त्र पर लादने की शक्ति थी। सभी क्षेत्रों में उसकी समान गति रही है। मुझे हिन्दुओं के स्वभाव को देखकर यह अनुभव हुआ है कि निरीक्षण करने और साधक–बाधक भावों का विवेचन करते हुए सत्य अनुमान करने की ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं रही है। यह स्थिति बहुत दिनों से है। अन्वेषण के लिए बहुत दिनों तक वेध (ग्रहों का निरीक्षण) आवश्यक है पर उसकी तो कहीं चर्चा ही नहीं है, तो हम इस शास्त्र को हिन्दुओं का कैसे मानें? हिन्दू तो कहते हैं कि हमारे शास्त्रों में सुधार का अवकाश ही नहीं है। वे पूर्ण हैं, सनातन हैं और सत्य हैं। हिन्दू ग्रन्थों में वेध का एक भी उल्लेख नहीं है। स्थानों का अक्षांश–देशान्तर और कुछ अन्य फुटकर बातों के अतिरिक्त कहीं भी वेध लेने का वर्णन नहीं है। केवल ग्रन्थ को ही ज्ञान का भण्डार मान लिया गया है, मानों ग्रहों का वेध से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। हिन्दुओं को न वेध चाहिए न शोध। यहाँ तो ईश्वर किसी दिन अकस्मात् आता है और सब कुछ दे कर चला जाता है। लिप्ता, केन्द्र और होरा शब्द किसी कोने में नहीं, हिन्दुओं के ज्योतिषदुर्ग के मध्य में बैठे हैं और होरा से ही वार बने हैं। ये सब ग्रीकों के हैं। हिन्दू यवनाचार्य का नाम बार–बार लेते हैं और सूर्यसिद्धान्त में लिखा है कि यह शास्त्र रोमनगर में सूर्य द्वारा मय को मिला। यह कथन चिन्तनीय है।

वर्जेस का मत–मेरे मत से ह्विटने ने हिन्दुओं को न्यायोचित मान नहीं दिया है और ग्रीकों को अधिक सम्मान दिया है। मुझे निश्चित विदित होता है कि क्रान्तिवृत्त के २७–२८ भाग, १२ भाग, ग्रहों की गतिस्थिति–बोधक प्रतिवृत्त–पद्धति, पाँच ग्रहों के नाम तथा अन्य कई विषयों के अन्वेषक हिन्दू हैं और ग्रीकों ने इन्हें हिन्दुओं से लिया हैं। हिन्दुओं की २७ विभाग वाली नक्षत्रपद्धति बहुत प्राचीन है। हिन्दू ज्योतिष में कुछ ग्रीक और अरबी शब्द हैं पर वे नये हैं। ग्रीक और संस्कृत में समान रूप से मिलने वाले भी कुछ शब्द है किन्तु ग्रीक भाषा संस्कृत की जननी नहीं है।

श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित का मत

वराहमिहिर ने क्रिय, तावुरि आदि राशिनामों के साथ–साथ होरा, द्रेष्काण, रिष्फ, द्यून, केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम, हिबुक, जामित्र, मेषूरण, वेशि, हेलि, हिम्न, आर, कोण, आस्फुजित्, सुनफा, अनफा, दुरुधरा, केमद्रुम और लिप्ता शब्दों का भी प्रयोग किया है। सब ३४ या ३६ हैं। इससे इतना ही सिद्ध होता है कि हमारे यहाँ अनेक यवन शब्द प्रचलित थे और उनमें से कुछ जातक में भी आ गये [1]। हमारे जातक में कुछ यवनपद्धतियाँ भी आयी हैं पर वह मूल में हमारा है। हमारे यहाँ क्रान्तिवृत्त के १२ भाग बहुत प्राचीन काल से हैं। वराहमिहिर ने लिखा है कि यवन यद्यपि म्लेच्छ हैं पर ऋषिवत् पूज्य हैं और यह शास्त्र, उनमें विधिवत् स्थित है।

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः॥

इस श्लोक के आधार पर कुछ लोग कहते है कि हमने ज्योतिष, ग्रीकों से लिया है पर यह श्लोक मुख्यतः जातक के विषय में है। सूर्यसिद्धान्त में लिखा है–रोमके नगरे ब्रह्मशापान्म्लेच्छावतारधृक्। इससे इतना ही सिद्ध होता है कि हिपार्कस (ई०पू० १५०) के पूर्व दोनों देशों ने एक दूसरे से कुछ लिया है।

हमारे यहाँ वराहमिहिर के बाद से ही संहितास्कन्ध में नवीन शोध बन्द हो गया। गणित स्कन्ध में भास्कराचार्य के

बाद ही आकाश के निरीक्षण का महत्त्व कम हो गया और पुराने ग्रन्थों का ज्ञान ही सर्वस्व बन बैठा। केशव दैवज्ञ और गणेश दैवज्ञ ने ग्रहस्थिति को शुद्ध किया पर शास्त्र निरन्तर आगे नहीं बढ़ा। वेधों को लिखने की परम्परा न होने के कारण बीजसंस्कार से केवल तात्कालिक शुद्धि हुई, पर वह भी पूरी नहीं। दूसरी एक बड़ी कमी यह थी कि वेध द्वारा ग्रहों में जो अन्तर दिखाई पड़ा उन्हें कलियुगारंभ से मान लिया गया। इसमें अल्पकालीन अन्तर दीर्घकाल में बँट गया और बीजसंस्कार निरुपयोगी हो गया। ब्रह्म गुप्त को पता चल गया था कि विषुव दिवस पीछे आ गया है परन्तु उन्होंने उस अन्तर को १५० वर्ष में न रख कर कलियुगारम्भ से ३७०० वर्षों में बाँट दिया।

हमारे प्राचीन ग्रंथ अपौरुपेय और विलकुल पूर्ण हैं, उनमें संशोधन धर्मविरुद्ध है, यह धारणा ज्योतिपशास्त्र की वृद्धि में बड़ी घातक सिद्ध हुई। आर्यभट, ब्रह्मगुप्त आदि के ग्रन्थ पौरुप होते हुए भी उनके प्रति हमें अपौरुप ग्रन्थ की भाँति पूज्य बुद्धि हो गयी, फलत: हमारा ज्योतिप जहाँ का तहाँ पड़ा रहा। ग्रहस्थिति अशुद्ध होने पर भी स्वतंत्र सुधार को अस्वीकार कर दिया गया। वेध का प्रयोग वन्द हो जाने के कारण यहाँ यूरोप की भाँति एक भी नया शोध नहीं हुआ। राजाश्रय के अभाव में ज्योतिपी उदासीन हो गये पर वे जागृत रहते तो आश्रय अवश्य मिलता। कोपर्निकस का ग्रंथ सन् १५४३ में वना। उसके पूर्व भारत और योरप में ज्योतिष लगभग समान स्थिति में था पर उस समय का लगाया वटवीज यूरोप में विशालकाय वृक्ष वन गया और हमारा मूलस्थिति में ही पड़ा है। इसका मूल हेतु जिज्ञासा का अभाव है। हमें नयी पीढ़ी में जिज्ञासा और वेधव्यसन को जागृत करना आवश्यक है।

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्यजी का मत

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपनी महाभारतमीमांसा में दीक्षितजी के विचारों में थोड़ा संशोधन किया है। उसका सारांश यह है।'हमारे मूल आर्य ज्योतिष की रचना नक्षत्रों पर है और यूनानी ज्योतिष की राशियों पर। भारत में राशियाँ कव आयीं, यह बहुत कुछ निश्चित रूप से कहा जा सकता है। महाभारत में मेष, वृप आदि राशियों का उल्लेख कहीं नहीं हैं। सारा कालनिर्देश नक्षत्रों पर है। लिखा है कि जव चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र पर था उस समय अभिजित् मुहूर्त में युधिष्ठिर का जन्म हुआ। यहाँ राशि नहीं लिखी है। '

ऐन्द्रे चन्द्रसमारोहे मुहूर्तेऽभिजिदष्टमे।
दिवामध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेऽतिपूजिते॥

यह निश्चित है कि हमने राशियाँ यूनानियों से ली हैं। इतिहास से ज्ञात होता है कि ई०पू० ६०० से ही हम यूनानियों से परिचित हैं। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में उनके लिए यवन शब्द का प्रयोग हुआ है और पाणिनि के सूत्रों में यवनलिपि का उल्लेख है। महाभारत में इन यवनों का नाम काम्वोज आदि म्लेच्छों के साथ बार-बार आया है। वहाँ इनकी वीरता और बुद्धिमत्ता का स्पष्ट वर्णन है। यह वर्णन सिकन्दर के उस आक्रमण के वाद का है जो ई०पू० ३२३ में हुआ था। अत: महाभारत ग्रन्थ का रचना काल ई०पू० ३२०-२०० है। लोकमान्य तिलक ने भी गीता रहस्य में यही काल माना है।

गौतम बुद्ध की मृत्यु ई०पू० ४७५ में हुई। बौद्धग्रन्थ उसके बाद अशोक के समय तक बने। बौद्धों के त्रिपिटक में राशियों, लग्नों और संक्रान्तियों का उल्लेख कहीं भी नहीं है। उनमें कालनिर्देशन के लिए सर्वत्र नक्षत्रों का ही प्रयोग किया गया है अत: राशियों के प्रचार का समय महाभारत और अशोक के बाद का है। यद्यपि यूनानियों से हमारा परिचय पुराना है पर राशियाँ दृढ़ परिचय के बाद ली गयी हैं। सिकन्दर ने ई०पू० ३२३ में यहाँ चढ़ाई की और उसके लौट जाने के बाद चन्द्रगुप्त ने पंजाब से ग्रीकसत्ता का उच्चाटन कर दिया। तत्पश्चात् चन्द्रगुप्त के दरवार में मेगस्थनीज़ राजदूत आया। उसके बाद भी

१. क्षितिज=हरिज Horizon, नराश्च Centaur, Cenre

कुछ दिनों तक यूनानियों के राजदूत आते रहे। अफगानिस्तान में यूनानियों की एक प्राचीन बस्ती भी थी पर इससे दृढ़ परिचय नहीं हुआ। श्रीशंकर बालकृष्ण दीक्षित ने अपने ज्योतिषशास्त्र में लिखा है कि ई०पू० ४५० के लगभग यहाँ राशियों का प्रचार हुआ और हमारे पूर्वजों ने इनकी कल्पना स्वयं की, इन्हें यूनान से नहीं लिया परन्तु इस विषय में मेरा दीक्षित से मतभेद है। वे स्वयं यह कहते हैं कि 'ई०पू० ४५० के पूर्व यहाँ राशियाँ नहीं थीं और यह भी कहते हैं कि ग्रहगणित की प्रधान कुंजी हमने यूनानियों से ली है। आकाश में ग्रह किस समय कहाँ रहेगा, इसकी मध्यम स्थिति का ज्ञान तो हमें था परन्तु स्पष्ट स्थिति जानने की पद्धति ग्रीकों से ली गयी है। वह हमारे यहाँ नहीं थी। तो प्रश्न यह है कि दीक्षित जी ने गणित से यह कैसे सिद्ध कर दिया कि राशियों के प्रचार का काल ग्रीकों से प्राचीन है। राशियों का आरंभ मेष से और अश्विनी नक्षत्र से होता है। अत: उसके प्रचार के समय सम्पात वहीं रहा होगा। इस समय वह बिन्दु रेवती से पीछे चला गया है। इसकी गति लगभग ७२ वर्ष में एक अंश होती है। दीक्षितजी ने अश्विनी के प्रत्यक्ष तारा का मेल करके गणित किया है और उसके आधार पर ई०पू० ४४६ में वहाँ वसन्त-सम्पात माना है परन्तु अश्विनी तारे के पास वसन्त सम्पात के पहुँचते ही वह गणना तत्काल चल पड़ी होगी, यह कैसे कहा जा सकता है? हम लोग तो आज भी अश्विनी को आदि नक्षत्र मान रहे हैं जबकि सम्पात बहुत पीछे चला गया है और इसके पूर्व महाभारत में भरणी तथा कृत्तिका, दोनों के आदि नक्षत्र रहने का वर्णन है। (अनुशासन पर्व ६४, ८६)। अश्वमेघ (४४) में श्रवणादीनि ऋक्षाणि कहा है। इससे प्रकट होता है कि उस समय श्रवण पर उत्तरायण और भरणी से आरम्भ मामा जाता था क्योंकि वेदांगज्योतिष में धनिष्ठारम्भ में उत्तरायण है अर्थात् कृत्तिका से सात नक्षत्र पूर्व उदगयन है।

हमारे यहाँ राशियों के आ जाने से ज्योतिषशास्त्र के गणित में भारी परिवर्तन हो गया। इसके पूर्व वेदांगज्योतिष नक्षत्रों के २७ विभागों पर बना था। उसके बाद सारा ज्योतिष गणित १२ राशियों और ३० अंशों के आधार पर रचा गया। इतने बड़े परिवर्तन के लिए ग्रीकों से दृढ़ परिचय और चिर सहवास आवश्यक है। भारत से सेल्यूकस का राज्य समाप्त हो जाने पर ई०पू० २०० के लगभग वैक्ट्रियन देश के यूनानियों ने पंजाब में फिर अपना राज्य स्थापित कर लिया और वह सौ वर्षों तक रहा। उसके बाद शकों का आक्रमण हुआ। उसके दो भाग होते हैं। एक पंजाब से होता हुआ मथुरा तक फैल गया और दूसरा सिन्ध काठियावाड़ से होता हुआ उज्जैन मालवा तक चला गया। इन शकों के साथ यूनानी भी थे। दूसरे भाग के शकों ने उज्जैन को जीत कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया और विक्रम के बाद वह नगरी शकों की राजधानी हो गयी। उन्होंने ही यहाँ शककाल प्रारम्भ किया। शकों का राज्य उज्जैन, मालवा, काठियावाड़ में तीन सौ वर्षों तक रहा। ग्रीकों और शकों का साहचर्य प्रसिद्ध है। इसी से शकयवन शब्द प्रचलित हुआ। इनका प्रसिद्ध राजा मिनण्डर बौद्ध इतिहास में मिलिन्द नाम से प्रसिद्ध है। उसी से सम्बन्धित बौद्धों का मिलिन्द प्रश्न नामक ग्रंथ है। उसी समय यवन और भारतीय ज्योतिष मिश्रित हुए और राश्यादिमूलक ग्रहगणित का प्रारम्भ हुआ। प्राचीन पंचसिद्धान्त और बाद के ब्रह्म, आर्य तथा सूर्यसिद्धान्त, तीनों इसी आधार पर बने। सारांश यह कि उज्जैन में यूनानी ज्योतिष की सहायता से आधुनिक आर्यज्योतिष की रचना हुई। इसीलिए सब भारतीय ज्योतिषग्रंथकार उज्जैन में ही शून्य रेखांश मानते हैं। सारांश यह कि भारत में राशियों का प्रचारकाल ई०पू० २००-१४५ है। राशियों के भारतीय नाम और आकार ग्रीकों के समान हैं।

अयनांशवाद बहुत प्राचीन नहीं है। ई०पू १५० मे हिपार्कस ने अयनगति का पता लगाया। भारत में आर्य-ज्योतिषियों को इसका ज्ञान बाद में हुआ। सात वार पहले खाल्डिया में बने और वहीं से सारे संसार में फैले। महाभारत में २७ नक्षत्रों के देवों के अनुसार नक्षत्रों के गुण माने गये हैं। जन्म नक्षत्र के आधार पर जन्म भर के सुख-दुख की भावना उत्पन्न हो गयी थी। युधिष्ठिर के जन्म नक्षत्र ज्येष्ठा के देवता इन्द्र थे इसलिए लोग समझते थे कि वे इन्द्र सदृश राजा होंगे किन्तु इस भावना के विरोधी लोग भी थे। वनपर्व में लिखा हैं-

बहवः संप्रदृश्यते तुल्यनक्षत्रमंगलाः।
महत्तु फलवैषम्यं दृश्यते कर्मसंगिषु॥

वाद में ग्रीकों के कारण नक्षत्र पीछे पड़ गये और राशियों की प्रधानता हो गयी। नक्षत्रों के वाद तिथियों में भी शुभाशुभत्व भावना आ गयी। महाभारत वनपर्व (१८८) में चारों युगों की वर्षसख्या क्रमशः १, २, ३, ४ सहस्त्र वर्ष है।

हरदत्तवेदालंकार का मत है कि–ई०पू० दूसरी शताब्दी में ग्रीकों ने मौर्य और शुंग साम्राज्य पर आक्रमण किये और वे हार जाने पर भी १५० वर्षों तक यहाँ रहे। युनानियों, शकों और पहलवों के बहुत से लोग आर्यों में विलीन हो गये। दूसरी शताब्दी के यवन ज्योतिषी टालमी ने ग्रहगणित की नींव डाली। वार भारत में ४०० ईसवी के बाद आये। डाक्टर कृष्णस्वामी आयंगर के मत से भारत में राशि और वारों के नाम वेवीलोनिया से लिये गये है।

नक्षत्रों की आकृतियों के गुण

इस समय हमारे ज्योतिष के विशाल भवन के आधार हैं विदेशी वार, राशियाँ और उन दोनों से सम्बन्धित लाखों काल्पनिक योग। उनका सम्बन्ध ज्योतिष की जातक, मुहूर्त, स्वर, शकुन, गणित आदि प्रत्येक शाखा से है। वारों का आकाश से कोई सम्बन्ध नहीं है और राशियों की आकृतियाँ आकाश में कभी दिखाई नहीं देतीं। यदि चार तारों से आकाश में एक चतुष्कोण बनता है और आप उसको मेष कहते हैं तो उसी को वृष और सिंह भी कहा जा सकता है। जिन तारों से सिंह बनता है उनसे बिल्ली, लोमड़ी, सियार और गधे भी वन सकते हैं। जिनसे नर बनता है उनसे नारी भी वन सकती है अतः तारासमूहों द्वारा बनी मछली, भेंड़ा, बैल, नर, केकड़ा, विच्छू आदि आकृतियों द्वारा उनके गुणों की कल्पना हास्यास्पद है। प्राचीन आर्यज्योतिष में नक्षत्रों का प्राधान्य था पर राशियों सदृश १२ विभाग उसमें भी थे। वे मधु–माधव आदि कहे जाते थे, उनके अन्य नाम भी थे, उन सब के स्वामी भी थे, स्वामियों में देव थे, देवियाँ थी, आदित्य थे, अप्सराएँ थी, रक्षा करने वाले राक्षस थे, नाग थे, यक्ष थे, ऋषि थे और गन्धर्व थे किन्तु न कोई मास अशुभ था न स्वामियों में कोई भीषण था (देखिये पृष्ठ ४५–४६)। वेदों ने तारों को तारक और नक्षत्रों को देवगृह कहा था तथा उनके भरणी, आर्द्रा, भाद्रपदा, पुष्य आदि मांगलिक नाम रखे थे पर उनके स्थान में भेंड़ा, बैल, बिच्छू, केकड़ा और मगर आदि आ गये और उनके आधार पर एक विशाल काल्पनिक शास्त्र तैयार कर दिया गया जिसमें शुभ ढूँढ़ना पड़ता है। उन्होंने नक्षत्रों के शरीरों को कहीं बीच से और कहीं किनारे से चीर दिया तथा एक ही नक्षत्र में परस्पर विरुद्ध गुणों का आरोप कर दिया। उत्तराफाल्गुनी का एक भाग सिंह और दूसरा कन्या हो गया जबकि दोनों के गुणों में आकाश–पाताल तुल्य अन्तर है। राशियों के आगमन के बाद नक्षत्रों के प्राचीन शुभ गुण विस्मृत हो गये और उनमें चित्रविचित्र नूतन गुणों का आरोप हो गया। (उनका विवरण आगे नक्षत्र प्रकरण में पढ़ें)। नक्षत्रों की ब्राह्मण, कृषक, चाण्डाल आदि जातियाँ बनी, अनेक वर्ण बने, वे घोड़ा, राक्षस आदि कहे जाने लगे और उनकी अनेक योनियाँ हो गयीं। इन गुणों में ऐसा आपसी विरोध है जो निर्णय करने ही नहीं देता। इस गुणविरोध से एक भी नक्षत्र वंचित नहीं है। नक्षत्रों के स्वामी पहले देव थे, अब ग्रह हैं। दस उदाहरण ये हैं–

अश्विनी–वैश्या, क्षत्राणी, देवी, भेंड़, घोड़ी, तिर्यक्मुखी।

भरणी–क्षत्राणी, चाण्डाली, भेंड़, हथिनी, नाशकारिणी।

कृत्तिका–ब्राह्मणी, क्षत्राणी, वैश्या, भेंड़, गाय, सुलोचना, अशुभ।

रोहिणी–वैश्या, शूद्रा, गाय, साँपिनी, अन्धी, ऊर्ध्वमुखी।

मृग–वैश्य, शूद्र, कृषक, साँप, बैल, देव, मिथुन।

पुनर्वसु–द्विज, वैश्य, शूद्र, विल्ली, केकड़ा, राक्षसी, दारुणा।

आश्लेषा–ब्राह्मणी, चाण्डाली, केकड़ा, राक्षसी, भीषणा।

राक्षसी।
, बिच्छू, तराजू।
देवी, अन्धी।

संस्कार और अबकड़ाचक्र

है और उसके अनेक नाम हैं। प्राचीनकाल में बच्चा जिस नक्षत्र में पैदा
था तथा कुछ अन्य विधियाँ भी थीं। यंज्ञ करते समय यजमान का भी उसी
क आगमन के बाद ग्रीक भाषानुसारी अवैज्ञानिक अबकड़ाचक्र ने उसका
कहते हैं पर यह है अबकड़ाचक्र। यद्यपि इसके आगमन के समय भारत में
ा आरम्भ कृत्तिका से होता है। इसमें अभिजित् सहित २८ नक्षत्र माने गये
ी रचना में दोघड़िया-चौघड़िया की भाँति शिव को भी घसीटा गया है।
अन्तर्गत है जबकि यह पूर्व-पश्चिम की खिचड़ी है। इसका आरम्भ
ाबेट कहते हैं। उसके प्रारम्भ के चार वर्ण आल्फा, बीटा, गामा, डेल्टा हैं।
के अलिफ, बे का भी इनसे सम्बन्ध है। इंगलिश में सी से 'क' का काम
ाणिनि व्याकरण के १४ प्रारम्भिक सूत्र 'अइंउण्' आदि शिवोपदिष्ट माने
विपरीत हैं अतः इसका विदेशी होना निश्चित है। संस्कृत साहित्य और
चक्र में ऋ स्वर है ही नहीं अर्थात् ऋक्ष शब्द की न कोई राशि होगी न नक्षत्र
ऋत्विक, कृष्ण, कृशानु, बृहस्पति, भृगु और मृत्युंजय आदि नामों की कोई
महाप्राण वाले अक्षर ख, छ, ठ, थ, फ, घ, झ, ढ, ध, तथा ङ, ञ, ण, ष
कोने में फेंक दिये गये हैं। उनमें स्वर चाहे जितने लगें, नक्षत्र एक रहेगा।
यह है कि संस्कृत भाषा के स्वभाव के विपरीत इसमें श-स और व-ब को
न, सकल, शकल और वध्यतां-बध्यतां में आकाश-पाताल का अन्तर है।
ध, फ को नहीं अतः इसकी विदेशीयता स्पष्ट है।

कहड़ा का शतपदचक्र

ड	म	ट	प	र	त
डि	मि	टि	पि	रि	ति
डु	मु	टु	पुष	रु	तु
			णठ		
डे	मे	टे	पे	रे	ते
डो	मो	टो	पो	रो	तो
ख	ग	स	द	च	ल
खि	गि	सि	दि	चि	लि
खु	गु	सु	दु थ	चु	लु
			झ ञ		

ने	ये	भे	जे	खे	गे	से	दे	चे	ले
नो	यो	भो	जो	खो	गो	सी	दो	चो	लो

संस्कृत वर्णमाला और लिपि की विशेषता

संसार के हर देश के विद्वानों ने यह मान लिया है कि संस्कृत वर्णमाला संसार की सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक एवं प्राकृतिक वर्णमाला है। इसका आरम्भ स्वरों से होता है और उनके उच्चारण का भी एक क्रम है। व्यंजनों में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग के अक्षरों का उच्चारण क्रमशः कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ से होता है, ये अंग क्रमशः आगे बढ़ते हैं तथा सबके १, २, ३, ४, ५ अक्षरों में सजातीयता है। क, च, ट, त, प अल्पप्राण हैं। ख छ ठ थ फ महाप्राण हैं और ङ ञ ण न म अनुनासिक हैं। इसी प्रकार गजडदब और घझढधभ की सजातीयता उच्चारण से सिद्ध हो जाती है। इसमें अन्य अनेक विशेषताएँ हैं तथा आर्य़लिपि में जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है। खेद है कि ऐसी वर्णमाला के रहते हम नामकरण उस शतपदचक्र से करते हैं, जिसके वर्णक्रम में कोई तथ्य नहीं है।

नामकरण का एक उदाहरण

ठाकुर शिवधनी सिंह वकील चाहते थे कि मेरे नवजात शिशु की राशि, नक्षत्र और नाम तीनों आकर्षक हों किन्तु वे राशियों के भेंड़ा, बैल, मिथुन, केकड़ा, सिंह, कन्या, तराजू, बिच्छू, आधा चौपाया (धनु), मगर, घड़ा और मछली नाम सुनकर उदास हो गये और पूछने लगे कि ज्योतिषियों को आकाश में ऐसी भद्दी आकृतियाँ क्यों दीखती हैं और हम लोग इन्हें क्यों नहीं देखते? अन्त में उन्होंने सिंह राशि को चुना। मैंने बताया कि सिंह राशि में सवा दो नक्षत्र हैं। उनमें मघा और पूर्वाफाल्गुनी उग्र और क्रूर हैं, केवल उत्तराफाल्गुनी का एक चरण शुभ है। उन्होंने प्रसन्न होकर नाम पूछा तो मैंने कहा कि प्रथम अक्षर टे रहेगा अतः आप बच्चे का नाम टेल्हू, टेंसू या टेंगर रखें। संस्कृत में टे पर कोई आकर्षक नाम नहीं है। वकील साहब क्रुद्ध होकर चलने लगे तो मैंने आग्रहपूर्वक बुला कर राशियों का इतिहास सुनाया, बालक का नाम रामप्रताप रखा पर यह भी बता दिया कि ज्योतिष के अनुसार आप (शिवधनी) और रामप्रताप दोनों राक्षस हैं। वकील साहब चकित होकर पूछने लगे कि क्या यह भी शास्त्र है?

वार और राशि में स्वामी करपात्री जी का मत

"कुछ लोग कहते हैं कि वेदों में और महाभारत में वारों और राशियों के नाम नहीं हैं, पर बात ऐसी नहीं है। ऋग्वेद में लिखा है कि एक अश्व के सात नाम हैं–एको अश्वो वहति सप्तनामा। इस मन्त्र में सात वारों का निर्देश है। देव्यथर्वशीर्ष में भौमाश्विनी शब्द आया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेद में मंगलवार है। इसी प्रकार महाभारत में अयन, विषुव, षडशीति नामक पर्वों का उल्लेख है। वह १२ संक्रान्तियों का सूचक है। वृद्धवशिष्ठ स्मृति में भी ये नाम हैं। हेमाद्रि नामक ग्रन्थ के दानखण्ड में महाभारत का एक श्लोक उद्धृत है। उसमें लिखा है कि सोमवार या भौमवार या गुरुवार से युत अमावस्या पुष्करपर्व होता है"।

शंकाएँ–(१) एक अश्व के सात नाम हैं तो हम सात अश्व क्यों मान लें? ईश्वर के अनेक नाम हैं तो क्या हम अनेक ईश्वर मान लें? कामदेव के २० नाम हैं तो क्या कामदेव २० हैं? (२) सात अश्व सात वार कैसे हो गये? (३) वेदों को सात वार और नवग्रह मान्य थे तो उन्होंने सात वारों के स्पष्ट नाम और नवग्रहों के स्पष्ट नव मन्त्र लिख क्यों नहीं दिये? (४) ग्रह नव हैं तो वार सात ही क्यों? (५) सात शब्द के कितने अर्थ होंगे? सात अश्व, या सात वार, या सात छन्द, या सात होता, या सात ऋषि, या सात स्वर, या सात पुरियाँ, या सात चक्र, या सात लोक? सत्य यह है कि सप्तनाम शब्द सूर्यरश्मि के

सात रंगों का द्योतक है। (६) महाभारत का वारों सम्बन्धी जी श्लोक हेमाद्रि ग्रन्थ में लिखा है उसे क्या आप महाभारत में दिखा सकते हैं? (७) आप देव्यथर्वशीर्ष में भौमवार दिखाते हैं पर ये नये ग्रन्थ हैं। हमारे देश में उपनिषदों और अथर्वशीर्षों की बाढ़ आयी है। प्राचीन दस उपनिषदों को देख अब लगभग ३०० बन गयी हैं। कण्ठी, माला, भस्म, रुद्राक्ष, सीता, राधा की ही नहीं, अल्ला की भी उपनिषद् बन गयी है। अथर्वशीर्षों की भी यही स्थिति है। क्या देव्यथर्वशीर्ष अथर्ववेद से सम्बन्धित हैं? (८) क्या अथर्ववेद में भौमाश्विनी या भौमवार का कहीं वर्णन है? सत्य यह है कि वारों का सम्बन्ध न वेद से है, न महाभारत से, न आकाश से, न शुभाशुभत्व से। वह एक अभारतीय कल्पना है। (६) वेदों में और महाभारत में लिखा है कि दो अयन, ६ ऋतुएँ और १२ मास संवत्सर के आश्रित हैं। उन वर्णनों से यह स्पष्ट हो जाता है है कि आजकल हम जो काम १२ राशियों से लेते हैं वह मधु माधव आदि १२ मासों या क्रान्तिवृत्त के १२ भागों से लिया जाता था अतः अयन, विषुव और षडशीति के लिए मेषादि राशियाँ अनिवार्य नहीं है।

ऋतवःस्थ संवत्सरे श्रिताः। मासानां प्रतिष्ठा युष्मासु (तै० सं० ३।११।१)।

(१०) वेद और महाभारत में अधिक मास का स्पष्ट उल्लेख है अतः राशियाँ होतीं तो उनका वर्णन अवश्य होता। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।५।२।२) में नक्षत्रिय प्रजापति का बड़ा सुन्दर वर्णन है तो वे मेष–वृषादि को कैसे न लिखते? इसी प्रकार जो सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति का बार–बार वर्णन करता है वह उनके वारों को न भूलता। वार नहीं थे इसीलिए नहीं लिखे गये।

नक्षत्र और राशियों के फल में मतभेद

आश्लेषा नक्षत्र अशुभ है, तीक्ष्ण है, दारुण है पर उसकी कर्क राशि अति शुभ है। उसमें चन्द्रमा स्वक्षेत्रीय रहता है। मघा और पूर्वा नक्षत्र उग्र हैं, क्रूर हैं, अशुभ हैं पर उनकी राशि सिंह शुभ है। उसमें चन्द्रमा मित्रक्षेत्रीय और बलवान् हो जाता है। मूल और पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र क्रूर हैं, दारुण हैं पर उनकी राशि देवगुरु की राशि और मित्र की राशि है। उसका चन्द्रमा शुभतर होता है। अनुराधा और श्रवण नक्षत्र शुभ हैं पर उनकी बिच्छू और मकर राशियाँ अशुभ हैं, पापक्षेत्र हैं। मुहूर्त और जातक में इस विरोध के सैकड़ों उदाहरण हैं।

राशि स्वामियों की मिथ्या कल्पना

आजकल नव ग्रहों की पूजा होती है, वेदों में नव ग्रहों की आकृतियाँ बनायी जाती हैं, नव की आहुतियाँ दी जाती हैं, जन्म पत्रियों में नवग्रहों के फल लिखे जाते हैं, अष्टोत्तरी और विंशोत्तरी आदि दशाओं में नव ग्रहों की दशाएँ लिखी जाती हैं पर राहुकेतु कोई ग्रह नहीं हैं। वे दो निराकार ग्रहमार्गों के दो निराकार सम्पात मात्र हैं। इसी कारण ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थों में सात ही ग्रहों की चर्चा है, बारह राशियाँ सात ही ग्रहों में बाँटी गयी हैं और अष्टकवर्ग आदि में सात ही ग्रहों के फल देखे जाते हैं। स्वामी करपात्री जी जिस मन्त्र से ग्रहपूजन सिद्ध करते हैं उसमें सूर्य की सात ही रश्मियों का वर्णन है और सात वारों के आगमन काल में भी ग्रह सात ही थे। उच्च, नीच, मूल त्रिकोण, सम, शत्रु, अधिशत्रु, आदि में भी सात ही ग्रह लिये गये हैं किन्तु आश्चर्य है, ग्रहों के जिस कक्षाक्रम के आधार पर सात ग्रह सात दिवसों के स्वामी माने गये हैं वह उस चक्र से भिन्न है जिसके आधार पर बारह राशियों का सात ग्रहों में बन्दरबाँट हुआ है। सारांश यह है कि एक ही शास्त्र में परस्पर विरुद्ध दो कक्षाक्रम हैं और वे दोनों प्रत्यक्ष दृष्ट वैज्ञानिक कक्षा क्रम के विरुद्ध हैं। सारांश यह कि इस ज्योतिष का वह मूलाधार ही मिथ्या है जिसके आधार पर चित्र–विचित्र फल कहे जाते हैं।

(१) प्राचीन कक्षा क्रम (२) (३) नूतन वैज्ञानिक क्रम

शनि	११–शनि–१०	प्लूटो
गुरु	१२–गुरु–६	नेपच्यून
मंगल	१–मंगल–८	यूरेनेस
सूर्य	२–शुक्र–७	शनि
शुक्र	३–वुध–६	गुरु
वुद्ध	४–चन्द्र	लघुग्रह
चन्द्र	सूर्य–५	मंगल
पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी चन्द्र
		शुक्र
		बुध
		सूर्य

ज्योतिषियों में एक पुरानी किंवदन्ती प्रचलित है कि सूर्य–चन्द्र राजा हैं इसलिए उन्होंने पाँच ग्रहों की दो–दो राशियाँ दे दीं और स्वयं एक–एक पर ही सन्तोष किया। पर सत्य यह है कि यह वँटवारा हमने किया है, सूर्यचन्द्र ने नहीं। क्रान्तिवृत्त के १२ विभाग भी अपनी सुविधा के लिए हमने ही किये हैं अन्यथा उसके विभाग की अन्य संख्याएँ भी हो सकती हैं। हमारे सौर परिवार का राजा सूर्य है। सब ग्रह उसी के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं हमारे लिए उसके वाद दूसरा स्थान चन्द्रमा का है अतः सूर्यचन्द्र को एक–एक राशि का तथा तारों से भी कम प्रकाश वाले नन्हें–नन्हें ग्रहों की दो–दो राशियों का स्वामी मानना अज्ञान और अन्धेर है। इस सिद्धान्त की न कोई उपपत्ति है, न सार्थकता है, न इसकी सचाई में कोई सुतर्क है।

ऊपर लिखे प्रथम चक्र के आधार पर वारों का क्रम बना है और दूसरे द्वारा राशिस्वामी नियत हुए हैं पर प्रथम चक्र में सूर्य ऊपर है और द्वितीय में नीचे। पुराणों में सूर्य से चन्द्रमा ऊपर माना गया है। द्वितीय चक्र में वही स्थिति है। प्रश्न यह है कि जिसे ग्रहों के वास्तविक कक्षाक्रम का ही पता नहीं हैं उसे सूक्ष्म फलों का ज्ञाता कैसे माना जाय? हमारे संस्कार ऐसे वन चुके हैं कि ग्रहों को स्वराशि में बैठा देख कर आत्मा प्रसन्न हो जाती है और उस शिशु को भाग्यशाली समझने लगती है परन्तु व्यवहार में वह सत्य सिद्ध नहीं होती और कल्पना के अतिरिक्त उसकी सत्यता का कोई प्रमाण नहीं है। जव सव ग्रह सब राशियों में सदा घूमते रहते हैं तो कोई किसी का स्वगृह, मित्रगृह और शत्रुगृह क्यों माना जाय? क्या किसी ने मकरस्थ शनि की कोई विशेषता देखी है? बृषराशि का सूर्य सबसे तेजस्वी होता है पर वह यहाँ शत्रुगृहस्थ कहा जाता है। बृश्चिक राशि का चन्द्रमा नीच भी होता है और मित्र क्षेत्रीय भी। धन्य है यह शास्त्र।

ग्रहों के उच्च नीच की मिथ्या कल्पना

हम जन्मपत्री में ग्रहों को उच्चराशि में स्थित देख कर बालक को भाग्यशाली समझने लगते हैं पर यह भी स्वक्षेत्र सरीखा भ्रम है। उच्च में स्थित ग्रह पृथ्वी से दूर रहता है और नीचस्थित पृथ्वी के निकट रहता है तथा वे दोनों चल हैं, यह भास्कराचार्य का कथन है। तो क्या (१) दूरस्थित ग्रह अधिक प्रभावशाली होता है और पास वाले की किरणें कम हो जाती हैं? (२) उच्चनीचस्थान चल हैं तो आप उसे स्थिर क्यों मानते हैं?

उच्चस्थितो व्योमचरः सुदूरे नीचस्थितः स्यान्निकटे धरित्र्याः॥
यो हि प्रदेशोऽपमण्डलस्य दूरे भुवस्तस्य कृतोच्चसंज्ञा।
सोपि प्रदेशश्चलतीह तस्मात्प्रकल्पिता तुंगगतिर्ग्रहज्ञैः (भास्कराचार्य)॥

ग्रहों की कक्षाओं से न आज कोई सम्बन्ध है न पहले कभी था। ये कोरी
ने के बाद ज्योतिषियों ने जब सत्ताविहीन दो नये ग्रहों राहुकेतु की कल्पना
कर दीं और उनके भी उच्च मान लिये। यद्यपि उनका बहुत प्रचार नहीं है

हं प्रोक्तं राहूच्चं मिथुनं स्मृतम्
शी च केतोर्गृहमथोच्चकम्॥

न ग्रहों का पता लगाया तो भारतीय ज्योतिषी एक वर्ष के भीतर उनके भी
शियाँ दे दीं और उनके भी उच्चनीच गढ़ दिये। प्रश्न यह है कि अब हम
भ का स्वामी शनि को मानें या यूरेनस को? आप प्लूटो को कौन सी राशि
यों के आधार पर जो सहस्त्रों फल लिखे हैं उन्हें क्या मिथ्या मान लिया
का पता नहीं था।

बु	बृ	शु	श
१२	१०	६	१
६	४	१२	७
१५	५	२७	२०

कोण और मित्रसमशत्रु की दो विधियाँ

बु	बृ	शु	श	
६	६	७	११	मूलत्रिकोण
सू शु	सू चं मं	बु श	बु शु	मित्र
मं बृ श	श	मं बृ	बृ	सम
च	बु शु	सू चं	सू चं मं	शत्रु
शेष मित्र	शेष मित्र	शेष मित्र	शेष मित्र	मित्र
सू	मं	सू च	सू चं मं	शत्रु

प्रश्न–अपनी राशि और अपनी उच्च राशि की ही भाँति अपने मित्र की राशि में स्थित ग्रह भी बलवान् समझा जाता है तथा नीचराशि में स्थित की ही भाँति शत्रु की राशि में स्थित भी निर्वल और अशुभ माना जाता है पर इस नियम में अनेक कठिनाइयाँ हैं। (१) वृष राशि में स्थित चन्द्रमा उच्च कहा जाता है पर वृष का स्वामी शुक्र चन्द्रमा का विरोधी है। (२) मकर का मंगल उच्च होता है पर मकरेश शनि मंगल का अमित्र है। (३) मीन का शुक्र उच्च होता है पर वह उसके शत्रु वृहस्पति का गृह है। (४) सवसे वड़ी कठिनाई यह है कि इसकी परस्पर विरुद्ध कई विधियाँ हैं। ऊपर वाले प्रथम चक्र में मंगल का बुध शत्रु है पर द्वितीय चक्र में मित्र है। (५) प्रथम चक्र में वुध का सूर्य मित्र है पर द्वितीय में शत्रु है। (६) प्रथम में वुध का चन्द्रमा शत्रु है और द्वितीय में मित्र है। (७) प्रथम में वृहस्पति के वुध और शुक्र शत्रु हैं पर द्वितीय में मित्र हैं। ऐसे कई स्थल हैं। (८) आश्चर्य है, एक ही चक्र में वुध का चन्द्रमा शत्रु है पर चन्द्रमा का बुध मित्र है। (९) सूर्य–शनि पितापुत्र हैं पर एक दूसरे के शत्रु हैं। (१०) वृहस्पति के बुध शुक्र शत्रु हैं पर वुध–शुक्र का बृहस्पति शत्रु नहीं है तथा इन दोनों के अतिरिक्त इनके विरोधी मित्रामित्र के अन्य चक्र भी हैं। प्रथम चक्र के विषय में आचार्य वराहमिहिर ने लिखा है कि मूलत्रिकोण राशि से २, ४, ५, ८, ९, १२वें स्थानों के स्वामी तथा मूलत्रिकोणाधीश की उच्चराशि के स्वामी मित्र हैं। ३, ६, ७, १०, ११ स्थानों के स्वामी शत्रु हैं और जो शत्रु मित्र दोनों हैं वे सम हैं। उदाहरण–सूर्य का मूलत्रिकोण सिंह है। उससे द्वितीय का स्वामी बुध है पर वह एकादश का भी स्वामी है इसलिए मित्र और शत्रु दोनों हो गया अत: सम है। सिंह के चतुर्थ और नवम, दोनों का स्वामी मंगल है इसलिए वह सूर्य का मित्र है। सिंह से पंचम और अष्टम दोनों का स्वामी गुरु है अत: वह सूर्य का मित्र है। सिंह से द्वादश राशि कर्क का स्वामी चन्द्रमा है और वह एक ही राशि का स्वामी है अत: मित्र है। सूर्य के उच्च का स्वामी मंगल है अत: मित्र है। सिंह से ६–७ का स्वामी शनि और ३–१० का स्वामी शुक्र शत्रु है। इसी प्रकार अन्य ग्रह भी एक दूसरे के शत्रु–मित्र आदि होते हैं पर शंका यह है कि त्रिकोण का रहस्य क्या है २–४–५ आदि के स्वामी मित्र क्यों हैं और ३–६–७ आदि के स्वामी शत्रु क्यों है?

कठिनाई–अपने मित्र के और शुभग्रह के क्षेत्र में स्थित ग्रह शुभ माना जाता है तथा शत्रु और पापग्रह के क्षेत्र में स्थित निर्बल समझा जाता है पर यहाँ देवगुरु वृहस्पति पापग्रहों सूर्य और मंगल का परम मित्र है। वृहस्पति और शुक्र दोनों शुभग्रह हैं पर एक दूसरे के शत्रु हैं। वुध शुभग्रह है और शनि पापग्रह है पर दोनों एक दूसरे के परम मित्र हैं। सूर्य पाप ग्रह है पर वह शुभग्रह चन्द्र का परम मित्र है। पापग्रहों में आपस में मित्रता होनी चाहिए पर सूर्य शनि पिता पुत्र और पापग्रह होते हुए भी एक दूसरे के घोर शत्रु हैं। शुभ और पाप वुध तथा शनि एक दूसरे के परम मित्र हैं। एक ग्रह का जो मित्र है उसका मित्र पहले का मित्र नहीं है। शुभ की परिभाषा यह है कि वह सन्तों की भाँति अपने संग से अशुभ को शुभ बना लेता है पर यहाँ स्थिति उल्टी है। सारांश यह कि यह शत्रु–मित्र भाव उपपत्तिहीन और मनमाना है।

द्वितीय चक्र के विषय में आचार्य कहते हैं कि यह कुछ लोगों का मत है–केषांचिदेवं मतम्। तृतीय चक्र का नियम है कि जो ग्रह जहाँ बैठा है उससे दायें–वायें तीन तीन स्थानों में अर्थात् २, ३, ४, १०, ११, १२ स्थानों में स्थित ग्रह मित्र होते हैं और शेष शत्रु होते हैं। इसमें कुछ आचार्यों का मत है कि ग्रह की उच्च राशि में स्थित अन्य ग्रह भी मित्र होते हैं इस प्रकार प्रथम और तृतीय विधि के संमिश्रण से ग्रहों में पाँच भाव हो जाते हैं। अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु और अधि (अति) शत्रु। इस विषय में अनेक शंकाएँ हैं। (१) आचार्यों में इतना मतभेद क्यों है? किस विधि को माना जाय? (२) क्या पास में स्थित ग्रह मित्र होते हैं? चन्द्रमा सूर्य से ज्यों–ज्यों दूर हटता है, अधिक प्रकाशित होता है। यही स्थिति प्रत्येक ग्रह की है तो दूरस्थ ग्रह शत्रु क्यों? (३) एक दूसरे से कई लाख–करोड़ योजन दूर स्थित ग्रह पिता–पुत्र और शत्रु आदि कैसे हो जाते हैं? आप राहुकेतु को भी ग्रह मानते हैं और उनका लम्बा चौड़ा फल लिखते हैं तो उनको राशियाँ क्यों नहीं मिलीं? उनके उच्च कहाँ है? नूतन ग्रहों और लघु ग्रहों की राशियाँ कौन सी हैं? (४) ग्रहों से बड़े और उज्ज्वल तारों की क्या राशियाँ हैं? (५) ग्रह यदि प्राय: अपने गृहों (राशियों) में वैठे नहीं रहते, सवमें सदा घूमते रहते हैं तो उन्हें उनका ग्रह क्यों कहा जाय? (६) जन्मपत्री के फलादेश

में भौमादि पाँच ग्रहों का महत्त्व सूर्य–चन्द्र से अधिक है। क्या यह उचित है? (७) यदि मनुष्य अपने गृह में या मित्र के गृह में रहने पर भी कुछ न कुछ कष्ट पाता रहता है तो स्वगृह और मित्रगृह में बैठे ग्रह निर्दोष और बली कैसे हो सकते हैं।

वराहमिहिर और बृहज्जातक

इस समय भारतीय ज्योतिष के जातक, संहिता, मुहूर्त, ताजिक आदि सब अंगों का प्राण राशिसमूह है। उसके आधार पर जो लिखा गया है वह एक सागर है। उसका संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने के लिए आचार्य वराहमिहिर के बृहज्जातक की कुछ बातें लिखी जा रही हैं। उनके द्वारा शेष की स्थिति का अनुमान सरल है। हमारी पुरानी पोथियों में लिखा है कि सूर्य ने याज्ञवल्क्य और हनुमान को वेद पढ़ाये, सुग्रीव और कर्ण को पैदा किया, सूर्यवंशी मानवों को पैदा किया, मय दानव को ज्योतिष पढ़ाया और वराहमिहिर कहते है कि उन्होंनें मुझे वरप्रसाद दिया। मैं मुनिमतों का विधिवत् अवलोकन करके इस रुचिर होराशास्त्र में उनका संग्रह कर रहा हूँ।

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार॥ २८।८॥
दिनकरमुनिगुरुचरण प्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम्।
शास्त्रमुपसंगृहीतं नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः॥ २८।६॥

किन्तु इस कथन में कई प्रश्न हैं। (१) आचार्य ने घोर परिश्रम करके प्राचीन मुनियों के वचनों का संग्रह तो कर दिया पर उन्हीं की भाँति हमारे सामने भी यह संकट है कि परस्पर विरोधी मत वाले मुनियों में से हम किसकी बात मानें। (२) जो मुनि सूर्य से चतुर्थ स्थान में बुध और शुक्र की स्थिति मानते हैं, तथा पानी पर तैरते तेल से ग्रहण की दिशा बताते हैं उनको हम ज्योतिर्विद् और ज्ञानी कैसे कहें? (३) आचार्य जी ने चेतन सूर्य की कृपा का प्रसाद पाया तो सूर्य ने उन्हें यह क्यों नहीं बताया कि पृथ्वी मेरी प्रदक्षिणा करती है? वे यह कैसे मानते रह गये कि सूर्य पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है, शुक्र सूर्य के पास है और वुध दूर है? (४) आचार्य जी कहते हैं कि ग्रह कोई फल नहीं देते। केवल भविष्य बताते हैं क्या यह कथन मानने योग्य है? (५) आचार्य को यदि केवल मुनिवचनों का संग्रह मात्र करना था तो उसमें सूर्य के वर की क्या आवश्यकता थी? (६) उन्होंने सूर्यस्तुति के बाद द्वितीय श्लोक में लिखा है कि अनेक मेधावियों ने इस शास्त्र के ज्ञान में घोर परिश्रम किया पर वे इस सागर को पार न कर सके। वे हतोत्साह हो गये हैं अतः मैं उनके लिए इस ग्रंथरूपी एक ऐसी नाव का निर्माण करने जा रहा हूँ जो छोटी है, जिसके छन्द विचित्र हैं और अर्थ विस्तृत हैं किन्तु सत्य यह है कि आचार्य जी स्वयं हताश थे।

भूयोभिः पटुबुद्धिभिः पटुधियां होराफलज्ञप्तये
शब्दन्यायसमन्वितेषु बहुशः शास्त्रेषु दृष्टेष्वपि।
होरातन्त्रमहार्णवप्रतरणे भग्नोद्यमानामहं
स्वल्पं वृत्तविचित्रमर्थ बहुलं शास्त्रप्लवं प्रारभे॥

उन्होंने कोई निर्णय नहीं किया है, केवल भिन्न–भिन्न मतों का उल्लेख कर दिया है और इस श्लोक के भाष्य में आचार्य भटोत्पल ने स्वयं निःसंकोच लिख दिया है कि पाठकों के उत्साह भंग का कारण यह नहीं है कि वे बुद्धिहीन हैं अथवा मीमांसा से अपरिचित हैं। यदि वे बुद्धिहीन होते तो उनका उद्यम शास्त्राध्ययन में ही भग्न हो गया होता। सत्य यह है कि यह शास्त्र ही दूषित है।

न हि ते बुद्धिहीनत्वात्तेषु शास्त्रेषु भग्नोद्यमाः, किं तर्हि
शास्त्रदोषत्वात्। अन्यथात्रापि तेषा मुद्यमभंगः स्यात्॥

वराहमिहिर ने सात ही ग्रहों का फल लिखा है। यदि मंगल तथा गुरु के बीच वाले ग्रहों को जोड़ लें तो इस समय कई सौ ग्रह हो जाते हैं। बड़े-बड़े तारे उनके अतिरिक्त हैं तो क्या सात ग्रहों द्वारा निर्णीत भविष्य सत्य हो सकता है? सारावलीकार कल्याणवर्मा का कथन है कि वराहमिहिर ने प्राचीन ग्रन्थों के अनेक विस्तृत विषयों का परित्याग कर यह संक्षिप्त ग्रन्थ लिखा किन्तु इससे भी राशि, दशवर्ग, राजयोग, आयु और दशा आदि के स्पष्ट एवं निर्विवाद फलों का बोध नहीं होता। इसलिए मैं उनके और यवनों के निःसार कथनों का परित्याग कर वह सारावली लिख रहा हूँ जो होराशास्त्र रूपी उष्ण जल से सन्तप्त शिष्यों के लिए शीतल जल की नदी है।

विस्तरकृतानि मुनिभिः परिहृत्य पुरातनानि शास्त्राणि।
सर्वमसारं त्यक्त्वा....। होरात्युष्णार्तानां नदीह सारावली॥

परन्तु यह नदी कितनी शीतल है और जन्मपत्री का निःसंशय फल कहने में इससे कितनी सहायता मिलती है, इसे तो भुक्तभोगी ही जानते हैं। इस ग्रंथ में भी राहुकेतु नहीं हैं। शीतल जल रूपी सारावली नदी अभी सूख तो नहीं गयी है परन्तु इस पर नहाने कदाचित् ही नहीं कोई जाता है। कितने तो इसका नाम भी नहीं जानते। इसमें दोष नदी का है, यात्रियों का नहीं।

दृढ़ और अदृढ़ फल

आचार्य वराहमिहिर इसके आगे लिखते हैं कि ग्रहों का कोई फल या प्रभाव नहीं होता बल्कि वे केवल भविष्य की सूचना देते हैं। आचार्य भटोत्पल ने इसके भाष्य में लिखा है कि जैसे दीपक अन्धकार में स्थित द्रव्य को दिखा देता है वैसे ही ग्रह पिछले कार्यों के फलों को बता देते हैं। फल दृढ़ और अदृढ़ नाम के दो प्रकार के होते हैं। अदृढ़ को पुरुषार्थ द्वारा हटाया जा सकता है पर दृढ़ को कभी नहीं। यदि दशाफल अशुभ है तो यात्रा मत करो और शुभ है तो करो। अदृढ़ फल अष्टक वर्ग से ज्ञात होते हैं। यदि वे अशुभ हैं तो शान्तियज्ञ करो। विहन्याद् दुर्बलं दैवं पुरुषेण विपश्चिता।

इस कथन की कई बातें विचारणीय हैं। (१) ग्रहों के फल प्रत्यक्ष हैं। सूर्य हमें प्रकाश, उष्णता, ऊर्जा और आयु आदि देता है। चन्द्रमा का प्रभाव समुद्र पर, औषधियों पर और हमारे शरीरस्थ जल आदि पर स्पष्ट है। उसकी किरणों की आह्लादकता को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। यही स्थिति सब ग्रहों की है और उनके प्रभाव के प्रबोध से अनेक अज्ञात शक्तियाँ पाई जा सकती हैं तो यह बात कैसे मानी जा सकती हैं कि ग्रह फल नहीं देते? योगवासिष्ठ कहता है कि इस जन्म के ज्ञान और कर्म द्वारा पिछले कुफल मिटाये जा सकते हैं और प्रत्यक्ष है कि इस युग में विज्ञान ने अनेक रोगों को भगाया है, नहरों एवं जलयन्त्रों द्वारा लक्ष्मी, अन्नपूर्णा, सरस्वती, शान्ति, तुष्टि, उन्नति आदि को बुलाया है तथा निकट भविष्य में वर्षा को भी वशीभूत करने की आशा है? (२)ग्रहदशा और अष्टकवर्ग भविष्य बताने में असमर्थ हैं तथा (३) शान्तियज्ञों की शक्ति आदरणीय नहीं, परीक्षणीय है।

राशि-आकृति और देहचिह्न

बृहज्जातक (१।४) में लिखा है कि बारह राशियाँ कालपुरुष के भिन्न-भिन्न अंगों में बैठी हैं। जन्म के समय जिस राशि में पापग्रह होगा उस अंग में क्षति आदि होंगे और जहाँ शुभ-ग्रह होंगे वह अंग पुष्ट होगा परन्तु इसमें पहली कठिनाई यह है कि राशियाँ चल हैं और तारे भी चल हैं। दूसरी कठिनाई यह है कि गुरु-शुक्र के अतिरिक्त सब ग्रह पाप हैं तथा ये दोनों भी अनेक स्थितियों में पाप हो जाते हैं अतः प्रत्येक मनुष्य के शरीर में अनेक घाव और चिह्न होने चाहिए। क्या यह सत्य है? संवत् २०१८ के माघ में सब ग्रह एकत्र थे और मंगल तथा शनि

मेष	शिर
वृष	मुख
मिथुन	वक्ष
कर्क	हृदय
सिंह	उदर
कन्या	कटि

तुला	मूत्राशय
वृश्चिक	लिंग
धन	जंघा
मकर	घुटना
कुंभ	पिंडुली
मीन	चरण

बाद में भी कई मासों तक मकर में ही रहे पर उस समय में उत्पन्न बालकों के घुटनों में घात नहीं है। संवत् २०३१ में वैशाख से श्रावण तक कई पापग्रह मिथुन राशि में थे पर उनमें उत्पन्न बालकों के वक्षस्थल में घात और लक्षण नहीं हैं। राणासंग्राम सिंह के शरीर में लगभग सौ घात थे और महाराजा रणजीत सिंह के नेत्र में घात था। दोनों की कुण्डलियाँ उपलब्ध हैं पर उनमें ये योग नहीं हैं। आचार्य ने इस विषय का अनुभव न लिख कर एक ही श्लोक में कई परस्पर विरोधी मुनिमतों का संग्रह किया है। ५। २३ में लिखा है कि (१) लग्न के नवमांश के स्वामी की ग्रह सरीखी आकृति होगी। (२) सबसे बली ग्रह सदृश आकृति होगी। (३) चन्द्रमा के नवांश के स्वामी सदृश आकृति होगी। ऊपर सिर से पैर तक राशियाँ बतायी थीं पर यहाँ लग्नादि द्वादशभावों का प्राधान्य है। उनके अनुसार (४) जहाँ दीर्घराशि में दीर्घराशि का स्वामी बैठा होगा वह अंग दीर्घ होगा। (५) जहाँ लघुराशि में लघुराशि का स्वामी स्थित होगा वह अंग छोटा होगा। (६) जिस राशि में कोई ग्रह नहीं होगा वहाँ राशि की आकृति से निर्णय होगा। (७) जहाँ दीर्घ में लघुराशिस्वामी या लघु में दीर्घराशिस्वामी बैठा होगा वहाँ बुद्धि से निर्णय होगा। (८) जहाँ कई ग्रह होंगे वहाँ बलवान् को महत्त्व दिया जायेगा।

लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्याद्वीर्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वा।
चन्द्रसमेतनवांशपतुल्यः कादिविलग्नविभक्तभगात्रः॥ ५। २३॥

इसके आगे लिखा है कि लग्न को द्रेष्काण नामक तीन भागों में विभाजित कर दो और देखो कि जन्म के समय कौन सा भाग उदित हो रहा था। सिर, नाक, कान, ललाट, कपोल, दाढ़ी और मुख प्रथम भाग में आते हैं। कण्ठ से नीचे वाले कन्धा, बाहु, हृदय, उदर आदि द्वितीय भाग में हैं तथा नाभि से पैर तक तृतीय भाग हैं। इसके आधार पर यह बता दो कि शरीर के किस अंग में तिल, मासा, अन्य चिह्न या घाव है। दायें भाग में है या वाम में, इसके ज्ञान की युक्ति भी लिखी है। पापग्रह बैठा है तो घाव बताओ॥ शुभ भी बैठा है अथवा शुभ की दृष्टि पड़ रही है तो मशक आदि बताओ। वह ग्रह यदि अपनी राशि या नवांश में है तो कह दो कि ये चिह्न जन्मजात हैं। ऐसा नहीं है तो शन्यादि ग्रहों द्वारा यह बता दो कि ये घाव भविष्य में पत्थर से, आग से, शास्त्र से, विष से, काष्ठ से, पशु के सींग से तथा जलचर जन्तु आदि से होंगे। जन्म कुण्डली में षष्ठस्थान में कोई ग्रह बैठा है तो वहाँ की राशि कालपुरुष के जिस अंग में है, बालक के उसी अंग में घाव आदि होंगे।

इस फल को लिखने में कितनी कठिनाइयाँ हैं, इसे ज्योतिषी भली भाँति जानते हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि हम लग्न को महत्त्व दें या राशि को या द्रेष्काण को या नवांश को या कालांग आदि को। सब नियमों के अनुसार अव्यंग मनुष्य मिलेगा ही नहीं क्योंकि पापग्रहों की ही संख्या अधिक है। आकृति के निर्णय में सबसे अधिक महत्व १२ राशियों की आकृतियों का है पर काल्पनिक होने के कारण वे आकाश में कभी दिखाई नहीं देतीं। लिखा है कि मेष, वृष, कर्क, सिंह वृश्चिक और मकर अपने नाम सदृश हैं, मीन में दो मछलियाँ हैं, कुंभ में कन्धे पर छूछा घड़ा लिये नर है, मिथुन में गदाधारी नर और वीणा धारिणी नारी है, कन्या में दीप और अन्नधारिणी कन्या है, तुला में तराजू लिये नर है और धन में ऊपर धनुर्धारी तथा नीचे अश्व है पर क्या ये आकाश में कहीं हैं?

राशियों के आकार और गुण

राशियाँ	मेष	बृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुंभ	मीन
वर्ण	क्षत्र	वैश्य	शूद्र	विप्र	क्षत्र	वैश्य	शूद्र	विप्र	क्षत्र	वैश्य	शूद्र	विप्र

स्वभाव	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य
लिंग	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी
चरादि	चर	स्थिर	द्विस्व	चर	स्थिर	द्विस्व	चर	स्थिर	द्विस्व	चर	स्थिर	द्विस्व
वलकाल	दिन	रात	दिन	सायं	दिन	रात	दिन	रात	दिन	रात	दिन	रात
दिशा	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
देह	रूक्ष	रूक्ष	स्निग्ध	स्निग्ध	रूक्ष	रूक्ष	स्निग्ध	स्निग्ध	रूक्ष	रूक्ष	स्निग्ध	स्निग्ध
स्वभाव	दृढ़	दृढ़	मृदु	मृदु	दृढ़	कृश	दृढ़	कृश	दृढ़	दृढ़	दृढ़	दृढ़
उदय	पीठ	पीठ	सिर	पीठ	सिर	सिर	सिर	सिर	पीठ	पीठ	सिर	दोनों
वर्ण	लाल	श्वेत	हरा	लाल	श्वेत	चित्र	कृष्ण	सोना	पीत	मिश्र	मिश्र	मन्स्य

इसका अर्थ यह है कि मेष राशि क्षत्रिय है, क्रूर है, नर है, चंचल है, दिन में बलवान् रहता है, पूर्व दिशा में रहता है, उसका शरीर रूक्ष है, चित्त दृढ़ है और उसका क्षितिज में उदय पीठ की ओर से होता है। रंग लाल है, प्रकृति पित्त है, चार पैर वाला है, सिर में रहता है, नाटा है, और गाँव में या सिवान में रहता है। इसी प्रकार सब राशियों के गुण भिन्न-भिन्न हैं और जिसकी जो राशि होती है उसमें भी ये गुण कुछ रहते हैं। इनके लग्नों और नवांशादिकों का भी प्रभाव पड़ता है। क्या ये बातें मानने योग्य हैं?

राशि-प्रयोजन

लिखा है कि इससे खोई वस्तु या भागे मनुष्य का पता लग जाता है। वृश्चिक में खोई वस्तु विल में ढूँढ़ो, सिंह में भागे मनुष्य को वन में खोजो, मकर मीन में गयी वस्तु का पानी में पता लगाओ, तुला में खोई वस्तु बनियाँ के घर में होगी और कन्या में खोई वस्तु नारी की चोली या साड़ी के भीतर होगी। आठ ग्रह आठ दिशाओं के स्वामी हैं। उनसे दिशा का पता लग जायेगा। राशियों की आकृति के विषय में यह ध्यान रखें कि वे भिन्न-भिन्न देशों में पृथक् पृथक् हैं। भारत में पहले राशिचक्र का आरंभ मृगशीर्ष से होता था, बाद में कृत्तिका में आया, वहाँ से अश्विनी में आया और अब भाद्रपदा में है तो निश्चित है कि उनकी आकृतियाँ बदलेंगी। चीन की राशियाँ हैं-(१) चूहा, (२) बैल, (३) सिंह, (४) खरगोश, (५) हाथी, (६) साँप, (७) घोड़ा, (८) मेष, (९) वानर, (१०) मुर्गी, (११) कुत्ता और (१२) सूअर। आजकल अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रों की वृश्चिक राशि मानी जाती है जब कि आकाश में उनकी नहीं वल्कि मूल की आकृति वृश्चिक सरीखी है पर आप उसे शृंगी बाजा (सिंगा) भी कह सकते हैं और ज्योतिषग्रन्थों ने उसे सिंहपुच्छ कहा है किन्तु इस समय मूल की राशि वृश्चिक नहीं वल्कि धन है। मुख्य बात यह है कि राशि स्थान चल हैं और तारों में भी गति है इसलिए उनकी आकृति स्थायी नहीं हो सकती। वस्तुतः मनुष्य की राशि की आकृति से उसके स्वभाव का कोई सम्बन्ध नहीं है। अनुराधा नक्षत्र में जन्मा मनुष्य बिच्छू सरीखा टेढ़ा और दुष्ट नहीं होता, रोहिणी में जन्मा मनुष्य बैल सरीखा नहीं होता, और हस्त नक्षत्र वाला मनुष्य नारी की आकृति और स्वभाव वाला नहीं होता परन्तु बड़े खेद का विषय है कि ज्योतिषी वरकन्या की गणना में तथा अन्य प्रसंगों में इस प्रलाप को बहुत महत्त्व देते हैं। मुहूर्तचिन्तामणि (६।२३) में लिखा है कि बिच्छू के अतिरिक्त सब शिंह के वश में हैं, सिंह के अतिरिक्त सब मनुष्य के वश में हैं, जलचर (कर्क, मकर, मीन) मनुष्य के भोजन हैं और शेष बातें मानव-व्यवहार से जान लें। सारांश यह कि नारी की वृश्चिक राशि है तो वह सबको डंक मारेगी, राक्षस गण है तो सबको खायेगी और सिंह राशि है तो सबको चबायेगी।

हित्वा मृगेन्द्रं नरराशिवश्याः सर्वे तथैषां जलजास्तुभक्ष्याः।
सर्वेपि सिंहस्य वशे विनालिं ज्ञेयं नराणां व्यवहारतोन्यत्॥

राशि और नक्षत्र फल का पाखण्ड

वेदों ने भगवान् शंकर को अर्हत् दयासागर, महाओजस्वी और वैद्यनाथ कहा है। ऋग्वेद के मन्त्र हैं—भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि। अर्हन्निदं दयसे विश्वम्। न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति। वे आर्द्रा नक्षत्र के स्वामी हैं। आर्द्रा का हृदय आर्द्र है और पहली वर्षा आर्द्रा में होती है (देखिये पृष्ठ १३५) किन्तु ज्योतिष ने आर्द्रा नक्षत्र को तीक्ष्ण, दारुण और घोर कहा है तथा उसमें उत्पन्न शिशु को दुर्गुणों का धाम बताया है। आर्द्रा की राशि मिथुन इस कथन की और भी सहायक हो जाती है किन्तु मैंने आर्दा–मिथुन के कुछ जन्म काल एकत्रित किये हैं। इस युग के महान् योगी, विश्ववन्द्य महर्षि रमण का जन्मकाल २६। १२। १८७६ ईसवी है, उनका जन्मनक्षत्र आर्द्रा है तथा राशि मिथुन है। महान् योगी श्री पालब्रन्टन ने और महान् सन्त श्री ओसबर्न ने इंगलिश में इनका जीवनचरित लिखा है तथा रमण को हम सब भलीभाँति जानते हैं। साईं बाबा भी एक विश्वविख्यात व्यक्ति हैं और उनका भी यही नक्षत्र है। बृहज्जातक के अनुसार इन दोनों को शठ, अहंकारी, कृतघ्न, हिंसक, पापी, अतिकामी, जुआरी, पेटू, नाचने वाला और नपुंसकों से प्रेम करने वाला होना चाहिए। महामना मालवीय जी,स्वामी विवेकानन्द और श्री सुभाषचन्द्र वसु की कन्या राशि है। बृहज्जातक के अनुसार इनको नारीस्वभाव का, डरपोक, अल्पपुत्र, कन्यापिता और संभोगप्रिय आदि होना चाहिए।

> शठगर्वितः कृतघ्नो हिंस्रः पापश्च रौद्रर्क्षे १६। ३॥
> स्त्रीलोलः सुरतोपचारकुशलस्ताम्रेक्षणो द्यूतवित्
> क्लीबैर्याति रतिं प्रभक्षणरु चिर्गीतप्रियो नृत्यवित् १७। ३
> मेधावी सुरतप्रियः परगृहैर्वित्तैश्च संयुज्यते
> कन्यायां परदेशगः प्रियवचाः कन्याप्रजोऽल्पात्मजः १७। ६

भगवान् राघवेन्द्र, श्री आदि शंकराचार्य और जवाहरलाल नेहरू की राशि केकड़ा है। अकबर बादशाह, श्री शिवाजी, महारानी विक्टोरिया, दादाभाई नौरोजी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और श्रीराजेन्द्र बाबू की राशि बैल है। महादेव गोविन्द रानड़े, औरंगजेब, टीपू सुलतान, श्रीरामवतारशर्मा, आशुतोष मुखर्जी और डाक्टर भगवान दास भेंड़ा हैं। श्री शिवकुमार शास्त्री और अरविन्द जी आधे मनुष्य तथा आधे पशु (धनु) हैं, गोपाल कृष्ण गोखले, विष्णु दिगम्बर एवं सावरकर कुंभ हैं तथा अहिंसा के महान् पुजारी महात्मा गान्धी की राशि सिंह है। आप पत्र–पत्रिकाओं में छपे राशिफल के समर्थक हैं पर जान लें कि विश्व के सारे जीवधारी केवल १२ राशियों में विभक्त हैं और इस समय एक राशि में लगभग ४० करोड़ मानव आ जाते हैं किन्तु उनके स्वभाव, आकार, सुख और कष्ट समान नहीं हैं।

राशियों के खण्ड और चन्द्रमा की अवस्थाएँ

राशियों के स्वरूपवर्णन के आधार पर किसी भी सम्पूर्ण राशि को शुभ या अशुभ न मान लें। ज्योतिषियों ने होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश, त्रिंशांश और षष्ट्यंश आदि नामों वाले उनके सैकड़ों सहस्त्रों खण्ड किये हैं और सबके भिन्न भिन्न फल कहे हैं। द्वादशांश में एक राशि में बारहों राशियाँ आ जाती हैं और षष्ट्यंश में वे सब पाँच बार आती हैं। एक खण्ड कहीं मेष है तो कहीं सिंह है तो कहीं कन्या है और कहीं मीन है। यद्यपि सब ग्रह सब राशियों में घूमते रहते हैं पर नक्षत्र और राशि का मूलसम्बन्ध चन्द्रमा से है। आपका रोहिणी नक्षत्र है और वृष राशि है तो इसका अर्थ यह है कि उस समय चन्द्रमा रोहिणी और वृष में था। उसमें चन्द्रमा की १२ अवस्थाओं का वर्णन है। ये प्रत्येक राशि में रहती हैं और इनके नाम हैं—प्रवास, नाश, मरण, जय, हास्य, रति आदि (देखिये मुहूर्तचिन्तामणि ४। १५)। इसका भाव यह है कि राशियाँ कभी सोती हैं, कभी रोती हैं, कभी मरती हैं तथा कभी हँसती हैं और दो दिन के भीतर ये बारह अवस्थाएँ सदा नियमित रूप से आती रहती हैं। आप

को दिखाई नहीं देतीं पर ज्योतिषी उन्हें अपनी दिव्य दृष्टि से देख लेता है।

मनोवांछित सन्तति

ज्योतिषशास्त्र बालक के जन्मलग्न से और जन्म कालीन ग्रहस्थिति से उसके जीवन के प्रत्येक क्षण का शुभाशुभ और स्वास्थ्य, आयु, धन, भाई, मातापिता, गृह, वाहन, सन्तान, विद्या, शत्रु, पत्नी आदि की स्थितियाँ बताता है किन्तु उसका यह सारा कथन विवादास्पद और परीक्षणीय है क्योंकि (१) बालक का वास्तविक जन्म गर्भाधान के समय दस मास पूर्व ही हो जाता है, गर्भ में भी ग्रहों की किरणों का प्रभाव उस पर पड़ता है और (२) बालक के गुण भाग्य आदि जन्मकाल तथा ग्रहों के वश में नहीं बल्कि माता–पिता आदि के ज्ञान और कर्म के वश में हैं। यह हमारे देश के महापुरुषों का उद्घोष है। इसके प्रबोध के लिए सर्वप्रथम योगवासिष्ठ और भागवत आदि के कुछ महावाक्यों (पृष्ठ ६–१७) को पढ़ें तथा प्रथम अध्याय में दिये कुछ महामानवों की शिक्षा का मनन करें। महर्षि पंतजलि विषयक एक प्रसिद्ध श्लोक में कहा गया है कि उन्होंने योगशास्त्र लिख कर हमारे चित्त का, व्याकरणभाष्य से वाणी का और वैद्यकसंहिता द्वारा शरीर का विकार दूर करने का अनुपम साधन दिया है।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतंजलिं प्रांजलिरानतोस्मि।

विद्वानों का कथन है कि उन्हीं का दूसरा नाम चरक है। उन्होंने अपनी चरक संहिता में लिखा है कि उत्तम सन्तान प्राप्त करना अपने वश में है। संभोगकाल में और उसके पूर्व पति–पत्नी का आहार संयमित हो, सात्त्विक हो और मन प्रसन्न तथा सत्त्वपूर्ण हो तो उत्तमोत्तम शुक्राणु गर्भ में प्रविष्ट होते हैं। स्त्री–पुरुष यदि संभोग काल में अतिशय भोजन किये हुए, भूखे–प्यासे, शोकार्त, उदासीन, भयभीत, क्रोधी, परानुरागी और अतिकामुक होंगे तो गर्भ धारण नहीं होगा अथवा सदोष सन्तान उत्पन्न होगी। वृद्धों, रोगियों और किशोरों के संभोग का उन्होंने घोर निषेध किया है। उस समय शयनागार सुगन्धित, स्वच्छ, पवित्र और सुन्दर सात्त्विक चित्रों से सुशोभित होना चाहिए। शय्या पर पैर रखने का मन्त्र है–विष्णुर्योनिं कल्पयतु..॥

हमारे आचार्यों का कथन है कि बीज के समुचित विकास के लिए क्षेत्र का निर्दोष और गुणवान् होना नितान्त आवश्यक है। सर्वगुणसम्पन्न गेहूँ का या आम का बीज ताक पर रखा रहे या सूखी मिट्टी में डाल दिया जाय तो अंकुरित नहीं होगा। पानी में डालने पर सड़ जायेगा, आग में डालने पर जल जायेगा और उर्वरा भूमि में डालने पर पुष्पित एवं फलित हो जायेगा तथा इसके बाद भी उसके दीर्घायु और सुफल होने के लिए देख रेख आवश्यक होगी। महर्षि चरक का कथन है कि ठीक इसी प्रकार शिशु पिता से, माता से, आत्मा से, अनुकूल पदार्थों के सेवन से, रस से और सत्त्व से उत्पन्न होता है। जैसे नाना द्रव्यों से कूटागार और जैसे अनेक काष्ठों से रथ बनता है ठीक उसी प्रकार गर्भ अनेक पदार्थों से बनता है। गर्भिणी के आहार, विहार आदि के दोषों से भी गर्भस्थ शिशु में अनेक विकृतियाँ आती हैं इसलिए वह जो माँगे उसे दे पर गर्भ के घातक पदार्थ न दे। प्रार्थना तीव्र हो तो अहित को हित में मिला कर दे क्योंकि इच्छा के मर्दन से गर्भ विनष्ट या विरूप हो जाता है।

मातृजश्चायं गर्भः पितृजश्चात्मजश्च सात्म्यजश्च रसजश्च।
यथा कूटागारं नानाद्रव्यसमुदयाद्यथा वा रथो नानारथांगसमुदायात् तथायं गर्भः।
सा यद्यदिच्छेत् तत्तद्दद्यात्, अन्यत्र गर्भोपघातकरेभ्यो भावेभ्यः।
तीव्रायां प्रार्थनायामहितमपि हितेनोपसंहितं दद्यात्
प्रार्थनासन्धारणात् कुपितो वायुरन्तश्चरन् गर्भस्य विनाशं वैरूप्यं वा कुर्यात्।

नंगी सोने वाली और रात में बहुत जागने वाली गर्भिणी का पुत्र उन्मत्त होगा। कलह करने वाली के पुत्र को मिरगी

आती है। बहुत मैथुन करने वाली का पुत्र निर्लज्ज, कामी और कुरूप होता है। शोक करने वाली की सन्तान डरपोक, दुर्बल और अल्पायु होती है। चिन्ता करने वाले की सन्तति द्वेषी, परतापी और स्त्रीभक्त तथा चोरी करने वाले की द्रोही और दुष्कर्मी होती है। जिन व्याधियों के जो हेतु हैं उनका सेवन करने वाली गर्भिणी उन्हीं से ग्रस्त बच्चों को जन्म देती है। वह जो सुनती है, सोचती है, खाती है, पीती है, सूँघती है, छूती है, जैसे विस्तरे पर सोती है, जैसे वस्त्र पहनती है और जैसे चित्र देखती है उन सब से प्रभावित होती है। रजवीर्य में मातृपक्ष और पितृपक्ष को अनेक पीढ़ियों के गुण–दोष भी पड़े रहते हैं। वे वातावरण के अनुसार ह्रास–विकास को प्राप्त होते हैं। इसे वंशानुक्रम (Heredity) कहते हैं। संयम और सत्संग से इसके दोषों की समाप्ति और गुणों की वृद्धि की जा सकती है, शास्त्रों में इसका विशद वर्णन है।

विवृतशायिनी नक्तंचारिणी चोन्मत्तं जनयति।
अपस्मारिणं पुनः कलिकलहाचारशीला।
शोकनित्याभीतमपचितमल्पायुषं वा। अभिध्यात्री परोपतापिनमीर्ष्युं स्त्रैणं वा।
स्तेनात्यायासबहुलं अतिद्रोहिणमकर्मशीलं वा। यद्यच्च यस्य यस्य व्याधेर्निदानमुक्तं।
तत्तदासेवमानान्तर्वली तद्विकारबहुलमपत्यं जनयति॥

शतपथ ब्राह्मण (१४।५।८।२) का कथन है कि संयमी मनुष्य प्रयास करने पर मनचाही सन्तान पैदा कर सकता है। जिसके माता, पिता और गुरु गुणवान् एवं सावधान होते हैं वह महान् पुत्र पाता है। तीनों मिल कर उसे शिव संस्कारों से महान् बना देते हैं–मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद। प्राचीन काल में अनेक माता–पिता गर्भाधान के पूर्व तप और ब्रह्मचर्य की साधना कर के उत्तम सन्तान प्राप्त करते थे। भगवती पार्वती और भगवान् शंकर ने लोकशिक्षण के लिए ऐसा करने के बाद ही तारकासुर के हन्ता देवसेनापति कार्तिकेय को पैदा किया था। भागवान राघवेन्द्र ने विवाह के लगभग २८ वर्ष बाद लव–कुश को पैदा किया था। बौधायन गृह्यसूत्र (१।७) में लिखा है कि माता–पिता यदि विद्वान्, वेदवेत्ता और वीर पुत्र चाहें तो तीन रात तक क्षार पदार्थों और लवण से रहित मधुर भोजन करें, नीचे भूमि पर सोयें, ब्रह्मचर्य का पालन करें, पवित्र एवं अनाहत वस्त्र पहनें, सायं प्रातः पुष्प आदि से अलंकार धारण करें, बाण, भाला आदि पास रखें, चौथी रात में पक्व पदार्थ का हवन करें और उसके बाद संभोग करें यदि व्याकरण, ज्योतिष आदि छ वेदांगों और वेदों को जानने वाला पुत्र चाहें तो बारह दिनों तक इस व्रत का पालन करें। योगीश्वर एवं सर्वज्ञ पुत्र की अभिलाषा हो तो चार मास तक यह व्रत करने के बाद गर्भाधान करें। यदि देवस्वरूप पुत्र चाहें तो एक वर्ष तक यह व्रत करें।

अथ यदि कामयेत् श्रोत्रियं जनयेयमारुन्धत्युपस्थानात् कृत्वा।
त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ अधः शायिनौ ब्रह्मचारिणावास्ताम्।
अहतानां वाससां परिधानं सायं प्रातश्चालंकरणमिषुप्रासधारणमग्निचर्यां चतुर्थ्यामुपसंवेशनं च।
अनूचानं जनयेयमिति द्वादशरात्रं व्रतं चरेत्।
यदि कामयेत् देवं जनयेयमिति संवत्सरमेतद् व्रतं चरेत्॥

महर्षि गौतम ने संयम के प्रभाव से अंजना नाम्नी ऐसी कन्या पैदा की जो गुणों में अपनी माता अहल्या से आगे थी। गौतम ने उसका विवाह योगी केसरी से किया और उसे अनुपमेय पुत्रप्राप्ति की शिक्षा दी तो केसरी ने शरीरचक्रों को और पाँचों पवनों को संयमित कर शंकर के आशीर्वाद से पुत्र रूप में उस हनुमान् को पाया जिन्हें भगवान् राघवेन्द्र भी अपना गुरु मानते थे। ठीक इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवती रुक्मिणी के साथ उपमन्यु महर्षि के आश्रम में बारह वर्षों तक व्रतपालन करने के बाद प्रद्युम्न सरीखा गुणवान् पुत्र पाया। महाभारत का कथन है कि व्रतकाल में उनका मुख अग्नि के समान तेजस्वी हो गया था।

व्रतं चकार धर्मात्मा कृष्णो द्वादशवार्षिकम्।
वक्त्राद् विनिः सृतो वह्निः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः॥

हमारे सभी महान् पुरुष इसी प्रकार उत्पन्न हुए हैं। उनकी अनेक कथाएँ हैं। गरुड़पुराण में विष्णु भगवान का उपदेश है कि शरीर का वास्तविक स्वरूप कुछ और है। इसमें ब्रह्माण्ड के सारे गुण विद्यमान हैं और गुरुकृपा से पाये जा सकते हैं। हमारे घर में महान् पुरुष का जन्म हो, इसका उपाय बता रहा हूँ। मासिकधर्म के समय पत्नी से दूर रहो और उसे मत देखो। वह चार दिनों में शुद्ध होती है। यदि इन सात दिनों में गर्भ रह गया तो सन्तान मलिन आत्मा की होगी। प्रायः सम दिनों में पुत्र का और विषम दिनों में कन्या का जन्म होता है। इसमें पति–पत्नी का खान–पान भी कारण बनता है। चौदहवीं रात में गर्भ रहा तो गुणवान्, भाग्यशाली और धर्मात्मा पुत्र पैदा होता है।

ब्रह्माण्डगुणसम्पन्नं योगिनां धारणास्पदम्। तावन्नालोकयेद् वक्त्रं त्यजेद्दिनचतुष्टयम्।
सप्ताहमध्ये यो गर्भः स भवेन्मलिनाशयः। युग्मासु पुत्रा जायन्ते पुत्र्योऽयुग्मासु रात्रिषु॥
या वै चतुर्दशी रात्रिः गर्भस्तिष्ठति तत्र वै। गुणभाग्यनिधिः पुत्रस्तदा जायेत धार्मिकः॥

नारी को पाँचवें दिन मधुर भोजन कराओ। कटु, खारा, उष्ण और तीक्ष्ण मत दो। ध्यान रखो कि उसका शरीर क्षेत्र है और औषधपात्र है। शयनागार में स्वच्छ एवं पवित्र वस्त्र पहन कर तथा ताम्बूल, पुष्पहार और सुगन्धित चन्दन से अलंकृत हो कर जाओ, भगवान के चित्र को माला पहनाओ, हाथ जोड़ो और मन में धर्म को जागृत कर मन्त्र पढ़ते हुए पवित्र शय्या पर पैर रखो। जान लो कि वीर्यपात के समय नर–नारी के चित्तों के भाव जैसे रहते हैं उसी जाति का जीव गर्भ में प्रविष्ट होता है। बालक केवल वीर्य या केवल रज से नहीं बल्कि दोनों के संयोग से उत्पन्न होता है अतः सुसन्तान प्राप्ति के लिए दोनों की विशुद्धि आवश्यक है। गर्भस्थापना हो जाने के बाद किसी सुयोग्य ब्राह्मण द्वारा उसके सीमान्त, पुंसवन और विष्णुपूजन संस्कारों को सम्पन्न करो और पुत्र होने के बाद यथाशक्ति दान करो क्योंकि जनता की शुभकामना में और आशीर्वाद में अपार शक्ति होती है। जन्म के बाद भी संस्कार करते रहो और इस बात का सदा ध्यान रखो कि सन्तति को सदा सत्संगति मिले और वह कुसंग से दूर रहे।

पञ्चमेहनि नारीणां कार्यं मधुरभोजनम्। कटु क्षारं च तीक्ष्णं च त्याज्यमुष्णं च दूरतः॥
तत्क्षेत्रमोषधीपात्रं बीजं चाप्यमृतायितम्। तस्मिन्नुप्त्वा नरः साधुः सम्यक्फलमवाप्नुयात्॥
ताम्बूलपुष्पश्रीखण्डैः संयुक्तः शुचिवस्त्रभृत्। धर्ममादाय मनसि सुतल्पं संविशेत्पुमान्॥
निषेकसमये यादृक् नरचित्तविकल्पना। तादृक्स्वभावसम्भूतिर्जन्तुर्विशति कुक्षिगः॥
शुक्रशोणितसंयोगात् पुत्रोत्पत्तिः प्रजायते। भवन्ति तस्य निखिलाः क्रियाः पुंसवनादिकाः॥
तज्जन्मसमये दानं प्राप्तुवन्ति नरा बहु। सतां संगेन स भवेत् सर्वागमविशारदः॥

छान्दोग्य उपनिषत् का कथन है कि शास्त्रीय विधि से किया हुआ मैथुन एक महान् यज्ञ है। उसमें नारी ही अग्नि है, उसके बाहरी भीतरी विविध अंग ही वेदी, कुण्ड समिधा, अंगार, चिनगारी और धूप आदि हैं तथा देवपुरुष का वीर्य ही घृत है। इससे उत्पन्न परिवार, देश और विश्व का उद्धार करती है।

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समित्।
यद्युपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोसि तेंगारा विस्फुलिंगाः।
तस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भो भवति ॥ ५।८॥

महर्षि धन्वन्तरि का कथन है कि नारी की ऋतुकालीन मनोवृत्ति बहुत ग्राहिका होती है। वह ऋतुस्नान के बाद जैसे

पुरुष को देखती है वैसा ही पुत्र देती है अतः पति को या परमेश्वर को देखे। गर्भावस्था के सत्संग और दर्शन का भी बहुत महत्त्व है। प्रह्लाद, अभिमन्यु और शिवाजी उसी से प्रभावित थे। सुश्रुत के शरीर स्थान में लिखा है कि रजस्वला और गर्भवती स्त्री यदि बहुत सोती है तो उसका शिशु बहुत सोयेगा। काजल लगाती है या रोती है तो उसे नेत्र विकार होगा। उच्च शब्द सुनती है तो बहरा होगा। अधिक वायु सेवन करती है तो बालक उन्मत्त होगा। इसलिए रजस्वला और गर्भिणी को सावधान रहना चाहिए।

पूर्व पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमंगना।
तादृशं जनयेत् पुत्रं भर्तारं दर्शयेदतः॥
दिवास्वपन्त्याः स्वापशीले, रोदनाद् विकृतदृष्टिस्तैलाभ्यंगात्।
कुष्ठी, नखकर्तनात् कुनखी, प्रधावनाच्चंचलः, प्रलापी चातिकथनात्।
अतिशब्दश्रवणाद् बधिरो मरुदायाससेवनान्मत्तः॥ २।५॥

विष्णु शर्मा का कथन है कि संभोगकाल में और उसके पूर्व पति–पत्नी का जैसा आहार, विहार, आचार और विचार रहता है उसी जाति का बीज गर्भ में प्रविष्ट होता है। मनुष्य की आयु और विद्या का तथा कर्म, धन और मरण का निर्णय गर्भकाल में ही हो जाता है। महर्षि पराशर का कथन है कि वीर्य और पिता की अपेक्षा रज और माता का महत्त्व अधिक है। उससे महत्त्वपूर्ण है जन्मकालीन वातावरण और तीनों से बड़ी है सत्संगति। गीता में भाग्य से बड़े महत्ता के चार हेतु हैं स्थान कर्तृत्व, साधन और प्रयास।

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः॥
आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥
वीर्यं क्षेत्रं जन्मकालस्तथा सत्संगतिर्नृणाम्।
उत्तमादिगुणे हेतुर्बलवानुत्तरोत्तरम्॥
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्॥

गीता में उस मनुष्य को दुर्मति कहा है जो किसी एक हेतु को सर्वस्व मान लेता है। आयुर्वेद का आदेश है कि गर्भिणी काम, कोप, भय और द्वेष से दूर रहे, सदा शुभ संकल्प करे, बल ऐश्वर्य एवं प्रसन्नता की वृद्धि करने वाले महान् पुरुषों के पवित्र चरितों को सुने, सदा स्वयं उसकी चर्चा करे, भक्ति, शान्ति, सद्भाव और श्रद्धा से युत हो कर देवार्चन करे और अपने शयनागार में सुन्दर सात्त्विक चित्र टाँगे। सदा उत्तम साहित्य पढ़े, प्रसन्न रहे और परिश्रम करे। पुरुषों को भी चाहिए कि गर्भस्थ बालक के हित के लिए वे गर्भिणी से सद्व्यवहार और सद् भाषण करें। चूँकि माता अपने रक्त, मांस, भोजन और विचार से गर्भस्थ शिशु का पोषण करती है अतः उसे भला और बुरा, दोनों बना सकती है।

काम क्रोधभयद्वेषैर्युतं न हृदयं भवेत्।
सर्वदा शुभसंकल्पान् कुर्यात् सन्ततिधारिणी॥
महतां नररत्नानां चरितं हर्षवर्धनम्।
शृणुयात् कीर्तयेन्नित्यं बलैश्वर्यादिपूरितम्॥
शान्तिसद्भावसंयुक्ता भक्तिश्रद्धासमन्विता।

स्वेष्टदेवार्चनं कुर्यात् यदीच्छति सुसन्ततिम्॥
बालकस्य हितार्थाय गर्भिण्या सह भाषणम्।
कुर्यात् सद्भावसंयुक्तं व्यवहारं नरः सुधीः॥

आयुर्वेद के अनुसार जन्मकाल में उच्च स्वर वाला बाजा बजाना, बहुत कोलाहल करना, माइक लगा कर सोहर गाना या अखण्ड कीर्तन कराना तथा प्रसूतिगृह में वृहत् प्रकाश कराना अनुचित है। इससे सुकुमार हृदय और नेत्रादि वाले नवजात शिशु विकृतांग, अल्पायु और रोगी हो जाते हैं। वातावरण का उन पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

वास्तविक जन्म और आयु

ज्योतिषशास्त्र जन्मकालीन ग्रहस्थिति के आधार पर मनुष्य की आयु का निर्णय करता है परन्तु शास्त्रीय प्रमाणों से यह निश्चित हो गया है कि वास्तविक जन्म गर्भाधान ही है। हम खेत में जिस दिन वीज डालते हैं उसी दिन उसका जन्म हो जाता है और प्रतिक्षण उसमें कुछ क्रिया होती रहती है। भूमि के वाहर दिखाई देना द्वितीय जन्म है। शास्त्रों में मनुष्य के दो और तीन जन्मों का वर्णन है। ऐतरेयोपनिषत् के अनुसार माता के गर्भ में प्रवेश प्रथम जन्म है, वाहर आना द्वितीय जन्म है और संस्कारों से संस्कृत होना तृतीय जन्म है। शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य जन्म से शूद्र रहता है और संस्कार से दूसरा जन्म पा कर द्विज हो जाता है किन्तु संस्कार यज्ञोपवीत, पीतवस्त्र और तिलक, माला आदि बाह्योपचारों से ही नहीं होता। वास्तव में संस्कार वह है जिसने वाल्मीकि और अंगुलिमाल आदि को सन्त बना दिया।

तद्यदा स्त्रियां सिंचति तदस्य प्रथमं जन्म।
सा भावयित्री....जनयति तदस्य द्वितीयं जन्म।
पुण्येभ्यः प्रतिधीयते–तदस्य तृतीयं जन्म (ऐ.ब्रा)॥
जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते॥

अतः जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति से आयुनिर्णय असंभव है। महर्षि चरक ने अपनी संहिता में लिखा है कि जो मनुष्य हित आहार और हित बिहार का सेवन करता है, कार्यारंभ के पहले उसके परिणाम को सोचता है, विषयों का सेवन करते हुए भी उसमें डूब नहीं जाता, विद्या, श्रम, अन्न, धन आदि का दान कर जनता का आशीर्वाद लेता है, सत्य बोलता है, दयालु और क्षमावान् होता है तथा महान् पुरुषों की सेवा करता है वह निरोग और दीर्घायु होता है। स्वस्थ और दीर्घायु होना चाहते हो तो शोक, भय, लोभ, दुःसाहस, क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या, अति अनुराग और मिथ्या भाषण आदि के वेगों को रोको पर छींक, जँभाई, अपानवायु, निद्रा, श्वास, भूख, प्यास और मल–मूत्र आदि के वेगों को कभी न रोको। नैतान् वेगान् विधारयेत्।

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।

ज्योतिषशास्त्र ग्रहों के आधार पर रोगों एवं अरिष्टों का बताता है पर योगिराज चरक माता–पिता का और स्वयं का असंयम उसका हेतु बताते हैं। ज्योतिषशास्त्र राशि और लग्न के आधार पर मरण काल बताता है पर भिसग्वर चरक कहते हैं कि यदि मनुष्य की आयु निश्चित होती तो मन्त्रों, औषधों, अहिंसादि यमों, शौचादि नियमों और ध्यानादि संयमों का प्रयोग नहीं किया जाता। कोई होम, जप, व्रत, प्रायश्चित्त आदि न करता। साँड़, हाथी, बाघ, भैंसा सर्प और अग्नि आदि से न डरता तथा उनसे बचने का प्रयास न करता। वह आँधी, राजदण्ड और संक्रामक रोगों से न डरता। आयु नियत होती तो इन्द्र भी किसी को वज्र से न मार पाते, कोई किसी पर आक्रमण नहीं करता, कोई युद्ध नहीं करता और देवों के वैद्य अश्विनी कुमार भी किसी रोगी को नीरोग न कर पाते। यदि भाग्य ही सब कुछ होता और आयु निर्णीत होती तो महर्षिगण तप में प्रवृत्त न होते

रण से आयु बढ़ती है। उसके विपर्यय से घटती है और आकस्मिक मृत्यु

के सब गुणों से युक्त होने पर अपने प्रमाण के क्षय होने से समय पर ही
सामयिक मृत्यु कहते हैं। जैसे गाड़ी पर अधिक भार लादने से, गाड़ी के
होने से गाड़ीवान् और बैलों के सदोष होने से, गाड़ी लगातार जुती होने
उसी प्रकार आयु भी शक्ति से अधिक काम करने से, शक्ति से अधिक
ने से, अति मैथुन से प्रबल वेगों को रोकने से, निन्दित वेगों को न रोकने
यु कहते हैं। ज्वरादि रोगों का विपरीत उपचार करने पर भी अकाल मृत्यु

युः सर्वं स्यात्तदायुष्कामानां मन्त्रौषधिमणि–
यश्चित्तोपावसाद्या न प्रयुज्येरन्।
वनादयश्च दुष्टाः परिहार्याः।
पीन्द्रो नियतायुषं वज्रेणाभिहन्यात्।
प्रेताम्। नर्षयो यथेष्टमायुस्तपसा प्राप्नुयुः।
तमतो विपर्ययान्मृत्युः।
त्यैवाक्षगुणैरुपेतो वाह्यमानो यथाकालं
छेत्तथायुः शरीरोपगतम्। स मृत्युः काले।
ष्ठितत्वाद् विषमपथादक्षचक्रभंगाद्

मापद्यते तथायुरपि अयथाबलमारंभाद् अयथाग्निविषमादनशरीर–
धारणादन्तरा व्यसनमापद्यते। स मृत्युरकाले। तथा ज्वरादीन्

ाचार से दीर्घायु

तीन स्थान (अधिष्ठान) की महत्ता का वर्णन है उसी प्रकार चरक का
स्थिति) में उत्पन्न मनुष्य पुरुषार्थी होते हैं। बलवत्पुरुषे देशे जन्म,
युधिष्ठिर को हितायु और दीर्घायु के विषय में विस्तार से बताया है कि
श्री और आयु आदि की प्राप्ति होती है। जो बहुतों को पराजित करता
रुष या तो दीर्घायु नहीं होता अथवा उसकी दीर्घायु उसकी विपत्ति का
ण में प्रधान स्थान है। सत्यवादी और प्रसन्न रंहने वाला शतायु और
भवादन करने वाले की आयु, विद्या, यश और ज्ञान का विस्तार होता है।

ीर्तिमाचाराल्लभते श्रियम्।
युर्नरः प्रेत्यात्र संस्थितः॥
षो नेहायुर्विन्दते महत्।
ानि तथा परिभवन्ति च ॥

परदारा न गन्तव्या अनायुष्यमिदं महत्।
सत्यवादी प्रसन्नात्मा शतवर्षाणि जीवति॥
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशः श्रुतम्॥

आकाश के प्रदूषण का मुख्य हेतु दुराचार

ज्योतिषशास्त्र ग्रहों की स्थिति के आधार पर भूमि और आकाश में नाना प्रकार के उत्पातों का वर्णन करता है किन्तु योगी चरक ने आत्रेय और अग्निवेश मुनियों के संवाद में यह सिद्ध किया है कि मनुष्यों के दुराचार नक्षत्रों, ग्रहों, वायु, आकाश और दिशाओं में विकृति उत्पन्न कर देते हैं तथा उच्चकोटि के मुनि अपनी पुनीत मनोवृत्तियों से वायुमण्डल को विशुद्ध कर देते हैं। जब देश के प्रधान पुरुष अर्थलोलुप, कामी और अधर्मी हो जाते हैं तब उनके अनुयायी पाप को बढ़ाते हैं। तब देवगण रुष्ट हो जाते हैं, ऋतुएँ विपरीत हो जाती हैं, समुचित वर्षा नहीं होती, न्यून या अधिक होती है, उससे अनेक रोगों और विकृतियों की उत्पत्ति होती है, वायु विपरीत हो जाता है, जलाशय सूख जाते हैं तथा वायुमण्डल को शुद्ध करने वाले औषधिवृन्द और वन समाप्त हो जाते हैं। अधर्म की वृद्धि बिना, पहले कभी ऐसे उत्पात न हुए हैं न भविष्य में होंगे।

यदा देशनगरनिगमजनपदप्रधाना धर्ममुत्क्रम्याधर्मेण प्रजां प्रवर्तयन्ति तदाश्रितोपश्रिताः पौरजनपदा व्यवहारोपजीविनश्च तमधर्ममभिवर्धयन्ति। ततस्ते देवताभिस्त्यज्यन्ते। ततोपक्रान्तदेवानां ऋतवो व्यापद्यन्ते। तेन देवो यथाकालं नापो वर्षति, विकृतं वा वर्षति। तदा वाता न सम्यग्वान्ति, क्षितिर्व्यापद्यते, ओषधयः स्वभावमपहाय विकृतिमापद्यन्ते जनपदा उद्ध्वंसन्ते। प्रागप्यधर्मादृते नाशुभोत्पत्तिरन्यतोऽभूत्॥

आयु की हानि और वृद्धि में ग्रहों की अपेक्षा खानपान और वायुमण्डल का अधिक महत्त्व है, इसके अनेक प्रमाण हैं। ग्रह तो विश्व के हर देश में एक ही हैं पर सर्वत्र आयु के मध्यम (औसत) मान भिन्न-भिन्न हैं। उजवेकिस्तान में १५० वर्ष की आयु के ऐसे अनेक मनुष्य हैं जिनका निजी परिवार १०० के आसपास है। ध्रुवों के पास की जनता पर ध्रुवों के अस्थायी चुम्बकत्व का प्रभाव पड़ता है तथा शीत और उष्ण प्रदेशों की मध्यमायु में अन्तर है। पंजाव और बंगाल के स्वास्थ्य में स्वाभाविक अन्तर है और उन दोनों की स्त्री-पुरुष संख्या के अनुपात में भी अन्तर है, मछली, चावल आदि जलीय पदार्थों का अधिक सेवन करने वाले जापान, बर्मा, बंगाल आदि में कन्याएँ अधिक हैं और पंजाव-सिन्ध में पुत्र अधिक हैं। शास्त्र का यह कथन आज प्रत्यक्ष दीख रहा है शृंगाररस की वृद्धि से कन्यावृद्धि और वीररस की वृद्धि से पुत्रवृद्धि होती है। मनुष्य केवल अपने ही कर्मों का फल नहीं भोगता। राजा, मन्त्री, पुरोहित, नेता, विधायक, अध्यापक, व्यापारी और न्यायाधीश आदि द्वारा निर्मित वायुमण्डल का फल भी भोगता है अतः आयु ग्रहों के वश में नहीं है। यही स्थिति जन्मपत्री के हर भाव की है। जन्मपत्री में पुत्र-पुत्री की संख्या लिखी है पर परिवारनियोजन द्वारा वह लेख मिटाया जा रहा है। यह विधान पहले भी था। साम्यवादी देशों में जनता की धनस्थिति पूँजीवादी देशों से भिन्न है। स्वराज्य प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने राजों का राज्य ले लिया, भूमिपतियों (बड़े जमीन्दारों) की भूमि ले ली, वहाँ ब्रह्मा और ग्रहों के प्रभाव को समाप्त कर दिया पर सेठों की सम्पत्ति पर सीलिंग नहीं चली और नये ग्रहों ने आकर अगणित रंकों को राजा बना दिया? भारत का आकाश नहीं वदला, ग्रह नहीं बदले पर हमने स्थितियाँ बदल दीं। सन्तानभाव और विद्याभाव बदला है। पहले शूद्रों और स्त्रियों के विद्याधीश विद्या से उनका स्पर्श भी नहीं होने देते थे पर वे अब कहीं सो गये हैं। भारत, अमेरिका, रूस, बर्मा और वियतनाम के पुत्रभाव और पत्नीभाव के नियमों में बहुत अन्तर है पर ग्रह सबके एक हैं। हमारे विभिन्न प्रान्तों के आदिवासियों, मुसहरों तथा भेंडिये की माँद से निकाले बच्चों के भी ग्रह वे ही हैं जो बिरला टाटा के बच्चों के हैं। डालमियाँ, सिंहानियाँ और विक्टोरिया के परिवार के हर व्यक्ति की कुण्डली में राजयोग नहीं है पर वहाँ दरिद्रियोग वाले भी राजे हैं।

ष में आयुर्दायस्थिति

जानते हैं कि आचार्य वराहमिहिर द्वारा निर्दिष्ट आयु जानने की विधि
, जीवशर्मा, और सत्याचार्य आदि जिन आचार्यों के विचार लिखे हैं उनमें
६, २५, १५, १२, १५, २१, २० वर्ष दिये हैं वह अब न तो प्रचलित है, न
पूर्ण महत्त्व है जो विवादग्रस्त है और चल है। ग्रहों की जिस उच्च स्थिति
ा है उसी को दूसरा केवल दीर्घायु का द्योतक बताता है परन्तु कहीं-कहीं
कई स्थानों पर लिखा है-एतद् बहूनां मतम् अर्थात् यह बहुमत है, सबका
ा विस्तृत वर्णन करने के बाद लिख दिया कि सुयोगों के फल पापियों को
ुशील हैं, सात्त्विकभोजन करते हैं और पथ्य से रहते हैं-स्याद् धर्मिष्ठ
र का कथन है-

ष्टं तस्मिन्प्रोक्तं चक्रवर्तित्वमन्यैः।
जीवन्त्यायुः पूर्णमर्थैर्विनापि॥ ७। ८॥

परस्पर विरुद्ध अनेक विधियाँ हैं। उनमें जैमिनिसूत्र और जातककेशवी को
तक न तो निर्विवाद अर्थ लग सका है न उसके अनुसार सत्य आयु बताने
नायक शास्त्री वेताल ने अपने भाष्य में लिखा है कि जैमिनि के सूत्रसागर
द्रवचन रूपी नाव पर बैठे पर एक भी पार न कर सका। फिर भी मैं धृष्टता
(पर वृद्धावस्था में शास्त्री जी भी हताश थे)।

सन्धौ आरुह्यवृद्धसुवचोरचनार्थनावम्।
ी तथापि धृष्टो मतिं गुरुपदादिह पातायामि॥

नेश, अष्टमेश और राशियों के चर, स्थिर तथा द्विस्वभाव आदि नाम। पर
ग्रह किसी राशि का स्वामी है और न राशियाँ चर-स्थिर हैं। मेष चर है तो
या आकाश में भिन्न-भिन्न स्वभावों वाली १२ राशियाँ क्रम से बैठी हैं? क्या
लग्न और अष्टम स्थानों का सचमुच आयु से कोई विशिष्ट सम्बन्ध है?
नधिक हों वह आत्म कारक है, उससे कम अंश वाला अमात्यकारक होता
भ्राता, माता, पिता, पुत्र, जाति और पत्नी के कारक माने जाते हैं। यहाँ ग्रहों
तर्कसंगत है? क्या किसी ग्रह में अंशों की संख्या अधिक होने से विशिष्ट
स्थान से आरंभ करने पर क्या ये अंश टिक पायेंगे? क्या महर्षि जैमिनि के
जैमिनि के भावलग्न को? कौन सत्य है? क्या शनि का नौकरों से, मंगल
गुरु का पितामह-पितामही से और शुक्र का सास-ससुर आदि से कोई
नवांशादिकों से ही सारे फल ज्ञात हो जाते हैं तो राशि का इतना यशोगान
जा चुके थे? जैमिनि- सूत्र का दृष्टिनियम अन्य ग्रन्थों से भिन्न है। उसमें
भी देखते हैं तथा २, ५, ८ और ११ में बैठे षष्ठ स्थान को भी देखते हैं।
८। सत्य यह है कि जैमिनि के नाम से यह ग्रन्थ लिखने वाले ने भी उन
ल्पना है पर हेतु नहीं है, उपपत्ति नहीं है। धरती पर कहीं ऐसा क्रम दिखाई

नहीं देता कि पुरुषों और स्त्रियों, दुष्टों और सज्जनों के तथा चलों और अचलों आदि के ग्राम क्रम से और नियम से बसे हों तो आकाश की राशियों में यह नियम कैसे बन गया? नक्षत्रों में पुरुष-स्त्री का जो नियम है वह राशि में उलट जाता है। पुष्य पुरुष है पर उसकी राशि कर्क स्त्री है। क्यों? जैमिनिसूत्र के पाठक जानते हैं कि उसमें अभी यह निर्णय नहीं हो सका है कि (१) दिनेश का अर्थ रवि है या अष्टमेश। (२) मन्द का अर्थ शनि है या लग्न। (३) चन्द्र का अर्थ चन्द्रमा है या द्वितीय स्थान या द्वितीयेश और (४) काल शब्द का अर्थ सप्तम स्थान है या होरालग्न।

केशवी-केशवी में ग्रहों की नैसर्गिक मैत्री, तात्कालिक मैत्री, पंचधा मैत्री, होरावल, द्रेष्काणवल, नवमांशबल, द्वादशांश बल, त्रिंशांश बल, सप्तमांशवल, उच्चादि वल, समविषमवल, केन्द्रादिवल, दिग्वल, नतोन्नतबल, पक्षबल, दिनरात्रि बल, वर्ष-मासहोरेशादि बल, अयनबल, चेष्टावल, भावोंका दृष्टिवल, स्वामिबल, दिग्बल, शुभपंक्तिसप्तवर्ग, अशुभपंक्तिसप्त-वर्ग, इष्टवल, कष्टबल, सद्वल, असद्वल, चेष्टागुण, आश्रयगुण, दायांश, अंशायु, पिण्डायु, निसर्गायु, जीवायु आदि के विवेचन द्वारा सूक्ष्म आयु जानने के लिए बृहत् प्रयत्न किया गया है। एक जन्मपत्री बनाने में महीनों लग जाते हैं परन्तु सारा श्रम व्यर्थ होता है। गुरुजी के समक्ष मैंने उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर अपनी जन्मपत्री तीन बार बनायी किन्तु आयु ४० से अधिक किसी प्रकार नहीं आती और मैं इधर ६८ पूरा करने जा रहा हूँ। इन वलों में आपस में घोर विरोध है।

वर्गसाधन

राशि को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटकर फल कहने की पद्धति वर्गसाधन है। वर्ग तो १५ से भी अधिक हैं पर सात की विशेष प्रसिद्धि है। बड़ी कुण्डलियों में राशि के ६० तक टुकड़े किये जाते हैं। इससे फल में सूक्ष्मता तो नहीं आती पर कुण्डली लंम्बी हो जाती है। बीच में चित्रकारी करने पर दक्षिणा और भी वढ़ जाती है। यजमान उसमें अपनी सन्तान का मनोरम भविष्य देखता है। यद्यपि इन टुकड़ों के होरा, द्रेष्काण आदि शब्द विदेशी हैं पर हुक्का तमाखू की भाँति हमने इसे अपना समझ लिया है और अव तो उनके नये नाम भी रख दिये गये हैं। कुछ नूतन भारतीय नाम ये हैं-तीन द्रेष्काणों के नाम हैं-नारद, अगस्त्य, दुर्वासा। चतुर्थांशों के नाम हैं-सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन, सप्तमांशों के नाम हैं सात ऋषि या सात समुद्र। दशांशों के स्वामी हैं इन्द्रादि दश दिक्पाल। विंशांश में सम विषम राशि भेद से काली, गौरी आदि ४० देवियों के नाम हैं। षष्ट्यंश में ६० नाम हैं-इन्दुरेखा, भ्रमण, पयोधि, सुधा, शीतल, अशोभन, निर्मल, यम, काल, पातक, सौम्य, वंशक्षय, कण्टक, घोर, मृत्यु, देव, वागीश, वरुण, कुलघ्न आदि। यह है विदेशी बोतल पर देशी लेवल।

राजयोग और दरिद्रयोग

यवनों ने १८०० नामसयोग, राजयोग, चन्द्रयोग, प्रव्रज्यायोग आदि का वर्णन किया है और उन सब में ग्रहों के उच्च, नीच स्वक्षेत्र, मूलत्रिकोण और शत्रुक्षेत्र आदि का ही महत्त्व है जब कि इसकी न कोई उपपत्ति है न प्रत्यक्ष अनुभूति है। ग्रहस्थिति की छाता, मूसल आदि आकृतियों के भी फल लिखे हैं किन्तु प्रत्यक्ष में ये सारे योग मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं। इसके यहाँ कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं।

सू	५	च	८
मं	९	बु	६
बृ	४	शु	७
	श	७	

संवत् २०११ भाद्रशुक्ल (१९५४ सितम्बर) से एक ऐसी उच्च ग्रहस्थिति प्रारंभ होती है जिसमें कई सौ राजयोग हैं। यहाँ बुध, गुरु, शनि उच्च हैं और शेष ग्रह स्वक्षेत्रीय और मित्रक्षेत्रीय हैं। इतना ही नहीं, नवमांश में भी यही उच्च स्थिति है। इसके बाद आश्विन में बुध, शुक्र और शनि, मित्रग्रहों का तुला राशि में योग हो रहा है जो महान् राजयोग है। मंगल अपने मित्रक्षेत्र धनराशि से उच्चराशि मकर में और उच्च नवमांश में जा रहा है। इसका मित्र सूर्य भी मित्र के साथ मित्रक्षेत्र में है। उसके आगे मंगल के थोड़ा बदलते ही सूर्य अपने परम मित्रों की

वृश्चिक और धन राशियों में आ जाता है। ऐसे योग बड़े भाग्य से मिलते हैं। मंगल के बदलने पर भी योगों के श्रेष्ठत्व में कोई न्यूनता नहीं आती। बीच में थोड़ा वक्री होने के बाद गुरु पुनः स्वोच्च में आ जाता है और शुक्र भी अपने परमोच्च मीन राशि में आ जाता है। इस प्रकार पूरे वर्ष भर अगणित राजयोग रहते हैं। मैंने जिज्ञासु बुद्धि से इनमें उत्पन्न कम से कम २५० बच्चों की कुण्डलियों का परीक्षण किया। अब तो वे २४ वर्ष के हो गये हैं। नवीन पीढ़ी परीक्षा करके देख ले। उसे मानना होगा कि इन सब में विक्रमादित्य के राजयोग हैं पर स्थिति निराशा जनक है।

संवत् १६६४ (सन् १६०७ ई०) में भी अनेक उच्च और राजयोगकारक ग्रह रहे हैं। आगे दी हुई २३ संख्या वाली कुण्डली किसी दीर्घायु, पुत्रपौत्रवान् चक्रवर्ती राजा की होनी चाहिए पर वे ठाकुर कलऊ सिंह सन्तानहीन और एकाक्ष हैं। पहले सिपाही थे, अब खेती करते हैं पर खेत कम है। संत् २००६ (सन् १६४६) में प्रायः सब ग्रह नीच हैं। आगे २४वीं संख्या वाली जन्म कुण्डली प्रयाग विश्वविद्यालय के एक मेधावी छात्र की है जिसने पाँच पदक पाये हैं। मेरे पास इस समय के पाँच यशस्वी छात्रों की कुण्डलियाँ हैं। शेष कुण्डलियों से नाम हटा दिये जायँ तो बड़े से बड़ा ज्योतिषी भी यह नहीं जान पायेगा कि ये इतने महान् पुरुषों की हैं अतः हमारे सारे विश्वास परीक्षणीय हैं।

ज्योतिष में पृथ्वी और ग्रह चेतन

पृथ्वी मनोहारिणी प्रमदा है, चतुर्भुजा और गोरी अंगना है तथा दिव्य वस्त्रों एवं आभरणादिकों से भूषिता है। ग्रह पुरुष, स्त्री और नपुंसक हैं, ब्राह्मण क्षत्रिय आदि हैं, शुभ और पाप हैं, जलचर–वनचर आदि हैं तथा अन्य शुभाशुभ गुणों से युत हैं। सूर्य कालपुरुष की आत्मा है, चन्द्रमा मन है। मंगल सत्त्व है। बुध वचन है, गुरु ज्ञान और सुख है, शुक्र काम है और शनि दुःख है। इसी प्रकार इनके वर्ण, लिंग, जाति, आकृति, स्वभाव, वस्त्र, दृष्टि, भोजन और काल आदि का वर्णन है। ये बुलाने पर यज्ञों में आते हैं और पुत्र–पुत्री पैदा करते हैं।

चतुर्भुजां शुक्लवर्णां सुवस्त्राभरणैर्युताम्।
सुरूपां पृथिवीं वन्दे प्रमदावेषधारिणीम्॥
अयनक्षणवासरर्तवो मासोर्धं च समाश्च भास्करात्।
कालात्मा दिनकृन्मनस्तुहिनगुः सत्त्वं कुजो ज्ञो वचः...॥

ग्रहों की अवस्थाएँ

बृहत्पाराशर होराशास्त्र नामक ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ में अनेक दशाओं का वर्णन है पर लिखा है कि दशा का फलादेश करने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि ग्रह किस अवस्था में है। ज्योतिष में ग्रहों की अनेक अवस्थाओं का वर्णन है। उनमें से कुछ ये हैं–

(१) दीप्तः स्वस्थः प्रमुदितः शान्तो दीनोऽथ दुःखितः।
विकलश्च खलः कोपी नवधा खेचरो भवेत्॥
(२) लज्जितो गर्वितश्चैव क्षुधितस्तृषितस्तथा।
मुदितः क्षोभितश्चैते ग्रहभावाः षडीरिताः ॥

ऊपर के श्लोक में नौ और नीचे छः अवस्थाओं का वर्णन है। इनकी भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ और बहुविस्तृत फलादेश है। इनके अतिरिक्त (३) शयन, उपवेशन, नेत्रपाणि, प्रकाश, गमन, आगमन, सभा, आगम, भोजन, नृत्यलिप्सा, कौतुक और निद्रा नामक बारह अवस्थाओं का गणित और फलादेश है। वर्णददशा, धूमग्रहफल, पातफल, परिधिफल,

चापफल, केतु, गुलिक, प्राणपद आदि का वर्णन करते हुए पराशर ने (४) वाल, कुमार, युवा, वृद्ध और मृत पाँच अन्य अवस्थाएँ भी लिखी हैं। ये ६ अंश की दशाएँ विषम राशि में सीधी और सम राशि में उल्टी चलती हैं। बालक में एक चतुर्थांश, कुमार में आधा, युवा में पूरा, वृद्ध में थोड़ा तथा मृत में शून्य फल होता है। दशाएँ अन्य भी हैं और उनके विधान चित्रविचित्र हैं।

फलं पादयितं वाले फलमर्धं कुमारके।
यूनि पूर्णं फलं ज्ञेयं वृद्धे किंचिन्मृते च रवम्॥

ग्रहों की दशाएँ

ग्रहयोगों द्वारा आयु निश्चित हो जाने के बाद भले-बुरे दिन कव-कव आयेंगे, यह बात ग्रह दशाओं द्वारा बतायी जाती है किन्तु दशाएँ पचासों हैं और एक दूसरे की विरोधिनी हैं। एक राजयोगप्रदा है तो उसी समय की दूसरी दशा धनहारिणी और मारकेश दशा है। ग्रहयोग हिन्दमहासागर है तो दशा अरवसागर है। प्राचीनकाल की अनेक दशाओं का अव लोप हो गया है। कुछ दशाओं को असफल होते देख नयी बनायी गयी पर वे भी असफल हैं। गोचर फल से दशा का मेल नहीं रहता और अष्टवर्ग उन दोनों के विरुद्ध हो जाता है। कुछ दशाएँ ऐसी हैं जिनमें ग्रहों का दशाक्रम निश्चित करने में जितना समय लगता है उससे कम समय में कुण्डली बन जाती है। इसका कारण यह है कि ग्रहों के बल अनेक प्रकार के हैं और परस्पर विरोधी हैं। एक उदाहरण यह है–आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि गणित द्वारा निर्णीत अपने वय का तीन भाग करो। लग्न, रवि और चन्द्रमा, इन तीनों में जो सबसे बलवान् होगा वह वय के प्रथम भाग का स्वामी होगा और उससे कम बल वाला मध्य भाग का स्वामी होगा। सबसे निर्वल की दशा अन्तिम वय में रहेगी। बलवान् के बाद उस ग्रह की दशा आयेगी जो उसके केन्द्र में होगा। केन्द्र में कोई न हो तो आगे बढ़िए। केन्द्र में कई हों तो फिर गणित करना होगा कि इनमें बलवान् कौन है। वल भी स्थानवल, दिग्बल, चेष्टाबल, कालबल, निसर्गबल आदि अनेक हैं। इसमें निर्णय करना बहुत कठिन है। मान लीजिए शनि को तीन बल मिल गये और मंगल को दो ही तो भी दोनों समान माने जायेंगे क्योंकि मंगल में स्वभावत: एक नैसर्गिक वल है। समान बल हो जाने पर किस ग्रह की दशा पहले रखी जाय, यह एक टेढ़ा प्रश्न है। अन्तर्दशाओं की कठिनाइयाँ इससे भी अधिक हैं। आजकल इस दशा का कहीं प्रचार नहीं है।

नैसर्गिकी विंशोत्तरी महादशा

नैसर्गिकी दशा के विषय में आचार्य ने लिखा है कि यवनाचार्य के मत में जन्म से लेकर बालक जव तक दूध पीता है, चन्द्रमा की दशा रहती है। उसका काल एक वर्ष है। उसके बाद दाँत निकलने तक अर्थात् दो वर्ष मंगल की दशा रहती है। उसके बाद नव वर्ष तक बुध की दशा रहती है। वह शिक्षाकाल है। उसके बाद २० वर्षों का मैथुनेच्छा-काल आता है। तब शुक्र की दशा रहती है। इन ३२ वर्षों के बाद मैथुनेच्छा समाप्त हो जाती हैं। ठीक है न? उसके बाद १८ वर्षों की परमपवित्र गुरुदशा आती है। तब नारियाँ गुग्गुल के काढ़े सी कड़वी लगने लगती है। वे नरक की खान सी दिखाई देती हैं। ५० से ७० तक सूर्य की और उसके बाद १२० तक शनि की दशा रहती है। वह अधम होती है। पता नहीं क्यों, शास्त्रों ने उसमें संन्यास और काननगमन का आदेश दिया है। इस महादशा में राहु-केतु के लिए स्थान नहीं है क्योंकि वे वराहकाल तक ग्रह नहीं थे। इन सात ग्रहों में जो बलवान् होता है उसकी दशा शुभ होती है और निर्बल की दशा अशुभ होती है किन्तु बलवान् और निर्बल का निर्णय बहुत कठिन है। आजकल आचार्य की इस नैसर्गिक दशा की न कहीं पूछ है न सवसे अधिक प्रचलित विंशोत्तरी दशा की उनके ग्रन्थों में कहीं चर्चा है। आश्चर्य है, आचार्य की दशा में सौर परिवार के राजा सूर्यचन्द्र को २० और १ वर्ष मिले हैं तथा शनि को ५०। थोड़ा ध्यान से देखें–

१. श्री रामकृष्ण परहंस
२. स्वामी रामतीर्थ
३. लोकमान्य तिलक
४. ईश्वरचन्द्र विधासागर
५. श्री शिवकुमार शास्त्री
६. श्री गंगाधर शास्त्री
७. महात्मा गंधी
८. श्री सुभाष चन्द्र वसु
९. श्री सावरकर जी
१०. मदरमोहन मालवीय
११. राजेश्वर शास्त्री द्रविड़
१२. जवारलाल नेहरु

१३. श्रीमती इन्द्रिरा गांधी
१४. श्री राजीव गांधी
१५. जवूनरेशकर्ण सिंह जी
१६. नैपोलियन
१७. रूस के ज़ार
१८. पंचम जार्ज
१९. कैसर-जर्मनी
२०. विक्टोरियारानी
२१. मुसोलजी
२२. रूजवेल्
२३. क्रलअ् आ-शु १९६४
२४. घनश्याम का- कृ २००३

१. श्री रामकृषण परहंस

२. स्वामी रामतीर्थ

३. लोकमान्य तिलक

४. ईश्वरचन्द्र विधासागर

५. श्री शिवकुमार शास्त्री

६. श्री गंगाधर शास्त्री

७. महात्मा गंधी

८. श्री सुभाष चन्द्र वसु

९. श्री सावरकर जी

१०. मदरमोहन मालवीय

११. राजेश्वर शास्त्री द्रविड़

१२. जवारलाल नेहरु

१३. श्रीमती इन्द्रिरा गांधी

१४. श्री राजीव गांधी

१५. जबूनरेशकर्ण सिंह जी

१६. नैपोलियन

१७. रूस के ज़ार

१८. पंचम जार्ज

१९. कैसर-जर्मनी

२०. विक्टोरियारानी

२१. मुसोलजी

२२. रूजवेल्ट

२३. क़लअ् आ-शु १९६४

२४. घनश्याम का- कृ २००३

चन्द्र	भौम	बुध	शुक्र	बृहस्पति	सूर्य	शनि	ग्रह
१	२	६	२०	१८	२०	५०	वर्ष

दशाओं का मेला

दशाएँ पचासों प्रकार की हैं। उनमें २५ के अनुसार आपकी ग्रहदशा शुभ चल रही है तो २५ के अनुसार अशुभ। केवल एक विंशोत्तरी दशा में परस्परविरुद्ध इतने आदेश हैं कि निर्णय करना कठिन है। शनि लग्नेश के साथ ही साथ व्ययेश भी रहता है और नवमेश के साथ अष्टमेश भी रहता है। एक परम शुभ है तो दूसरा परम अशुभ। मारकेश का निर्णय तो और भी कठिन है। बृहत् पाराशर होराशास्त्र में मैत्रेय के पूछने पर पराशर कहते हैं कि मेरे मत से विंशोत्तरी अच्छी है पर भिन्न-भिन्न महर्षि अष्टोत्तरी, षोडशोत्तरी, द्वादशोत्तरी, पञ्चोत्तरी, शताब्दी, ८४, ७२, ६० और ३६ वर्ष वाली दशाओं को श्रेष्ठ कहते हैं। इनके आधार नक्षत्र हैं। इनमें किसी का आरंभ कृत्तिका से, किसी का आर्द्रा से, किसी का पुष्य से और किसी का अन्य नक्षत्रों से होता है। इनमें ग्रहों का क्रम भी भिन्न-भिन्न है। इनके अतिरिक्त २२ अन्य दशाएँ हैं। उनके नाम हैं-

१ कालदशा २ चक्रदशा ३ कालचक्रदशा ४ चरदशा ५ स्थिरदशा ६ केन्द्रदशा ७ कारकदशा ८ ब्रह्मग्रहदशा ९ मण्डूकदशा १० शूलदशा ११ योगार्धदशा १२ दृग्दशा १३ त्रिकोणदशा १४ राशिदशा १५ पञ्चस्वरादशा १६ योगिनी दशा १७ पिण्डदशा १८ नैसर्गिकदशा १९ अष्टवर्गदशा २० संध्यादशा २१ पाचकदशा २२ तारादशा। ऊपर की १० दशाओं को मिला कर सब ३२ हुई। इनके अतिरिक्त मुनीश्वरों ने अन्य दशाएँ भी बतायी हैं। ये सभी सबको स्वीकार नहीं हैं।

दशा बहुविधास्तासु मुख्या विंशोत्तरी मता।
कैश्चिदष्टोत्तरी कैश्चित् कथिता षोडशोत्तरी॥
द्विसप्ततिसमा षष्टिसमा षट्त्रिंशवत्सरा।
नक्षत्राधारिकाश्चैताः कथिताः पूर्वसूरिभिः॥
अथ कालदशा चक्रदशा प्रोक्ता मुनीश्वरैः।
अन्यास्तारादशाद्याश्च न सर्वाः सर्वं संमताः॥

इनमें घोर मतभेद है। एक से वर्तमानकाल शुभ है तो दूसरी से अशुभ। ताजिकशास्त्र का पेट इतनी दशाओं से नहीं भरा तो उसने बताया कि जातकशास्त्र की सारी दशाएँ स्थूल फल बताती हैं अतः मैं ताजिकशास्त्र वाली सूक्ष्म दशा बता रहा हूँ। उसमें ज्योतिषी की बुद्धि काम नहीं करती पर इसमें करेगी (नीलकण्ठी २।२)। आज के वैज्ञानिकों ने दूरवीक्षण यन्त्र से मंगल और गुरु के बीच वाले तथा यूरेनस आदि नूतन ग्रहों का पता लगाया तो ताजिकशास्त्र ने अपनी दिव्य दृष्टि से मुन्था नामक नया ग्रह देख लिया। चूँकि ग्रह चेतन होते हैं और स्तोत्र पाठ (खुशामद) करने पर पापी पर भी अनुकूल हो जाते हैं इसलिए उसका स्तोत्र भी वना डाला। यह मुथिया या मुन्थहा भी है और स्त्री भी है। अशुभ मुथिहा से प्रार्थना है-

वर्षप्रवेशमुख्या त्वमृषिभिः परिकीर्तिता।
विषमस्थानसंभूता पीडा दहतु मुन्थिहा॥

कौन सी दशा सत्य है

पूरे भारत में इस समय अनेक दशाओं का प्रचलन है। उत्तर प्रदेश और राजस्थान में प्रायः विंशोत्तरी चलती है, सिन्ध में पंजाब में और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में योगिनी का प्रचार है तथा महाराष्ट्र और गुजरात में अष्टोत्तरी का। तामिल, तेलगू आदि प्रदेशों में अन्य दशाएँ चलती हैं तथा जहाँ जो प्रचलित है वही सत्य मानी जाती है किन्तु मानसागरी में

लिखा है कि शुक्ल पक्ष में जन्म हो तो अष्टोत्तरी तथा कृष्ण पक्ष में जन्म हो तो विंशोत्तरी मानो। दूसरी पोथी का कथन है कि शुक्लपक्ष में रात में और कृष्णपक्ष में दिन में जन्म हो तो विंशोत्तरी अन्यथा अष्टोत्तरी मानो। लघुपाराशरी के मत में विंशोत्तरी से भिन्न दशाएँ व्यर्थ हैं।

(१) दशात्वष्टोत्तरी शुक्ले कृष्णे विंशोत्तरीमता॥
(२) कृष्णपक्षे दिवा जन्म शुक्लपक्षे यदा निशि।
तदा विंशोत्तरी ग्राह्याऽन्यत्र चाष्टोत्तरी मता॥
(३) दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता॥
(४) गुर्जरे कच्छसौराष्ट्रे पांचाले सिन्धुपर्वते।
एतेष्वष्टोत्तरी श्रेष्ठाऽन्यत्र विंशोत्तरी मता॥

आकाश और ग्रहों की स्थिति पूरे भारत में एक है किन्तु दशाफल भिन्न भिन्न हैं। एक दशा से जो काल शुभ सिद्ध होता है वही दूसरी से अशुभ हो जाता है तो दशाएँ भिन्न-भिन्न क्यों मानी जायें, इसका एक भी समाधान कारक उत्तर नहीं है। यदि मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र भिन्न हैं तो सिन्ध और पंजाब भी भिन्न हैं फिर इन दोनों में एक दशा क्यों? दशाओं के फल में कितना अन्तर है, इसका निरीक्षण करें।

आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थों में अनेक बार पराशर का नाम लिया है और स्वयं नैसर्गिकी विंशोत्तरी दशा लिखी है पर पराशर की उस विंशोत्तरी की कहीं चर्चा नहीं की है जो आजकल प्रचलित है अत: स्पष्ट है कि उनके समय में इसका प्रचार नहीं रहा होगा। आजकल भी सर्वत्र नहीं है। पाराशरी, वाराही, अष्टोत्तरी और योगिनी दशाओं में बहुत मतभेद है। एक के अनुसार जो शुभ है वही दूसरी के अनुसार अशुभ। (१) वराहाचार्य की दशा का नक्षत्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है। (२) पराशर की विंशोत्तरी का आरंभ कृत्तिका से है तो अष्टोत्तरी और योगिनी का आर्द्रा से। (३) अष्टोत्तरी और योगिनी दशाओं में क्रमश: एक ग्रह या योगिनी शुभ है तो दूसरी अशुभ परन्तु (४) अष्टोत्तरी का आरंभ पाप सूर्य से होता है और योगिनी का शुभ मंगला से। आठ योगिनियों के नाम है–मंगला, पिंगला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा, संकटा। (५) अष्टोत्तरी में शुभग्रहों के वर्ष अधिक हैं पर योगिनियों में भीषणाओं के वर्ष अधिक हैं।

नीचे का चक्र देखें–

वराह की विंशोत्तरी ग्रह	चन्द्र		भौम	बुध	शुक्र	गुरु	सूर्य	शनि		
वर्ष	१		२	६	२०	१८	२०	५०		
पराशर की विंशोत्तरी	सू	चं	मं	रं	गु	श	बु	के	शु	ग्रह
	६	१०	७	१८	१६	१६	१७	७	२०	वर्ष
	कृ	रो	मृ	आ	पु	पु	आ	म	पूफा	नक्षत्र
	उफा	ह	चि	स्वा	वि	अ	ज्ये	मू	पूषा	
	उषा	श्र	ध	श	पूभा	उभा	रे	अ	भ	
अष्टोत्तरी	सू	चं	मं	बु	श	बृ	रा	शु		ग्रह
	६	१५	८	१७	१०	१६	१२	२१		वर्ष

	आ	म	ह	अ	पू	ध	उ	कृ	
	पु	पूफा	चि	ज्ये	उ	श	रे	रो	
	पु	उफा	स्वा	मू	अ	पू	अ	मृ	नक्षत्र
	आ		वि		श्र		भ		
योगिनी	मं	पिं	धा	भ्रा	भ	उ	सि	सं	योगिनी
	१	२	३	४	५	६	७	८	वर्ष
	आ	पु	पु	अ	भ	कृ	रो	मृ	
	चि	स्वा	वि	आ	म	पूफा	उफा	ह	नक्षत्र
				अ	ज्ये	मू	पूषा	उषा	
	श्र	ध	श	पूभा	उभा	रे			

(६) विंशोत्तरी और अष्टोत्तरी दोनों दशाओं में सौर परिवार के राजा और सब ग्रहों को प्रकाश देने वाले सूर्य के दशावर्ष सबसे कम, केवल छ वर्ष हैं और सबसे निर्बल तथा मलिन बुध के १७ वर्ष हैं (७) जिस राहु को आज तक किसी ने देखा नहीं है तथा पुराने ग्रन्थों में जिसका वर्णन नहीं है उसके दशा वर्ष १८-१२ हैं और मंगल के केवल ७ वर्ष हैं। (८) एक दशा में ग्रह आठ हैं, दूसरी में नव हैं और ऊपर वाली में सात हैं। (९) दो दशाओं में ग्रह या योगिनियाँ बारी-बारी से एक एक नक्षत्र पाते हैं पर अष्टोत्तरी में इकट्ठा ही तीन चार। (१०) इसमें शुभग्रहों के नक्षत्र तीन-तीन हैं और पापों के चार-चार। (११) राशिचक्र में पुष्यनक्षत्र की राशि का स्वामी चन्द्रमा है पर यहाँ शनि और सूर्य हैं। (१२) हस्तनक्षत्र में उत्पन्न बालक के पिता यदि विंशोत्तरी को मानने वाले हैं तो प्रसन्न होंगे क्योंकि बालक चन्द्रमा की दशा में उत्पन्न है पर अष्टोत्तरी और योगिनी को मानते हैं तो भयभीत होंगे क्योंकि वह मंगल और संकटा की दशा में पैदा हुआ है। इन दशाओं में ऐसे अनेक फलभेद हैं और इन्हीं द्वारा सारा शुभाशुभ बताया जाता है।

लघुपाराशरी और विंशोत्तरीदशा

इसके भाष्यकारों में अनेक विषयों में मतभेद है। इसमें कुछ स्थानों के स्वामी हो जाने पर शुभग्रह पाप हो जाते हैं और पापग्रह शुभ हो जाते हैं। इसमें ३, ६, ११ स्थानों के स्वामी को अशुभ तथा ५, ९ के स्वामी को शुभ कहा है पर ४, ६, १० लग्नों में एक ही ग्रह पाप और शुभ दोनों हो जाता है। शुक्रग्रह केन्द्राधीश होने पर पाप हो जाता है पर ११ लग्न में वह केन्द्राधीश और त्रिकोणेश दोनों रहता है। मीन का शुक्र उच्चस्थ भी है और शत्रुक्षेत्रस्थ भी। मेष लग्न में शनि केन्द्राधीश होने से शुभ है और एकादशेश होने से अशुभ है। बृष और वृश्चिक लग्नों में भौम शुभ और अशुभ दोनों है। ऐसे अनेक प्रसंग हैं तो हम उस ग्रह की दशा को शुभ कहें या अशुभ? इनके अतिरिक्त इनमें अनेक साधक-बाधक भाव हैं। ज्योतिषियों का एक प्राचीन वर्ग चन्द्रकुण्डली या राशि कुण्डली को उतना ही महत्त्व देता है जितना लग्न-कुण्डली को। उसके गौरीजातक आदि कई स्वतन्त्र ग्रन्थ भी हैं जो शंकर-पार्वती के वचन माने जाते हैं। उसमें सब स्वामी बदल जाते हैं। वराहादि आचार्य लग्न तुल्य ही महत्त्व राशि को भी देते हैं। इन दोनों के अतिरिक्त वर्ग की अनेक कुंडलियाँ हैं और सबके फल भिन्न-भिन्न हैं तो हम किसको मानें?

लग्नमूलं हि जातकम्

आज का भारतीय ज्योतिषी भारत के मूलज्योतिष सम्बन्धी नक्षत्रों और मुहूर्तादिकों को भूल कर विदेशी राशियों और लग्नों की शरण में चला गया है। भास्कराचार्य कहते हैं कि ज्योतिष का प्रयोजन इतना ही है कि हम मनुष्यों के शरीर,

स्वास्थ्य, धन, सन्तान, विद्या, पत्नी, सुख, दुःख आदि का भविष्य वता दें पर वह लग्न के अधीन हैं अतः पहले शुद्ध लग्न जानो।

ज्योतिःशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते नूनं लग्न बलाश्रितः पुनरयम्॥
लग्नमूलाः क्रियाः सर्वा लग्नमूलं च जातकम्॥

परन्तु लग्ननिर्णय में अनेक विरोधी मत हैं। पहला विवाद राशियों के उदयमान के सम्बन्ध में है। चूँकि क्रान्ति-वृत्त हमारे क्षितिज पर लम्ब नहीं है इसलिए सब राशियों के उदयमान भिन्न-भिन्न हैं और हर देश में विभिन्न हैं परन्तु आचार्य वराहमिहिर के राशिमान इस नियम के विपरीत सर्वत्र समान हैं। आचार्य भटोत्पल ने इसका प्रयोजन यह बताया है कि इससे मनुष्यों के अवयवों की विशालता और लघुता का बोध हो जायेगा। जो राशि शरीर के जिस अंग में है वह उसी के अनुरूप होगा और राशिमानों द्वारा चोरों की आकृति आदि का भी पता लग जायेगा किन्तु खेद है कि आचार्य का यह कथन प्रयोग में कभी खरा नहीं उतरता।

१२ राशियों के विभिन्न उदयमान (घण्टा मिनट)

	वर्तमान		वराहमिहिर	जैमिनि-पराशर	
	लंका में	काशी में	सर्वत्र	सर्वत्र	
मेष	१।५२	१।२६	१।२०	२।०	मीन
वृष	२।०	१।५१	१।३६	२।०	कुंभ
मिथुन	२।६	२।२	१।५२	२।०	मकर
कर्क	२।६	२।१७	२।८	२।०	धन
सिंह	२।०	२।१८	२।२४	२।०	वृश्चिक
कन्या	१।५२	२।१४	२।४०	२।०	तुला

आप सोचें कि काशी में कन्या-तुला का आधुनिक मान २ घंटा १४ मिनट है, वराह के मत में २ घंटा ४० मिनट है और जैमिनी के मत में दो घंटा है। मेषमीन का मान एक के मत में डेढ़ घण्टे से कम है तो अन्य मत में दो घण्टा है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो लग्न फलादेश का मूलाधार है वही मतभेद से ग्रस्त और त्रुटिपूर्ण हो जाता है। लग्न से फल न मिलने पर अथवा सूक्ष्मफल-काल जानने के लिए सूक्ष्म वर्ग कुण्डलियाँ बनायी जाती हैं। उनमें एक नवांश का काल लगभग १३ मिनट, एक द्वादशांश का काल १० मिनट और एक षष्ट्यंश का समय २ मिनट होता है। किन्तु जहाँ एक घण्टे का अन्तर है वहाँ इन सब में बहुत अन्तर पड़ जायेगा और तब फल निश्चित रूप से मिथ्या होगा। इसके बाद भावचलित का शास्त्रार्थ है और इससे बाद वह सायनवाद है जिसमें लग्न २३ अंश (६२ मिनट) से अधिक दूर चला जाता है और वस्तुतः वही सत्य है क्योंकि सूर्य को सायन बनाये बिना हम लग्न निकाल ही नहीं पाते तो क्या होगी फल की स्थिति? इसमें फलों के मिथ्या हो जाने से कुछ उच्चकोटि के विद्वान् भिन्न-भिन्न दिशाओं में जा रहे हैं। उनमें से कुछ के मत ये हैं। प्रथम मत श्रीसीताराम झा का है। वह वस्तुतः जैमिनि, पराशर, भृगु, कमलाकर भट्ट आदि महान् मुनियों और विद्वानों का मत है।

श्री सीताराम जी झा का मत (गीतापंचांग)

ज्योतिषशास्त्र का प्रयोजन है फलादेश। फल दो प्रकार के हैं। दृष्ट और अदृष्ट। सूर्योदय, सूर्यास्त, ग्रहण, ग्रहयोग आदि को बताने वाला गणित भाग दृष्ट है और मुहूर्त, जन्मपत्रीफल आदि को बताने वाला फलित विभाग अदृष्ट है। हमारे

दूरदर्शी महर्षियों का आदेश है कि दृष्ट भाग में स्थानीय (भूपृष्ठीय) लग्न और अदृष्ट फल में (भूकेन्द्रीय) बिम्बलग्न लेना चाहिए। यवनों ने अपने शासनकाल में भारतीय फलित पद्धति को हटा कर अज्ञान वश फलितविभाग में भी अयुक्त, असंगत, सिद्धान्तीय लग्न का हिन्दू ज्योतिषियों द्वारा बलपूर्वक प्रचार कराया, जो धर्म कृत्यों पर आघात करता है। इसी से लोग कहते हैं कि पण्डितों के प्रमाद से भारत का पतन हुआ।

शुभाशुभ फलों का ज्ञान बिम्बीय लग्न से ही हो सकता है, स्थानीय लग्न से नहीं। द्वादशभावों की और द्रेष्काण-कुण्डली, नवमांशकुण्डली, त्रिंशांशकुण्डली आदि की सिद्धि बिम्बीय लग्न से ही हो सकती है। इसीलिए महर्षियों ने उसका नाम भावलग्न रखा है। पहले अदृष्ट फल में इसी का प्रयोग होता था। बाद में भारत की परतन्त्रता में बुद्धिमान् होते हुए भी लोग प्रमादवश यवनकल्पित क्रान्तिवृत्तीय लग्न से द्वादश भावों का साधन कर फलादेश करने लगे जो आज तक प्रचलित है। फल न मिलने में यह भी एक कारण हो सकता है। यवनों द्वारा प्रचारित नीलकण्ठादिकृत लग्न और भावसाधन की पद्धति अनुचित है। इसमें कभी एक राशि दो भावों में बैठ जाती है और एक राशि लुप्त हो जाती है। पराशरादि मुनियों का कथन है कि प्रत्येक लग्न दो घंटे (५ घटी) का होता है और लग्न में १५ अंश जोड़ने से क्रमशः ससन्धिक द्वादश भाव हो जाते हैं। यह आर्षपद्धति है और इसकी रक्षा से ही धर्म की रक्षा होगी। इसलिए समस्त पंचांगकार बन्धुओं से निवेदन है कि वे अपने पंचांगों में मेरी भाँति जनता के कल्याणार्थ आर्षपद्धति की ही वह सारणी लिखें जिसमें प्रत्येक लग्न का मान दो घंटा है। जिस समय आर्षपद्धति से मेष लग्न होता है उसी समय आज की लग्न सारणी से कहीं मीन और कहीं वृष लग्न हो जाता है। क्या यह शुभ कर्मो के लिए घातक नहीं है? स्वतंत्र भारत में प्रायः वराहमिहिर के समय तक विवाह, यात्रा जन्मपत्री आदि अदृष्ट फलदायक कृत्यों में इसी आर्षलग्न का प्रयोग होता था। बाद में भारत की परतन्त्रता में लोग प्रमादवश यवनकल्पित क्रान्तिवृत्तीय लग्न से ही फलादेश करने लगे जो आज तक प्रचलित है। क्षितिज में १२ राशियों के अवयव (शरीरबिम्ब) और स्थान (३० अंश), दोनों के उदय होते हैं किन्तु प्राणियों पर बिम्ब का ही प्रभाव पड़ता है, स्थान का नहीं क्योंकि स्थान रेखामात्र हैं और शून्य हैं। उनका क्या प्रभाव पड़ेगा? स्थान और बिम्ब, दोनों का उदय एक साथ नहीं होता। क्रान्तिवृत्त के सब स्थान सबके क्षितिज को नहीं छूते। कहीं १०, कहीं ८, कहीं छ और कहीं दो ही राशियों के उदय होते हैं। रूस में मीन और मेष का उदयमान शून्य होता हैं तो उन स्थानों में द्वादश भावों के फल कैसे कहे जायेंगे। इसलिए महर्षियों ने दोनों लग्नों का साधन बताया है। उन्होंने फलितज्योतिष की रचना पृथ्वी के सारे मानवों के लिए की है। दिल्ली, काशी आदि कुछ स्थानों के लिए नहीं।

भावलग्न या केन्द्रीय लग्न या बिम्बीय लग्न का साधन प्रकार महर्षि पराशर ने यह लिखा है कि प्रत्येक लग्न ५ घटी का होता है इसलिए इष्ट घटी में पाँच का भाग दे कर जो फल आवे उसको औदयिक सूर्य में जोड़ दो। महर्षि जैमिनि का कथन है कि भावलग्न में एक-एक राशि जोड़ने से १२ भाव होते हैं और १५ अंश जोड़ने से आगे-पीछे की संधियाँ होती हैं। वे भावलग्न के अतिरिक्त होरालग्न और घटीलग्न भी बताते हैं। हेरालग्न ढाई घटी में और घटी-लग्न एक घटी में आता है। एक घटी में भावलग्न के १२ अंश और घटीलग्न ३० अंश बीतते हैं इसलिए पराशर और जैमिनि ने लिखा है कि-

सूर्योदयं समारभ्य घटिकानां तु पंचकम्।
प्रयाति जन्मपर्यन्तं भावलग्नं तदुच्यते॥
इष्टं घट्यादिकं भक्त्वा पंचभिर्भादिकं फलम्।
योज्यमौदयिके सूर्ये भावलग्नं स्फुटं च तत्॥ (पराशर)
षड्भिरर्कैः खरामैश्च स्वेष्टघट्यो हताः पृथक्।
फलमंशादिकं योज्यं सदैवौदयिके रवौ।
भावहोराघटीसंज्ञलग्नानीति पृथक् पृथक्॥ (जैमिनि)
इष्टं घट्यादिकं षड्घ्नं फलमंशादिकं हि तत्।

योज्यमौदयिके भानौ भावलग्नं स्फुटं हि तत्॥
तिथ्यंशयोजनात्तत्र ज्ञेया भावाः ससन्धयः।
भावांशात् परतः पूर्वं तिथ्यंशैस्तत्फलं यतः॥

भारतीय ज्योतिष के सुप्रसिद्ध आचार्य कमलाकर भट्ट ने भी लिखा है कि लग्नसाधन और भावकुण्डली में यही विधि उचित है। इसका परित्याग कर जो नूतन यवनपद्धति से इनका साधन करते हैं वे ऋषि–पद्धति का उल्लंघन करते हैं, मूर्ख हैं, मूर्खों का उदरपूरण करते हैं, अपने को बुद्धिमान् समझते हैं पर उनका फलादेश मिथ्या होता है।

महर्षिभिः स्वीयकृतौ निरुक्ता लग्नांशतुल्या रविसंख्यका ये।
भावाः समा एव सदा फलार्थं ग्राह्यास्त एव ग्रहगोलविद्भिः॥
लोकेषु मूर्खोदरपूरणार्थं मूर्खैर्विलग्नाद्रविसंख्यका ये।
भावा निरुक्ताः स्वधियात्वनार्षा सम्यक् फलार्थं न हि तेऽवगम्याः॥

यहाँ दोनों पद्धतियों का एक उदाहरण यह है–संवत् २०१९
आषाढ़ शुक्ल १० गुरुवार। इष्ट १।० औदयिक सूर्य २।२५।३३।१

यवन प्रचारित द्वादशभाव

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
३	३	४	५	६	७	९	९	१०	११	०	१
०	२५	१९	१४	१९	२५	०	२५	१९	१४	१९	२५
४८	१७	४५	१३	४५	१७	४८	१७	४५	१३	४५	१७
४८	४	१९	३५	१९	४	४८	४	१९	३५	१९	४

भारतीय ऋषियों के द्वादशभाव

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	०	१	२
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४

यवनकुंडली
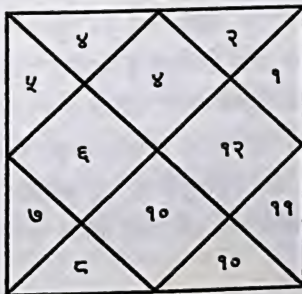
आर्षकुंडली
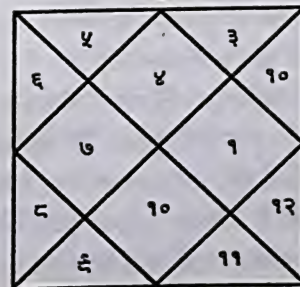
यह यवन पद्धति कितनी दूषित है, इसका विचार करें। यहाँ चन्द्रमा दो भावों का और शनि तीन भावों का स्वामी हो गया है। पराशर मुनि ने और फलित के सब ग्रंथों ने कहा है कि कर्क लग्न में लग्नेश चन्द्र, पंचमेश भौम और भाग्येश गुरु शुभ होता है पर यहाँ तीनों अशुभ हैं। क्या यह आर्षग्रन्थों पर कुठाराघात नहीं है? इसमें अन्य भी अनेक व्यभिचार हैं और प्रमादवश लोग इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। जैसे औरंगजेब ने हमारे अनेक देवमन्दिरों को ध्वस्त कर उन पर मसजिदें बनवायी उसी प्रकार यवनों ने हमारी आर्षपद्धति को ध्वस्त कर अपना मत चलाया। श्री बापूदेव शास्त्री और सुधाकर द्विवेदी आदि ने फलित की उपेक्षा की। हमारी रक्षा आर्षपद्धति से ही होगी। इसलिए धर्मानुरागी विज्ञों से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे ऋषिपद्धति स्वीकार करें।

यों तो ज्योतिष न जानने वालों का भी कथित फल सत्य हो जाता है और ज्योतिष जानने वालों का भी फलादेश नहीं घटता क्योंकि अदृष्ट फल संभावनात्मक ही है किन्तु हमें तो अपनी धर्मपद्धति से ही चलना चाहिए। आर्षपद्धति से जब धन लग्न रहता है उस समय यवन पद्धति से कभी वृश्चिक और कभी मकर लग्न आता है। क्या यह शुभकृत्यों के लिए घातक नहीं है?

झा जी ने गीता पंचाग में कुछ अन्य विवादास्पद बातें लिखो हैं। उनमें से कुछ हैं–(१) वर्षप्रवेश–यवनाचार्यों ने यह अनुभव किया था कि वर्षप्रवेश काल की ग्रहस्थिति जन्मकालीन शुभाशुभत्व को परिवर्तित कर देती है। उन्होंने इसीलिए वर्षफलपद्धति बनायी है किन्तु पंचांगकार आजकल ठीक वर्षप्रवेश नहीं लिखते। मैं भी पंचांग में वर्षप्रवेश सारिणी नहीं देता। वर्षफल लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वर्षप्रवेशकाल वह है जिसमें सूर्य जन्मकालीन सूर्य के बिलकुल समान हो। (२) पंचांग पद्धति–मैं इस पंचांग में तिथि आदि सूर्य सिद्धान्त से बनाता हूँ और ग्रहण आदि प्रत्यक्ष दृश्यों का गणित वेधोपलब्ध नवीन पद्धति से करता हूँ। (३) राशिफल–मैं पंचांग में राशिफल नहीं लिखता क्योंकि वह अनुचित है। जिसको किसी व्यक्ति के वर्ष या मास या दिन का राशि फल बताना हो उसको उसकी जन्मकुण्डली, नवमांशादि षड्वर्गकुण्डली तथा वर्ष, मास और दिन के आरम्भिक ग्रह आदि को देखकर ही फल कहना चाहिए। केवल राशि से फल मिलना असम्भव और प्रत्यक्षविरुद्ध है। वह लोकमनोरंजन है। एक ही राशि के ३० अंशों के पृथक्-पृथक् फल होते हैं। एक एक अंशों की ६० कलाओं के भी फल भिन्न-भिन्न होते हैं। एक राशि में कई करोड़ लोग होते हैं, उनकी स्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं और जन्मपत्रियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं तो फिर राशिफल कैसे लिखा जा सकता है और वह सत्य क्यों हो सकता है? फिर भी श्रद्धालु सज्जनों के सन्तोषार्थ जन्मराशि और तदनुसार गोचर के साधारण शास्त्रोक्त फल लिख ही दिये गये हैं। जगल्लग्न से भी मेषादि राशिवालों के फल लिखे हैं। (४) रिक्ता तिथियों (४, ९, १४) में विष, अग्नि और मरणादि क्रूर कर्म सफल होते हैं। भद्रा अशुभ है पर भद्रा (२, ७, १२) तिथियाँ शुभ है (५) सूक्ष्म तिथि-जैसे एक बार में २४ सूक्ष्म वार होते हैं उसी प्रकार एक तिथि में १५ सूक्ष्म तिथियाँ होती हैं। वर्तमान तिथि ही प्रथम सूक्ष्मतिथि रहती है। एक सूक्ष्मतिथि ४ घटी (९६ मिनट) की होती है। कार्यारम्भ करते समय सूक्ष्मतिथि का विचार आवश्यक है। (६) सूक्ष्मनक्षत्र–एक अहोरात्र में ३० सूक्ष्म नक्षत्र होते हैं किन्तु वे नक्षत्र क्रम से नहीं आते। दिन और रात दोनों में सूक्ष्मनक्षत्रों का आरम्भ आर्द्रा से होता है। इनका फल स्थूल नक्षत्रों से अधिक होता है। स्थूल नक्षत्र निषिद्ध हो तो उस दिन के शुभ सूक्ष्म नक्षत्र में कार्यारम्भ करना चाहिए। (७) सूक्ष्मवार–यह एक घण्टे का होता है। स्थूलवार शुभ हो और सूक्ष्मवार अशुभ हो तो शुभ कर्म नहीं करना चाहिए। स्थूल वार अशुभ हो और सूक्ष्मवार शुभ हो तो शुभ कर्म करना चाहिए। शनिवार को क्षौर और पूर्व की यात्रा निषिद्ध है पर वह शनिवार के सूक्ष्म बुधवार में की जा सकती है। रविवार में जिस समय सूक्ष्म शनिवार हो, पूर्व की यात्रा और क्षौर नहीं करना चाहिए। इस विधि से आवश्यकता में प्रतिदिन सब कार्यों का मुहूर्त मिल सकता है।

शंकाएँ

विद्वद्वर झा जी की कुछ बातें युक्तियुत और मान्य हैं किन्तु कुछ पर ये शंकाएँ होती हैं। (१) क्या पराशर और जैमिनि के समय में भारत में राशियों का प्रचार था? (२) राशियों और राशिस्वामियों के आधार पर मनुष्यों के जीवन भर का शुभाशुभ बताने का उद्घोष करने वाली ये पोथियाँ उन ऋषियों पर छल से थोपी तो नहीं गयी हैं? (३) पराशर के समय मेषादि राशियाँ थीं तो उनके नाम उन वेदों में और महाभारत में क्यों नहीं आये जिनमें ज्योतिष का विशद वर्णन है, और जिनका विभाजन तथा लेखन पराशर के पुत्र व्यास ने किया है? (४) फलज्योतिष के फलादेश में आपको और सारे सज्जन ज्योतिषियों को सन्देह है तो क्या ये झूठे फल दूसरे जन्म में मिलते है? क्या दूसरों को सब कुछ देने वाले ज्योतिषियों ने शुभ मुहूर्तादिकों और राशिफलों से स्वयं कुछ पाया है? (५) क्या भूकेन्द्र वाले बिम्बीय लग्न से सत्य फलादेश संभव है? क्या आपकी आत्मा इसे स्वीकार करती है? (६) क्या आपके गुरु श्रीबापूदेव शास्त्री और श्री सुधाकर द्विवेदी ने अज्ञानवश फलित ज्योतिष की उपेक्षा की? क्या वे इसके रहस्य को नहीं जानते थे? आपने स्वयं लिखा है कि उच्च शिक्षित लोग फलादेश में असफल हो जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? (७) क्या दृष्ट और अदृष्ट फलों के लिए दो प्रकार के लग्नों को लेना समुचित है? (८) क्या अदृष्ट फल भूगर्भ में रहने वालों के लिए हैं? (९) क्या हम लोग भूगर्भ में रहते हैं? (१०) क्या भूगर्भीय बिम्बलग्न का सारे भूमण्डल पर एक सा प्रभाव पड़ता है? (११) क्या चेरापूंजी और सहारा में समान वर्षा होती है? (१२) क्या जर्मनी के वैज्ञानिकों और राँची के आदिवासियों पर लग्नकुण्डली या ग्रहों का समान प्रभाव पड़ता है? भूकेन्द्र तो सबका एक ही है? (१३) यवनों ने फलित की प्राचीन नाक्षत्रपद्धति और तिथिपद्धति समाप्त कर दी। आपका यह कथन अक्षरशः सत्य है पर क्या राशिपद्धति भृगु, पराशर और जैमिनि की है? (१४) क्या द्रेक्काण और होरा आदि सूक्ष्म विभाग आर्यों के हैं? (१५) क्या वारों के टुकड़े और वार हमारे हैं? (१६) क्या लग्न और भावलग्नादि शब्द हमारे हैं? (१७) क्या यवनों का सारा विज्ञान अग्राह्य है? वराहमिहिर ने उसकी स्तुति क्यों की है? (१८) क्या राशिस्वामी का विधान सत्य और अनूभूति पर आधारित है? (१९) क्या वह आर्षपद्धति है? (२०) हम प्रतिदिन का फल वर्षप्रवेश के लग्न से कहें कि मासप्रवेश वाले से कि दिनप्रवेश वाले से? (२१) जब आपके राशिचक्र का आरंभ ही विवादास्पद है तो सूर्य और लग्न के अंशों के फल कैसे सत्य हो जायेंगे? (२२) क्या दृश्यों का गणित नवीन पद्धति से और तिथ्यादि का गणित उन सूर्यसिद्धान्तादिकों से करना उचित है जो प्रत्यक्ष के विरुद्ध हैं? (२३) क्या सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ, सूर्य ने लिखा है? (२४) आप तिथि और नक्षत्र को अदृश्य क्यों मानते हैं और उनका गणित प्रत्यक्षविरुद्ध एवं असफल ग्रन्थों से क्यों करते हैं? (२५) राशिफल अविश्वसनीय है तो अंश कला आदि के फल सत्य कैसे हो जायेंगे? लग्नकुण्डली का फल अविश्वसनीय है तो नवांशकुण्डली आदि के फल सत्य कैसे हो जायेंगे? फल कहने के सूत्र तो वे ही हैं। (२६) क्या जगल्लग्न से मेषादि राशि वालों का सत्य फल बताया जा सकता है? बारह राशियों में ही तो सारे मनुष्य, पशु, पक्षी और कीड़े–मकोड़े आ जाते हैं। (२७) आप मानते हैं कि यह कर्म अनुचित है तो राशिफल क्यों लिखते हैं? (२८) भद्रा तिथियाँ शुभ हैं तो आप भद्रा को अशुभ क्यों मानते हैं? (२९) आप ऐसे सात्त्विक पुरुष गणेश, दुर्गा और शिव की (रिक्ता) तिथियों को क्रूर कर्म में उपयुक्त क्यों मानते हैं? (३०) आप वार, तिथि, नक्षत्र और लग्न आदि के छोटे–छोटे टुकड़ों को विशेष महत्त्व देते हैं और उन्हें सूक्ष्मफलप्रद कहते हैं परन्तु क्या एक वार में २४ वार, एक तिथि में १५ तिथि, एक नक्षत्र में ३० नक्षत्र और एक लग्न में कई सौ लग्न हो सकते हैं? क्या उनके फलों की सचाई का अन्धश्रद्धा के अतिरिक्त कोई ठोस प्रमाण है। (३१) क्या इस विधि को अपना कर आप प्रतिदिन सब शुभ कर्म करने का आदेश देते हैं? (३२) क्या लग्न के शुद्ध रहने पर आप में अन्य कुयोगों की उपेक्षा का साहस है? (३३) आपने लिखा है कि जन्मपत्री न हो तो पुकारने के नाम से गणना गिननी चाहिए। क्या बच्चों के नाम गणित करके रखे जाते हैं? क्या उन नामों का नक्षत्रों से सम्बन्ध रहता है? (३४) क्या आपने तटस्थ होकर मंगला–मंगली के गुणों का परीक्षण किया है? (३५) आप ने लिखा है कि विवाह सम्बन्धी ८१ दोषों

में से आजकल मुख्य १० का विचार किया जाता है पर आजकल सचमुच चार–पाँच का ही विमर्श किया जाता है। विवाह महूर्त में इतने दोषों के रहते वर–कन्या जीवित कैसे रह जाते हैं? (३६) आपने लिखा है कि वधू के तृतीयागमन के समय राहु का विचार करना चाहिए। राहु सामने और दायें नहीं रहना चाहिए। राहुविचार की कई पद्धतियाँ है। त्रैमासिक राहु, मासिक राहु आदि। उसकी व्यवस्था देशाचार से ग्रहण करनी चाहिए। क्या यह व्यवस्था आकाश से सम्बन्धित, शास्त्रोक्त और ग्राह्य है? शुक्र का विचार द्वितीय आगमन में और राहु का तृतीय आगमन में किया जाता है। अन्य आगमनों के समय वे कहाँ चले जाते हैं? (३७) कैसी भूमि में बसना चाहिए, इस विषय में आपने जो ज्योतिषोक्त विधि लिखी है उसके अनुसार क्या चला जा सकता है? क्या वह सत्य है? (३८) क्या आपको यह विश्वास है कि पृथ्वी और हरि बीच–बीच में सो जाते हैं? (३६) क्या आप लग्नकुण्डली के अतिरिक्त घटीकुण्डली को भी मानते हैं? इनके फलों में विरोध होने पर निर्णय कैसे होगा? (४०) क्या वर्षप्रवेश–कलीन कुण्डली, जन्मकुण्डली के फलों को उलट देती है? (४१) झा जी की बतायी इस आर्षपद्धति से और प्रचलित यावनी पद्धति से लग्नारंभ में कभी–कभी एक घंटे का अन्तर पड़ जाता है। संवत् २०२० के गीतापंचांग में लिखित उन्हीं की सारणियों में चैत्र शुक्ल १ को मकर लग्न के प्रारंभ में ५७ मिनट का अन्तर है। हम किधर जायँ?

षड्वर्ग कुंडली

लग्नकुण्डली के फल से हताश ज्योतिषियों ने लग्नों और ग्रहराशियों के २, ३, ५, ७, ६, १२, ३०, ६० आदि अनेक टुकड़े कर उनकी कुण्डलियाँ बनायीं पर इसमें प्रपञ्च और मतभेद पहले से भी बढ़ गया। भावचलित कुण्डली में कुछ राशियाँ दो स्थानों में बैठ जाती हैं, कुछ लुप्त हो जाती हैं और कुछ ग्रहों की राशियाँ बदल जाती हैं। तब यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि हम एक मनुष्य की १५ कुण्डलियों में किसे प्रमाण मानें? इसके अतिरिक्त है चन्द्रकुण्डली।

होरा कुंडली

इसकी परस्पर विरुद्ध तीन पद्धतियाँ हैं। (१) वराहमिहिर ने बृहज्जातक (१।१२) में लिखा है कि पहली होरा उस राशि के स्वामी की और दूसरी एकादशेश की होती है। (२) जैमिनिसूत्रकारिका में लिखा है कि १२ राशियों में मेषादि की २४ होराएँ होती हैं। (३) आजकल की प्रचलित पद्धति इन दोनों के विरुद्ध है। इसमें केवल दो राशियाँ, कर्क और सिंह ली जाती हैं तथा सब ग्रह उन्हीं दोनों में बैठा दिये जाते हैं। इस पद्धति में सूर्य, चन्द्र, मंगल और गुरु सर्वदा स्वक्षेत्रीय या मित्रक्षेत्रीय अर्थात् परमशुभ और बली रहते हैं पर अन्य ग्रह सदा अशुभ रहते हैं। हम किसे मानें और होराकुण्डली से अन्य कुण्डलियों का समन्वय कैसे करें?

(१) केचित्तु होरां प्रथमां भपस्य वांछन्ति लाभाधिपतेर्द्वितीयाम् (वराहमिहिर)।
(२) राशेरर्धं भवेद् होरा ताश्चतुर्विंशतिः स्मृताः। वृत्ते मेंषादिस्तासां परिवृत्तिद्वयं भवेत् (जैमिनि)।
(३) समगृहमध्ये शशिरविहोरा विषमभमध्ये रविशशिनोः सा (मुहूर्तचिन्तामणि)।।

इन तीन नियमों से तीन चक्र बनते हैं। इन तीनों में हम किस आचार्य को ज्योतिर्विद् और किसको अनभिज्ञ कहें।

राशियाँ	१	२	३	४	५	६	७	८	६	१०	११	१२
मुहूर्त	सूर्य	चन्द्र	सूर्य	चन्द्र	सूर्य	चन्द्र	सूर्य	चन्द्र	सूर्य	चन्द्र	सूर्य	चन्द्र
चिन्तामणि	चन्द्र	सूर्य	चन्द्र	सूर्य	चन्द्र	सूर्य	चन्द्र	सूर्य	चन्द्र	सूर्य	चन्द्र	सूर्य
	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु

वराह	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि
	मेष	मिथुन	सिंह	तुला	धनु	कुंभ	१	३	५	७	९	११
जैमिनि	वृष	कर्क	कन्या	वृश्चिक	मकर	मीन	२	४	६	८	१०	१२

द्रेष्काण, दशांश, त्रिंशांश में मतभेद

द्रेष्काण की भी परस्पर विरुद्ध तीन विधियाँ हैं।

(१) द्रेष्काणकाः प्रथमपञ्चनवाधिपानाम्॥
(२) द्रेष्काणसंज्ञामपि वर्णयन्ति स्वद्वादशैकाशराशिपानाम्॥
(३) परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादिक्रमतो भवेत्॥

उनके तीन चक्र ये हैं–

राशियाँ	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
प्रथम	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
विधि	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
द्वितीय	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
विधि	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
तृतीय	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०
विधि	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११
	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२

पता नहीं इन तीनों में कोई एक मिथ्या है या तीनों मिथ्या हैं। इतना निश्चित है कि द्रेष्काण या दृकाण शब्द भारतीय नहीं बल्कि यूनानी है। वह यूनानी शब्द डेकान या डेकानाई Decanio से बना है। आचार्य वराहमिहिर ने बृहज्जातक के २७वें अध्याय में प्रत्येक राशि के तीन द्रेष्काणों के स्वरूप का वर्णन किया है। उनमें कुछ पुरुष और कुछ स्त्री हैं तथा उनके फल अनेक स्थानों में सारावली से भिन्न हैं। वे बार-बार कहते हैं कि ये रूप यवनों द्वारा कथित हैं।

द्रेष्काणरूपं यवनोपदिष्टं, रूपं वदन्ति यवनाः, यवनैरुदाहृतः

यह निश्चित है कि समय की कोई आकृति नहीं होती पर वराहमिहिर ने बारह राशियों के ३६ दृकाणों की चित्र विचित्र आकृतियों का वर्णन किया है। उनमें से कुछ ये हैं–(१) काला कलूटा, भीषण आकृति और लाल नेत्रोंवाला (२) भूख प्यास से व्याकुल बकरी सदृश मुखवाली एक पैर की नारी (३) सिर मुड़ाये, दग्धवस्त्रा लम्बोदरी नारी (४) क्षुधापीड़ित मलिनवस्त्रधारी हलवाहा (५) हाथी सा शरीर, बन्दर सा पैर आदि। जैसे राशियों की आकृतियों में कहीं सौन्दर्य नहीं है उसी प्रकार ये दृकाण भी प्रायः भीषण हैं। चूँकि कल्पना में मतभेद निश्चित है इसलिए वराह और सारावली की आकृतियों में बहुत अन्तर है। दस उदाहरण ये हैं–

नारी–अश्वमुखी एकपदा तृषार्ता कुरूपा
क्रूर दण्डपाणि रक्ताम्बर भग्नव्रत
नारी–कुरूपा कुकेश दग्धाम्बरा तृषिता
अजमुख मलिनाम्बर कलावान् भूखा
नारी–सन्तानहीना कामार्ता सूचीपरा
गजकाय सूकरमुख अश्वकण्ठ काला
नारी–कर्कशा वनगता रोदनपरा
गृध्र सियार कुत्ता मलिनाम्बर दुखी
हयाकृति धनुर्धर नतनासिक
नारी–कुवस्त्रा घटधरा वस्त्रार्थकामिनी

नों के इन छत्तीस द्रेष्काणों में उत्पन्न बालक लगभग ऐसे ही होते हैं। नकड़ने के समय उपयोगी होते हैं। इसी प्रकार दशमांश और त्रिंशांश के शि में उस राशि से तथा सम में नवम राशि से प्रारम्भ होता है अतः वह पाँचवाँ। इस प्रकार राशियों के कई सौ खण्ड करने पर फलादेश और भी

दैवज्ञाभरण

द्धन्त का खण्डन है तथा प्रत्येक कालमान का सैकड़ों खण्ड करके फल ओरियण्टल सीरीज़ ने सन् १९५४ में प्रकाशित किया है। इसकी भूमिका कि "कुछ लोग ज्योतिष पर आक्षेप करते हैं कि अशुभ कालों (तिथियों, हैं तथा शुभ कालों में किये असफल देखे जा रहे हैं अतः ज्योतिषशास्त्र नशुभ नक्षत्रों के कई विभाग होते हैं। नक्षत्रों की सम्पूर्ण घटिकाओं में १२ ६० चन्द्रक्रियाएँ रहती हैं। इनमें कुछ शुभ और कुछ अशुभ होती हैं अतः वस्थाओं और क्रियाओं में किये कार्यों के फल अशुभ होते हैं तथा शुभ नक्षत्रों को शुभ अवस्थाओं, वेलाओं और क्रियाओं में किये कर्म अत्यन्त हैं, तथा नक्षत्रों की कुछ घटियाँ अमृत और कुछ विष होती हैं। नारद ने

ड्यस्तत्कर्तृकर्मविनाशनाः।
श्चामृतवत् शुभदायिकाः॥

हैं। इसी प्रकार वारों और योगों के भी अनेक विभाग होते हैं अतः प्रकट करते हैं।

न्य दोषों के रहते भी अनेक नारियाँ वृद्धावस्था तक सधवा रहती हैं और

उन दोषों के अभाव में भी अनेक युवतियाँ विधवाएँ देखी जा रही हैं अत: वे योग अप्रामाणिक हैं। इसका उत्तर यह है कि (१) आजकल ज्योतिषी भावकुण्डली नहीं लिखते, केवल राशिकुण्डली से फल बता देते हैं। जो ग्रह राशिकुण्डली में सप्तम भाव में लिखा है वह भावकुण्डली में षष्ठ या अष्टम में चला जाता है और उसी का फल देता है। तो फिर ज्योतिषी का अपराध जातकशास्त्र पर क्यों थोपा जाय? (२) ग्रहों की बलगणना कई प्रकार से होती है। आजकल के ज्योतिषी केवल स्वक्षेत्र और उच्च आदि बलों को ही देखते हैं। वे श्रीपति आदि आचार्यों की बतायी रीतियों से ग्रहों के बल की गणना नहीं करते। उन्हें पता नहीं कि उच्च और स्वक्षेत्र में स्थित ग्रह भी निर्बल होता है तथा नीच और शत्रुगृह में स्थित भी प्रबल होता है। इसलिए उनका बताया फल प्रत्यक्ष में घटित नहीं होता पर स्वप्न और चिन्ता में सत्य हो जाता है तो फिर जातकशास्त्र अपराधी क्यों? अत: द्वितीय आक्षेप भी नीरस है।''

लग्न कुण्डली से फल न घटने पर झा जी बिम्बीय लग्न की शरण में जाने का आदेश देते हैं पर उपाध्याय जी दोनों का खण्डन कर सत्य फल जानने के लिए वह भावचलित कुण्डली बनाने को कहते हैं जिसके विरोधी जैमिनि, पराशर, कमलाकर भट्ट और झा जी आदि सदृश आचार्य हैं। उपाध्याय जी को स्वप्न या चिन्तन में फल घटने पर भी ज्योतिष सत्य प्रतीत होने लगता है। वे आगे लिखते हैं–

''तीसरा आक्षेप यह है कि गोचर फल प्रामाणिक नहीं दिखाई देता। किन्तु यह कथन भी अत्यन्त नीरस है। स्थिर और अस्थिर, दो प्रकार के फल होते हैं। पिछले जन्मों के दृढ़ कर्मों से स्थिर फल प्राप्त होते हैं। वे पूजा पाठ आदि से टाले नहीं जा सकते, कुछ कम हो जाते हैं। उनका ज्ञान, दशा अन्तर्दशा से होता है। पूर्व जन्मों के अदृढ़ कर्मों के फल अस्थिर होते हैं, प्रायश्चित्त से समाप्त किये जा सकते हैं और वे गोचर तथा अष्टवर्ग से ज्ञात होते हैं। दशाफल प्रधान है और गोचर फल गौण। इसलिए शुभदशा में आया अशुभ गोचर या अशुभ अष्टक वर्ग अपना फल नहीं दे पाता अत: जातकशास्त्र सत्य है।''

उत्तर–आप कहते हैं कि केवल नक्षत्र का फल मत देखो। प्रत्येक नक्षत्र में चन्द्रमा की भिन्न-भिन्न १२ अवस्थाएँ होती हैं, ३६ वेलाएँ होती हैं और ६० क्रियाएँ रहती हैं। इनका भी विचार करो। प्रश्न यह है कि (१) ज्योतिष के कितने ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों में इन १०८ नक्षत्रखण्डों का वर्णन किया है? यदि ये महत्त्वपूर्ण हैं तो प्रसिद्ध ग्रन्थकारों ने इनकी चर्चा क्यों नहीं की? (२) अवस्था, वेला और क्रिया के फलों में भी तो घोर मतभेद होता है। उस स्थिति में आप किस खण्ड को हेय और किसको उपादेय कहेंगे? (३) यदि किसी एक को महत्त्व देते हैं तो क्यों? (४) इनके अतिरिक्त चौथा विधान विष और अमृत घटियों का है। इसके अनुसार प्रत्येक नक्षत्र की कुछ घटियाँ विषतुल्य हैं। ज्योतिष कहता है कि इन घटियों में विवाह करने पर कन्या तीन वर्ष के भीतर विधवा हो जाती है और अन्य मांगलिक कार्य करने पर मनुष्य मर जाता है या दरिद्र हो जाता है। क्या पिछले तीन विधानों से इसकी संगति लग सकती है? (५) अन्य ज्योतिषाचार्यों ने १२, ३६, ६० और विषघटी के अतिरिक्त नक्षत्रों के अन्य भी २७ और ३० टुकड़े किये हैं। उनका विवरण आगे है। (६) क्या इस पंचम विधान की पिछले चार से संगति लगती है? (७) इनके अतिरिक्त वार, योग, तिथि और लग्न के विधान हैं। ज्योतिषशास्त्र ने वारों और तिथियों की भी अनेक घटियों को विषघटी कहा है और आप जानते हैं कि इनमें परस्पर घोर विरोध है। जो घटी तीन प्रकार से शुभ सिद्ध होती है वही पाँच प्रकारों से अशुभ हो जाती है तो फिर दिव्य दृष्टि वाले आचार्यों द्वारा कथित इन विरोधी विचारों में से आप किसे ग्राह्य कहेंगे और (८) क्यों? (९) क्या प्राचीन काल में नक्षत्रों को इतने भागों में विभाजित करने का नियम था? (१०) आप लग्न–कुण्डली की अपेक्षा भावकुण्डली को अधिक महत्त्व देते हैं। क्या भृगु, रावण, अरुण आदि की संहिताओं में और वराहादि प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थों में यह बात मानी गयी है? (११) आप सन्धिस्थ ग्रह को बलपूर्वक एक भाव में घसीटना चाहते हैं पर यह नहीं देखते कि दो प्रदेशों की सीमा पर बसे लोगों के भोजन भाषा और वस्त्र आदि दोनों प्रान्तों से प्रभावित रहते हैं तथा सन्ध्या काल पर दिन और रात दोनों का प्रभाव रहता है। (१२) क्या आप भाव कुण्डली द्वारा सब

विधवाओं को विधवा और सब सधवाओं को सधवा सिद्ध कर सकते हैं? (१३) क्या वैधव्य की भीषणता हर देश और जाति में एक सी है? (१४) उपाध्याय जी के अनुयायिओं को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि लग्नसाधन और भावसाधन की जो विधि इस समय प्रचलित है वह पराशर, गर्ग और जैमिनि आदि आचार्यों को मान्य नहीं है। उसका विवरण लग्न प्रकरण में पढ़ें। (१५) आप ने जैसे नक्षत्रफल को असत्य और नक्षत्र खण्डों के परस्पर विरोधी फलों को सत्य माना है उसी प्रकार बहुत से ज्योतिषी लग्नकुण्डली और भावकुण्डली के फल को मिथ्या और लग्न के टुकड़ों के फलों को अर्थात् द्रेष्काणकुण्डली, नवमांश कुण्डली, त्रिंशांश कुण्डली के फलों को सत्य मानते हैं तो हम किसकी बात मानें? आप स्वयं भी तो इसी पक्ष में हैं।

(१६) उपाध्याय जी ने लिखा हैं कि वर्तमान ज्योतिषी उच्च में, मित्रक्षेत्र में और स्वक्षेत्र में स्थित ग्रहों को बलवान् मानते हैं। वे आचार्य श्रीपति आदि की रीति से बलगणना नहीं करते। इसी कारण उन्हें ज्योतिष में संशय होता है किन्तु उपाध्याय जी का यह लेख शास्त्रविरुद्ध है। ज्योतिष के सब आचार्य स्वक्षेत्र, मित्रक्षेत्र और उच्चादि में स्थित ग्रहों को ही बलवान् मानते हैं। उपाध्याय जी जिस दैवज्ञाभरण की भूमिका लिख रहे हैं उसकी भी यही स्थिति है। उसके कुछ उदाहरण ये हैं-

प्रथम अध्याय में सर्व प्रथम ग्रहों के उच्च, मित्र और स्वक्षेत्र आदि का ही वर्णन है। बलवर्णन के प्रथम श्लोक में ही लिखा है कि अपने गृह में, मित्रगृह में और वर्गोत्तम में स्थित ग्रह बलवान् होता है तथा नीच, शत्रुगृह और पापगृह में हो..... तो मनुष्य पूर्णायु होता है। भाग्येश उच्च में हो, मित्रक्षेत्र में हो तो मनुष्य भाग्यशाली होता है। ऐसे पचासों उदाहरण हैं जिनमें क्षेत्रबल का ही महत्त्व है।

स्वर्क्षे कण्टककोणयोर्हितगृहे वर्गोत्तमे स्याद् बली ३७॥
नीचारातिगपापखेटगृहगो ज्ञेयो ग्रहो दुर्बलः ४०॥
अष्टमेशे शुभे खेटे स्वोच्चराशिस्थिते शुभे।
अष्टमेश निजक्षेत्रे जीवनं सुकरं भवेत्॥
अष्टमाधिपतौ...स्वगृहे स्वोच्चे वा मित्रगेहस्थे...॥

तो ज्योतिषी अपराधी कैसे हो गये? अपराधी तो ज्योतिष है। (१७) केशवी आदि ग्रन्थों में ग्रहों के अनेक बलों का वर्णन है पर उनका मुख्य विषय आयुनिर्णय ही मिथ्या हो जाता है तो हम श्रीपति आदि द्वारा कथित अन्य बलों को महत्त्व कैसे दें? क्या उनके द्वारा कोई सत्य फल बता सकता है? (१८) वस्तुतः स्वक्षेत्र, मित्रक्षेत्र और उच्च आदि की धाराणाएँ भी मिथ्या और अन्धविश्वास हैं। उनकी कोई उपपत्ति नहीं है। उपाध्याय जी ने स्वयं ही लिखा है कि स्वक्षेत्र एवं उच्च में स्थित ग्रह भी निर्बल होते हैं और नीचादि में स्थित भी प्रबल होते हैं। (१९) जब ज्योतिष के सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त उच्चमित्रादि बल की यह स्थिति है तो हम अन्य बलों को सत्य कैसे मानें? हमारे अनेक आचार्यों ने लिखा है और उपाध्याय जी ने समर्थन किया है कि जहाँ ग्रहों का प्रत्यक्ष फल दिखाई नहीं देता वहाँ वह सपने में और सोचने में मिलता है। वराहमिहिर ने बृहज्जातक ८। २२ में इसका समर्थन किया है।

परिणमति फलोक्तिः स्वप्नचिन्तास्ववीयैः

किन्तु सत्य यह है कि सोचने में और सपने में हर निर्धन को चार लाख की लाटरी मिलती है, सड़क पर गिरा रत्नहार मिलता है, दिव्य भवन एवं वाहन मिलते हैं। भार्याहीन पुरुष को मृगनयनी बिल्वस्तनी पत्नी मिलती है और जीविका हीन को उच्च पद मिलता है तो क्या हम इस प्राप्ति को सत्य और ग्रह का फल मान लें? (२०) उपाध्याय जी अन्तर्दशा को गोचर और अष्टकवर्ग से श्रेष्ठ मानते हैं पर दशाएँ अनेक प्रकार की हैं और एक ही स्थिति किसी दशा से शुभसिद्ध होती है

तो किसी से अशुभ। तब हम किसके फल को सत्य मानें? (२१) सब ग्रहों के गोचरों के फल भिन्न-भिन्न होते हैं तो हम किसे सत्य कहें? (२२) अष्टकवर्ग और गोचर के फलों में सदा मतभेद रहता है। आप अष्टकवर्ग को श्रेष्ठ कहते हैं पर वे भी तो आठ प्रकार के होते हैं। उनमें किसे सत्य कहें? उपाध्याय जी लिखते हैं कि कुछ लोग होराशास्त्र के फलों की असंगतियों को देख कर पूरे ज्योतिषशास्त्र को अप्रामाणिक कहते हैं पर यह दुःसाहस है। उन्हें जानना चाहिए कि फल वही कह सकता है जो अनेक होराशास्त्रों को जानता हो, पाँचों सिद्धान्तों का ज्ञाता हो, विमर्शपटु हो और जिसने कुछ मन्त्र सिद्ध किये हों।

अनेकहोरासारज्ञः पञ्चसिद्धान्तकोविदः।
ऊहापोहपटुः सिद्धमन्त्रो जानाति जातकम्॥

परन्तु सत्य यह है कि इस शास्त्र के अनेक ग्रन्थों को पढ़ने पर बुद्धि और भी चकरा जाती है। वह मतभेदों के झंझावात को देख किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है और ऊहापोह के वाद उसे छोड़कर भागना चाहती है। मन्त्रसिद्धि से सब कुछ ज्ञात हो जाता है तो इतने ग्रन्थ क्यों पढ़े जायँ। मन्त्रसिद्धि से सब कुछ वताया जा सकता है तो आप उसका चमत्कार दिखा कर आक्षेप करने वालों को लज्जित क्यों नहीं कर देते?

आचार्य हण्मन्त सा नेमासा काटवे का तृतीय मत

जन्मपत्री का फल कहने की मुख्य प्राचीन विधि में कुछ ग्रह स्वभावतः पाप हैं, कुछ शुभ हैं और वे कुछ राशियों के स्वामी हैं। पराशर की विधि में त्रिकोणेश होने पर पाप भी शुभ हो जाते हैं तथा केन्द्रेश होने पर शुभ भी पाप हो जाते हैं। काटवे के मत में कोई ग्रह किसी राशि का स्वामी नहीं है। इसमें भावेश व्यवस्था है। पुरानी विधि में जैसे १२ राशियों के सात ग्रह स्वामी हैं उसी प्रकार इसमें सात ग्रह १२ भावों के स्वामी हैं, उनमें राशि चाहे जो हो। उसका नियम है-१ सूर्य, २ गुरु, ३ भौम, ४ चन्द्र बुध, ५, गुरु, ६ शनि मंगल, ७ शुक्र, ८ शनि, ६ रवि गुरु, १० सूर्य बुध गुरु शनि, ११ गुरु, १२ शनि। जैसे प्राचीन विधि में इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है कि धनमीन का स्वामी गुरु क्यों, उसी प्रकार इसमें भी भावेशविधान की कोई उपपत्ति नहीं है। जैसे पुराने लोगों ने कक्षाक्रम वाली भ्रमात्मक राशीशोपपत्ति लिख दी है उसी प्रकार इन्होंने भी कुछ सोचा होगा। ग्रह आकाश के जिस भाग में बैठे हैं उसके अनुसार प्रभाव के विषय में सोचना अच्छा है, सहेतुक है, पर कुछ ग्रहों को कुछ भावों का स्वामी मान लेना अहेतुक कल्पना है। वह सत्य फल नहीं बता पायेगी।

आचार्य नवाथे का चतुर्थ मत

काटवे जी कई ग्रहों को एक भाव का स्वामी मानते हैं और नवाथे जी एक ग्रह को कई भावों का स्वामी मानते हैं। उनके यहाँ एक भाव का स्वामी एक ही ग्रह है। विधि यह है-१ सूर्य, २ गुरु, ३ मंगल, ४ चन्द्र, ५ गुरु, ६ मंगल, ७ शुक्र, ८ शनि, ६ गुरु, १० बुध, ११ गुरु, १२, शनि। इन दोनों विधियों में परम्परा के विरुद्ध रवि, शनि और गुरु कई भावों के स्वामी हो जाते हैं पर नागपुर के ज्योतिर्विद श्री काटवे इसी को सत्य और समुचित मानते हैं और पुरानी प्रथा को अधूरी एवं अशुद्ध कहते हैं किन्तु आचार्य नवाथे उनके विरुद्ध हैं। वे भावेश को महत्त्व न देकर भावों में स्थित ग्रह को ही फलप्रद कहते हैं किन्तु भावेश की पुरानी और नयी, सब विधियों में कई संकट हैं। पराशर की विधि में मेष लग्न में मंगल लग्नेश होने से शुभ है पर अष्टमेश होने से अशुभ है। वृष लग्न में शुक्र लग्नेश होने से शुभ है पर षष्ठेश होने से अशुभ है। बुध त्रिकोणेश होने से शुभ है पर द्वितीयेश होने से मारक है। ऐसे पचासों उदाहरण हैं जिनमें निर्णय अशक्य हो जाता है। इस नयी भावेश विधि में कठिनाई और बढ़ जाती है। इसका कारण यह है कि इसमें एक भाव के कई स्वामी हो जाते हैं और एक ग्रह कई भावों का स्वामी हो जाता है। श्री नवाथे जी और काटवे जी समझते हैं कि इस नूतन विधि से सत्य फल कहा जा सकेगा पर यह असंभव है। जब सब ग्रह आकाश के सब भागों, सब भावों और सब राशियों में घूमते हैं तो वे एक दो भावों या राशियों के स्वामी कैसे हो

ों पद्धतियों में ग्रहराज सूर्य का महत्त्व अन्य ग्रहों से बहुत कम है। दोनों में सूर्य के दशावर्ष सबसे
एक राशि के स्वामी हैं। क्या यह कल्पना न्यायसंगत है? श्री काटवे जी ने भावफल में जिन अनेक
में मतभेद है और इस बात को काटवे जी भी मानते हैं तो सत्यफल का बोध कैसे होगा? काटवे
का कथन है कि प्राचीन विधि अवैज्ञानिक है। इसी कारण उसका फल असत्य हो जाता है। नूतन
, वराहमिहिर इसे नहीं जानते थे किन्तु नूतन विधि भी एक कल्पना ही है। प्राचीन काल में राशि
ग भावों के स्वामी मानते हैं और उसमें भी मतभेद है। हाँ श्री नवाथे का यह कथन अवश्य उपयुक्त
उच्च, नीच आदि की कल्पनाओं से दूर हट कर केवल यही देखें कि कौन ग्रह किस भाव में है
के अतिरिक्त भी हैं।

लग्ननिर्णय की अन्य बाधाएँ

की वर्तमान पद्धति सत्य और प्रत्यक्ष है। उसमें हर राशि के उदयकाल भिन्न-भिन्न हैं और वे हर
ई परन्तु हमारे सबसे बड़े आचार्य वराहमिहिर उसे नहीं मानते। वे हर देश में राश्युदयमान समान
यक्षविरुद्ध हैं इसलिए आजकल कोई ज्योतिषी उनकी पद्धति को नहीं मानता और नूतन पद्धति से
वराहमिहिर का आदेश है कि लग्न के अनुसार प्रसूतिकाल में कुछ घटनाएँ घटती हैं। यदि लग्न
गणितागत लग्न के शुद्ध होने पर भी उसे छोड़ दो और जन्मलग्न वह मानो जिसकी संगति इन
म ये हैं–

चन्द्रमा की दृष्टि नहीं पड़ रही है, या लग्न में शनि है, या सप्तम में मंगल है तो बालक के पिता
पिता घर पर है तो लग्न अशुद्ध है। (२) सूर्य यदि १, २, ५ राशियों में है और अन्य ग्रह द्विस्वभाव
वे पैदा होंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ है तो लग्न को अशुद्ध समझो। (३) बालक की जन्मकालीन
जन्म के समय पिता कारागार में था। (४) जन्म कारागार में (५) अग्निशाला में (६) मार्ग में
न में (९) नौका में (१०) अन्धकार में (११) ऊसर में और (१२) निर्जन स्थान आदि में हुआ।
न्म सिर से होता है। (१४) पृष्ठोदय में पैर से होता है। (१५) दीपक में तेल और बत्ती की क्या
ह कैसा था। (१७) वह गृह की किस दिशा में था (१८) वहाँ कितनी स्त्रियाँ थीं, कैसे थीं (१९)
पलंग का सिर किस दिशा में था, इससे भी लग्न का बोध होता है। संगति नहीं लगती तो इन
लग्न को ही अशुद्ध समझो।

कथन है कि भिन्न-भिन्न लग्नों में प्रसूतिगृह की ये स्थितियाँ होती हैं–(१) शैय्या का सिर पूर्व या
कुछ टूटा, मलिन वस्त्रधारिणी तीन स्त्रियाँ, दीप सामने, प्रसव में माता को अधिक कष्ट, सूतीद्वार
धिक रोनेवाला, माता का सिर पूर्व, स्त्रियाँ ३, ४, ५ भी हो सकती हैं और रक्तवस्त्रा भी। (२)
घर पर, दीप दो बार जला, द्वार पूर्व या दक्षिण, पैर से प्रसव, सूतिकागृह पश्चिम माता का वस्त्र
त्रयाँ ३, ४, ५...। (३) बालक का सिर पश्चिम, पिता घर पर दक्षिण अंग में चिह्न, दाई नीच
का वस्त्र फटा, दीप सामने, सिर से प्रसव, मुख ऊपर, नेत्ररोगी, माता का सिर उत्तर, दूध कम।
त्तर सिर, बालक को छींक, ५ स्त्रियाँ, दीप दो बार बुझा, खटिया का पैर सिर की ओर टूटा, पाद
गृह घर में पूर्व ओर, श्वेताम्बरा, स्वर्णभूषणा। (५) स्त्रियाँ ३–६, पिता घर पर, वस्त्र मलिन या
हसुन सदृश चिह्न, दीप सिर की ओर पूर्व, बालक सुकेश, सुन्दर, स्त्री का मुख दक्षिण, सोना
से प्रसव। (६) सिर दक्षिण, नालच्युत, गौर, सुन्दर, जंघा और कण्ठ में चिह्न, माता का सिर

उत्तर सूतीगृह उत्तर। इसी प्रकार १२ लग्नों में अनेक स्थितियाँ बतायी गयी हैं किन्तु सत्य यह है कि लग्न नेत्रों से प्रत्यक्ष देखा जा रहा है और ये स्थितियाँ मतभेदग्रस्त एवं संशयास्पद हैं। आजकल अधिकाधिक बच्चे अस्पतालों में जन्म ले रहे हैं। वहाँ दीया, बत्ती, शैय्या, सिर, स्त्रीसंख्या आदि विषय अनेक के एक हैं। इस समय हमारे सामने अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी जन्मपत्री में अन्धत्व के ३-४ योग हैं पर उन्हें कोई नेत्रविकार नहीं है। वराहादि आचार्यों ने बालक की जन्मस्थिति के ज्ञान की युक्तियाँ बतायी हैं पर द्रौपदी आग से अगस्त्य, वसिष्ठ, सीता घड़े से, कर्ण और हनुमान् कान से, पार्वती पर्वत से, भीष्म नदी से और शुंगी तथा गोकर्ण गाय से उत्पन्न हैं तो क्या उनकी जन्मपत्रियों से ये बातें जानी जा सकती हैं? क्या शशबिन्दु, हरिश्चन्द्र, दशरथ, कृष्ण और वाजिदली आदि की जन्मकुण्डलियों से उनकी पत्नी संख्याएँ ज्ञात हो सकती हैं? पाश्चात्य देशों ने पत्नी के प्राचीन नियम तोड़ दिये हैं तो क्या उनकी जन्मपत्रियाँ बदल गयी हैं? क्या आजकल इक्ष्वाकु की भाँति कोई पिता की नाक से पैदा हो सकता है? इनके अतिरिक्त लग्न में अन्य अनेक विषय विचारणीय हैं।

(१) प्रत्येक राशि की लम्बाई तीस अंश है पर उदयमान सब के भिन्न-भिन्न हैं। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि प्रत्येक अंश के उदयमान भी भिन्न-भिन्न होंगे किन्तु तीस-तीस अंशों के उदय, समान माने जाते हैं तो उनके आधार पर बताये फल सत्य कैसे होंगे? (२) लग्न सायन लें या निरयण? (३) निरयण में अयनांश कितना लें? इसमें कई मत हैं। (४) लग्न सन्धि में है तो क्या बालक पर दोनों लग्नों का प्रभाव नहीं पड़ेगा? क्या दोनों के बीच में कोई पर्वत खड़ा है? (५) ग्रह सन्धि में हैं तो क्या वे दोनों राशियों का फल नहीं देंगे? (६) इन दोनों स्थितियों में मारकेश आदि का निर्णय कैसे होगा? शुक्र मेष लग्न में मारकेश है और वृष में लग्नेश है तो क्या वह एक मिनट में मारक से तारक (शुभ) हो जायेगा? (७) गर्भाधान लग्न की चर्चा वराहमिहिर आदि सब आचार्यों ने की है और उसे महत्त्व दिया है तो हम उसी को जन्मलग्न क्यों न मानें? (८) एक आचार्य प्रसवपीड़ा को जन्म काल मानता है तो दूसरा किसी एक अंग के दर्शन को जन्म कहता है। एक अंग के दर्शन और पूर्ण जन्म में कभी-कभी ३, ४, ८, १० घण्टों तक का समय लग जाता है। तीसरा आचार्य पूर्ण जन्म को जन्म मानता है और चौथा दसवीं साँस को तो हम किसकी बात मानें?

लग्नन्तु त्रिविधं प्रोक्तं निषेकाधानजन्मतः। जन्मः तु त्रिविधं शीर्षनाभिपादोदयानि च॥
उत्तमं शीर्षजं लग्नं मध्यमं नाभिजं स्मृतम्। पादजं लग्नमधमं तत्र शीर्षं समाश्रयेत्॥
उत्तमं जल प्रस्त्रावो मध्यमं चांगदर्शनम्। अधमं भुवि सम्पातस्ततः स्थूलमिदं विदुः॥

यहाँ प्रसववेदना को ही प्रधान जन्म कहा है। (९) अनेक आचार्य गुलिक-प्राणपद को महत्त्व देते हैं। वे कहते हैं कि प्राणपद यदि लग्न से विषय भाव में है तो जन्मकाल को शुद्ध मानो, अन्यथा नहीं। जन्म लग्न और प्राणपद के अंश समान हैं तो लग्न शुद्ध है, अन्यथा नहीं। लग्न या चन्द्र से प्राणपद के त्रिकोण में रहने पर भी जन्मकाल शुद्ध माना जाता है। (१०) कुछ आचार्यों का कथन है कि जन्मराशि का स्वामी जिस राशि में हो वह अथवा उससे त्रिकोण राशि लग्न होती है अथवा जन्म-राशि से सप्तम या सप्तम की त्रिकोण राशि लग्न होती है।

चन्द्रराश्यधिपो यत्र तत् त्रिकोणमथापि वा॥
तत्सप्तमे त्रिकोणे वा संशये लग्ननिर्णयः॥

(११) हमें विश्वास है कि मनुष्य के जन्मकाल में ग्रहों की जो स्थिति रहती है उस साँचे में वह सदा के लिए ढल जाता है परन्तु यह कल्पना प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। पीछे लिखे हुए कई समयों में हम चाहे जिसे जन्मकाल मानें, ग्रहों की किरणें उसके बाद भी शरीर पर पड़ती हैं और प्रसूतिगृह या माता के उदर की अपेक्षा बालक बड़ा होने पर उन्हें अधिक मात्रा में ग्रहण करता है। (१२) पशु हो या मनुष्य हो, उस पर खाद्य, वातावरण और ग्रहों का प्रभाव जीवन भर पड़ता रहता है अतः जन्मकालीन ग्रहस्थिति को सर्वस्व मान लेना अन्याय है। (१३) मनुष्य के ह्रास-विकास के अन्य हेतुओं का उल्लेख हो चुका

है, जातकशास्त्र का एक महान् दोष यह है कि वह बुधादि ग्रहों से अधिक तेजस्वी मृगव्याध आदि तारों के प्रभाव की उपेक्षा करता है। (१४) दूसरा दोष यह है कि उसने कुछ सटे हुए कालमानों में एक को अति शुभ और दूसरे को अति अशुभ मान लिया है। वह यह भूल जाता है कि आकाश में क्रमशः परिवर्तन होता है। मध्याह्न के बाद मध्यरात्रि धीरे-धीरे आती है और जाड़े के बाद गर्मी क्रमशः आती है। ज्योतिष में कुछ वार, नक्षत्र, तिथि, योग और लग्न, अति शुभ हैं तथा उनसे सटे हुए दूसरे अति अशुभ हैं। (१५) लग्न एक राशि एक अंश है तो भी वृष है और १। २६ है तो भी वृष है। दो घंटो में कोई अन्तर नहीं पड़ता पर एक क्षण के बाद २। १ होने पर मिथुन लग्न हो जाता है और वृष तथा मिथुन लग्नों के ग्रहफलों में आकाश-पाताल सा अन्तर है। शनि ८। १ है तो भी धन में है और ८। २६ है तो भी धन का ही फल कहा जाता है पर इतने में शनि को ढाई वर्ष लग जाते हैं। जातकशास्त्र में गुरु और शुक्र त्रिकोणेश होने पर परम शुभ और केन्द्रेश होने पर परम अशुभ माने जाते हैं किन्तु कुण्डली में केन्द्र और त्रिकोण एक दूसरे से सटे रहते हैं और परिवर्तन में एक पल से अधिक समय नहीं लगता। (१६) राशिसन्धि की भी यही स्थिति है। एक कृत्तिका नक्षत्र में मेष-वृष दोनों राशियाँ आती हैं पर दोनों के फलों में बहुत अन्तर है तो क्या कृत्तिका के प्रथम चरण में जन्मे बालक के एक मिनट बाद दूसरे चरण में उत्पन्न शिशु उससे सर्वथा भिन्न होता है?

राशिलग्न समान, राशि से आयुनिर्णय

बृहज्जतक १८। २० में राशि और लग्न के फल समान बताये हैं और भटोत्पल ने इसका समर्थन किया है किन्तु क्या यह संभव है? भटोत्पल ने इसके अन्त में लग्नफल विस्तार से लिखे हैं पर इस विषय में बहुत मतभेद है। इतना ही नहीं, एक ही आचार्य ने एक ही लग्न के परस्पर विरोधी गुण लिखे हैं। राशिफल की भी यही स्थिति है। जैमिनि, भृगु, पराशर, केशवीकार आदि ने बड़े परिश्रम से आयुनिर्णय किया है पर उनमें अतिशय मतभेद है और उनके आयुनिर्णय बार-बार मिथ्या हो जाते हैं। अनेक ग्रन्थकारों ने केवल राशि द्वारा जीवन भर के कष्टप्रद वर्ष और मरने के दिन तक निश्चित कर दिये हैं पर वे सब झूठे हैं। जातकाभरणकार ने लिखा है कि यह यवनों और मुनियों का मत है-यवनैरुदितं चापि प्राचीनमुनिसंमतम्॥ किन्तु मेष राशि वालों को शूर और भीरु तथा सुशील और क्रूर, दोनों कहा है। यह स्थिति हर राशि में है। राशियों के कुछ फल ये हैं-मेषराशि वालों को दो पत्नियाँ रहेंगी, सिर में घाव होगा, १, ७ १३ वर्षों में ज्वरपीडा होगी। ३, १२ में जलभय, २५ में सन्तानलाभ और रतौंधी तथा ३२ में शस्त्रघात होगा। वृष राशि वाले निस्तेज, कुकर्मी, कामी, सत्यवादी और धर्मात्मा होंगे। उन्हें ३, ७, ९, १०, १२, १६, १९ आदि में अग्निभय, जलभय, रुधिरोद्गार, वृक्षपात, सर्पभय आदि के कष्ट होंगे। मिथुनराशि वाले सुशील, कामी और द्विपत्नीक होंगे। इसी प्रकार सब राशियों के स्वभाव, पत्नी, कष्टप्रदवर्ष और मरने के वर्ष ही नहीं, मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र, वार और समय भी लिखे हैं किन्तु इनमें मतभेद बहुत है। जातकाभरण के नीचे वाले चक्र में यदि वृष और मिथुन राशियों में मार्गशीर्ष और पौष मास लिखे होते तो बारह राशियों के मरने के मास क्रमबद्ध हो जाते और लोग ज्योतिषी से बिना पूछे अपना मरणमास जान जाते। यदि यह चन्द्रनिर्याण सत्य होता तो मार्गशीर्ष और पौष मासों में, सोमवार में, १, २, ६, ७, ११, १४, १५ तिथियों में और कुछ नक्षत्रों में कोई नहीं मरता पर इन सब का मिथ्यात्व स्पष्ट है। इसी से अन्य फलों के विषय में अनुमान कर लें।

१२ राशिवालों के मरणकाल

राशियाँ	आयु	मास	पक्ष	वार	तिथि	कष्टप्रदवर्ष
मेष	९०	कार्तिक	कृष्ण	बुध	९	४,११,१६,४४,५८
वृष	९६	माघ	शुक्ल	शुक्र	९	१,२८,३३,४४,६१

मिथुन	८०	वैशाख	शुक्ल	बुध	१२	४,१०,१४,३८,५८
कर्क	८५	माघ	शुक्ल	शुक्र	६	५,२५,४०,४८,६२
सिंह	१००	फाल्गुन	कृष्ण	मंगल	५	५,१३,२८,३६,४८
कन्या	८०	चैत्र	कृष्ण	रवि	१३	४,१६,२३,३६,४५
तुला	८५	वैशाख	शुक्ल	शुक्र	८	१५,३१,३५,५४,६२
वृश्चिक	९०	ज्येष्ठ	शुक्ल	बुध	१०	११,२८,३८,५२,६२
धन	७५	आषाढ़	कृष्ण	शुक्र	५	२,१०,१८,३१,६७
मकर	९०	श्रावण	कृष्ण	मंगल	१०	५,१३,२७,३६,५७
कुंभ	९०	भाद्र	कृष्ण	शनि	४	२,२८,३३,४८,६४
मीन	९०	अश्विन	कृष्ण	गुरु	३	१,८,१३,३६,४८

राशि [चन्द्र] कुण्डली का फल

जन्मराशि का अर्थ यह है कि जन्म के समय चन्द्र उस राशि में अर्थात् उस राशि की सीध में था। जन्मपत्री में यह कुण्डली भी लिखी जाती है पर लग्नकुण्डली से इसका विरोध हो जाता है। उसके शुभ-अशुभ ग्रह अनेक बार इसमें अशुभ-शुभ हो जाते हैं। राशिकुण्डली की फलसारिणी यह है-

	सूर्य	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु
१	कुटुम्बत्यागी विदेशवासी योगी	उतररोगी रक्तवर्ण	सिद्धिमान् प्रसन्न	सदासुखी लोकमान्य	अल्पायु रोगी	तेजस्वी शूर कर्मठ	
२	पशुधनी राजमान्य	स्त्रीप्रिय धनवान	सुशील धनी	धर्मात्मा राजमान्य विजयी	रोगी धनी राजतुल्य	पितृहीन मातृकष्टद	
३	राजमान्य धनिक	पराक्रमी स्त्रीपुत्र भ्रातृसुखी	राजमान्य धनी	गुणी लोकप्रिय सात्त्विक	मेधावी उपकारी	कन्यापिता सबमृत	
४	मातृसुख हीन	स्त्रोमृत्यु सुखहीन	सुखीमातृ पक्ष से धनी	दुखी दास मातृपक्ष कष्टप्रद	कफी दरिद्र नेत्ररोगी	सुखी विजयी	मातृपितृ कष्टद

५	वीर विजयी	स्त्रीपुत्र विहीन	मेधावी कामी सुन्दर	गृहत्यागी भिक्षुक	धनी अपयशी कन्यापिता	व्यापारी सुपुत्रो	धनी राजा
६	पशुसुखी कन्यावान्	शत्रुहन्ता कामुक	कृपण भीरु सुन्दर	रोगी ज्ञानी निस्तेज	पराजित जूठाभोजी	दुखी अल्पायु	राजमान्य धनी
७	सुपत्नीक पुत्रवान्	रोगी आलसी निर्लज्ज	कृपण धनी दीर्घायु	कृपण दीर्घायु स्थूल मान्य	आलसी शंकालु	धनी दाता बहुपत्नीक	सुखी मातृपितृ कष्टद
८	क्रोधी कुष्ठी विरागी दरित्र	आलसी ज्ञानी वक्ता	धीर विजयी ख्यात साधु	मेधावी रोगी सन्तान सुखी	दानी धनी सुखी ख्यात	बहुपत्नीक दुखी	स्थानभ्रष्ट दुखी
९	धूर्त पापी मातृद्रोही	अन्त में धनी	धर्मनिन्दक परधर्मी	धार्मिक लोकमान्य	बहुभ्रात् भगिनीमित्र	धार्मिक सुखदानी मेधावी	धनी
१०	विद्वान् राजमान्य	अन्त में धनी	क्षयरोगी कुलनायक	गृहत्यागी तपस्वी	स्वस्थ साधु बहुमित्र	धनी कृपण राजमान्य	धनी
११	पशुधनी सुखी	सुखी राजमान्य	दिव्यदृष्टि ११ वर्ष में विवाहित	राजातुल्य	बहुस्त्री पुत्रपुत्री	रोगी दानी मेधावी	
१२	पशुधनी सुखी	मातृपितृ कष्टप्रद	कुष्ठ पराजित	परिवार विरोधी	कपटी परस्त्रीगामी	दरिद्र अधर्मी	

सुदर्शनचक्र और अनायचक्र

इसमें लग्नकुण्डली, चन्द्रकुण्डली और सूर्यकुण्डली के तीन वृत्त खींचे जाते हैं और सब ३६ कोष्ठक बनते हैं। इससे तीनों के विरोध का समन्वय किया जाता है। एक अन्य चक्र में कुण्डली के बारह भावों से १२ वर्षों के फल कहे जाते हैं और १० बार में १२० वर्ष पूरे कर दिये जाते हैं। उसमें १, १३, २५, ३७ आदि वर्षों के फल समान रहते हैं। बाद में १२ भाव १२ मास मान लिये जाते हैं और पुनः उनके टुकड़े करके एक-एक घटी का फल कहा जाता है पर क्या ऐसा होना कभी सम्भव है?

जन्मांगं प्रथमं विद्धि द्वितीयं च द्वितीयकम्।
एवं द्वादशभावाः स्युर्द्वादशाब्दस्य सूचकाः॥
आवृत्तिभिस्तु दशभिः पूर्णता पुरुषायुषः।
यस्मिन्वर्षेब्दलग्नं स्यादाद्यो मासः स एव हि॥

आकाश में माता, पिता आदि के स्थान

जन्मकुण्डली जन्मकालीन आकाशस्थिति का मानचित्र है। इसका प्रथम स्थान पूर्व क्षितिज से सटा हुआ भाग है। सप्तम स्थान पश्चिम क्षितिज से सटा भाग है। दशम आकाश का सिर के ऊपर वाला भाग है। सूर्य इसमें १२ बजे दिन में आता है। मध्यरात्रि में चतुर्थ स्थान में रहता है। शेष स्थान आकाश के अन्य भाग हैं। इस चक्र में ग्रहों को देखकर मनुष्य के जन्म के वर्ष, मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र और समय बताये जा सकते हैं। वार इसलिए नहीं बताया जा सकता कि आकाश से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ज्योतिष कहता है कि १, ३, ४, ५, ७ और १० स्थान क्रमशः शरीर, सहोदर, माता, सन्तान, पत्नी और पिता के हैं। इन्हीं के आधार पर अन्य स्थान भी जाने जाते हैं। माता से तृतीय स्थान माता के भाई (मामा) का होता है। पिता से तृतीय स्थान चाचा का होता है। नवम स्थान से पत्नी के भाइयों की स्थिति बतायी जा सकती है। माता के दशम स्थान अर्थात् लग्न नाना का भी स्थान है और सप्तम भाव नानी का भी स्थान है। हमें अनुसन्धान करना है कि आकाश के इन स्थानों का सचमुच इन व्यक्तियों और भावों से क्या कोई सम्बन्ध है? चतुर्थ स्थान वाहन, खेत, सुख आदि से सम्बन्धित है। पूर्वक्षितिज से सटा ऊपर वाला भाग व्यय तथा उससे ऊपर वाला आय बताता है। इसी प्रकार धर्म, विद्या, रोग, शत्रु आदि के फल चिन्तनीय हैं। सन्तान और विद्या का स्थान एक है पर अनेक विद्वान् पुत्रहीन हैं या उनके पुत्र मूर्ख हैं और अनेक विद्याहीनों के पुत्र विद्वान् हैं। अनेक भाग्यशाली अधर्मी हैं, अनेक के पिता अयशस्वी हैं, अनेक के मामा अशत्रु हैं और संरक्षक हैं। पश्चिम क्षितिज के ऊपर वाले भाग का हमारी आयु से क्या सम्बन्ध है तथा उसके नीचे वाले भाग का मामा और रोगों से क्या सम्बन्ध है, ये विषय विचारणीय हैं।

स्त्रीजातक या नारीनिन्दा

स्त्रियों के लिए यह भाग्य की बात है कि सामुद्रिकशास्त्र और जातकशास्त्र ने उनके विषय में बहुत कम लिखा है पर जो लिखा है उसमें व्यभिचार के योगों की भरमार है। उनका पता लग जाय तो उन कन्याओं से कोई भी विवाह नहीं करेगा। आचार्य ने १६ श्लोकों के इस छोटे से अध्याय में ग्रह स्थिति के आधार पर नारी को ये उपाधियाँ दी है–

नरसमा, पापा, गुणहीना, कन्यैव दुष्टा, दासी, मायाविनी, कुचरित्रा, दुष्टा, पुनर्भू, कपटिनी, नपुंसकसमा, अतिकामुकी, स्वच्छन्दा, पतिघातिनी, असाध्वी, शिल्पजीवनी, नराचारा, कुलटा, पुरुषचेष्टिता, अगम्यगामिनी, अल्परति, नीचरता,

ा

ाली, नपुंसकपत्नी, प्रवासीपत्नी, विधवा, परित्यक्ता, कन्यैव विधवा, कन्यैव वृद्धा,

, कन्यामाता व्याभिचारिणी, योनिव्याधियुता, मूर्खपत्नी, कन्या और माता, दोनों
ीपत्नी, बहुपत्नी, ईर्ष्यायुता, संन्यासिनी आदि। अन्त में आचार्य ने सावधान किया
ूर्व अवश्य जाँच लेना। सामुद्रिकशास्त्र में और जातक में नारी और नर के जो इस
ता सावित्री बच सकती हैं न रमण–रामकृष्ण आदि योगी उबर सकते हैं। व्यंकटेश
ध्याय में इन्हीं योगों का अश्लीलतम शब्दों में वर्णन किया है और लिखा है कि मैं
ों की आकृतियों के तथा भगार्द्रता योगों के भद्दे और झूठे वर्णन हैं। पुरुपों के विषय
में शनि के अतिरिक्त कोई भी ग्रह हो तो वह पुरुष परस्त्री, वेश्या, वन्ध्या, दासी,
गमन करता है। चतुर्थ स्थान में स्थित ग्रहों के भी ये ही फल हैं। केन्द्र में कोई
रेगा। किन्तु ये अनुभूतियाँ नहीं, मिथ्या कल्पनाएँ हैं और इनके अनुसार हर पुरुष–

ी मन्दबुद्धि समझते हैं पर यह धारणा निर्दोष नहीं है। सबकी बुद्धियाँ भिन्न–भिन्न
विश्व के एक विख्यात गणितज्ञ थे पर वे बी० ए० पास नहीं हो सके क्योंकि अन्य
हो सकता कि एक उत्तम गायक चित्रकार भी हो अथवा अच्छा अभिनेता पहलवान
ी कुमारों का बुद्धि परीक्षण करके उन्हें उनके प्रिय विषय पढ़ाये जाते थे और उनकी
ुझौवल से निर्णय नहीं करना चाहिए। मुहूर्तचिन्तामणि (५।२२) में लिखा है कि
पुस्तक, लेखनी, सोना आदि रखें और रेंगता हुआ शिशु उनमें से जो उठा ले उसी
ग्नकुण्डली के दशम भाव को कर्मस्थान कहते हैं। वहाँ कौन से ग्रह बैठे हैं, वहाँ
कहाँ है, कैसा है, किस नवांश में हैं इत्यादि से भी ज्योतिषी आजीविका का निर्णय

गृह्यसूत्र (१।५।५) में इसी प्रकार कुमारी कन्या के परीक्षण का उल्लेख है। मिट्टी
ट्टी का हो जिसमें वर्ष में दो बार अन्न पैदा होता है। एक श्मशान, एक ऊसर, एक
न आदि की मिट्टी का हो। सबको कुमारी के सामने रखकर मन्त्र पढ़िए–ऋतमग्रे
मार्याभिजाता...। यदि उसने श्मशान की मिट्टी का गोला उठाया तो विधवा होगी,
ये को उठाने पर धूर्ता होगी। गायों के गोष्ठ का उठाने पर पशुमती, खेत वाले से
ले को उठाने पर हर प्रकार से सम्पन्न होगी पर यह परीक्षण आगे लिखी परीक्षा की

न आजीविका का निर्णय दशम भाव में स्थित ग्रहों से करो। वहाँ कई ग्रह हों तो देखो
ग्नेश और दशमेश की ओर चलो, नवमांशेश और राशि का दशम देखें पर वस्तुतः
पद्धति ही प्रत्यक्ष विरुद्ध होने से अब तिरस्कृत हो चुकी है तो उसके और सूक्ष्म
तो ऊपर लिखी प्रथम विधि ही उपयुक्त होगी। श्रीवराहमिहिर ने अपने दोनों ग्रन्थों
खे हैं। उनमें से कुछ विचारणीय ये है–

ा को तराजू की पूजा करो और कहो कि हे देवि! तुम कश्यपगोत्रा, आदित्या और

ब्रह्मपुत्री हो। तुम्हें नमस्कार है। इसके बाद कई प्रकार के अन्न तौल-तौल कर रख दो। दूसरे दिन फिर तौलो। जो तौल में अधिक हो जायें उन्हीं को बोओ। तब अधिक अन्न पैदा होगा। पूरब मुख से बैठकर दक्षिण वाले पलड़े पर सोना रखो और उत्तर वाले पर उसी से कई अन्न और कई जल तौलकर रख दो। दूसरे दिन पुनः तौलो। जो अन्न बढ़ा उसकी वृद्धि होगी, कूप का जल बढ़ा तो अच्छी वर्षा नहीं होगी और सरोवर का जल बढ़ा तो इस वर्ष पर्याप्त वर्षा होगी। वर्षा पूछते समय प्रष्टा यदि गीली वस्तु, छुए, पानी के पास खड़ा हो, कोई अन्य व्यक्ति पानी का नाम ले रहा हो, सायंकाल में वर्षा हुई हो या सियार चिल्लाये हों तो जान लो कि पर्याप्त वर्षा होगी। इसमें संशय मत करो। कूप घर से ईशान या उत्तर से भिन्न दिशा में है तो बालक्षय, स्त्रीनाश, अग्निदाह और रोगवृद्धि आदि कष्ट होंगे। सायंकाल में मेघ लाल है तो युद्ध होगा पर मेघ छाता, पताका, हाथी, घोड़ा आदि के सदृश हों तो अच्छी वर्षा होगी। सायंकाल में किसी पशु के चिल्लाने पर गाँव का नाश होगा और सेना के दक्षिण चिल्लाने पर सेना का सर्वनाश होगा। चम्पा अच्छी फूली है तो अन्नवृद्धि होगी। (अध्याय २६)।

सस्यजातकाध्याय—में इन्हीं विधियों से अन्न की हानि-वृद्धि बतायी गयी है। द्रव्यनिश्चयाध्याय में सब द्रव्यों और प्राणियों को बारह राशियों में बाँट कर उनमें बैठे ग्रहों द्वारा सबकी स्थिति बतायी गयी है और इसे आगमशास्त्र कहा है। दकार्गल (अध्याय ५४) में लिखा है कि जहाँ पलाश सहित बेर का पेड़ है वहाँ से पश्चिम दिशा में एक पुरुष नीचे सर्प और सवा तीन पुरुष नीचे पानी मिलेगा। पैर से आहत भूमि में जहाँ गम्भीर नाद हो वहाँ साढ़े तीन पुरुष नीचे पानी रहता है। वृक्ष की शाखा जहाँ नीचे झुकी है और पत्तियाँ पीली हैं वहाँ दस हाथ नीचे पानी है।

अंगविद्याध्याय—(६८) में नर-नारी के प्रत्येक अंग का विस्तृत वर्णन है और सब का सारांश यह है कि जो सुरूप है वह भाग्यशाली है तथा जो कुरूप है वह भाग्यहीन है। चोरी का प्रश्न पूछते समय प्रष्टा उदर छुये तो जान लें कि वस्तु उसकी माता ने चुराई है और सिर छुये तो गुरु चोर है। गर्दन छुये तो जान लें कि जौ की रोटी खाकर आया है और गाल या ओठ छुये तो पक्षीमांस खाया है। मुझे कितनी सन्तानें होंगी, यह पूछते समय स्त्री यदि केश छूये तो दो पुत्रियाँ और तीन पुत्र होंगे, कान छूये तो पाँच पुत्र, कनिष्ठा अँगुली छुवे तो एक पुत्र, उससे आगे वाली में दो पुत्र, और अँगूठा छूने पर पाँच पुत्र होंगे। सन्तान किस नक्षत्र में होगी, इसका उत्तर भी भिन्न-भिन्न अंगों के स्पर्श से ज्ञात होगा। उपसंहार में बताया गया है कि ये बातें भली प्रकार शास्त्र का निरीक्षण करके लिखी गयी हैं। इनके अनुसार उत्तर देने वाला राजा और प्रजा, दोनों से पूज्य होता है। पिटकाध्याय में बताया गया है कि ब्राह्मण को श्वेत फुंसी हो तो शुभ है पर क्षत्रिय को लाल और श्वेत दोनों शुभ हैं। नासिका में फुंसी हो तो वस्त्र लाभ, कपोल में होने पर पुत्रलाभ, ओठ में अन्न- लाभ, ललाट में धन लाभ, कण्ठ में भूषणलाभ और कान में फुंसी होने पर अध्यात्मज्ञान का तथा आभूषण का लाभ होता है। इसी प्रकार घाव, तिल, मसा और भँवरी आदि के फल ५४ श्लोकों में लिखे हैं।

शय्यासन—बृहत्संहिता (अध्याय ७९) में लिखा है कि जो वृक्ष वायु, हाथी, बिजली आदि से या दक्षिण-पश्चिम दिशा में गिरे हों, काँटेदार हों, नदी, मन्दिर या श्मशान के पास हों और जिन पर मधुमक्षिका, पक्षी बसे हों उनके काष्ठ से शय्या, आसन आदि बनाने पर कुल, धन और मान का नाश होता है तथा कलह और रोगों की वृद्धि होती है। बनाते समय अपशकुन हों तो भी न बनावे। श्रीपर्णी का पलंग धनप्रद, विजयसार का रोगनाशक, शीशम का दीर्घायुप्रद और चन्दन का शत्रु नाशक होता है। देव भी उस पर सोने वाले की पूजा करते हैं। पलंग में हाथी दाँत लगाना बहुत अच्छा है पर उसके शुभाशुभ लक्षणों की परीक्षा कर लेनी चाहिए। अशुभ होने पर चन्दन, शीशम आदि भी भीषण हो जायेंगे। पलंग के पाये में गाँठ आदि होने पर भूत, भय, पाद पीड़ा, अजीर्ण, क्लेश, वध, बन्धन, उदररोग, धननाश, कुलनाश और अनेक रोग होते हैं। शय्या की चरमराहट के कई फल हैं। पलंग में चार से अधिक प्रकार के काष्ठ रहने पर मृत्यु और वंशनाश के भय होते हैं। राजा की शय्या १०० अंगुल लम्बी, हो। ज्योतिषी और पुरोहित की शय्या ७२ अंगुल लम्बी, ३१ अंगुल चौड़ी और १० अंगुल ऊँची रहे, अन्यथा अनेक संकट आयेंगे। किन्तु निश्चित है कि विश्वकर्मा, गर्ग और वराहमिहिर के इस आदेश को ज्योतिषी, पुरोहित

और उनकी पत्नियाँ नहीं मानेंगी। आचार्य ने सब के अन्त में लिखा है कि मैंने बुद्धिरूपी मन्दराचल के ज्योतिषसागर को मथ कर यह चन्द्रमा निकाला है, प्राचीन मुनियों को नमस्कार है। मैंने वचनों का संग्रह कर दिया, सुजन आगे प्रयास करें।

शास्त्रमुपसंगृहीतं नमोस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः
तानवलोक्येदं च प्रयतध्वं कामतः सुजनाः॥

चन्द्रमा में ४००० श्लोक हैं तो सागर में कई लाख रहे होंगे परन्तु अब हमें नयी नींव पर ज्योतिष का दूसरा भवन बनाना है। उसका आधार ग्रन्थप्रामाण्य नहीं बल्कि अनुभव होगा।

भृगुसंहिता और रावणसंहिता

भृगुसंहिता नया ग्रन्थ है। आर्यभट, वरामिहिर और भटोत्पल आदि गणित और फलित ग्रन्थों के लेखकों ने इसकी चर्चा नहीं की है। वराहमिहिर, कल्याणवर्मा आदि प्राचीन जातकसंहिता लेखकों ने राहु–केतु के फल नहीं लिखे हैं पर इसमें उन दोनों के फल भी लिखे हैं। इस ग्रन्थ का मूलाधार १२ राशियाँ हैं और इसमें सात वारों का भी उल्लेख है अतः इसकी नवीनता स्पष्ट है क्योंकि महर्षि भृगु के समय भारत में राशियों और वारों का प्रचलन नहीं था। १२ कोष्ठकों वाली यह जन्मपत्री पराशर, वसिष्ठ, गर्ग, नारद, और जैमिनि आदि की ही भाँति भृगु और रावण पर भी बल पूर्वक थोपी गयी है। ज्योतिषियों ने रावणसंहिता के साथ रावण की भी कुण्डली प्रकाशित कर दी है और राम, कृष्ण आदि की कुण्डलियाँ भी छपा दी हैं। राम की कुण्डली में सब ग्रह आज की उच्च राशियों में बैठा दिये गये हैं और हम इससे प्रसन्न हैं परन्तु नवीन और प्राचीन, दोनों मतों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि ग्रहकक्षाओं के उच्च स्थान चल हैं। अतः आज के उच्च आज से दस लाख वर्षों से अधिक प्राचीन राम की कुण्डली में भी उच्च रहे होंगे, यह असंभव है। कृष्ण की भी यही स्थिति है। पाँच सहस्त्र वर्षों तक उच्च–नीच एक राशि में नहीं रह सकते। खेद है कि राशियों की आकृतियाँ बदल गयीं उच्च–नीच बदल गये, ध्रुव तारा अपने स्थान से हट गया, ध्रुव स्थान टल गया, अनेक तारे अदृश्य हो गये, कृत्तिकाएँ सात से छ हो गयीं, नक्षत्रीय प्रजापति का रूप बदल गया, नये तारे निकल आये, सम्पात का चलना सिद्ध हो गया फिर भी हम उच्चों को स्थिर मानते हैं, १४ जनवरी को मकरसंक्रान्ति मनाते हैं और सूर्यादि को सदा के लिए सिंहादि का स्वामी मान बैठे हैं।

भृगुसंहिता क्यों बनी, इसके विषय में भागवत (१०।८९) का कथन है कि एक बार सरस्वती नदी के तट पर बैठे मुनियों ने भृगु को यह परीक्षा लेने का काम सौंपा कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव में कौन बड़ा है।, भृगु पहले अपने पिता ब्रह्मा की परीक्षा लेने ब्रह्मलोक गये। उन्होंने पिता को नमस्कार तक नहीं किया। ब्रह्मा को भृगु की इस उद्दण्डता से विषाद तो हुआ पर उन्होंने कुछ कहा नहीं। फिर भी भृगु ने उन्हें मूर्ख सिद्ध कर दिया। इसके बाद वे शिव के पास कैलास पर्वत पर गये। भाई भृगु का आगमन सुनकर शिव आये और प्रेम से आलिंगन करने आगे बढ़े तो भृगु नें डाँट कर कहा कि ओ कुमार्गगामी शिव! तुम मुझे मत छूना। महादेव कुपित हुए तो भृगु उन्हें परीक्षा में विफल सिद्ध कर वैकुण्ठ चले गये। वहाँ विष्णु लक्ष्मी की गोद में सिर रखकर सो रहे थे। भृगु ने वहाँ बिना पूछे पहुँच कर विष्णु की छाती में लात मार दी। विष्णु जागकर लक्ष्मी के साथ पलंग से नीचे उतर आये। दोनों ने भृगु को साष्टांग प्रणाम किया और क्षमा माँगी। विष्णु बोले कि हे प्रभो! आपके चरण कोमल हैं। उनमें मेरे वक्ष की चोट लग गयी होगी। विष्णु ने भृगु का पैर दबाते हुए कहा कि अब अपने चरणोदक से मुझे पवित्र कीजिए।

शयानं श्रिय उत्संगे पदा वक्षस्यताडयत्।
स्वतल्पादवरुह्यासौ ननाम शिरसा मुनिम्॥
कोमलौ चरणौ तात क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो।

मर्दयन् चरणौ प्राह मां पुनीहि महामुने॥

कुछ पुराणों में और भृगु संहिता के प्रारम्भ में लिखा है कि भृगु के इस कृत्य से कुपित होकर लक्ष्मी ने सब ब्राह्मणों को दरिद्र होने का शाप दे दिया तो भृगु ने उन्हें धनी बनाने के लिए भृगुसंहिता रची और लक्ष्मी से कहा कि तुम्हें ब्राह्मणों के घर आना ही पड़ेगा।

शंकाएँ–मुनियों की गोष्ठी उस सरस्वती के तट पर हुई थी जिसे समाप्त हुए कम से कम २५ सहस्र वर्ष बीत चुके हैं तो क्या उस समय भारत में राशियाँ प्रचलित थीं? (२) वेदों में सरस्वती का वर्णन है पर राशियों और वारों का नहीं। क्यों? (३) वेदों में लिखा है कि एक ही ईश्वर के ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीन नाम हैं तो मंत्रलेखक मुनि उन्हें तीन व्यक्ति क्यों मानने लगे? (४) क्या मानव भृगु परमात्मा की परीक्षा ले सकते हैं? (५) भृगु ने क्या उनसे कोई प्रश्न पूछा था? (६) शिव और ब्रह्मा निन्दित कैसे सिद्ध हुए? (७) गीता में भृगु को सर्वश्रेष्ठ महर्षि कहा गया है तो क्या वे विष्णु के शयनकक्ष में घुस सकते हैं? (८) उनके वक्ष में लात मार सकते है? (९) क्या लात का चिह्न विष्णु के कई जन्मों तक उनके वक्षस्थल पर बना रह सकता है? (१०) परीक्षा में ब्रह्मा–शिव असफल रहे कि भृगु? (११) विष्णु की शंखचक्रादिधारी चतुर्भुज मूर्ति का वर्णन क्या किसी वेद में है? (१२) क्या वे सर्पशैय्या पर सदा सोते रहते हैं? (१३) वैकुण्ठ में सोते हैं कि क्षीरसागर में कि सुमेरु पर्वत पर? पुराणों को कौन सी कथा सत्य है? (१४) विष्णु की दो पत्नियाँ हैं या एक है? (१५) क्या श्री और लक्ष्मी विष्णु का पैर दबाने वाली नारियाँ हैं? (१६) क्या उन्होंने सब ब्राह्मणों को दरिद्र बना दिया है? (१७) क्या लक्ष्मी जी एक अपराधी के कारण पूरे ब्रह्मसमाज को अपराधी मान लेती हैं? क्या वे इतनी बुद्धिहीन हैं? (१८) क्या भृगुसंहिता ने पूरे ब्राह्मणसमाज को धनी बना दिया है?

लोगों का विश्वास है कि भृगुसंहिता में हर मनुष्य की जन्मकुण्डली है और भृगुसंहिता वाले भी किसी को नहीं, नहीं कहते। यदि यह सत्य है तो सब कुण्डलियों की संख्या लगभग साढ़े सात करोड़ होनी चाहिए। कुछ संहिताओं में एक ही लग्नकुण्डली के भिन्न-भिन्न कई फल लिखे हैं। इसका कारण यह है कि भृगुसंहिता में नवमांश आदि वर्गों का भी विचार किया गया है। यदि यह बात सत्य है और एक जन्मपत्री का फल ५० श्लोकों में लिखा है तो इस ग्रंथ में कई अरब श्लोक होने चाहिए।

मैंने एक भृगुसंहिता में एक ही कुण्डली को तीन स्थानों में देखा। उनके फलों में थोड़ा अन्तर था। वहाँ के भृगुशास्त्री ने बताया कि नवमांश आदि के विवेचन के कारण यह फलभेद हुआ है। यदि यह सत्य है तो दस वर्गों का गणित करने पर एक जन्मपत्री के पचीसों भेद हो जायेंगे। कठिनाई यह है कि विभिन्न भृगुसंहिताओं के फल भिन्न-भिन्न हैं, विषयक्रम विभिन्न हैं और घटनाओं में भेद हैं। भाषा ऐसी है जिसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता। लग्नचक्र के सबके नाम भिन्न हैं। कहीं लिखा है–योगोयं परिजातकः तो कहीं लिखा है–योगोयं कमलाकरः। आप पाँच भृगुसंहिताएँ देखें तो पूर्वजन्म के विषय में पाँच मत होंगे। आप एक में ब्राह्मण हैं तो दूसरी में क्षत्रिय। पूर्वजन्म में आपने जो घोर पाप किये थे उसके प्रायश्चित्त के लिए इस जन्म में जो हाथी, घोड़ा सोने की मूर्ति आदि का दान देना है या जप कराना है उस विधि और मंत्र में भी अन्तर है। मंत्र बड़े लम्बे हैं। ग्रन्थ में श्लोकप्रक्षेप की पर्याप्त सुविधाएँ हैं। न छन्दोभंग है न व्याकरण। काशी में एक ऐसे भृगुसंहिता वाले हैं जिनके यहाँ त्रिपंच का अर्थ है ३५। वहाँ अंकानां दक्षिणागति है। स्पष्ट है कि भृगुसंहिता भृगुमुनि की रचना नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि भृगु ने भृगुसूत्र बनाया था, उसी के आधार पर ये अनेक भृगुसंहिताएँ बनी हैं।

प्रतापगढ़ जिले में श्री केदारनाथ त्रिपाठी (संडारी) और श्री रामकृपाल मिश्र (भगवाँ) के पास भृगुसूत्र है पर मुझे पुस्तक का दर्शन नहीं हुआ। त्रिपाठी जी के देहान्त के बाद उनका ग्रन्थ कई लोगों में बँट गया है। उनके लेखक श्री सूर्य भूषण मिश्र (रामपुरगौरी) के सौजन्य से मुझे भृगुसूत्र के कुछ पृष्ठों का दर्शन हुआ पर नोट करने का आदेश नहीं था। उसमें कुछ

विचित्र सिद्धान्त लिखे थे। एक था, सूर्य के भिन्न-भिन्न २७ नक्षत्रों में रहने पर दिन या रात के कुछ विशिष्ट समयों में ही प्रसव होगा। वह सारणी थी। श्री मुनीश्वरदत्त जी उपाध्याय के आग्रह पर एक अन्य व्यक्ति ने कुछ भाग दिखाये पर उसमें ग्रहों का सूर्यकेन्द्राभिप्रायिक भ्रमण लिखा था। उपाध्याय जी को इसे प्राचीन मानने में सन्देह हो रहा था। पड़रौना के श्री वागीश्वरी पाठक द्वारा लिखित १० फलादेश पढ़ने के बाद अब रावण-संहिता में जिज्ञासा नहीं रह गयी है। संयोगवशात् मुझे भृगुसंहिता का एक भाग प्राप्त हो गया है। उसमें कुमुद आदि शताधिक योगों का वर्णन है और आचार्य को स्वर्णादि देने का विस्तृत विधान है। दान न देने पर बार-बार महासंकट की सूचना है। लिखा है-एतद् दानोपचारेण सौख्यं पुत्रादि संयुतम्, पूर्वपापात्, प्रमुच्यते, दानाभावे महद्दुःखं भृगुणा परिभाषितम् आदि। कुछ भृगुसंहिताओं में कुछ आश्चर्यजनक सत्य बातें लिखी हैं। जैसे-कवर्गादिपुरे जातः, पवर्गादि पितुर्नाम। अर्थात् जन्म के गाँव का प्रथम अक्षर कवर्गीय और पिता के नाम का प्रथम अक्षर पवर्गीय होगा। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि अमुक नदी की अमुक दिशा में नदी से इतनी दूरी पर जन्म हुआ है। इन लेखों में सचाई भी मिलती है। भृगुसंहिता की कुछ प्रतियों में कुछ अद्भुत सत्य अवश्य मिलते हैं, उनका अनुसन्धान आवश्यक है पर खेद है कि भृगुशास्त्री वह कार्य न तो स्वयं करते हैं न अपना ग्रन्थ किसी को दिखाते हैं। मैंने भृगु-संहिता का जितना भाग पाया उससे यह सिद्ध होता है कि ज्योतिषी को योगी और त्यागी होना चाहिए। खेद है कि भृगुशास्त्री अनेक बातें पहले ही पूछ लेते हैं। इस समय संहिताएँ अनधिकारियों के अधिकार में है।

श्री सुधाकर द्विवेदी का मत

जातकशास्त्र और ज्योतिषसंहिताओं के अनेक हास्यास्पद सिद्धान्तों, मिथ्या कल्पनाओं, पारस्परिक विरोधों और असफलताओं को देखकर अनेक महान् विद्वान् इनके विरोधी हो गये तथा कुछ ने हताश होकर मौन धारण कर लिया। विरोधियों की कुछ बातें यहाँ लिखी जा रही हैं और कुछ आगे यथास्थान लिखी जायेंगी। महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी ने अपने 'गणित इतिहास' में लिखा है-'हिन्दुस्तान में जब से ग्रीक लोग आये तभी से यहाँ फलित ज्योतिष का प्रचार फैला। बृहज्जातक और नीलकण्ठी देखो। फलित के प्रभाव से हिन्दुस्तान ऐसा दब गया कि यदि आज से फलित की ओर पीठ देकर गणित की ओर देखने लगे तो शायद हजारों वर्षों में यूरप की बराबरी में आवे। यह काल की महिमा है कि इस देश के पण्डित धूर में मिले जाते हैं तो भी दिनरात घमण्ड के नशे में चूर हैं। जैसे यहाँ स्त्रियों के बीच यंत्र मंत्र का प्रभाव है उससे सौ गुना पुरुषों में फलित ज्योतिष का प्रभाव है। जिस गणित के आधार से फलित जी रहा है उसे लोग दिनों-दिन भूलते जा रहे हैं। फलित को कृत्या (राक्षसी) समझना चाहिए। वह यूरप में भी क्यार्डन केप्लर आदि के गले में लटकती थी।'

द्विवेदी जी ने अपनी गणकतरंगिणी (पृष्ठ ११८) में लिखा है कि 'काशीस्थित औदीच्य ब्राह्मण श्री दुर्गा शंकर पाठक अपने समय (१७८७ ईसवी) में जगद्गुरु कहे जाते थे। वे ज्योतिष, व्याकरण, काव्य, तन्त्र आदि अनेक विषयों के उच्चकोटि के विद्वान् थे। उनके शिष्य श्री लज्जाशंकर शर्मा काशी के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में गणित ज्योतिष के प्रधानाध्यापक थे और उन्हीं के शिष्य श्री हीरानन्द चतुर्वेदी वहीं काव्यसाहित्य के प्रधानाध्यापक थे। लाहोर-नरेश श्री रणजीत सिंह के निधन के बाद खड्गसिंह उन्हीं के मुहूर्त से सिंहासन पर बैठे। उसके बाद उन्होंने पाठक जी से नवनिहाल सिंह का जन्मपत्र बनवाया। वह नाना प्रकार के विचित्र चित्रों से सुशोभित एवं अनेक विशेषताओं के कारण बहुविस्तृत था। उसे देख हर्षित होकर लाहोर नरेश ने एक लाख मुद्रा के लगभग धन दिया। नवनिहाल सिंह की अकस्मात् मृत्यु हो गयी पर जन्मकुंडली में इसकी कोई सूचना नहीं थी। इससे पाठक का महान् अनादर हुआ। जन्मपत्र में लिखी हुई मिथ्या बातों से लाहोर के लोग इतने क्रुद्ध हो गये कि पाठक को मृत्युभय उपस्थित हो गया परन्तु वहाँ के कोटाधीश लहनासिंह ने बड़ी कठिनाई से किसी प्रकार काशी में उन्हें सुरक्षित पहुँचा दिया। काशी के छन्नूलाल वकील द्वारा वह जन्मपत्र पोर्टर साहब ने प्राप्त किया और उनकी पत्नी उसे लेकर अपने देश चली गयी।'

यह है आज से २०० वर्ष पूर्व की एक लाख रुपये से अधिक दक्षिणा वाली जन्मकुण्डली के फलादेश की स्थिति। इसका फल वेदवेदांगपारंगत विद्यासागर एक जगद्गुरु ने लिखा था। पुराण और ज्योतिष में मतभेद है, इस आक्षेप पर पाठक जी का विल्किन्सन साहब से वाद हुआ था। उस सम्बन्ध में पाठक जी का लिखा हुआ एक हिन्दी पत्र विषयान्तर होते हुए भी पठनीय है।

''स्वस्ति श्रीमत् सकलभूपालमौलिमुकुटमणिदीपनीराजितचरणसरोरुह श्रीलान्सिलट विल्किन्सन्साहेबप्रभुवर्येषु दुर्गाशंकरपाठककृतानेकाशीर्वादाः समुल्लसन्तु। आगे हजूरसों किताव आयी। हमकों तो सर्कार के मुलाकातसों बड़ी उमेद भई की अब हमारी बहुत बेहतरी होगी सो वृथा कलंक होता है और सेवाराम जोशी को चलते बखत हमने कहा था कि हमारे तरफ से सरकार को प्रार्थना करना की हमारे ऊपर प्रसन्नता रहे। आप धर्म के संस्थापक हैं। आपका प्रताप औ कीर्ति ईश्वर सर्वदा करे, यह प्रार्थना करते हैं। हम तो केवल सर्कार के हैं। विज्ञ प्रभुवर्येषु सन् १८३७ ईसवी।

दीक्षितमत—हमारे देश के महान् ज्योतिर्विद् श्री शंकर वालकृष्ण दीक्षित सायनवादी थे। उनसे एक विद्वान् ने कहा कि हम आपके सायनवाद को तब शुद्ध मानेंगे जब आप उसके द्वारा जन्मकुण्डली का सत्य फलादेश सुना दें। दीक्षित जी ने बताया कि 'यह काम तो सायन या निरयण किसी भी भान से साध्य नहीं है। ज्योतिषशास्त्र केवल कुण्डली का फल कहने के लिए नहीं बना है।'

•

अध्याय ६

मुहूर्तचिन्तामणिसमीक्षा

मुहूर्त वैदिक शब्द है। इसी के नाम पर मुहूर्तचिन्तामणि, मुहूर्तमार्तण्ड, मुहूर्तगणपति, मुहूर्तकल्पद्रुम और मुहूर्तसिन्धु दि अनेक मुहूर्त ग्रन्थ बने हैं पर इनका वैदिक मुहूर्तों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वैदिक मुहूर्तों के नाम और गुण समय-समय बदले जाते रहे और बाद में विदेशी लग्न, राशि, होरा और वार आदि ने उनका पद छीन लिया। आज हम दक्षिणा दे कर तिषी से शुभ मुहूर्त ढुंढ़वाते हैं पर ब्राह्मणग्रन्थों में सब मुहूर्त शुभ हैं। वहाँ अशुभ मुहूर्त ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। (देखिये ठ ७५) मुहूर्त ग्रन्थों में इस समय सबसे अधिक प्रचार मुहूर्तचिन्तामणि का है इसलिए यहाँ उसी एक ग्रन्थ की समीक्षा की रही है। थोड़े से विषय अन्य ग्रन्थों के भी हैं।

गणेश पूजा

इस ग्रन्थ के प्रथम श्लोक में एकदन्त गजानन की वन्दना की गयी है। धर्मशास्त्र और ज्योतिष, दोनों से सम्बन्धित ी के कारण गणेश का विवेचन आवश्यक है। हम बहुत दिनों से सूर्यचन्द्रादि ग्रहों को तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, पर्वत, ी आदि ऐसे जड़ प्राकृतिक दृश्यों को देव मान कर पूजते चले आ रहे हैं जिनमें हमारी प्रार्थना सुनने की और आहुति-पूजा की शक्ति नहीं है। शास्त्र उन जड़ पदार्थों को भी देव कहते हैं जो कुछ देते हैं किन्तु जड़ पदार्थों से प्रार्थना की अपेक्षा के विज्ञान से बहुत अधिक पाया जा सकता है। नदी-प्रवाह को रोक कर नहरें बनती हैं, बिजली बनती है, यंत्रालय चलते तथा सूर्य और वायु की ऊर्जा से बहुत कुछ पाया जाता है पर पूजा से कुछ नहीं। पूजा-प्रार्थना केवल देवों के देव विश्वनाथ करनी चाहिए पर वह भी सदाचार और सत्कर्मों से होती है, पुष्प-धूप आदि बाह्योपचारों से नहीं। आजकल हम वर्ष में क बार ऐसे देवदेवियों की पूजा में धन, शक्ति और समय का अपव्यय करते हैं जिन्हें जानने का प्रयास नहीं किया गया ईश्वर में या हममें श्रद्धा, मैत्री, दया शान्ति, क्षमा, सरस्वती, लक्ष्मी, श्री, महाकाली, वृत्ति, क्षुधा, तेज, पराक्रम, ज्ञान, ान, तुष्टि, पुष्टि क्रिया, मेधा, तितिक्षा और लज्जा आदि अनेक देवदेवियों का वास है पर उन भावों की मूर्तियाँ बना कर करने से कभी भी उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। जड़ प्राकृतिक दृश्यों और निराकार शक्तियों के अतिरिक्त हम अनेक देवों की भी पूजा करते हैं जो नितान्त काल्पनिक हैं। जिनकी सत्ता है ही नहीं। उनमें गणेश का स्थान लगभग सबसे ऊपर ज्योतिष ने अनेक काल्पनिक शुभाशुभ योगों के साथ काल्पनिक गणेश को भी बहुत महत्त्व दिया है। हर पंचांग के और हुई हर जन्मपत्री के मुख पृष्ठ पर सबसे ऊपर सिद्धिबुद्धि के साथ गणेश जी विराजमान रहते हैं। वेदों में गणपति शब्द ाया है पर उसका सम्बन्ध इन लम्बोदार गजानन से नहीं है। तीन मन्त्र देखें-

(१) निषुसीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किंचनारे महाकर्मं मघवन् चित्रमर्च (ऋग्वेद १०।११२।६)॥

(२) गणानां त्व गणपति...प्रियपतिं...निधिपतिं हवामहे। (यजुः २३।१६)।

(३) नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यो व्रातपतिभ्यो विश्वरूपेभ्यः (यजुः १६।२५)॥

यहाँ प्रथम मन्त्र में गणपति को मघवा कहा है। देवराज इन्द्र का नाम है। द्वितीय मन्त्र में अश्वमेघ के अश्व को या

परमात्मा को गणपति, प्रियपति और निधिपति कहा है। इसका गणेश से कोई सम्बन्ध नहीं है। तृतीय मन्त्र में बहुरूपधारी अनेक गणपतियों का वन्दन है। गृह्यसूत्रों में भी गणेश की स्तुति नहीं है। आजकल इस द्वितीय मन्त्र से गणेशजी की पूजा की जाती है पर उनका सम्बन्ध वैसा ही है जैसा शं नः से शनि का और उद्बुध्यस्व से बुध का। वेदों में नक्षत्रों के स्वामियों का वर्णन कई स्थलों पर है। उनमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, मित्र, वरुण, यम, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, भग, अर्यमा, अदिति, पितर, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, जल, त्वष्टा, वायु, वसु आदि वेद के सब मुख्य देव आ गये हैं पर गणेश नहीं हैं। यदि होते तो वे किसी न किसी नक्षत्र के स्वामी अवश्य बनाये जाते। बाद के ज्योतिष में भी वे किसी नक्षत्र के स्वामी नहीं हैं। चतुर्थी तिथि के स्वामी मान लिये गये हैं पर वह रिक्ता कही जाती है और सब शुभ कर्मों में निषिद्ध है। इससे यह सिद्ध होता है कि वे तब तक भीषण माने जाते थे।

वाल्मीकि रामायण और कालिदास के ग्रन्थों में शिव का विशद वर्णन है पर गणेश का नाम तक नहीं है। महाभारत में शिव का विस्तृत वर्णन है पर गणेश का नाम नहीं है। कुछ प्रतियों के प्रारंभ में लिखा है कि व्यास बोलते थे और गणेश लिखते थे पर उसके बाद गणेश की कहीं चर्चा नहीं है। भारतरत्न श्री पाण्डुरंग वामन काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में लिखा है कि "महाभारत के कई संस्करणों में गणेश के लेखक होने का उल्लेख नहीं है। गणेशपूजा ईसा की पाँचवीं–छठीं शताब्दी के बाद की है। कालिदास ने गणेश की चर्चा कहीं नहीं की है जब कि शिव उनके इष्टदेव थे।" पातंजल महाभाष्य में शैव शब्द है पर गणेश नहीं है। प्राचीन ग्रन्थों ने शिव के अनुचरों को ही गण और शिव को गणपति या गणेश कहा है परन्तु बाद के पुराणों में गणेश का वर्णन है।

विनायक–गणेश का एक नाम विनायक है। यह शब्द प्रारंभ में जातिवाचक था। मानवगृह्यसूत्र (२। १४) में शालकटंकट, कूष्माण्डराजपुत्र, उस्मित और देवयजन नामक चार विनायकों का वर्णन है। वहाँ इन चारों को पिशाचों की भाँति विघ्नकारी माना गया है। लिखा है कि इनसे प्रभावित नर–नारी पागलों सी चेष्टा करते हैं, बुरे स्वप्न देखते हैं, इनके कारण विद्यार्थियों को विद्या नहीं मिलती, व्यापारियों को धन नहीं मिलता, कन्याओं को वर नहीं मिलते, युवतियों को पुत्र नहीं मिलते, विद्वानों को सम्मान नहीं मिलता और कृषकों को अन्न नहीं मिलता। वराहपुराण के अनुसार कर्मों में विघ्न डालने के लिए ही विनायक की सृष्टि की गयी थी। शंकर ने गणेश को क्रूर दृष्टि वाले विनायकों का नेता बना दिया। अग्नि पुराण के अनुसार भी त्रिदेवों ने मानवों की उद्देश्यपूर्ति में विघ्न डालने के लिए ही गणेश की रचना की और उन्हें गणपति बना दिया (२६५)।

विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थ विनियोजितः। गणानामाधिपत्ये च केशवेशपितामहैः॥
स्वप्नेवगाहतेत्यर्थं जले मुण्डांश्च पश्यति। विनायकोपसृष्टस्तु संसीदत्यनिमित्ततः॥
विमना विफलारंभः क्रव्यादानधिरोहति। कन्या वरं न चाप्नोति न चापत्यं वरांगना॥

अर्थात् विनायक से ग्रस्त मनुष्य स्वप्न में नरमुण्डों को देखता है, निष्कारण भयभीत होता है, जल में डूबता है, उदास और निष्फल रहता है तथा सड़ा मांस खाने वाले पक्षियों पर चढा सा अनुभव करता है। न सुकन्या वर पाती है न सुनारी सन्तान। ब्रह्मपुराण ४०।११४ में भी विनायक को यज्ञों में विघ्न डालने वाला एक दुष्ट जीव कहा है। ये ही विनायक आगे चल कर चार से एक और विघ्नकारक से विघ्ननाशक हो गये। पहले विश्वास था कि एक के प्रसन्न होने पर चारों प्रसन्न हो जायेंगे पर बाद में वह एक सौम्य देव मान लिया गया। फिर भी उससे यह प्रार्थना की जाती थी कि आप कृपया हम से दूर रहें। उसके पार्षद–पार्षदियाँ भी बन गयीं और ज्येष्ठा उसकी सहचरी मानी जाने लगी। ज्येष्ठा का मुख हाथी सरीखा है, उसके रथ को सिंह खींचते हैं और उसकी भी भीषण पार्षदियाँ हैं। यद्यपि विनायक बाद में भूपति, भूतपति और भुवनपति हो गये फिर भी पुराण उनकी पुरानी कथाएँ लिखते रहे। अब विनायक से ज्येष्ठा का सम्बन्ध विस्मृत हो गया है।

जन्मकथाएँ–पुराणों में गणेश के जन्म की परस्पर–विरुद्ध एवं असंभव अनेक कथाएँ हैं। उनमें से यहाँ कुछ लिखी जा रही हैं। (१) स्कन्द पुराण (माहेश्वरखण्ड अध्याय ६) का कथन है कि समुद्र मन्थन से विष निकलने पर विष्णु, ब्रह्मा, आदि देव व्याकुल हो गये और पूरा ब्रह्माण्ड जलने लगा तो शिव के पूछने पर गणेश ने बताया कि मेरा नाम विघ्नेश है, मेरी और आप की पूजा न करने वालों के कार्य में मैं इसी प्रकार विघ्न डालता हूँ, यह मेरा विनोद है।

कालकूटाग्निनादग्धोऽभूद् विष्णुर्नीलवणकः....॥
मया विघ्नं विनोदेन कृतं तेषां सुदुर्जयम्।
नार्चयन्ति च ये त्वां मां तेषां क्लेशोधिको भवेत्॥

यहीं यह भी लिखा है कि शिव ने क्षीरसागर के तट पर स्थित ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि देवों से कहा कि तुम सब पापी और अहंकारी हो। इसी से कालमुख में पड़े हो। आज से जान लो कि मेरी, पार्वती की और गणेश की पूजा किये बिना कार्यरम्भ करने वालों की यही गति होती है। अब से फिर ऐसी मूर्खता न करना। गणेश ने ही विष्णु को काला कर दिया है और उसी ने तुम्हें मरने से बचाया भी है।

प्रादुर्बभूव साम्बोथ विष्णुना प्रार्थितः शिवः।
आह सर्वेप्यधर्मिष्ठा यूयं पण्डितमानिनः॥
कार्यसिद्धिर्भवेद्येन भवद्भिर्विस्मृतं तु तत्।
तस्मात् कालमुखे सर्वे पतिता नात्र संशयः॥
येन नीलीकृतो विष्णुर्येन सर्वे च रक्षिताः।
तस्यार्चनविधिः कार्यो गणेशस्य महात्मनः॥

अन्य पुराणों में समुद्र से १४ रत्नों की उत्पत्ति का वर्णन है पर इसमें उनके अतिरिक्त गणेश की कृपा से भाँग, धतूरा, लहसुन, गाजर और मदिरा आदि भी निकले हैं अतः इन रत्नों को त्याज्य मानना धर्म विरुद्ध है।

(२) इसी पुराण की कथा है–शिव को पता नहीं था कि गणेश पार्वती का पुत्र है इसलिए दोनों में एक दिन भीषण युद्ध हो गया। शिव ने हाथी पर सवार गणेश का गला त्रिशूल से काट दिया पर बाद में पार्वती की प्रार्थना से द्रवित होकर गणेश को जिला दिया अर्थात् उसके कटे सिर पर उसी हाथी का सिर लगा दिया।

गजारूढस्य तस्याभूच्छिवेन सह संगरः।
त्रिशूलेनाहनच्छंभुः सगजं तमपातयत्॥
शिवा प्राह...प्रहस्य तमजीवयत्।
अयोजयद् गजमुखं तदा जातो गजाननः॥

(३) स्कन्दपुराण में यह भी लिखा है कि जब गणेश जी गर्भ में थे, सिन्दूर नाम के दानव ने उनकी माता के उदर में प्रविष्ट होकर उनका गला काट दिया और बाद में शिव ने गजासुर का सिर काट कर उस पर लगा दिया। शिव का नाम इसी से गजारि या गजान्तक है। (४) मत्स्यपुराण (अ० १५४) का कथन है कि एक बार पार्वती ने अपने शरीर में सुगन्धित तेल और उबटन लगा कर उसके चूर्ण से विनोद में एक ऐसा बालक बनाया जिसका मुख हाथी सदृश था। बाद में पार्वती ने उस जीवित पुत्र को बहती गंगा में फेंक दिया तो उसने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि उससे तीनों लोक परिपूर्ण हो गये। तब पार्वती और गंगा, उसे पुत्र–पुत्र कह कर पुकारने लगीं। उसके बाद पितामह ने उसे भीषण विनायकों का स्वामी बना दिया।

कदाचिद्गन्धतैलेन गात्रमभ्यज्य शैलजा।

चूर्णैरुद्वर्तयामास तनुं चक्रे गजाननम्॥
कायेनातिविशालेन जगदापूरयत्तदा।
विनायकाधिपत्यं च ददावस्य पितामहः॥

व्यास जी कहते हैं कि यह कवियों की कल्पना नहीं, शंकर की लीला है। शिवपुराण में लिखा है कि पुराणों में गणेश के जन्म की अनेक कथाएँ हैं, परस्पर विरुद्ध हैं और वे बालकों के जन्म की प्राकृतिक विधि के विपरीत हैं फिर भी उनसे शंका मत करो। कल्पभेद से समाधान कर लो अर्थात् यह मान लो कि एक कल्प में गणेश का जन्म एक प्रकार से और दूसरे कल्प में दूसरी विधि से हुआ था। अव मैं श्वेतकल्प वाली गणेशोत्पत्ति लिख रहा हूँ। इसमें सन्देह करने पर घोर पाप लगेगा।

कल्पभेदाद् गणेशस्य जनिः प्रोक्ता महामते।
सन्देहो नात्रकर्तव्यः शंकरः सूतिकृन्मुने॥

(५) एक दिन पार्वती की जया विजया नाम की सखियों ने उनसे कहा कि शिव के तो आज्ञा परायण अगणित गण हैं किन्तु हमारे पास एक भी नहीं अतः आप एक गण रचें। पार्वती एक बार नहा रही थीं और नन्दी बाहर द्वार पर बैठा था किन्तु उसके मना करने पर भी शिव भीतर घुस आये। तब पार्वती लजा कर उठ गयी और रुष्ट हो गयी। सखियों की बात मान कर उन्होंने शरीर के मल से एक दीर्घकाय सुन्दर पुरुष बनाया, उसे द्वारपाल पद पर नियुक्त किया और एक लाठी (यष्टि) दे दी। दूसरे दिन पार्वती के स्नान के ही समय शिव पुनः आये तो उसने रोका। शिव ने कहा कि ओ मूर्ख बालक! यह मेरा घर है, पार्वती मेरी पत्नी है तो तू रोक क्यों रहा है? किन्तु गणेश ने शिव पर दो वार लाठी चला दी। तव उन्होंने अपने गणों को बुलाया। गणेश की लाठी से किसी गण का हाथ टूटा, किसी की जाँघ टूटी, किसी की पीठ फटी और किसी का सिर फटा तो वे ऐसे भागे जैसे सिंह को देख कर मृग भागते हैं। कोलाहल सुन कर पार्वती ने सखियों को बाहर भेजा तो वे बोली कि बहुत अच्छा हुआ।

ताडितस्तेन यष्ट्या हि गणेशेन महेश्वरः।
स्वगृहं यामि रे बाल निषेधसि कथं हि माम्॥
मूर्खोसि त्वं न जानासि शिवोहं गिरिजापतिः।
कृत्वा कोपं गणेशस्तु दण्डेनाताडयत्पुनः॥
केषांचित्पाणयश्छिन्ना गणानां पृष्ठकानि च।
सिंहं दृष्टवा गताः सर्वे मृगा इव दिशो दश॥

तब शिव के बुलाने पर ब्रह्मा जी आये किन्तु गणेश ने उनकी मूँछ, दाढ़ी नोच डाली। ब्रह्मा हाथ जोड़ कर बोले कि हे देव! क्षमा करें, मैं युद्ध के लिए नहीं बल्कि सन्धि कराने आया हूँ किन्तु गणेश ने परिघ से मार मार कर उनको और साथियों को भगा दिया। तब कुपित शिव ने विष्णु को, देवों को और कार्तिकेय को बुलाया। यह देख कर कुपित पार्वती ने दो भीषण शक्तियाँ रचीं। एक काले पर्वत सरीखी और दूसरी बिजली सदृश थी। गणेश ने उनकी सहायता से ऐसा युद्ध किया कि पृथ्वी काँप उठी, सागर हिलने लगे, पर्वत गिरने लगे और शिव के हाथ से पिनाक त्रिशूल छूट गये। गणेश विष्णु से लड़ रहे थे, इसी बीच शिव ने उनका सिर काट दिया और नारद ने यह बात देवी को बता दी।

श्मश्रूण्यवाकिरत्तस्य गणेशं स तदाब्रवीत्।
क्षम्यतां शान्तिकर्ताहं न युद्धार्थं समागतः॥

एको बालोखिलं सैन्यं लोडयामास दुस्तरम्।
कम्पिता पृथिवी तत्र समुद्रसहिता तथा॥

तब देवी ने नूतन शक्यिों का सृजन किया। उन्होंने देवों और ऋषियों को चबाते हुए प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया। तब सबकी प्रार्थना सुन कर देवी ने कहा कि मेरा पुत्र जी जाय और सबका पूज्य हो जाय तो मैं यह संहार रोक दूँगी। शिव ने गणों से कहा कि उत्तर दिशा में जाओ और जो प्राणी सबसे पहले मिले उसका सिर ले आओ। वे हाथी का सिर ले आये, वह गणेश के सिर पर जोड़ दिया गया और गणेश सर्वश्रेष्ठ देव बना दिये गये।

(६) लिंग पुराण के अनुसार देवों की प्रार्थना स्वीकार कर दैत्यों के शुभ कार्यों में विघ्न डालने के लिए शिव ने स्वयं ही त्रिशूलधारी गजानन रूप धारण कर लिया था (१।१०४)॥

ततस्तदा पिनाकधृक् गणेश्वरं वपुर्दधार शंकरः....त्रिशूलपाशधारिणं...॥

(७) वराहपुराण (अध्याय २३) का कथन है कि एक बार पृथ्वी पर सब मनुष्य सदाचारी हो गये तो यमराज को कोई काम नहीं रह गया क्योंकि नरक में कोई आता ही नहीं था। तब देवों के अनुरोध पर महादेव ने धर्मकार्यों में विघ्न डालने के लिए अपने शरीर से एक तेजस्वी कुमार उत्पन्न किया। उमा उसके सुन्दर रूप को निर्निमेष पीने लगी। तब स्त्रीजन्य चांचल्य और कुमार के मोहक रूप को देख कर शिव ने ईर्ष्या वश उसको लम्बोदर, गजानन तथा अन्य अंगों से विकार युत होने का शाप दे दिया।

विघ्नार्थमवशिष्टार्थं हसतः परमेष्ठिनः परमेष्ठिगुणैर्युक्तः कुमारोऽभासयद्दिशः।

तं दृष्ट्वा परमं रूपं कुमारस्य महात्मनः।
उमाऽनिमेषनेत्राभ्यां तमपश्यच्च भामिनी॥
तं दृष्टा कुपितो देवः स्त्रीभावं चंचलं तथा।
मत्वा कुमाररूपं च शोभनं मोहनं दृशाम्॥
ततः शशाप तं देवं गणेशं परमेश्वरः।
कुमार गजवक्त्रस्त्वं प्रलम्बजठरो भव॥

इस पुराण के अनुसार विनायक कई हैं, वीर हैं, क्रूर हैं, ब्रह्मा, विष्णु, शिव द्वारा शुभ कार्यों को नष्ट करने के लिए बनाये गये हैं और गणेश उनके पति हैं।

विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः।
गणानामाधिपत्येन केशवेशपितामहैः॥

(८) ब्रह्मवैवर्तपुराण (गणपतिखण्ड अध्याय ४) की कथा है कि एक बार पुत्राभाव से खिन्न पार्वती को शिव ने पुत्र प्राप्ति के लिए एक वर्ष तक कृष्ण सम्बन्धी पुण्यक व्रत करने का आदेश दिया। शिव ने कहा कि जैसे वारों में रविवार फलों में आम और मासों में मार्गशीष सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार व्रतों में कृष्णव्रत महान् है। इसी के प्रभाव से अदिति ने वामन को, इन्द्राणी ने जयन्त को, उत्तानपाद ने ध्रुव को, अत्रि ने चन्द्र को, सूर्य को, सूर्य ने मनु को, अंगिरा ने बृहस्पति को और भृगु ने शुक्र को पाया था। ऐसा कह कर कृष्णभक्त शिव ने पार्वती को कृष्णमन्त्र की दीक्षा दी और व्रतारंभ हो गया। पार्वती ने मंगलकलश में गोपांगनाओं से घिरे तथा राधा के वक्षस्थल से चिपके कृष्ण की स्थापना की, उनको देखा और मन से वैसे ही पुत्र की कामना की। इसके बाद वर्ष भर विधिवत् कृष्ण की आराधना की, व्रत निभाया, अन्तिम दिन ब्राह्मणों को भाँति भाँति

के मिष्ठान्न खिलाये तथा रत्न, मोती, वस्त्र अलंकार आदि के दान किये।

व्रतं त्वं पुण्यकं नाम वर्षमेकं हरेः कुरु।
आवाह्याभीष्टदेवं तं श्रीकृष्णं मंगले घटे॥
गोपांगनापरिवृतं राधावक्षः स्थलोज्वलम्।
मनसा वरयामास पुत्रं सा च तथाविधम्॥

इसके बाद पार्वती जी मुस्कराती हुई रात में शिव के साथ सोईं तो शिव का वीर्यपात होने से थोड़ा पहले कृष्ण भगवान् अतिशय वृद्ध और दुर्बल ब्राह्मण का रूप धारण कर हाथ में छड़ी लिये रतिद्वार पर पहुँच गये और उच्च स्वर में प्रार्थना करने लगे कि हे माता! हे महादेव! आप के यहाँ नानाविध मिष्ठान्नों से युत ब्राह्मणभोजन का समाचार सुन कर मैं भूखा वृद्ध ब्राह्मण दूर से आ रहा हूँ। कृपया भोजन करा दें। उस दीन वचन को सुन शंकर उठ पड़े, उनका वीर्य शय्या पर गिर गया, पार्वती भी उठीं , साड़ी पहनने लगीं और दोनों रतिगृह के द्वार पर आ गये। उन्होंने ब्राह्मण को भोजन कराया और आशीर्वाद पाया कि कृष्ण हर कल्प में गणेश के रूप में आप के पुत्र होंगे। वे इस समय भी आप की गोद में आ चुके हैं। इसके बाद ब्राह्मण रूपी कृष्ण बालक बन कर पार्वती की शय्या पर जाकर शिववीर्य में मिल गये और खेलने लगे। उनका सुन्दर शरीर कामदेव को भी मोहित करने वाला था।

व्रतं समाप्य सा दुर्गा दत्त्वा दानानि सस्मिता।
रहसि स्वामिनां साकं सुष्वाप परमेश्वरी॥
रेतःपतनकालेऽसौ विष्णुरूपं विधाय च।
आजुहाव महादेवमतिवृद्धोन्नयाचकः॥
तस्य काकुस्वरं श्रुत्वा शिवस्योत्तिष्ठतो मुने।
पपात वीर्यं शय्यायां न योनौ प्रकृतेस्तदा॥
उत्तस्थौ पार्वती त्रस्ता सूक्ष्मवस्त्रं पिधाय च।
आजगाम रतिद्वारं पार्वत्या सह शंकरः॥
तल्पस्थे शिववीर्ये च मिश्रितः संबभूव सः।
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः॥

ब्राह्मण रूपी कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर शंकर पार्वती उन्हें ढूँढ़ने लगे तो आकाशवाणी हुई कि भीतर जाओ और पुत्र को सँभालो। पार्वती ने पुत्र को देख कर आनन्द सिन्धु में मग्न हो कर उसका चुम्बन किया, शिव को बुलाया और शिव भी उसे गोद में ले कर प्रसन्न हो गये। शिव ने, हिमालय ने और सूर्य, विष्णु, इन्द्र, कुबेर, धर्म आदि देवों ने ब्राह्मणों को गजराज, अश्व, गाय, कोटि रत्न और सोना आदि का दान दिया। उन दानों को ले जाने में ब्राह्मण और वन्दीगण थक गये तथा बड़ी कठिनाई से घर ले जा सके। इधर गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, देव दुन्दुभी बजाने लगे और उधर कृष्ण का नाम जपते हुए सूर्य के पुत्र महायोगी शनैश्चर आ गये। वे बड़े सुन्दर थे, साँवले थे और पीताम्बर पहने थे। भीतर पार्वती जी गोद में पुत्र को लेकर नर्तकियों का नृत्य देख रही थीं। शनि ने उन्हें नमस्कार किया तो पार्वती ने पूछा कि हे ग्रहराज! आप मुझे और शिशु को देख क्यों नहीं रहे हैं? नेत्र क्यों मूंदे हैं? शनि ने कहा कि हे देवि! मैं विषयों से विरक्त हूँ, तपस्या में रत हूँ, बाल्यकाल से ही कृष्ण का भक्त हूँ और सदा उनका ध्यान किया करता हूँ। मेरा विवाह चित्ररथ गन्धर्व की कन्या से हुआ है (इसके बाद की कथा पीछे पृष्ठ १६६ में पढ़ें)। सारांश यह कि शनि की दृष्टि से गणेश का सिर कट गया और उस पर हाथी का सिर लगा दिया गया। हरि ने बालक के विघ्नेश गणेश, हेरम्ब, एकदन्त और गजानन आदि आठ नाम रखे, अग्रपूज्य

बनाया, पृथ्वीदेवी ने उसे वाहन के लिए एक चूहा दिया और हरि ने अपनी कौस्तुभ माला उसके गले में डाल दी।

ददौ गले बालकस्य कौस्तुभं च स्वभूषणम्। ब्राह्मणेभ्यो ददौ तत्र
कोटिरत्नानि शंकरः॥ वेदांश्च पाठयामास पुराणानि रमापतिः।
विघ्नेशं च गणेशं च हेरम्बं च गजाननम्। लम्बोदरं चैकदन्तं सूर्पकर्णं विनायकम्॥
ब्रह्मवैवर्त पुराण गणपति खण्ड अध्याय ४–१२॥

शंकाएँ–(१) यहाँ लिखा है कि जैसे रविवार सर्वश्रेष्ठ वार है उसी प्रकार कृष्णव्रत सर्वश्रेष्ठ व्रत है परन्तु आजकल रविवार पापवार माना जाता है तो क्या कृष्णव्रत भी वैसा ही है? (२) क्या कृष्ण सबसे बड़े देव हैं? (३) क्या कृष्ण के समय वार थे? क्या वार का वर्णन करने वाला यह ग्रन्थ पुराना है? (४) यह पुराण कहता है कि शिव कृष्ण के भक्त हैं और उनकी गोपी बन गये हैं। गोसाईं जी कहते हैं कि राम अपने एक अंश से करोड़ों शिवों को बनाते हैं, सीता अपने अंश से करोड़ों उमाएँ बनाती हैं, शिव राम के दास हैं और राम उन्हें नचाते हैं।

उपजहिं जासु अंश ते नाना। विष्णु विरंचि शंभु भगवाना॥
जग पेखन तुम देखन हारे। विधि हरि शंभु नचावन हारे॥
उपजहिं जासु अंश गुनखानी। अगनित उमा रमा ब्रह्मानी॥

भागवत के मत में शिव विष्णु दासों के प्रधान हैं। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार शिव दुर्गा के पुत्र हैं, केवल उन्हीं की उपासना करते हैं तथा गणेश और मुद्गल पुराणों के अनुसार शिव गणेश के पुत्र और दास हैं तो हम किस पुराण को सत्य कहें? (५) यहाँ लिखा है कि कृष्णव्रत के प्रभाव से जयन्त, ध्रुव, वामन, चन्द्र, बृहस्पति, मनु और शुक्र आदि का जन्म हुआ है तो क्या ये सब कृष्ण के बाद पैदा हुए हैं? (६) पार्वती ने एक वर्ष तक राधा के शरीर से चिपके कृष्ण का ध्यान किया तो भागवत, महाभारत और हरिवंशपुराण आदि ने राधा का नाम एक बार भी क्यों नहीं लिखा? (७) कार्तिकेय सदृश पुत्र के रहते पार्वती पुत्र की भूखी क्यों थी? (८) महाभारत में लिखा है कि कृष्ण ने शंकर–पार्वती की उपासना से प्रद्युम्न पुत्र को पाया तो उपासक कौन है? (९) कृष्ण ने शिवसंभोग में बाधा क्यों डाली और उनका वीर्य भूमि पर क्यों गिरवाया? (१०) क्या कृष्ण ही गणेश हैं? (११) वेदों में अम्बिका और शिव की चर्चा है पर सीताराम और राधाकृष्ण की नहीं तो अम्बिकाशिव इनके पुत्र और दास कैसे हो गये? (१२) इन मिथ्यावादों से हिन्दुत्व का ह्रास होगा या विकास? (१३) यह समन्वय है कि समन्वय की हत्या? (१४) क्या वीर्यपात होते ही रजःसंयोग विना उससे क्षण भर में बच्चे पैदा होने लगते हैं? (१५) शनि नेत्र बन्द किये रहते हैं तो शिव के घर कैसे पहुँच गये? (१६) ज्योतिष ने उनकी १, २, ३, ४ पादों की दृष्टि का वर्णन क्यों किया है? (१७) शनि जब शिव के घर आये तब क्या वे अपनी कक्षा में नहीं थे? (१८) क्या ग्रहों या देवों का आवागमन किसी ने देखा है? (१९) क्या शनि ग्रहराज है? (२०) क्या उसको पत्नी का शाप लगता है? (२१) क्या कोई पत्नी अपने पति को ऐसा शाप दे सकती है? (२२) कृष्ण ने अपने ऐसे भक्त को शाप से बचाया क्यों नहीं? (२३) क्या लाभ हुआ कृष्ण के ध्यान से? (२४) पत्नी ने शाप दिया कि जिसे देखोगे उसका गला कट जायेगा। ऐसी नासमक्ष नारी के शाप में शक्ति कैसे आ गयी? (२५) जिनके गले कट रहे हैं उनके क्या अपराध हैं? (२६) इस शाप से शनि का क्या बिगड़ेगा? (२७) गणेश का सिर गोलोक में क्यों चला गया? (२८) क्या कृष्ण की आराधना का यही फल होता है? (२९) कृष्ण या विष्णु ने गजराज की भाँति गणेश का नया सिर पैदा क्यों नहीं कर दिया? (३०) क्या मानव के गले पर हाथी का सिर लग सकता है? (३१) पृथ्वी ने भारी शरीर वाले लम्बोदर और गजानन गणेश को चढ़ने के लिए चूहा क्यों दिया? (३२) गजमुख गणेश जी वेदमन्त्र कैसे बोलते हैं? क्या हाथी के मुख से शुद्ध उच्चारण हो सकता है? (३३) गणेश जी अपनी दोनों पत्नियों और बच्चों से बात कैसे करते हैं, उन्हें प्यार कैसे करते हैं?

(६) ब्रह्मवैवर्तपुराण में इसी के आगे १८वें अध्याय में लिखा है कि एक बार शिव ने सूर्य को पृथ्वी के एक कोने में त्रिशूल से घायल कर गिरा दिया था। तव सूर्य के पिता कश्यप ने शाप दिया था और उसी से गणेश का गला कटा था।

एकदा शंकरः सूर्यं जघान परमक्रुधा।
जहार चेतनां सूर्यो रथाच्च निपपात ह॥
कृत्वा वक्षसि तं शोकाद् विललाप च कश्यपः।
त्वत्पुत्रस्य शिरश्छिन्नमेवमेव भविष्यति॥

शंका–(१) सूर्य पृथ्वी में कैसे समायेगा? (२) पशु, पक्षी, मानव जीवित कैसे बच जायेंगे? (३) कश्यप ने सूर्य को गोद में कैसे लिया? (४) सूर्य अदिति के उदर में कैसे रहा? (५) क्या इस घटना के समय भारत में राशियों का प्रचार था? (६) शिव ने मरे सूर्य को जिला दिया तो गणेश को मानवाकार क्यों नहीं बना दिया?

गजमुख होने के अन्य हेतु

(१०) लिखा है कि विष्णु ने गणेश को जिलाने के लिए पुष्पभद्रा नदी के तट पर अपनी सैकड़ों हथिनियों के बीच में लेटे गजराज का सिर काट दिया पर हथिनियों का करुण रुदन सुनकर गजराज के शरीर पर दूसरा मस्तक तैयार कर दिया। इसके आगे २०वें अध्याय में लिखा है कि एक बार रंभा कामातुर होकर कामदेव के आश्रम में जा रही थी तो उसे मार्ग में ही इन्द्र मिल गये। रंभा ने अपनी मुस्कराहट से, कटाक्ष से, स्तन और जाँघों के प्रदर्शन से तथा कामाग्नि को प्रदीप्त करने वाले वचनों से इन्द्र का मन मोह लिया। कामशास्त्र विशारद इन्द्र ने उसे पकड़ लिया, पुष्पशय्या पर सुला दिया, नंगी किया और उससे नाना प्रकार की रतिक्रियाएँ की। इसी बीच वहाँ दुर्वासा मुनि आ गये और उन्होंने पारिजात के पुष्पों की एक सुगन्धित माला इन्द्र को दे दी। इन्द्र ने वह माला रंभा को दी और रंभा ने इन्द्र के गज के मस्तक पर रख दी। इस कारण इन्द्र की श्री भ्रष्ट हो गयी और रंभा देवलोक में चली गयी। बाद में विष्णु ने उसी गज का सिर काट कर गणेश के गले पर बैठा दिया।

ददर्श कामुकीं रंभां गच्छन्तीं मदनाश्रमम्।
स्मेराननकटाक्षेण स्तनोरूदर्शनेन च॥
कामाग्न्याहुतिवाक्येन जहारेन्द्रस्य चेतनम्।
ज्ञात्वा भावं स्मरार्तायाः स्मरशास्त्रविशारदः॥
गृहीत्वा तां पुष्पतल्पे विजहार तया सह।
चुचुम्ब सुभगां नग्नां विपरीतादिकं कृतम्॥
पारिजातप्रसूनं तद्रंभायै दत्तवांस्तया।
गजस्य मस्तके न्यस्तं शक्रो भ्रष्टः श्रियाऽभवत्॥
हरिस्तन्मस्तकं छित्वा युयोजेशस्य बालके।
शक्रं भ्रष्टश्रियं दृष्ट्वा सा जगाम सुरालयम्॥

यहाँ शंका होती है कि एक ही ग्रन्थ के एक ही खण्ड में गजमस्तक की दो कथाएँ कहाँ से आ गयीं? (१) विष्णु भगवान् गज का सिर पुष्प–भद्रा नहीं के तट से ले आये थे या इन्द्र के पास से? (२) इन्द्र के हाथी का नाम ऐरावत है। क्या विष्णु ने उसी का सिर काट कर पुनः दूसरा सिर पैदा कर दिया था? (३) क्या इन्द्र हाथी पर बैठते हैं या मेघ ही इरावान् हाथी है? (४) रंभा इन्द्र की अप्सरा है, सदा उनके पास रहती है और कामदेव भी वहीं रहते हैं तो वह देवलोक से बाहर कहाँ जा रही थी? (५) क्या रंभा इन्द्र के लिए अपरिचित नयी नारी थी? (६) यह पुराण कृष्णभक्ति का ग्रन्थ है या अश्लीलतम

रतिपुराण है? कृष्ण योगेश्वर हैं या भोगेश्वर? क्या उन्होंने यही करने के लिए अवतार लिया था?

(११) पद्मपुराण का कथन है कि एक बार उमा-शंकर घर में जुआ खेल रहे थे। उमा ने कोलाहल सुना और झाँक कर देखा कि कुछ गणेश खेल रहे हैं। वे स्थूल थे, कृश थे, लम्बे थे, नाटे थे, नंगे थे, गज़कर्ण थे, गोकर्ण थे, हाथी, सिंह, भेंड़ तथा बकरे सदृश मुख वाले थे, मांस-मज्जा खा रहे थे, रक्त पी रहे थे और संख्या में अगणित थे। पार्वती ने उनमें से एक वीरक को अपना पुत्र मान लिया।

शंकरोक्षैः प्रियासार्धं विहर्तुमुपचक्रमे।
गवाक्षान्तरमासाद्य प्रेक्षते चकिताननाा॥
अमी गणेशाः क्रीडन्ते शैलेस्मिन् मत्प्रियाः सदा।
ते कृशा वपुषा स्थूला ह्रस्वादीर्घा महोदराः॥
गोकर्णा गजकर्णाश्च नग्ना मेषाजरूपिणः।
मेदाहारा रुधिरपा सर्वभक्षा अभोजनाः॥

[१२] गणेश पुराण के गणेश

हमारे यहाँ किसी भी देव की प्रशंसा (स्तुति) तब तक पूरी नहीं होती जब तक ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्रादि देव उसके चरणों के दास न बना दिये जायँ। सरस्वती की स्तुति में यह कहना अनिवार्य है कि वे ब्रह्मा, अच्युत, शंकर आदि देवों से वन्दिता हैं। इसलिए महान् समन्वयवादी कहे जाने वाले गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिख दिया कि गणेश सबसे पहले पूजे जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे दिन-रात राम राम जपा करते हैं क्योंकि उसकी महिमा जानते हैं।

या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः यदा वन्दिता॥ न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा॥
विष्णुः शरीरग्रहणं अहमीशान एव च। कारितास्ते यतोतस्त्वां कः स्तोतु...(दुर्गासप्तशती)॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभावू (तुलसी कृत रामचरित मानस)॥

ठीक इसी प्रकार गणेशपुराण कहता है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव बार-बार मुझसे पैदा होते हैं, मुझमें समाते हैं, मेरी माया से मोहित हैं और राम मेरा भजन करके महान् बने हैं। इन सब के लोकों में पहुँचे मनुष्यों का पतन होता रहता है पर गणेशलोक में पहुँचने पर मनुष्य सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं। मैं ही सृष्टि का पालक, उत्पादक और संहारक हूँ और मेरे शरीर में अनेक ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, समुद्र, पर्वत और देव वैठे हैं। मेरी शरण में आने पर दुराचारी शूद्र भी मुक्त हो जाते हैं, भक्त ब्राह्मणादिकों की तो बात ही निराली है।

अहमेव जगत्सर्वं पालयामि सृजामि च।
कृत्वा नानाविधान् वेषान् संहरामि स्वलीलया॥
मत्त एव महाबाहो जाता विष्ण्वादयः सुराः।
मय्येव च लयं यान्ति प्रलये ते युगे युगे॥
मोहयत्यखिलान् माया श्रेष्ठान् मम नरानमून्।
ब्रह्माविष्णुशिवेन्द्राणां लोकान्प्राप्य पुनः पतेत्॥
यो मामुपैत्यसन्दिग्धं पतनं तस्य न क्वचित्।
वीक्षेहं तव देहेस्मिन् देवानृषिगणान् पितृन्॥
ब्रह्माविष्णुमहेशेन्द्रान् द्वीपसागरभूभृतान्।

मदाश्रये विमुच्यन्ते पापिनः किं द्विजादयः॥

(१३) मुद्गलपुराण–इसमें २४ सहस्र श्लोक हैं। इसे मुद्गल महर्षि ने दक्ष प्रजापति को सुनाया है। मारीच महापुराण में मुद्गलाचार्य की कथा विस्तार से लिखी है। ये अंगिरा मुनि के सामने आकाश से मुद्गर के रूप में गिरे थे और अंगिरा की पत्नी श्रुति ने इन्हें पुत्र मान लिया था। अत्रि की कन्या आत्रेयी इनकी पत्नी थीं। इसमें पार्वती से शिव कहते हैं कि गणेश जी का वास्तविक नाम गुणेश है क्योंकि वे सब गुणों के स्वामी हैं। अब मैं गणेश को नमस्कार कर तुम्हें उनकी कथा सुना रहा हूँ। हे देवि! गणेश जी आनन्द की मूर्ति हैं, मेरे हृदय में स्थित हैं और मैं दिन–रात उन्हीं का ध्यान करता हूँ। चारों वेदों ने बहुत दिनों तक घोर तप करने के बाद विघ्नों के स्वामी और विघ्नों के निवारक का दर्शन पाया। विराट् पुरुष गणेश का ध्यान करके ही सृष्टि का आरम्भ करते हैं। ब्रह्मा जी गणेश की नाभि से और विष्णु मुख से पैदा हुए हैं। मेरा जन्म उनके नेत्र से हुआ है।

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि यं ध्यायामि दिवानिशम्।
गणेशो हृदि संस्थो में स्वानन्दावासिनं परम्॥
गणेशाय नमस्कृत्वा कथयामि कथानकम्।
गुणानामधिपोऽयं वै गुणेशस्तेन कथ्यते॥
वेदैश्चापि कृतं घोरं तपः परमदारुणम्।
ततः प्रत्यक्षतां यातो विघ्नेशो विघ्नवारणः॥
गणेशं मनसा ध्यात्वा वैराजः सृष्टिमारभत्।
जातो नेत्रादहं तस्य नाभेर्ब्रह्मा हरिर्मुखात्॥

ब्रह्मा, विष्णु शिव, सूर्य और देवी पञ्चदेव कहे जाते हैं। इन्हें लाखों वर्ष तप करने के बाद गजमुख, लम्बोदर, चतुर्बाहु, शुण्डधारी, मूषकवाहन, शूर्पकर्ण, त्रिनेत्र और सिद्धि–बुद्धि नाम की पत्नियों से युत गणेश का दर्शन हुआ किन्तु जब दर्शन हुआ उस समय प्रलयाग्नि के समान और अनन्त कोटि सूर्यतुल्य उनके तेज को देख पाँच देव घबरा गये। जो मूर्ख गणेश के अतिरिक्त अन्य किसी देव की पूजा करते हैं वे नारकी हैं और उन्हें सिद्धियाँ कभी मिल नहीं सकतीं। वे पापी अमृत का परित्याग कर सूखा अन्न खा रहे हैं।

अनन्तकोटिसूर्यौजा देवानामखुवाहनः।
दिव्यवर्षसहस्त्रेणप्रत्यक्षो भूच्चतुर्भुजः॥
प्रलयाग्निसमं दृष्ट्वा तं भीतास्तेऽभवंस्तदा।
यो गणेशं परित्यज्य सिद्धिमिच्छति मूढधीः।
सुधां सन्त्यज्य रूक्षान्नं याचते स तु नारकी॥

शंका–(१) क्या वेद तप करते हैं? (२) क्या पुस्तकें चेतन देव हैं? (३) वेदों ने गणेश की उपासना की तो इस लम्बोदर गजानन गणेश का वेदों में वर्णन क्यों नहीं है?

गणेश के सर्वश्रेष्ठ भक्त राम और स्कन्द

भक्तियाँ नव प्रकार की होती हैं। गणेश की नवधा भक्तियों में कुछ देव अग्रगण्य हैं। मुद्गलपुराण के अनुसार वन्दन में शिव श्रवण में स्कन्द, चरणसेवा में पार्वती, अर्चन में महाविष्णु, दासता में परशुराम, कीर्तन में सूर्य और स्मरण में रामचन्द्र प्रधान हैं। वे दिन–रात गणेश का स्मरण करते रहते हैं।

महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव में कार्तिकेय द्वारा तारकासुर के वध का विस्तृत वर्णन है। कार्तिकेय का जन्म इसी काम के लिए हुआ था परन्तु उस महाकाव्य में गणेश जी का कहीं नाम तक नहीं है। अन्य कई पुराणों की यही स्थिति है किन्तु मुद्गलपुराण का कथन है कि युद्ध क्षेत्र में पहले तारकासुर ने स्कन्द को गदा से मार कर भूमि पर गिरा दिया और उन्हें लेकर अपने घर चला गया। दुखी स्कन्द ने शिव का स्मरण किया तो उन्होंने स्कन्द को अपने इष्टदेव गणेश के षडक्षर मन्त्र की दीक्षा दी। उसके जप के प्रभाव से गणेश ने स्कन्द को दर्शन दिया और तारकासुर को मारने का वर दिया। उस वर के प्रभाव से स्कन्द ने तारक को मारा। अब वे दिन-रात सादर गणेश का भजन करते हैं।

मन्त्रं जजाप वे स्कन्दो गजाननमतोषयत्।
ततस्तुष्टो गणेशानो ययौ तं भक्तमुत्तमम्॥

(१४) ब्रह्मा के शरीर से संवत्सर का और बारह मासों का तथा उनकी छाया से मलमास का जन्म हुआ। संवत्सर ने उन तेरहों के साथ गणेश जी का ध्यान आरम्भ किया तो एक सहस्र वर्षों के तप के बाद गणेश जी ने उन्हें शुभफलप्रद होने का वर दिया। इसके कुछ दिनों बाद मार्गशीर्ष, वैशाख, कार्तिक, माघ, श्रावण और मलमास ने गणेश की कृपा के लिए अन्नजल छोड़कर तप आरम्भ किया तो दस वर्ष बाद गणेश जी ने उन्हें यह वर दिया कि मार्गशीर्ष में धर्मकृत्य करने पर अन्य मासों से दस गुना फल मिलेगा और मार्गशीर्ष, वैशाख, कार्तिक, माघ, श्रावण और मलमास क्रमशः एक दूसरे से दस गुना फल देंगे। मेरा नाम ढुण्ढिराज है और मैं मलमास का देव हूँ। श्रावण में गणेश की पूजा करके वरुणदेव पश्चिम दिशा के स्वामी हो गये। वायु भाद्रपद में गणेश का ध्यान करके वायव्य कोण के स्वामी हो गये। आश्विन में देवों और गन्धर्वों ने लम्बोदर की आराधना करके ऐश्वर्य पाया। कार्तिक में आदित्य मूषकवाहन का ध्यान करके तेजस्वी हो गये और पौष में वसुगण तथा माघ में रुद्रगण शूर्पकर्ण गणेश का ध्यान करके सब सिद्धियाँ पा गये। रंभा को देख सभा में इन्द्र का वीर्यपात हुआ, उससे मत्सर दैत्य पैदा हुआ, उससे इन्द्र और शिव हार गये पर वह गणेश से डरता है।

ततो बहौ गते काले मासाः षट् तपसि स्थिताः।
निराहारपराः सर्वे गणेशं समतोषयन्॥
दशवर्षेषु विघ्नेशस्तान् ययौ वरदायकः।
अधिमासस्य देवोहं ढुण्ढिराजो न संशयः॥

(१५) ऋणहर्ता गणेश

गणेश जी के नाम ही अनेक नहीं है, उनके रूप भी अनेक हैं। वे द्विभुज के अतिरिक्त चतुर्भुज, अष्टभुज और दशभुज आदि भी हैं। वे कहीं सिन्दूर की भाँति लाल हैं, हरिद्रा की भाँति पीले हैं, कहीं कपूर से गोरे हैं और कहीं नीले आदि हैं। कृष्णयामलतन्त्र के ऋणहर्ता गणेश को दो भुजाएँ हैं, वे सिन्दूर सदृश्य लाल हैं, लम्बोदर हैं, कमल पर बैठे हैं ब्रह्मादि देवों से सेवित हैं और सिद्धों से वन्दित हैं। वे यद्यपि पार्वती के पुत्र हैं फिर भी शंकर के आराध्य हैं। त्रिपुरासुर के वध के पूर्व शिव ने, सृष्टि बनाने के पहले ब्रह्मा ने, हिरण्यकशिपु को मारने के पहले विष्णु ने महिषासुर के वध के पूर्व दुर्गा ने और तारकासुर के वध के पूर्व कार्तिकेय ने ऋणहर्ता गणेश की पूजा की थी। उस पूजा के प्रभाव से ही उन्हें सफलता मिली थी। गणेश की पूजा से ही सूर्य ने तेज पाया है, चन्द्रमा ने कान्ति पायी है और विश्वामित्र आदि मुनियों ने तप में सफलता पायी थी। ऋणहर्ता गणेश के इस स्तोत्र का वर्षभर नियमपूर्वक पाठ करने से दरिद्रता नष्ट हो जाती है, मनुष्य कुबेर तुल्य धनी हो जाता है और भूत प्रेत पिशाच तो गणेश के स्मरण से ही भाग जाते हैं। यह स्तोत्र शिव ने बनाया है।

सिन्दूरवर्णं द्विभुजं गणेशं लम्बोदरं पद्मदले निविष्टम्।

ब्रह्मादिदेवैः परिसेव्यमानं सिद्धैर्युतं तं प्रणमामि देवम्॥
सृष्ट्यादौ ब्रह्मणा सम्यक्पूजितः फलसिद्धये।
त्रिपुरस्य वधात्पूर्वं शंभुना सम्यगर्चितः॥
हिरण्यकश्यपादीनां वधार्थे विष्णुनार्चितः।
महिषस्य वधे देव्या गणनाथः प्रपूजितः॥

तारकस्य वधात्पूर्वं कुमारेण च पूजितः भास्करेण गणेशो हि पूजितश्छविसिद्धये॥
शशिना कान्तिवृद्ध्यर्थं पूजितो गणनायकः सिद्ध्यर्थं तपसो देवो विश्वामित्रेण पूजितः॥
इदन्त्वृणहरं स्तोत्रं दुःखदारिद्र्यनाशनम् एकवारं पठेन्नित्यं वर्षमेकं समाहितः॥
दारिद्र्यं दारुणं त्यक्त्वा कुबेरसमतां व्रजेत् भूतप्रेतपिशाचानां नाशनं स्मृतिमात्रतः॥

पुराणों के ये नये और पुराने सब लेखक बता रहे हैं कि युद्ध में विजय के लिए उत्साह बल, शस्त्र, अस्त्र, शिक्षण आदि की अपेक्षा किसी देव की पूजा ही आवश्यक है। आप यदि अपराधी हैं, शस्त्रास्त्र से निर्बल हैं तो भी वह देव तुम्हारे धर्मात्मा और सबल शत्रु को भी हरा देगा। क्या इस सिद्धान्त को मानने वाला राष्ट्र और समाज पराधीनता से बच सकता है? पूजा तो राम और रावण, दोनों ने की थी? रावण ने तो सिर भी चढ़ाये थे तो वह हार क्यों गया?

[१६] उच्छिष्टगणपति

माधवाचार्यलिखित मन्त्रमहार्णव में पार्वती को शंकर बताते हैं कि उच्छिष्टगणपति लाल हैं, लाल कमल पर बैठे हैं, त्रिनेत्र हैं, उन्मत्त हैं तथा उनकी चार भुजाओं में पाश, अंकुश, मोदकपात्र और दाँत हैं। दूसरी मूर्ति में वे अपनी सर्वांगनग्न स्त्री से सम्भोग में प्रवृत्त हैं। ध्यान के लिए वही उपयुक्त है। मन्त्र है—हस्तिपिशाचिलिखे स्वाहा।

चतुर्भुजं रक्ततनुं त्रिनेत्रं पाशांकुशौ मोदकपात्रदन्तौ।
विवस्त्रपत्न्यां सुरतप्रवृत्तं उन्मत्तमुच्छिष्टगणेशमीडे॥

गणेश को मांस का या लड्डू आदि का भोग लगाने के बाद लड्डू या पान खाकर जूठे मुख से इस मन्त्र का जप करने पर अथवा इस मन्त्र से गणेश को चार सहस्र धतूर के फूल चढ़ाने पर मनुष्य सिद्ध हो जाता है। वह जिसे चाहे वश में कर लेता है। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित वानर की या कुत्ते की या मनुष्य की हड्डी जिसके घर में गाड़ी जाती है वह मर जाता है या पागल हो जाता है। किसी सुन्दरी को वश में करना हो तो उसके बायें पैर की धूल से और मलमूत्र टट्टी आदि से गणेश की मूर्ति बनाओ, उसको मदिरापात्र में रखकर भूमि में गाड़ दो और यह मन्त्र जपो तो वह तन मन धन से तुम्हारी दासी बन जायेगी। शत्रुनाश, विजयप्राप्ति आदि के ऐसे अनेक प्रयोग हैं।

मलमूत्रपुरीषाद्यै रजोभिर्वामपादजैः कृत्वोच्छिष्टगणेशस्य प्रतिमां मद्यभाण्डगाम्।
सम्पूज्य निखनेद्भूमौ तन्वा दासी भवेद् धनैः॥

रुद्रयामल नामक तन्त्रग्रन्थ का कथन है कि शंकर भगवान त्रिपुर विजय के समय अनेक विघ्नों से व्याकुल और असफल हो गये तो उन्होंने ध्यान द्वारा जाना कि गणेश की पूजा न करना ही इस असफलता का हेतु है। तब उन्होंने पूजा की और गणेश जी ने प्रकट होकर शिव को कार्यसिद्ध के लिए अपने सहस्रनाम के पाठ का आदेश दिया। पार्वतीजी शिव से कहती हैं कि भगवान् उच्छिष्टगणेश के सहस्र नामों को सुनने की मेरे चित्त में बड़ी उत्कण्ठा है। शिव ने कहा कि देवि! तुम धन्य हो। मैं तो उसी के पाठ से त्रिपुर को मार सका। सुनो—

गणनाथस्य भगवन्नुच्छिष्टस्य महात्मनः।
श्रोतुं नामसहस्त्रं में हृदयं चोत्सुकायते॥
तस्यानुग्रहतो देवि जातोहं त्रिपुरान्तकः।
लोलचित्तो बृहन्नासो मासपक्षर्तुरूपवान्॥
करालः कुटिलः कान्तो मदिरारुणलोचनः।
उन्मत्तरूपः कालाग्निः कान्ताहृदयपोषणः॥
राशिताराग्रहमयो लम्पटः सिंहवाहनः।
वागीश्वरीपतिः शंभुः ढुण्ढिर्मुत्युंजयः कविः॥

ये नाम हैं–लोलचित्त, बड़ी नाक वाला, मासपक्षऋतुरूपी, कराल, कुटिल, फिर भी सुन्दर, मदिरा पीने से लाल नेत्र वाला, पागल, कालाग्नि, युवतियों को लुभाने वाला, लम्पट, सिंहवाहन, सरस्वतीपति, शम्भु, ढुण्ढिराज, कवि, शची–पति, चन्द्रचूड, मीनमांसप्रिय, लम्बोदर, एकदन्त, कपिल, गजकर्ण, विकट, विनायक, समुद्रोदर, कामकेलिरत, कामिनीकामन, नंगा, कठोरचित्त, शिवशासक, इक्षुसागरस्थित...इत्यादि। साधक गण इनकी मूर्ति मुख में रखकर जप करते हैं। उच्छिष्ट गणपति के उपासकों में काशी के बबुआ ज्योतिषी का नाम विख्यात है। इस समय उनके वंश में कोई नहीं है। शराबी गणेश के पुजारी शिव तथा अन्य भक्त शराब से घृणा करेंगे, यह असम्भव है।

कवि की कल्पनाएँ चाहे जितनी दोषपूर्ण हों, उन्हें पार्वती–शंकर का संवाद कह देने से जनता का मुख बन्द हो जाता है। इसलिए चतुर कवि बहुत दिनों से इस शस्त्र का प्रयोग करते आ रहे हैं। अध्यात्मरामायणकार, भुशुण्डी और दूरदर्शी गोसाईं जी आदि ने इसे जान बूझ कर अपनाया है। ज्योतिषी भी इस कर्म में किसी से पीछे नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास के मत में शंकर–पार्वती गणेश के पिता–माता भी हैं और अपने विवाह में उनकी पूजा भी करते हैं। गोसाईं जी को इसमें संशय नहीं होता और वे दूसरों को भी सावधान करते हैं कि संशय मत करो।

मुनि अनुशासन गनपतिहिं पूजेउ शंभु भवानि।
कोउ सुनि संशय करइ जनि सुर अनादि जिय जानि॥

फिर भी संशय हो ही जाता है कि पिता के विवाह में पुत्र की पूजा कैसे सम्भव है। यहाँ मन बार–बार पूछता है कि उमा–शंकर इतने देवों में से किसके भक्त हैं और उपनिषदों तथा वेदों ने यह क्यों कहा कि शंकर का कोई स्वामी या पूज्य नहीं है।

न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति (ऋग्वेद)।
न तस्य कश्चित्पतिरस्ति (श्वेत० उप०)॥

[१७] हरिद्रागणेश [१८] रात्रिगणेश

हरिद्रागणेश को रात्रिगणेश भी कहते हैं। इनके मन्त्र के ऋषि मदन (कामदेव) हैं। इनका शरीर हल्दी की भाँति पीला है और ये पीला वस्त्र पहनते हैं। इनकी कृपा के लिए कन्या के हाथ से पिसी हल्दी पूरे शरीर में पोतकर घी, चावल और हरिद्राचूर्ण से हवन किया जाता है। इनका मन्त्र सिद्ध हो जाने पर जल, अग्नि और चोर तथा शत्रु के अस्त्रों और वाणी को रोक देने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

पाशांकुशौ मोदकमेकदन्तं करैर्दधानं कनकासनस्थम्।
हारिद्रखण्डप्रतिमं त्रिनेत्रं पीतांशुकं रात्रिगणेशमीडे॥

वाणीस्तंभं रिपुस्तंभं कुर्यान्मनुरूपासितः।
जलाग्निचौरसिंहास्त्रप्रमुखानपि रोधयेत्॥

[१९] लक्ष्मीविनायक गणेश

आगम और तन्त्र ग्रन्थों ने अपने तामस स्वभाव के अनुसार गणेश को अति कामी, पत्नी को सदा बाहुपाश में लपेटे, संभोगरत और अनेक कामिनियों से घिरा हुआ बताया है और उन्हीं के ध्यान को सिद्धिप्रद कहा है। यहाँ गणेश जी सरस्वती और इन्द्राणी आदि के भी पति हैं। तन्त्रों में वे अति भीषण हैं। लक्ष्मी यद्यपि विष्णु की पत्नी हैं फिर भी वे तन्त्रग्रन्थों में गणेश के साथ पूजी गयी हैं। मन्त्रमहोदधिग्रन्थ में लक्ष्मी से आलिंगित चक्रदन्तादिधारी स्वर्णघटधारी त्रिनेत्र गणेश के पूजन का विधान है। उनके साथ नन्दा, कामरूपा, भोगदा, तेजोवती, तीव्रा आदि नव शक्तियाँ भी हैं।

दन्ताभये चक्रवरौ दधानं कराग्रगं स्वर्णघटं त्रिनेत्रम्।
धृताब्जयालिंगितमब्धिपुत्र्या लक्ष्मीगणेशं कनकाभमीडे॥

[२०] त्रैलोक्यमोहनगणेश

त्रिलोकमोहन गणेश को आठ या दस हाथ हैं। वे उनमें गदा, धनुष, पाश और चक्र आदि लिये रहते हैं। वे कहीं पत्नी से आलिंगित हैं और कहीं पत्नी इनके वक्षस्थल पर आरूढ़ है। वह कमल आदि के पुष्पों से और आभूषणों से भूषिता और कृशांगी है। उनका शरीर लाल है, आँखे सदा मदिरा के मद से लाल रहती हैं और वे प्रायः पत्नी को गोद में लिये रहते हैं। इस मूर्ति के ध्यान से साधकों की सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

गदाबीजपूरे धनुः शूलचक्रे दधानं तथांगाधिरूढं स्वपत्न्या।
सरोजन्मना भूषणानां भरेण स्फुरद्दहस्ततन्व्या समालिंगितांगम्॥
करीन्द्राननं चन्द्रचूडं गणेशं जगन्मोहनं रक्तकान्तिं भजेऽहम्॥

[२१] हेरम्ब गणेश

हेरम्ब गणेश की कान्ति उदयकालीन सूर्य की करोड़ गुनी है, वे वाममार्गी हैं, शुण्ड से मदिरा पीते हैं, उनके अंग मदिरा के मद से सदा विह्वल रहते हैं, संभोग में रत रहते हैं और सुन्दर मुखों वाली तथा मृग के समान नेत्रों वाली एक कामिनी को सदा बायीं ओर गोद में लिये रहते हैं। वे स्वच्छन्द संभोग के समर्थक हैं।

आलिंगितं चारुरुचा मृगाक्ष्या संभोगलोलं मदविह्वलांगम्।
हेरम्बमुद्यद्रविकोटिकान्तिं वन्दे कुलेशं मदिरारुणाक्षम्॥

[२२] सिद्धिविनायक गणेश

ये ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि सब देवों से वन्दित हैं और सब स्त्रियों और पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इनका मन्त्र ही है–नमः सिद्धिविनायकाय सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षणाय। ये वीरभद्र भी हैं। इनके विषय में भृगु–कृतस्तोत्र में लिखा है कि ये शिव की जटा में स्थित गंगा के जल को अपने शुण्ड से उठाकर बार–बार शिव के सिर पर और पार्वती के स्तनों पर डाला करते हैं। आकाश में मोती के समान जो तारे चमक रहे हैं वे सब गणेश के शुण्ड से निकले जल के कण हैं।

शंभोर्जटाजूटनिवासिगंगाजलं समानीय कराम्बुजेन।

पयोधरौ पर्वतराजपुत्र्याः प्रक्षालयन्तं शिवमर्चयन्तम्॥
तया समुद्भूतगजास्यहस्ताद् ये शीकराः पुष्कररन्ध्रमुक्ताः।
व्योमांगणे ते विचरन्ति तारा कालात्मना मौक्तिकतुल्यभासः॥

हमारी पोथियाँ कहती हैं कि चारों वेदों ने मनुष्य का रूप धारण कर अनन्तकोटि सूर्य के समान तेजस्वी और प्रलयाग्नि के समान दाहक गणेश जी का ध्यान किया तो वे ज्ञानी हो गये, ब्रह्मा में सृष्टिनिर्माण की शक्ति आ गयी, विष्णु भगवान् हिरण्यकशिपु आदि दैत्यों के मारने में समर्थ हो गये, शिव ने त्रिपुरासुर का और कार्तिकेय ने तारकासुर का वध कर दिया, दुर्गा ने महिषासुर आदि का विनाश कर दिया, सूर्य तेजस्वी हो गये, चन्द्रमा सुन्दर हो गये और बारहों मास शुभ हो गये। हमारी पोथियाँ कहती हैं कि मदिरा से व्याकुल, संभोग में रत, मांसभक्षी और वेश्याओं से घिरे गणेश का ध्यान करने से जल, अग्नि, चोर महामारी आदि के भय समाप्त हो जाते हैं, रोग नष्ट हो जाते हैं, भूत-पिशाच भाग जाते हैं, शत्रुओं के शस्त्र-अस्त्र निरर्थक हो जाते हैं और उनकी वाणी निरुद्ध हो जाती है। गणेश की स्तुति में ऐसी अन्य भी अनेक बातें लिखी हैं और गणेशों की संख्या लम्बी है किन्तु खेद की बात है कि विविध गणेशों के भक्तों की विशाल सेना के अस्तित्व में भी और गणेश के लाखों मन्दिरों के रहते भी गणेश के, उनकी माता दुर्गा के, उनके पिता शिव के तथा उनके भक्तों विष्णु, राम और कृष्ण के अनेक मन्दिर टूट गये, उन पर मसजिदें बन गयीं, गणेश के अनेक भक्त काट डाले गये, अनेक मुसलमान बना दिये गये पर गणेश न अपने को बचा सके, न अपने माता-पिता और भक्तों को। उन्होंने हमें न सूर्य का तेज दिया, न हमारे शत्रुओं के शस्त्रों-अस्त्रों को कुण्ठित किया न हमारे शारीरिक और मानसिक रोग भगाये। त्रिलोकमोहन गणेश ने तीनों लोकों को मोहित किया या नहीं, इसका तो कोई प्रमाण नहीं है पर यह निश्चित है कि उन्होंने हिन्दुओं को मोह के जालों में जकड़ दिया है। खेद है कि जो बौद्धधर्म प्रारम्भ में विशुद्ध तर्कवादी और परम सात्त्विक था वह तारा देवी और वाममार्ग आदि की भाँति गणेश के भी इस नितान्त काल्पनिक मिथ्या जाल में फँस गया। त्रिलोकविमोहन ने उसे भी मोहित कर दिया।

शंकाएँ—वेद के ६ अंग हैं और उनमें एक का नाम शिक्षा है। शिक्षा का कथन है कि वेदमन्त्रों के उच्चारण में स्वर या वर्ण सम्बन्धी थोड़ी सी त्रुटि हो जाने पर भी वह मन्त्र वाग्वज्र बनकर यजमान का, पुरोहित का और यज्ञ का विनाश कर देता है। अतः हमें सोचना है कि गणेश जी अपने गजमुख से वेद मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण कैसे करेंगे, और प्रजापति की सिद्धि-बुद्धि नाम्नी दो सुन्दर कन्याएँ उनसे विवाह कैसे करेंगी, स्वयं प्रजापति जो ऐसे लम्बोदर, गजमुख एवं विकट प्राणी को जामाता कैसे बनायेंगे और अनेक सुन्दरियाँ रीझ कर उन्हें आत्मसमर्पण कैसे करेंगी। कोई मानवी गजानन के साथ विवाह क्यों करेगी और उससे क्षेम तथा लाभ नामक सुन्दर मानवपुत्र कैसे उत्पन्न होंगे? गणेश जी का प्रथम नाम सुमुख है। क्या यह सत्य है? आजकल हम प्रत्येक धर्मकृत्य में पहले इनके १२ नामों का पाठ करते हैं और कहते हैं कि ऐसा करने पर विघ्न टल जाते हैं पर क्या इन विकट नामों में विघ्नों को टालने की शक्ति है? जो पार्वती उबटन लगाकर उसके चूर्ण से मनचाहा पुत्र बना सकती हैं और अपने शरीर से अनेक देवदेवी उत्पन्न कर सकती हैं उन्होंने पुत्र के लिए इतने लम्बे कृष्णव्रत का कष्ट क्यों उठाया? जिस पार्वती ने गणेश को अपने हाथ से गंगा में बहा दिया वे उसके मरने पर रोने क्यों लगी? एक पोथी कहती है कि उन्होंने गणेश को पानी में बहाया और दूसरी कहती है कि शिव को रोकने के लिए द्वारपाल बनाया तो इनमें कौन सी सत्य है। एक ही व्यास क्या ऐसी दोनों पोथियाँ लिख सकते हैं? क्या गला कटने पर दूसरा गला लगाकर मरे को जिलाया जा सकता है? यदि यह विष्णु का प्रभाव है तो उन्होंने गजराज का सिर क्यों काटा और इतनी लम्बी दौड़ क्यों लगाई? आप बार-बार कहते हैं कि वेदों ने गणेश का ध्यान और पूजन किया। यदि यह सत्य है तो वेदों में इनमें नामों का और कृतियों का उल्लेख क्यों नहीं है? इन झूठी कथाओं में सबसे असह्य कथा वह है जो कहते है कि पार्वती अपने हाथ से बनाये गणेश के रूप पर मोहित हो गयीं इसलिए शिव ने नारियों के स्वभाव की चंचलता आदि को सोच कर उसे गजानन, लम्बोदर और अतिशय कुरूप बना दिया। क्या अपनी पापवृत्ति को जगदम्बा पर थोपने वाला और जगत्पिता सदाशिव को मूर्ख बनाने वाला यह कवि राक्षस नहीं

है? क्या यह योगेश्वर कृष्ण का भक्त हो सकता है?

वास्तविकता क्या है

गणेश के जन्मों की, रूप की और करतूत की ऐसी अन्य कहानियाँ भी गढ़ी गयी हैं। मध्यप्रदेश में दो मुख और पाँच शुण्ड वाले गणेश भी प्राप्त हुए हैं। उसकी कथा भी कहीं लिखी होगी। सचमुच दस–बीस हाथ और छः मुख बनाये बिना हमारे यहाँ कोई देव हो ही नहीं सकता। भारत में आज गणेश के भक्तों में भी चार–पाँच सम्प्रदाय हैं और उनके गणेशों में थोड़ा अन्तर है। अनेक विद्वानों का कथन है कि शिव की ही कुछ प्राचीन उपाधियों को जोड़कर विनायक या गणपति नाम के एक नये देव बनाये गये और वे बाद में शिवपुत्र मान लिये गये। अथर्वशीर्ष उपनिषद में शिव विनायक हैं, वेदों में उग्र और भीम आदि हैं, वायुपुराण में गजकर्ण और लम्बोदर हैं (२४। १४४, २५। १८२) तथा अग्निपुराण (३४७। २३) में गणेश भी त्रिपुरारि, सर्पधारी और चन्द्रभाल हैं। यजुर्वेद में मूषक रुद्र का पशु है और आज वह गणेश का वाहन है:

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः (३। ५७)॥

परन्तु वेद में जिस आखु (मूषक) का वर्णन है वह चूहा नहीं बल्कि वह मनुष्य है जो दूसरों का घर खोदता है और दूसरों की वस्तु चुराता है। वेद में रुद्र के बाणों का भी वर्णन है परन्तु वहीं १६। ६४, ६५, ६६ में यह भी लिखा है कि वर्षा की बूँदें, वात और अन्न ही रुद्रों के बाण हैं। वस्तुतः वेदों और पुराणों की भाषा में बहुत अन्तर है।

गणेश का विवाह

गणपति की पत्नियों और पुत्रों का वर्णन भाग्यवशात् वेद की भाषा में ही हुआ है पर हम दुर्भाग्य से उस भाषा को भूल चुके हैं। भागवतादि पुराण में धर्म की और परमात्मा की पत्नियों के नाम श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, शोभा, विरजा, राधा, क्रिया, उन्नति, श्री, लक्ष्मी, सरस्वती, मेधा, तितिक्षा, लज्जा आदि हैं और उनके पुत्रपुत्रियों का भी विशद वर्णन है। प्राचीन साहित्य में विश्वनाथ ही गणपति हैं, गणेश हैं, उनकी सिद्धि और बुद्धि नाम की दो पत्नियाँ है तथा क्षेम और लाभ नाम के दो पुत्र हैं। मेरे शिवस्तवराज का एक श्लोक है–

गणानां प्रियाणां निधीनां कवीनां पतिं देवतानां दयासागरन्त्वा॥
अजं हे वसो सिद्धिबुद्धीशमीडे शिवंशंकरं क्षेमलाभाकरन्त्वा॥

कवियों की कल्पनाओं को इतिहास मान लेना हमारा स्वभाव बन गया है। गणेश का मुख हाथी सरीखा है इसलिए हाथी को मांगलिक मानकर हमने उसे सेना के आगे खड़ा कर दिया। परिणाम क्या हुआ, यह पोरस आदि की हार में प्रत्यक्ष है। बारात में हाथी सबसे आगे रहता है और द्वारपूजा में वर से पहले उसकी पूजा होती है, जब कि सोपारी में गणेश जी बैठाये रहते हैं किन्तु साथ ही साथ गणेश की पीठ पर यवन कोचवान और कुछ बाराती जूता पहन कर बैटे रहते हैं। कोचवान उनको गालियाँ देता है और हम दही, अक्षत, भेली आदि देते समय भयभीत रहते हैं कि गणेश जी कहीं शुण्ड में लपेट न लें। हमारे यहाँ हर वानर हनुमान है और गावों में बहुत से लोग चूहे के बिलों में गोलियाँ इसलिए नहीं डालते कि वे गणेश के वाहन हैं। जैसे हमारे मेधावी कवियों ने भले–बुरे अनेक गणेशों की कल्पना की है ठीक उसी प्रकार ज्योतिषियों ने भले–बुरे अनेक योग गढ़े हैं और उस कालमानों में अपनी भावनाओं को पिरो दिया है।

मुहूर्तचिन्तामणिकार का वंश परिचय

इस ग्रन्थ के लेखक श्री रामाचार्य हैं। उनके बड़े भाई नीलकण्ठ अकबर बादशाह के दरबारी पंडित थे। नीलकण्ठ

के पुत्र गोविन्द ने मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधारा नाम की विस्तृत टीका लिखी है। मेरी समीक्षा उसी के अधिकांश वचनों से सम्बन्धित है। रामाचार्य ने स्वयं भी अपने ग्रन्थ की प्रमिताक्षरा टीका लिखी है। गोविन्दाचार्य ने टीका में लिखा है कि मेरे प्रपितामह चिन्तामणि सूर्य के अवतार थे। उन्होंने ब्रह्मा के चार मुखों में स्थित विद्याओं के प्रसार के लिए अवतार लिया था और शास्त्रार्थ द्वारा सारी पृथ्वी को जीतकर सब दिशाओं में विजयस्तम्भ गड़वा दिये थे। उनके पुत्र अनन्त ने ज्योतिषियों के उज्ज्वल यश को हरने के लिए जन्म लिया। अनन्त के पुत्र नीलकण्ठ मीमांसा, तर्क आदि सब शास्त्रों के विशेषज्ञ थे, ज्योतिष में गर्गतुल्य थे, व्याकरण में शेष के समान थे, शंकर के अवतार थे और सारी धरती के स्वामी अकबर बादशाह की सभा को सुशोभित करने वाले पण्डितेन्द्र थे। उनके छोटे भाई रामाचार्य गणेश के भक्त थे, अनेक विद्याओं में निष्णात थे और उन्होंने ज्योतिषमहासागर को पार करने के लिए यह मुहूर्तचिन्तामणि रूपी सेतु बनाया है। नीलकण्ठ का पुत्र मैं गोविन्द अनेक विद्याओं का ज्ञाता हूँ और मुहूर्तचिन्तामणि रूपी क्षीरसागर को मथ पर ब्राह्मणों को पीयूषधारा दे रहा हूँ।

चिन्तामणि बाबर के समकालीन थे। बाबर के पहले गोरी, गजनवी, अलाउद्दीन, फीरोज, तैमूर, सिकन्दर, इब्राहीम आदि ने आर्यों को जो त्रास दिये थे वे इतिहास में प्रसिद्ध हैं। बाबर ने अयोध्या में रामजन्मभूमि पर प्रथम दिन १७६००० हिन्दुओं का वध कर जब बाबरी मसजिद बनायी उस समय राम और हनुमान के कृपापात्र गोस्वामी तुलसीदास तथा मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि के विशेषज्ञ अनेक तांत्रिक और सूर्य के अवतार चिन्तामणि जी विद्यमान थे। वे सब युवक थे परन्तु उनके विजयस्तंभ केवल पण्डितों के आपसी शास्त्रार्थ से सम्बन्धित थे। ब्रह्मा के मुख से निकली विद्याओं में युजर्वेद का उपवेद धनुर्वेद भी है और धर्म तथा देश की सुरक्षा वही करता है पर चिन्तामणि उससे अपरिचित थे। बाबर और राणासंग्रामसिंह का सीकरी वाला युद्ध सुप्रसिद्ध है। सीकरी के वीर सांकृत्यायन सकरवार क्षत्रियों को बाबर के कारण ही अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी, खानवा के राजपूतों तथा मेदिनीराय को बाबर ने ही पराजित किया और बाबर ने ही भारत में स्थायी इस्लामराज्य की स्थापना की। उसने ज्योतिष के विरुद्ध जो उद्घोष किया था वह इतिहास में सुप्रसिद्ध है। उसके कुछ शब्द ये हैं–'ग्रहों सितारों की हरकत हमारी जमाँमर्दी और नामर्दी पर मुनहसिर है। सितारे हमेशा जवाँमर्दों के मुआफिक और नामर्दों के खिलाफ रहते हैं। हमें गौर करना चाहिए कि दुनियाँ के किसी भी बहादुर ने ज्योतिषियों से पूछकर फ़तह और जंग के लिए सफर नहीं किया है।' पर संग्रामसिंह बाबर के विपरीत ज्योतिष के ही नहीं, अनेक रूढ़ियों के दास थे। हमारी रूढ़िवादिता ने ज्योतिष में और शस्त्रास्त्रकला में संशोधन और विकास नहीं होने दिया। राणासंग्रामसिंह महाशूर होते हुए भी बहुविवाह की रूढ़ि से नहीं बच सके और वे तोपों से हार गये। चिन्तामणि को इसकी चिन्ता नहीं थी। उनका चन्देरी के दुर्ग में होने वाले वीरांगनाओं के जौहर से कोई नाता नहीं था? उस समय वे सूर्य किसी खन्दक में छिपे थे। प्रश्न है कि उस सूर्य ने विद्याओं का ही प्रकाश क्यों नहीं दिया? राजपूतों को विजय का मुहूर्त ही क्यों नहीं बताया? क्या चिन्तामणि को किसी मुल्ला से शास्त्रार्थ करने का साहस था? पता नहीं चिंतामणि ने किस विषय पर शास्त्रर्थ करके पूरे विश्व को हराया था।

यदि अनन्त ने ज्योतिषियों के यश को हरने के लिए अवतार लिया था तब तो वे ज्योतिष के विरोधी हो गये। उन्होंने ज्योतिष और ज्योतिषियों के यश को बढ़ाया क्यों नहीं? सच पूछिये तो ज्योतिष का यश तो तभी समाप्त हो गया जब सहस्रों विजयप्रद यात्रायोगों के रहते भारत गोमांसभक्षी छोटे-छोटे तुर्क वीरों का गुलाम बन गया, देश का धन और मान लुट गया तथा सूर्य, गणेश, शंकर आदि के अवतार पण्डित, म्लेच्छों के दरबार में सिजदा करते हुए दिखाई देने लगे।

यहाँ नीलकण्ठ गर्गतुल्य कहे गये हैं पर उनकी ताजिक नीलकण्ठी और विशेषत: उसका प्रश्नतन्त्र बता रहा है कि वे वास्तव में गर्ग के तुल्य नहीं थे बल्कि उस गर्ग सरीखे थे जो पानी पर तैरते तेल को देख कर ग्रहण की दिशा बताता था और जिसने योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में मिथ्या एवं अश्लील गर्गसंहिता लिखी है। नीलकंठ की नीलकण्ठी मुसलमानों के मिथ्या ताजिक की प्रशंसक है। उसमें योगों के इक़बाल, इसराफ, कम्बूल, गैरकम्बूल, रद्द, दुफाली, दुरुफ्फ, खल्लासर आदि अरबी-फारसी नाम हैं। उसमें नीलकंठ ने लिखा है कि वसिष्ठ, नारद, पराशर आदि मुनियों द्वारा उपदिष्ट जातकशास्त्र

के योगों और दशाओं के फल स्थूल हैं, उनमें पण्डितों की बुद्धि काम नहीं कर पाती पर यह इस्लामी ताजिकशास्त्र सत्य है और सूक्ष्म फल बताता है। मुसलमानों ने अपने दरबार के पण्डितराजों द्वारा लिखे योगों और मुहूर्तादिकों को कभी न छुआ और उनकी एक भी वात न मानी। वे उन्हें सदा काफिर और कुफ्र समझते रहे पर हमने उनके जातक, ताजिक, हुक्का, तमाखू, सलाम, जामा, जोड़ा, मिर्जई, शेरवानी, सेहरा आदि को नतमस्तक होकर स्वीकार कर लिया। कट्टरपंथी पण्डित आज भी मिर्जई और चौबन्दी पहनकर अपने को आर्य सिद्ध करते हैं। वे समझते हैं कि वसिष्ठ भी ऐसी ही मिर्जई पहनते थे और राम के सिर पर भी विवाह के समय ऐसा ही कागज का सेहरा बाँधा गया था। धन्य हैं नीलकण्ठ जिन्होंने अरवी मुन्था को नूतन ग्रह मान लिया, उसका स्तोत्र लिख डाला और ताजिक को आदिशास्त्र कह कर भृगु पराशर तक पहुँचा दिया।

गोविन्दाचार्य ने अकबर को सारी पृथ्वी का राजा और अनन्ताचार्य को दिग्वजयी पण्डितराज कहा है। इससे इनका भूगोलज्ञान स्पष्ट हो जाता है। रामाचार्य गणेश जी के भक्त थे। गणेश की २०–२२ कथाएँ पीछे लिखी हैं। काल्पनिकता और मिथ्यात्व में वे कथाएँ और मुहूर्त समान हैं तथा इन दोनों की भक्ति अन्धभक्ति है। इससे हिन्दुत्व की अपूरणीय क्षति हुई है और हो रही है। परमात्मा की भक्ति से मुक्ति मिलती है पर होराशास्त्र ने हमें अगणित वेड़ियों और खूँटों–पगहों में जकड़ दिया है। नीलकण्ठाचार्य की नीलकण्ठी का प्रचार धीरे धीरे समाप्त हो रहा है। क्योंकि जनता अब उसकी भविष्यवाणी से विरक्त है। रामाचार्य ने मुहूर्तचिन्तामणि के अतिरिक्त रामविनोद नाम का एक करण ग्रन्थ भी लिखा है और उसमें विक्रम तथा शालिवाहन संवत्सरों को त्याग कर अकवरशक का प्रयोग किया है। लिखा है–'अकवर नृपशकाद् रामभूपालतुष्ट्यै'। जयपुर के राजा रामदास अकबर के कृपापात्र थे और रामाचार्य दोनों के, इसलिए उन्होंने दोनों का यशोगान किया है। इस समय मकरन्द और गणेश दैवज्ञ के करणग्रन्थों का प्रचार है पर रामाचार्य के रामविनोद को पंडित समाज भूल चुका है। कारण यह है कि वह प्रत्यक्ष में असफल है किन्तु आश्चर्य है, उनका मुहूर्तचिन्तामणि सुप्रचलित है। इसका कारण यह है कि उसका फल अप्रत्यक्ष है। उसके प्रचार का श्रेय हिन्दू की भावुक मनोवृत्ति को है, उसके गुणों को नहीं। यात्रा, विवाह, विद्यारंभ, संग्राम आदि में बार–बार विफल होने पर भी अभी वह श्रद्धेय है। गोविन्दाचार्य मुहूर्तचिन्तामणि को सेतु और अपनी टीका को पीयूषधारा कहते हैं। आइये हम इसकी परीक्षा लें कि यह खाई और विष तो नहीं है।

हमारे सब ग्रन्थकार देव हैं

रामाचार्य को गणेश की कृपा प्राप्त थी, गणेश दैवज्ञ गणेश के अवतार थे, चिन्तामणि सूर्य थे, सूर्यसिद्धान्त को बताने वाले सूर्य थे, वराहमिहिर सूर्य थे, रामाचार्य के भाई नीलकण्ठ शंकर थे, उनके पिता ईश्वरावतार थे, गौरीजातक शिव का उपदेश है, पितामह सिद्धान्त ब्रह्मा का बनाया है, तथा हमारी हर पोथी परमात्मा का निःश्वास है और ईश्वरीय वाणी है। भटोत्पल ने वराहमिहिर को सूर्य मानकर उनकी वन्दना में कहा है–तस्मै नमो भास्वते, पर वराह ने स्वयं लिखा है कि मैं सूर्य नहीं हूँ, मैंने सूर्य से वर पाया है–सवितृलब्धवरप्रसादः किन्तु इन देवों में ज्योतिष के अनेक सिद्धान्तों में घोर मतभेद है, इनके ग्रन्थों से ग्रहणादि के शुद्ध काल नहीं लाये जा सकते और इन्हें वास्तविक ग्रहसंस्थान का पता नहीं था।

हम सब गायत्री जप में प्रतिदिन सविता (सूर्य) की उपासना करते हैं, उन्हें अर्घ्य देते हैं और सूर्यनमस्कार करते हैं पर सविता को पूरे भारत में एक भी सुपात्र नहीं मिला तो उन्होंने रोमक नगर में दानव मय को ज्योतिष पढ़ाया। आजकल हमारे यहाँ ग्रहगणित का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ वह सूर्यसिद्धान्त ही माना जाता है। कमलाकर भट्ट ने अपने सिद्धान्त–तत्त्वविवेक में लिखा है कि यह ग्रन्थ साक्षात् वेद है। इसकी उपपत्ति लिखने वाले ज्योतिषी अल्पबुद्धि हैं। सूर्य के इस ग्रन्थ में दोष एक भी नहीं है और गुण अनेक हैं। ब्रह्मादि देवों का स्वामी सनातन पुरुष सूर्य में बैठा है, उसमें तीनों वेद बैठे हैं और वह सर्ववन्द्य है। कुछ लोग बलपूर्वक सविता देवता को इस सूर्य से भिन्न सिद्ध करना चाहते हैं किन्तु मूढ़वाद के अप्रामाणिक होने से उनका कथन निश्चित रूप से सारहीन है।

वेद एव रवितन्त्रमथास्य वासनाकथनमल्पधियां हि।
दोष एव न गुणो रविणोक्तस्तेन युक्तियुतमेव सदोह्यम्॥
ब्रह्मादीनां विभुः सोऽयं सर्ववन्द्यस्त्रयीमयः।
शास्त्रप्रवर्तको ध्येयो मण्डलान्तर्गतः सदा॥
केचित् प्रत्यक्षसूर्याच्च भिन्नोयमिति यद् बलात्।
वदन्ति मूढवादस्याप्रामाण्यात् तदसद् ध्रुवम्॥

परन्तु भट्ट जी का यह कथन असत् है। सूर्यसिद्धान्त में पृथ्वी को स्थिर और सूर्य को उसकी प्रदक्षिणा करने वाला कहा गया है, सम्पात का पूर्णभ्रमण नहीं माना गया है और अन्य अनेक दोष हैं। (देखिए उसकी सुधावर्षिणी टीका) सविता वह है जो सारे विश्व का स्रष्टा है। यह सूर्य वेद के मत में उसके नेत्र से उत्पन्न हुआ है। चक्षोः सूर्यो अजायत। आकाश में ऐसे अरबों-खरबों सूर्य घूम रहे हैं और वे सब जड़ हैं। वेद सूर्य के पिण्ड में नहीं, हमारे मन में प्रतिष्ठित है। वेद स्वयं कहते हैं- यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। तन्मे मनः शिवसंकल्प मस्तु। ठीक इसी प्रकार आर्यभटीय की भूमिका में लिखा है कि सूर्यसिद्धान्त, पितामहसिद्धान्त आदि पाँचों सिद्धान्तों के उदय, अस्त और ग्रहणादि कालों को प्रत्यक्ष के विरुद्ध होते देखकर सूर्य ने पुनः आर्यभट के रूप में कुसुमपुर में अवतार लिया। (डाक्टर केर्न द्वारा प्रकाशित) किन्तु यह सब अन्धविश्वास है।

सिद्धान्तपञ्चकविधावपि दृग्विरुद्धमौढ्योपरागमुखखेचरचारकृत्ये।
सूर्यः स्वयं कुसुमपुर्यभवत् कलौ तु भूगोलवित् कुलप आर्यभटाभिधानः॥

कमलाकर जी सूर्यसिद्धान्त को ईश्वरीयवणी (वेद) कहते हैं, वराहमिहिर उसे कुछ स्पष्ट कहते हैं पर केशवाचार्य ने ग्रहकौतुक की अपनी मिताक्षरा टीका में लिखा है कि ब्राह्मसिद्धान्त आर्यसिद्धान्त और सूर्यसिद्धान्त, तीनों के ग्रहों में प्रत्यक्ष से अन्तर दिखाई दे रहा है। यह आगे और बढ़ेगा इसलिए सुगणकों को इनमें संशोधन करना चाहिए। जिनके लिखे ग्रहलाधव से आज भारत में पचासों पंचांग बन रहे हैं वे गणेश दैवज्ञ अपने बृहत् तिथिचिन्तामणि में लिखते हैं कि ब्रह्म, वसिष्ठ, कश्यप आदि आचार्यों ने जो ग्रहकर्म बताया वह उन्हीं के समय तक ठीक था। कुछ दिनों के बाद शिथिल हो गया। कृतयुग के अन्त में मयासुर ने सूर्य से नयी विधि सीखी किन्तु कलि में उसमें भी अन्तर पड़ गया। तब पराशर ने नया सिद्धान्त बनाया।

ब्रह्माचार्यवसिष्ठकश्यपमुखैर्यत् खेटकर्मोदितं
तत् तत्कालजमेवतथ्यमथ तद् भूरिक्षणेऽभूत श्लथम्।
प्रापातोथ मयासुरः कृतयुगान्तेऽर्कात् स्फुट तोषितात्
तच्चास्ति स्म कलौ तु सान्तरमथाभूत् चारु पाराशरम्॥

इसके आगे के श्लोकों में लिखा है कि बहुत दिन बीतने पर पराशर का सिद्धान्त जब अस्फुट हो गया तब आर्यभट ने उसे प्रस्फुट किया। इसी प्रकार समय-समय पर गणित शिथिल होता रहा और उसको क्रमशः दुर्ग सिंह, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त और मेरे पिता केशव शुद्ध करते रहे। केशव दैवज्ञ का गणित साठ वर्षों के बाद पुनः शिथिल हो गया तब मैंने ऐसा स्पष्टीकरण किया जिससे गणित और आकाश क़ी एकवाक्यता हो जाय। अधिक समय बीतने पर यदि इसमें भी अन्तर पड़े तो विद्वान् उसकी शुद्धि करें। सारांश यह है कि देवनिर्मित ग्रन्थों में भी मतभेद हैं, त्रुटियाँ हैं और उनमें भी संशोधन आवश्यक हैं। जब प्रत्यक्ष प्रयोग पर आश्रित गणित ग्रन्थों की यह स्थिति है तो फलित ग्रन्थों के उच्च, नीच, आदि और उनके फल स्थायी एवं असंशोधनीय कैसे हो सकते हैं।

मुसलमानी दरबारों के पण्डित

हमारे धर्मशास्त्र का आदेश है कि यदि पागल हाथी मारने झपट रहा हो या मरने का भय हो तो भी यवनों की भाषा मत बोलो और जैनमन्दिर में मत जाओ। तुर्क और चण्डाल समान पापी हैं। उनके स्पर्श से धरती अपवित्र हो जाती है और उनके दर्शन एवं भाषण से पुण्य समाप्त हो जाते हैं। वे दोनों वज्रपात से भी भीषण हैं।

न वदेद्यावनीं भाषां न गच्छेज्जैनमन्दिरं।
हस्तिना पीड्यमानोऽपि प्राणैः कण्ठगतैरपि॥
चण्डालश्च तुरुष्कश्च द्वावेतौ तुल्यपापिनौ।
ताभ्यां शूद्रेण च स्पृष्टा भूरमेध्येति कथ्यते॥
दर्शनं भाषणं तेषां निषिद्धं मुनिभिः स्मृतौ।
तुरुष्कशूद्रसंस्पर्शो वज्रपाताधिको मम॥

फिर भी शंकर के समान नीलकंठ ने अरबी पढ़ी और हिन्दूद्वेषी तुर्क की स्तुति की। पंडितराज जगन्नाथ उस जहाँगीर के पंडित थे जो हिन्दू माता का पुत्र होकर भी कट्टर हिन्दूद्रोही था। उसने स्वयं लिखा है, ''विक्रमाजीत का बेटा कल्यान मेरी खिदमत में आया। उस हरामजादे ने एक मुसलमान औरत रखी थी इसलिए मैंने उसकी जबान कटवा दी, जिन्दगी भर जेल में रखा और भंगियों के साथ खाना खिलाया। मानसिंह के बेटे जगतसिंह की लड़की मेरे परिस्तानेमहल में दाखिल हुई। मानसिंह ने बहुत दहेज दिया। रामचन्दर बुन्देला ने अपनी लड़की बादे कबूल मेरी खिदमत में दी। लश्कर के हिन्दुओं को सुल्तान फीरोज ने मुसलमान बनाया। वे कभी-कभी हिन्दुओं में रिश्ता करते हैं। मैंने हुक्म दिया कि हिन्दू की लड़की लेना खूब, मगर देना कभी नहीं। व्यास नदी के किनारे गोन्दवाल में एक हिन्दू फकीर है। कुछ सिरफिरे बेवकूफ मुसलमान भी उसको गुरु कहते हैं। मैं या तो उसे नेस्तनाबूद करूँगा या मुसलमान बनाऊँगा।''

सिखों के पाँचवे गुरु श्री अर्जुनदेव उच्चकोटि के विद्वान्, संगीतज्ञ, शिल्पी, कर्मयोगी, त्यागी और तपस्वी थे। अमृतसर का स्वर्णमन्दिर उन्हीं का बनवाया है। उनका हृदय उदार था कि उन्होंने इस मन्दिर की नींव एक मुसलमान सन्त मियाँ से डलवायी। गुरुग्रन्थसाहब का सम्पादन उन्होंने ही किया है। इसमें पूर्व के चार गुरुओं तथा देश के अनेक महान् सन्तों के ६००० भजनों का संग्रह है। जहाँगीर ने उनकी रचनाओं में कुछ परिवर्तन करने का आदेश दिया और न मानने पर उनकी सारी सम्पत्ति ले ली। उनको जेल में बन्द कर दिया और बहुत यातनाएँ दीं। सन् १६०६ ईसवी में गर्मी के दिनों में भट्ठी पर तवा रखा गया। उस पर अर्जुनदेव बैठाये गये। नीचे आग की लपटें थीं और ऊपर से जलती रेत तथा खौलता पानी डाला गया। गुरुदेव कुछ अस्पष्ट बोलते थे। अन्त में उनका शरीर गाय की खाल में बन्द कर रावी नदी में डूबो दिया गया।

अकबर की बीबी और जहाँगीर की माँ जोधाबाई राजा बिहारीमल की पुत्री थी। कल्याणमल ने भी अपनी पुत्री अकबर को दी थी। अकबर का दूसरा पुत्र दानियाल, स्वरूपीबाई का पुत्र था। अकबर ने महारानी दुर्गावती का राज्य ले लिया और सत्यनिष्ठ राजपूतों के साथ घोर अत्याचार किया पर धन आदि के लोभ में अनेक पण्डित अकबर, जहाँगीर आदि के दरबार में बैठकर अपनी अन्तरात्मा की हत्या कर उनका स्तोत्रपाठ करते रहे। पण्डितराज जगन्नाथ नाम के दो दरबारियों के श्लोक ये हैं–

१. **दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थः ।**
अन्यैर्वराकैः खलु दीयमानं शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात्॥

२. **न याचे गजालिं न वा वाजिराजिं न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित्।**

इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तहस्ता लवंगी कुरंगी दृगंगी करोतु॥
यवनी नवनीतकोमलांगी शयनीये यदि नीयते कदाचित्।
अवनीतलमेव साधु मन्ये न वनीमाधवनी विनोदहेतुः॥

भावार्थ यह है कि मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति दो ही कर सकते हैं। दिल्ली का सुलतान अथवा भगवान। दूसरे बेचारे जो देंगे वह तो केवल शाक और नमक भर को होगा। मुझे न हाथी घोड़ों का समूह चाहिए न धन। अभिलाषा वस एक ही है कि यह सिर पर हाथ (या घड़ा) रखे, सुन्दर स्तनों वाली मृगनेत्री लवंगी कृतार्थ कर दे। मक्खन सी गोरी और कोमल यह यवनी मेरे बिस्तरे पर आ गयी तो समझ लो कि मैं सब कुछ पा गया।

महाकवि केशव का जन्मकाल सन् १५६५ ईसवी, गुरु अर्जुनदेव का हत्याकाल १६०६ ईसवी, जहाँगीर जसचन्द्रिका का लेखनकाल १६१२ ईसवी, अकबर का मरणकाल १६०५ ईसवी और केशव का मरणकाल लगभग १६१७ ईसवी है। सारांश यह कि अर्जुनदेव की हत्या देखने के छ वर्ष बाद केशव ने हत्यारे सलीम की स्तुति में काव्य लिखा। उन्होंने कविप्रिया में अपनी प्रवीनराय वेश्या को शारदा और पार्वती तुल्य तथा जहाँगीर के मित्र वीरसिंह को भूतल भूषन, ईश्वरावतार महाराजमनि और गहरवारकुलकलस कहा। खान खाना को गंगाजल तुल्य और अकबर को शील सुमेरु, सत्यसागर, रणरुद्र एवं हरिहरशक्तियुत कहा तथा शराबी सलीम को राम तुल्य और सलीम के पूर्वजों को देवतुल्य कहते हुए उसकी विजय के लिए गनेस–महेस को मनाया। कुछ पद ये है–

समसदीन अल्लाबदीन सुलतान सिकन्दर कुतुबदीन गोरी गयासुअल्लाहदीन अरु।
रुक्मदीन जल्लालदीन साहाबदीनमनि महंमाद फीरोजशाह सों कुतुबसाहमनि।
गुनहु गनेस दिनेश प्रभु....जग जहाँगीर सक सांहि को पल पल ही रच्छा करहु।
जाकी घोर दुन्दुभी घनाघननि घूमत ही ब्यालन ज्यों दिकपाल धीर न धरत हैं।
केसोदास जाके मुखचन्द के प्रकाश सब जाको संक लंकनाथ संकिबो करत हैं।
दरसें सुरेस सों नरेस नित नावैं सिर नाइका अनेकन को नायक लाइयतु हैं।
परम अखण्ड तेज पूरी रह्यो नवखण्ड दसहू दिसानि जहाँगीर गाइयतु है।
साहिनि को साह जहाँगीर साहजूको जस सागर हुलास सों औ विष्णु को निवास सों।
शिवजू के भाल में विभूति को विलास सोहै अंसुनि में सोहै चारु चन्द्रिका प्रकास सों।

तो क्या ऐसे दरबारों के चारण पण्डितराज बादशाह की मरजी के खिलाफ विदेशी ताजिक और जातक की समालोचना कर सकते हैं? इन बेड़ियों से हिन्दू को मुक्त कर सकते हैं और क्या अकबर, जहाँगीर आदि मुसलमानों को अपने मुहूर्तग्रन्थों से जोड़ सकते हैं? वे आपके ज्ञान से प्रभावित थे तो उन्होंने आपकी बातें मानी क्यों नहीं?

अपने शास्त्रों की स्वयं उपेक्षा

वृहदारण्यक उपनिषद् (३।८।९) में याज्ञवल्क्य गार्गी से कहते हैं कि सूर्य, चन्द्र, तारे, ऋतु, मास, पक्ष, दिन और नक्षत्रादि परमेश्वर के शासन में अवस्थित हैं। उसकी कृपा होने पर सब अपने आप शुभ हो जाते हैं। हम छोटे–बड़े प्रत्येक कर्मकाण्ड के प्रारम्भ में यह मन्त्र पढ़ते हैं कि परमात्मा के चरणों का स्मरण ही लग्नबल, सुदिन, सुमुहूर्त, ताराबल, चन्द्रबल और भाग्यबल आदि है। जिसके हृदय में मंगलों के आयतन परमेश्वर उदित हैं उसके लाभ, मंगल और विजय आदि निश्चित हैं।

एतस्याक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ तिष्ठतः।
निमेषा अहोरात्राणि अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरास्तिष्ठन्ति॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेंऽघ्रियुगं स्मरामि।
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममंगलम्।
येषा हृदिस्थो भगवान् मंगलायतनो हरिः

किन्तु हमें आज न तो इन महावाक्यों पर विश्वास है न मुहूर्तों पर। इसीलिए बार-बार मुहूर्त पूछे जाते हैं। आजकल हल चलाने, बीज बोने, काटने, कणमर्दन करने, रखने और निकालने के भी मुहूर्त पूछे जाते हैं। विवाहकर्म में वरवरण, कन्यावरण, हरिद्रालेपन, उरदी, विवाह, वधूप्रवेश, द्विरागमन आदि के अनेक मुहूर्त पूछे जाते हैं। यह भयभीत हृदय का लक्षण है। मनु और चाणक्य कहते हैं कि बार-बार नक्षत्र और मुहूर्त पूछने वाला मनुष्य मन्दबुद्धि है। साफल्य और अर्थ उसे छोड़कर दूर भाग जाते हैं। साफल्य और अर्थ पराक्रम से मिलते हैं। जैसे गज से गज पकड़े जाते हैं उसी प्रकार प्रयास से, साधनों से और अर्थ से साफल्य और अर्थ पकड़े जाते हैं। ग्रह तारे क्या करेंगे? यह निश्चित है कि आलसी और अकर्मण्य लोग ही बार-बार शुभाशुभत्व की शंका करते हैं। उद्योगी तो किसी भी सिद्धि को असाध्य नहीं मानते (कौटिल्य अर्थशास्त्र ९।४ और मनुस्मृति ४।१३७)।

नक्षत्रमति पृच्छन्तं बालमर्थो निवर्तते।
अर्थोस्त्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः॥
साधनात् प्राप्नुवन्त्यर्थान् नरा यत्नशतैरपि।
अर्थैरर्थाः प्रबाध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव॥
हीनाः पुरुषकारेण गणयन्ति ग्रहस्थितिम्।
सत्त्वोद्यमसमर्थानां नासाध्यं व्यवसायिनाम्॥

श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि (१) बाबर की सेना हताश थी। उसी समय काबुल से कासिम और यूसफ के साथ मुहम्मद शरीफ नामक ज्योतिषी आये। उन्होंने बताया कि मंगल ग्रह इस समय पश्चिम में है इसलिए पूरब से लड़ने वाले हम जरूर हार जायेंगे। बाबर निराश होना नहीं जानता था। उसने ज्योतिषी की बात अनसुनी कर दी, अल्लाह का नाम लिया और जीत गया। (२) एक दिन कुँवर पृथ्वीराज, जयमल और संग्राम सिंह ने अपनी जन्मपत्रियाँ एक ज्योतिषी को दिखाई। ज्योतिषी ने कहा कि ग्रह तो आप दोनों के भी बहुत अच्छे हैं पर मेवाड़ का राजा संग्राम सिंह होगा। इस पर दोनों भाई संग्रामसिंह के कट्टर शत्रु हो गये। पृथ्वीराज ने तलवार की एक ऐसी हूल मारी कि संग्राम की एक आँख फूट गयी। दोनों ने उसको मार डालना चाहा तो संग्राम सिंह भाग गये और गुप्तवेष में इधर-उधर रहने लगे। कुछ दिन एक गड़रिये के पास रहे पर बाद में वे ही राजा हुए। सत्य यह है कि वे जन्म से ही शूर और कर्मठ थे तथा वे राजा होंगे, इसका अनुमान ज्योतिषी और पुजारिन को ही नहीं, जनता को भी था।

दो प्रकार के ज्योतिषी

ज्योतिष और धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में उस ज्योतिषी की निन्दा की गयी है और उसे नक्षत्र सूची कहा गया है जो ग्रहों

की गति स्थिति नहीं जानता पर मुहूर्त, शकुन और अशुभ ग्रह आदि बताता है। उसके विषय में आदेश है कि जो यजमान ऐसे लोगों की बताई तिथियों में व्रत, उपवास, विवाह और यज्ञादि करते हैं वे नारकीय हैं। नक्षत्रसूची को खिलाया अन्न राक्षसों के पेट में जाता है। मनुस्मृति (३।१६२, ६।५०) में इसे पंक्तिदूषक, पापी और निषिद्ध आदि कहा है। हस्तरेखा देखने वाले भी इसी कोटि में रखे गये हैं। साथ साथ उस ज्योतिषी की प्रशंसा की गयी है जो ग्रहणादि का सत्यकाल बताने में समर्थ है।

अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते। स पंक्तिदूषकः पापी ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः॥
कुशीलवो देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति। वर्जयेद् ब्राह्मणानेतान् सर्वकर्मसु यत्नतः॥
अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषुकेवलम्। प्रत्यक्षं ज्यौतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ॥
अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं न किंचिदेषां तु विशिष्टमस्ति।
चिकित्सितज्यौतिषमन्त्रवादाः पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति॥

ये श्लोक १।२ की टीका के हैं। इनका भावार्थ यह है कि आयुर्वेद, ज्योतिष और मन्त्र के शास्त्र प्रत्यक्ष हैं पर शेष विनोदमात्र हैं। उनमें केवल वाद-विवाद है। यहाँ प्रत्यक्ष शास्त्र की प्रशंसा तो समुचित है पर अन्य सब शास्त्रों को निरर्थक कहना अनुचित है क्योंकि योगशास्त्र की प्रत्येक शाखा के फल प्रत्यक्ष हैं और अति हितावह हैं। संगीत केवल मन को ही नहीं मोहता, अनेक रोगों को समाप्त कर देता है और वह एक उपवेद है। छन्दशास्त्र, चित्रकला, विज्ञान और शिल्पविद्या आदि से मनोविनोद ही नहीं होता, अनेक लाभ भी होते हैं। काव्य में मनुष्य के सब अशिवों का क्षय कर ऊपर उठाने और शिवत्व देने की शक्ति है अतः कोई भी शास्त्र निन्द्य और हेय नहीं है। हाँ, प्रत्येक शास्त्र का वही भाग आदरणीय है जिसका सम्बन्ध अनुभूतियों से है। वैद्यक के साथ यहाँ ज्योतिष के भी उसी भाग की प्रशंसा की गयी है जो प्रत्यक्ष है। किन्तु बाद में प्रत्यक्ष और अनुभूति का महत्त्व कम होने लगा, काल्पनिक ज्योतिष के झरोखे से लोग भविष्य की ओर झाँकने लगे, पुरुषार्थ का पद, पूजा पाठ ने ले लिया और कहा जाने लगा कि ज्योतिषीहीन राजा अन्धा है, ज्योतिषी लक्ष्मी, यश और कल्याण आदि देता है, वह सहस्त्रों हाथी-घोड़ों से बढ़ कर है, ज्योतिष पढ़ने का अधिकार केवल ब्राह्मण को है, दूसरे पढ़ने वाले बहुत दिनों तक नरकों में रहने के बाद कुत्ते होते हैं।

असांवत्सरिको राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि। न तत्सहस्त्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणैः॥
स्नेहाल्लोभाच्च शूद्राणां दद्यात्स नरकं व्रजेत्। अथो युगसहस्त्रान्ते जायतेश्वानयोनिषु॥

तिथ्यादिकों के अनेक भीषण योग

वेद में कोई देव किसी तिथि का स्वामी नहीं है पर यहाँ १।३ में तिथिस्वामी लिखे हैं। आजकल यम, गणेश, दुर्गा, शिव और पितर भीषण देव माने जाते हैं इसलिए उनकी २, ४, ६, १४, ३० तिथियाँ अशुभ हैं। प्रत्येक कर्म की तिथियाँ भिन्न भिन्न हैं और उन्हें ज्योतिषी भी पोथी देखे बिना नहीं बता सकता पर ये सब झूठी कल्पनाएँ हैं। इनका विवरण पीछे (पृष्ठ ५५ में) देखें। ५, ६ श्लोकों में वारों और तिथियों के योग से उत्पन्न शुभाशुभ योगों का वर्णन है पर वार काल्पनिक हैं और उनका आकाश से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः वारतिथि और वारनक्षत्र आदि से सम्बन्धित सब योग भी मिथ्या और काल्पनिक हैं। तिथि और नक्षत्र के योग से उत्पन्न योग चूँकि इसी बुद्धि से लिखे गये हैं इसलिए वे सब भी मिथ्या हैं (देखिए पृष्ठ ७०-१०६)। सातवें श्लोक में लिखा है कि यदि शरीर में तेल लगाना है, क्षौर कराना है, संभोग करना है, उबटन लगाना है, आँवला लगाना है और मांस खाना है तो इन कर्मों की तिथियाँ ज्योतिषी से पूछ लेना। नहीं तो अनर्थ हो जायेगा, आयु घट जायेगी, मर जाओगे और धन-पुत्र नष्ट हो जायेंगे। इस बात का ध्यान रखना कि अनेक योगों के नाम हैं विष, अग्नि, यमघण्ट, दग्घ आदि। प्रत्येक मास में कुछ तिथियाँ शून्य होती हैं, चुप बैठे रहने पर उनके शुन्यत्व का कुछ भी आभास नहीं होता पर उनमें

काम करने पर वंश और वित्त का सर्वनाश हो जाता है। इसी प्रकार कुछ वारों के स्पर्श से कुछ नक्षत्रों को लकवा मार जाता है और वे शून्य हो जाते हैं। ठीक यही स्थिति कुछ राशियों और लग्नों की है। कुछ न करने पर इनके अशुभत्व का पता नहीं लगता, काम करते रहने पर कोई संकट नहीं आता पर कर्मारंभ करने पर छ मास के भीतर कर्ता का, उसके धन का और वंश आदि का सर्वनाश हो जाता है। लिखा है–

अग्निजिह्वाः सप्तयोगा मंगले कुलनाशनाः। अचिकित्स्या इमे योगा मंगलेष्वेव निन्दिताः॥
इमे मृत्युप्रदाः पापाः। षण्मासान्मरणं ध्रुवम्।

शंका यह है कि तिथिवार, तिथिनक्षत्र और तिथिवारनक्षत्र के योग से उत्पन्न कुयोगों का दुष्प्रभाव केवल हूण, बंग और रवश देशों में ही क्यों होता है? आजकल इन तीनों ने इस सिद्धान्त को मानना लगभग छोड़ दिया है तो वहाँ के मनुष्य जीवित कैसे हैं?

दातुन—मरुस्थलों में वृक्ष बहुत कम होते हैं अतः वहाँ एक दातुन कई दिन चलती है। आजकल ब्रश का अधिक प्रयोग है अतः फेंकने का प्रश्न ही नहीं है। वराहमिहिर ने लिखा है कि फेंकने पर दातुन खड़ी गिरी तो मिष्ठान्न मिलेगा। विपरीत गिरने के कई फल हैं। दातुन में दिशाओं के भिन्न-भिन्न फल हैं। पूर्व सबसे शुभ है पर सूर्य सामने न हो तब। यहाँ १।६ में और उसके भाष्य में लिखा है कि कुछ तिथियों और वारों में दातुन करने पर सप्त कुल भस्म हो जाते हैं और सूर्य कुपित हो जाते हैं (देखिये पृष्ठ ५६)। शास्त्रों का आदेश है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री का दातुन क्रमशः १२, ११, १०, ६, ४ अंगुलों की होनी चाहिए। मेरे विचार से इनके भोजन और वस्त्र में भी यही अनुपात होना चाहिए। ब्राह्मण की धोती ५ गज की है तो क्षत्रियादि की ४, ३, २ गज और नारी की १ गज की होनी चाहिए। ब्राह्मण का भोजन ५ छटाँक है तो नारी का एक छटाँक होना चाहिए।

शून्य तिथि–नक्षत्र–राशि आदि [१।१०]

चैत्रादि मासों में कुछ तिथियों, कुछ नक्षत्रों और कुछ राशियों आदि को लकवा मार जाता है। वे शून्य हो जाते हैं। इनमें जो कुछ नहीं करेगा या प्रारंभ किये कामों को करता रहेगा उसे कोई कष्ट नहीं होगा पर कार्यारंभ करने पर वंश का, धन का, कर्म का और मंगलों का छ मास के भीतर सर्वनाश हो जायेगा। लिखा है–

वंशवित्तविनाशदाः, नैव मंगलमाचरेत्, षण्मासान्मरणं ध्रुवम्॥

पर आजकल न तो गाँवों में, न नगरों में कोई ज्योतिषी इन शून्यों को देखता है न इनका शान्तियोग होता है। कदाचित् ही कोई ऐसा कार्यारंभ होता होगा जिसमें ऐसे १०-२० दोष न रहते हों। (१।१८) में लिखा है इनका दोष केवल मध्यदेश में लगता है। क्यों, इसका कोई उत्तर नहीं है। आज के और प्राचीनकाल के मध्यदेश में अन्तर है। वराहमिहिर ने पंजाब, जयपुर, मथुरा, साकेत और कुरु आदि पश्चिमोत्तर प्रान्तों को मध्यदेश कहा है। उनमें आजकल इन दोषों का विचार नहीं किया जाता फिर भी लोग जीवित हैं।

हालाहल और सर्वार्थसिद्धियोग

१।२० में उन सिद्धिप्रद योगों का वर्णन है जो किसी विशिष्ट तिथि में छू जाने पर हालाहल विष हो जाते हैं। इनमें हत्या, विषदान, अग्निदाह आदि कर्म सफल होते हैं किन्तु शुभारंभ करने पर मरण निश्चित है। कुछ हालाहल योग कुछ ही कर्मों में वर्जित हैं (१।२२) पर आजकल न इनका कोई विचार करता है न मरता है। शेष योगों से पिण्ड छुड़ाने पर यही

स्थिति होगी।

१। २६ में अनेक सर्वार्थसिद्धि योगों का वर्णन है। लिखा है कि नारदादि ज्योतिषियों के कथनानुसार इनमें आरंभ किये सारे कार्य सिद्धिप्रद होते हैं। ये योग प्रत्येक मास में कई बार आते हैं पर यदि सत्य होते तो संसार में कोई दरिद्र, मूर्ख, रोगी, अपुत्र आदि नहीं रह जाता। ये सब रवि, सोम आदि उन काल्पनिक वारों से सम्बन्धित हैं जिनका आकाश से कोई सम्वन्ध नहीं है अतः इनका मिथ्यात्व सूर्यप्रकाशवत् स्पष्ट है। शेष योगों में भी यही शेखचिल्ली की कल्पना है। आप इनमें कार्यारंभ करके सचाई देख लें। २७ में लिखे रवियोगों और २६ में बताये उत्पात मृत्यु आदि योगों की भी यही स्थिति है।

व्यंगलग्न—बारह लग्नों में छ अन्धे हैं, चार बहरे हैं और दो लँगड़े हैं। १, २, ५ लग्न दिन में अन्धे रहते हैं और ३, ४, ६ रात में अन्धे हो जाते हैं। ७, ८ लग्न दिन में और ६, १० रात में बहरे हो जाते हैं। ११ दिन में और १२ रात में लँगड़ा हो जाता है। इनके अतिरिक्त जले और काने लग्न हैं। ब्रह्मा कहते हैं कि इनमें विवाहादि करने से वैधव्य, शिशुमरण, दरिद्रता और सर्वनाश का आगमन होता है परन्तु इसमें दो कठिनाइयाँ हैं। इनके लक्षणों में आचार्यों में मतभेद है और उनके अनुसार सब अशुभ हो जाते हैं। प्रश्न यह है कि कल्पना के अतिरिक्त क्या इसका कोई ठोस प्रमाण है? क्या इसकी कभी अनुभूति होती है? इनका प्रभाव मालवा, पांचाल और गौड़ आदि कुछ ही देशों में क्यों होता है। जो दिन में अन्धा, वहरा और पंगु है वह रात में द्रष्टा, श्रोता और गन्ता कैसे हो जाता है?

दग्धलग्नेषु यत्कर्म कृतं सर्वं विनश्यति। अन्धेवैधव्यमाप्नोति दारिद्र्यं
वधिरे तथा। अर्थनाशो भवेत्पंगाविति धात्राविनिश्चितं (मु० चि० ६। ८३ टीका)॥

भीषणयोग—रामाचार्य ने इस एक प्रकरण में कई सौ भयंकर योग लिखे हैं। वे हैं–(१) चन्द्रयुक्त लग्न (२) पापयुक्त लग्न (३) चन्द्रयुक्त नवांश (४) पापयुक्त नवांश (५) मध्याह्न की कुछ घटियाँ (६) मध्यरात्रि की कुछ घटियाँ (७) ग्रहण से पूर्व तीन दिन (८) उत्पात के बाद के सात दिन (६) ग्रहण के बाद सात दिन (१०) शुभ उत्पात के दिन (११) ग्रहों से वेधित नक्षत्र (१२) युद्ध नक्षत्र (१३) उत्पात नक्षत्र (यहाँ टीका में सैकड़ों उत्पातों का वर्णन है) (१४) जन्ममास (१५) जन्मनक्षत्र (१६) जन्मतिथि (१७) व्यतीपात (१८) भद्रा (१६) वैधृति, (२०) अमा (२१) पितृदिन (२२) तिथिक्षय (२३) तिथिवृद्धि (२४) कुलिक आदि...। इनमें से दो एक का परिचय प्राप्त कर लें।

अशुभ लग्न—इनमें प्रथम दोष यह बताया है कि चन्द्रमा और पापग्रहों से युत लग्न और नवमांश अशुभ होते हैं। अन्य आचार्यों ने भी लग्न में स्थित चन्द्र को अशुभ कहा है। वराहमिहिर ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि जिसके लग्न में चन्द्रमा है वह गूँगा, पागल, जड़, अन्धा, पापी बहरा और दास होता है।

मूकोन्मत्तजडान्धहीनबधिरप्रेष्याः शशांकोदये २०। ४

परन्तु हम परम शुभ मान कर जिन नक्षत्रों में कार्यारंभ करते हैं वे सब चन्द्रमा से युत रहते हैं। आज रोहिणी है, इसका अर्थ यह है कि चन्द्रमा रोहिणी में बैठा है। यदि चन्द्रमा से युत लग्न और नवांश त्याज्य हैं तो चन्द्रमा से युत तिथि, योग और नक्षत्र शुभ कैसे हो जाते हैं? मैं आचार्य वराहिमिहिर से और उनके भक्तों से पूछ रहा हूँ कि राम, कृष्ण, आदिशंकराचार्य, रामकृष्णपरमहंस तथा महारानी विक्टोरिया आदि सैकड़ों महान् पुरुषों की जन्मकुण्डलियों में लग्न में चन्द्रमा बैठा है तो क्या वे सब मूक, उन्मत्त, अन्ध, जड़, नीच, बधिर और दास हैं? आप पापग्रह से युत लग्न को भीषण कहते हैं पर आपके पास शुभ ग्रह हैं ही कितने? क्षीणचन्द्र, राहु, केतु, सूर्य, मंगल, शनि, सपाप बुध पाप हैं और गुरुशुक्र अनेक परिस्थितियों में पाप हो जाते हैं तो बचा क्या? ज्योतिषियों ने क्षीणचन्द्रमा को पाप कहा है पर राम और कृष्ण दोनों के जन्मकालीन चन्द्र क्षीण थे तो क्या वे ज्योतिष में बताये दोषों से परिपूर्ण थे? यहाँ मध्यह्न और मध्यरात्रि को अति अशुभ कहा है पर वेद में वे दोनों मुहूर्त

शुभ हैं तथा राम और कृष्ण के जन्म उसी समय हुए हैं। यहाँ क्रूरग्रह के नवांश को त्याज्य कहा है इसलिए क्रूरग्रह की १, ५, ८, १०, ११ राशियाँ भी त्याज्य होनी चाहिए किन्तु इसे मानने पर वर्ष के पूरे पाँच मास निषिद्ध हो जायेंगे। ज्योतिषशास्त्र क्रूरग्रह की ही नहीं, शुभग्रहों की राशियों को भी त्याज्य कहता है। बृहस्पति की ९, १२ राशियाँ खलमास हैं और बुधशुक्र की ३, ६,७ राशियों में हरिशयन है।

आज संसार में किसी भी विषय का सिद्धान्त वनाने के पूर्व उसे सैकड़ों बार परखा जाता है। प्राचीनकाल में भी यही स्थिति थी पर ज्योतिष के इन योगफलों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनका एक-दो बार भी परीक्षण नहीं किया गया है। वराहादि आचार्यों ने नारियों के जिन व्यभिचार आदि योगों का निःसंकोच वर्णन किया है उनका वे सौ पचास स्थानों में परीक्षण करते तो कभी न लिखते। अन्य सव योगों की यही स्थिति है।

तिथियों में छेद-४, ६, ८, ९, १२, १४ तिथियों को यहाँ पक्ष का छेद कहा है, जव कि ये गणेश, स्वामिकार्तिक, शिव, दुर्गा, हरि और शिव की तिथियाँ हैं। क्या इस सिद्धान्त का कोई हेतु है?

होलाष्टक-होलिका पापिनी जल गयी तो आप होलाष्टक को अशुभ क्यों मानते हैं और उसे पंजाब के लिए विशेष अशुभ क्यों कहते हैं? शुक्रास्त-यहाँ १। ४७ में गुरु शुक्र के अस्तादि को लगभग सभी शुभ कर्मों में अशुभ कहा गया है। इसकी समीक्षा द्विरागमन प्रकरण में पढ़ें।

दो मास खल और दो वर्ष सिंह मगर

ज्योतिष ने हेमन्त और वसन्त नाम्नी सुहावनी ऋतुओं के दो पवित्र मासों को खलमास कहा है (देखिये पृष्ठ ४२)। आजकल उनमें हिन्दू कोई भी शुभ कर्म नहीं कर सकता। उसी प्रकार प्रत्येक १२ में से दो वर्षों को सिंह और मगर की भाँति भीषण कहा है। वेद में सूर्य और गुरु भगवान् और देवगुरु हैं तथा ज्योतिष में परस्पर मित्र हैं पर एक-दूसरे की राशि में स्थित होने पर भयंकर हो जाते हैं। बृहस्पति अपने मित्र सूर्य की सिंह राशि में आने पर पूरे वर्ष को दूषित कर देता है। कुछ वर्ष संवत्सर के नाम के अशुभ होने पर अशुभ होते हैं, कुछ राजा मन्त्री आदि के अशुभ होने पर भीषण हो जाते हैं और यह अड़ंगा उन तीनों से प्रबल है किन्तु सत्य यह है कि जैसे खल कहे जाने वाले दो मासों में खलत्व का कहीं दर्शन नहीं होता उसी प्रकार सिंह राशि में गुरु के आने पर वह वर्ष भीषण नहीं हो जाता। उसकी भीषणता एक अज्ञानजन्य कुकल्पना है और आर्य संस्कृति से तो उसका कोई नाता ही नहीं है क्योंकि राशियाँ अभारतीय हैं। ठीक यही स्थिति मकर में स्थित गुरु की है। कुछ लोग मकर को गुरु का शत्रुक्षेत्र कहते हैं। उनसे पूछिए कि क्या ९, १२ राशियाँ सूर्य के शत्रुक्षेत्र हैं और सिंह क्या गुरु के शत्रु का क्षेत्र है?

प्रसन्नता और आश्चर्य का विषय है कि इस समय हिन्दू के हृदय में मकर और सिंह राशि में स्थित गुरु से भय नहीं है। उसमें सब काम हो रहे हैं पर खलमास का भय अभी बना है। सत्य यह है कि महान् पुरुषों और देवों के चरणस्पर्श से अशुभ स्थान भी शुभ हो जाते हैं इसलिए हमें सूर्य और गुरु को एक दूसरे के या किसी के गृह में देखकर प्रसन्न होना चाहिए और यह समझना चाहिए कि दो मित्र देव अतिथि के रूप में एक दूसरे के घर आये हैं पर ज्योतिष कहता है कि इस स्थिति में शुभ कार्य का आरंभ करने पर असफलता और भयों का आगमन होता है, पुत्र पत्नी भाई की मृत्यु होती है, विवाहिता नारी विधवा हो जाती है, कीर्ति का नाश होता है तथा चोरादिकों का भय होता है।

प्रारब्धं न हि सिद्ध्येत महाभयकरं भवेत्। पुत्रभ्रातृकलत्रादि शीघ्रं हन्यान्न संशयः॥
कारको व्रजते नाशं सन्ततिर्म्रियतेऽचिरात्। उद्वाहे च भवेन्मृत्युस्तथैव मकरस्थिते।
गुर्वादित्यः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु॥

परन्तु क्या इस कथन में एक पैसे की भी सचाई है? क्या इन कालों में अनेक सरकारी योजनाओं का आरम्भ नहीं हो रहा है? क्या इनमें अहिन्दू सब शुभ कर्म नहीं कर रहे है? क्या इन समयों में भूमि और आकाश में कोई परिवर्तन दिखाई देता है? यहाँ ग्रहों के वक्रत्व और शीघ्रगति को अशुभ कहा है पर सत्य यह है कि सब ग्रह अपनी कक्षाओं में सर्वदा एक नियमित गति से चलते है। वे न कभी उलटा चलते हैं न अधिक चलते हैं। वे स्थितियाँ हमें दिखाई देती हैं पर उसका रहस्य कुछ और है (देखिए पृष्ठ २७२)। ज्योतिष कहता है कि यह दोष गंगा–गोदावरी के बीच में लगता है, गंगा के उत्तर और गोदावरी के दक्षिण नहीं। मकरस्थ गुरु का दोष कोंकण, मगध गौड़ और सिन्धु देशों में ही लगता है अन्यत्र नहीं। नर्मदा के पूर्व, गण्डकी के पश्चिम, शोण के दक्षिण और उत्तर नहीं लगता। क्या इस कथन में कुछ रहस्य है? कोंकण, मगध और सिन्धु देशों की सीमाओं में बहुत अन्तर है तो क्या ज्योतिषियों ने इनके आकाश में कोई समानता देखी है? क्या नदियों के दो तटों के निवासियों में इतना अन्तर पड़ जाता है? क्या नदियों के तट सर्वदा परिवर्तित नहीं होते रहते हैं? गंगा काशी में उत्तरवाहिनी है पर थोड़ी ही दूरी पर पश्चिमवाहिनी भी है। गंगा की चौड़ाई लक्ष्मणझूला से ऊपर कहीं कहीं चार–पाँच सौ हाथ से भी कम है पर ज्योतिष कहता है कि सिंहस्थ गुरु में विवाह करने वाले यदि उत्तर तट पर हैं तो कुछ नहीं होगा पर दक्षिण तटवासी हैं तो वरवधू मर जायेंगे। क्या यह कथन उन्मत्त का प्रलाप नहीं है? पर खेद है कि मैंने काशी में विवाह सम्पन्न करने के लिए आये ऐसे कई शिक्षित परिवारों को देखा जिनका घर गंगा से दक्षिण और गोदावरी के उत्तर है।

लुप्त संवत्सर और होरा

यहाँ १।५३ में लुप्तसंवत्सर को गंगागोदावरी के बीच में अतिनिन्दित कहा है परन्तु यह भी एक कल्पना है। इसका विवरण पृष्ठ २८ में देखें। इसे सत्य मानने पर पूरा वर्ष ही भीषण हो जायेगा। १।५६ में कालहोरा का वर्णन है। होरा शब्द विदेशी है पर इससे सम्बन्धित शुभाशुभत्व की मिथ्या कल्पना भारतीय है। प्रत्येक ग्रह की भली–बुरी होराएँ प्रतिदिन एक–एक घण्टे के लिए तीन–चार बार आती मानी गयी हैं पर ऐसा कभी नहीं होता। आज के विज्ञान ने इस कपोलकल्पना के मूलाधार को ही मिथ्या सिद्ध कर दिया है। इसका विवरण पृष्ठ ७१ में पढ़ें। फिर भी ज्योतिष कहता है कि प्रतिदिन ग्रहों के जो घण्टे तीन–चार बार आते हैं, उनके फल ये हैं–सूर्य का घण्टा मार डालेगा, मंगल का घण्टा कारागार में पहुँचायेगा, शनि वाला घण्टा आने पर सब लोग जड़–मन्द हो जायेंगे, शुक्र में विवाह होगा, बुध में पुत्र होगा, बृहस्पति की होरा के समय में वस्त्र एवं अलंकार का लाभ होगा तथा आप जिस होरा में प्रश्न करेंगे वैसा ही फल पावेंगे। प्रश्न यह है कि क्या ये होराएँ प्रतिदिन तीन–चार बार इन फलों को देती हैं? आपके सव फलादेश इतने ही सत्य हैं न?

सूर्यहोरामृतिं कुर्यात् चन्द्रहोरा स्थिरासनम्। काराबन्धं भौमहोरा बुधहोरास्ति पुत्रदा॥
वस्त्रालंकारदा जीवहोरा शौक्री विवाहदा। जडत्वं शनिहोरायां प्रश्नहोराफलं तथा॥

मन्वादियुगादि वार–१।५७ में इनकी तिथियाँ बतायी हैं पर उन्हें सब कार्यों में निषिद्ध कहा है किन्तु ये हमारे पूर्वज मनुओं की जयन्तियों के शुभ दिन हैं अतः इन्हें अशुभ कहना भ्रान्ति है। युगादियों की भी यही स्थिति है। यहाँ मनुओं के जन्मों के मासों, पक्षों और तिथियों का तो उल्लेख है पर वारों का नहीं क्योंकि उस समय वारों का प्रचार नहीं था किन्तु श्री भास्कराचर्य ने लिखा है कि सब युगों का आरम्भ रविवार से होता है। यह कथन हमें शिक्षा देता है कि हर बात को चुपचाप मान लें क्योंकि वे वर्तमान प्रथाओं को भूतकाल में थोप देते हैं।

लंकानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधोः सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत्प्रवृत्तिः॥

अनध्याय–इस श्लोक की टीका में तथा हमारे ज्योतिषादि अनेक ग्रन्थों में अनध्यायदिनों का विशद वर्णन है। यहाँ

याज्ञवल्क्य के ३८ अनध्याय लिखे हैं पर सब सौ से कम नहीं है। उनका भावार्थ यह है कि वादल गरजे, बिजली चमके, उल्का दिखाई दे, गधे, ऊँट, कुत्ते, उल्लू, सियार आदि बोल दें, मेढक, नेवला, चूहा, साँप, कुत्ता, बिल्ली आदि बीच से चले जायँ, अन्त्यज शूद्र आदि पास में दिखाई दें, अशुभ तिथियाँ और वार आ जायँ तथा तीव्र वायु वह रहा हो तो पढ़ना वन्द कर दो नहीं तो पढ़ी विद्या नष्ट होगी और अनर्थ होंगे।

परीक्षा या दिव्य–यहाँ १।४७ में गुरुशुक्र के अस्त में अनेक कर्मों के साथ परीक्षा का भी निषेध है। परीक्षा के लिए बृहस्पति की सिंह और मकरराशि में स्थिति तथा मलमासादि अन्य शुभ काल भी वर्जित हैं (देखिए १।४७ टीका)। किसी मनुष्य ने कोई अनैतिक कर्म किया हो तो उसकी जाँच के लिए प्राचीन काल में अनेक प्रयोग किये जाते थे और उन्हें दिव्य या परीक्षा कहा जाता था। श्री काणें ने लिखा है कि म्लेच्छ आदि की परीक्षा में (१) घड़े में विषधर सर्प के साथ मुद्रा या अँगूठी डाली जाती थी। निकालते समय यदि सर्प ने नहीं काटा अथवा काटने पर मनुष्य नहीं मरा तो निरपराध माना जाता था। (२) तुला की परीक्षा में मनुष्य अपने भारतुल्य पत्थर के साथ तराजू में वैठाया जाता था और पत्थर ऊपर उठ जाने पर निर्दोष माना जाता था। दूसरी परीक्षा में परीक्षार्थी मंत्रपाठ के साथ तराजू पर वैठाया जाता था। एक वार तौल कर कुछ पलों के बाद पुनः तौला जाता था। दूसरी बार तौल में कम होने पर निरपराध और अधिक कम होने पर अपराधी घोषित किया जाता था। बृहस्पति का कथन है कि तौल में पूर्ववत् होने पर पुनः तौलना चाहिए। (३) एक विशिष्ट प्रकार का सुखाया चावल खाकर थूकना पड़ता था। थूक में रक्त आने पर परीक्षार्थी अपराधी समझा जाता था। (४) तर्जनी मध्यमा और अँगूठे द्वारा जलते घी या तेल से गरम स्वर्णखण्ड निकालना पड़ता था। तीनों अँगुलियों के काँपने या जलने पर मनुष्य अपराधी समझा जाता था। (५) गाय के घी में हरी पत्ती डालने पर वह कड़कड़ाने लगे तो समझे कि घी शुद्ध है। उसमें से अँगूठी निकालने पर हाथ न जले तो समझे कि निरपराध है। (६) लोहे के तपाये फाल को एक बार जीभ से चाटना पड़ता था। स्मृति चन्द्रिका, व्यवहार प्रकाश, छान्दोग्य उपनिषद् आदि का कथन है कि जीभ न जलने पर परीक्ष्य को निर्दोष समझना चाहिए। (७) लौहपरीक्षा में लोहा इतना गरम किया जाता था कि उससे चिनगारियाँ निकलती थीं। (८) धर्मदिव्य में धर्म और अधर्म की मूर्तियाँ मिट्टी के पात्र में रखी जाती थीं। धर्म की मूर्ति चाँदी की और अधर्म की मूर्ति लोहे की बनायी जाती थी अथवा दोनों के चित्र रखे जाते थे। परीक्षार्थी यदि धर्म की मूर्ति उठा लेता है तो निर्दोष है। (६) जलपरीक्षा में परीक्षार्थी पत्थर में बाँध कर पानी में फेंक दिया जाता था। पत्थर डूब जाता और परीक्षार्थी तैरता रह जाता तो निर्दोष समझा जाता था। (१०) अग्निदिव्य में हाथ, पैर, जीभ या नितम्ब के न जलने पर मनुष्य निर्दोष समझा जाता था। (११) पंचविश ब्राह्मण (१४।६।६) में लिखा है कि वत्स की विमाता ने उसकी माता को शूद्रा कहा। उसने प्रतिवाद किया कि मैं ब्राह्मण हूँ। वह अग्नि में कूदा और बिना जले निकल आया। छान्दोग्य उपनिषद् १।१६।१ में गरम कुल्हाड़ी पकड़ने का वर्णन है। लिखा है कि–

> **पुरुषं हस्तगृहीतमानयन्ति । परशुं तप्तं**
> **प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते। न दह्यते मुच्यते।**

पकड़ने पर नहीं जला तो छोड़ दिया जाता था। (१२) विष खाने पर विक्षिप्त नहीं हुआ और मरा नहीं तो निष्पाप है। धर्मशास्त्र ग्रन्थों में दिव्य परीक्षाओं के ऐसे अनेक वर्णन हैं। मिताक्षरा के अनुसार इस काम में रविवार अच्छा होता है। पितामह के अनुसार जलदिव्य मध्याह्न में और विषदिव्य रात में करना चाहिए। नारद के अनुसार अग्निदिव्य वर्षा में, जलदिव्य ग्रीष्म में और विषदिव्य शिशिर में होना चाहिए। यहाँ लिखा है कि यह परीक्षा गुरुशुक्र के अस्त में और मलमास आदि में नहीं होनी चाहिए। सारांश यह है कि अग्नि आदि देव और मन्त्र कुछ ही समयों में परीक्षा लेने पर सत्य साक्षी देते हैं। सीता की अग्नि परीक्षा प्रसिद्ध है। पता नहीं, उसमें मुहूर्त देखा गया था या नहीं।

नक्षत्र प्रकरण

(२।१)–वेदों ने नक्षत्रों को सोमागार, देवगृह और तारक कहा है तथा यहाँ प्रत्येक नक्षत्र का एक देव स्वामी बताया गया है अतः स्पष्ट है कि सब नक्षत्र शुभ हैं परन्तु भारत में वारों के आगमन के बाद वारों की सात जातियाँ बन गयीं और नक्षत्र भी उनमें बाँट दिये गये पर मत बदलते रहे। कुछ दिनों तक चित्रा, श्रवण, अश्विनी और स्वाती आदि उग्र–दारुण रहे पर बाद में ज्योतिषियों ने उन्हें शुभ मान लिया (देखिए पृष्ठ ११५)। यद्यपि मघा और मूल आज भी उग्र–क्रूर और तीक्ष्ण–दारुण कहे जाते हैं पर उनमें विवाह, वधूप्रवेश, द्विरागमन आदि मांगलिक कर्म होते हैं और धनिष्ठा पंचक के भीषण कहे जाने पर भी उसके उत्तर भाद्रपदा और रेवती में विवाहादि सारे कर्म होते हैं। यह प्राचीन नियम का प्रभाव है। यहाँ टीका में हर नक्षत्र के भिन्न–भिन्न कर्म बताये हैं पर घपला अत्यधिक है। अतः पोथी देखे बिना निर्णय अशक्य है।

२।९ में लिखा है कि ९ नक्षत्रों के मुख ऊपर हैं। ९ के नीचे हैं और ९ के सामने हैं इसलिए कूप, वापी खोदने का काम अधोमुख नक्षत्रों में करो, मन्दिर गृह ऊर्ध्वमुख वालों में उठाओ और यात्रा आदि सामने मुख वालों में करो परन्तु आकाश में ऐसे मुख कभी दिखाई नहीं देते और ज्योतिष ने स्वयं ही इस सिद्धान्त के विरुद्ध आदेश दिये हैं। यहीं २।२५ में जलाशय खोदने में अधोमुख नक्षत्र निषिद्ध हैं। सत्य यह है कि जो नक्षत्र अति अशुभ माने जाते थे उन्हीं को कुछ ज्योतिषियों ने बाद में अधोमुख कह दिया तथा शुभ नक्षत्रों को ऊर्ध्वमुख और मध्यमों को सम्मुखमुख मान लिया। यहाँ टीका में दिये गरुड़पुराण के श्लोक मध्काल के हैं पर आर्द्रा सम्बन्धी उक्ति विचारणीय है। वेदों में आर्द्रा अति शुभ है और नूतन ज्योतिष में अति अशुभ है पर यहाँ उसकी गणना ऊर्ध्वमुख (शुभ) नक्षत्रों में है अतः स्पष्ट है कि यह श्लोक प्राचीन एवं नवीन सिद्धान्तों की खिचड़ी है।

अधोमुख–भरणी कृत्तिका आश्लेषा मघा विशाखा मूल पूफा पूषा पूभा।
ऊर्ध्वमुख–आर्द्रा रोहिणी पुष्य उफा उषा उभा श्रवण धनिष्ठा शतभिषा।
सममुख–अश्विनी मृग हस्त चित्रा स्वाती ज्येष्ठा पुनर्वसु अनुराधा॥

नूतन ज्योतिषशास्त्र कहता है कि एक बार में सातों वार ३–४ बार आते हैं, एक नक्षत्र में सब नक्षत्र सूक्ष्म रूप में स्थित हैं, एक तिथि में सब तिथियाँ विद्यमान हैं और एक लग्न या राशि में बारहों राशियाँ बैठी हैं अतः शुभ कर्मों के मुहुर्त प्रतिदिन उपस्थिति हैं। जिन वारों, तिथियों, नक्षत्रों और राशियों में जो कर्म विहित हैं वे उनके सूक्ष्मांशों में भी किये जा सकते हैं अतः शुभ काल दुर्लभ नहीं है, यात्रादि कर्मों को सदा करते रहो।

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेस्य।
ऋक्षे यस्मिन् हि यत्कर्म कथितं निखिलं तु तत्। तद्दैवत्ये तन्मुहूर्ते कार्यं यात्रादिकं सदा॥

परन्तु यह कथन भी प्राचीन और नूतन मान्यताओं की खिचड़ी है। कर्म प्रतिदिन करो, यह प्राचीन आदेश है और उसमें वारों, तिथियों, नक्षत्रों के खण्डों को देख लो, यह नूतन भय है। कठिनाई यह है कि किसी शुभ वारखण्ड में तिथि और नक्षत्र के भी शुभखण्डों का मिलना संभव नहीं है।

[२।१०] मूँगा, हाथी दाँत, शंख और वस्त्रादि धारण के मुहूर्त

नया घर बनाने के पूर्व जजमान पहले पूरोहित से भूमि का निरीक्षण कराते हैं और उसके अशुद्ध सिद्ध होने पर वहाँ घर नहीं बनाते। निरीक्षण में मुख्य है हड्डी। यदि चार–छ हाथ के नीचे हड्डी का पता लग गया तो वहाँ गृह नहीं बनेगा पर आश्चर्य है, हमारे वे ही जजमान मांस, मछली, मुर्गा, अण्डा खाते हैं, कुछ हड्डियाँ चबाते हैं और अपने दीवाने आम तथा

दीवाने खास में सिर के ठीक ऊपर बाघ, चीता, हिरन, भैंसा आदि के सि
कि दस हाथ नीचे भूमि में हड्डी का एक टुकड़ा रहने पर उन्हें भयंकर
गले में १०८ शंखों की माला लटकाये रहने पर कुछ नहीं बिगड़ता। मां
शंका करने पर बीसों पोथियों के प्रमाण देने लगते हैं। हमारे पड़ोस
आर्यसमाजी का ध्यान और जप, बाघ और मृग की खाल बिछाये बिना न
हैं। यहाँ नारियों के लिए हाथीदाँत, मूँगा, शंख आदि के आभूषण पहन
ज्योतिष कहता है कि इन्हें सदा पहने रहने पर छूत नहीं लगती, भीषण
की शोभा बढ़ती है, मंगल आते हैं पर अशुभ समय में पहनने पर देव कुपि
है कि रवि, भौम और शनिवार को नूतन वस्त्राभूषण धारण करने वाले स्त्रि
और नक्षत्र के भी अनेक भीषण फल हैं। रोहिणी, पुष्य, उत्तरा आदि नक्षत्र
वाली नारी शीघ्र विधवा हो जाती है। नया वस्त्र पहनने में शुक्रास्त, मलम
निषिद्ध हैं। बुध, बृहस्पति और शुक्रवार को वस्त्र आभूषण धारण करने
आकाश में जो ग्रह जिस रंग का दिखाई दे रहा है उसके वार में नारियाँ उस
वस्त्रों का रहना आवश्यक है। आपको शंका होगी कि आकाश में तो बु
निरर्थक हैं? उत्तर है–हाँ।

स्नानमुहूर्त–शतभिषा नक्षत्र में नहाने वाली नारियाँ सात जन्म
आँवला लगाकर नहाने वाली धन, पुत्र, कुल, आयु, पति आदि से हीन
में धननाश और द्वितीया में दोनों का नाश होता है। अतः स्त्रियाँ प्रतिदिन न
खाने, मैथुन करने और क्षौर कराने का शुभ दिन पूछना भी अति आवश्य
नहाये, मुहूर्त पूछ ले। नारी शुक्र के अस्त में, हरिशयन के चार मासों में त
कर भी न पहने (देखिए १।७ का भाष्य)।

> स्नानं करोति या नारी चन्द्रे शतभिषान्विते। सप्
> अस्तंगते भृगुसुते शयने च विष्णोर्भौमेन्दुभानुदि

इसलिए कुशल चाहते हो तो पड़ोस में ज्योतिषी बसा लो औ
काजल, नेलपालिश, लूप आदि लगाने, नहाने और संभोग आदि के शुभ

(२।११) वस्त्रों के धब्बे–वस्त्र कहीं फट जाय जल जाय
आदि लग जायँ तो अनेक आपत्तियों के साथ मृत्यु भी आ सकती है। आ
आदि में भी ऐसे ही फल होते हैं अतः वस्त्र को सामने वाले चक्र की भाँ
जित करो। धब्बा यदि राक्षस वाले भाग में है तो संकट आयेंगे और देव–
उल्लू, गधा, साँप, सियार, कुत्ता, सूर्य, त्रिकोण, ऊँट, कौवा; गीध आदि क
है। अतः उस निन्दित वस्त्र पर सोना रख कर और स्वस्तिवाचन करा कर उ
घातक नहीं होगी क्योंकि वह भूसुर है।

> खरोष्ट्रोलूककाकाहिजम्बूकाश्ववकोपमाः। त्रिकोण
> निन्दितं वसनं दद्याद्विप्राय स्वर्णसंयुतम्। आशिषो वाच

(२।१२)– पीछे वस्त्र धारण के समय बताये हैं पर ब्राह्मण की आज्ञा होने पर वे निषिद्ध समयों में भी पहने जा सकते हैं। २।१३ में मदिरारंभ का मुहूर्त लिखा है। २।२० में बताया है कि पाप वारों और तिथियों में वस्त्र धोने तथा निचोड़ने से अथवा उसमें रेह, साबुन आदि लगाने से सात पीढ़ियाँ भस्म हो जाती हैं।

वस्त्रक्षालनजोदोषोद्हत्यासप्तमं कुलम्। शनौ भौमे रवौ श्राद्धे षष्ठ्यमावास्ययोस्तथा।
संक्रान्त्यां पूर्णिमायां च द्वादश्यां च रवेर्दिने। वस्त्रं निष्पीडयेन्नैव क्षारेणापि न योजयेत्॥

२।४६ में घर में ईंधन रखने का मुहूर्त बताया गया है। चन्द्रमा का नक्षत्र यदि सूर्य के नक्षत्र से ७–८ है तो उस ईंधन से शव जलाया जायेगा। बाद के चार नक्षत्रों में ईंधन रखने पर साँप काटेगा। कुछ में रोग भय होगा और कुछ में रखे काष्ठ, गोहरी केवल काढ़ा पकाने के काम में आयेंगे।

शंका–आजकल इसका मुहूर्त कोई नहीं पूछता। कुछ बड़े एवं घने गाँवों में लोग छत पर ही गोहरा पाथ लेते हैं। शहरों में लोग कोयला, गैस लाने का मुहूर्त नहीं पूछते। आभूषण–वस्त्र पहनने, तेल लगाने, माँस खाने, नहाने, बाल बनाने, मैथुन करने आदि का भी मुहूर्त नहीं पूछा जाता। वस्त्र में कीचड़ आदि का धब्बा लगने पर किसी को अनिष्ट की आशंका नहीं होती और साबुन तो प्रतिदिन लगता है पर आपत्तियाँ नहीं आतीं तो क्या इसी प्रकार अन्य सब कर्म प्रतिदिन नहीं किये जा सकते? क्या शुभ मुहूर्तों ने अब तक हमें कुछ दिया है? क्या मुहूर्तवाद की सत्यता का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है?

अनेक प्रकार के शान्तियज्ञ

ज्येष्ठा और मूल में उत्पन्न शिशुओं के शान्तियज्ञ पीछे (पृष्ठ ११६, १२४ में) लिखे हैं पर ज्योतिषशास्त्र कहता है कि ज्येष्ठा, मूल, आश्लेषा, विशाखा आदि नक्षत्रों में उत्पन्न पुत्री–पुत्र अपने ससुर, सास, पति के बड़े भाई, देवर आदि को भी खा जाते हैं इसलिए इनके विवाह के समय भी विस्तृत शान्तियज्ञ आवश्यक है। २।५७ के भाष्य में इसका विस्तृत वर्णन है और रामाचार्य ने भी विवाह प्रकरण (१६–२०) में इसका समर्थन किया है। ये श्लोक चिन्तनीय है।

मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा च तदंगनाम्। ऐन्द्री पत्यग्रजं हन्ति देवरं च द्विदैवजा॥

विवाहे....शान्तिर्वा पुष्कला चेत् स्यात्तर्हि दोषो न कश्चन (नारद, वसिष्ठ)॥

इनके अतिरिक्त तिथिगण्डान्त, नक्षत्रगण्डान्त, लग्नगण्डान्त और राशि–गण्डान्त भी उतने ही भयंकर होते हैं। उनकी शान्तिविधि पृष्ठ १२७ में देखें। चित्रा, पुष्य, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा में उत्पन्न शिशु भी माता, पिता, भाई और अपने को खा जाते हैं। इनके अतिरिक्त शूल, व्यतीपात, वैधृति, महापात, उत्पात, मृत्यु, व्याघात, गण्ड, अतिगण्ड, राक्षस, मृत्यु, वज्र, यमघण्ट, दग्ध, कालदण्ड आदि कुयोग, विष घटियाँ, तिथिक्षय, भद्रा, दग्धयोग, त्रिविध अमावास्या, संक्रान्ति, ग्रहणकाल, कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, माता, पिता, भाई आदि के जन्मनक्षत्र और त्रीतर (तेंतर) आदि भी उतने ही भयानक होते हैं अतः शान्तियज्ञ सब में आवश्यक है। लिखा है–

चित्राद्यर्धे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये।
जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विधत्ते मातापित्रोरात्मनो भ्रातृनाशम्॥
कुहू स्याद्यदि जन्मांशे षण्मासान्मृत्युमाप्नुयात्।
जन्मलग्ने च जन्मांशे मृत्युर्मासत्रयाद् भवेत्॥
यस्य जर्मर्क्षगश्चन्द्रो विषनाडयां कुहूर्भवेत्।
अभिचारेण किं तस्य स्वयमेव मरिष्यति॥

गण्डान्तेन्द्रभशूलपात–परिघव्याघातगण्डावमे।
संक्रान्ति व्यतिपातवैधति....(२। ५७)॥

त्रीतर शान्ति–तीन पुत्री के बाद पुत्र का या तीन पुत्रों के बाद पुत्री का जन्म होने पर माता, पिता, परिवार और धन आदि का विनाश हो जाता है। शान्ति यज्ञ में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र की सोने की मूर्तियाँ बनाओ और कृपणता मत करो। यज्ञ के बाद मूर्तियाँ, ताम्रकलश, वस्त्र, अन्न, गाय, पात्र, सुवर्ण–दक्षिणा आदि आचार्य को दो और ब्राह्मणों को खिलाओ तो विघ्न नहीं आयेंगे।

सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्रये वा सुतो यदि। मातृपित्रोः कुलस्यापि तदारिष्टं महद्भवेत्॥

ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखानि विविधानि च। ब्रह्माविष्णुशिवेन्द्राणां प्रतिमाः स्वर्णतः कृता॥

प्रतिमा गुरवे देया उपस्करसमन्विताः। हिरण्यं धेनुमेकां च वित्तशाठ्यविवर्जितः॥

कुयोग संक्रान्ति शान्ति–जन्मनक्षत्र, जन्ममास आदि में संक्रान्ति लगने पर मास के भीतर रोग, क्लेश और धनक्षय आते हैं किन्तु विधिवत् शान्ति करने पर कोई कष्ट नहीं होता। कुयोगों में किया शान्तियज्ञ इसी प्रकार कष्टनाश करता है। पहले सुलक्षणा गाय मँगाओं, उससे शरीर सुँघाओ, नवग्रहयाग करो, आचार्य को पंचांग, आभूषण, पीतांबर, अन्य वस्त्र, सोने की अँगूठी, कलश, ताम्रपात्र, सूर्यचन्द्र की मूर्तियाँ, गौ, सोना, अन्न आदि दो और सौ ब्राह्मणों को भोजन कराओ तो सारे दोष समाप्त हो जायेंगे।

शान्तिर्वा पुष्कला चेत्स्यात्तत्र दोषो न कश्चन। गोमुखप्रसवं कुर्यान्नवग्रहमखं तथा।।
पंचांगभूषणं दद्यात्पद्वस्त्रांगुलीयकम्। चन्द्रादित्यकृती पार्श्वे वस्त्रयुग्मं निवेदयेत्॥
गोदानं वस्त्रदानं च स्वर्णदानं विशेषतः। प्रच्छादनपटं दद्याद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत्॥
ब्राह्मणान् शतसंख्याकान्मिष्ठान्नैर्भोजयेत्ततः। बन्धुभिः सह भुंजीत नैव दोषमवाप्नुयात्॥

अमावास्या शान्ति–इन्द्र की भी पत्नी को या गाय, घोड़ी, भैंस आदि को अमावास्या में बच्चा पैदा हुआ तो सर्वनाश निश्चित है। यह एक दोष अनेक गण्डान्तों तुल्य भयंकर है। इसमें प्रथम कर्तव्य यह है कि पत्नी को तो नहीं पर पशुओं को तुरत किसी ब्राह्मण को दे दो और शान्ति यज्ञ करो। उसमें शिव की सोने की ऐसी चतुर्भुज मूर्ति बनाओ जिसमें त्रिशूल, खड्ग और वरदहस्त आदि स्पष्ट दिखाई दें। इन्द्र भी चतुर्भुज हों, वज्र, अंकुश, धनुष, बाणधारी हों और ऐरावत हाथी पर बैठे हों तथा पितृगण माला, कमंडलु आदि लिये हों। हवन, अभिषेक आदि के बाद सब सामग्री आचार्य को दो और ब्राह्मणों को भोजन कराओ। यह गर्ग का आदेश है। नारद का कथन है कि अमावास्या, सूर्य और चन्द्र की सोने, चाँदी और ताँबे की मूर्तियाँ बनाओ, पूजा करो तथा ब्राह्मणों को सोना, चाँदी, मूर्ति कालीगाय, दक्षिणा, वस्त्र और भोजन आदि दो।

सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा।
गवाश्वं महिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत्॥
प्रतिमां कारयेच्छंभोश्चतुर्भुजसमन्विताम्।
इन्द्रश्चतुर्भुजो वज्रांकुशचापेषुधारकः॥
गोदानं वस्त्रदानं च सुवर्ण चौर्णकं तथा।
दश दानानि चोक्तानि ब्राह्मणानां च तर्पणम्॥
प्रतिमाः स्वर्णजा दर्शसूर्यसोमस्वरूपकाः।
हिरण्यं रजतं ताम्रं कृष्णाधेनुश्च दक्षिणा॥

अकालजनन शान्ति—माघ में बुध के दिन भैंस, श्रावण में दिन में घोड़ी और सूर्य के सिंहराशि में रहने पर गाय बच्चा दे तो स्वामी का छ मास के भीतर मरना निश्चित है। बचने का उपाय यह है कि पशु तुरंत ब्राह्मण को दे कर शान्तियाग करे।

माघे बुधे तु महिषी श्रावणे वडवा दिवा। भानौ सिंहस्थिते चैव यस्य धेनुः प्रसूयते॥
मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः। प्रसूतां तत्क्षणादेव गां विप्राय प्रदापयेत्॥

चतुर्दशी शान्ति—कृष्णचतुर्दशी में बालक का जन्म होने पर पिता, माता, मामा, धन, वंश और स्वयं का नाश हो जाता है इसलिए प्रयत्नपूर्वक शान्ति करनी चाहिए। इसमें पुत्र और पत्नी से युत आचार्य का वरण करे, बैल पर सवार शंकर की सब लक्षणों ये युत सोने की मूर्ति बनावे और यज्ञ के बाद आचार्य को वह मूर्ति, दो वस्त्र, बछड़े से युत गाय आदि दे दे तो कोई नहीं मरता और बालक दीर्घायु हो जाता है।

प्रतिमां कारयेच्छंभोः सर्वलक्षणसंयुताम्। वृषभे च समासीनां कर्षमात्रसुवर्णतः॥
सर्वालंकारसंयुक्तां सवत्सां गां पयस्विनीम्। प्रतिमां वस्त्रयुग्मं च वित्तशाठ्यविवर्जितः॥
ब्राह्मणाय प्रदत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते। एवं यः कुरुते शान्तिं चिरंजीवी सुखी भवेत्॥

शंकाएँ—ज्योतिष, धर्मशास्त्र और कर्मकाण्ड में घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा तीनों एक दूसरे के पूरक हैं। ज्योतिष ने इस प्रकार के अन्य अनेक शान्तियोगों और दानों के आदेश दिये हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख आगे प्रसंगानुसार किया जायेगा। इस विषय में अनेक शंकाएँ हैं। (१) जहाँ जिन यागों का आदेश है उनकी संख्या लम्बी है पर अहिन्दू इनमें से एक भी शान्ति नहीं करते। हिन्दुओं में भी आजकल ज्येष्ठामूल के अतिरिक्त अन्य शान्तियाँ कोई नहीं करता तथा गाँवों में उसे भी कराने वाले पण्डित अल्पशिक्षित होते हैं। वे एक भी वेदमन्त्र शुद्ध नहीं बोल पाते। अतः स्पष्ट है कि ज्योतिषोक्त फल सत्य होते तो संसार में एक भी मनुष्य जीवित न रह पाता क्योंकि प्रत्येक के जन्मकाल में एक दो कुयोग रहते हैं और उनमें उत्पन्न पुत्र–पुत्री स्वयं ही नहीं मरते, माता–पिता, भाई, मामा, सास, ससुर, जेठ और देवर आदि को भी मार डालते हैं। (२) क्या इन मृत्यु, गद, कालदन्ड, मातंग, राक्षस, मूसल, उत्पात, गन्ड, शूल, परिघ, व्याघात, व्यतीपात, वैधृति और वज्र आदि योगों का आकाश से कोई सम्बन्ध है? क्या ये तिथियों (चन्द्रकलाओं) की भाँति आकाश में कभी देखे जाते हैं? क्या प्राचीन ग्रन्थों में इनका वर्णन है? क्या इनके आगमन वाले दिन आकाश और धरती में कोई भीषणता दिखाई देती है या उसकी कोई अनुभूति होती है? जिसे ग्रहकक्षाक्रम का ही ज्ञान नहीं है वह इन्हें दिव्य दृष्टि से कैसे देख लेता है? ये हमें प्रभावित नहीं करते तो शिशु को और उसके सम्बन्धियों को कैसे मार डालते हैं? ये मुसलमानों–ईसाइयों को क्यों नहीं मारते? (३) क्या जड़ सूर्यादि ग्रहों में हमारी प्रार्थना को सुनने और आहुति–पूजा लेने की शक्ति है? (४) दान देने वालों को इतना पुण्य मिलता है तो क्या लेने वालों के पास दाता के पाप और अनिष्ट नहीं जायेंगे? (५) ग्रहण और संक्रान्ति के समय स्नानमात्र से कई अश्वमेधों का फल मिल जाता है तथा गंगा, राम या नारायण आदि कहने से सारे पाप भस्म हो जाते हैं तो हम इन शान्तियागों में धनमेध क्यों करें?

नक्षत्र पुरुष और रूपयज्ञ

नक्षत्र प्रकरण में इसके बाद नक्षत्रपुंजों की तारा संख्या और आकृतियों का वर्णन है। यहाँ लिखी तारों के प्रयोजन वाली बात सर्वथा मिथ्या है (देखिए पृष्ठ १५४)! ब्राह्मण ग्रन्थों में और ज्योतिष में एक नक्षत्रपुरुष या कालपुरुष का वर्णन है पर उसमें कई मत हैं। आचार्य वराहमिहिर ने वृहज्जातक में मेष से मीन तक बारह राशियों को कालपुरुष के सिर से पैर तक स्थापित किया है। लग्नकुण्डली में लग्नादि भाव ही सिर आदि अंग होते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।५।२।२) में हस्त नक्षत्र नक्षत्रपुरुष का हाथ है, चित्रा सिर है। स्वाती हृदय है और अनुराधा पाद है किन्तु बृहत्संहिता (अध्याय १०५) में वर्णित

नक्षत्रपुरुष के पादमूल में मूलनक्षत्र है, श्रवण श्रवण है और शेष नक्षत्र भिन्न-भिन्न अंगों में स्थित हैं। यहाँ लिखा है कि जो नर-नारी रूपवान् होना चाहें वे चैत्र कृष्ण अष्टमी को पूजा करके नक्षत्र-पुरुषव्रत का आरंभ करें। व्रत की समाप्ति में अपनी शक्ति के अनुसार ज्योतिषी को घृत से पूर्ण पात्र, सुवर्ण, रत्न और वस्त्र आदि का दान करें। अन्य ब्राह्मणों की दूध, घृत और गुड आदि से पूजा करें और उन्हें सोना, चाँदी, वस्त्र आदि दें।

दद्याद् व्रते समाप्ते घृतपूर्णं भाजनं सुवर्णयुतम्।
विप्राय कालविदुषे सरत्नवस्त्रं स्वशक्तया च ॥७॥
अन्नैः क्षीरघृतोत्कटैः सह गुडैः विप्रान् समभ्यर्चयेत्।
दद्यात्तेषु सुवर्णवस्त्ररजतं लावण्यमिच्छन्नरः॥ ८॥

तब पुरुष दीर्घबाहु, विशाल और पुष्ट वक्षस्थल से युत, चन्द्रवदन, श्वेत और सुन्दर दाँतों वाला, गजराजगामी, कमलनयन, स्त्रियों का चित्त चुराने वाला और कामदेव के समान शोभनकाय हो जायेगा। स्त्री यह व्रत करने पर शरत्-पूर्णिमा के चन्द्रमा तुल्य अमलद्युतिमुखी, सरोजनेत्रा, रुचिरदशना, सुकर्णा, कमल के समान हाथ पैरों वाली, स्तन के भार से नतांगी, दक्षिणावर्त नाभि से युत, केले के समान स्निग्ध जंघों तथा सुन्दर नितम्बों वाली, सौभाग्यवती और सुन्दर मिली हुई पादांगुलियों से युत हो जाती है।

प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षा विशाकरास्यः सितचारुदन्तः।
गजेन्द्रगामी कमलायताक्षः स्त्रीचित्तहारी स्मरतुल्यदेहः॥१०॥
शरदिन्दुमुखी सरोजनेत्रा सुदशनकर्णा भ्रमरकेशा।
स्तनभारानतमध्या ताम्रोष्ठी पद्मकरचरणा॥ १२॥

आगे श्लोक १३ में लिखा है कि इस व्रत को करने वाले नर-नारी देव-देवी होकर नक्षत्रों में वास करते हैं और बाद में चक्रवर्ती राजा-रानी होते हैं किन्तु यह कल्पना है। ज्योतिषी के घर में भी एक नक्षत्रचक्र बना रहता है। जजमान उसकी पूजा करते हैं और उसका माहात्म्य भी इसी भाषा में लिखा है। ये नक्षत्र कूर्मविभागाध्याय में पर्वतों और देशों में बाँटे गये हैं, नक्षत्रव्यूहाध्याय में जातियों में बाँटे गये हैं, ग्रहभक्तियोगाध्याय में सात ग्रहों में बाँटे गये हैं और यहाँ शरीर के अंगों में विभाजित किये गये हैं। वस्तुतः नक्षत्रों के सारे गुण ज्योतिषीजी की मुट्ठी में हैं।

संक्रान्ति प्रकरण

यद्यपि यह स्पष्ट है कि ग्रहों के जिस कक्षाक्रम के आधार पर विदेश में सात वारों और सात राशिस्वामियों की कल्पना हुई उसकी विज्ञान ने प्रत्यक्षविरुद्ध एवं मिथ्या सिद्ध कर दिया है तथा वारों का आकाश से और शुभाशुभ से कोई सम्बन्ध नहीं है (देखिए पृष्ठ ७१) तथापि आज के ज्योतिष के फलादेश का सर्वाधिक भाग मिथ्या वारों पर आधारित है। यहाँ संक्रान्ति प्रकरण के प्रारम्भ में वारों के आधार पर ही यह निर्णय किया गया है कि सूर्य किस वार में किस राशि में प्रविष्ट होने पर किन जातियों को सुख-दुख देगा किन्तु द्वितीय श्लोक में ही ये सारे फल उलट जाते हैं (देखिए पृष्ठ ६३-६४) यहाँ प्रथम श्लोक में ही ज्योतिष ने इस झूठे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि सूर्य की किरणों का भिन्न-भिन्न जातियों पर विभिन्न प्रभाव पड़ता है। वारों और जातियों पर आधारित इस फलादेश की गरिमा-लघिमा का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। ३।३ की टीका में वसिष्ठ कहते हैं कि कोई भी संक्रान्ति यदि पाप (रवि, भौम, शनि) वारों में लगी तो सूखा पड़ेगा, राजे लड़ेंगे और जनता अनेक रोगों से पीड़ित होगी पर वही संक्रान्ति शुभ वारों में लगी तो सुख शान्ति की बाढ़ आ जायेगी। कश्यप का वचन है कि सूर्य की मेष संक्रान्ति के दिन चन्द्रमा यदि मघादि दस नक्षत्रों में है तो घोर उपद्रव होंगे और शेष १७ नक्षत्रों

में है तो क्षेम की वर्षा होगी। ये वसिष्ठ कश्यप नूतन हैं।

यहीं लिखा है कि जिसके जन्ममास, जन्मनक्षत्र, जन्मतिथि, जन्मवार आदि में संक्रान्ति लगती है वह धनहीन, दुखी और रोगी हो जाता है। अशुभ फल की शान्ति के लिए दानादि का विस्तृत विधान है और लिखा है कि सूर्य भगवान् दिये हुए दान को कई गुना करके दूसरे जन्म में लौटा देते हैं पर दान न करने वाले सात जन्मों तक रोगी तथा दुखी रहते हैं किन्तु यहाँ फलों में और पुण्यकाल में बहुत मतभेद है।

यस्य जन्मर्क्षमासाद्ये रविसंक्रमणं भवेत्। तन्मासाद्यन्तरे तस्य रोगः क्लेशो धनक्षयः॥
दत्तानि तु ददात्यर्कः पुनर्जन्मनि जन्मनि। सप्तजन्मसु रोगी स्याददाने दुःखभाग्भवेत्॥

पुण्यकाल–संक्रान्ति में नहाने से और जप दान आदि से बहुत पुण्य मिलता है इसलिए इसे पुण्यकाल कहते हैं पर कुछ आचार्यों के मत में सर्वोत्तम पुण्यकाल सेकण्ड के लाखवें भाग तुल्य होता है अतः उसे पाने के लिए कुछ समय तक पानी में डूबा रहना उत्तम होगा। कठिनाई यह है कि स्नान की अपेक्षा दान का महत्त्व अधिक है और पुण्यकाल के बाद दान देना ऊसर में बीज बोने के समान है।

त्रुटेः सहस्त्रभागो यः स कालो रविसंक्रमे। संक्रान्तिसमयः सूक्ष्म।
दुर्ज्ञेयः पिशितेक्षणैः॥ ऊषरवापितबोजं यद्वत्तद्वच्च निष्फलं भवति॥

फिर भी संक्रान्ति प्रकरण के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि अब कोई नरकगामी नहीं होगा क्योंकि २७ नक्षत्र संक्रान्तियाँ हैं, १२ राशिसंक्रान्तियाँ हैं और ग्रह सात हैं। इस संक्रान्ति संख्या (२७+१२)×७=२७३ हो जाती हैं। इनमें नहाने और दान आदि करने से निश्चित रूप से स्वर्ग प्राप्त होता है। सुविधा यह है कि इनके आदि, मध्य और अन्त भी स्वर्गप्रद हैं तथा इधर ग्रहों की संख्या १२ हो गयी है। लिखा है–आद्यन्तमध्ये जपदानहोमं कुर्वन्नवाप्नोतिसुरेन्द्रधाम॥ यह अन्य आचार्यों का कथन है।

संक्रान्ति का रूप और फल

ज्योतिष में कल्पना का सर्वत्र एकछत्र राज्य है। सूर्य जिस क्रान्तिवृत्त में चलता दिखाई देता है वह निराकार है, राशिकाल निराकार है और संक्रान्तियाँ निराकार हैं पर संक्रान्ति की भीषण आकृति मानी गयी है। वह साठ योजन लम्बी है, नारी है, नर है, हाथ में खप्पर लिये है, एक वस्त्र पहनती है, पीछे देखती है, उसकी नाक लम्बी है, ओठ लम्बे हैं और नव भुजाएँ हैं।

षष्टियोजनविस्तीर्णा लम्बोष्ठी दीर्घनासिका, एकवस्त्रा नवभुजा
संक्रान्तिः पुरुषाकृतिः॥ पृष्ठालोका भ्रमत्येषा गृहीत्वा खर्परं करे॥

बारह संक्रान्तियों के रूप इससे भिन्न हैं और बारह हैं। संवत् २०१४ की मकरसंक्रान्ति का वाहन हाथी, उपवाहन गधा, वस्त्र लाल, पुष्प बेल, भोजन दूध, जाति पशु, आयुध धनुष, तिलक गोरोचन और वय प्रौढ़ है। यह खड़ी है, लम्बोदरी है, दक्षिण से उत्तर जा रही है, ईशान कोण में देख रही है और कौवा की पत्नी काकी है। कौवा का वाहन हाथी–गधा कैसे होगा, वह लाल वस्त्र कैसे पहनेगा, धनुष कैसे लेगा, यह सब पूछना अज्ञान है। इसके फल में एक अंग शुभ है तो दूसरा अशुभ है। लिखा है कि संक्रान्ति पौषमास में हुई है इसलिए जनता सुखी रहेगी, घर-घर आनन्द मंगल होंगे परन्तु कृष्णपक्ष में हुई है इसलिए जनता रोगों, चोरों और पाखण्डियों से दुखी रहेगी। संक्रान्ति रिक्तातिथि में हुई है इसलिए अन्न अधिक मात्रा में उत्पन्न होंगे और जनता उत्सवों एवं आनन्दों से परिपूर्ण हो जायेगी परन्तु चरनक्षत्र में हुई है इसलिए दुग्धादि रसों और

अन्नादिकों का नाश होगा तथा चोर सुखी रहेंगे। यह संक्रान्ति सोमवार में हुई है इसलिए व्याधियाँ समाप्त हो जायेंगी तथा सबके घरों में महोत्सव और मंगल होंगे किन्तु गरकरण में हुई है अत: निश्चित है कि अन्नों का नाश होगा, सुख की हानि होगी और गर (रोगों) की वृद्धि होगी। रात्रि के चतुर्थ प्रहर में हुई है इसलिए गाय, भैंस, बैल, भेड़ आदि के रक्षकों की मृत्यु होगी तथा स्थिर लग्न में हुई है इसलिए संन्यासी, योगी, किसान और अन्य लोग बहुत कष्ट पायेंगे। इसका वाहन गज है इसलिए विन्ध्यप्रदेश और कलिंग के लोग स्थान छोड़कर भागेंगे और मरेंगे। उपवाहन गधा है अत: वायव्य और उत्तर में रोग फैलेंगे तथा घरों में वैरवृद्धि होगी। यहाँ वस्त्र, आयुध, तिलक, वय आदि के फल शुभ हैं तो पुष्प, भूषण आदि के अशुभ हैं। निर्णय कैसे होगा?

करण और संक्रान्ति

संक्रान्ति की राशियाँ विदेशी हैं और करण पंचांग का नूतन अंग है अत: ये फल भी नूतन हैं। जैसे हरि, वर्ष के चार मासों में सोये रहते हैं उसी प्रकार सूर्य भी कुछ करणों में सोये, कुछ में खड़े और कुछ में बैठे रहते हैं इसलिए फल भी तीन प्रकार के होते हैं। ११ करणों में संक्रान्तियों के ११ प्रकार के वाहनादि होते हैं। मुहूर्तचिन्तामणि में लिखा है कि इनमें संक्रान्ति लगने पर इन पदार्थों का, इनसे जीविका चलाने वालों का और इनमें सोये, बैठे, खड़े लोगों का नाश हो जाता हैं पर शान्तियाग उन्हें बचा लेते हैं। कठिनाई यह है कि वाहन, उपवाहन, आदि १४ पदार्थों में कुछ शुभ और कुछ अशुभ होते हैं अत: फल निर्णय अवश्य हो जाता है। स्थिति, उपवाहन, उपवस्त्र, दो प्रकार के फल और भोजनपात्र आदि के अतिरिक्त ९ अंग ये हैं–

करण	वाहन	वस्त्र	शस्त्र	भोजन	लेप	जाति	फूल	वय	भूषण
बव	सिंह	श्वेत	भुशुंडी	अन्न	कस्तूरी	देव	पुंनाग	बाला	नूपुर
बालव	बाघ	पीला	गदा	खीर	कुंकुम	भूत	जाती	कुमारी	कंकण
कौलव	वराह	नीला	असि	भिक्षा	पाटोर	साँप	वकुल	वृद्धा	मोती
तैतिल	गधा	लाल	दण्ड	पक्व	मिट्टी	पक्षी	केथक	युवती	मूँगा
गर	हाथी	लाल	चाप	दूध	रोचन	पशु	बेल	प्रौढ़ा	मुकुट
वणिज	भैंसा	काला	तोमर	दही	महावर	मृग	मन्दार	प्रौढ़ा	मणि
विष्टि	घोड़ा	काला	कुन्त	चित्रान्न	कस्तूरी	विप्र	दूर्वा	वृद्धा	गुंजा
शकुनि	कुत्ता	चित्र	पाश	गुड़	हल्दी	क्षत्र	कमल	वन्ध्या	कौड़ी
चतुष्पद	भेंडा	काला	अंकुश	मधु	काजल	वैश्य	चमेली	वन्ध्या	नीलं
नाग	बैल	नग्न	अस्त्र	घी	अगर	शूद्र	पाटल	ससुता	हीरा
किंस्तुघ्न	मुर्गा	काला	बाण	चीनी	कपूर	संकर	जपा	संन्यासिनी	सोना

घातचक्र—मेषादि बारह राशियों के लिए कुछ काल और कुछ अन्य पदार्थ घातक कहे जाते हैं। इनका चक्र पंचांगों में दिया रहता है। इनमें ग्रहघात, मासघात, वारघात, योगलग्ननक्षत्रघात और स्त्रीचन्द्रघात मुख्य हैं। जन्मकाल में कोई न कोई घात अवश्य रहता है। ये युद्ध, परीक्षा, नौकरी, सवारी आदि अनेक कर्मों में वर्जित हैं।

राशियों का आरम्भस्थान ही विवादग्रस्त

यहाँ तक राशियों और संक्रान्तियों का सामान्य विवेचन हुआ पर कठिनाई यह है कि जिन राशियों के आधार पर ज्योतिषशास्त्र खड़ा है तथा जिनके द्वारा मरने के घंटे-मिनट और सुख-दुख के सारे काल बता दिये जाते हैं उनका आरम्भ स्थान ही वादग्रस्त है और उसमें लगभग २४ दिनों की त्रुटि है। यद्यपि ज्योतिष के प्रत्येक विशेषज्ञ की अन्तरात्मा यह स्वीकार

करती है कि सायन गणना ही प्राकृतिक है, समुचित है और निर्विवाद है फिर भी रूढ़िग्रस्त लोकाचार से दबे रहने के कारण कुछ ही मनीषियों को इसे व्यवहार में लाने का साहस होता है। श्री बापूदेव शास्त्री ने अपने पंचांग के प्रारम्भ में लिखा है कि यद्यपि सायन गणना ही वास्तविक है तथापि भारत में सर्वत्र निरयण का प्रचार देखकर मैं सामान्य जनता के प्रमोद के लिए निरयण पंचांग बना रहा हूँ। परन्तु ऐसा करने से हर मुहूर्त और हर जन्मपत्र अपने वास्तविक स्थान से २४ दिन दूर चला जाता है।

खेद है कि निरयणवादियों में अनेक मत हैं। महाराष्ट्र की ज्योतिष पत्रिकाओं में इस विषय को लेकर दो पक्षों के उच्चकोटि के ज्योतिर्विदों में अतिशय कटु भाषा में विवाद चलते रहते हैं। आप उसे पढ़ कर चकित हो जायेंगे। तिलकपक्ष वाले रेवती के जीटापीशियम तारे की और केतकर पक्ष वाले चित्रा का भोग १८० अंश मानकर उसके सामने वाले बिन्दु को राशिचक्र का आरम्भकाल कहते हैं। इस प्रकार दोनों अयनांशों में चार अंश का अन्तर पड़ जाता है। केतकर जी भी पहले रैवतपक्ष को ही मानते थे किन्तु उस पक्ष के अयनांश का प्रचार कम है इसलिए वे बाद में चित्रापक्ष में आ गये। बड़ी हास्यास्पद बात है, ये दोनों पक्ष वाद में यहाँ तक उतर आये हैं कि एक पक्ष कहता है–चित्रानक्षत्र की बाघ योनि और राक्षसगण है तथा रेवती की गज योनि और देवगण है इसलिए जीटापक्ष शुभ है। दूसरा कहता है कि चित्रा मानव (कन्या-तुला) है पर रेवती मछली (मीनराशि) है अत: चित्रा श्रेष्ठ है। वेदवेत्ता और ज्योतिर्विद् होने से दोनों पक्षों के विद्वान् जानते हैं कि वेद में प्रथम नक्षत्र कृत्तिका है और हमारे वाद का वेद से कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी एक पक्ष उन वेदमन्त्रों को प्रस्तुत करता है जिनमें चित्रा शब्द आया है और दूसरा पूषन्तव व्रते, रेवती रमर्ध्व, पूषणं वनिष्ठुना, अश्विना पिबतां आदि मन्त्र सुनाता है। दोनों पक्ष जानते हैं कि आरम्भस्थान चल है और तारे भी गतिमान् हैं किन्तु वे लोकभय से सायनपक्ष को अङ्गीकार नहीं करते। वे जानते हैं कि वेदों में राशियाँ नहीं है, वार नहीं है, कोई काल अशुभ नहीं है किन्तु वे नूतन ज्योतिष को मानते हुए अपने पक्ष को वैदिक सिद्ध करते हैं।

सायननिरयन संक्रान्ति

इस युग के महान् ज्योतिर्विद् श्री व्यंकटेश बापू जी केतकर ने अपने नक्षत्रविज्ञान के प्रारम्भ में ही लिखा है कि "२२ दिसम्बर को स्पष्ट दिखाई देने वाले सूर्य के उत्तरायण को पुरोहित जी १४ जनवरी तक दक्षिणायन कहते जाते हैं और यजमान शान्ति से सुनते रहते हैं। इससे बड़ी हास्यास्पद बात क्या होगी। हम राशियों को ही लग्न कहते हैं, लग्न से ही जन्म, युद्ध, यात्रा, विवाह आदि के फल बताते हैं पर वही अशुद्ध है। हमारी राशिसीमाएँ ही भ्रष्ट हैं पर दुराग्रह उसे शुद्ध कहता है।" आश्चर्य है, एक ओर तो हम क्षण और सेकण्ड के सहस्रवें भाग की बात करते हैं और दूसरी ओर २४ दिन की त्रुटि को त्रुटि नहीं मानते। हम कहते हैं कि जिस दिन दिनमान सबसे छोटा हो और क्षितिज में सूर्य का उदय उत्तर ओर खिसकने लगे वही उत्तरायण है पर उसे २४ दिन बाद मानते हैं निश्चित है कि ऐसा करने पर हमारे सारे पर्व अस्तव्यस्त हो जायेंगे। हमें सोचना है कि हमारे पूर्वजों ने ऋतुओं एवं पर्वों को व्यवस्थित करने के लिए ही अधिमास की व्यवस्था की तथा कृत्तिका, मृगशिरा आदि के प्राचीन नियमों का परित्याग कर अश्विनी को प्रथम नक्षत्र माना। हमारे प्राचीन आचार्यों ने बार-बार कहा है कि सायन संक्रान्ति ही वास्तविक संक्रान्ति है, निरयन तो बकरी के गलस्तन की भाँति निरर्थक है अतः होम, मुहूर्त, स्नान, जन्मपत्री आदि में सायन को ही लेना चाहिए। आकाश में सायन सूर्य ही घूमता है।

चलसंस्कृततिग्मांशोः संक्रमो यः स संक्रमः। अजागलस्तन इव राशिसंक्रान्तिरुच्यते॥
अयनांशयुतो भानुर्गोले चरति सर्वदा। (३। ६ टीका में वसिष्ठ–पुलस्त्यवचन)॥

यहाँ ३। ६ में रामाचार्य ने स्वयं भी सायन संक्रान्ति की प्रशंसा की है। इसके भाष्य में गोविन्दाचार्य ने लिखा है कि सायन गणना से ग्रहण का ठीक समय नहीं आता। इस विषय में श्रीसुधाकर द्विवेदी ने गणकतरंगिणी में लिखा है कि "गोविन्द

ज्योतिषसिद्धान्त से अनभिज्ञ थे। सायन गणना में राहु भी सायन किया जाता है, इसे समझे बिना उन्होंने जो प्रलाप किया है वह उन्हीं को शोभा देता है।'' श्री शं, वा, दीक्षित ने भी इस विषय में उनकी टीका की है।

गोचर प्रकरण और ग्रहवेध

गोचर जन्मराशि से भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थित ग्रहों का शुभाशुभ फल बताता है किन्तु इसके सब आदेशों को मानने पर वहुत से लोगों को विवाह के लिए शुभ काल मिलेगा ही नहीं (देखिये विवाह प्रकरण)। ग्रहवेध से उसमें अन्य बाधाएँ भी आ जाती हैं। सूर्य जन्मराशि से केवल चार स्थानों में शुभ माना गया है पर उनके सामने कोई ग्रह बैठा हो तो वे स्थान भी विद्ध हो जाते हैं। यही स्थिति हर ग्रह की है। पता नहीं, ये वेध किस आधार पर बने हैं। यहाँ लिखा है कि पिता-पुत्र में वेधदोष नहीं लगता पर जातक इस नियम को नहीं मानता क्योंकि वहाँ सूर्य, शनि और चन्द्र-बुध पिता-पुत्र होकर भी एक दूसरे के शत्रु हैं। मेष का सूर्य उच्च है पर शनि नीच। तुला का शनि उच्च है पर सूर्य नीच। आगे लिखा है कि (१) जिस देश, गाँव और मनुष्य का नक्षत्र पापग्रह से विद्ध है उसका सर्वनाश निश्चित है। (२) वसिष्ठ का कथन है कि विद्धनक्षत्र में विवाह होने पर दुलहिन विवाह की साड़ी पहने विधवा हो जाती है परन्तु सव ग्रहों का वेध देखने पर विवाह का शुभकाल मिलना ही कठिन है।

	सूर्य				चन्द्र						मं	श	रा	के	
शुभ	३	११	१०	६	७	१	११	६	१०	३	३	६	११		
विद्ध	९	५	४	१२	२	५	८	१२	४	९	१२	९	५		
मध्यम	१	२	५	७	९	७	९	१०	११		१	२	५	७	९

	बुध						गुरु					शुक्र								
शुभ	२	४	६	८	१०	११	२	१०	९	५	७	१	२	३	४	५	८	९	११	१२
विद्ध	५	३	९	१	८	१२	१२	८	१०	४	३	८	७	१	१०	९	५	११	३	६
मध्यम		१	५	६	७	९	१	२	६	१०			५	६	७	१०				

४।८।१२ में सब ग्रह अशुभ हैं और उनका फल है रोग, भय, पीड़ा, भय, वैर, मरण, शोक, धननाश आदि। शुभ स्थानों के फल हैं सम्मान, धनलाभ, स्त्रीलाभ, सुख आदि। पंचांगों में प्रायः इन १०८ फलों का चक्र दिया रहता है। यहाँ ४। ५ में एक अन्य वेध का भी वर्णन है और उसमें दो मत हैं। लिखा है कि यह वेध हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में ही लगता है। पता नहीं क्यों, कोस दो कोस के भीतर ही ग्रहों की किरणें परिवर्तित हो जाती हैं। आगे लिखा है कि नवग्रहों में से एक का भी गोचर अशुभ हो तो मृगया, साहस और यात्रादि कर्म मत करो। सारांश यह कि शत्रु ने दुर्ग घेर लिया हो तो भी आगे न बढ़ो, घर में बैठकर शान्तियज्ञ और जपदान करते रहो। क्योंकि मनुष्यों की हानि-वृद्धि ग्रहों के अधीन है, वे पूज्यतम हैं और जो इन स्थितियों में शान्तियज्ञ नहीं करते उन पर अर्थहानि, मरण एवं अन्य सब संकटों का आगमन निश्चित है।

सुदूरयानं मृगयां विवर्जयेद् ग्रहेषु राजा विषमस्थितेषु हि
ग्रहेषु विषमस्थेषु शान्ति यत्नात् समाचरेत्। हानिवृद्धी ग्रहाधीने तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः॥
ग्रहेषु विषमस्थेषु यः शान्तिं न करोति सः। अर्थहानिं च मरणं लभते सर्वसंकटम्॥

शान्तिविधि पुराणों में विस्तार से लिखी है। उसके साथ ग्रहों के दान और जप आवश्यक होते हैं। उनके चक्र पंचांगों में लिखे रहते हैं। संक्षिप्त चक्र यह है-

सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
माणिक	मोती	मूँगा	रत्न	पुखराज	हीरा	नीलम्	सोनेका	सोना
मूँगा	चाँदी	केसर	सोना	सोना	चाँदी	तिल	नाग	कम्बल
गेहूँ	शंख	कस्तूरी	काँसा	पोथी	चन्दन	तेल	रत्न	कस्तूरी
गुड़	कपूर	घोड़ा	हाथी	पीला	चावल	लोहा	गोमेद	उड़द
नयागृह	श्वेत	भूमि	दाँत	वस्त्र	चीनी	जूता	नीला	वैदूर्य
सवत्सा	वस्त्र	गृह	हरा	अन्न	घी	काला	वस्त्र	मणि
गौ	चीनी	गेहूँ	वस्त्र	पुष्प	श्वेत	वस्त्र	कम्बल	रत्न
केसर	घी	गुड़	घी	घी	वस्त्र	गज	ताम्र	बकरा
लाल	बैल	सोना	कपूर	मधु	सोना	महिषी	पात्र	लोहा
वस्त्र	चावल	ताँबा	पोथी	चीनी	घोड़ा	सोना	सूप	शस्त्र
सोना	दही	लाल	फल	भूमि	दही	कस्तूरी	खड्ग	तेल
ताँबा	पुष्प	वस्त्र	भोजन	छाता	इत्र	काली	उरद	काला
						गाय	ताँवा	वस्त्र
७०००	११०००	१००००	६०००	१६०००	१६०००	२३०००	१७०००	१८०००

अष्टकवर्ग–ज्योतिषशास्त्र कहता है कि गोचर के फल स्थूल और अष्टकवर्ग स्थूल होते हैं। इसीलिए बड़ी जन्मपत्रियों में अष्टवर्ग की भी आठ कुण्डलियाँ बनायी जाती हैं। इनमें लग्न भी एक ग्रह बन जाता है किन्तु गोचर के साथ अष्टकवर्ग देखने पर मुहूर्त और भी दुर्लभ हो जाता है।

ग्रहणदोष–किसी की जन्मराशि से इन बारह स्थानों में ग्रहण लगे तो सामने लिखे बारह फल होते हैं। इनके दोषों को दूर करने के लिए नाना प्रकार के दानों का आदेश है। लिखा है कि जिस मनुष्य और जिस राज्य के नक्षत्र में ग्रहण लगता है वे अपने मित्रों सहित नष्ट हो जाते हैं। जैसे रोहिणी नक्षत्र में ग्रहण लगा तो उस नक्षत्र वाले मर जायेंगे तथा बम्बई, बड़ौदा, बरलिन, बेतिया, बून्दी, बरेली, बदायूँ, बहराइच, बाराबंकी, बुलन्द शहर, बीकानेर, वाराणसी, विजयनगर आदि ध्वस्त हो जायेंगे। बचने का एक ही उपाय है–शान्तियाग और दान। वसिष्ठ का कथन है–

१	२	३	४
घात	क्षति	लाभ	कष्ट
५	६	७	८
चिंता	सुख	स्त्रीकष्ट	मृत्यु
९	१०	११	१२
अपमान	सुख	लाभ	कष्ट

यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते। राज्यभंगं सुहृन्नाशं मरणं तस्य निर्दिशेत्॥
यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ। तज्जातानां भवेत्पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः॥
सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं ताम्रभाजनम्। सदक्षिणं सवस्त्रं च श्रोत्रियाय निवेदयेत्॥
सौवर्णं राजतं वापि बिम्बं कृत्वा निवेदयेत्। गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं विशेषतः॥
तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन। हेमनागप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव॥
एतानेव महामंत्रान्स्वर्णपट्टे च संलिखेत्। कर्तुः शिरसि तं बध्वा दद्याद्विप्राय मन्त्रकैः।
न तस्य ग्रहपीड़ा स्याद्यानबन्धुधनक्षयः। परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥

अर्थात् सुमेरु पर्वत पर विराजमान गर्गाचार्य शौनक मुनि से कहते हैं कि जिस राज्य के और मनुष्य के नक्षत्र में

ग्रहण लगता है उसे अनेक कष्ट होते हैं अत: वह ज्योतिषी को गाय, भूमि, अन्न, वस्त्र और विशेषत: सुवर्ण का दान दे। ताँवे के पात्र में सोने का नाग, काला तिल और दक्षिणा रख कर दे। ग्रहण में सारी धरती कुरुक्षेत्र हो जाती है, सब जल गंगाजल और सब ब्राह्मण ब्रह्म तुल्य हो जाते हैं इसलिए अपने स्थान में ही शीघ्र दान कर दे। शास्त्रोक्त मन्त्रों को सुवर्ण पत्र पर लिखे, सिर पर बाँधे और थोड़ी देर बाद ब्राह्मण को दे तो सारे कष्ट भाग जायेंगे, सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जायेंगी और मरने पर मुक्ति मिलेगी। देते समय कहे कि हे तमोमय राहुदेव! आप सूर्यचन्द्र का मर्दन करने वाले महावीर हैं, इस सुवर्णपत्र और नाग के दान से प्रसन्न होकर मेरे ग्रहणजन्य कष्टों को दूर करें। सूर्य या चन्द्रमा के ग्रहणकाल में जन्म हुआ है तो मृत्यु, पीड़ा दरिद्रता, रोग, शोक और कलहादि का आना निश्चित है और उसके निवारणार्थ शान्तियज्ञ आवश्यक है। उसमें पहले नक्षत्रेश देव की सोने की मूर्ति बनाये। सूर्य ग्रहण में सूर्य सोने का और चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा चाँदी का हो। दोनों पर दो-दो सुन्दर वस्त्र चढ़ाये, यज्ञ के बाद सब आचार्य को दे, ब्राह्मणों को भोजन कराये और अन्त में हाथ जोड़ कर क्षमा माँगे।

किन्तु सत्य है कि सारे ग्रह जड़ हैं अत: वे न तो हमारी प्रार्थना सुनते हैं न आहुतियाँ लेते हैं। जड़ ग्रह अपनी प्रकृति के अनुसार हमें कुछ देते हैं और ज्ञान-विज्ञान द्वारा उनसे उसका सौ गुना पाया सकता है किन्तु याचना से कुछ नहीं। ग्रह आदि से माँगने की परम्परा ने देश में भिखमंगों की एक विशाल सेना तैयार कर दी है। पूजा-प्रार्थना केवल एक परमेश्वर की उचित है पर वह भी कर्मठता और सत्कर्मों द्वारा। ग्रहण एक प्राकृतिक घटना है। जैसे मेघों से सूर्य-चन्द्र आच्छादित हो जाते हैं उसी प्रकार वे चन्द्रमा और पृथ्वीछाया से ढक जाते हैं अत: इनसे भयभीत होना अज्ञान है। ग्रहगोचर और अष्टकवर्ग की कोई उपपत्ति नहीं है और उनकी प्रतिकूल स्थिति में प्रतिदिन कई सहस्र विवाहादि हो रहे हैं अत: वे भी हेय हैं।

४।७ में लिखा है कि पापग्रहों के बीच में रहने पर तथा उनसे युत और दृष्ट होने पर शुभ चन्द्रमा भी अशुभ हो जाता है पर सत्य यह है कि चन्द्रमा उस सूर्य से प्रकाशित और सुशोभित होता है जो ज्योतिष में सबसे बड़ा पापग्रह है और वेद में साक्षात् विष्णु है अत: ज्योतिष की पाप और शुभ की परिभाषा ही असत्य है। क्या मंगल और शनि के पाप होने का कोई प्रमाण है? ४।८ में लिखा है कि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा यदि शुभ है तो पूरा पक्ष शुभ है, वह अशुभ है तो पूरा पक्ष अशुभ है और कृष्णपक्ष की स्थिति इसके ठीक विपरीत है अर्थात् कृष्णपक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा अशुभ है तो वह पूरा पक्ष शुभ है परन्तु यह भी एक कुकल्पना है क्योंकि (१) शुक्ल और कृष्ण, दोनों पक्षों में प्रकाश और अंधकार के क्षण तक समान होते हैं अत: वे दोनों समान हैं। (२) यदि पक्ष के प्रथम दिन के आधार पर पूरा पक्ष शुभ-अशुभ हो जाता है तो आप शुभ वार, शुभ तिथि और शुभ लग्न आदि देखने का परिश्रम क्यों करते हैं?

ताराशान्ति—२७ नक्षत्रों को तीन भागों में विभाजित कर नव-नव के तीन भाग बनाओ। जन्मनक्षत्र से ३, ५, ७ तारे अशुभ हैं, उन्हें विपत्ति, प्रत्यरि और मृत्यु कहते हैं। उनमें आया चन्द्र कष्टप्रद होता है। उसकी शान्ति का उपाय यह है कि सोना, तिल, गुड़ आदि का दान करो।

चन्द्रावस्था—प्रत्येक राशि में चन्द्रमा की प्रवास, नाश, मरण आदि १२ अवस्थाएँ होती हैं। अशुभ दशाओं के शमनार्थ उनमें स्वर्णादि का दान आवश्यक है। इन दशाओं के नाम हैं—यात्रा, नाश, मरण, जय, हास्य, रति, क्रीड़ा, सुप्त, भुक्त, ज्वर, कम्प और स्थिरता। किन्तु प्रश्न है कि क्या एक मास में चन्द्रमण्डल में ये १२ अवस्थाएँ १२ बार आती हैं? क्या चन्द्रमा एक मास में १२ बार स्थिर हो जाता है और १२ बार मर जाता है? १६वें श्लोक में सूर्यादिकों की अशुभ स्थितियों को शुभ बनाने के लिए गाय, शंख, बैल, सोना, पीताम्बर, घोड़ा, तलवार, और बकरा आदि के दान का विधान है पर एक मास में केवल चन्द्रमा की कम से कम ६० अशुभ अवस्थाएँ आती हैं, सब ग्रहों की निश्चित रूप से कई सौ हो जायेंगी तो जजमान कितना दान करेंगे? १८ वें श्लोक में अशुभ योग, चन्द्र करण तिथि, वार, नाडी और तारा में सोना, शंख, अन्न, चावल, रत्न, गाय आदि देने का आदेश है अत: इस प्रकरण को गोचर न कह कर दान प्रकरण कहना उपयुक्त होगा।

रत्नधारण–यहाँ तीन श्लोकों में ग्रहबाधाशान्ति और विविधफलप्राप्ति के लिए कई प्रकार के रत्नधारण का आदेश है। रत्नों, धातुओं और रंगों के प्रभाव को तो कोई भी दूरदर्शी अस्वीकार नहीं कर सकता किन्तु मन में बार-बार शंका होती है कि जो ज्योतिषी ग्रहों के वास्तविक कक्षाक्रम को नहीं जानते थे, जिन्होंने ग्रहों में पापशुभ का मिथ्या विभाजन किया है तथा जिनकी सहस्त्रों उक्तियाँ प्रत्यक्षविरुद्ध एवं हास्यास्पद हैं वे यह कैसे जान गये होंगे कि अमुक ग्रह की किरणों का अमुक धातु, रत्न और जड़ी से सम्बन्ध है। अतः हमें इसे आँख मूँद कर मानना नहीं है बल्कि नये सिरे से अनुसन्धान करना है कि ग्रहों का रत्नों और रंगीन वस्त्रादिकों से क्या सम्बन्ध है। आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में लिखा है कि हीरा पहनने पर शत्रु, विष, रोग एवं बिजली आदि के भय समाप्त हो जाते हैं और इन्द्र देश में सर्वदा समुचित पानी बरसाते हैं।

यस्तं बिभर्ति मनुजाधिपतिर्न तस्य दोषा भवन्ति विषरोगकृताः कदाचित्।
राष्ट्रे च नित्यमभिवर्षति तस्य देवः शत्रूंश्च नाशयति तस्य मणेः प्रभावात् ८२। ६

परन्तु एक मनुष्य के हीरा की अँगूठी पहन लेने पर राष्ट्र में सदा मनोवांछित वर्षा होती रहेगी तथा उस पर विष, रोग और चिन्ता का प्रभाव नहीं पड़ेगा, यह कथन विश्वसनीय नहीं है। इसके आगे लिखा है कि इसे पहनने पर नाना प्रकार के भोगों की (८०। १८), पुत्र की, विजय की और आरोग्य की प्राप्ति होती है (८१। २२)। सर्पमणि को धारण करने वाले के शत्रुओं का नाश हो जाता है, उस पर विष का प्रभाव नहीं पड़ता, दरिद्रता भाग जाती है और विजय की प्राप्ति होती है (८१। ३०) इस प्रकार के अनेक फल लिखे हैं पर वे सब परीक्षणीय हैं। सत्य होते तो किसी राजा और बड़े सेठ को कोई कष्ट और विषाद नहीं होता पर हम जानते हैं कि दिलीप, दशरथ और राम ही नहीं, इन्द्र भी कभी निश्चिन्त नहीं रहे। शाहजहाँ बादशाह रत्नजटित तख्ताऊस पर बैठता था और रत्न पहनता था पर उसका अन्तिम समय जेल में बड़े कष्ट से बीता। रत्न पहनने से पुत्र की प्राप्ति होती तो हरिश्चन्द्र, दिलीप और दशरथ की पुत्रप्राप्ति वाली लम्बी लम्बी कथाएँ न लिखी जातीं और अनेक नरेशों को बच्चे गोद न लेने पड़ते।

भागवत में लिखा है कि महाराज सत्राजित सूर्य के मित्र थे अतः सूर्य ने उन्हें स्यमन्तक नाम की एक ऐसी मणि दी थी जो प्रतिदिन नियमित रूप से आठ भार सोना उगलती थी और हर बाधाओं को नष्ट करती थी। उनका घर धनधान्य, पुत्रपौत्र, गजअश्व आदि से भरा रहता था किन्तु गले में उस मणि के रहते सत्राजित के भाई प्रसेन को बाघ खा गया। सत्राजित स्वयं मणि पहन कर सोये थे पर शतधन्वा ने उन्हें पशु की भाँति काट-काट कर मणि ले ली। उसने भी मणि से त्रस्त होकर वह अक्रूर के पास रख दी पर अक्रूर तब तक अशान्त और दुखी रहे जब तक मणि उनके पास रही। कोहनूर की भी ऐसी ही कथा है अतः हमें तटस्थ हो कर सोचना है कि क्या जड़ सूर्य से किसी मनुष्य की मित्रता हो सकती है? सूर्य यदि चेतन देव है तो उसकी मणि से सत्राजित को इतना कष्ट क्यों हुआ? क्या किसी मणि या हीरे से प्रतिदिन मनों सोना पैदा होना संभव है? मणिरत्न पहनने से शरीर पर ग्रहकिरणों का कुछ अधिक प्रभाव पड़ सकता है पर वे धनधान्य कैसे उगलेंगे? सुनते हैं कि पारस पतथर के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है और नेपाल नरेश प्रतिदिन एक मन लोहा बाबा पारसनाथ से छुआते हैं पर प्रश्न यह है कि वे लाखों मन क्यों नहीं छुआते? ऐसे अन्य प्रश्न भी हैं।

संस्कार प्रकरण–रजोदर्शनफल और शान्तियज्ञ

यहाँ ४८ संस्कारों के नाम लिखे हैं पर मुख्य १६ हैं और उनमें गर्भाधान प्रथम है। उसके विधिवत् सम्पन्न होने पर शिशु का सारा जीवन महत्त्वपूर्ण हो जाता है। उसके कुछ शास्त्रीय विधान पीछे (पृष्ठ ३०१ में) लिखे हैं। रजोदर्शन के पूर्व गर्भाधान नहीं होता इसलिए सर्वप्रथम उसी का विवेचन है। इसमें मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, वेला, लग्न आदि के परस्पर विरोधी अनेक ऐसे फल लिखे हैं जिनमें एकवाक्यता कभी संभव ही नहीं है। प्रथम फल यह है कि एक दिन और रात में रजोदर्शन होने पर नारी क्रमशः सुशीला और कुलटा हो जाती है किन्तु उनमें वेलाओं के फल भिन्न-भिन्न हैं। लिखा है कि

प्रात: काल, सायंकाल, मध्याह्न और मध्यरात्रि में रजोदर्शन होने पर नारी क्रमश: धनवती, अति सुखी, वेश्या और विधवा हो जाती है, अर्थात् दिन शुभ है और मध्यदिन अशुभ है।

मासफल में कठिनाई यह है कि भारत में चार प्रकार के मास प्रचलित हैं। अमान्त, पूर्णिमान्त और दो सौर मास। शुक्लपक्ष को शुभ और कृष्णपक्ष को अशुभ कहा है पर यह भी लिखा है कि शुक्ल पंचमी के पूर्व और कृष्ण दशमी के बाद विशेष कुलटा हो जाती है। वारों में पूर्ण शुभ केवल गुरु हैं पर मध्याह्न, रात्रि, पापमास और पापतिथि होने पर वह भी व्यर्थ है। प्रति तिथि में दो करण होते हैं। एकादशी शुभ है पर भद्रा अशुभ है। एक का फल है सुशीला और दूसरी का कुलटा। बारह लग्नों के बारह फल लिखें हैं पर पापग्रह बली होने पर विधवा बना देते हैं। नक्षत्रों के रजोदर्शन के कुछ फल ऐसे हैं जिन्हें मानने पर जन्म से सुशीला कन्या का भी वध या त्याग ही उचित होगा। चित्रा में रजोदर्शन होते ही कन्या चित्र बनाने में निपुण हो जायेगी और प्रीति योग में हुआ तो संगीताचार्या बन जायेगी। करणों के अधिकांश फल अशुभ हैं, योगों में आधे अशुभ हैं और कुछ ये हैं–

मासफल–चैत्र विधवा, ज्येष्ठ रुग्णा, आषाढ़ मृतपुत्रा, भाद्रपद भाग्यहीना, पौष पुंश्चली शेष लगभग शुभ। वारफल–रवि विधवा रुग्णा, भौम आत्मघातिनी दुखी, बुधशुक्र कन्यावती, शनि पुंश्चली मलिन। तिथिफल–२ दुखी, ४ विधवा, ६ नाशकर्त्री, ९ विधवा, १२ रुग्णा, १४ कुलटा, १५ पापिनी। नक्षत्रफल–भरणी कुलटा गर्भपातिनी, कृत्तिका हिंसाप्रिया कोपिनी वन्ध्या, आर्दा कुलटा भाग्यहीना मृतपुत्रा, आश्लेषा वन्ध्या कुशीला निर्दया, मघा कर्कशा कामातुरा दुष्टा, विशाखा अन्यगर्भा मद्यपा पापिनी। लग्नफल–१ व्यभिचारिणी दरिद्रा, ३ कामातुरा, ४ विधवा कुलटा, १० कर्कशा...। इस प्रकार के कई सौ भीषण फल हैं।

वस्त्रफल–रजोदर्शन के समय जैसा वस्त्र है वैसा ही फल होगा। कुछ फल ये हैं–श्वेत सुभगा, दृढ़ पतिव्रता, लाल रुग्णा, नील विधवा, पीला सुखी, मित्र पतिप्रिया, सूक्ष्म कृशांगी, जीर्ण अभाग्नि, मलिन दरिद्रा, क्षौम वस्त्र है तो रानी होगी। वसिष्ठ का कथन है कि वस्त्र में रक्तबिन्दुओं की संख्या विषम होने पर पुत्रवती और सम होने पर कन्यावती होगी। रजोदर्शन के समय हाथ में झाडू, अग्नि, लकड़ी, तृण, सूप आदि के रहने पर कुलटा होगी। रक्त थोड़ा होने पर व्यभिचारिणी, लाल होने पर पुत्रवती, काले से मृतप्रजा, श्वेत से काकवन्ध्या, पीले से पापिनी और सिन्दूरवर्ण पर कन्यावती होगी। इनके अतिरिक्त संक्रान्ति, अमावास्या, ग्रहण, कुयोग, निद्रा तथा ज्वर आदि की स्थितियाँ भी अशुभ हैं। गाँव से बाहर, अन्य गाँव में, दूसरे के घर में, नग्नावस्था आदि में रजोदर्शन होने पर भी कुलटा, वन्ध्या और विधवा होती है। रक्त द्वारा कैसी आकृतियाँ बनीं, इसके फल २५ से अधिक हैं। गोविन्दाचार्य कहते हैं कि इनके अतिरिक्त रजस्वला कन्या से माता आदि द्वारा पूछे प्रश्नों के आधार पर वसिष्ठ ने सैकड़ों फल लिखे हैं। सबको सत्य मानने पर एक भी कन्या ऐसी नहीं मिलेगी जिसके रजोदर्शन में दसपाँच भीषण दोष न हों किन्तु सौभाग्य की बात है कि मुनियों ने इनके लिए अनेक उपाय और शान्तियज्ञ बता दिये हैं। वसिष्ठ का आदेश है कि अशुभ रजोदर्शन के बाद पतिपत्नी तब तक ब्रह्मचर्य से रहें जब तक दुसरा निर्दोष रजोदर्शन न हो जाय और देवों, पितरों एवं ब्राह्मणों को अन्न, सोना, वस्त्र आदि से तृप्त न कर दिया जाय।

विवर्जयेदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमान्यघस्त्रे।
ततः सुरान् भूमिसुरान् पितृंश्च सन्तर्पयेदन्नसुवर्णवस्त्रैः॥

पर सत्य यह है कि निर्दोष रजोदर्शन कभी मिलेगा ही नहीं क्योंकि मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, लग्न वेला और वस्त्र आदि का एक साथ शुभ होना अशक्य है इसलिए यज्ञ की शरण में जाना ही होगा। इस यज्ञ का कर्मकाण्ड विस्तृत है। इसमें स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध, नवग्रहपूजन आदि बड़े यज्ञों के सब कर्म करने पड़ते हैं। लिखा है कि ईशानकोण में चार कलश रखे, कलशों में पंचरत्न (सोना, मोती पन्ना आदि) डाले, कलशों पर पूर्णपात्र, वस्त्र एवं सूर्य, इन्द्र,

इन्द्राणी और भुवनेश्वरी की सोने की मूर्तियाँ रखे। बाँस के एक बड़े पात्र में लाल वस्त्र रखे, पात्र को चावल से भरे, उस पर कदली (केला) देवी की पाँच पल (२० तोला) की सोने की मूर्ति रखे। मूर्ति में केले का खंभा और उसके लम्बे-चौड़े पत्ते बने हों। सबको १००८ आहुतियाँ दे। यज्ञ के बाद सब ब्राह्मण को दे कर प्रार्थना करे कि हे रंभा देवि! तुम सूर्य की प्रिया हो, मुझे इस आपत्ति से बचाओ और सविता देव से कह दो कि वे प्रसन्न हों। इसके बाद आचार्य को पुनः गाय, भूमि, सोना और तिल आदि दे। अन्य ब्राह्मणों को दक्षिणा दे और रुद्रमन्त्रजापक को बैल दे। सबको घी, चीनी, पायस और मिठाई खिलावे तथा समय पर गर्भाधान करने का अवकाश न हो तो ब्राह्मण को एक गाय दे दे, यह आश्वलायन का आदेश है। धन रहने पर इस यज्ञ में कृपणता करने वाले चोर को पूरा फल नहीं मिलता।

ईशान्यां चतुरः कुंभान् पंचरत्नसमन्वितान्। सौवर्णां कदलीं तत्र सौवर्णभुवनेश्वरीम्॥
रक्षा मां रजसो दोषाद्रंभे भास्करवल्लभे। आचार्याय ततो दद्यात्स्वर्णगोभूतिलांस्ततः॥
सदक्षिणमनड्वाहं प्रदद्याद्रुद्रजापिने। चौरः प्रकीर्तितः सोऽत्र वित्तशाठ्यं करोति यः॥

शंकाएँ—(१) ज्योतिषशास्त्र जन्मपत्री द्वारा मनुष्य के पूरे जीवन के एक-एक क्षण का निश्चित भविष्य बता देता है तो पद-पद पर शुभ मुहूर्त की क्या आवश्यकता है? जो लिखा है सो होगा। (२) जब सारा भविष्य सुनिश्चित है तो आप बार बार यज्ञ क्यों कराते हैं? क्या ये यज्ञ विधाता के विधान को मिटा देंगे? (३) रजोदर्शन के पूर्व कन्या के सीमन्त, पुंसवन, विष्णुपूजन, जातकर्म, नामकरण, भूम्युपवेशन, निष्क्रमण, दोलारोहण, अन्नप्राशन, चौल, अक्षरारंभ, विद्यारंभ, आदि संस्कार शुभ मुहूर्तों में शास्त्रविधि से करा दिये गये हैं और उसका जन्म भी उच्च ग्रहस्थिति में हुआ है तो क्या रविवार को या रात में रजोदर्शन होने से वे सब चौपट हो गये? (४) यदि आप का यह कथन सत्य है तो क्या विवाह का शुभ मुहूर्त सब ठीक कर देगा? (५) यहाँ अशुभ वार, करण, योग और राशि में हुए रजोदर्शन की शान्ति के लिए नारदोपदिष्ट यज्ञ लिखा है पर क्या नारद के समय भारत में इनमें से एक का भी प्रचार था? आप अपनी करतूत नारद पर क्यों थोप रहे हैं? (६) क्या नारद सदृश देवर्षि जड़ केले की पूजा कर सकते हैं? (७) क्या केला सूर्य की पत्नी है? क्या केला आपकी प्रार्थना सुनता है? (८) क्या आप इस कदली देवी को किसी प्राचीन ग्रन्थ में दिखा सकते हैं? (९) नारद के समय कन्याओं का प्रथम रजोदर्शन पिता के घर होता था। इसका प्रमाण आगे विवाह प्रकरण में पढ़ें। (१०) आजकल इन अशुभ रजोदर्शनों का न कोई शान्तियाग होता है, न इनसे कोई भयभीत होता है न कोई आपत्ति आती है तो हम इन वचनों को वाग्जाल क्यों न कहें और आप की अन्य उक्तियों को इसी कोटि में क्यों न रखें?

रजस्वलास्नान, सूतिस्नान और गर्भाधान

धर्मशास्त्र बार-बार कहता है कि रजः शुद्धि के बाद पत्नी से संभोग न करने पर भ्रूणहत्या का पाप लगता है। इसी से बचने के प्रयास में एक राजा के वीर्य से कौरवपाण्डवों की परदादी सत्यवती का जन्म मछली से हुआ था किन्तु ज्योतिष के अनुसार रजस्वला के स्नान का ही शुभ मुहूर्त शीघ्र नहीं मिलता। केवल वार का प्रपंच देखें—एक आचार्य केवल पाप वारों का निषेध करता है तो दूसरा कहता है कि शुक्रवार में स्नान करने पर काकवन्ध्या हो जाती है, बुधवार में सन्तान का अभाव हो जाता है, शनि में मृत्यु होती है और सोमवार में दूध का अभाव हो जाता है। पाँचो पंचागों का विचार करने पर विलम्ब निश्चित है। सूतीस्नान में भी ऐसी ही आपत्तियाँ हैं। लिखा है कि प्रसूता कृत्तिकादि कुछ नक्षत्रों में नहाने से तुरन्त मर जाती है और जीवित रही तो वन्ध्या हो जाती है।

एताः प्राणहरास्तारास्तासु स्नानं न कारयेत्।
यदि स्नानं प्रकुर्वीत पुनः सूतिर्न जायते॥

परिवारनियोजन—ज्योतिष कहता है कि नारी रजःशुद्धि के बाद शुक्रवार को नहा ले तो केवल एक सन्तान की

माता बनती है और बुधवार को नहा ले तो माता वनती ही नहीं, वन्ध्या हो जाती है। कृत्तिकादि कुछ नक्षत्रों की भी यही स्थिति है। ऐसा सुन्दर उपाय रहते न जाने क्यों भारत के नरनारी और डाक्टर वन्ध्याकरण के कष्टसाध्य साधनों से त्रस्त हैं। मैथुन के वार में कई मत है। रवि–भौम पापवार है, शनि–बुध नपुंसक हैं और सोम–शुक्र स्त्री हैं। शुभ केवल एक गुरुवार बचता है पर वह भी पति–पत्नी का घातवार या दीक्षादिन न हो तब केवल वार की यह स्थिति है, सबका विचार करने पर तो भ्रूणहत्या का पाप लेना ही होगा किन्तु महर्षि वात्स्यायन ने अपने कामशास्त्र में लिखा है कि पोथी के ये सिद्धान्त तभी तक माने जाते हैं जब तक रस का पूर्ण उदय नहीं हुआ रहता।

शास्त्राणां विषयास्तावत् यावन्मन्दरसा नराः।
रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं न च क्रमः॥

रजस्वला के नियम–रजस्वला को स्नान, दातुन, मालिश आकाशदर्शन तथा सुगन्ध, पान, माँस का सेवन और पात्र में भोजन आदि का निषेध है। लिखा है कि वह खप्पर में या हाथ में खाये, चुल्लू से पानी पीये और दूध, दही, पलंग, पीढ़ा आदि छोड़ दे। पुरुष को अनेक पत्नियाँ हों और उनका ऋतुकाल एक साथ आ जाय तो विवाहक्रम या ऋतुक्रम से सबके साथ संभोग करे। न करने पर घोर पाप लगेगा पर शक्ति न हो तो प्रायश्चित्त के लिए ब्राह्मणों को उतनी सवत्सा गायों का दान करे।

ताम्बूलगन्धौ मधुमांसमाल्यं स्वापं दिवा पात्रगतां च भुक्तिम्।
सावर्जयेत्खर्परभोजनं च कुर्याच्च तोयं करतः पिबेच्च॥
कार्ष्णायसे पाणितलेथवा स्याद्भुंजिः पृथिव्यां शयनं विधेयम्॥
अनेकभार्यो युगपत्त्वथर्तौ व्रजेद्विवाहक्रमतस्त्वृतोर्वा।
सर्वासु कार्यो ह्यतुकालसंगो दोषान्वितः स्यान्नकृतौ स नूनम्॥
दद्यात्तस्माद् गां सवत्सां द्विजाय॥

प्रश्न यह है कि ब्रह्मवैवर्तपुराण और गर्गसंहिता के अनुसार कृष्ण को एक अरव से अधिक धर्मपत्नियाँ थीं। कई रामायणों के अनुसार दशरथ की सात सौ पत्नियाँ थीं और भागवत में लिखा है कि महायोगी, महान् दाता, महानों में महान् श्री शशबिन्दु जी को एक करोड़ पत्नियाँ थीं तो ये और ऐसे अन्य सहस्रों लोग हर मास में कितनी गायें दान करते थे और वे कहाँ से आती थीं?

शशबिन्दुर्महायोगी महाभोजो महानभूत्।
तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् (भागवत)॥

गर्भवती हो जाने के बाद प्रथम से दशम पर्यन्त शुक्रादि सात ग्रह एक–एक मास के स्वामी होते हैं परन्तु जातकर्म आदि संस्कार शुभ वारों में ही शुभ होते हैं। ५। १० के भाष्य में लिखा है कि तीसरे मास में पुंसवन संस्कार करना चाहिए। यदि स्वाती, रेवती, अश्विनी आदि में हो गया तो उत्पन्न बालक गुरुपत्नीगामी, लोभी, नाटा और खोटा होगा तथा बालिका कुलटा होगी अर्थात् पिछले सारे संस्कार, मुहूर्त और शान्तियज्ञ व्यर्थ हो जायेंगे। गर्भ की रक्षा के लिए अष्टम मास में विष्णुपूजन आवश्यक है। उसमें विष्णु की सोने की मूर्ति और पीताम्बर आदि आवश्यक है। वे सब ब्राह्मण को दिये जाते हैं।

स्वात्यां मघायामश्विन्यां यदि पुंसवनं भवेत्। रेवत्यामपि फल्गुन्योर्नरः स्याद् गुरुतल्पगः॥
लुब्धो ह्रस्वतनुः क्रूरो कन्या चेत्कुलटाभवेत्। शेषाणि दशधिष्ण्यानि निन्दितानि विशेषतः॥
पूज्यः स्वर्णमयो विष्णुर्गर्भिणां रक्षणाय च। ब्राह्मणाय प्रदातव्या प्रतिमा वस्त्रसंयुता॥

जातकर्म–जन्म के ११वें या बारहवें दिन जातकर्म करना चाहिए। उसमें मुहूर्त पूछना आवश्यक है। इसे गाँवों में

बरही कहते हैं। इसके कर्मकाण्ड में देवों, पितरों और ब्राह्मणों को सोना, गाय, भूमि, पात्र वस्त्र और तिल आदि से तृप्त करना आवश्यक है। लिखा है–

सन्तर्प्य देवान् सपितृन् द्विजांश्च सुवर्णगोभूतिलपात्रवस्त्रैः।
ग्रहदोषविनाशाय पुत्रायुः श्रीविवृद्धये (५। ११ भाष्य)॥

नामकरण–चारों वर्णों के नामकरण के दिवस भिन्न-भिन्न हैं। इसमें भी शुभ मुहूर्त देखना आवश्यक है। मध्याह्न के पूर्व का समय उत्तम है और शेष काल मध्यम या निकृष्ट हैं। प्राचीनकाल में नक्षत्र देवों, अन्य देवों, शूरों, सन्तों, महापुरुषों और उत्तम साहित्यिक शब्दों से नाम रखे जाते थे। लिखा है कि नाम का प्रभाव पड़ता है। वह सारे व्यवहार का, भाग्य का और यश आदि का हेतु है अतः सर्वदा प्रशस्त नाम रखना चाहिए।

नामास्ति सर्वव्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म॥

परन्तु भारत में विदेशी ज्योतिष के साथ अवकड़ा चक्र आ जाने के बाद से प्रथम नाम उसी से रखा जाने लगा है किन्तु ट ठ ड ढ ख घ झ आदि अक्षरों पर प्रशस्त नाम मिलते ही नहीं। कुछ लोग बच्चों को दीर्घायु और भाग्यशाली बनाने के लिए घुरहू, कतवारू, पबारू, खदेरू, भगेलू आदि नाम रखते हैं। वह धारणा विचारणीय है।

दन्तशान्ति–जन्म से १, २, ३, ४, ५ मासों में दाँत निकल आयें तो क्रमशः बालक, अनुज, भगिनी, माता और अग्रज की मृत्यु होती है। छठें से आगे अतुल सुख और लक्ष्मी आदि की प्राप्ति होती है। दाँत के साथ जन्म हुआ हो या पहले ऊपर दाँत निकले हों तो शान्ति आवश्यक है। उसकी विधि यह है–बालक को पहले हाथी पर या नाव पर या सुवर्णासन पर बैठा कर नहलाओ फिर फल, पुष्प, रत्न, स्थालीपाक आदि से ब्रह्मा की पूजा करो, सात दिनों तक ब्राह्मणभोजन कराओ और आठवें दिन उन्हें सोना, चाँदी, गाय, भूमि, वस्त्र, पात्र, आसन आदि की दक्षिणा दो, तो कोई नहीं मरेगा।

मातरं पितरं चाथ खादेदात्मानमेव च। गजपृष्ठगतं बालं नौःस्थं वा कांचनासने॥
सप्ताहं चात्रं कर्तव्यं भक्त्या ब्राह्मणभोजनम्। कांचनं रजतं भूर्गौ रासनादीनि दक्षिणा॥

अथर्ववेद ६। १४० के तीन मन्त्रों में भिन्न-भिन्न मासों और ऊपर वाले दातों का वर्णन तो नहीं है पर प्रार्थना है और उसमें द्विवचनान्त प्रयोग है। कहा है कि हे ब्रह्मणस्पते और अग्निदेव! जो दाँत पैदा होने पर बाघ की भाँति माता-पिता को खाते हैं उन्हें आप शिव करें। हे दाँतो! ये धान, जौ, उड़द और तिल तुम्हारे भाग रखे हैं। इन्हें खाओ और बालक के माता-पिता को मत मारो। तुम दोनों मंगलस्वरूप हो जाओ, तुम्हारा घोरत्व हमारे शत्रुओं पर जाय और इसके मातापिता सुखी रहें।

यौ व्याघ्राविवरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च।
तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः॥ १॥
ब्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्। एष वां भागो
निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च॥ २॥
उपहूतौ सयुजौ स्योतौ दन्तौ सुमंगलौ। अन्यत्र वां घोरं
तन्वः परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च॥ ३॥

अन्नप्राशन–इसमें अशुभ वार और नक्षत्रादि तो वर्जित हैं ही, जन्मराशि और जन्मलग्न से अष्टम लग्न और नवांश भी वर्जित हैं। कुछ अन्य लग्न वर्जित हैं और चटावन के समय के कुछ ग्रहों के फल हैं–भिखमंगा होना, कोढ़ी होना,

रोगी और दीर्घायु आदि होना। पर आजकल न कोई लग्न पूछता है, न कोढ़ी और यज्ञकर्ता आदि होता है, न उन दोषों के निवारणार्थ यज्ञ करता है।

भूम्युपवेशन और ताम्बूलभक्षण

पृथ्वी वराह के सिर पर टिकी है इसलिए पहले पृथ्वी और वराह की पूजा कर के शिशु को भूमि पर बैठाओ तथा यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराओ। ब्राह्मणों को पान खिलाने के वाद शिशु को पान खिलाओ क्योंकि उनके खाये पान के पत्ते से हरि, सुपारी से ब्रह्मा और चूने से शिव तृप्त होते हैं तथा बालक मेधावी, भाग्यशाली, दूरदर्शी और सुन्दर हो जाता है (५।२३)। मनुष्य के ४८ संस्कार किये गये हैं तो कोई विघ्न नहीं आयेगा पर उनमें मुहूर्तदोष आ गया है तो दक्षिणा के साथ ब्राह्मण को सवत्सा दुधारू गाय अवश्य दो (५।५६)। वेदों ने, उपनिषदों ने और महामुनियों ने कहा है कि दक्षिणा में भूमि दो, गाय दो, सोना दो पर भूल कर भी चाँदी मत दो क्योंकि वह शिव के अश्रु से उत्पन्न होने के कारण देवकार्य में अशुभ है। हाँ, पितृकार्य में दे सकते हैं।

तस्योपवेशनं कृत्वा भूमौ ब्राह्मणभोजनम्। रक्षैनं वसुधे देवि कुमारमिति प्रार्थयेत्॥
ताम्बूलं सुष्ठु यो दद्याद् ब्राह्मणेभ्योतिभक्तितः। मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनार्हश्च जायते॥
फलेन तृप्यते ब्रह्मा पत्रेण भगवान् हरिः। चूर्णमीश्वरतृप्त्यै च ताम्बूलाशनदानतः॥
धेनु सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम्। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेत्॥
शिवनेत्रोद्भवं रौप्यं पितृवल्लभम्। अमंगलं तद्यत्नेन देवकार्ये विवर्जयेत्॥

मुण्डन और क्षौरकर्म

मुण्डन का शास्त्रीय विधान विधिवत् घर पर ही सम्पन्न हो सकता है पर हमारे यहाँ प्रायः सब लोग बालक की दीर्घायु के लिए उसको कष्ट देकर तथा स्वयं धूप में कष्ट उठाकर सालभर के या तीन वर्ष के वच्चे को लेकर मोटर-गाड़ी में खड़े-खड़े यात्रा करते हुए विंध्याचल, चौकिया और मार्कण्डेयेश्वर आदि अनेक देवस्थानों में जाते हैं किन्तु यह क्रिया धर्मविरुद्ध है क्योंकि देवस्थान माला, फूल, जल आदि चढ़ाने के लिए हैं। मल, मूत्र, नख, हड्डी आदि गिराने के लिए नहीं। बाल हड्डी है। मुण्डन आदि कई कर्म १, ३, ५ आदि विषम वर्षों में ही होते हैं, सम में नहीं किन्तु इसका कोई युक्तिसंगत हेतु नहीं है। ज्योतिष में तीसरे वर्ष के पूर्व मुण्डन का विधान नहीं है। यह ठीक है पर उसमें गुरुशुक्र के वाल्य, अस्त, वृद्ध काल तथा अनेक तिथि, नक्षत्र, वार आदि वर्जित हैं। दक्षिणायन पूरा वर्जित है, उत्तरायण का चैत्र वर्जित है और ज्येष्ठ सन्तान के लिए ज्येष्ठ और मार्गशीर्ष मास भी वर्जित है। बालक की माता ऋतुमती हो या प्रसूता हो या उसका गर्भ पाँच मास से अधिक हो, या तारादोष हो तो मुण्डन नहीं होगा। सबसे दुर्लभ है निर्दोष लग्न। इनसे तथा अन्य कारणों से निर्दोष मुहूर्त नहीं मिलने पर आजकल इन विषयों को कोई नहीं पूछता। वार, नक्षत्र और विषम वर्ष देखे जाते हैं फिर भी पोथी में लिखी भीषण आपत्तियाँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं।

ज्योतिष कहता है कि रवि, मंगल और शनि वार मुण्डन करने पर बालक की आयु सात आठ मास घटा देते हैं तथा बुध, गुरु, चन्द्र और शुक्र वार ५, ११, ११, ७ मास बढ़ा देते हैं। यदि यह सत्य है तब तो मनुष्य की आयु चाहे जितनी बढ़ाई जा सकती है और पीछे लिखे ज्योतिष के आयुनिर्णय और दशाफल आदि को सहज ही झुठलाया जा सकता है। यदि कुछ वारों, तिथियों, नक्षत्रों आदि में क्षौरमुण्डन करने से आयु बढ़ती है तो आप मरने का मास और दिन तक कैसे निश्चित कर देते हैं? आगे लिखा है कि क्षौर से नवें दिन, ४, ६, ८, १४, १५ तिथियों में, स्नान के बाद, संध्या के समय तथा कुछ अन्य परिस्थितियों में किया क्षौर मृत्यु को बुलाता है। एक सिद्धान्त यह है कि यदि ब्रह्मा भी वर्ष के भीतर कृत्तिका में छ बार, या

अनुराधा में तीन वार, या रोहिणी में आठ बार, या मघा में पाँच बार क्षौर करा लें तो वर्ष बीतते-बीतते अवश्य मर जायेंगे। यह एक ही कथन ज्योतिष को मिथ्या सिद्ध करने में पर्याप्त है क्योंकि आजकल क्षौर नित्यकर्म हो गया है।

षट्कृत्तिकः पंचमघस्त्रिमैत्रो ब्रह्माष्टको यश्चतुरुत्तरश्च।
क्षौरी स वर्षं चतुराननोपि न प्राणितीति प्रकरः प्रवादः (५। ३५)॥

मेरे तीन जजमानों ने बालकों का मुण्डन विन्ध्याचल, चौकिया और मार्कण्डे जी, तीनों में कराया पर खेद है कि वे बालक १० वर्ष के भीतर चल बसे अतः मैं यह कर्म घर पर करने का आग्रह करता हूँ। यह धर्मानुकूल और सुविधाजनक है (देखिए पृष्ठ ९५, ९६)

उपनयन और विवाह संस्कार

जैसे विद्यालय के भवन की भव्यता का पढ़ाई से कोई सम्बन्ध नहीं है उसी प्रकार उपनयन और विवाह में मण्डप की सजावट और गाजेबाजे का संस्कार से कोई नाता नहीं है। शास्त्र कहते हैं कि जन्म से हर मनुष्य शूद्र रहता है और संस्कारों से द्विज हो जाता है पर संस्कार वह है जिसके द्वारा भगवान् बुद्ध ने डाकू अंगुलिमाल को साधु बना दिया था। महर्षि पंतजलि ने योगशास्त्र में कहा है कि संस्कार एक दो घण्टे में नहीं बल्कि श्रद्धापूर्वक दीर्घकाल तक निरन्तर अभ्यास करने से होता है। भागवत में जड़भरत का कथन है कि स्वर्गेच्छुक लोग तत्त्वबोध नहीं पाते। कुछ मन्त्रों के पाठ से, जल अग्नि सूर्य आदि की पूजा से अथवा वैदिक संस्कारों मात्र से वह संस्कार या तत्त्व तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक हम किसी महामानव की चरणधूलि से नहा न लें और उसके आदेशों को आत्मसात् न कर लें।

न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्वरीयसीरपि वाचः समासन्।
न च्छन्दसा नैवं जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकम्॥

भागवत (१०। २३) में नारीसंस्कार की दूसरी शिक्षाप्रद कथा यह है कि एक बार कुछ याज्ञिक ब्राह्मणों ने भोजन माँगने पर भूखे बच्चों को डाँट कर भगा दिया पर यह दृश्य देखकर उनकी पत्नियों का मातृहृदय रो पड़ा। तब उन्होंने ब्राह्मणों की चोरी-चोरी बालकों को पूछ-पूछ कर भर पेट खिलाया। बाद में इस बात को जान कर वे ब्राह्मण दुखी होकर कहने लगे कि धिक्कार है हमारे वेदाध्ययन को, उच्च कुल में जन्म को, लम्बे-लम्बे व्रतों को, शास्त्रीय बहुज्ञता को और धिक्कार है इस यज्ञ के कर्मकाण्ड को। हम ईश्वर से विमुख हैं, इसलिए वे हमसे रुष्ट हैं क्योंकि हमने धर्म के मूलतत्त्व को और संस्कार को नहीं पहचाना। हम लम्बी-लम्बी आशाओं और लम्बे संकल्पों वाले कर्मकाण्ड में उलझे मूर्ख हैं पर अपने को पण्डित समझ रहें है फिर भी इस लिए धन्य हैं कि ऐसी सत्संस्कारवती पत्नियाँ पा गये हैं। अहो! इनको न शिखा है, न यज्ञोपवीत है, न इनका कोई संस्कार है, न इन्होंने गुरुकुल में वास किया है, न आत्मचिन्तन और तप किया है फिर भी ये हमसे बहुत आगे हैं। हम संस्कार सम्पन्न होकर भी इनके भावों को नहीं पा सके।

धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम्। अहो वयं धन्यतमा येषां सन्तीदृशीस्त्रियः॥
नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासी गुरावपि। न तपो नात्ममीमांसां न शौचं न क्रियाः शुभाः॥

यहाँ लिखा है कि माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख आदि मासों में उपनयन करने से बालक धनी, सुशील, मेघावी और याजक आदि हो जाता है पर मार्गशीर्ष में करने पर भ्रष्ट हो जाता है। इसी प्रकार १, ४, ६, ७ आदि तिथियों और पापलग्नों में करने पर मदिरासक्त, मन्दबुद्धि, रोगी, अल्पायु, दरिद्र, मृत और शूद्र हो ज़ाता है तथा देवमाता अदिति के नक्षत्र में करने पर भ्रष्ट अथवा उतना ही पापी हो जाता है जितना कर्मनासा नदी को पार करने वाला। आश्चर्य है-वेदों में जिन मंगल बुध

आदि की कहीं चर्चा नहीं है यहाँ वे ही वेदशाखाओं के स्वामी कहे गये हैं परन्तु ये सब मिथ्या कल्पनाएँ हैं और उपनयन का अर्थ है–सत्य के पास ले जाने के प्रयास का शुभारंभ। यहाँ ३६ से ५८ तक बीस श्लोकों में तथा भाष्य में सैकड़ों श्लोकों में उपनयन के मुहूर्त की मीमांसा है पर आजकल कुमारों को विवाह के समय यज्ञोपवीत पहना दिया जाता है और फिर वह एक सप्ताह में अदृश्य हो जाता है। अब उसकी महत्ता समझाने से कोई लाभ नहीं है। हमें कुछ करके दिखाना है और स्वयं जानना है कि संन्यासी यज्ञापवीत क्यों नहीं पहनते तथा संस्कार का सत्य अर्थ क्या है।

मुहूर्तचिन्तामणि का विवाह प्रकरण

रामाचार्य ने यहाँ प्रथम श्लोक में लिखा है कि सुशीला भार्या धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति का साधन है पर उसका शील विवाहकालीन लग्न के अधीन है। इसलिए उसका चिन्तन सावधानी से करना चाहिए। शुभ लग्न शील के साथ सुपुत्र और धर्म भी देता है।

भार्या त्रिवर्गकरणं शुभशीलयुक्ता शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्याः!
तस्माद्विवाहसमयः परिचिन्त्यते हि तन्निघ्नतामुपगताः सुतशीलधर्माः॥

पर इस कथन में कई दोष हैं। (१) यहाँ नारी चतुर्थ वर्ग मोक्ष से बहिष्कृत कर दी गयी है पर शिव, राम, अत्रि, याज्ञवल्क्य, रामकृष्ण परमहंस, योगिराज अरविन्द, श्रीरामचन्द्र शुक्ल आदि सहस्रों महापुरुषों की पत्नियाँ उनके मोक्षसाधन में सहायिका रही हैं। नारी में दोष हैं तो पुरुषों में उससे अधिक हैं। नारी नर की जननी है। (२) यहाँ कहा है कि विवाहकालीन सुलग्न के प्रभाव से कुशीला कन्याएँ सुशीला हो जाती हैं पर प्रश्न यह है कि सुलग्न तो विवाह न होने पर भी आकाश में रहते हैं और प्रतिदिन घूमा करते हैं तो वे सब वरों को, वधुओं को चोरों को, अत्याचारियों को तथा सब प्राणियों को सुशील क्यों नहीं बना देते? (३) क्या विवाह के बाद सारे वर–वधू और मण्डप में बैठे नाई, बारी, समधी, पुरोहित आदि सुशील हो जाते हैं? क्या वे खिचड़ी के दिन धनलोभ के कारण झगड़ा नहीं करते? (४) क्या शूर्पणखा, रावण, कंस, जरासन्ध, ताडका आदि के विवाह में सुलग्न नहीं देखे गये थे? (५) कुछ लोग कहते हैं कि भार्या में वे गुण मन्त्र पाठ के प्रभाव से आते हैं पर रामाचार्य यह नहीं मानते और (६) मन्त्र में यदि यह शक्ति है तो आप उसके द्वारा विवाह के पूर्व ही सबको सुशील क्यों नहीं बना देते? (७) लग्न और मन्त्रों में इतनी शक्ति है तो विधवाओं की यह विशाल संख्या कहाँ से आ गयी? (८) रामाचार्य एवं अन्य ज्योतिषी कहते हैं कि विवाहकालीन शुभ लग्न जन्मपत्री के पिछले संस्कारों के और पूर्वजन्म के दोषों को मिटा देता है। यदि यह कथन सत्य है तो वराहमिहिर आदि आचार्यों ने संहिता, जातक और मुहूर्त ग्रन्थों में विवाहित नरों और नारियों के उन कुयोगों और शारीरिक कुलक्षणों का हृदय को कँपा देनेवाला भीषण वर्णन क्यों किया है तथा विवाह के बाद अनेक कुलक्षणा नारियों के त्याग का आदेश क्यों दिया है? (६) आप विवाह के पूर्व हर संस्कार में शुभ लग्न क्यों देखते हैं और पचासों शान्ति यज्ञ क्यों कराते हैं। विवाह लग्न आगे पीछे का सब ठीक कर देता है तो आप पुनः वधूप्रवेश, द्विरागमन, गृहप्रवेश आदि के मुहूर्त क्यों पूछते हैं? (१०) जैसे विवाहलग्न पिछले दोषों को समाप्त कर देता है उसी प्रकार क्या वधूप्रवेश, द्विरागमन आदि के सुलग्न विवाह लग्न के दोषों को समाप्त नहीं कर सकते?

वस्तुतः ये सबकी सब कल्पनाएँ हैं। मुख में पान सुरती ठूँस कर और गला ऊपर उठा कर अपवित्र शरीर से मन्त्र पढ़ कर वर–वधू कभी भी संस्कार सम्पन्न और सुशील नहीं बनाये जा सकते। आजकल विवाह–मण्डप में संस्कार नहीं, उत्सव होता है। मन्त्र पाठ नहीं, गाली पाठ होता है और छोटी सी शीशी में रखे घी से उठने वाले यागधूम की अपेक्षा कई गुना अधिक सिगरेट का धुआँ उठता है तो वर–वधू संस्कृत कैसे होंगे?

वैधव्ययोगशान्ति–६।२ का कथन है कि विवाह के पूर्व कन्या का भविष्य जानने के लिए ज्योतिषी के पास रत्न, मणि, फल, वस्त्र, पुष्प, दक्षिणा आदि लेकर जाओ और प्रश्न करो किन्तु यह देख लो कि उसका चित्त स्वस्थ है कि नहीं।

यह रत्नादिदान चित्तस्वस्थता के लिए ही है। प्रश्न अशुभ मुहूर्त में मत पूछो। तुम्हारे प्रश्नलग्न से चन्द्रमा यदि ६, ८ में स्थित है, लग्न में क्रूर ग्रह हैं, सात में मंगल है तथा कुछ अन्य कुयोग हैं तो समझ लो कि कन्या आठ वर्ष के भीतर रण्डा हो जायेगी (६।४)। प्रश्न से अन्य भी अनेक विधवा, कुलटा, मृतपुत्रा आदि योगों का पता लग जाता है (६।५)। पूछते समय यदि कौवा, गधा, कुत्ता, सियार आदि रोवें, घड़ा फूट जाय, पलंग टूट जाय या अन्य अपशकुन हों तो कन्या विधवा हो जाती है।

> **वायसो वा खरः श्वा शृगालोपि वा प्रश्नलग्नक्षणे रौति नादं यदि।**
> **भिद्यति यद्युदकुंभः शय्यासनादि भंगस्तस्या वैधव्यमादेश्यम्॥**

इसके बाद ज्योतिषी को कन्या की जन्मपत्री दिखाओ तो वह अन्य कुयोगों की शान्ति के यज्ञों की विधि बतायेगा (६।७)। उनमें कुछ ये हैं—कन्या को सुन्दर वस्त्रों से भूषित करो, पीपल या शमी या बेर के वृक्ष के पास ले जाओ, संकल्प कराओ तथा बाँस के पात्र में रखी उमाशंकर की मूर्ति की पूजा कराओ तो वैधव्ययोग नष्ट हो जायेगा। इसको पिप्पलव्रत कहते हैं।

विष्णुव्रत–विशुद्ध सोने की विष्णु भगवान् की ऐसी मूर्ति बनाओ जिसमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और आभूषण स्पष्ट दिखाई दे रहे हों। उसे दो पीताम्बरों से ढको, उससे कन्या का विवाह करो और सामग्री समेत मूर्ति ब्राह्मण को दे दो। आचार्य का आदेश है कि इस मूर्ति के स्थान में भूल से शालग्राम का पत्थर मत रख देना। लिखा है–मूर्तिः सौवर्णी शंखचक्रादिशोभिता, न शालग्रामशिला। इसके बाद कन्या ब्राह्मण से प्रार्थना करे कि मैंने पूर्व जन्म में परपुरुष में रत और पति से विरत हो कर विष, शस्त्र आदि से उसकी जो हत्या की थी उसी से यह वैधव्ययोग आया है। हे भूदेव! उन पापों के नाश के लिए और इस जन्म में सुख सौभाग्य पाने के लिए यह मूर्ति, वस्त्र, आभूषण और दक्षिणादि आप को दे रही हूँ। फिर तीन बार कहे कि मैं अब निष्पाप हूँ। उसके बाद उस मृगनयनी का विवाह करो।

> **यन्मया पूर्वजनुषि घ्नन्त्या पतिसमागमम्। विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वातिविरक्तया॥**
> **बहुसौभाग्यलब्ध्यै च महाविष्णोरिमां तनुम्। सौवर्णी निर्मितां शक्त्या तुभ्यं सम्प्रददे द्विज॥**

घड़े से और पीपल से विवाह—वैधव्य योग है तो एक घट को और कन्या को वस्त्रालंकार से भूषित करो। कन्या प्रार्थना करे कि हे कुंभदेव! आप वरुण के अंग और दुखियों के आश्रय हैं, कृपया इस पुत्री के पति को मृत्यु के मुख से बचावें। इसके बाद कन्या और घट, दोनों के वस्त्र, आभूषण आदि ब्राह्मण को दे दो। पीपल से विवाह की भी यही विधि है।

> **कन्यालंकारवस्त्राद्यं ब्राह्मणाय निवेदयेत्। तत्सर्वं वस्त्रपूजाद्यमपि तस्मै निवेदयेत्॥**
> **वरुणांगस्वरूपस्त्वं जीवानां च समाश्रयः। पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पालय दुःखिताम्।**
> **बनानां पतये तुभ्यं विष्णुरूपाय भूरुह। नमः पूर्वभवं पापं बालवैधव्यकारकं.......॥**

कुछ प्रश्न–(१) ज्योतिष ने जन्मपत्री से, प्रश्नकाल अपशकुनों से, शारीरिक लक्षणों से और स्वरशास्त्र आदि से जो वैधव्य योग बताये हैं उनसे कोई भी कन्या बच नहीं सकती इसलिए आपको यदि शास्त्र पर विश्वास है तो सबका विवाह विष्णु रूपी पीपल से, या कलश से या मूर्ति से अवश्य करें और उसे विष्णु की पत्नी बना देंगे पर प्रश्न यह है कि क्या कोई धर्मशील पुरुष फिर उस जगदम्बा से विवाह करेगा? (२) शास्त्र कहता है कि कन्या का विवाह छ वर्ष के बाद सम वर्ष में, रजोदर्शन के पूर्व करो और उसमें गुरुशुद्धि देखो। वर के वय में छूट है पर उसका विवाह विषम वर्ष में रविशुद्धि देख कर करो तो क्या कन्या का गुरु से और पुरुष का रवि से कोई विशिष्ट सम्बन्ध है? क्या आपको इस की कोई अनुभूति है? (३) क्या सीता, सावित्री, कुन्ती, दमयन्ती, तारा, अहल्या आदि के विवाह रजोदर्शन के पूर्व समवर्ष में हुए थे? (देखिए आगे धर्मशास्त्र प्रकरण)। (४) नारद और पराशर आदि का कथन है कि कन्या का विवाह जन्म से सम वर्ष में और पुरुष का जन्म से विषम

वर्ष में होना चाहिए। इसके विपरीत करने पर मृत्यु होती है परन्तु य
है तो क्या सब वर मर गये? (५) शास्त्र में जन्मवर्ष गर्भ से गिनने का
और विषम का सम हो जाता है। हमारे धर्मशास्त्र में नव वर्ष की कन
दान से वैकुण्ठलोक की प्राप्ति होती है किन्तु पराशर आदि का कथन
कई आचार्यों का कथन है कि विषम वर्ष के प्रारंभ के तीन मास अशु
होते हैं परन्तु क्या इस विवाद और प्रलाप में कोई तथ्य है? क्या इसक
भी ऐसी ही निरर्थक नहीं है? इस विधान में कठिनाइ यह है कि कन्
कहे हैं और गुरु जन्मराशि से केवल पाँच ही स्थानों में शुभ बताया

विवाहो जन्मतः स्त्रीणां युग्मेब्दे पुत्रपौत्रदः। विष
गौरीं ददन्नागलोकं वैकुण्ठं रोहिणीं ददत्। तस्मात

राम का विवाह न

विवाह मास विषयक ज्योतिष के अड़ंगों को मानने पर तु
मिलेगा क्योंकि जन्मराशि से ३, ६, १०, ११ राशियों में सूर्य के रहने प
हैं। मध्यम मासों में सूर्यपूजा कर के विवाह करने का आदेश है पर ज
अशुभ मास विवाह न करने पर चुप बैठे रहते हैं पर विवाह करते ही स
लेते हैं पर सूर्यपूजा की यह शक्ति अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होत
ति, ती, तु, तू, ते, तै अक्षर हैं। चूँकि राम, रणजीत आदि नाम इसी र
संख्या सर्वाधिक है। इनके लिए ३, ६ स्थानों में सूर्य की स्थिति के सम
भाद्रपद रहते हैं तो विवाह होंगे कैसे? अन्य राशियों के लिए भी वर्ष
अशुभ मासों में विवाह न करने पर आपत्ति नहीं आती किन्तु विवाह
कोई हिन्दू पूछता नहीं। पता नहीं ये दुलहे कैसे जीवित हैं। नीचे मे
(राशि) लिखे हैं। ये दो–तीन मास भी राशियों के पापग्रहों द्वारा विद्ध
देन हैं। वेदों और विवेक के अनुसार विवाह सर्वदा होना चाहिए।

१	२	३	४	५	६	७
३	१	१	१	२	३	०
१०			२	३	८	०
११		८		१०	११	०

सार्वकालिक वि

आश्वलायन गृह्यसूत्र १।४।२ में 'विवाहः सार्वकालिकः
निषेद्य नहीं है। पराशर, वात्स्य आदि मुनियों का कथन है कि वर्षा,
विवाह वृन्दावन १।५ में लिखा है कि वह आदेश मनोहर नहीं है। इ
होता था। गोविन्द दैवज्ञ लिखते हैं कि वह नियम राक्षस और गान्धर्व वि

कुछ भी नहीं देखे जाते। पढ़िये दुष्यन्त–शकुन्तला आदि की कथाएँ।

ज्योतिष कहता है कि प्रथम गर्भ से उत्पन्न कुमार और कुमारी का आपस में विवाह नहीं करना चाहिए इस कथन में कोई रहस्य हो सकता है। ज्योतिष का कथन है कि पुत्रवधू घर में आ गयी तो छ मास के भीतर कन्या का विवाह नहीं करना चाहिए पर वस्तुतः ज्येष्ठपुत्र के विवाह के बाद कन्या का विवाह करने में अनेक सुविधाएँ रहती है। यहाँ ६। १६ के भाष्य में लिखा है कि प्राचीनकाल में स्त्रियों का भी यज्ञोपवीत होता था और वे भी वेदाध्ययन करती थीं।

वैवाहिक गणना और राशि नक्षत्रों के परस्पर विरोधी गुण

	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुंभ	मीन
(१)	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य
(२)	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी
(३)	चर	स्थिर	सम	चर	स्थिर	सम	चर	स्थिर	सम	चर	स्थिर	सम
(४)	पित्त	बात	सम	फफ	पित्त	वात	सम	कफ	पित्त	वात	सम	कफ
(५)	क्षत्र	वैश्य	शूद्र	विप्र	क्षत्र	वैश्य	शूद्र	विप्र	क्षत्र	वैश्य	शूद्र	विप्र

हमारे यहाँ बहुत से उच्च शिक्षित वैज्ञानिक भी गणना पर पूर्ण विश्वस्त हैं और उसमें पूर्ण गुण (नम्बर) पाये बिना पुत्र–पुत्री का विवाह नहीं करते। इसका एक ही कारण है कि वे इसके इतिहास से अपरिचित हैं। काल्पनिक होने के कारण यह सिद्धान्त पचासों दोषों से ग्रस्त है। (१) प्रथम दोष यह है कि राशियाँ नक्षत्रों से ही बनती हैं पर यहाँ उन दोनों के गुणों में आकाश–पाताल का अन्तर है। अश्विनी, मृगशीर्ष, पुनर्वसु, शतमिषक्, चित्रा, स्वाती आदि नक्षत्र शुभ हैं पर इनकी मेष, मिथुन, तुला और कुम्भ राशियाँ क्रूर हैं (ऊपर वाला चक्र देखें)। मुहूर्तचिन्तामणि २। ५ में कृत्तिका और विशाखा सौम्य हैं किन्तु सब कर्मों में निषिद्ध हैं और यहाँ वे क्रूर, सौम्य दोनों हैं। कृत्तिका के तीन पाद वृष में होने से सौम्य हैं। आश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्र तीक्ष्ण और दारुण हैं पर उनकी ४, ८ राशियाँ सौम्य हैं तो निर्णय कैसे होगा? (२) यहाँ एक ही नक्षत्र के गुण परस्परविरोधी हैं। आश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्र विप्र भी हैं और राक्षस भी अन्य उदाहरण पृष्ठ २८६ में देखें। (३) १, २ पंक्तियों के अनुसार सब नर क्रूर हैं और सब नारियाँ सौम्य हैं। १, ५ पंक्तियों के अनुसार सब क्षत्रिय शूद्र क्रूर हैं और सब ब्राह्मण वैश्य सौम्य हैं। क्या यह सम्भव है? (४) यहाँ क्रूरों और सौम्यों के तथा नरों और नारियों के गाँव आकाश में क्रमशः बसे हैं पर क्या यह सम्भव है? क्या पृथ्वी पर यह स्थिति कहीं दिखाई देती है? ऊपर की ३, ४, ५ पंक्तियों में भी ये ही प्रश्न हैं। क्या वृष, सिंह और वृश्चिक राशियाँ स्थिर हैं और क्या ये आकाश में एक क्रम से बसी हैं? क्या कर्क, वृश्चिक और मछली में ब्राह्मण के गुण हैं और क्या ये क्रमशः बसे हैं।

गणना में ३६ अंकों के ८ पत्र (पेपर) हैं। प्रथम पेपर एक अंक का है। उसमें लिखा है कि वधू का वर्ण यदि वर से बड़ा है तो वह विधवा हो जायेगी–वर्णज्येष्ठा तु या नारी तस्या भर्ता विनश्यति। इसलिए ब्राह्मणी कन्या के नाम से ही लोग डर जाते है पर यह नहीं सोचते कि केकड़ा, बिच्छू और मछली राशियों का ब्राह्मण होना सम्भव नहीं है। दूसरे पेपर का सिद्धान्त है कि मनुष्यराशियों (३, ६, ७, ११) के वश में सिंह के अतिरिक्त सब राशियाँ है। मनुष्य जलचरों (४, १२, १०) को खा जाते हैं और शेष बातें मनुष्यों के व्यवहार से जान लेना चाहिए पर प्रश्न यह है कि क्या मेष और वृष राशि वालों में भेंड़ा और बैल के गुण होते हैं? क्या तुलाराशि वाले मानव मछली और भेंड़ा राशि वालों को खा सकते हैं। क्या वृश्चिक राशि वाले सबको डंक मारते है? क्या कर्क और मीन राशि वाले पानी में डुबाये जाने पर जीवित रह सकते हैं? क्या कन्याराशि वाले कन्या सदृश होते हैं? क्या इन राशियों का आकाश से और मनुष्य के गुणों से कल्पना के अतिरिक्त कोई सम्बन्ध है?

तारागणना में ३, ५, ७ शेषों को जो अशुभ माना गया है उसकी क्या कोई उपपत्ति है? ज्योतिष कहता है कि ब्रह्मा ने २८ नक्षत्रों को १४ योनियों में बाँटा है और उनमें शत्रुभाव है। वे योनियाँ हैं–घोड़ा–भैंसा, हाथीसिंह, मेषवानर, नकुलसर्प, हिरनकुत्ता, चूहाबिल्ली, और बाघगाय पर क्या यह सत्य है? क्या पुर्नवसु में विल्ली का और मघा में चूहे का कोई गुण है? ज्योतिष कहता है कि योनिमैत्री का विचार विवाह में ही नहीं, नौकरी में भी करना चाहिए। यदि स्वामी और सेवक के राशिस्वामियों और नक्षत्रस्वामियों में मित्रता नहीं है तो भविष्य में विवाद निश्चित है।

योनेमैंत्र्यां राशिपोश्चापि मैत्र्यां सेवा कार्या (२। २६)॥

ग्रहमैत्री–वर और कन्या के राशिस्वामियों में मित्रता आवश्यक है पर इसका निर्णय जिस आधार पर हुआ है वह मिथ्या है (देखिए पृष्ठि २६४)। २७ नक्षत्रों में ९ देव, ९ राक्षस और ९ मनुष्य मान लिये गये हैं पर वे मिथ्या और अनर्गल हैं। राम बाघ हैं, शूद्र हैं और राक्षस हैं, शिव राक्षस हैं, गणेश राक्षस हैं तथा पुनर्वसु नक्षत्र देव है, शूद्र है, बिल्ली है। भकूट में २–१२ का फल दरिद्रता, ६–८ का वैधव्य और ५–९ का सन्तानहानि है पर शंकरपार्वती और लक्ष्मीनारायण में ६–८ है, लक्ष्मीविष्णु तथा सिद्धिगणेश में २–१२ है तथा सीताराम में ५–९ है तो क्या ये सन्तानहीन, दरिद्र और विधवा हैं? ऐसे सहस्रों उदाहरण हैं।

वर्गशूद्धि–	गरुड़	बिल्ली	सिंह	कुत्ता	साँप	चूहा	मृग	मेष
	सबस्वर	कवर्ग	चवर्ग	टवर्ग	तवर्ग	पवर्ग	यवर्ग	शवर्ग

इनमें प्रारम्भ के चार भक्षक और शेष चार भक्ष्य हैं। शंकर जी पार्वती से कहते हैं कि स्वामिसेवक, पतिपत्नी, भाईभाई और नगरनागरिक में इनका विचार आवश्यक है। इस नियम के अनुसार कृष्ण के मथुरा, गोकुल, द्वारका छोड़ने का प्रसंग नहीं आना चाहिए था और राम को लौटकर अयोध्या नहीं पहुँचना चाहिए था। कन्या का नाम कमला और पति का नाम पद्मनाभ है तो वह बिल्ली चूहे पति को खा जायेगी। चटरू नौकर सिंह है और स्वामी रमेश, मृग है अतः नौकर को हटा दो। इस विधान को वर्गशुद्धि कहते हैं। ६। ३८ के भाष्य में लिखा है कि पति का नक्षत्र पत्नी के बाद है तो वह विधवा हो जायेगी। ऋण लेने वाले का नक्षत्र दाता से पूर्व है तो वह ऋण नहीं देगा। स्वामी का नक्षत्र सेवक से पूर्व है तो सेवा व्यर्थ है और ग्राम का नक्षत्र हमसे पूर्व है तो दरिद्र रहेंगे किन्तु पार्वती का प्रत्येक नक्षत्र शंकर से पूर्व है तथा लक्ष्मी का नक्षत्र नारायण के लगभग हर नाम के नक्षत्र के पूर्व है तो क्या लक्ष्मी–पार्वती विधवा हैं। वस्तुतः नक्षत्र चल हैं इसलिए उनका क्रम वदला करता है। आज का प्रथम अश्विनी वेद में उपान्त्य है। इस नियम को मानने पर काशी, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर आदि में प्रायः दरिद्रों का वास होगा क्योंकि इनके रोहिणी–मृग नक्षत्र पहले पड़ते हैं और देहली में कोई भी दरिद्र नहीं रहेगा क्योंकि उसका नक्षत्र रेवती अन्तिम है।

नाड़ी दोष–नाडी में ८ गुण हैं पर ज्योतिष का कथन है कि वरकन्या की नाडी एक है तो ३६ में २८ गुण मिलने पर भी विवाह नहीं होना चाहिए इसलिए ज्योतिषी पहले नाड़ी ही देखते हैं परन्तु भिन्न–भिन्न प्रान्तों में इससे भिन्न चार–पाँच नाड़ियाँ भी प्रचलित हैं और यहाँ नाड़ी में जो क्रम रखा है वह उपपत्तिविहीन है।

अन्य दोष–इसके बाद यहाँ विवाह के अन्य पचासों दोषों का वर्णन है। उनमें से यहाँ कुछ संक्षेप में लिखे जा रहे हैं। इनके फल के विषय में ब्रह्मा जी वसिष्ठ से कहते हैं कि मुहूर्त में कोटि गुण हों और इनमें से कोई एक दोष हो तो भूलकर भी कोई कर्म न करो। विवाह करने पर नारी विधवा होगी, यज्ञोपवीत करने पर बटु मर जायेगा, जलाशय–मन्दिर आदि का निर्माण करने पर ग्रामनाश होगा, सीमान्त करने पर गर्भपात होगा, नया अन्न खाने वाला मर जायेगा, कृषि करने पर अन्न नहीं होगा, गृहारंभ–गृहप्रवेश करने पर गृहस्वामी मर जायेगा और यात्रा करने पर यात्री मर जायेगा।

एकविंशन्महादोषा एते ब्रह्ममुखोदिताः। न भवन्ति शुभाः नृणां गुणानां कोटिकोटिभिः॥

ने। ग्रामनाशः प्रतिष्ठायां सीमन्ते गर्भनाशनम्॥
शनम्। कर्तुर्नाशो गृहारंभे प्रवेशे पतिनाशनम्॥

ही नहीं। ये दोष ब्रह्मा के नहीं, ज्योतिषी के मुख से लगभग एक सहस्र
देखता है न इनके फल कहीं सत्य होते दिखाई देते हैं।

तिथिगण्डान्त, नक्षत्रगण्डान्त, लग्नगण्डान्त आदि का वर्णन है और ६।
नाश, धननाश, शोक आदि संकट आते हैं। कैंची को कर्तरी कहते हैं।
युत होने पर भी यदि कर्तरी से सम्बन्धित है तो छोड़ दो नहीं तो पति-
यदि सूर्यादि आठ ग्रहों से युत है तो दरिद्रता, रोग, मरण, सन्तानहानि,
से उसका योग भी अशुभ है। इसको सग्रह-चन्द्रदोष कहते हैं किन्तु
रही हैं।

भ हैं और शुभों की भी कुछ घटियाँ विषतुल्य हैं। उनमें विवाह करने
न्य कृत्य करने पर मरण और दारिद्रय आदि आते हैं। विषघटियाँ वारों
।

यात्रादि शुभकार्ये च विघ्नदा विषनाडिकाः॥
यात्। अन्यस्मिन्मंगले ताश्च निधनं चापि निर्धनम्॥

बए पृष्ठ ७५) पर ज्योतिष में मुहूर्तों को नक्षत्रों के नाम दे दिये गये हैं
ी भी वारों के योग से अशुभ हो जाते हैं। यहाँ लिखा है कि रवि, सोम,
, अभिजित्, जल, विधाता और शिव मुहूर्त भी अशुभ हो जाते हैं किन्तु
छ नहीं है।

नक्षत्र अशुभ होते हैं और सामने वाले विद्ध कहे जाते हैं। पापग्रहों से
पंचशलाका और सप्तशलाका दो चक्र हैं तथा पूरे और अधूरे दो वेध
त से युत होने पर मणिमय और सुवर्णमय सुन्दर राजभवन भी छोड़ देना
नक्षत्रों को छोड़ देना चाहिए। शुभ ग्रह से विद्धनक्षत्र का केवल एक पाद
त भाग ही छोड़ा जाता है। चन्द्रमा किसी भी ग्रह से विद्ध है तो विवाह
के साथ श्मशान जाना होगा। (६। ५७ टीका)।

वा है कि विवाह से आरम्भ कर चार दिनों के भीतर अमावास्या आ गयी
है परन्तु मैंने अमावास्या के पास तथा वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ की
विवाह देखे हैं और उनकी निर्विघ्नता देखी है। वेद में अमावास्या शुभ
मानना घोर अज्ञान है।

त्यु नामक पाँच बाण गढ़े गये हैं। दक्षिण और उत्तर भारत के बाणों में
ण और पुष्पबाण है। जो विन्ध्य के उत्तर शुभ है वही विन्ध्य के दक्षिण
ने किसी बाण को लोहशल्य और किसी को काष्ठशल्य कहा है। कोई
ुभ है तो कोई शनि में। सूर्य की राशि कोई भी हो, उसके भुक्तांश यदि

१, १०, १६, २८ हैं तो उस दिन मृत्युबाण है। भुक्तांश २, ११, २०, २६ हैं तो अग्निबाण है। भुक्तांश ८। १७, २६ हैं तो रोगबाण है किन्तु शंका यह है कि मृत्युबाण वाले दिन लोग मरते क्यों नहीं दीखते? अग्निवाण और रोगवाण वाले दिन अग्नि और रोग का प्रकोप क्यों नहीं होता? ये बाण विवाह और घर की छवाई आदि में ही क्यों कष्ट देते हैं। तथा उन कर्मों में इनका प्रभाव दिखाई क्यों नहीं देता? उत्तर और दक्षिण भारत के वाणों में इतना अन्तर क्यों पड़ जाता है?

महापात और पंचक—६। ५८ की टीका में लिखा है कि जैसे परशुराम ने क्षत्रियों का संहार किया उसी प्रकार महापात वरवधू का संहार करता है। आपने यदि एक हाथ से चण्डाल को पकड़ा है तो गंगा में डूबे रहने पर भी शुद्ध नहीं हैं। उसी प्रकार सदोप नक्षत्रों में चन्द्रमा के रहने पर भी वे शुद्ध नहीं हो पाते। धनिष्ठा से रेवती तक पाँच नक्षत्र पञ्चक कहे जाते हैं। इनमें मरने पर नरक होता है और मण्डप की छवाई तथा पलंग की बुनाई करने पर मृत्यु होती है पर विवाह होता है।

लत्तानक्षत्र और वारदोष—कुछ लग्नों को ग्रह लातों से मारते हैं और आगे, पीछे, सामने हर, ओर लात चलाते हैं। उनके फल हैं—धननाश, मरण, सर्वनाश आदि। इस समय विवाह में केवल ११ नक्षत्र गृहीत हैं। पूर्वाफाल्गुनी और पुष्य के त्याग की कथाएँ पृष्ठ १४०—१३७ में पढ़ें। इसी प्रकार सब नक्षत्र छोड़े गये हैं। विवाह में तीक्ष्ण, दारुण, उग्र और क्रूर नक्षत्र मघामूल गृहीत हैं पर पुनर्वसु, ज्येष्ठा, विशाखा, श्रवण आदि नहीं। आश्चर्य है, विवाह में जिन यम, अग्नि, रुद्र, आदिति, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, वसु, पूषा आदि देवों की पूजा की जाती है और जिन्हें आहुतियाँ दी जाती है उनके भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा आदि नक्षत्रों में विवाह निषिद्ध है। ज्योतिष ने रवि, मंगल और शनि में विवाह का निषेध किया है क्योंकि ये पापवार है परन्तु आश्चर्य है, आजकल इनमें विवाह धूमधाम से होते हैं, किसी को अनिष्टों का भय नहीं सताता परन्तु बिदाई के समय भय आ जाता है। रवि—भौम वारों में विवाह होते हैं पर वधू की विदाई कभी नहीं होती। सारांश यह कि विवाह से बड़ा कर्म है बिदाई। इनके अतिरिक्त विवाह में अन्य अनेक दोष हैं। उनमें से कुछ के नाम हैं-- अशुभ होरा, द्रेष्काण, नवांश द्वादशांश, त्रिंशांश तिथिनक्षत्रवर्षलग्नगण्डान्त, पात, एकार्गल, उपग्रह, खार्जूर, जामित्र, कुलिक, दग्धतिथि, दशयोग, सब ग्रहों की संक्रान्तियाँ दृष्टिदोष, पंगुबधिरान्धकाणलग्न, ग्रहास्त आदि। इनमें फल हैं--विधवा, भ्रष्टा, मुतवत्सा, विकलांगी आदि होना किन्तु आजकल ये देखे नहीं जाते हैं।

गोधूलिवेला--मुहूर्तचिन्तामणि ६। ६६ का कथन है कि मुनियों ने गोधूलिवेला को सब कार्यों में परम शुभ कहा है। उसमें शुभ नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न, वार, नवांश, मुहूर्त, योग, अष्टम स्थान, जामित्र दोष आदि कुछ भी देखने की आवश्यकता नहीं है। गायों की खुर से उठी धूलि वायुमण्डल को पवित्र बना देती है और विवाह करने से नारियों को धन, पुत्र, सौभाग्य, आरोग्य आदि देती है। राम के विवाह में यही वेला देखी गयी थी। गोसाईंजी ने लिखा है--

धेनुधूलिवेला विमल सुफल सुमंगलमूल।
विप्रन कहेउ विदेहसन जानि सगुन अनुकूल॥

कुछ लोगों को शंका होती है कि थोड़ी सी गोधूलिवेला में विवाह का कर्मकाण्ड पूरा कैसे होगा परन्तु ज्योतिष में कर्म का केवल आरम्भकाल देखा जाता है। पूरा गृह बनाने में कई वर्ष लग जाते हैं परन्तु मुहूर्त केवल गृहारम्भ का देखा जाता है। खेद है कि आज हमारा भयभीत हृदय ज्योतिष के इस गोधूलि वाले आवश्यक आदेश को नहीं मानता। मानता तो प्रतिदिन विवाह होने लगते।

सारांश—वर्ष में भगवान् चार मास सोते हैं, दो खलमास हैं और आधे मास का पितृ पक्ष है। बचे साढ़े पाँच मासों में एक मलमास, दो मास का शुक्रास्त और एक मास का गुर्वस्त, ये आते रहते हैं। इन अजगरों से बचे शेष कालों में कम से कम सौ भीपण दोष हैं पर न जाने क्यों, इस समय उनके कुफलों के भय समाप्त हो गये हैं। इस समय विवाह में केवल शुभ नक्षत्र और मृत्युबाण देखे जाते हैं। पापवारों का भय भी समाप्त हो गया है परन्तु ऊपर लिखे हरिशयन, मलमास, खलमास,

शुक्रास्त आदि का उल्लंघन का किसी को साहस नहीं है। साहस और भय की यह खिचड़ी संशोधनीय और विचारणीय है।

वैवाहिक कर्मकाण्ड

हरिद्रालेपन—(१) यह क्रिया प्राचीनकाल में वरवधू की सौन्दर्य वृद्धि और व्रणादिपूर्ति के लिए की जाती थी। इसमें विवाह के पूर्व ५, ७, १० दिन विहित हैं और ३, ६, ९ वर्जित हैं पर श्रद्धा न होने के कारण आजकल लोग इसे तीसरे दिन से प्रारम्भ करते हैं और ज्योतिष के निषेध से डरते नहीं किन्तु इन दिनों में वरवधू नहलाये नहीं जाते क्योंकि नहलाना धर्मविरुद्ध है। कभी-कभी यह हरिद्रालेपन ५-७ दिनों तक भी चलता है और न नहलाने के कारण शरीर से दुर्गन्ध आने लगती है। नहलाने के बाद वर के शरीर का वह दुर्गन्धयुक्त जल सौ, दो सौ मील दूर ले जाया जाता है। ले जाने वाला नाई मुसल्मान भी होता है, उसे उस कलश (वर का मेंटा) को सँभालने में कष्ट होता है, सर्वप्रथम वही माँगा जाता है और लक्ष्मी मानकर पूजी जाने वाली कन्या उसी जल से नहला कर पवित्र की जाती है। बाद में उसी में भर कर मिठाई आती है और वह वृद्धों एवं पूज्यों को भी दी जाती है। वस्तुत: वर के शरीर के जल से कन्या का नहाना अनुचित है और यदि उचित है तो वह जल वहीं लिया जा सकता है। इतनी दूरी से लाना पाखण्ड है और हरिद्रालेपनकाल में स्नान आवश्यक है। (२) विवाहमण्डप में सर्वप्रथम वस्त्र-आभूषण लाये जाते हैं, दोनों पक्षों के पण्डित जी देवमूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा करने वाला मन्त्र पढ़ कर अक्षत छोड़ते हुए उनमें देवों को बैठाते हैं और प्राणप्रतिष्ठा (डालप्रतिष्ठा) की दक्षिणा लेते हैं। मन्त्र है--मनोजूति....विश्वेदेवास इह मादयन्ताम् अर्थात् सब देव इस साड़ी चोली, साया, करधनी, पायजेब और नथिया आदि में सर्वदा वास कर प्रसन्न हों। यह कर्म करते समय हम यह भूल जाते हैं कि नारी इन्हें पवित्र--अपवित्र हर स्थिति में पहने रहती है और नथ में नेटा भी लग सकता है। (३) अच्छा हुआ, वरों का जोड़ा जामा समाप्त हो गया पर वे आजकल काला, चुस्त वस्त्र और नेकटाई पहनकर आते हैं। ये दोनों शोक के प्रतीक हैं और शरीर को कष्ट देते हैं, वरों का मांगलिक पीत वस्त्र पहनना और राष्ट्रीय वेष में आना मांगलिक और सुखप्रद दोनों है। (४) मौर (सेहरा) भारतीय है या विदेशी और मांगलिक है या शोक का प्रतीक, यह विचारणीय है। (५) वर के जूते पर वेदमंत्र पढ़ कर अक्षत छोड़ा जाय और वर अपना जूता दूसरे से निकलवाये यह अधर्म है। (६) क्या कन्या के हाथ से ओंकार आदि की पूजा कराना वैदिक विधि है? क्या ओंकार पूजने की वस्तु है? (७) कन्या के जेठ का विवाह के अन्त में आशीर्वाद देना तो समुचित है परन्तु मण्डप में वर के आगमन के पूर्व जेठ के हाथ से जयमाला के आकार का बड़ा सा पट्टसूत्र (तागपाट) कन्या के गले में डालना और उसके मस्तक पर अक्षत, दही आदि का लगवाना अनुचित है? क्या यह बात वैदिक कर्मकाण्ड में कहीं लिखी है? (८) आरती हमें करनी है तो वह वर के हाथ में क्यों दी जाय? (९) क्या वेद में कहीं इस आरती का वर्णन है? (१०) पुष्प, धूप, भोजन, वस्त्र, दक्षिणा आदि के दान से पूज्य व्यक्ति को कुछ सुख मिलता है पर वह आरती से क्या पाता है? (११) अतिथि अपने हाथ से सिंहासन या पीठ क्यों उठावें? (१२) क्या वृद्धों और वृद्धाओं द्वारा एक युवक को विष्णु कह कर पूजना उचित है? ससुर, सास आदि से अपना पैर धुलवाना क्या युवक को शोभा देता है? यदि वह विष्णु हो गया है तो पुरोहित का पैर क्यों धोता है, मण्डप में बार-बार विष्णु की प्रार्थना क्यों करता है, हवन में विष्णु को आहुति क्यों देता है, विष्णुस्त्वा नयतु क्यों कहता है, विवाहान्त में लोग उसे आशीर्वाद क्यों देते हैं वह दूसरे दिन द्रव्य के लिए रुष्ट क्यों होता है और (१३) शाखोच्चार में विप्रगण लक्ष्मी और विष्णु को आशीर्वाद कैसे देते हैं? (१४) क्या तृणत्याग वाला कर्म उचित है? उसके मन्त्र में आप कहते हैं कि अमृत की नाभि निरपराधिनी गाय का वध मत करो। क्या वहाँ कोई गाय के वध के लिए उद्यत रहता है? (१५) शाखोच्चार में विप्रगण वर कन्या के पितामह आदि की अति झूठी प्रशंसा क्यों करते हैं और उन्हें विविध विद्याओं के सागर, साहित्यकार, कवि, विश्वविजयी, अति सुन्दर, सदाचारी और यशस्वी आदि क्यों कहते हैं? विवाह के कर्मकाण्ड की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उसके हास्य, विनोद और गाली के बाहुल्य में कर्मकाण्ड की महिमा खो जाती है। वैवाहिक कर्मकाण्ड के अन्य कई विषय विचारणीय हैं।

वधूप्रवेश—विवाह के बाद पतिगृह में नारी के प्रथम प्रवेश को वधूप्रवेश कहते हैं। लिखा है कि यह विवाह से सम

दिनों में और ५, ७, ६ दिनों में तथा १६ दिन के भीतर होना चाहिए। इसमें तृतीय दिन का घोर निषेध है और उसका फल अशुभ लिखा है किन्तु ज्योतिष में जैसे विवाह के तीन दिन पूर्व हरिद्रातेल–लेपन का निषेध रहते हुए भी आजकल वह प्रायः तीसरे दिन ही किया जाता है उसी प्रकार शास्त्रविरुद्ध होते हुए भी हमारे यहाँ इस समय लगभग शत–प्रतिशत वधू प्रवेश तीसरे दिन ही होते हैं और उनका कोई दुष्परिणाम दिखाई नहीं देता। इससे ज्योतिष के फलादेश की निःसारता स्पष्ट हो जाती है। वधूप्रवेश १६ दिनों के भीतर नहीं हुआ तो दूसरे मास में नहीं हो सकता। उसके लिए विषममास आवश्यक है। ३१वें दिन बिदाई होने पर पति–पत्नी दोनों मर जायेंगे किन्तु विदा न करने पर किसी को कुछ नहीं होगा क्योंकि पोथी में लिखा है कि जो नारी सम मास और सम वर्ष में पति के घर जाती है वह स्वयं मर जाती है। और पति की आयु हर लेती है।

समे मासे समे वर्षे यदि नारी गृहं व्रजेत्। आयुष्यं हरते भर्तुःस्वयं च मरणं व्रजेत्॥

ज्योतिष के मिथ्यात्व का एक प्रत्यक्षप्रमाण

यहाँ ७।३ में लिखा है कि कन्या का विवाह यदि फाल्गुन में हुआ और वह चैत में भी पिता के घर रह गयी तो पिता की मृत्यु निश्चित है। वैशाख में व्याही कन्या यदि जेठ मास लगने के पूर्व पिता के घर नहीं चली आयी तो उसका जेठ मर जायेगा। इसी प्रकार आषाढ़, पौष, मलमास और क्षयमास में ससुराल रह गयी तो क्रमशः अपने सास, ससुर और पति को तथा अपने को मार डालेगी किन्तु प्रत्यक्ष देखा जा रहा है कि अनेक कन्याएँ विवाह के बाद कई वर्षों तक पितृगृह में और बिदाई के बाद कई वर्षों तक ससुराल में रह जाती हैं पर कोई नहीं मरता। ज्योतिष के अन्य फल इसी लेखनी से लिखे गये हैं और उनमें इतनी ही सचाई है।

बिदाई का एक उदाहरण—मेरे एक धनिक एवं शिक्षित रघुवंशी जजमान के पुत्र का विवाह प्रयाग के एक उच्च शिक्षित परिवार की एम.ए. कन्या से हुआ। बिदाई रवि, मंगल को हो नहीं सकती, सोम–शनिवारों में दिशाशूल रहता है, मेरे जजमान को गुरुवार नहीं सहता और कन्यापक्ष को शुक्रवार असह्य था इसलिए मैंने बुधवार को विवाह का मुहूर्त बताया पर जयमाला एवं कर्मकाण्ड के विस्तार के कारण उस दिन बिदाई नहीं हुई, वह दूसरे बुधवार को रखी गयी। पश्चिम से पूर्व की बिदाई में भद्रा, भरणी आदि के कारण मेरे जीवन में ऐसे कई प्रसंग आये हैं।

द्विरागमन—यह वर्ष के केवल तीन मासों में होता है, नव मास, निषिद्ध हैं और तीन मासों के भी शुक्ल पक्ष उत्तम माने जाते हैं। चैत्र, ज्येष्ठ आषाढ़, माघ आदि मासों में विवाह और वधू प्रवेश होते हैं पर द्विरागमन नहीं हो सकता। इन तीन मासों में भी संक्रान्ति, अमान्तमास और पूर्णिमान्त मास का विवाद है। वैशाख, अगहन और फागुन में बिदाई तभी होगी जब सूर्य १, ८, ११ राशियों में रहेगा। अतः पूरे तीन मास भी नहीं मिल पाते। आश्चर्य है, ज्योतिष में पापग्रहों के वार अशुभ हैं, उनकी दृष्टि अशुभ है, उनके योग आदि अशुभ हैं पर द्विरागमन के लिए पापग्रहों (भौम, शनि) की राशियाँ ही शुभ मानी गयी हैं। सबसे महान् शुभग्रह गुरु की ६, १२ राशियाँ खलमास कही जाती हैं। उनमें कोई कर्म नहीं होता।

द्विरागमन, युद्ध और यात्रा में शुक्रदोष

विवर्णे विजिते नीचे वक्रिते वा सितेऽस्तगे। शत्रुग्रहयुते वापि तदंशे तन्निरीक्षिते॥
यात्रां नैव प्रकुर्वीत लक्ष्म्यायुर्बलहानिदाम्। सबलोपि नृपः शत्रोर्वशमेति तदा द्रुतम्॥

ज्योतिष कहता है कि शुक्र निस्तेज हो, पराजित हो, नीचे हो, वक्री हो, अस्त हो, शत्रुग्रह से युत हो, दृष्ट हो, उसके नवमांश में हो, बाल हो और वृद्ध हो तो यात्रा करने पर राजा की आयु, लक्ष्मी और शक्ति का नाश हो जायेगा तथा वह अपने से निर्बल शत्रु के भी वश में हो जायेगा किन्तु इस कथन में अनेक दोष हैं। (१) ज्योतिष में सबसे बड़ा पापग्रह सूर्य है पर

शुक्र, चन्द्र आदि सब ग्रह उसी की किरणों से प्रकाशित होते हैं अतः उसकी दृष्टि को और योग को अशुभ मानना घोर अज्ञान है। (२) ज्योतिष में शुक्र, सूर्य का शत्रु कहा जाता है और (३) अपने मित्र बुध की राशि कन्या में बैठा शुक्र नीच माना जाता है। ये कथन भी मोहजन्य हैं। (४) ग्रह कभी वक्री और अतिचारी नहीं होते, वे हमें वैसे दिखाई देते हैं। (५) अस्तकाल में शुक्र और भी तेजस्वी हो जाता है (देखिए पृष्ठ २७३)। (६) यहीं लिखा है कि एक भी ग्रह वक्री हो, अतिचारी हो, शत्रु की या नीच राशि में हो, नवांश में हो और शुक्र विपरीत दिशा में हो तो उस समय यात्रा करने वाला राजा उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे कुलटा नारी के, पर घर में जाने से गृह नष्ट हो जाता है किन्तु ये सब भ्रम हैं। इनका उत्तर आगे यात्रा–प्रकरण में पढ़ें। (७) आगे लिखा है कि यदि पूर्व दिशा से शत्रु का आक्रमण हो चुका है और शुक्र भी उधर ही है तो दस मास तक चुपचाप बैठे रहो। उसके बाद शुक्र दो–ढाई मासों तक अस्त रहता है। तब भी आगे न बढ़ो। उसके बाद बुधादि का अस्त हो या भौम सामने आ जाय तो भी शत्रु के सामने मत जाओ, नहीं तो तुम्हारी सेना इन्द्रसेनातुल्य होने पर भी हार जायेगी। यात्रा के बाद यदि चन्द्र या गुरु-शुक्र मार्ग में अस्त हो जायें तो भी आगे मत बढ़ो। वहीं रुककर उदय की प्रतिक्षा करो और उदय यदि सामने या दायें हो जाय तो लौट आओ, अन्यथा सर्वनाश निश्चित है। ये ही विषय पश्चिम दिशा में भी देखने पड़ते हैं।

> एकोपि वक्रगः खेटो लग्नस्थो वारिराशिगः। नीचस्थो वा तदंशस्थो यात्राफलविनाशनः॥
> प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रतिभौमं व्रजन्नृपः बलेन शुक्रतुल्योपि हतसैन्यो निवर्तते॥
> जीवः शशांकः शुक्रोवा मार्गमध्येस्तगो यदि। तत्रैव निवसेद्राजा यावदभ्युदितो भवेत्॥
> तावत्तिष्ठेत् संमुखत्वेपि तस्य। मदनाकुलिता परवेश्मगता प्रमदेव कुलम्...॥

परन्तु ये आदेश अज्ञानजन्य, दासताप्रद और आर्यसिद्धान्त के विरुद्ध हैं। आगे मनुस्मृति प्रकरण में लिखा है कि ब्रह्मा राजा का निर्माण देवांशों से करते हैं अतः राजा को इनसे कभी भी भयभीत नहीं होना चाहिए।

शुक्र की प्रतिकूलता के चार परस्पर विरोधी नियम

कन्या के द्विरागमन में इसी युद्ध वाले नियम का अनुकरण किया गया है। इसमें शुक्र का अनुकूल होना अति आवश्यक है किन्तु इसके परस्पर विरुद्ध कई नियम हैं। (१) यद्यपि शुक्र और प्रत्येक ग्रह २४ घण्टे में पूरे आकाश की एक प्रदक्षिणा कर लेता है, कोई ग्रह ८–१० मास किसी एक दिशा में बैठा नहीं रह सकता फिर भी ज्योतिष प्रत्यक्ष के विरुद्ध कहता है कि यदि वह प्रातःकाल पूर्व में दीख रहा है तो उसको वहाँ लगातार दस मास तक बैठा समझो और पूर्व तथा उत्तर दिशा में कन्या को न बिदा करो। पूर्व में जाने पर सामने और उत्तर जाने पर दाहिने पड़ेगा। शुक्र यदि सायंकाल पश्चिम में दिखाई दे रहा है तो वहाँ दस मास तक उसको खूँटे की भाँति गड़ा समझो और पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में यात्रा न करो। (२) शुक्र उत्तर गोल में अर्थात् मेषादि छ राशियों में स्थित है तो उसको लगातार छ मास तक उत्तर में बैठा समझो और उत्तर एवं पश्चिम में यात्रा न करो। यदि यह दक्षिण गोल में अर्थात् तुला आदि छ राशियों में हो तो छ मास तक दक्षिण में स्थित समझो और दक्षिण तथा पूर्व में यात्रा न करो। (३) शुक्र यदि कृत्तिकादि सात नक्षत्रों में स्थित है तो उसे लगातार तीन मास तक पूर्व में बैठा समझो। इसी प्रकार वह आगे के मघा, अनुराधा और धनिष्ठा आदि सात–सात नक्षत्रों में दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में तीन–तीन मास तक बैठा रहता है। उसके दायें या सामने रहने पर न तो कन्या का द्विरागमन होगा, न कोई अन्य यात्रा होगी।

> उदेति यस्यां दिशि यत्र याति गोलभ्रमाद्वाथ ककुब्भसंधे। त्रिधोच्यते
> संमुख एव शुक्रो यत्रोदितस्तां तु दिशं न यायात् (मु० चिं० ११। ४०)॥

इन तीनों विधियों में परस्पर विरोध है। यदि शुक्र कृत्तिका में है और सायंकाल में पश्चिम में दिखाई दे रहा है तो प्रथम विधि से पश्चिमस्थ है, द्वितीय से उत्तरस्थ है और तृतीय से पूर्वस्थ है अतः तीनों को मानने पर प्रत्येक दिशा और हर

कोण की यात्रा स्थगित हो जाती है। इनके अतिरिक्त एक चौथा अड़ंगा है। उसमें वताया है कि सूर्य और शुक्र, दोनों अपने उदयकाल से लेकर एक-एक प्रहर तक आठों दिशाओं में घूमते रहते हैं और तीन दिशाओं को सदा अशुभ वनाते रहते हैं। सूर्य यदि प्रातःकाल पूर्व में उगा है तो पूर्वदिशा दग्ध है, ईशानकोण ज्वलित है, जल रहा है और अग्निकोण धूमित है अर्थात् धुआँ फेंक रहा है। इस प्रकार वह एक-एक प्रहर के अन्तर से आठों दिशाओं में घूमता रहता है। ठीक इसी प्रकार शुक्र ग्रह पूर्व में दिखाई देने के बाद हर प्रहर में तीन दिशाओं को दूषित करता रहता है। शुक्र में सूर्य की अपेक्षा एक विशेपता यह है कि सूर्य केवल सामने रहने पर अशुभ होता है पर शुक्र सामने और दायें दोनों ओर। सूर्य तीन दिशाएँ दूपित करता है पर शुक्र छ को।

दग्धादिगैन्द्री ज्वलिता दिगैशी प्रधूमिता वानलदिक् प्रभाते।
प्रत्येकमेवं प्रहराष्टकेन भुंक्ते दिशोष्टौ सविता क्रमेण॥

समीक्षा--सूर्य एक अहोरात्र में ऊपर-नीचे घूमता हुआ आकाश की एक प्रदक्षिणा कर लेता है पर पुराण कहते हैं कि पृथ्वी चपटी है और सूर्य उसके समानान्तर मार्ग में सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करता है। गणित ग्रन्थकारों ने उनकी इस प्रत्यक्ष विरुद्ध बेढव मान्यता का अनेक बार खण्डन और उपहास किया है पर फलज्योतिप अभी भी वही वेसुरा राग अलाप रहा है। वह कहता है कि मेप का चन्द्रमा सवा दो दिनों तक लगातार पूर्व दिशा में वैठा रहता है और वृष का प्रारम्भ होते ही वह मेंढक की भाँति कूद कर झट दक्षिण में आ जाता है। इसी प्रकार तीन कुदान के वाद पुनः सिंह में पूर्व ओर आ जाता है और सवा दो दो दिन एक दिशा में बैठा रहता है, जवकि हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि चन्द्रमा प्रति सेकण्ड चलता रहता है और ऊपर-नीचे चलता है, पृथ्वी की चारों दिशाओं में कूदता नहीं। ज्योतिप में ठीक ऐसा ही एक वर्गाकार सप्तशलाका चक्र है। सब ग्रह उसकी चारों भुजाओं में घूमा करते हैं और शुक्र की पीछे लिखी तीसरी विधि में इसी का वर्णन है। वह धनिष्ठादि सात नक्षत्रों में रहने पर उत्तर दिशा में स्थित माना जाता है परन्तु सत्य यह है कि यह स्थिति सर्वथा असम्भव है। ग्रह पृथ्वी के समानान्तर मार्ग में नहीं बल्कि ऐसे मार्गों में घूमते हैं जो पृथ्वी पर लगभग लम्वरूप हैं। सव ग्रहों के भ्रमणमार्ग दक्षिण में थोड़ा लटके हैं इसी कारण हमें कभी भी कोई ग्रह उत्तर दिशा में दिखाई नहीं देता अतः सूर्य या शुक्र या चन्द्रमा को कुछ दिनों तक उत्तर में स्थित मानना पागलपन है।

शुक्र सूर्य की प्रदक्षिणा करता है और उससे ४७ अंश से अधिक दूरी पर कभी नहीं जाता। इसी कारण वह हमें पूर्व दिशा में प्रातःकाल और पश्चिम में सायंकाल अर्थात् सूर्य के पास दिखाई देता है। उसका ऊपर उठना और नीचे जाना प्रत्यक्ष है अतः उसे दस मास तक पूर्व या पश्चिम में स्थिर बैठा मान लेना अज्ञान और देश का दुर्भाग्य है। ज्योतिप कहता है कि शुक्र यदि दायें और सामने पड़ रहा है तो यात्रा करने पर वालक मर जायेगा, नववधू बांझिन हो जायेगी और गर्भिणी का गर्भपात हो जायेगा (मुहूर्तचिन्तामणि ८। २) परन्तु प्रश्न यह है कि बच्चे दिन भर खेलते हैं और शुक्र उनके सामने तथा दायें बीसों बार आता रहता है। कन्याएँ और गर्भिणी नारियाँ शुक्र की ओर मुख करके घर का काम करती हैं, पढ़ती हैं, वाजार जाती हैं, विद्यालय जाती हैं, नदी पर नहाने जाती हैं और पहली बार ससुराल जाती हैं तव वह दोष क्यों नहीं लगता? हम ज्योतिषी से पूछते हैं कि मघा का शुक्र उत्तर गोल में होने से उत्तर में बैठा है, सप्तशलाकाचक्र के अनुसार दक्षिण में है और सूर्य से आगे होने के कारण पश्चिमस्थ कहा जाता है तो हम उसे किस दिशा में स्थित मानें? क्या शुक्र को रवि के निकट और बुध को दूर कहने वाले आप को शुक्र की स्थिति का पता है? ज्योतिषी कहता है कि जो शुक्र वधू के सामने और दायें रहने पर वन्ध्या, विधवा और मृतपुत्रा बना देता है वही पीछे और बायें रहने पर सौभाग्यवती, पुत्रवती, कुलीना और धनाढ्या बना देता है (८। २ टीका) परन्तु यह बिना लगाम का घोड़ा छोड़ा गया है और यह बात आज शिक्षित हिन्दूसमाज में देश के दुर्भाग्य से मानी जा रही है। आश्चर्य है, वृहस्पति ग्रह शुक्र से तेजस्विता में थोड़ा ही न्यून है पर उसके दायें-बायें और आगे पीछे का कोई फल नहीं लिखा है।

विषम संवत्सर—कन्या का द्विरागमन सर्वदा प्रथम, तृतीय और पंचम वर्षों में होता है। द्वितीय और चतुर्थ में करने का किसी का साहस नहीं है पर विवाह के बाद विषम वर्षों में कन्या के शरीर में और आकाश में कौन–सा परिवर्तन हो जाता है, इसका कोई उत्तर नहीं है। ज्योतिष कहता है कि द्वितीय वर्ष लगते ही आकाश और शरीर प्रतिकूल हो जाते हैं, तृतीय लगते ही अनुकूल हो जाते हैं, चौथे का स्पर्श होते ही फिर बिगड़ जाते हैं और पाँचवें के छूते ही पुनः ठीक हो जाते हैं परन्तु यह एक मिथ्या कल्पना और अड़ंगा है। आश्चर्य यह है कि हम इसे वस्तुतः मानते नहीं। ज्योतिष का कथन है कि यहाँ सम–विषम वर्ष की गणना विवाह के दिन से होनी चाहिए पर गाँवों में लोग इसकी गणना कन्या के आगमन के दिन से करते हैं।

शुक्र और बृहस्पति के उदय का रहस्य—वेदों और आयुर्वेदादि शास्त्रों का कथन है कि विवाह के समय वर–वधू के शरीर में स्थित शुक्र (वीर्य) और बृहस्पति (ज्ञान) का उदित रहना परम आवश्यक है। इसीलिए इन ग्रन्थों में किशोरीकिशोर नहीं बल्कि युवतीयुवक के विवाह का आदेश है (देखिए धर्मशास्त्र प्रकरण)। वीर्य की बाल, बृद्ध, वक्री, अस्त एवं अति चार अवस्थाएँ इसीलिए विवाह में अनुपयुक्त मानी गयी हैं। उन कथनों का शुक्र–बृहस्पति ग्रहों से सम्बन्ध बाद में जोड़ा गया है। धन्वन्तरि का तथा हमारे अन्य महान् आयुवेदाचार्यों का उपदेश है कि षोडशवर्षीय युवती का २० या २५ वर्ष के युवक से विवाह होना चाहिए। ऋक् और यजुर्वेद के भी इस विषय के यहाँ पाँच मन्त्र दिये जा रहे हैं। वे मनन करने योग्य हैं।

पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन् संगता॥
पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्॥
तमस्मेरा युवतयो युवान् मर्मृज्यमानाः परियान्ति...स शुक्रेभिः (ऋ० २। ३५। ४)॥
वधूरियं पतिमिच्छन्ती एति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् (ऋ० ५। ३७। ३)॥
शुक्रन्त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन (यजुः ४। २६)॥
शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च...शुक्रश्च ऋतपा...(यजुः १७। ८०)॥
तेजोसि शुक्रममृतमायुष्पा आयुर्मे पाहि (यजुः २२। १)॥

शिवसंहिता और गरुडपुराण (सारोद्धार १५) का कथन है कि सब ग्रह हमारे शरीर में स्थित हैं। नादचक्र में सूर्य, बिन्दुचक्र में चन्द्रमा, नेत्रों में मंगल, हृदय में बुध, बुद्धि में बृहस्पति, शुक्र (वीर्य) में शुक्र, नाभि में शनि और मुख में राहु बैठा है। हृदयारविन्द में हरि का अथवा उमाशंकर का वास वेदों और पुराणों में प्रसिद्ध है। इनका उदय सौभाग्य का तथा वृद्धत्व, वक्रत्व और अस्त दुर्भाग्य का लक्षण है। अतः हमें शरीरस्थ शुक्र–गुरु के उदय की महत्ता के सूचक इन वचनों पर ध्यान देना है।

भुवनानि च सर्वाणि पर्वतद्वीपसागराः। आदित्याद्या ग्रहाः सन्ति शरीरे पारमार्थिके॥
नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे च चन्द्रमाः। लोचनस्थः कुजो ज्ञेयो हृदये ज्ञः स्थितः सदा॥
बुद्धिस्थाने गुरुं विद्यात् शुक्रे शुक्रो व्यवस्थितः नाभिस्थाने स्थितो मन्दो मुखे राहुः प्रकीर्तितः॥
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति। सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि॥

महत्वपूर्ण परिहारों का तिरस्कार

मुहूर्तचिन्तामणि ८। ४ का कथन है कि यदि पिता के घर में ही कन्या का स्तनोद्‌गम और रजोदर्शन हो जाय तो शुक्र की प्रतिकूलता मत देखो तथा भृगु, अंगिरा, वत्स, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि और भरद्वाज गोत्रों में शुक्र का विचार मत करो। अनेक मुनियों ने इस कथन का समर्थन किया है और इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि रजोदर्शन ही नारी के शुक्र का उदय

है, कुमारों के मुखमण्डल पर दाढ़ी मूँछ का उद्‌गम ही उनका शुक्रोदय है और कुछ रोगों का आगमन ही शुक्र का वक्रत्व, अतिविचार और अस्त है।

> पित्र्ये गृहे चेत् कुचपुष्पसंभवः स्त्रीणां न दोषः प्रतिशुक्रसंभवः।
> भृग्वंगिरोवत्सवसिष्ठकश्यपात्रीणां भरद्वाजमुनेः कुले तथा॥

परन्तु खेद है कि आज हमारा ज्योतिषीवर्ग इन परिहारों का तिरस्कार करता है और बाल बच्चों वाली कन्याओं का भी द्विरागमन दो तीन वर्षों तक यह कह कर रोक देता है कि शुक्र अस्त है, सामने है, दायें हैं, बाल है, वृद्ध है, दूसरा वर्ष है, चौथा वर्ष है आदि। यहाँ लिखा है कि सात गोत्रों में शुक्र का दोष नहीं लगता पर इसको भी कोई नहीं मान रहा है। सत्य यह है कि इन सात गोत्रों में सव गोत्र आ जाते हैं। इसका विवरण आगे धर्मशास्त्र प्रकरण में पढ़ें। खेद है, यहाँ भरद्वाज गोत्र को शुक्र दोष से मुक्त किया गया है पर भरद्वाज के सहोदर भाई गौतम का नाम नहीं लिया है। इस मनमाने कथन में अन्य भी अनेक विषय विचारणीय हैं। उन्हें आगे पढें।

कुछ शंकाएँ–ज्योतिषशास्त्र ने शुक्र और चन्द्रमा को स्त्री कहा है। आचार्य वराहमिहिर का कथन है कि शशि और शुक्र दो गोरी और परम सुन्दरी युवतियाँ है। शशिशुक्रौ युवती। इतना ही नहीं, उन्होंने युवतिप्रशंसा नामक एक बड़ा ही सुन्दर और शिक्षाप्रद अध्याय भी लिखा है। उसे आगे धर्मशास्त्र प्रकरण में पढ़े। पहला प्रश्न यह है कि ये गोरी युवतियाँ सामने आने पर अपशकुन क्यों हो जाती हैं? दूसरा प्रश्न यह है कि चन्द्रमा दायें और सम्मुख शुभ होता है पर शुक्र अशुभ। चन्द्रमा बायें और पीछे अशुभ होता है पर शुक्र शुभ। क्या इन कल्पनाओं का कोई आधार है? सूर्य के अस्त में विवाह होता है तो शुक्रगुरु के अस्त में क्यों नहीं?

मुहूर्तचिन्तामणि १।४७ आदि में लिखा है कि गुरुशुक्र के अस्त में विवाहादि कोई भी कर्म करने पर मरण आदि नाना प्रकार की आपत्तियाँ आती हैं (देखिए पृष्ठ २२३)। अस्त दो प्रकार के होते हैं। उनमें से प्रथम है ग्रहों का क्षितिज के नीचे चला जाना। उसको ज्योतिष अशुभ नहीं मानता। दूसरा है–ग्रहों का सूर्य के पास चला जाना। ज्योतिष समझता है कि उस समय ग्रह, अमावास्या के चन्द्र की भाँति निस्तेज हो जाते हैं पर सत्य इसके ठीक विपरीत है। उस समय ग्रह पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति अतिशय तेजस्वी हो जाते हैं (देखिए पृष्ठ २७३)। कारण यह है कि जब शुक्र का दो–ढाई मासों वाला लम्वा अस्त होता है उस समय शुक्र और पृथ्वी के ठीक बीचो–बीच सूर्य रहता है और शुक्र का प्रकाशित भाग पृथ्वी के सामने पड़ता है। इसी प्रकार बृहस्पति के अस्त के समय सूर्य और वृहस्पति के बीच में पृथ्वी रहती है और वृहस्पति का अतिशय प्रकाशित भाग पृथ्वी के सामने पड़ता है (देखिए पृष्ठ २७५)। यद्यपि उस समय सूर्य के पास रहने के कारण गुरु–शुक्र हमें दिखाई नहीं देते पर वही समय उनकी परम उज्ज्वलता का होता है और उसी समय उसकी अधिकाधिक किरणें पृथ्वी पर आती हैं। टेबुललैम्प का प्रकाश पुस्तक तथा अन्य सामग्रियों पर पड़ता है किन्तु हमारे नेत्र पर नहीं। उस समय ठीक यही स्थिति रहती है। ग्रह आकाश छोड़ कर कहीं चले नहीं जाते। अतः उस काल को अशुभ मानना अज्ञान है। प्रश्न यह है कि आपको जब ग्रहों की किरणों की आवश्यकता नहीं है, आप उनके क्षितिज के नीचे की रहने की स्थिति को भी शुभ मानते हैं तो द्वितीय अस्त को अशुभ क्यों कहते हैं और उस समय सैकड़ों शुभ कर्मों को बन्द क्यों कर देते हैं? क्या यह अपराध क्षम्य है?

शुक्रास्त के परिणाम की कुछ पीड़ाप्रद घटनाएँ

ज्योतिषशास्त्र में बताये पाँच सहस्र से अधिक भीषण योगों में से आप केवल शुक्र सम्वन्धी सब नियमों को मान लें तो भी शुभ काल मिलना असंभव हो जायेगा और शत्रु, राष्ट्र को विध्वस्त कर देगा। शुक्रदोष कैसी विकट परिस्थितियाँ उपस्थित करता है, इसकी यहाँ दो घटनाएँ लिखी जा रही हैं। इनका सम्वन्ध मेरे दो जजमानों से है। गाँवों में रहने वाले हर

पण्डित के सामने ये समस्याएँ प्रतिवर्ष आती हैं। इनमें दी हुई तिथियाँ, गुरुवर श्री हृषीकेश जी उपाध्याय के पंचांगों की है।

ठाकुर साहब के पुत्र का विवाह संवत् २०२२ वैशाख शुक्ल ११ को उनके घर से पश्चिम हुआ, वधू तीसरे दिन आ गयी और अगहन में पुन: पिता के घर चली गयी। उस समय शुक्र पश्चिम दिशा में था, सामने पड़ता था पर दोष नहीं लगा क्योंकि पोथी में लिखा है कि पिता के घर पहली बार जाने में शुक्र का दोष नहीं लगता। क्यों, इसका कोई उत्तर नहीं है। उस समय कदाचित् शुक्र की किरणें कन्या के शरीर पर नहीं पड़तीं। इसके बाद दोनों पक्षों के चाहने पर भी वह ससुराल इसलिए नहीं आ सकी कि शुक्र पूर्व में अर्थात् सामने आ गया था। दूसरे वर्ष में बिदाई होती ही नहीं। संवत् २०२४ वैशाख शुक्ल ११ के बाद सूर्य उस वृष राशि में आ गये जिसमें बिदाई नहीं होती। आगे आने वाले बिदाई के तीन मासों मार्ग, फागुन और वैशाख में शुक्र सामने पड़ रहे थे अत: तीसरे वर्ष अशुभ सिद्ध हो गया। चौथे में बिदाई होती नहीं, रही बात पाँचवें की। पुरोहित ने कहा कि अभी नया पंचाग नहीं आया है पर निश्चित है कि पाँचवें में बिदाई के मासों में शुक्र पुन: पूर्व आ रहे हैं और दो-ढाई मास अस्त रहेंगे। ठाकुर साहब ने प्रार्थना की कि बाबा! कोई उपाय बतावें। आजकल के लड़के अशिष्ट हो गये हैं और सच पूछें तो मेरा मन भी हर समय बहू पर लगा है। मेरी बुढ़ौती है और एक ही बहू है। लड़कियाँ अपने-अपने घर चली गयीं, अब अपने हाथ से बनाये भोजन से पेट नहीं भरता। आँख खराब होने के कारण डाक्टरों ने धुआँ से दूर रहने का और रातमें न पढ़ने का आदेश दिया है। बाबा! वह मेरे यहाँ छ मास रह चुकी है। वह मुझे रात में रामायण पढ़ कर सुनाती थी और भोजन बहुत अच्छा बनाती थी। भगवान ने रूप के साथ ही साथ उसको उत्तम स्वभाव भी दिया है। मैं पूजा और रामायण का पाठ करने बैठता हूँ तो ध्यान नहीं लग पाता, उसकी याद में नेत्र सजल हो जाते हैं। वह मेरा आसन बिछा कर अगरबत्ती तक जला देती थी। गरम पानी से मेरा पैर धोया करती थी। मैंने आप ही लोगों के मुखारविन्द से सुना है कि पौत्र का मुख देखे बिना मर जाने से गति नहीं होती क्या सचमुच मुझे नरक होगा? शुक्र की शान्ति का कोई उपाय बतावें।

बाबा ने कहा कि राजन्! बुरा न मानें, आपने तीन कन्याओं का विवाह रजोदर्शन के बाद किया है अत: नरक में तो जाना ही होगा। यह उसी पाप का फल है। आप हरिहर पाण्डेय के पास जायँ। वे ज्योतिषाचार्य होकर भी नास्तिक हैं। कोई उपाय बता देंगे। मास्टर साहब मेरे पास आये। उन्होंने अपने कष्ट और बहू के गुण सुनाये तो मेरे नेत्र भी आर्द्र हो गये। मैंने उन्हें मुहूर्तचिन्तामणि ८।४ की हिन्दी टीका सुनायी और उन्होंने स्वयं पढ़ा कि जो कन्याएँ कश्यप आदि गोत्रों की हैं तथा जिनका रजादेर्शन हो चुका है उन्हें शुक्र का दोष नहीं लगता। बहू तीसरे वर्ष में आ गयी और आजकल उनका पोता जब तोतली भाषा में रामायण की कुछ चौपाइयाँ सुनाता है तो वे कहते हैं कि मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए, वह यहीं है।

सेठ जी की कन्या का विवाह संवत् २०२७ फाल्गुन शुक्ला २ को पश्चिम में हुआ। कन्या तीसरे दिन ससुराल पहुँची पर कई करणों से कुछ मास बाद पुन: आ गयी। वह पुन: एक वर्ष के भीतर ससुराल इसलिए नहीं जा सकती थी कि शुक्र पश्चिम हैं, सामने पड़ रहे हैं। इसके बाद दूसरा लग जाता है। २०२६ के फाल्गुन शुक्ल २ से तीसरा वर्ष लगता है किन्तु शुक्र इसके पूर्व ही अस्त हो जाते हैं और वे २०३० के माघ कृष्ण १२ तक पश्चिम में सामने रहते हैं। इसके बाद सूर्य उस मकर राशि में आते हैं जिसमें बिदाई नहीं होती और कुंभ के प्रारंभ के पूर्व ही गुरु अस्त हो जाते हैं। इस प्रकार पूरा तृतीय वर्ष अशुभ हो जाता है और चौथे में बिदाई होती ही नहीं किन्तु पुरोहित जी ने चौथे वर्ष का पंचांग देख कर बता दिया कि पाँचवें के प्रारंभ में गुरु का अस्त है और उसके बाद शुक्र पश्चिम आ रहे हैं। पिता के मुख से यह सब समाचार सुन कर बेटा अपने साले की सम्मति से एक दिन चुपचाप पत्नी को ले कर उसी पश्चिम दिशा में जयपुर चला गया। इस घटना से दोनों पक्ष के बुढ़वा-बुढ़िया शंकित थे पर वे आजकल शुक्र सा तेजस्वी पोता-नाती पा कर अति प्रसन्न हैं।

शुक्रशान्तियाग—शुक्र के लग्न (२,७) में, शुक्रवार में, शुक्र के वर्ग में और शुक्रोदय में व्रती रहो। काँसे के एक बड़े पात्र में अष्टदल कमल बनाओ। उसमें सूक्ष्म श्वेत वस्त्रों से ढकी, शुद्ध चाँदी की शुक्र की मूर्ति रखो। श्वेत चन्दन, फूल,

अक्षत, वस्त्र और मोती की सुन्दर विचित्र माला से उसकी पूजा करो। शुक्र के मन्त्र का ब्राह्मणों से जप कराओ। श्वेतचन्दन, पुष्प, अक्षत और दूध का अर्घ्य दो और प्रार्थना करो कि हे दैत्यों के गुरु शुक्रदेव। आपके सामने रहने के निवारणार्थ मैं यह पूजन कर रहा हूँ कृपया मेरी रक्षा करें। इसके बाद शेष ग्रहों की पूजा करो। सूर्य के लिए कपिला गाय, चन्द्रमा के लिए शंख, मंगल के लिए बैल, बुध को सोना, गुरु को पीला वस्त्र और शनि के लिए काली गाय दो। शुक्र की पूजन सामग्री के साथ एक श्वेतवर्ण का सुन्दर घोड़ा अवश्य रखो। इसके बाद आभूषणों और श्वेत अश्व के साथ सारी सामग्री ज्योतिषी को दो, ब्राह्मण भोजन कराओ, अन्य ब्राह्मणों को दक्षिणा दो और इसके बाद बन्धु–बान्धवों को भोजन कराओ तो शुक्रसम्बन्धी सारे दोष समाप्त हो जायेंगे और सारी कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी पर वसिष्ठ कहते हैं कि यह संक्षिप्त विधि है और उन लोगों के लिए हैं जो पूरी शान्ति करने में असमर्थ हैं। अन्य ग्रह सामने हों तब भी यह शान्ति करो (११।४० टीका)।

रजतेन विशुद्धेन कारयेत्प्रतिमां भृगोः। लिखेदष्टदलं पद्मं कांस्यपात्रे च तण्डुलैः॥
शुक्लपुष्पाक्षतैर्गन्धैर्मुक्ताहारैश्च पूजयेत्। दैवज्ञायैव दातव्या भूषणाश्वसमन्विता॥
श्वेतमश्वं सितं छत्रं हेममौक्तिकसंयुतम्। शिष्टेभ्यो दक्षिणां दत्वा स्वयं भुंजीत बन्धुभिः॥
सूर्याय कपिलां शंखं चन्द्राय....वृषभं स्वर्णं पीतवस्त्रं गां....सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥

यहाँ आचार्यों ने सावधान किया है कि–इतरग्रहसांमुख्येपि यात्रा न कार्या। अर्थात् अन्य ग्रहों के सामने रहने पर भी यात्रा मत करो किन्तु इन आदेशों को मानने पर हमारा जीना भी दूभर हो जायेगा। हम प्रातः काल पूर्व मुख से और सायंकाल में पश्चिममुख से सन्ध्योपासन करते हैं और उस समय शुक्र निश्चित रूप से पूर्व या पश्चिम में रहता है पर हमें कोई हानि नहीं पहुँचाता और हर समय कोई न कोई ग्रह दायें–बायें विराजमान रहता है। ग्रहों के अतिरिक्त अनेक तारे हैं तो हम भाग कर कहाँ जायेंगे और कितना दान करेंगे? वस्तुतः जड़ शुक्र और जड़ सुर्यादि ग्रह हमारी प्रार्थनाएँ नहीं सुनते इसलिए ये शान्तियज्ञ पाखण्ड और वंचना हैं।

यहाँ कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। (१) कश्यप गोत्र में शुक्र का दोष नहीं लगता पर संसार का हर पशु, पक्षी, मानव और प्राणधारी कश्यपगोत्र में है। (२) हमलोग किसी ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर वसिष्ठ, मनु, नारद, शिव आदि का नाम देख कर उसे उन महामानवों की कृति मान लेते हैं पर यह अन्धभक्ति है। पण्डितराज जगन्नाथ ने लिखा है कि कुछ दोगले (जारजन्मा) मेरे पद्यरत्नों को चुरा न लें, इसलिए एक मंजूषा बना रहा हूँ पर मंजूषाएँ बहुत दिनों से टूटती आ रही हैं और उनमें प्रक्षेपण होता रहा है। (३) ज्योतिर्विदाभरण नाम के ज्योतिष के एक विशाल ग्रन्थ में लेखक ने अपने को विक्रमादित्य का नवरत्न कालिदास सिद्ध किया है पर उसका भण्डाफोड़ हो चुका है। वह ग्रन्थ १२६६ विक्रमसंवत् का है अतः सावधान रहें। (४) महाकवि कालिदास ने कुमारसंभव (३।४३) में लिखा है कि शिव को देख कर कामदेव उसी प्रकार पल्लवों में छिप गया जैसे शुक्र को देख कर यात्री घर में छिप जाते हैं। आचार्य मल्लिनाथ ने भी इसका समर्थन किया है और माघ कवि ने लिखा है कि अमंगल ग्रह का नाम भ्रम से मंगल रखा गया है।

दृष्टिप्रपातं परिहृत्य तस्य कामः पुरः शुक्रमिव प्रयाणे।
प्रान्तेषु संसक्तनमेरुशाखं ध्यानास्पदं भूतपतेर्विवेश॥
प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रत्यंगारकमेव च। अपि शक्रसमो राजा हतसैन्यो निवर्तते॥

किन्तु सत्य यह है कि न तो कामदेव को शरीर होता है, न वह पल्लवों में छिपता है, न यात्री शुक्र के भय से घर में घुसते हैं। महाकवि कालिदास एक बार कहते हैं कि हर वस्तु पुरानी होने से भली नहीं होती और न कोई काव्य नया होने से बुरा होता है। सन्त उनका परीक्षण करते हैं और मूढ़ आँख मूँद कर मान लेते हैं।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

परन्तु उन्होंने स्वयं अनेक बार अन्धानुकरण किया है। इसलिए हमें अपने शरीर में स्थित बृहस्पति और शुक्र के उदय का प्रयास करना है। हमने अपनी बुद्धि उन्हें बेची है जो ज्योतिष और धर्म का क-ख भी नहीं जानते। आजकल गाँव में पूछा जाता है कि कोहबर किस मुख से रखा जाय और विवाहमण्डप में सिन्दूर किस मुख से निकाला जाय। इसका अभिप्राय इतना ही है कि शुक्र सामने न रहे पर मण्डप में, द्वार पूजा पर, तिलक में और हर कर्म में सदा पूर्व मुख से बैठा जाता है और तब शुक्र मरणप्रद नहीं होता। यह है बुद्धि का विक्रय और गुरु-शुक्र का अस्त। आप ध्यान रखें, बड़ों की असावधानी से बड़ी हानि होती है। भारत का बँटवारा बड़ों ने कराया है अतः उनकी हर बात न मानें।

यात्राप्रकरण (प्रश्न शकुन)– इसके हर श्लोक में राजा शब्द है। इससे अनुमान होता है कि प्राचीनकाल में युद्धयात्रा का विशेष महत्त्व था, सामान्य का नहीं। ग्रहदशा देखने का भी आदेश है पर दशाएँ अनेक हैं और उनके फल भिन्न भिन्न हैं। नारद का कथन है कि जिसका जन्मकाल अज्ञात है उसका फल अनिश्चित रहता है पर अच्छा ज्योतिषी प्रश्न और शकुनों में सब कुछ जान लेता है। प्रश्न पूछते समय हाथ में फल, फूल और दक्षिणा हो, धरती रुचिर हो, शकुन अच्छे हों सादर पूछा जाय और प्रश्न लग्न में अच्छे ग्रह हों तो विजय होती है, अन्यथा पराजय। सब मनुष्यों को जन्मकाल और जन्मनक्षत्र ज्ञात नहीं रहते इसलिए यात्रा में पुकारने के नाम का भी महत्त्व है। गृह, द्यूत आदि कुछ कर्मों में तो उसी का प्राधान्य है। यात्रा में नव नक्षत्र शुभ हैं और १८ अशुभ। अग्नि, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, भग आदि देवों के नक्षत्र अति अशुभ हैं। इसी प्रकार गणेश, दुर्गा, शिव, हरि, कार्तिकेय, अग्नि, शशी और पितरों की तिथियाँ ४, ९, ८, १४, १२, ६, १, ३० और १५ पाप हैं। लिखा है कि जो इन नक्षत्रों और तिथियों में यात्रा करेगा उसकी शीघ्र मृत्यु होगी।

वारकथा–वसिष्ठ और राजमार्तण्ड का कथन है कि रवि, मंगल, शनि और कृष्णपक्ष का सोम, ये चार पापवार हैं। इनमें किसी भी दिशा में पैर न रखें। इनके फल हैं–मार्ग में विनाश, शक्तिक्षय, धननाश, अग्निभय, रक्तविकार, पित्तविकार, दरिद्रता, वध और बन्धन (कारागार) आदि। इनके बाद सोम, गुरु, शुक्र और बुध पूर्वादि चार दिशाओं के दिक्शूल हैं। इस प्रकार हर दिशा में यात्रा के लिए केवल दो वार बच रहते हैं। उनके बाद हैं काल और पाश। उत्तर दिशा से आरम्भ कर वायव्य, पश्चिम आदि में रवि आदि सात वार काल होते हैं, उनके सामने पाश (बेड़ी) रहता है और सूर्यास्त होते ही ये उलट जाते हैं। यात्रा और युद्ध में इनका सामने रहना भयंकर है। सामने ही नहीं, काल बायें भी अशुभ होता है और पाश दायें भी अशुभ होता है। निश्चित है कि केवल इतने का विचार करने पर आपको यात्रा के लिए एक भी शुभ वार नहीं मिलेगा। कुछ लोग ईशान, अग्नि आदि चार कोणों में जाते समय दायें-बायें वाली दोनों दिशाओं के दिक्शूल से डरते हैं। उनके लिए और कठिनाई है और इसके बाद है घातवार और योगिनियाँ। घातवारों का नाम ही घातवार है। यात्रा प्रकरण ११। ३४ में तीन प्रकार की भीषण योगिनियों का वर्णन है। तिथि, वार और प्रहरार्ध की तीनों योगिनियाँ दायें और पीछे रहने पर शुभ, अन्यथा अशुभ होती हैं। ११। ३५ की टीका में काल और पाश के साथ खण्डराहु, अर्धयामराहु और मुहूर्तराहु का वर्णन है। ये तीनों भिन्न-भिन्न समयों में सब दिशाओं में घूमा करते हैं और यात्रियों को खाते रहते हैं। इन सब को मानने पर प्रतिदिन प्रत्येक दिशा और विदिशा यात्रा के लिए भीषण हो जाती है और कुछ में दो-तीन दोष आ जाते हैं।

नक्षत्रशूल–यात्रा में केवल नव नक्षत्र शुभ हैं और शेष के फल मरण, धननाश, रोग, अग्निभय और शोक आदि हैं। वारों की ही भाँति कुछ नक्षत्र चार दिशाओं में शूल की भाँति चुभते है और कुछ मार डालते हैं। यहाँ लिखा है कि राजा बलि को वामन (विष्णु) इसलिए बाँध सके कि उसने ज्येष्ठा नक्षत्र में पूर्वदिशा की यात्रा की थी। मुरारि द्वारा मुर इसलिए मारा गया कि वह पूर्वाभाद्रपदा में दक्षिण गया था। नमुचि के शरीर को इन्द्र इसलिए चूर्णित कर सके कि उसने रोहिणी में पश्चिम ओर प्रस्थान किया था और शम्बर इसलिए मारा गया कि वह उत्तराफाल्गुनी में उत्तर गया था। ये चारों नक्षत्रशूल में यात्रा न

करते तो उन्हें इन्द्र और विष्णु मार न पाते। यात्रा में जो नव नक्षत्र शुभ हैं, उनमें भी कई सौ दोष हैं। नक्षत्र में कोई पापग्रह बैठा हो, पाप उसे देख रहा हो अथवा नक्षत्र उत्पात या वक्री ग्रह से दूषित हो तो यात्रा नहीं हो सकती। धनिष्ठा और रेवती यात्रा में शुभ हैं परन्तु इनमें दक्षिणदिशा की यात्रा करने पर मरण निश्चित है। इसे पंचक दोष कहते हैं। नव नक्षत्रों में श्रवण भी है। वह शुभ है पर उसमें उत्तर या पश्चिम की यात्रा नहीं हो सकती क्योंकि चन्द्रमा पीछे और बायें पड़ता है। कुछ आचार्य कहते हैं कि राजा, वैश्य, कृषक, उग्रजाति और चाण्डाल आदि भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में यात्रा करें। अन्तिम निर्णय यह है कि जन्मपत्री में जो ग्रह सबसे बलवान् हो उसके वार में यात्रा करे परन्तु बल के इतने प्रकार है कि बली का निर्णय अशक्य है और मुख्य बात यह है कि वारों से ग्रहों का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तथाकथित सम्बन्ध काल्पनिक और मिथ्या है। (देखिए पृष्ठ ७१)।

(१) नक्षत्रशूल का फल है शीघ्र मृत्यु और धननाश। हर नक्षत्र में हर समय यात्रा नहीं करनी चाहिए। दिन का पूर्वार्ध, मध्याह्न, अपरार्ध, सन्ध्या, पूर्वारात्रि, मध्यरात्रि और रात्रि के नक्षत्र भिन्न-भिन्न हैं (११।११)। (२) हर नक्षत्र की सब घटियाँ शुभ नहीं होती। इन्हें ज्योतिषी से पूछ लेना चाहिए (११।१२)। (३) राहु से भुक्त १३ नक्षत्र जीवपक्ष है और १३ भोग्य मृत हैं। इनमें सूर्य चन्द्रमा के रहने पर अनेक फल होते हैं। (४) तिथियों के कुल, अकुल और कुलाकुल, तीन भेद हैं और अनेक फल हैं। (५) सब नक्षत्रों में एक क्रम से राहु की धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चार अवस्थाएँ होती हैं। यात्रा में इनके विभिन्न फल हैं। (६) तिथियों का एक अन्य विशाल चक्र है। उसमें फल मासों के अनुसार है (देखिए पृष्ठ ८२)।

वक्रीग्रह—ग्रह अपनी कक्षा में सर्वदा सीधा चलते हैं पर कभी-कभी हमें उलटा चलते दिखाई देते हैं (देखिए पृष्ठ २७२) किन्तु आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि चार में से किसी एक केन्द्र में एक भी वक्री ग्रह स्थित हो अथवा लग्न में वक्री ग्रह का कोई वर्ग हो या वार हो तो यात्री का सर्वनाश हो जाता है। इनके अतिरिक्त यात्रा के घातक अन्य अनेक कुयोग हैं। उनके नाम हैं महाडल, भ्रमण, हिम्वर, घातचन्द्र, घाततिथि, अन्य अनेक घात, परिघदण्ड, अयनदोष, कुंभकुंभांश आदि। इनके अतिरिक्त अशुभ लग्नों एवं अपशकुनों के कई सौ भेद-प्रभेद हैं।

इन दोषों का वर्णन करते हुए गोविन्दाचार्य ११।३५ के भाष्य में लिखते हैं कि जातक, मुहूर्त, स्वरोदय और संहिता में लिखे सब दोषों का विचार करने पर शुभ मुहूर्त सहस्र वर्षों में भी नहीं मिलेगा। इसलिए हम आचार्यों के इस आदेश पर ध्यान दें कि गुण की प्रचुरता में कुछ दोष उसी प्रकार समाप्त हो जाते हैं जैसे प्रज्वलित अग्नि में पड़ा एक बूँद जल उड़ जाता है परन्तु कुछ आचार्यों का कथन है कि एक बूँद मदिरा पंचगव्य के पूरे कलश को दूषित कर देती है अतः छोटे दोषों को छोटा मत समझो पर सत्य यह है कि दोषों की संख्या अगणित है और उनका प्रयोग तथा अनुभूति से कोई सम्बन्ध नहीं है। ये सबकी सब कल्पनाएँ हैं।

स्वरशास्त्र और नरपतिजयचर्या

ज्योतिष सम्बन्धी स्वरशास्त्र (विजययात्रा) के ग्रन्थों में नरपतिजयचर्या प्रमुख है। इसमें लिखा है कि इसका विशेषज्ञ पण्डित चारों प्रकार के संग्रामों में शत्रुओं को जीतकर अपने राजा को विजयश्री देता है, इसमें सन्देह नहीं है। राजा यदि स्वर से हीन है तो भूपों की सहायता प्राप्त होने पर भी उसकी चतुरंगिणी सेना नष्ट हो जायेगी। जिस राजा के पास स्वरशास्त्र में पारंगत एक भी पण्डित नहीं है उसका राज्य केले के खंभे सरीखा ऊपर से देखने में पुष्ट और चिकना चुपड़ा होते हुए भी अन्तःसार से हीन है। स्वर ठीक न चल रहे हों तो फूल से भी मत मारो। स्वर उदित हैं तो करोड़ों शस्त्रों को भी आने दो। चिन्ता मत करो। स्वरशास्त्र, शकुन, ज्योतिष, मन्त्र और करेली, इन पाँच विघाओं के विशेषज्ञ राजा के पाँच रत्न हैं। पूर्वाचार्यों द्वारा बताये हुए स्वरशास्त्र विषयक चक्रों में ८४ को मैं जानता हूँ। इन्हें जानकर युद्ध करने से इन्द्रतुल्य शत्रु पर भी विजय मिलती है। इनके अतिरिक्त विजयप्रद ८४ भूवल भी हैं। स्वरचक्र, चक्र, भूवल, बल, ज्योतिष और शकुन, ये छ अंग हैं। चक्रों के कालानल, घोरकालानल, फणीश, कुन्त आदि और भूवलों के क्षेत्रपाली, भद्र-काली, भैरवी, कराली आदि नाम

हैं। मंत्रों में मारण, मोहन, उच्चाटन आदि का वर्णन है। शकुन और ज्योतिष के अगणित योग हैं। जो इन भूबलादिकों के अनुसार रणक्षेत्र में प्रवेश करेगा उसके शत्रु वैसे ही नष्ट हो जायेंगे जैसे वायु से मेघ छिन्न-भिन्न होते हैं। फिर उसे धरती के किसी भी राजा को जीतने में कठिनाई नहीं होगी। इन चक्रों को देखने के पूर्व बलि, होम, कुमारीपूजन और शुभग्रह परीक्षण अवश्य करें।

यस्यैकोपि गृहे नास्ति स्वरशास्त्रस्य पारगः। रंभास्तंभोपमं राज्यं निश्चितं तस्य भूपतेः॥
स्वरज्ञः शकुनज्ञश्च दैवज्ञो मन्त्रपारगः। केरलीवित्तथा राज्ञां कीर्तितं रत्नपंचकम्॥
स्वरोदयबले प्राप्ते योद्धव्यं शस्त्रकोटिभिः। जयेदिह न सन्देहः शक्रतुल्येपि वैरिणि॥
बलान्येतानि यो ज्ञात्वा संग्रामं कुरुते नृपः। अरयस्तस्य नश्यन्ति मेघा वातहता यथा॥

स्वरशास्त्र और पुकारने का नाम

यहाँ लिखा है कि जन्मराशि ज्ञात न हो तो सारा विचार पुकारने के नाम से करो। अज्ञातजातकानान्तु समस्तम-भिधानतः। ज्योतिष कहता है कि यह नाम तुम्हारी इच्छा से नहीं, ईश्वर के आदेश से रखा गया है किन्तु कठिनाई यह है राम-रावण और कृष्ण-कंस आदि के नाम के आद्यक्षर एक ही हैं, बहुतों के उपनाम ही प्रसिद्ध हैं और बहुतों के कई नाम हैं। नरपतिजयचर्या में ४५०० श्लोक हैं और उसके अनेक विषय विवादास्पद हैं। यात्रा सम्बन्धी एक श्लोक है-

चैत्रादयस्त्रिगुणिता मासास्तु तिथिसंयुताः।
नवभक्ताः क्रमाज्ज्ञेयाः शेषा यात्रा नवैव तु॥

अर्थात् मास संख्या में तीन का गुणा करो, उसमें तिथि जोड़ो, नव का भाग दो और यात्रा के विषय में शेषों का यह फल कहो--(१) निष्फला, (२) राक्षसी, (३) शुभा, (४) मृत्युदा, (५) तारिणी, (६) कालरूपा, (७) राज्यदा, (८) हानिदा, (९) शुभा। परन्तु इस फल की मुहूर्त ग्रंथों से संगति नहीं लगती। साधिका दशा में भद्रा आ गयी तो फल क्या होगा? स्वरशास्त्र में ही फलादेश की परस्पर विरुद्ध अनेक विधियाँ हैं। स्वरों की बाल, कुमार, युवा आदि अवस्थाओं से, मात्रा, वर्ण, ग्रह आदि से और स्वरों की अन्य १२ अवस्थाओं से कई सौ भेद हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त जातक दशाएँ स्वरदशाओं से भिन्न हैं तथा स्वर के विष्णुयामल, रुद्रयामल और समरसार आदि ग्रन्थों के सिद्धान्तों में मतभेद है।

दो सहस्त्र वर्षों की पराधीनता में विजययोग अदृश्य

मुहूर्त ग्रन्थों नरपतिजयचर्या और समरसार आदि में कई सहस्त्र विजयप्रद योगों का वर्णन है। मुहूर्त-चिन्तामणि का कथन है कि (१) स जयत्यरीन् प्रचलितः ११।५८ (२) प्रयातो महीशो जयत्येव शत्रुन् ११।६०, (३) जेता शत्रून् गरुड इवाहीन् ११।६२ (४) स्युः शलभा इव सर्वे ११।६३ (५) रिपुवाहिनी वशमेति ११।६४, (६) वसुचय लाभदयोगः ११।७०, (७) क्षेमयशोवनीर्लभते ११।७६॥ अर्थात् इन योगों में यात्रा करने वाला शत्रुओं को झट जीत लेता है। ऐसे जीतता है जैसे सर्पों को गरुड। शत्रु पतंगों की भाँति जल जाते हैं। शत्रुसेना वशीभूत हो जाती है और अपार धन, यश, राज्य मिलता है किन्तु इन योगों, मंत्रों, बलियों, होमों और देवादिकों के रहते हमने अगणित कष्ट झेले हैं। उनकी कथाएँ ये हैं--

ई० पू० ३२६ में सिकन्दर ने तक्षशिला पर आक्रमण कर आंभी को पराजित किया। आंभी ने बाध्य होकर अनेक बहुमूल्य पदार्थों के साथ उसे ५००० सैनिक दिये और वे भारत विजय में सिकन्दर के सहायक बने। पोरस गणेशरूपी हाथियों के कारण हार गया, पंजाब-सिन्ध आदि पर यूनानी राज्य स्थापित हो गया और यूनानी ज्योतिष यहाँ आ गया। उसके बाद डिमेट्रियस ने पंजाब, सिन्ध और मिलिन्द ने काठियावाड़, मथुरा जीता और कुषाणों का राज्य काशी तक आ गया। मुहम्मद

बिन कासिम ने १७ वर्ष के वय में ७१२ ई० में सिन्ध पर आक्रमण किया और धीरे-धीरे देवल, निरून, सेहवान, रावर, ब्राह्मणावाद आदि को जीत लिया। देवल पर आक्रमण के समय उसने एक मन्दिर की पताका गिरवा दी और उस अपशकुन के भय से हिन्दू सेना भाग गयी। सिन्ध के ब्राह्मण राजा दाहिर का सिर काट दिया गया, उसके पुत्र जय को मुसलमान बनाया गया और वह ७१७ में मार डाला गया। कासिम ने अगणित हिन्दुओं को काटा और मुसलमान बनाया। कासिम को मन्दिर के गुप्त कोष से ६००० ठोस मूर्तियाँ मिलीं जिनमें एक तीस मन की थी। हीरा, पन्ना माणिक, मोती, सोना आदि के ढेर के साथ वह ७०० सुन्दरियाँ ले गया। ब्राह्मणावाद की विजय के समय कासिम ने दाहिर की दो पुत्रियों सूरज देवी और परमल देवी को पकड़ लिया, बाद में उन्होंने आत्महत्या कर ली और दाहिर के वध के बाद अनेक नारियाँ सती हो गयीं। कासिम ने विजय के उल्लास में चाचा को पत्र लिखा कि दाहिर और उसके स्वजनों को दोज़ख भेज दिया गया है, तमाम काफिरों को मुसल्मान बना दिया गया है और उनके मन्दिरों पर मसजिदें खड़ी हैं। उसने अनेक गाँव लूटे और अनेक को मुसल्मान बनाया।

ग़ज़नवी सुबुक्तगीन ने जयपाल को हराया, लूटा और उसके पुत्र महमूद ने १००० ई० में उसे बन्दी बनाया। वह छ लाख दीनार और लाखों गुलाम दे कर छूटा पर बाद में आग में जल मरा। महमूद ने जयपाल के पौत्र सुखपाल को मुसल्मान बनाया और उसका नाम नवासाशाह रखा। जयपाल के पुत्र आनन्द पाल की हार का भी कारण वही हाथी बना जो गणेश है, इन्द्र का वाहन है और गजलक्ष्मी को नहलाता है। आनन्दपाल के २०००० सैनिक मारे गये। महमूद ने पितापुत्र दोनों से दो लाख दीनार का हार, और अपार धन लिया। १००६ में नगरकोट पर आक्रमण किया तो वहाँ के राजा ने आत्म समर्पण कर दिया। महमूद ने सब मंदिरों की सम्पत्ति लूटी, गाँवों को लूटा, अगणित का वध किया और बहुतों को मुसल्मान एवं गुलाम बनाया। उसे जितने ऊँट मिल सके, सब पर मन्दिरों और राजकोष का धन लादा गया। वह ७४० मन सोना, २००० मन चाँदी, २० मन से अधिक रत्न और सहस्रों स्वर्णसिलें तथा मूर्तियाँ ले गया। मुसल्मान इतिहासकारों ने लिखा है कि गजनी शहर हिन्दूनगर सा दिखाई दे रहा था और वहाँ हिन्दू गुलामों को दो रुपये में खरीदने वाले नहीं मिल रहे थें। कई ने उनकी संख्या दो लाख बतायी है। महमूद ने १०१६ में कन्नौज के सातों दुर्ग एक दिन में जीत लिये। १०१८ में मथुरा के राजा कुल चन्द पर आक्रमण किया तो उसके ५००० वीर मरे और राजा ने पत्नी के साथ आत्महत्या कर ली। बरन के राजा हरदत्त ने १०००० हिन्दुओं के साथ इस्लाम स्वीकार किया। महमूद ने १०१८ में बुलन्दशहर, महावन, मथुरा और उसके आसपास के गाँवों को लूटते हुए १०१६ में कन्नौज में प्रवेश किया। राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली और उसने सहस्रों समृद्ध मन्दिरों को यथेच्छ लूटा। वहाँ से तीस लाख दिरहम, ५५००० गुलाम बहुत हाथी और बहुमूल्य सामग्रियाँ ग़ज़नी ले गया। उसने कालिंजर के गण्ड को हराया और वहाँ से भी अपार धन-जन ले गया। १०२५ की सोमनाथ की लूट में मन्दिर की रक्षा में क्षत्रियों के कई वंश समाप्त हो गये। मन्दिर के पूजाव्यय में १०००० गाँव सहायक थे, ५६ खंभों में अगणित रत्न जड़े थे और ४० मन सोने की जंजीरें थीं। महमूद ने मूर्ति तोड़ी उसके टुकड़ों को मसजिदों की सीढ़ियों में लगवाया, ५०००० से अधिक हिन्दुओं को मारा और रत्नों, सोना, चाँदी, दासों और दासियों की विशाल राशि ले गया। भूमि के भीतर की हड्डी बताने वाले ज्योतिषियों ने उस समय साधुवेश में घूमते मुसलमान गुप्तचरों को नहीं पहचाना। महमूद ने ३० वर्षों में १७ आक्रमण किये।

मुहम्मद गोरी ने उंछ, पेशावर और स्यालकोट जीतने के बाद ११६२ में पृथ्वीराज को जीता, उसकी आँखें फोड़ी, हत्या की और झाँसी, समाना, अजमेर (पुष्कर क्षेत्र) जीता तथा तराइन के द्वितीय युद्ध में लाखों राजपूत मरे और हारे। गोरी ने कन्नौज और काशी को जीता, मन्दिरों को तोड़ा लूटा, नगरकोट की विजय में २०००० मारे और सात लाख स्वर्णदीनार, ७०० मन सोने चाँदी के पत्र, २०० मन सोने के पासे, २००० मन चाँदी और २० मन हीरा, पन्ना, मूँगा, मोती आदि पाया। गोरी ने भारत में एक सहस्र मन्दिर तोड़े, कई लाख को मारा, कई लाख हिन्दुओं को दासदासी बनाया और ४००० ऊँटों पर लाद कर रत्न आदि ले गया।

बख्तियार ख़िलजी ने ११६७ में विहार के पालवंश को परास्त कर पूरा बिहार जीता, १२००० बौद्ध भिक्षुओं की

हत्या की, अनेक पुस्तकालय जलाये, विद्यापीठ ध्वस्त किये और बौद्ध धर्म को उसकी जन्मभूमि से भगा दिया। उसने राजा लक्ष्मणसेन को भगाया तथा सारा रनिवास और सारा राज्य ले लिया। उसने बंगाल के साथ ही कालिंजर, कालपी और बदायूँ को जीता तथा अल्तमश ने ग्वालियर, मालवा और उज्जैन जीता। अलाउद्दीन ने देवगिरि के राजा को हराया, उसका धन लूटा, दूसरी बार दिल्ली भेज कर उसकी हत्या की और तीसरी बार उसके पुत्र शंकर देव को मार डाला। १२९६ में गुजरात पर आक्रमण कर कर्णदेव को हराया, उसकी पत्नी कमला को बीबी बनाया और रणथंभौर को जीत कर राजा सहित पूरे राजवंश को मार डाला। अलाउद्दीन से राजा का युद्ध ११ मास चलता रहा, राजपूत केसरिया बाना पहन कर रण में मरे और पतिव्रताएँ पद्मिनी के साथ सती हो गयीं। मलावार का राजा हार कर भाग गया, लूट कर मदूरा दरिद्र बना दिया गया और वारंगल एवं द्वारसमुद्र में भी यही हुआ। अलाउद्दीन के राज्य में हिन्दू जज़िया कर देते थे, दुधारू पशुओं का कर देते थे, कर में आधा अन्न देते थे, घोड़े पर नहीं चढ़ते थे, शस्त्रास्त्र नहीं रखते थे, अच्छा वस्त्र नहीं पहनते थे और कोई पद नहीं पाते थे। उसने अन्हिलवाड़ के राजा कर्ण की पुत्री देवलदेवी से अपने लड़के खिज़िर खाँ का विवाह किया।

कुतुबुद्दीन ऐबक ने तेजपाल का सिर काट कर लटका दिया, दिल्ली के पास के २७ भव्य मन्दिरों को तोड़ा, तोमरों के मन्दिर पर जामा मसजिद बनवाई और खंभों पर बनी सुन्दर मूर्तियों के नाककान तोड़ दिये। चौहान राजा विग्रहराज का बनवाया सरस्वती मन्दिर तथा अजमेर और मेरठ के सारे मन्दिर मसजिद में परिणत हो गये। महीपाल देव तोमर के बनवाये शिव मन्दिर के शिवस्थान पर कब्र बन गयी तोमर ने पाँच लाख लोगों का वध किया। जनरल कनिंघम ने लखनऊ के गजेटियर में लिखा है कि बाबर के वज़ीर मीरबांकी द्वारा अयोध्या का राममन्दिर गिराने में १७६००० हिन्दू मारे गये और वहाँ मसजिद बनाने में गारे में पानी के स्थान में हिन्दूरक्त डाला गया। बाबर अयोध्या को मक्का बनाना चाहता था। उसने १५२८ में राणा संग्राम सिंह से युद्ध किया और विजयी होने पर रामजन्मभूमि पर मसजिद बनायी। फतेहपुर सीकरी के राजभवन, अनूपझील और मन्दिर आदि राजपूतों द्वारा निर्मित थे। उनकी शिल्पकला भारतीय है पर वे सब मसजिद और क्रबिस्तान बन गये। बाबर ने घामदेव से सीकरी ले ली और उनके बहनोई अजीत सेन को इब्राहीम लोदी ने गोमांस खिलाकर मुसल्मान बना दिया। बाबर ने सीकरी की पहाड़ी पर राजपूतों के कटे सिर का विजयस्तूप बनवाया, सकरवार क्षत्रिय वहाँ से भाग गये, यमुनास्तंभ कुबुबमीनार हो गया, शिवमन्दिर ताजमहल बन गया, अयोध्या फैजाबाद कही जाने लगी, प्रयाग इलाहाबाद हो गया और सब छोटे नगरों के नाम अरबी हो गये। अकबर ने १५६१ में गोंडवाना में महारानी दुर्गावती और उनके पुत्र को मार डाला, चित्तौड़ का दुर्ग जीता, राजपूत कन्याएँ व्याही और वीर राजपूतों को मरने तथा उनकी पत्नियों को जलने के लिए बाध्य किया। मुसलिम इतिहासकार अल बदायूनी फिरिश्ता और निजामुद्दीन अहमद ने अपनी क़लम से लिखा है कि अकबर ने चित्तौड़ के मन्दिरों को ध्वस्त करने की आज्ञा दी तो उनकी रक्षा में १०००० राजपूत वीर मारे गये। राणाप्रताप ने घास की रोटी खायी, रणथंभौर के सुरजनसिंह और कालिंजर के रामचन्द्र सिंह परास्त हुए, १५६२ में जयपुर के राजा विहारीमल की कन्या से अकबर का विवाह हुआ, उसे अम्बर के राजा भारमल की कन्या प्राप्त हुई, मीना बाजार लगा, जहाँगीर ने मेवाड़ पर चार आक्रमण किये, रणकपुर का मन्दिर तोड़ा, उसकी रक्षा में मुकुन्ददास मारा गया, जहाँगीर की आज्ञा से खुर्रम ने मेवाड़ पर पुनः आक्रमण किया, मन्दिर तोड़े, खेत जलाये, हिन्दू स्त्रियों और बच्चों को नीलाम किया और सलीम का मानबाई सदृश अनेक हिन्दूकन्याओं से विवाह हुआ। उसने मानबाई के पुत्र के नेत्र फोड़े और ज़ेल में डाल दिया क्योंकि उसको गुरु अर्जुनदेव पर श्रद्धा थी। बाद में शाहजहाँ ने उसे कटवा दिया। शाहजहाँ की माता मारवाड़नरेश उदय सिंह की कन्या थी। जहाँगीर ने गुरु अर्जुनदेव को जलते कड़ाहे में बैठा कर, जलती रेत से भून कर और गाय की खाल में बन्द कर रावी नदी में डुबो दिया फिर भी अकबर और जहाँगीर के दरबारी पण्डित शास्त्रार्थ में पण्डितों को जीतते रहे, दिग्विजय के सहस्त्रों मुहूर्त लिखते रहे और बादशाह का गुण गाते रहे।

गुरु अर्जुनदेव पाचवें, हरगोविन्द छठें और श्री तेगबहादुर सिखों के सातवें, गुरु थे। वे पाँच वीरों के साथ दिल्ली

गये। औरंगजेब ने मति दास को आरे से चिरवाया, दयालु को कड़ाहे में उबलवाया, सतोदास को रूई में लपेट कर जलाया, ऊधा तथा गुरुदित्ता को कटवाया, गुरु तेगवहादुर का सिर चाँदनी चौक में कटवाया और उसे गुरु गोविन्दसिंह के पास भेजवा दिया। उनके पुत्रों की भीषण मृत्यु सुप्रसिद्ध है। गोविन्दवाणी में लिखा है कि औरंगजेब शिखा सहित सिर को मूत्र से मुंड़वाता था, उसका जुलूस निकालता था और उस पर ईंट, जूता आदि रखवाता था। मूत डारि तिन सीस मुंड़ाये। मूँड़ मूँड़ कर सहर फिराये।

मथुरा के केशवदेव कटरा श्रीकृष्ण की जन्मभूमि है। उस पर भिन्न-भिन्न समयों में जो अनेक विशाल और भव्य मन्दिर वने वे सब मुसलमानों द्वारा तोड़ डाले गये। ४०० इसवी के आसपास यहाँ विक्रमादित्य ने एक भव्य मन्दिर बनवाया था। उसके पास ही जैनों और बौद्धों के मन्दिर और विहार थे। १०१७ में महमूद ग़ज़नवी ने उन सब को तोड़ा और लूटा। महमूद के मुंशी अलुतनवी ने स्वयं लिखा है कि ऐसा मन्दिर २०० से कम वर्षों में और दस करोड़ से कम स्वर्णमुद्रा में नहीं बन सकता। ११५० ई० में यहाँ दूसरा मन्दिर वना और उसे सिकन्दर लोदी ने ध्वस्त किया। उसके सवा सौ वर्षों वाद ओर छानरेश श्री वीर सिंह जू देव ने तैंतीस लाख की लागत से २५० फीट ऊँचा आठ मंजिल का मन्दिर बनवाया। वह आगरा से दिखाई देता था। १६६६ ईसवी में उसे तोड़ कर उसी की सामग्री से उसी की कुरसी पर औरंगजेब ने जो ईदगाह बनवायी वह अभी खड़ी है। उसने जुझारसिंह की हत्या की, स्त्रियों को अपने महल में रख लिया तथा गुरु तेग बहादुर और शंभा जी की हत्या की। उसने काशी के विश्वनाथ मन्दिर के साथ लगभग १००० मन्दिर तोड़े, उन पर मसजिदें बनवायीं। काशी का नाम मुहमदाबाद रखा और ६० वर्ष जीवित रहा परन्तु उसके दरवार में भी कई ज्योतिषी पण्डितराज विराजमान थे और उसका तथा उसके पूर्वजों का यशोगान कर रहे थे। मुसल्मानों ने हमारी आँखें निकलवायीं सिर में लोहे की कीलें ठोंकीं, खालें खिचवायीं, हाथी से कुचलवाया और अनेक दुर्दशाएँ कीं, इसकी सहस्त्रों कथाएँ हैं। अंगरेजों और पुर्तगीजों आदि ने भी दूसरे ढंग से उनसे बढ़ कर ऐसे अत्याचार किये जो भुलाये नहीं जा सकते। जिस नदी और प्रान्त के नाम पर हिन्दू और हिन्दुस्तान शब्द बने हैं वे दोनों अब हमारे नहीं रहे। इसके हेतु भी अंगरेज ही हैं।

परन्तु खेद है कि हमें इन दो सहस्र वर्षों में विजय यात्रा का एक भी प्रवल मुहूर्त नहीं मिला जव कि उनकी संख्या सहस्त्रों में बतायी गयी है, तो हम इन्हें सत्य कैसे मानें और वे सत्य नहीं हैं तो वे कई सहस्र भीषण योग कैसे सत्य हो सकते हैं जो कन्या की बिदाई पाँच वर्ष तक रोक देते हैं, कई वर्षों को विवाहमुहूर्त से विहीन बना देते हैं, व्यवहार में सैकड़ों अड़ंगे डालते हैं और जिन्होंने हमारे मनोबल को समाप्त कर दिया है?

नेपाल की विजय और बबुआ ज्योतिषी—कुछ लोग कहते हैं कि वबुआ ज्योतिषी के मुहूर्त के बल पर नेपाल को अंगरेजों से युद्ध में विजय मिली परन्तु बबुआ ज्योतिषी १८१६ ईसवी के आसपास मरे। उस समय भारत अंगरेजों से त्रस्त था और उन्होंने हमारे वीरों की कोई सहायता नहीं की। बबुआ ज्योतिषी वाला ज्योतिष आज भी विद्यमान् है पर उसकी शक्तिहीनता प्रत्यक्ष है। वस्तुतः मरी भैंस के २५ सेर दूध का सभी वर्णन करते हैं और प्राचीन सव ब्राह्मणों की धोती आकाश में सूखती थी। सच यह है कि नेपाल को शौर्य से विजय मिली थी और हमें अपने वीरों के शौर्य के श्रेय मुहूर्त आदि को देकर कृतघ्नता नहीं करनी चाहिए। कलंगादुर्ग के सेनापति श्रीबलभद्रसिंह का इतिहास जानने पर यह मुहूर्त वाला भ्रम समाप्त हो जायेगा। देहरादून के वन में रीचपाना नदी के किनारे एक स्मारक पर अंग्रेजों ने स्वयं लिखवाया है—

'हमारे वीरशत्रु बलभद्रसिंह और वीर गोरखों की स्मृति में संमानोपहार'। वस्तुतः सत्य मुहूर्त के ज्ञाता ब्राह्मण हैं परशुराम, विश्वामित्र, योगवासिष्ठ के वसिष्ठ, चाणक्य, रामदास समर्थ, गोखले, रानडे, तिलक, सावरकर, अरविन्द, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, मालवी और राजगुरु आदि। हमें विजययात्रा का मुहूर्त इनसे सीखना है। अकवर जहाँगीर और औरंगजेब के पण्डितराजों की पोथियों से कभी नहीं। निश्चित है कि सिकन्दर, खिलजी, लोदी तुगलक, मुगल, अंग्रेज और पुर्तगीज

आदि ज्योतिषियों से मुहूर्त पूछ कर नहीं आये थे, मनोबल ही उनका मुहर्त था और सुभाष, गांधी आदि ने उसी द्वारा हमें स्वतंत्रता दिलाई।

शकुनाध्याय या ज्योतिष की बुझौवल

वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में शकुनों के १२ अध्याय और ५०० श्लोक लिखे हैं किन्तु अन्य भी अनेक अध्याय शकुनतुल्य ही हैं। वस्तुतः फलित ज्योतिष ही शकुनाध्याय और एक बुझौवल है। लग गया तो तीर, नहीं तो तुक्का। आचार्य ने (अध्याय ८६ में) लिखा है कि पूर्वजन्म के पुण्यपाप के अनुसार शुभाशुभ शकुन देखे सुने जाते हैं। वे कहते हैं कि मैं शुक्र, इन्द्र, बृहस्पति, गरुड, कपिष्ठल, भागुरि, देवल, भरद्वाज, ऋषभ, द्रव्यवर्धन, गर्ग और सप्तर्षि आदि आचार्यों के शकुनों को पढ़ कर उनका संक्षिप्त सारांश लिख रहा हूँ (८६। १०)। आचार्य ने अनेक प्राणियों के ऐसे नाम लिखे हैं जिनके हिन्दी में पर्याय उपलब्ध नहीं है। इसलिए यहाँ कुछ प्रसिद्ध नाम ही लिखे जा रहे हैं। आचार्य पुरुष, स्त्री और नपुसंक नामों के अनुसार फल कहते हैं पर हिन्दी में नपुंसकलिंग है ही नहीं और अनेक प्राणियों के लिए संस्कृत से भिन्न हैं। चार दिशाओं के चार फल लिखे हैं पर चार कोण किस में लिये जायँ, इसमें आचार्यों में मतभेद है। अग्निकोण को कोई पूर्व में लेता है तो कोई दक्षिण में। आगे लिखा है कि एक ही शकुन के दिन और रात में भले-बुरे दो फल हो जाते हैं तथा ऋतुओं और मासों के अनुसार भी उनमें अन्तर पड़ जाता है। शकुन में कुछ आचार्य दिशाफल कहते समय १६ दिशाएँ (कोणों के अन्तराल भी) लेते हैं। दिशाओं के अतिरिक्त आगे, पीछे, दायें, बायें और ऊपर नीचे के भिन्न भिन्न फल हैं। कुछ के शब्द, कुछ का दर्शन और कुछ के नाम शुभाशुभ हैं। सम-विषमसंख्या और दिनरात के पूर्वार्धपरार्ध के फल भिन्न भिन्न हैं। अनेक शकुनों के फल पुरुषों और स्त्रियों में विषम हैं तथा इनके अतिरिक्त तिथि, नक्षत्र, वार, योग, करण, मुहूर्त, लग्न, नवांश, छींक, छिपकली और स्वर आदि के परस्पर विरोधी कई सौ फल हैं। इनमें विरोध स्वाभाविक है। आचार्य कहते हैं कि वहाँ बुद्धि से काम लो परन्तु आचार्य की बुद्धि भी हार मान बैठी है।

दिशाफल—मुर्गा, हाथी, मोर, मृग, सिंह के शब्द आदि पूर्व में बली होते हैं। सियार, कौवा, उल्लू, तोता, चकवा, भालू, कबूतर और रोने चिल्लाने के शब्द दक्षिण में बली होते हैं। गाय, खरगोश, हंस, बिल्ली, वाद्य, हास्य, नृत्य आदि पश्चिम में तथा घोड़ा, गधा, चूहा, हिरन, घंटा, शंख, कोयल एवं बिल में रहने वाले उत्तर में बली होते हैं! इनकी संख्या लम्बी है। नेवला, चाष, गिरगिट का सामने आना शुभ है। वानर, भालू आदि का नाम लेना अशुभ है और शब्द तथा दर्शन शुभ हैं। सर्प, खरगोश, सूअर और गोह आदि का नाम लेना शुभ है पर दर्शन आदि अशुभ हैं। विषम संख्या में मृग, नकुल और अण्डज प्राणी बायें से दायें आ जायँ तो शुभ हैं पर भृगु ऋषि का संशोधन है कि ये सारे शुभ दोपहर के पूर्व अशुभ होते हैं। इनका शुभत्व मध्याह्न के बाद होता है। सियार आदि दिन में दायें और रात में बायें शुभ होता हैं। सूअर तथा बिल में रहने वालों का फल इसके ठीक विपरीत है। घोड़ा और श्वेत पदार्थ पूर्व में, शव और मांस दक्षिण में, कन्या और दही पश्चिम में तथा गौ, ब्राह्मण और सज्जन उत्तर में शुभ होते हैं। यात्रा में जो दाहिने शुभ हैं, वही युद्ध, गृहप्रवेश और नष्ट पदार्थ के अन्वेषण में बायीं ओर शुभ होगा। यात्रा में जो पूर्व और आगे शुभ है वह इन कार्यों में पश्चिम और पीछे शुभ होगा। पूर्व में जाल-कुत्ते, दक्षिण में शस्त्र-बधिक, पश्चिम में मद्य-नपुंसक और उत्तर में आसन-हल पुरुषों को अशुभ और स्त्रियों को शुभ में होते हैं। विरुद्ध फल वाले कई आ जायें तो बुद्धि से निर्णय करो (५४)। शकुन बताने वाले जन्तु यदि काँटेदार वृक्ष, काष्ठ, पत्थर, चिता आदि पर बैठे हैं तो शुभ शकुन भी अशुभ हो जायेंगे। वृक्ष के अग्र, मध्य और मूल पर बैठने के फल भिन्न-भिन्न हैं। दिनचर रात में और निशाचर दिन में घूमें तो देश का नाश होता है।

कुत्ता, लोमड़ी और सियार के फल

कुत्ता यदि कलश, दूधवाले वृक्ष, ईंट छाता, शय्या, आसन, ओखली, पताका, दूर्वा आदि पर मूत कर यात्री के

सामने चला जाय तो कार्यसिद्धि होगी। गीले गोबर और सूखी वस्तु पर मूत कर जाय तो मिष्ठान्न, गुड़ और मोदक मिलेंगे। काष्ठ, पत्थर, काँटेदार वृक्ष, हड्डी, सूखे वृक्ष आदि पर मूते तो अशुभ फल होगा। नवीन जूते पर मूतने से कन्या में और पुराने जूते पर मूतने से स्त्री में दोष उत्पन्न होगा। गौ जाति के ऊपर मूत कर आवे तो उसके घर में निकृष्ट जाति से वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न होगी। यदि कुत्ता मुख में जूता, मांस, हड्डी लेकर यात्रा के समय सामने आ जाय तो शुभ फल होगा। सूखा मांस लेकर आने पर यात्री मर जायेगा। कुत्ता मार्ग रोके, शरीर खुजलाये, कान फड़फड़ाये या पैर ऊपर करके सामने लेट जाय तो यात्री को अनेक अशुभ फल होंगे। सूर्योदय के समय सूर्य की ओर मुख करके गाँव में रोये तो राजा मर जायगा। यदि गाँव के अग्निकोण में स्थित कुत्ता सूर्य की ओर मुख करके रोये तो शीघ्र ही चोर और अग्नि का भय होगा। मध्याह्नकाल में रोने पर अग्निभय और मृत्यु तथा दोपहर के बाद रोने पर भयंकर युद्ध होगा। उसमें बहुत रक्तपात होगा। सूर्यास्त काल में रोने से किसानों को और संध्याकाल में रोने से सबको वायु और चोरों का भय होता है। आधीरात में उत्तर ओर मुख करके रोने से ब्राह्मणों को पीड़ा और गायों की चोरी होती है। रात्रि के अन्त में रोने से कुमारदोष और गर्भपात होते हैं। गृहस्वामिनी को देखकर बार-बार रोवे तो समझ लीजिये कि उसे वेश्या कह रहा है। घर की दीवार खोदे तो चोरी होगी। गोशाला खोदे तो गाय की चोरी होगी। बायीं जाँघ सूँघें तो धन लाभ और दाहिनी सूंघे तो स्त्रीकलह होगा। कुत्ते की एक आँख में आँसू हो, वह दीनदृष्टि और मन्दाहार हो जाय तो घर में विपत्ति आयेगी। यात्रा करते समय कुत्ता आपका पैर सूँघे तो समझ लीजिए कि वह यात्रा का निषेध कर रहा है। आप यात्रा न करें तो अभीष्ट सिद्धि होगी। किसी स्थान में रखा जूता सूँघ रहा हो तो शीघ्र यात्रा करनी पड़ेगी। यात्रा के समय भुजाओं को सूँघ दे तो शत्रु और चोर का भय होता है। यदि मांस, हड्डी या अन्य खाने की वस्तु भस्म में छिपावे तो शीघ्रातिशीघ्र अग्निकोप होगा। गाँव में बोलने के बाद श्मशान में बोले तो गाँव का प्रधान मर जायेगा। यदि कुत्ता उकार कहे तो अर्थसिद्धि होगी। बायीं ओर खड़ा होकर ओकार कहे तो भी इष्टसिद्धि होगी किन्तु औकार कहने पर नाना प्रकार के विघ्न आयेंगे। पीछे खड़ा होकर इनमें से कोई भी शब्द करे तो समझ लीजिये कि कुशल नहीं है। वह यात्रा का निषेध कर रहा है। फटे डण्डे की भाँति खं खं करे या बहुत से कुत्ते मंडलाकार दौड़ें तो वे मृत्युभय और गाँव की शून्यता की सूचना दे रहे हैं। कुत्ता ओठ का अन्त भाग चाट रहा है तो आपको मिष्ठान्न मिलेगा। मुँह चाटते हुए यदि ओष्ठ का अन्त नहीं चाट रहा है तो परोसा हुआ भोजन भी नहीं मिलेगा। कुत्ता किस स्थान में बैठकर बोल रहा है उसके अनेक फल २० श्लोकों में हैं। उसके अआ, ओओ, कका और खीखो के फलों में अन्तर है और रहस्यमय है। सियार और लोमड़ी के अधिकांश फल कुत्ते तुल्य हैं। सियार की बोली के अन्त का हूहू और उसके बाद का टाटा तथा लोमड़ी का क्क क्क शुभ है, शेष शब्द अशुभ हैं। दो लोमड़ियाँ एक साथ बोलें तो भीषण फल होता है। दूसरी दक्षिण में है तो फाँसी दिलायेगी और पश्चिम है तो जलभय होगा। कितनी बार बोलने के बाद चुप हुई, इसके भिन्न-भिन्न फल हैं। यहाँ सात तक के लिखे हैं। लोमड़ी भे भे कहे तो भय, भोभो कहे तो विपत्ति और फेफे कहे तो बन्धन और बध देती है। शान्तिदशा में बैठी हो और अकार के बाद टाटा या टेटे कहे तो शुभ है। विशेषत: पूर्व और उत्तर में शुभ होती है। याहि याहि करे तो अग्निभय और धिक्धिक् कहे तो विपत्ति आती है।

> श्वभिः शृगालाः सदृशाः फलेन लोमाशिकायाः खलु कक्कशब्दः।
> हू हू रुतान्ते परतश्च टाटा पूर्णः स्वरोऽन्ये कथिताः प्रदीप्ताः॥ १॥
> हे भेति शिवा भयंकरी भो भो व्यापदमादिशेच्च सा।
> मृतिबन्धनवेदिनी फिफे हूहू चात्यहिता शिवा स्वरे॥ १३॥
> टे टे च पूर्वं परतश्च थे थे तस्याः स्वतुष्टिप्रभवं रुतं तत्॥ १४॥
> याहीत्यग्निभयं शास्ति टाटेति मृतिवेदिका। थिग्थिग्विपत्तिमाचष्टे सज्वाला देशनाशिनी॥

इसके बाद के पाँच अध्यायों में विस्तार से बताया गया है कि जंगली जानवार यदि गाँव की सीमा के पास आ जायँ, घूमें और बोलें तो भूत-भविष्य भय, गाँव की शून्यता, स्त्रियों का अपहरण, बंधन, पुर का अवरोध, पुरनाश आदि अशुभ फल

होते हैं। गायों–भैसों के नेत्रों में आँसू आ जायँ, वे पैर से भूमि खोद रही हों, निष्कारण बोल रही हों तो स्वामी का नाश, चौरभय तथा अनेक अमंगल होते हैं। घोड़े का लिंग, उदर, गुदा या पूँछ प्रदीप्त हो तो अन्तःपुरका नाश होता है और पराजय होती है। इसी प्रकार उसके अन्य अंगों की चेष्टा के शुभाशुभ फल हैं। हाथी का दाँत काटते समय उसमें दिखाई देने वाले चिह्नों तथा हाथी की अंगचेष्टा आदि के विविध फल हैं। गाय, बैल घोड़ा आदि की अंगचेष्टाओं के भी अनेक फल हैं।

काकफल—कौवा का वैशाख में घोंसला बनाना परम शुभ है पर वृक्ष यदि काँटेदार, निन्दित और सूखा है तो घोंसला दुर्भिक्षप्रद हो जायेगा। शरद्ऋतु में वृक्ष की पूर्वदिशा वाली डाल पर घोंसला बनावे तो पहले पश्चिम दिशा में वर्षा होगी और वायव्य कोण में बनाने पर चूहों की वृद्धि होगी। इसी प्रकार आठ दिशाओं के आठ वर्षफल लिखे हैं। यदि गुल्म, लता, प्रसाद आदि में घोंसला बनाता है तो चोर, रोग और अनावृष्टि आदि के भय होंगे। कौवे के अण्डों की संख्या और अण्डों के वर्ण के भिन्न-भिन्न फल हैं। कौवे अकारण एकत्रित होकर बोलें तो दुर्भिक्ष और उपद्रव होता है। आकार में बायें से मण्डलाकार भ्रमण करें तो शत्रुओं से और दायें से घूमें तो स्वजनों में भय होता है। कोयल के समान अति काले हों तो चोरों से भय होता है। शय्या पर हड्डी, केश या पत्ता गिरा दें तो स्वामी का वध होता है। फूल–फल गिरा दें तो पुत्र का और तृण काष्ठ गिरा रें तो कन्या का जन्म होता है। कौवा जो वस्तु उठा ले जाय उसकी हानि और जो गिरा दे उसका लाभ होता है। पीली वस्तु से सोना और श्वेत से चाँदी आदि का लाभालाभ होता है। कौवा क्या गिरा रहा है, क्या कर रहा है, किस प्रकार के स्थान और किस दशा में बैठ कर बोल रहा है, उसके शब्द किस प्रकार के हैं, दायें है या बायें, आगे है या पीछे, किस दिशा से किस दिशा में जा रहा है (दिशाओं के दो भेद हैं। पूर्व पश्चिम आदि और दीप्त शान्त आदि) इनके अनेक फल संक्षेपतः ६२ श्लोकों में लिखे हैं। वे हैं, दुर्भिक्ष, सुभिक्ष, राजभय चोरभय, रोगभय, धनहानि, कुलनाश, ग्रामनाश, बंधन, कलह, पशुभय, सुवर्णलाभ, मिष्ठान्नलाभ, प्रियसमागम, स्त्रीलाभ, मांसलाभ, मद्यलाभ, अश्वलाभ, गजलाभ आदि। कौवा कक, काका करकर, कुरुकुरु, कटकट, केके, कुकु, काक, काँव, काकटि, कवकव, कगाकु, करगौ, गुड़ वड़, कड़, कलय, टड्ड, टाकुटाकु, गुहुगुहु, कटेकटे और टाकुलि आदि शब्दों का उच्चारण करे तो मित्रलाभ, आनन्दप्राप्ति, मृत्यु, विघ्न, सद्योवर्षा, विनाश, विष, प्रीति, वन्धन, भय, वस्त्रलाभ, घात, गोलाभ, अग्निभय आदि अनेक शुभ–अशुभ फल होते हैं।

राजा, राजकुमार, सेनापति, राजदूत, सेठ, गुप्तचर, ब्राह्मण और गजाध्यक्ष, ये क्रमशः पूर्व आदि आठ दिशाओं से सम्बन्धित हैं। क्षत्रिय आदि चारों वर्ण क्रमशः पूर्व आदि चार दिशाओं के स्वामी हैं। जिस दिशा में कुत्ते, सियार या लोमड़ी का अशुभ शब्द होगा उस वर्ग की विशेष क्षति होगी। दिशाओं के शान्त, धूमित आदि आठ नाम रखे गये हैं। सूर्योदय से एक प्रहर तक ईशान दिशा मुक्तसूर्या या अंगारिणी कही जाती है। पूर्व दिशा दीप्ता और आग्नेयी धूमिनी होती है। अंगारिणी के सामने वाली दिशा में दृष्ट शकुन का फल भूतकाल से सम्बन्धित है। दीप्त का फल वर्तमान में और धूमिनी का भविष्य में होता है।

मधुमक्खी और चींटी का शुभाशुभ फल लिखने के बाद कहा है कि दिशा, देश, चेष्टा, स्वर, वार, नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न, नवांशादि और इन शकुनों के फल में मतभेद अवश्य होगा। उस समय उनके बलाबल से निर्णय करो। इसके बाद शकुनों को ग्रहों से जोड़ कर यह बताया है कि आप का जिससे सम्पर्क होने वाला है वह नर नारी वृद्ध, युवा मूर्ख, पण्डित, अंधा, लँगड़ा आदि में से कौन है, उसका नाम क्या है और वय कितना है। शकुनों की फलप्राप्ति के समय का भी गणित है। आगे के अध्यायों में पंचांग फल हैं।

मुहूर्तचिन्तामणि ११।७८ के भाष्य में वसिष्ठ का कथन है कि तुम दुर्जन से, काले साँप से और सिंह के मुख के सम्पर्क से कदाचित् वच सकते हो पर अपशकुन से कभी नहीं। उनका उल्लंघन करने पर मृत्यु और दरिद्रता का आगमन होगा और सुयोग उसे रोक नहीं पायेंगे। यात्राकाल में कोई कह दे कि मत जाओ, रुको, कहाँ जा रहे हो या कोई छींके खाँखे, उलटी करे, चिल्लाये तो मत जाओ। बादल गरजें तो दानपुण्य करके जाओ (११। ९७, ९९)। शुभ शकुन अपने आप न आ

जायें तो उन्हें लाकर भी उतना मंगल पाया जा सकता है (मु० चिं ११।१०१)। इतना ही नहीं, आप दिन की जिस होरा (घण्टे) में यात्रा करेंगे उसका स्वामी जो ग्रह है उसी जाति के शकुन होंगे। दिन के किस घण्टे में किस ग्रह की होरा रहती है, इसका विवरण पृष्ठ ७१ में पढ़ें। मंगलवार के १, ८, ११, १८ घण्टे मंगल के होते हैं उनमें यात्रा करने पर कुटुम्बकलह, बिल्लीयुद्ध, रजस्वलास्त्री, जलता गृह, नपुंसक, तीन कुत्तों और नंगे ब्राह्मण का दर्शन होगा। अन्य ग्रहों के घण्टों में ये दर्शन होंगे। शनि–नंगा यवन, रजस्वला, शव, भूत, गीध, कौवा, विधवा, आग, युवापुरुष। रवि–धोबिन, कुमारी, सुवस्त्र, चार विप्र, तीन काक, दो नेवले, गिलहरी, बैल, गाय। भाष्यकारों का कथन है कि इनमें कोई एक सामने आयेगा। सोम–दो विप्र, कौवा, मृदंग, नेवला, गधा ऊँट, घोड़ा, गाय, भेंड़ा, कुत्ता, फूल, दो स्त्रियाँ। बुध सपुत्रा, स्त्री, सजलकलश, चातकपक्षी, चाष, हाथी, कुमार, पुष्प, स्त्री, दर्पण। गुरु–विप्र, वेश्या, धेनु, सपुत्रास्त्री सजल–कलश, ऊनी वस्त्र, काक, नेवला, बक, हंस, राजा, नर्तकियों का झुण्ड। शुक्र–ब्राह्मण, गणिका, तीन काक, नपुंसक, मदिरा, मांस, ज्योतिषी, धेनु, धान्य वैश्य, तीन शूद्र। परन्तु प्रत्येक वार के २४ घण्टों में इन शकुनों का सामने आना और शुभाशुभ का निर्णय असम्भव है। यहाँ शुभ होराओं के भी अशुभ फल हैं तथा अशुभों के भी शुभ फल हैं।

वसन्तराजशकुन–इस ग्रन्थ के २० अध्यायों में अनेक ललित छन्दों में और ललित भाषा में १५०० से अधिक श्लोकों में शकुनों का वर्णन है। लगभग ८०० श्लोकों में केवल तीन चिड़ियों के स्वरों के फल लिखे हैं, ३०० श्लोकों में कुत्तों के भूँकने तथा उनकी चाल के फल हें और २०० श्लोकों में उनके कोलाहल का वर्णन है। ग्रन्थकार कहता है कि शकुनशास्त्र वेदों, शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों से कम प्रामाणिक नहीं है क्योंकि वह सर्वदा सत्य फल बताता है। उनके अध्यायों की यह श्लोकसंख्या देखने योग्य है। श्यामारोदन ४००, पक्षीविचार ५७, चाष ५, खंजन २७, करापिका ११, कौवा १८१, पिंगलिका २००, चतुष्पद ५०, साँप आदि १३, चींटी १५, छिपकली गिरगिट ३२, कुत्ता २२२, मनुष्यचेष्टा ५०....।

छींक, छिपकली, गिरगिट और अंगस्फुरण

वराहमिहिरादि आचार्य कहते हैं कि छींक हर दिशा और हर स्थिति में अशुभ होती है पर गाय की छींक मृत्यु की सूचना है। गर्गाचार्य कहते हैं कि छींक सुनने पर पैर से अपनी छाया नापो, उसमें १३ जोड़कर ८ का भाग दो। यदि शेष ३, ४, ५, ७, ८ बचें तो मृत्यु, हानि, शोक आदि के भय होंगे। इस नियम को बनाने वाले गर्ग कैसे भविष्यवेत्ता और मेधावी हैं, इसका निर्णय इतने से ही हो जाता है कि वे ८ से भाग देने के लिए ५ नहीं बल्कि १३ जोड़ते हैं। इन्होंने छींकों के दोष के निवारणार्थ कृपा करके शान्ति और दान की विधियाँ भी लिखी है। ज्योतिषशास्त्र कहता है कि शरीर के किसी अंग पर अथवा शरीर से दायें, बायें, आगे, पीछे, ऊपर, नीचे कहीं भी छिपकली गिरी तो मनुष्य विविध रोगों से ग्रस्त हो सकता है, मर सकता है, दीर्घायु हो सकता है, दरिद्र हो सकता है, राज्य पा सकता है और विजयी हो सकता है अतः इस दुर्घटना के बाद हाथ में फल, फूल, वस्त्र और दक्षिणा आदि लेकर तुरत ज्योतिषी के पास जाओ। छूछे हाथ जाना एक और अपशकुन है और नयी आपत्तियों को बुलाना है। जाते समय अपनी जन्मपत्री अवश्य ले जाओ क्योंकि ज्योतिषी जी देखेंगे कि छिपकली का गिरना या गिरगिट का शरीर पर चढ़ना कहीं तुम्हारे जन्मनक्षत्र, जन्मतिथि, जन्मवार, जन्मयोग और जन्मकालीन लग्न आदि में तो नहीं हुआ है। संयोगवशात् यदि ऐसा हो गया है तो शान्ति के लिए अनुष्ठान कराना होगा। गिरते या चढ़ते समय पंचांग में यदि भद्रा, भरणी, रविवार, भौमवार, रिक्ता तिथि, मृत्यु–योग, वज्रयोग आदि अशुभकाल हैं तो बृहत् पूजा करानी होगी। यद्यपि पुरुष का प्रायः दायाँ और स्त्री का बायाँ अंग मुख्य होता है तथापि पल्लीपतन के नियम कठिन हैं। इसमें कोई दायाँ और कोई बायाँ अंग शुभ होता है तथा स्त्रियों में सारे फल उलट जाते हैं। पुरुष के लिए जो शुभ है वही स्त्री के लिए अशुभ हो जाता है। गिरगिट का फल प्रायः छिपकली का उलटा होता है परन्तु उसका पूर्ण विवरण ज्योतिषी ही जानता है अतः इस विषय में सबको टाँग नहीं अड़ानी चाहिए। पल्लीपतन में कुछ वार, नक्षत्र और तिथियाँ शुभ हैं किन्तु पतन यदि अशुभ हैं तो उनका शुभत्व व्यर्थ है। तब शिवालय में दीपदान, जप शान्तियाग और दान करना होगा। लिखा है–

लग्ने पापयुते चन्द्रेऽष्टमेरिष्टं प्रजायते। दोषोपशान्तये स्वर्णगोदानादि प्रशस्यते॥
तिलमाषादिदानं च स्नात्वा देयं द्विजन्मने। शिवालये दीपदानं जपन्मन्त्रं षडक्षरम्॥

पल्लीपतन के कुछ फल

सिर राज्यलाभ	मुख मिष्ठान्नलाभ	हाथ वस्त्रलाभ
केशान्त कष्ट	कण्ठ शत्रुनाश	कटि अश्वलाभ
नासिकाग्र रोग	स्कन्ध विजय	जंघा शुभागम
ललाट बन्धु दर्शन	हृदय धनलाभ	घुटना शुभागम
भ्रूमध्य समान	स्तन दुर्भाग्य	मणिबन्ध धननाश
दायाँकान आयुवृद्धि	दायीं बाहु राज्यलाभ	घुट्ठी धनलाभ
बायाँ कान लाभ	वाम बाहु राजभय	दायाँ पाद गमन
नेत्र बन्धन	उदर भूषणलाभ	बायाँ पैर बंधुनाश
उत्तरोष्ठ धननाश	नाभि धनलाभ	पादमध्य स्त्रीनाश
अधरोष्ठ धन लाभ	पीठ बुद्धिनाश	नख धान्यलाभ

गिरगिट किस अंग पर चढ़ा, किधर से उतरा, उसका वर्ण कैसा था, मुख किस दिशा में था, आप का मुख किधर था, इसके फल भिन्न-भिन्न हैं। पुरुष के सब दक्षिण अंग शुभ हैं और सब वाम अशुभ नहीं हैं। नारियों की भी यही स्थिति है।

अंग स्फुरण और स्वप्न—इन दोनों का सम्बन्ध भोजन और विचार आदि से है। यद्यपि स्फुरण का भावी अनिष्ट से कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी उसके फल लिखे हैं। कुछ ये हैं, इन पर विचार करें।

मस्तक भूमिलाभ	कान शुभ	वक्ष विज़य	लिंग स्त्रीलाभ
ललाट पदलाभ	कपोल स्त्रीलाभ	हृदय इष्टसिद्धि	भग पतिलाभ
भौंह सुख	मुख मित्रलाभ	उदर धनलाभ	गुदा वाहनलाभ
भ्रूमध्य सुख	ओठ प्रियप्राप्ति	नाभि स्त्रीहानि	अण्डकोष पुत्रलाभ
नेत्र धनलाभ	दाढ़ी भय	पीठ पराजय	घुटना शत्रु वृद्धि
नेत्रकोण स्त्रीलाभ	ग्रीवा शत्रु भय	कुक्षि सुख	जंघा सुख
नेत्रपक्ष विजय	कन्धा सुख	कटि आनन्द	मूत्राशय उन्नति
नेत्रपार्श्व स्त्रीलाभ	बाहु सुभोजन	कटिपार्श्व सुख	पादपृष्ठ स्थानलाभ
नाक सुख	हाथ धनलाभ	आंत धनलाभ	पादतल राज्यलाभ

शान्तियाग—स्फुरण में केवल दायाँ बायाँ नहीं देखना है। आँख नीचे फड़क रही है कि ऊपर, भीतर फड़क रही है कि बाहर, भौंह फड़क रही है कि पलक, नाक की दिशा में है कि कान की, ऐसे अनेक प्रश्न हैं। खुजलाहट के भी भिन्न भिन्न फल हैं और इन सब की शान्तियाँ हैं। मुहूर्तचिन्तामणि में भी शकुनों का विस्तृत वर्णन है। उसमें वेश्या, मांस, मदिरा, मछली, शव, अस्त्र आदि शुभ हैं और संन्यासी, काले अन्न आदि अशुभ हैं। चलते समय शरीर से वस्त्र का खिसकना भी अपशकुन है। चलते समय यदि आप से किसी ब्राह्मण का अपमान हो गया तो समझ लें कि आयु बस इतनी ही थी। अब लौट कर आना नहीं है। बचने का एक ही उपाय है, शान्तियाग। असमय पर वृष्टि हो गयी हो या मेघ गरज रहे हों या जाते समय अपशकुन हुए हों तो पहले सूर्य और चन्द्रमा के सोने के दो बिम्ब बनाओ और उनके साथ ब्राह्मणों को घी और सोना दो।

आचार्य वराहमिहिर ने अपने बृहद्यात्रा ग्रन्थ में अपशकुनों के शान्तियज्ञ की और दान आदि की विस्तृत विधि लिखी है।

यात्रायां प्रस्थितो यश्च ब्राह्मणानवमानयेत्। नासौ प्रतिनिवर्तेत तदन्तं तस्य जीवितम्॥
सूर्येन्द्वोर्बिम्बे सौवर्णे कृत्वा विप्रेभ्योदद्याद्दुः। शाकुन्ये साज्यं स्वर्णं दत्वा गच्छेत्स्वेच्छाभिः॥

गृहप्रकरण, वास्तुशास्त्र और वास्तुपुरुष

इसके प्रथम श्लोक में बताया गया है कि आप का गाँव आप के लिए शुभ है या अशुभ। इसमें सारा महत्त्व पुकारने के नाम को और उसकी राशि को है। ज्योतिषाचार्यों का कथन है कि वह नाम ईश्वरेच्छा से रखा गया है। गाँव की राशि आप की राशि से १, ३, ४, ६, ७, ८, १२ है तो आपको गाँव छोड़ देना चाहिए। दिलीप, दशरथ, रघु, राम और लक्ष्मण आदि को अयोध्या में नहीं रहना चाहिए और बुद्ध को विहार, वाराणसी तथा मगध में नहीं जाना चाहिए। रावण के लिए लंका और विक्रमादित्य के लिए उज्जयिनी हानिप्रद है तथा शिव के लिए काशी कैलाश कष्टप्रद हैं। इसके बाद काकिणी का गणित है। अ,क,च,ट,त,प,य,श वर्गों की परस्परविरोधी चार चार जातियाँ है, आठ दिशाएँ है और एक-एक अंक हैं। अपने वर्ग की संख्या के दो गुना में ग्रामवर्ग की संख्या जोड़ कर आठ का भाग दो, दोष तुम्हारी काकिणी है। गाँव के वर्ग के दो गुने में अपना वर्ग जोड़ कर आठ का भाग दो, जो शेष बचा वह गाँव की काकिणी है। यदि वह अधिक होगी तो गाँव से कुछ पाओगे। तुम्हारी काकिणियाँ अधिक हैं तो घाटे में रहोगे। रावण और लंका का वर्ग एक है इसलिए वह लंका से न कुछ पायेगा न उसे कुछ देगा। यह सिद्धान्त सत्य होता तो दिल्ली, बम्बई तथा गाँवों के अधिकांश निवासी वहाँ से भाग जाते। आगे वाले सिद्धान्त भी ऐसे ही हैं।

११	८ पूर्व		१२
१	२	३	६
	५	१०	
७	६ पश्चिम		४

कहाँ बसें—८ राशि वालों को गाँव के पूर्व और ६ वालों को पश्चिम नहीं बसना चाहिए। कुशल चाहें तो २, ३, ५,१० राशि वाले गाँव या नगर के बीच में न बसें। आप का नाम तीर्थराज है अर्थात् आप तवर्ग में हैं तो गाँव के पश्चिम बसें परन्तु घर का द्वार पूर्व की ओर न करें क्योंकि उधर वह गरुड़ बैठा है जो आपके वर्ग साँप को खाता है। आपका नाम रामदेव है तो गाँव के उत्तर बसें और द्वार दक्षिण न करें क्योंकि उधर आपके वर्ग मृग को खाने वाला सिंह बैठा है।

मेष ईशान ८ शवर्ग	गरुड पूर्व १ अवर्ग	बिल्ली अग्नि २ कवर्ग
मृग उत्तर ७ यवर्ग	०० ००	सिंह दक्षिण ३ च वर्ग
मूषक ६ पवर्ग वायव्य	सर्प पश्चिम ५ तवर्ग	नैऋत्य ४ टवर्ग

गृहद्वार—हमें दक्षिण दिशा से बहुत भय है इसलिए कोई भी अपने गृह का द्वार दक्षिण में नहीं रखता। पश्चिम उससे कुछ अच्छा है अतः दो-चार प्रतिशत गृह पश्चिम द्वार के मिल सकते हैं। गृह के द्वार प्रायः पूर्व और उत्तर में रहते हैं किन्तु ज्योतिष में चारों दिशा में द्वार रखने का नियम है। यद्यपि नियम विरुद्ध द्वार के बहुत भीषण फल लिखे हैं किन्तु नियम अनेक हैं और एक दूसरे के विरुद्ध हैं। कुछ ये हैं-(१) ज्योतिष ने १२ राशियाँ ब्राह्मणादि चार वर्णों और पूर्वादि चार दिशाओं में बाँट दी हैं तथा यह नियम बना दिया है कि जिनकी राशियाँ ब्राह्मण (४, ८, १२) हों वे घर का द्वार पूर्व की ओर रखें। क्षत्रिय राशि (५, ६, १) वाले दक्षिण में, वैश्यराशि (२, ६, १०) वाले पश्चिम में और शूद्र राशि (३, ७, ११) वाले लोग उत्तर में गृहद्वार रखें। (२) जिसका वर्ग जिस दिशा या कोण में हो वहीं द्वार रहे। आपका वर्ग सिंह है तो दक्षिण द्वार का गृह बनावें। आपका नाम नरेन्द्र है अर्थात् तवर्ग है तो द्वार पश्चिम की ओर रखें। (३) आपके गृह का आय वृष है तो पूर्वद्वार रखें। गज आय है तो पूर्व, दक्षिण, दो द्वार रखें। सिंह आय है तो पूर्व, दक्षिण, उत्तर, तीन द्वार बनावें और ध्वज आय हो तो चार द्वारों की व्यवस्था करें। हाँ, इनमें मृग-सिंह वाला प्रश्न आयेगा। (४) तिथियों के अनुसार भी

लग्ने पापयुते चन्द्रेऽष्टमेरिष्टं प्रजायते। दोषोपशान्तये स्वर्णगोदानादि प्रशस्यते॥
तिलमाषादिदानं च स्नात्वा देयं द्विजन्मने। शिवालये दीपदानं जपन्मन्त्रं षडक्षरम्॥

पल्लीपतन के कुछ फल

सिर राज्यलाभ	मुख मिष्ठान्नलाभ	हाथ वस्त्रलाभ
केशान्त कष्ट	कण्ठ शत्रुनाश	कटि अश्वलाभ
नासिकाग्र रोग	स्कन्ध विजय	जंघा शुभागम
ललाट बन्धु दर्शन	हृदय धनलाभ	घुटना शुभागम
भ्रूमध्य समान	स्तन दुर्भाग्य	मणिबन्ध धननाश
दायाँकान आयुवृद्धि	दायीं बाहु राज्यलाभ	घुट्ठी धनलाभ
बायाँ कान लाभ	वाम बाहु राजभय	दायाँ पाद गमन
नेत्र बन्धन	उदर भूषणलाभ	बायाँ पैर बंधुनाश
उत्तरोष्ठ धननाश	नाभि धनलाभ	पादमध्य स्त्रीनाश
अधरोष्ठ धन लाभ	पीठ बुद्धिनाश	नख धान्यलाभ

गिरगिट किस अंग पर चढ़ा, किधर से उतरा, उसका वर्ण कैसा था, मुख किस दिशा में था, आप का मुख किधर था, इसके फल भिन्न-भिन्न हैं। पुरुष के सब दक्षिण अंग शुभ हैं और सब वाम अशुभ नहीं हैं। नारियों की भी यही स्थिति है।

अंग स्फुरण और स्वप्न—इन दोनों का सम्बन्ध भोजन और विचार आदि से है। यद्यपि स्फुरण का भावी अनिष्ट से कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी उसके फल लिखे हैं। कुछ ये हैं, इन पर विचार करें।

मस्तक भूमिलाभ	कान शुभ	वक्ष विजय	लिंग स्त्रीलाभ
ललाट पदलाभ	कपोल स्त्रीलाभ	हृदय इष्टसिद्धि	भग पतिलाभ
भौंह सुख	मुख मित्रलाभ	उदर धनलाभ	गुदा वाहनलाभ
भ्रूमध्य सुख	ओठ प्रियप्राप्ति	नाभि स्त्रीहानि	अण्डकोष पुत्रलाभ
नेत्र धनलाभ	दाढ़ी भय	पीठ पराजय	घुटना शत्रु वृद्धि
नेत्रकोण स्त्रीलाभ	ग्रीवा शत्रु भय	कुक्षि सुख	जंघा सुख
नेत्रपक्ष विजय	कन्धा सुख	कटि आनन्द	मूत्राशय उन्नति
नेत्रपार्श्व स्त्रीलाभ	बाहु सुभोजन	कटिपार्श्व सुख	पादपृष्ठ स्थानलाभ
नाक सुख	हाथ धनलाभ	आंत धनलाभ	पादतल राज्यलाभ

शान्तियाग—स्फुरण में केवल दायाँ बायाँ नहीं देखना है। आँख नीचे फड़क रही है कि ऊपर, भीतर फड़क रही है कि बाहर, भौंह फड़क रही है कि पलक, नाक की दिशा में है कि कान की, ऐसे अनेक प्रश्न हैं। खुजलाहट के भी भिन्न भिन्न फल हैं और इन सब की शान्तियाँ हैं। मुहूर्तचिन्तामणि में भी शकुनों का विस्तृत वर्णन है। उसमें वेश्या, मांस, मदिरा, मछली, शव, अस्त्र आदि शुभ हैं और संन्यासी, काले अन्न आदि अशुभ हैं। चलते समय शरीर से वस्त्र का खिसकना भी अपशकुन है। चलते समय यदि आप से किसी ब्राह्मण का अपमान हो गया तो समझ लें कि आयु बस इतनी ही थी। अब लौट कर आना नहीं है। बचने का एक ही उपाय है, शान्तियाग। असमय पर वृष्टि हो गयी हो या मेघ गरज रहे हों या जाते समय अपशकुन हुए हों तो पहले सूर्य और चन्द्रमा के सोने के दो बिम्ब बनाओ और उनके साथ ब्राह्मणों को घी और सोना दो।

आचार्य वराहमिहिर ने अपने बृहद्यात्रा ग्रन्थ में अपशकुनों के शान्तियज्ञ की और दान आदि की विस्तृत विधि लिखी है।

यात्रायां प्रस्थितो यश्च ब्राह्मणानवमानयेत्। नासौ प्रतिनिवर्तेत तदन्तं तस्य जीवितम्॥
सूर्येन्द्वोर्बिम्बे सौवर्णे कृत्वा विप्रेभ्योदद्याद्दु:। शाकुन्ये साज्यं स्वर्णं दत्वा गच्छेत्स्वेच्छाभि:॥

गृहप्रकरण, वास्तुशास्त्र और वास्तुपुरुष

इसके प्रथम श्लोक में बताया गया है कि आप का गाँव आप के लिए शुभ है या अशुभ। इसमें सारा महत्त्व पुकारने के नाम को और उसकी राशि को है। ज्योतिषाचार्यों का कथन है कि वह नाम ईश्वरेच्छा से रखा गया है। गाँव की राशि आप की राशि से १, ३, ४, ६, ७, ८, १२ है तो आपको गाँव छोड़ देना चाहिए। दिलीप, दशरथ, रघु, राम और लक्ष्मण आदि को अयोध्या में नहीं रहना चाहिए और बुद्ध को विहार, वाराणसी तथा मगध में नहीं जाना चाहिए। रावण के लिए लंका और विक्रमादित्य के लिए उज्जयिनी हानिप्रद है तथा शिव के लिए काशी कैलाश कष्टप्रद हैं। इसके बाद काकिणी का गणित है। अ,क,च,ट,त,प,य,श वर्गों की परस्परविरोधी चार चार जातियाँ है, आठ दिशाएँ है और एक-एक अंक हैं। अपने वर्ग की संख्या के दो गुना में ग्रामवर्ग की संख्या जोड़ कर आठ का भाग दो, शेष तुम्हारी काकिणी है। गाँव के वर्ग के दो गुने में अपना वर्ग जोड़ कर आठ का भाग दो, जो शेष बचा वह गाँव की काकिणी है। यदि वह अधिक होगी तो गाँव से कुछ पाओगे। तुम्हारी काकिणियाँ अधिक हैं तो घाटे में रहोगे। रावण और लंका का वर्ग एक है इसलिए वह लंका से न कुछ पायेगा न उसे कुछ देगा। यह सिद्धान्त सत्य होता तो दिल्ली, बम्बई तथा गाँवों के अधिकांश निवासी वहाँ से भाग जाते। आगे वाले सिद्धान्त भी ऐसे ही हैं।

११	८ पूर्व		१२
१	२	३	६
	५	१०	
७	६ पश्चिम		४

कहाँ बसें—८ राशि वालों को गाँव के पूर्व और ६ वालों को पश्चिम नहीं बसना चाहिए। कुशल चाहें तो २, ३, ५,१० राशि वाले गाँव या नगर के बीच में न बसें। आप का नाम तीर्थराज है अर्थात् आप तवर्ग में हैं तो गाँव के पश्चिम बसें परन्तु घर का द्वार पूर्व की ओर न करें क्योंकि उधर वह गरुड़ बैठा है जो आपके वर्ग साँप को खाता है। आपका नाम रामदेव है तो गाँव के उत्तर बसें और द्वार दक्षिण न करें क्योंकि उधर आपके वर्ग मृग को खाने वाला सिंह बैठा है।

मेष ईशान ८ शवर्ग	गरुड पूर्व १ अवर्ग	बिल्ली अग्नि २ कवर्ग
मृग उत्तर ७ यवर्ग	०० ००	सिंह दक्षिण ३ च वर्ग
मूषक ६ पवर्ग वायव्य	सर्प पश्चिम ५ तवर्ग	नैऋत्य ४ टवर्ग

गृहद्वार—हमें दक्षिण दिशा से बहुत भय है इसलिए कोई भी अपने गृह का द्वार दक्षिण में नहीं रखता। पश्चिम उससे कुछ अच्छा है अत: दो-चार प्रतिशत गृह पश्चिम द्वार के मिल सकते हैं। गृह के द्वार प्राय: पूर्व और उत्तर में रहते हैं किन्तु ज्योतिष में चारों दिशा में द्वार रखने का नियम है। यद्यपि नियम विरुद्ध द्वार के बहुत भीषण फल लिखे हैं किन्तु नियम अनेक हैं और एक दूसरे के विरुद्ध हैं। कुछ ये हैं-(१) ज्योतिष ने १२ राशियाँ ब्राह्मणादि चार वर्णों और पूर्वादि चार दिशाओं में बाँट दी हैं तथा यह नियम बना दिया है कि जिनकी राशियाँ ब्राह्मण (४, ८, १२) हों वे घर का द्वार पूर्व की ओर रखें। क्षत्रिय राशि (५, ६, १) वाले दक्षिण में, वैश्यराशि (२, ६, १०) वाले पश्चिम में और शूद्र राशि (३, ७, ११) वाले लोग उत्तर में गृहद्वार रखें। (२) जिसका वर्ग जिस दिशा या कोण में हो वहीं द्वार रहे। आपका वर्ग सिंह है तो दक्षिण द्वार का गृह बनावें। आपका नाम नरेन्द्र है अर्थात् तवर्ग है तो द्वार पश्चिम की ओर रखें। (३) आपके गृह का आय वृष है तो पूर्वद्वार रखें। गज आय है तो पूर्व, दक्षिण, दो द्वार रखें। सिंह आय है तो पूर्व, दक्षिण, उत्तर, तीन द्वार बनावें और ध्वज आय हो तो चार द्वारों की व्यवस्था करें। हाँ, इनमें मृग-सिंह वाला प्रश्न आयेगा। (४) तिथियों के अनुसार भी

द्वारव्यवस्था है। (५) आपके गृह में यम का नहीं बल्कि इन्द्र और भूप का अंश रहे।

आजकल विशेष रूप से यही देखा जाता है पर अंश लाने की परस्पर विरुद्ध कई विधियाँ है। (१) गृहारम्भ के दिन सप्तशलाकाचक्र के अनुसार गृहनक्षत्र और गृहारम्भनक्षत्र सामने न पड़ें। (२) पीछे न पड़ें। (३) उस दिन लग्नकुण्डली के अनुसार गृहनक्षत्र और गृहारम्भनक्षत्र सामने न रहें। (४) पीछे न रहें। इनके अतिरिक्त अन्य नियम भी हैं। सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि यह सारी व्यवस्था राशि के अनुसार है। आपके घर में यदि बारहों राशियों के अथवा ७-८ राशियों के लोग हैं तब क्या होगा? प्रत्येक दिशा में द्वार के दो निश्चित स्थान हैं। उनके सामने मार्ग हो, वृक्ष हो, दूसरे के घर का कोना हो, कूप हो, खंभा हो या घूमने वाली वस्तु हो तो स्वामी की मृत्यु, रोग, शोक, अपव्यय, मिरगी, स्त्रीदोष आदि फल होते हैं। किवाड़ अपने से खुले तो उन्माद, अपने से बन्द हो तो कुलनाश, भीतर झुका हो तो स्वामीनाश और वाहर झुका हो तो विदेशवास होता है। द्वारा सम्बन्धी अन्य भी अनेक फल हैं।

गृहपिण्ड—गृह बनाते समय सर्वप्रथम पिण्ड (लम्बाई-चौड़ाई) पूछा जाता है। ज्योतिषी उससे गृह का आय, व्यय, द्रव्य, ऋण, वार, अंश, तिथि, योग और आयु बताते हैं। आयु यहाँ १२० से अधिक नहीं है परन्तु ३०० वर्षों के कच्चे और ५००० वर्षों के पक्के गृह देखे जा रहे हैं। पिण्ड में धन और आय को अधिक बनाने और अन्य गुणों को लाने की शक्ति होती तो निश्चित है कि कोई ब्राह्मण दरिद्र, मूर्ख, निर्बल, रोगी और अल्पायु आदि न रहता। वस्तुतः गृह की लम्बाई-चौड़ाई से धन, ऋण, आयु आदि का कोई सम्बन्ध नहीं है। नोना लगने, छल्ली जोड़ने और ओसारी बनाने के बाद पिण्ड समाप्त हो जाता है तथा शास्त्रों के अनुसार पिण्ड में ऊँचाई और दीवार की मोटाई भी देखी जाती है जिसे आजकल जजमान नहीं पूछते। शहरों में पिण्ड नहीं पूछा जाता जबकि लक्ष्मी का वहीं वास है। भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में पिण्ड की विभिन्न पद्धतियाँ हैं। कहीं दीवार क्षेत्रफल के भीतर रहती है, कहीं बाहर रहती है और कहीं आधी भीतर तथा आधी बाहर रहती है। लिखा है कि पिण्ड में और मुहूर्त में सूर्य और मंगल के वार, राशि और अंश हैं तो आग लगेगी तथा नाना प्रकार के कष्ट होंगे पर इन दोषों से युत अनेक सुखी गृह विद्यमान हैं। सत्य यह है कि सूर्य-मंगल अशुभ ग्रह नहीं हैं और पिण्ड देखने की यह पद्धति नयी है।

गृहनिर्माण में वर्णव्यवस्था

वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में चारों वर्णों के लिए क्रमशः छोटे-बड़े १४ गृहों की व्यवस्था की है। ब्राह्मण के ५, क्षत्रिय के ४, वैश्य के ३ और शूद्र के नन्हें-नन्हें दो गृह हैं। उन्हें कमरा कहना अच्छा होगा। यहाँ हाथों की संख्या विषम होने का नियम नहीं है। चारों के गृहवर्ण क्रमशः श्वेत, रक्त, पीले और काले हों। उनकी मिट्टियों में घी, रक्त, अन्न और मदिरा की गन्ध आती हो। अन्य नियम भी हैं। ब्राह्मणादि के गृहपिण्ड ये हैं-३२×३५।५, २८×३०।१६, २४×२६।१०, २०×२२। १६, १६×१७।१४॥। क्षत्रिय २८×३१।१२, २४×२७, २०×२२।१२, १६×१८। वैश्य २४×२८, २०×२३।८, १६×१८। शूद्र २०×२५, १६×२०। इनके अतिरिक्त मन्त्री, वेश्या, सेनापति आदि के लिए पृथक् व्यवस्था है। ज्योतिषी और पुरोहित का सबसे छोटा गृह २८ हाथ का है। ब्राह्मण कहीं भी घर बना सकता है पर क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के गृहों का क्रमशः पूर्व दक्षिण और पश्चिम ओर ढालू होना आवश्यक है।

शल्योद्धार—वास्तुदेव हर घर में बैठे हैं और प्रत्येक गृह उनका शरीर है। गृह में वास्तुपुरुष के अतिरिक्त अन्य भी ६४-८१ देव बैठे रहते हैं। लिखा है कि वास्तु के शरीर का जो अंग हड्डी या कील आदि से युत होगा, गृहस्वामी के उस अंग में पीड़ा होगी। उसे जानने के लिए विश्वकर्मा ने उपाय बताया है कि प्रश्न पूछते समय, गृहारम्भ में अथवा हवन के समय जजमान के जिस अंग में खुजलाहट होती है, वास्तु के उसी अंग में शल्य रहता है। जिस देव को आहुति देते समय छींक, खुजलाहट, गाली, रुदन, अपानवायु आदि अपशकुन हों उसी देव के स्थान में शल्य मिलेगा। देवों के स्थान पोथी में लिखे हैं।

इन्द्रायस्वाहा कहते समय कौवा बोला तो पूर्व में हड्डी मिलेगी क्योंकि इन्द्र का स्थान पूर्व में है। प्रश्न करते समय सिर खुजलाया तो ईशानकोण में और लिंग खुजलाया तो इन्द्र जयन्त के बीच में शल्य मिलेगा। शल्य के हड्डी, लोहा, लकड़ी, कोयला आदि अनेक भेद हैं। उनके फल हैं धनहानि, पशुपीड़ा, रोगभय, शस्त्रभय, चोरभय, मृत्यु आदि। प्रश्न के समय अंगस्पर्श से शल्य की गहराई का भी पता लग जायेगा। सिरस्पर्श का अर्थ है डेढ़ हाथ गहराई। प्रश्न में अवर्ग, कवर्ग आदि से दिशाओं का बोध होता है। प्रश्नाक्षर क है तो अग्निकोण में दो हाथ नीचे गधे की हड्डी मिलेगी। च अक्षर है तो दक्षिण में नरास्थि मिलेगी। ट है तो नैऋत्य कोण में कुत्ते की हड्डी मिलेगी। इन सब से राजदण्ड, मृत्यु और पशुनाश आदि कष्ट होते हैं। कोई अपशकुन हो जाय तो जहाँ खड़े हो वहीं अस्थि मिलेगी। हाथी, घोड़ा, कुत्ता, आदि बोल उठें तो वहीं उसी जीव की हड्डी मिलेगी। अंग स्पर्श का विशेष फल है।

गृहारंभे च कण्डूतिः स्वांगे यत्र प्रवर्त्तते। शल्यमासादयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा॥
अग्नेर्दिशि च कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वये। केशाः कपालमर्त्यास्थि भस्मलोहे च मृत्यवे॥
शकुनसमयेऽथवान्ये हस्त्यश्वादयोऽनुवाशन्ते॥
तत्प्रभवमस्थि तस्मिन् तदंगसंभूतमेवेति ५३।१०७॥
अवलोकयेद् गृहपतिः क्व संस्थितः स्पृशति किं चांगम्। ५३।१०५॥

गृह नापते समय सूत फैलाने में गधे का शब्द सुनाई दे अथवा उसे कुत्ते आदि लाँघ दें तो भी वहीं अस्थि होगी। उस समय शान्त दिशा की ओर मुख करके पक्षी मधुर रव कर रहें तो वहाँ खोदने पर बहुत सा धन मिलेगा जहाँ गृह–स्वामी बैठा है। फैलाते समय यदि सूत्र टूट जाय तो गृहपति की मृत्यु होगी। गाड़ने वाली कील हाथ से छूट जाय और गिरते समय उसका मुख नीचे की ओर हो तो उसे महान् रोग होंगे। कलश यदि गिर जाय तो सिररोग और उलट जाय तो कुल में उपद्रव होगा। स्तम्भ खड़ा करते समय यदि गिर जाय, काँप उठे या तिरछा हो जाय और खड़ा करने के बाद उस पर कोई पक्षी आदि बैठ जाय, कुत्ता मूत दे तो पूर्व में कथित इन्द्रध्वज के समान अशुभ फल जानना चाहिए।

यहाँ चार हाथ नीचे भूमि में स्थित हड्डी को भयंकर कहा गया है पर प्राचीनकाल में हड्डी और चमड़े का पर्याप्त प्रयोग होता था और उनसे लोग घृणा नहीं करते थे। भगवान् के सामने ढोल मृदंग पर कीर्तन होता था। आज भी शंकर शृंग से और हरि शंख से नहलाये जाते हैं, शंख बजाने से बलाएँ भागती हैं, राजभवन में पशुओं के सिर लटकाये जाते हैं और ढाल तलवार में चमड़े–हड्डी लगे रहते हैं। शिव डमरू बजाते हैं और बाघम्बर मृगचर्म बिछाते–पहनते हैं। सितार, वीणा और इसराज आदि की घोड़ियाँ हड्डी की बनती हैं, परदे ताँत से बाँधे जाते हैं और उनकी सारी लकड़ियाँ सहरेस से जोड़ी जाती हैं। चलनी चमड़े की है, सूप में चमड़ा लगा है और प्राचीन काल में तलवार में, पलंग और सिंहासन में हाथी दाँत आदि लगे रहते थे। खूँटी का नाम ही नागदन्त है और रानियाँ हाथी दाँत की चूड़ियाँ आदि पहनती हैं। धरती का नाम मेदिनी है। इसके कण कण में एक राक्षस का मेद सना है। और आजकल सहस्त्रों कालोनियाँ कब्रिस्तान में बनी हैं। हम आँगन में बैठ कर यज्ञ करते हैं, वहाँ अनेक पशुओं को बलि देते हैं, देवों को उनके मांस की आहुतियाँ देते हैं, मांस, मज्जा, रक्त आदि को प्रसाद मानकर उदरस्थ करते हैं और कई हड्डियाँ चबाते हैं। विश्वकर्माजी स्वयं ही वास्तु–शान्ति में अनेकों बलियाँ दिलाते हैं और आँगन में माँस, रक्त, मेद, मज्जा बिछाते हैं पर धरती में चार हाथ नीचे स्थित हड्डी को भयंकर कहते हैं, यह एक आश्चर्य है। घर में जूता, शंख, मृदंग और हाथी दाँत रहने पर कुछ नहीं होता पर हड्डी भीषण स्वप्न दिखाती है।

पाश्चात्य विद्वान् भारतीय संस्कृति को ढाई सहस्त्र वर्षों से प्राचीन मानने को तैयार नहीं थे पर हड़प्पा मोहेनजोदड़ो की खुदाई होते ही वह छ सहस्त्र वर्ष पीछे चली गयी किन्तु हमें यह बात कभी किसी भूगर्भवेत्ता ज्योतिषी ने नहीं बतायी। ज्योतिषी ने हीरा, पन्ना, सोना, चाँदी, आलमोनियम, लोहा, तेल आदि की खदानें कभी न बतायी, गाँव में गड़ी अरबों खरबों

की सम्पत्ति कभी न बतायी पर हड्डी बतांता है। वह जब किसी अपरिचित गाँव में भूमि शोधने और हड्डी निकालने जाता है तो गाँव के बाहर खेलते बच्चों से पूछता है कि अमुक बाबू का घर किधर है पर हम समझते हैं कि वह तीनों लोकों का रहस्य जानता है और सचमुच जब चाहे, विवाह का उत्तम मुहूर्त बताकर गाड़ियों में आना-जाना दुष्कर कर देता है और जब चाहे सारे बाजों को वर्ष भर के लिए खूँटी पर टँगवा देता है।

दिक्साधन—मुहूर्त्तमार्तण्ड में लिखा है कि-दिङ्मूढ़के स्यान्मृतिः। अर्थात् आपके गृह की दिशा में थोड़ी सी भी त्रुटि है तो घर में अनेक मृत्युएँ होंगी पर आजकल नगरों में शुद्धदिशा के अनुसार गृह बनाने की सुविधा नहीं है और गाँवों में कोई पण्डित दिक्साधन करके शुद्ध बनवा दे तो पागल समझा जायेगा। इसका कारण यह है कि वहाँ पढ़े-लिखे लोगों को भी शुद्ध दिशा का ज्ञान नहीं है। ध्रुव तारा इस समय ध्रुवस्थान से ६७ कला हट गया है। वस्तुतः शुद्ध पूर्व वह है जहाँ २३ सितम्बर और २२ मार्च को सूर्योदय होता है अर्थात् जिस दिन दिन-रात्रि समान होते हैं परन्तु आजकल हम जिसे पूर्व, उत्तर आदि मानते हैं वे सब वास्तविक स्थान से थोड़ा दायें हटे हैं। फिर भी जनसंख्या बढ़ती जा रही है, इसलिए ज्योतिष के फलों और भाषा की समीक्षा आवश्यक है।

जलाशय और वृक्ष घर से किस दिशा में शुभ

घर से पूर्व, अग्निकोण और दक्षिण आदि में कूपादि जलाशयों का फल पुत्रनाश, अग्निभय और कलह आदि लिखा है तथा केवल उत्तर और ईशानकोण के कूपों को शुभ कहा है। आँगन का कूप अति अशुभ है पर काशी के अधिकांश गृहों के आँगन में कूप हैं, आजकल आँगन में हैण्ड पम्प लगे हैं और पर्वतीय प्रदेशों में गाँव की सब दिशाओं में लोग एक कूप का पानी पीते हैं। गंगा, गोमती, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि अनेक पावन नदियाँ एवं सागर हमसे दक्षिण हैं तो क्या उन्हें अशुभ कहें? लिखा है कि घर के पास काँटेदार, दूध वाले और फल वाले वृक्षों से शत्रुभय, सन्ताननाश और धननाश होता है। घर में इनकी लकड़ी लगाने का भी निषेध है और अशोक, शमी, शाल आदि को शुभ कहा है पर आजकल घर के पास नीम, आँवला, बेल, आम, जामुन आदि लगाये जाते हैं, घर में इनकी लकड़ियों तथा बाँस का प्रयोग होता है और सब शुभ सिद्ध हो रहे हैं।

यहाँ वास्तुप्रकरण में आय, व्यय, आयु, वार, चन्द्रमा और वास्तु के नक्षत्र का आगे-पीछे न रहना, यमांश, शालाध्रुवांक आदि अनेक ऐसे विषय हैं जिनकी कोई उपपत्ति नहीं है। वे सब मनमाने हैं। उनकी समीक्षा का यहाँ अवकाश नहीं है। गृहारंभ में कुछ ही नक्षत्र और कुछ ही मास गृहीत हैं पर मासों में यह अड़ंगा है कि इस मास में इसी मुख का गृह बनेगा और उसमें भी सूर्य को अमुक राशि में रहना चाहिए। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि गृहारम्भ में सूर्य और चन्द्रमा के कुछ ही अन्तर गृहीत हैं। लिखा है कि सूर्य से चन्द्रमा तीन नक्षत्रों के भीतर है तो लग्न चाहे जितना सुन्दर हो, गृहारंभ करने पर गृह आग से भस्म हो जायेगा। उसके बाद के चार नक्षत्रों में है तो घर मनुष्यों से शून्य हो जायेगा, सब लोग मर जायेंगे। १९ से आगे वाले नक्षत्रों में स्वामिनाश, दरिद्रता और पीड़ा आदि फल लिखे हैं। गृहप्रवेश का चक्र इससे भिन्न है। उसमें २७ नक्षत्रों के फल हैं अग्निदाह, जनशून्यता, लाभ, लक्ष्मी, कलह और गर्भनाश आदि। गृहारंभ में उस चक्र के अतिरिक्त एक दूसरा अड़ंगा है पृथ्वी शयन। सूर्य से चन्द्रनक्षत्र ५, ७, ९, १२, १९, २६ है तो पृथ्वी सोई रहती है। यद्यपि इसमें पृथ्वी के सोये रहने का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता पर प्रत्यक्ष कहे जाने वाले ज्योतिष के सारे नियम अप्रत्यक्ष हैं और बलपूर्वक लादे गये हैं। ऐसा ही एक अन्य अड़ंगा गृह प्रवेश में भी है। वहाँ देखा जाता है कि हवन के समय आहुति पापग्रहों के मुख में न चली जाय और अग्नि पृथ्वी को छोड़कर आकाश-पाताल में न चला गया हो। ये सब भी लालबुझक्कड की कल्पनाएँ हैं।

राहुपूँछ—यहाँ राहु की आकृति सर्प सदृश है और उसकी पूँछ पर शिलान्यास करने का आदेश है परन्तु राहु की पूँछ एक ही मास और एक ही तिथि में देवालय, जलाशय, गृहारंभ और वधू के तृतीय आगमन आदि अनेक कर्मों में भिन्न

भिन्न दिशाओं में मानी जाती है। इसका रहस्य अज्ञात है। आगे लिखा है कि खात उन नक्षत्रों में खोदो जिनके मुख नीचे हैं और दीवार का आरंभ उन नक्षत्रों में करो जिनके मुख ऊपर हैं। द्वार में कपाट खड़ा करने का नक्षत्रचक्र दूसरा है।

गृहप्रवेश—गृहप्रवेश में वर्ष के आठ मास निषिद्ध हैं और केवल चार—माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ गृहीत हैं। उनमें भी शुक्लपक्ष विशेष शुभ है। नक्षत्र केवल आठ गृहीत हैं पर उनमें भी पंचांगशुद्धि, लग्नशुद्धि, शुक्रदिशा और रविदिशा आदि बीसों बाधक हैं अतः निर्दोष समय दुर्लभ है।

वामरवि—पुराणों का कथन है कि पृथ्वी कुम्हार चक्र की भाँति चपटी और गोल है तथा सूर्यादिग्रह उसके केन्द्र में स्थित सुमेरु पर्वत की पृथ्वी के समानान्तर मार्ग में प्रदक्षिणा करते हैं। ज्योतिषी यद्यपि देखते हैं कि यह कथन प्रत्यक्ष—विरुद्ध है और ग्रह ऊपर नीचे घूम रहे हैं फिर भी वे शुक्र, रवि, चन्द्रमा आदि को वाम—दक्षिण करते समय पुराणों का ही अनुकरण करते हैं। गृहप्रवेश के समय शुक्र का पीछे और रवि का बायें रहना अति आवश्यक है पर ज्योतिष की इसकी परिभाषा मिथ्या है। मध्याह्नकाल में सूर्य सिर के ऊपर (दशम भाव में) रहता है पर ज्योतिष कहता है कि वह पश्चिम और पूर्वमुख से गृहप्रवेश करने वालों के लिए बायें और दायें रहता है। मध्यरात्रि में सूर्य क्षितिज के ठीक नीचे अर्थात् हमारे पैरों के नीचे रहता है और ज्योतिष के मत में वह पूर्व और पश्चिम मुख वाले ग्रहों में प्रवेश करने वालों के बायें और दायें रहता है पर यह असंभव है। ज्योतिष की यह अन्धेर इसी प्रकार सर्वत्र है। जजमान को गृह में प्रविष्ट होने में एक सैकण्ड के पचासवें भाग से भी कम समय लगता है। उस समय यदि शुक्र सामने और रवि आगे, पीछे एवं दायें रहा तो पचासों विपत्तियाँ एक साथ टूट पड़ेंगी किन्तु उसके पूर्व—पश्चात् वही स्थिति दस घण्टे रहे तो कुछ नहीं बिगड़ता, यह कथन विचारणीय है।

वास्तुपुरुषपूजा—हमारे यहाँ अनेक जड़ प्राकृतिक दृश्य, जड़ पदार्थ और सत्ताविहीन काल्पनिक पदार्थ देव मानकर पूजे जा रहे हैं। नवग्रह, अग्नि, वायु, नदी, सागर ही नहीं, मण्डप, कलश, ओखली, मूसल, लोढ़ा, हरिस आदि भी पूज्य हो गये हैं। गृहदेव वास्तुपुरुष भी ऐसा ही है। मत्स्यपुराण (अध्याय २५२) का कथन है कि वास्तुशास्त्र के भृगु आदि १८ आचार्य हैं पर सबसे पहले इसे विष्णु ने मछली बन कर मनु को पढ़ाया। अन्धकासुर से लड़ते समय कुपित शंकर के ललाट से पसीना गिरा तो उससे भीषण मुख वाला एक विशालकाय जीव उत्पन्न हो गया। ऐसा लगता था कि वह पृथ्वी, द्यौ, आकाश तीनों लोकों को निगल जायेगा। भूमि पर गिरे हुए अन्धकासुर के सब सैनिकों का पूरा रक्त पी जाने पर भी वह भूखा रह गया। उसने तपस्या से शिव को प्रसन्न किया और वर माँगा कि मुझे तीनों लोकों को ग्रसने की शक्ति दीजिए। शिव ने वर दे दिया और वह अपने शरीर से तीनों लोकों को आवेष्टित कर कृकलास (गिरगिट) के रूप में मुख नीचे कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। सब देव—दानव आदि भयभीत होकर ब्रह्मा और शिव के साथ उसके शरीर पर बस गये। उनके बस जाने से ही वह वास्तुपुरुष कहा जाता है। इसके बाद माँगने पर देवों ने उसके भोजन की यह व्यवस्था की कि वास्तुपूजन में दी हुई बलियाँ, अन्य उत्सवों और यज्ञों में दी हुई पशुओं की बलियाँ, अज्ञान पूर्वक किये हुए यज्ञ और वास्तुपूजा न करने वाला मनुष्य आदि तुम्हारे आहार होंगे। इसीलिए गृहप्रवेशयज्ञ में सोने की गिरगिट की मूर्ति में वास्तुपुरुष की पूजा की जाती है।

पुरान्धकवधे घोरे घोररूपस्य शूलिनः। ललाटस्वेदसलिलमपतद् भुवि भीषणम्॥
ग्रसमानमिवाकाशं सप्तद्वीपां वसुंधराम्। ततोन्धकानां रुधिरमपिबत् पतितं क्षितौ॥
सदाशिवस्य पुरतस्तपश्चक्रे स दारुणम्। भवामि देवदेवाहं त्रैलोक्यग्रसनक्षमः॥
ततस्तत् त्रिर्दिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः। स्वदेहेनान्तरिक्षं च रुन्धानः प्रपतद् भुवि॥
शरीरं च ततो देवैर्ब्रह्मणा तस्य शूलिना। दानवासुररक्षोभिरवष्टब्यं समन्ततः॥
निवासात् सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते। आहारो वैश्वदेवान्ते वास्तुमध्ये च यो बलिः॥
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तथाज्ञानात् कृतो मखः। यज्ञोत्सवादौ च बलिस्तवाहारो भविष्यति॥

शंका–(१) वास्तुशास्त्र के अधिकांश नियम १२ राशियों और सात वारों पर आधारित हैं पर ये दोनों आज के दो सहस्र वर्ष पूर्व प्रचलित हुए हैं तो भृगु, वशिष्ठ और मनु के पास कैसे पहुँच गये? क्या यह कथन वंचना नहीं है? (२) वेद में मनु और विष्णु का वर्णन है पर विष्णु के चतुर्भुज या मछली रूप का नहीं। क्यों। (३) मानव मनु से बात करने के लिए विष्णु मछली क्यों बन गये? क्या मछली की भाषा मानव से उच्च होती है? (४) क्या शंकर भगवान् अन्धकासुर को स्वयं नहीं मार सकते थे? उसे मारने के लिए उन्होंने पसीने से असुर क्यों पैदा किया? (५) क्या किसी के पसीने से दैत्य पैदा हो सकता है? (६) जो शिव हैं उनके पसीने से ऐसा भीषण प्राणी कैसे पैदा हो गया? (७) शिव ने दैत्यों के नाश के लिए शक्तिमान् वास्तुपुरुष पैदा किया तो वह पुनः उसी शक्ति को पाने के लिए तप क्यों करने लगा और वर क्यों माँगने लगा? (८) वेद में वास्तोष्पति शब्द आया है पर वहाँ यह कथा और उसका गिरगिट रूप नहीं है। क्यों? (९) क्या शिव से उत्पन्न प्राणी मनुष्यों का मांस खाता है और रक्त पीता है? (१०) क्या उसे निरपराध प्राणियों के रक्तमांस की बलि देना उचित है? (११) क्या गिरगिट तीनों लोकों को अवरुद्ध कर सकता है? (१२) वह पृथ्वी में कैसे समाया? (१३) वह साकार और विशालतम गिरगिट हमें दिखाई क्यों नहीं देता? (१४) शिव के पसीने से सुन्दर मंगल पैदा हुआ तो भद्रा और वास्तुपुरुष भीषण क्यों हो गये? (१५) वास्तोष्पति भद्रा की भाँति कालमान या मंगल की भाँति ग्रह आदि क्यों नहीं बना? (१६) क्या वह प्रत्येक गृह में बैठा है? (१७) क्या कोई साकार प्राणी करोड़ों, अरबों स्थानों में बैठ सकता है? (१८) अन्य धर्म वाले इसे क्यों नहीं जानते और क्यों नहीं पूजते? (१९) यह उन न पूजने वालों को खा क्यों नहीं जाता? (२०) मुसलमानों और ईसाइयों की संख्या बढ़ क्यों रही है? (२१) क्या वास्तुपुरुष अपनी रक्षा कर रहा है और अपूजकों को कष्ट दे रहा है? (२२) आप इसे बलि कभी कभी देते हैं तो वह अन्य समयों में क्या खाता है? (२३) वह अनेक पशुओं और मानवों को उठा क्यों नहीं ले जाता? (२४) उसको गिरगिट का ही रूप क्यों प्रिय लगा? उसमें क्या विशेषता है? क्या दानवों को खाने में गिरगिट बाघ की अपेक्षा अधिक समर्थ होता है? (२५) गिरगिट की मूर्ति सोने की ही क्यों बनायी जाती है? अन्य धातु की क्यों नहीं? (२६) सारे देव ऐसे भीषण, कुरूप और अस्पृश्य प्राणी के शरीर पर क्यों बस गये? (२७) वास्तुपुरुष जिन घरों में बैठा हैं उनमें क्या सब देव बैठे हैं? प्रलाप के अतिरिक्त क्या आपके पास इसका कोई अन्य प्रमाण है? (२८) क्या भगवान् शंकर के पूजन से वे सिद्धियाँ नहीं मिलतीं जिन्हें यह गिरगिट दे देता है। (२९) गृहप्रवेश के लिए और इसके पूजन के लिए वर्ष भर में ४–६ दिन ही क्यों मिलते हैं? क्या पूजा और हवन की भी साइत देखनी पड़ती है? क्या प्रतिदिन पूजा हवन करना पाप है? (३०) जो वास्तुपुरुष अन्धक दैत्य को खाने के लिए पैदा हुआ वह उन भ्रष्ट मन्त्रियों, नेताओं, विधायकों, न्यायाधीशों, कीट–पालों, ठेकेदारों, बनियों, अध्यापकों, पण्डों, पुरोहितों, पादरियों, मुल्लाओं, डाक्टरों आदि को क्यों नहीं खाता जो विदेशी बैंकों को भारत के धन से पाट रहे हैं, जो धर्मवादी होकर भी पापी हैं, अन्धकासुर से भयंकर हैं और जिन्होंने देश को नरक बना दिया हैं? क्या अब उसका पेट भर गया है? (३१) आप वास्तुशान्ति में सैकड़ों देवों की पूजा क्यों करते हैं? क्या ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि में से कोई एक आपकी रक्षा नहीं कर सकता? वास्तुपुरुष के शरीर में सब देवों का वास है तो केवल उसी को क्यों नहीं पूजते?

नागकच्छपवराह–पोथी में लिखा है कि पृथ्वी को नाग, कच्छप, वराह और दिग्गजों ने पकड़ न रखा होता तो वह पाताल में चली जाती अतः वे सब पूज्य हैं। इसलिए शिलान्यास में वे और नन्दा,भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा, पद्म, महापद्म, शंखादि, ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर, गौरी, गणेश आदि पचासों देव पूजे जाते हैं और शेष, कच्छप, वराहादि ताँबे की एक लोटिया में बन्द करके गाड़ दिये जाते हैं। नन्दाभद्रादि भूमि में ढक दी जाती हैं और सोने का वास्तुपुरुष भी धरती में गाड़ दिया जाता है। प्रश्न यह है कि क्या ये वहाँ वायु और भोजन बिना छटपटाते नहीं होंगे। पूजा में गौरी गोमय की, गणेश सोपारी के, नवग्रह पल्लव के तथा अन्य देव अक्षतों के बनते हैं तो क्या वास्तुपुरुष ताँबे के नहीं बन सकते?

वास्तुवेदी के देव––इस वेदी के ये देव विचित्र नाम के हैं––भृश, वितथ, गृहक्षत, भृंगराज, मृग दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, असुर शोष या शेष, पाप, रोग, नाग, मुख्य, भल्लाट, उरग, राजयक्ष्मा, पृथ्वीघर, आपवत्स, चरकी, विदारी,

पूतना, पापराक्षसी, जृंभक, पिलिपिच्छ, उग्रसेन, डामर, जृंभक, गन्धर्व, शिखी, पर्जन्य, जयन्त, आदि। विश्वकर्मा का आदेश है कि पूजा के समय इन्हें मछली, शष्कुलीमांस, पक्षीमांस, वकरे की जीभ, बकरे आदि के मांस, सुरा, कच्चा मांस, रक्त, मज्जा आदि की वलि दी जाय। कुछ श्लोक ये हैं--

सत्याय घृतगोधूमं मत्स्यमन्नं भृशाय च। अन्तरिक्षाय शष्कुल्या मांसं देयं च शाकुनम्।।
भृंगराजाय मेषास्य जिह्वायास्तु वलिं हरेत्। यमाय पिशितान्नं च सुरा प्रोक्तासुराय च।।
मध्वाममांसं मित्राय दद्यात् पृथ्वीधराय च। आपवत्साय मांसानि कूष्माण्डमपि वै दधि।।
रुधिरास्थि पीतरक्तं वलिं देव्यै निवेदयत्। वायव्ये पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरासवम्।।
ततः प्रागादितो दिक्षु स्कन्दाय रुधिरं सुरा। जृंभकाय तथा मांसं रुधिरं पश्चिमे न्यसेत्।।
वसारुधिरमांसानां कृशरायास्तथैव च। अग्निजिह्वाय नैर्ऋत्ये दुग्धं सैन्यवसंयुतम्।।
दिक्पालाय कराल्यै च पक्वमांसं सरक्तकम्। आगमोक्तेन मन्त्रेण क्षेत्रपालबलिं तथा।।
नमो भगवते क्षेत्रपालाय भैरवाय लखखख कें कें पशुमुण्डं गृह्ण स्वाहा।।
नैर्ऋत्यां दिशिभूतेभ्यः सन्ध्याकाले बलिं हरेत् पुरोपरि पशून् दद्याद् द्वाराग्रे महिषं तथा।।

इस पूजन में सम्मिलित होने वाले पूज्यों का स्वरूप यह है--रक्त से नहाये, छली, लम्वोदर, नाटे, लम्वे, मोटे, लँगड़े, कुरूप, भीषण, पेट से रहित, मुखहीन, हाथी और मेघ से काले, ऊँट, वकरा, मुर्गा सदृश मुख वाले, वहुमुख, वहुबाहु, सर्पाभरण, काने, बहुरूप गन्धर्व, पिशाच आदि। इन सव को वैसी ही वलियाँ भी देनी हैं।

असृक्प्लुताश्च पिशुना मांसभक्षा अनेकशः। कूष्मांडाः पूतनारोगा ज्वरा वैतालिका ग्रहाः।
खंजाः स्थूलास्तथैकाक्षाः सर्पपक्षिमुखास्तथा। अवक्त्रा उष्ट्रवक्त्राश्च द्विपमेघशरीरिणः।।
वहुपादा बहुदृशः सर्पाभरणभूषिताः। गृह्णन्तु बलयः सर्वे तृप्तायान्तु बलिर्नमः।।

जो विश्वकर्मा ५६ प्रकार के मांसों से, रक्त से, सुरा से इनकी पूजा कराते हैं वे ही यह भी कहते हैं कि घर में आठ हाथ नीचे हड्डी रहने पर सर्वनाश हो जायेगा और वे उसका पता लगाते हैं शरीर के किसी अंग की खुजलाहट से प्रश्न से और शकुनों से।

आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि यदि सुखी रहना चाहते हो तो आँगन के बीचों वीच वाले ब्रह्मा के स्थान की रक्षा करो। उन पर जूठा या बच्चों का मलमूत्रादि गिरने पर पीड़ा होगी।

सुखमिच्छन् ब्रह्माणं यत्नाद्रक्षेत् गृही गृहान्तःस्थम्।
उच्छिष्टाद्युपघाताद् गृहपतिरुपतप्यते तस्मिन्(बृ० सं ५३।६६)।।

प्रश्न यह है कि यदि जूठा आदि गिराना अनुचित है तो उन देवों के शरीर पर पैर रखना भी अपराध है और घर के हर कोने में इन्द्र, वरुण सविता, यम, सोम, अदिति, दिति, अग्नि आदि देव-देवी बैठे हैं तो उस घर में कैसे रहा जाय? इतने देवों के रहते हमें कष्ट क्यों होता है? ये दीखते क्यों नहीं? उत्तर और ईशान में सोम और शिव का वास है पर बाध्य होकर और विश्वकर्मा की आज्ञा से पनाला वहीं बहाना पड़ता है। क्या इसका कोई दूसरा उपाय है? गृह की चारों दिशाओं में आठ लोकपाल और दश दिक्पाल वैठे हैं तो हम मलमूत्र के लिए जायें कहाँ? आचार्य वराहमिहिर ने ५३। ६९ में लिखा है कि ये सब देव घर की ही भाँति ग्राम की भी उन्हीं दिशाओं में बैठे हैं। गृहनगरग्रामेषु च सर्वत्रैवं प्रतिष्ठिता देवाः। तो हम जायें कहाँ?

हमारे लगभग सव यज्ञों में नैर्ऋत्यकोण में चतुःषष्टिवेदी बनती है। उसकी देवियों के नाम हैं-गजानना, सिंहमुखी, गृध्रमुखी, काकमुखी, उग्रग्रीवा, अश्वग्रीवा, सूकरी, शरभमुखी, उलूकी, लोमड़ी, विकटानना, अष्टमुखी, कीट-राक्षी, कुब्जा,

विकटलोचना, शुष्कोदरी, ललज्जिह्वा, शवदंष्ट्रा, वानरानना, ऋक्षनेत्रा, केकराक्षी, बृहत्तुण्डा, सुराप्रिया, कपालहस्ता, रक्ताक्षी, श्येनी, पाशहस्ता, दण्डहस्ता, प्रचण्डा, चण्डा, बालघ्नी, काली, रुधिरपायिनी, वसाभक्षा, गर्भभक्षा, शवहस्ता, अन्त्रमालिनी, स्थूलकेशी, बृहत्कुक्षी, प्रेतवाहना, धूमनिःश्वासा, स्थूलनासा, बलाकास्या आदि। इनके नाम ही बता रहे हैं कि ये क्या खाती पीती हैं। आश्चर्य है कि आँगन में जूठा गिरने से ब्रह्मा को कष्ट होता है किन्तु उसी आँगन में ऐसे देवों और देवियों को सुरा, मछली, मांस, मज्जा, रक्त आदि की बलि देने पर देव प्रसन्न होते हैं। आजकल लोगों ने ये बलियाँ बन्द कर दी हैं और उनके स्थान में दधिमाष की बलि देते हैं पर हमें सोचना है कि रक्त पीने और मांस खाने वाले देव दही और माष (उड़द) से सन्तुष्ट हो सकते हैं? यह तो उन्हें चिढ़ाना है, रुष्ट करना है परन्तु सत्य यह है कि वास्तुपति आदि ये सारे देव और देवियाँ काल्पनिक एवं मिथ्या हैं। इनकी पूजाबलि से कुछ लोगों की जीभें तृप्त होंगी, पर पाप बढ़ेगा।

•

अध्याय १०

पंचांग और धर्मशास्त्र

मार्गशीर्ष का एक नाम आग्रहायन है। वर्ष को हायन कहते हैं अतः स्पष्ट है कि किसी समय अगहन ही अग्र (प्रथम) मास था और मृगशीर्ष ही प्रथम नक्षत्र था। लोकमान्य तिलक ने यह बात अपने ओरायन में सिद्ध की है। हमारे दूरदर्शी पूर्वज जानते थे कि ऋतुओं के आरंभ स्थान चल हैं इसलिए उन्होंने वाद में कृत्तिका को प्रथम नक्षत्र मान लिया और पुनः कृत्तिका को छोड़ आश्विनी में चले आये किन्तु उन्हीं की सन्तान हम लगभग २४ अंश और २४ दिनों का अन्तर पड़ जाने पर भी अश्विनी को छोड़ नहीं रहे हैं। कुछ लोगों को भय है कि इस परिवर्तन से धर्मशास्त्र को परिवर्तित करना होगा, पर सत्य यह है कि धर्मशास्त्र को बदले बिना हम जी नहीं सकते। संवत् २०३४ के पंचांग में अधिक मास श्रावण माना जाय या आषाढ़, इसमें मतैक्य नहीं हो सका। उदयकालीन और मध्यरात्रिकालीन भेद से कृष्णजन्माष्टमी कभी-कभी चार दिन मनायी जाती है तथा हमारे बहुत कम पर्व निर्विरोध रहते हैं। अतः स्पष्ट है कि सायन गणना न मानने पर भी धर्मशास्त्र में संशोधन करना पड़ेगा। अन्यथा रामनवमी में सावन की और माघ में ज्येष्ठ की स्थिति आकर रहेगी। हमारे यहाँ कुछ लोग सूर्यसिद्धान्त को वेदवत् अपौरुषेय मानते हैं (देखिए कमलाकर भट्ट का तत्त्वविवेक) पर इस वैज्ञानिक युग में वह सदोष सिद्ध हो चुका है। अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि पृथ्वी चल है और सूर्यसिद्धान्त में लिखी ग्रहस्थिति प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने लिखा है कि सूर्यसिद्धान्त का सम्बन्ध निश्चित रूप से यवनों से है। क्या कारण है कि सूर्य को रोमकवासी मय ही शिष्य मिला। श्री सुधाकर द्विवेदी का कथन है कि यह वराहोक्त प्राचीन सूर्यसिद्धान्त नहीं है। इसका प्रादुर्भाव १०१४ ईसवी के लगभग हुआ होगा। श्री केशव लक्ष्मण दफ्तरी ने अपने ज्योतिःशास्त्र परीक्षण में मूलसूर्यसिद्धान्त का समय शक ४२१-४२७ और वर्तमान का सन् ६३१ के आसपास सिद्ध किया है। अतः स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ पौरुषेय और सदोष है। श्री भाष्कराचार्य ने एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बात यह कही है कि गणित में वही सिद्धान्त प्रमाण है जिसकी उपपत्ति हो और केशव दैवज्ञ ने कहा है कि तिथ्यादि का निर्णय उस ग्रन्थ से करो जिसमें गणित और दृश्य का ऐक्य हो।

> गणितस्कन्धे उपपत्तिमानेवागमः प्रमाणम्। यस्मिन् देशे यत्र काले
> येन दृग्गणितैक्यकम्। दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात्तिथ्यादिनिर्णयम्॥

किन्तु खेद है कि आज हम ग्रहणादि प्रत्यक्ष दृश्यों में पाश्चात्य दृश्यगणित का आश्रय ग्रहण करते हैं और तिथ्यादि में उन ग्रन्थों को मानते हैं जो अशुद्ध सिद्ध हो चुके हैं। इसका एक परिणाम देखें। काशी के हषीकेश पंचांग में शनि संवत् २००९ मार्ग कृष्ण ४ (५ नवम्बर) में तुला राशि में प्रविष्ट होता है पर विश्वपंचांग में ११ मास बाद संवत् २०१० की २८ सितम्बर को क्योंकि एक ग्रहलाघव से बनता है और दूसरा सूर्यसिद्धान्त से। यह एक गाँव के दो पंचांगों की स्थिति है। काशी के अन्य पंचांगों में इसकी तिथियाँ भिन्न-भिन्न हैं।

हमारे अधिकांश ज्योतिषाचार्यों का हृदय दृश्यगणित और सायनवाद की महत्ता को स्वीकार करता है पर वे लोकाचार से विवश होकर असत् मार्ग का अवलम्बन करते हैं। इसके श्री बापूदेव शास्त्री और श्री केतकर जी के दो उदाहरण पीछे (पृष्ठ ३७५ में) लिखे हैं। महामहोपाध्याय श्री सुधाकर जी द्विवेदी ने हिन्दी में पंचागविचार नाम का एक ७२ पृष्ठों का

निबंध लिखा है। उसका सारांश यह है--'सूर्यसिद्धान्त से स्पष्ट विदित होता है कि सूर्यांशपुरुष से मय को ज्योतिषज्ञान मिला। उसे लोग यवनाचार्य कहते हैं। हिपार्कस (ई० पू० १६०) ही यवनाचार्य है। यूरप के लोग आकर्षण सिद्धान्त के बल पर बहुत सूक्ष्म गणना तक पहुँचे हैं। दूरबीन न होने से ऋषियों को शनि के रिंग और गुरु के उपग्रहों का पता नहीं था। बराहमिहिर ने ग्रहण दिशा जानने की गर्ग की तेल वाली पद्धति का खण्डन किया है। सूर्य केन्द्रक भ्रमण का ज्ञान न होने से भास्कराचार्य ने भी लिख दिया कि बुध, शुक्र अपनी उच्च कक्षा में सूर्य की गति से घूमते हैं। सूर्य सिद्धान्त में पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य के व्यासमान अशुद्ध हैं और उनके अनुपात भी ठीक नहीं हैं, फिर भी हमारे धर्मशास्त्री कहते हैं कि हम पुराने मानों से ही तिथ्यादि बनायेंगे, उसी में व्रत करेंगे और उसी के ग्रहण से शुभाशुभ कहेंगे। हमारा ज्योतिष धर्म से सम्बन्धित है और सूर्यसिद्धान्त सत्य है। जिस लग्न से वरवधू की गाँठ जोड़ी जाती है तथा मनुष्य के भाग्य और आयु का निर्णय किया जाता है। उसमें दृग्गणितैक्य नहीं किया जाता।'' इस प्रकार अनेक दोषों का निर्देशन करने के बाद द्विवेदी जी पुनः उन्हीं का समर्थन करते हुए लिखते है--

''यद्यपि यह वास्तविक सूर्यसिद्धान्त नहीं पर वास्तविक नहीं मिलता तो इसे छोड़ना बुद्धिमानी नहीं है। इससे ग्रहणादि आकाश में दिखाई न पड़ें पर हम इसी को मानेंगे। यह गणित भूपृष्ठीय नहीं, भूगर्भीय है। हमारे यहाँ दृष्ट नहीं, अदृष्ट फल की महत्ता है। दृश्यगणित को ही मानो, यह वसिष्ठ का आदेश नहीं है। प्राचीन वेदांगज्योतिष इसलिए अग्राह्य है कि अब उसका व्यवहार उठ गया है। जिस प्रान्त में जिस सिद्धान्तग्रन्थ को मूल मानकर पंचांग बनते चले आ रहे हैं उन्हीं से अब भी बनना चाहिए। महर्षियों के आशय का पता हम अल्पज्ञों को नहीं लग सकता। मेषादि राशियों का चन्द्रमा सवा दो-दो दिनों तक एक दिशा में बताया है। इसका रहस्य अदृष्ट है। इसी प्रकार गर्गाचार्य की तेल वाली ग्रहण दिशा में भी रहस्य होगा। मैं ग्रहण आदि नाटिकल आल्मनाक से और तिथि आदि सूर्य सिद्धान्त से बनाता हूँ। इसमें प्राचीनों के वाक्य ही प्रमाण हैं। कुछ लोग दृश्य-अदृश्य दोनों में नाटिकल आल्मनाक का प्रयोग करते हैं। उनके हृदय में कलि समा गया है। वे तो अब परमात्मा की स्तुति भी नयी भाषा में करेंगे। हमारी ग्रहगणना आकाश में चमत्कार दिखाने के लिए नहीं, वैदिक धर्म की रक्षा के लिए है। सूर्यसिद्धान्त अपने रचनाकाल में भी उतना ही अशुद्ध था जितना आज है पर वेदावलम्बियों को वही मानना चाहिए। दृश्य गणना मानने पर नया धर्मशास्त्र बनाना पड़ेगा। क्योंकि इसमें एकादशी-प्रदोष एक दिन पड़ सकते हैं।''

कुछ विद्वानों का कथन है कि द्विवेदी जी का सारा कथन बापूदेव शास्त्री के विरोध में है। बापूदेव शास्त्री का पंचांग यदि चल न पड़ा होता तो वे भी वैसा ही बनाते जिसमें सारा गणित नाटिकल (दृश्य पंचांग) से रहता।

काशिराज सभा का निर्णय--दृश्य गणित अंग्रेजी गणित है। यह सूर्यसिद्धान्त की अपेक्षा विशेष सत्य होता है पर हम अंग्रेजी शास्त्रों पर श्रद्धा नहीं कर सकते। ज्योतिष में मुख्य प्रमाण आप्तवचन है, दृष्ट नहीं। हम जिस संक्रान्ति में स्नानदान करते हैं उसमें २३ दिनों की त्रुटि है पर धर्मसम्मत वही है।

कल्याण के हिन्दूसंस्कृति अंक में इन्द्रनारायण द्विवेदी का मत

''मध्यकालीन ज्योतिषियों में से कुछ ने 'प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं' की आड़ में स्वल्पकालीन अनुभव और चर्मचक्षु के बल पर दृग्गणित (सायन) द्वारा अनादि अव्यय वेदांग ज्योतिर्विज्ञान में मनमाने बीजादि संस्कार देकर भ्रम उत्पन्न कर दिया है और मनमाने अयनांश की कल्पना कर ली है। जिस प्रकार ईश्वर निःश्वसित हमारे वेद अपरिवर्तनशील हैं उसी प्रकार वेदभगवान् का चक्षुस्वरूप ज्योतिर्विज्ञान भी अपरिवर्तशील, निर्मल, सूक्ष्म और अव्यय है। गर्गसंहिता के 'म्लेच्छा हि यवनास्तेषु' श्लोक को देखकर कुछ विद्वानों ने यवनाचार्य को यूनानी, लोमश को रोमक और पौलस्त्य को पोलिस की कल्पना करके हमारे ज्योतिर्विज्ञान में विदेशियों को प्रविष्ट कराने की चेष्टा की है, जो सर्वथा भ्रम है। वर्तमान सूर्यसिद्धान्त ही मूल सूर्यसिद्धान्त है, इसमें सन्देह नहीं। गणित और फलित का सम्बन्ध शब्द और अर्थ की भाँति है। विदेशी उपकरणों से तिथि आदि का साधन

विडम्वना मात्र है, इसमें कोई तत्त्व नहीं। शंकर वालकृष्ण दीक्षित, सुधाकर द्विवेदी, चिन्तामणि विनायक वैद्य आदि का यह कथन कि हमारी सूक्ष्म गणना यूनानियों से ली गयी है, निस्सार है। ऋग्ज्योतिष में भी अश्विन्यादि क्रम है। पंचवर्षीय पंचांग वैदिकों के लिए था, सारी जनता के लिए नहीं। चित्रादि नक्षत्रों का चैत्रादि मासों की पूर्णिमाओं से सदा संयोग होता है। बापूदेव शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी, दयानन्द सरस्वती और पाश्चात्यों को यह भ्रम हो गया है कि पृथ्वी घूमती है....।'' आजकल इसी मत का वाहुल्य है।

धर्मशास्त्र और सामुद्रिक शास्त्र

सामुदिकशास्त्र, नर–नारी के शारीरिक लक्षणों द्वारा भविष्य वताता है इसलिए वह भी ज्योतिष का एक अंग है। वह नारी के कुलक्षणों के आधार पर उसके त्याग का आदेश देता है अत: धर्मशास्त्र से भी सम्बन्धित है। इस शास्त्र का श्रोता और लेखक समुद्र है पर पता नहीं, कौन सा समुद्र। गणित और फलित, दोनों ज्योतिष सूर्य ने मय और वराहमिहिर को पढ़ाये हैं अत: समुद्रशास्त्र में शंका अनुचित है। वेदों का कथन है कि ब्रह्मा सवके पति हैं, सृष्टिकर्ता हैं और तीनों लोकों के धारक हैं तो हम उनके अतिरिक्त अन्य किस देव को आहुति दें। हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे...(यजुः २३।१)परन्तु पुराणों के ब्रह्मा बड़े कामी हैं और उन्हें अपने भविष्य का पता नहीं है। वे उसे जानने और सुधारने के लिए राम, कृष्ण आदि की सेवा में तत्पर हैं किन्तु हमारे कवियों के कंथनानुसार वे छठीं रात के अन्त में प्रत्येक शिशु के ललाट पर उसका सारा भविष्य लिख देते हैं। वह न राई भर घटता है, न तिल भर बढ़ता है, चाहे जितना पुरुषार्थ करो। महाकवि हर्ष ने नैपधकाव्य में लिखा है कि भिक्षुकों के ललाट में ब्रह्मा ने ब्राह्मी लिपि में उनकी दरिद्रता लिख दी है अत: कोई दानी राजा उसे टाल नहीं सकता। पता नहीं, ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि का भविष्य कौन लिखता है।

विधना ने जो लिख दिया छठी रात को अंक।
राई घटे न तिल बढ़े रहो जीव निःशंक॥
अयं दरिद्रो भवितेति वैधर्सीं लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।
मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादपः प्रणीय दारिद्र्यदरिद्रतां नृपः १।१५॥
ललाटपट्टे लिखिता विधात्रा पष्ठीदिने याऽक्षरमालिका ताम्॥

हमारे शास्त्रों का कथन है कि ब्रह्मलेख के कारण ही सूर्य–चन्द्र को राहु ग्रसता है, हाथी, साँप, पक्षी आदि बाँधे जाते हैं और बहुत से मेधावी दरिद्र रहते हैं। ब्रह्मलेख के कारण ही शिव नंगे रहते है, विष्णु साँप पर सोते हैं और राम ने सोने के मृग का पीछा कर अपनी पत्नी खो दी। ब्रह्मा गर्भ में ही मनुष्य की आयु, कर्म, धन, विद्या आदि लिख देते हैं। उन्होंने जो लिखा है वह होकर रहेगा। दुर्दिन आने पर ब्रह्मलेख के कारण बुद्धि अपने आप मलिन हो जाती है और उसे कोई सुधार नहीं सकता।

विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणासौ लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः॥
असंभवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोपि पुंसां मलिना भवन्ति॥
आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च। पंचैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥
यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा। नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः॥

सम्भव है शिव के नग्नत्व और हरि के सर्पशयन की भाँति कवियों के ये कथन भी कोरे काव्य हों। यदि ये सत्य हैं तो रोगियों को वैद्य के पास नहीं जाना चाहिए और सीता, सावित्री, पार्वती, इन्दुमती, शकुन्तला, रुक्मिणी तथा आज की लाखों

कन्याओं के पिताओं को दामाद के अन्वेषण का कष्ट नहीं उठाना चाहिए। चुपचाप बैठें, निश्चित तिथि पर सारी व्यवस्था अपने आप हो जायेगी। हमें मुसलमानों और यूरोपियनों के अत्याचार से न दुखी होना चाहिए था न उन्हें हटाने का प्रयास करना चाहिए था। ब्रह्मलेख की इस कुधारणा को सन्तों और कवियों द्वारा अधिक बल मिला है। श्री तुलसीदास के कथनानुसार ज्योतिषी और योगी नारद ने एक कन्या की हस्तरेखा और अंगों को देखकर बता दिया कि इसका पति अमर और विश्व विजयी होगा पर पति बनने के लिए वे स्वयं प्रयास करने लगे। नारद में विष्णु को शाप देने की शक्ति थी पर रेखा का वास्तविक फल जानने को नहीं। विष्णु जानते थे कि कन्या नारद को नहीं मिलनी है फिर भी जाने क्यों, उन्हें कुरूप बना दिया और उनका यह शाप ले लिया कि तुम्हारी पत्नी हरी जायेगी। राम की पत्नी का हरण ब्रह्मा ने उनके ललाट में लिख दिया था तो ज्ञानी नारद ने शाप क्यों दिया? ब्रह्मा ने सब कुछ लिख दिया है तो शिव, दुर्वासा, नारद आदि शाप और वर क्यों देते हैं? क्या वे ब्रह्मलेख को मिटाते हैं? गोसाई जी ने लिखा है कि गाँव के घास छीलने वाले अनपढ़ लोग भी राम के राजलक्षणों को पहचानते थे और कहते थे कि इनका पैदल चलना ज्योतिष को झूठा सिद्ध कर रहा है। पार्वती की रेखाओं को देखकर भी नारद ने इसी प्रकार सब कुछ बता दिया था फिर भी न जाने क्यों मैना और हिमालय रो रहे थे।

राजलछन सब अंग तुम्हारे। देख सोच अति हृदय हमारे॥
रेख कुलिस अंकुश ध्वज सोहे–ज्योतिष झूठ हमारे भाये
जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल वेष।
अस स्वामी एहि कहं मिलिहि, परी हस्त अस रेख॥
कह मुनीस हिमवन्त सुनु, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटन हार॥
सुख दुख जो लिखा लिलार हमारे जाब जहं पाउब तहीं

जातकाभरण आदि के अनुसार ब्रह्मा यह लेख गर्भाधान काल में भाल पर लिखते हैं और कुछ के मत में जन्म से छठीं रात में लिखते हैं अर्थात् इसमें भी मतभेद है। ज्योतिष यह सब पढ़ लेता है। शंका होती है कि गर्भाधानकाल और छठीं रात में न भाल बना रहता है न हाथ तो ब्रह्मा कहाँ लिखते हैं? ललाटादि की थोड़ी सी रेखाओं द्वारा ब्रह्मा सैकड़ों वर्षों की क्षण क्षण की घटनाओं को कैसे लिखते हैं और ज्योतिषी उन्हें कैसे पढ़ लेता है। रावण ने ७२ चौकड़ी राज किया था अतः उसकी आयु ४० करोड़ वर्ष से कम न रही होगी। तो उसने अपने जलते कपाल की कुछ रेखाओं को देख इतने दिनों के लेखों को कैसे पढ़ लिया।

आधानकाले कमलोद्भवेन वर्णावली भालतलान्तराले।
या कल्पिता पश्यति दैववित्तां होरागमज्ञानविलोचनेन॥
जरत बिलोकेउं जबहिं कपाला। विधि के लिखे अंक निज भाला॥
नर के कर आपन वध बाँची। हँसेउ जानि विधि गिरा असांची॥

भारतीय सामुद्रिक शास्त्र में हस्तरेखा के अतिरिक्त, सिर, केश, भौंरी, ललाट, नेत्र, पलक, भौंह, कान, नाक, और, कपोल, मुख दाँत, जीभ, तालु, ग्रीवा, वक्षस्थल, बाहु, स्कन्ध उदर, नाभि, कटि, नितम्ब, वृष्ण, लिंग, योनि, मूत्रधारा, जाँघ, पादतल, अँगुली, नख, स्वर, तिल, मशक, गति, वर्ण, रोम, रोमकूप, ऊँचाई आदि अनेक अंगों के लक्षणों का विशद वर्णन है। उनमें से कुछ के शुभ और कुछ के अशुभ होने पर फल कहने में बड़ी कठिनाई होती है। केवल हाथ के ही विभिन्न भागों के फल परस्पर विरुद्ध हो जाते हैं, अतः सब अंगों के फलों का समन्वय अशक्य है। एक के अनुसार मनुष्य राजा होता है तो दूसरे के अनुसार दरिद्र। एक के अनुसार विद्वान् सिद्ध होता है तो दूसरे से मूर्ख। ज्योतिषियों ने इसके समन्वय के लिए यह

युक्ति निकाली है कि पहले हाथ, पैर आदि की रेखाओं से आयु निश्चित कर लो, फिर शरीर को पैर से सिर तक दस भागों में बाँट दो और आयु के भी दस भाग करके उनमें रख दो। क्रम यह है–(१) पैर, (२) घुटना, (३) लिंग–योनि, (४) नाभि, (५) उदर, (६) हृदय, (७) कन्धा, (८) ओठ, (६) ललाट, (१०) सिर। ये १० सीमाएँ हैं। शरीर का जो भाग सुन्दर हो, आयु के उस भाग को सुखी कहो परन्तु इस व्यवस्था में कई दोष हैं। (१) पहला यह कि शारीरिक लक्षणों और रेखाओं से आयु का निर्धारण कठिन है तथा स्वयं सामुद्रिक शास्त्र ने ही पचासों बार आयु के घटने और बढ़ने के हेतु बताये हैं। (२) शरीर को दस भागों में ही क्यों बाँटा जाय? जातकशास्त्र उसे १२ राशियों में बाँटता है और दोनों के बँटवारे की पद्धतियाँ भिन्न भिन्न हैं। एक पैर से आरम्भ करता है और दूसरा सिर से, तो हम किसे सत्य मानें? क्या पैर से लड़कपन का और सिर के लक्षणों से वृद्धावस्था का फल बताया जा सकता है? (३) यह शास्त्र कहता है कि दोपहर के पूर्व शुभवार, नक्षत्र और लग्न आदि में सोना, चाँदी वस्त्र आदि देकर हाथ दिखाओ। क्या ऐसा करने पर रेखाएँ बदल जायेंगी? (४) यह शास्त्र कहता है कि स्त्रियों, स्त्री प्रकृति वाले पुरुषों, बालकों तथा शुक्लपक्ष और दिन में जन्मे लोगों का बायाँ हाथ मुख्य होता है तथा शेष लोगों का दायाँ प्रधान होता है।

शुभेह्नि शुभनक्षत्रे शुभलग्ने शुभे रवौ। पूर्वाह्ने मंगलैर्युक्तः परीक्षेत विचक्षणः॥
स्त्रियः स्त्र्यंशनरस्यापि फलं मुख्यं तु वामतः। शुक्लपक्षे वामहस्तलक्षणं मुख्यमीरितम्॥
कृष्णपक्षे प्रजातस्य मुख्यं दक्षिणलक्षणम्। एवं रात्रौ दिने जातस्त्रीनोः केचित्फलं विदुः॥

(५) यहाँ शंका होती है कि जिसका जन्म कृष्णपक्ष और दिन में या शुक्लपक्ष और रात में हुआ है उसका कौन हाथ देखे? (६) शास्त्र कहता है कि पुरुषों का हाथ दोपहर के पहले और स्त्रियों का बाद में देखे। पुरुषों का दायाँ और स्त्रियों का बायाँ हाथ अपने हाथ में ले कर देखे। पुरुषों का धन, वाहन, स्त्री, मातृपक्ष, गृह, खेत आदि बायें में देखे और ज्ञान, यश आदि दायें में। स्त्रियों का पतिसुख, धर्म, पितृपक्ष आदि दायें में देखे। जो मशक, तिल, स्फुरण आदि पुरुषों के दायें अंग में शुभ होते हैं वे स्त्रियों के बायें अंग में शुभ होते हैं। जजमान को चाहिए कि हाथ में सोना, चाँदी आदि लेकर फल सुनने जाय और कहता रहे कि आपका कथन सत्य है किन्तु इसमें भी कई शंकाएँ हैं। (७) क्या ब्रह्मा जी कुछ वातें दक्षिण हाथ में और कुछ वाम हाथ में लिखते हैं? (८) यदि ऐसा है तब तो वे ललाट और पादतल में तथा शरीर के अन्य अंगों में भी कुछ ही वातें लिखते होंगे। तब रावण ने ललाट रेखा को देखकर सव कुछ कैसे जान लिया? (६) क्या मध्याह्न के पूर्व स्त्रियों की रेखाएँ स्पष्ट नहीं रहती और मध्याह्न के बाद स्पष्ट हो जाती हैं? (१०) क्या मध्याह्न के पूर्व पुरुषों की हस्तरेखाएँ स्पष्ट रहती हैं और बाद में अस्पष्ट हो जाती हैं? (११) शुक्ल और कृष्णपक्षों का उल्लेख भारतीय पंचांगों में ही है। संसार के अन्य पंचांगों में ये पक्ष नहीं हैं तो ब्रह्मा जी उन देशों के मनुष्यों की हस्तरेखाएँ बनाते समय क्या दायें–बायें हाथ का विचार नहीं करते?

सामुद्रिकशास्त्र में सुन्दरता ही सब कुछ है

यहाँ शरीर के दस भागों के जो फल लिखे हैं उनमें सौन्दर्य का ही महत्त्व है और अन्यत्र भी यही स्थिति है। सारांश यह कि सुन्दर लोग भाग्यशाली और असुन्दर लोग अभागे हैं। वराहमिहिर का भी अन्तिम निर्णय यही है। उन्होंने लिखा है कि विरूप नरनारी प्रायः सदोष होते हैं और जहाँ सुन्दर आकृति है वहाँ सारे गुण है–– प्रायो विरुपासु भवन्ति दोषा यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति। दिल्ली के एक महान् विद्वान् श्री सत्यव्रतशास्त्री ने संस्कृत में सहस्र श्लोकों का इन्दिरा–गान्धीचरितं नामक एक महाकाव्य लिखा है। उसका मूल्य ७२ रुपया है और कागज सुन्दरतम है। उसके मुखपृष्ठ पर इन्दिराजी के विषय में लिखा है–

सौम्याकृतिः सौम्यगुणाभिरामा यात्राकृतिस्तत्रगुणा वसन्ति

अर्थात् इन्दिरा जी में सुन्दर आकृति है इसलिए सारे गुण हैं। दो चार के अतिरिक्त हमारे सव कवि इसी पक्ष में हैं

परन्तु इस परिभाषा को मानने पर अनेक विद्वान्, योगी, कवि, शूर, वैज्ञानिक, सन्त, नेता आदि गुणहीन एवं अभागे सिद्ध हो जायेंगे तथा अनेक चोर, व्यभिचारी और अभिनेता महान् हो जायेंगे। तब वेदव्यास, सुदामा, अष्टावक्र, चाणक्य, गान्धी, लालबहादुर शास्त्री और अनेक कुलपतियों को निकृष्ट और अभागा कहना होगा किन्तु यह सिद्धान्त सत्य के ठीक विपरीत है। विश्व के हर देश और हर धर्म के लोग अत्यन्त श्रद्धापूर्वक वसिष्ठ, विश्वामित्र, रघु, राम, कृष्ण, बुद्ध, कपिल, कणाद, जरथुस्त्र, मूसा, ईसा, मुहम्मद, हसन, हुसेन, रामदास, शिवा जी, राणाप्रताप, आर्यभट, ब्रूनो, न्यूटन, आइन्स्टीन आदि अनेक महापुरुषों का जो प्रातः स्मरण करते हैं वह निश्चित रूप से उनके ज्ञान, प्रतिभा, तप, त्याग वैराग्य, सत्त्व, कर्मठता और परोपकार आदि गुणों पर आधारित हैं, अंगों की सुन्दरता पर नहीं। सुन्दरता क्षणभंगुर है, उसका क्षण-क्षण में ह्रास होता है पर गुण प्रतिक्षण विकसित होते रहते हैं। इसीलिए महात्मा अष्टावक्र ने रूप के दासों को चमार कहा था। इस सन्दर्भ में रुक्मिणी विवाह की यह कथा मननीय है। विवाह के पूर्व भगवान कृष्ण और रुक्मिणी देवी ने एक दूसरे को भी देखा नहीं था पर उनके गुणों को सुन-सुन कर रुक्मिणी ने विमुग्ध होकर आत्मसमर्पण कर दिया था। स्वयंवर के पूर्व उन्होंने श्रीकृष्ण को भेजे पत्र में लिखा था कि हे अच्युत! आप अपने गुणों द्वारा त्रिभुवनसुन्दर हो गये हैं। वे गुण कान में प्रविष्ट होने पर सारे तापों को हर लेते हैं और सत्प्रेरणा देते हैं। अब सारे नेत्र वाले आपका दर्शन कर सारे लाभों को पाना चाहते हैं और मेरा चित्त तो निर्लज्ज होकर आपके चरणों में बस गया है (भगवत् १०।५२।३७)।

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोंऽगतापम्
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे॥

इसी प्रकार (१०।४३।१७) में लिखा है कि भगवान् जब रंगभूमि में पधारे, लोग उन्हें भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देख रहे थे। वे मल्लों को वज्र, गोपों को स्वजन, दुष्ट नृपों को शासक, वसुदेवदेवकी को पुत्र, कंस को मृत्यु और योगियों को परब्रह्म प्रतीत हो रहे थे पर कुछ नारियाँ उन्हें सुन्दर कामदेव समझ रही थीं।

सामुद्रिकशास्त्र और नारी

पुत्र के विवाह की बात चल रही हो तो पहले शुभ तिथि, वार, नक्षत्र और मुहूर्त में ब्राह्मणों के साथ जा कर कन्या देखो और उसका एक भी अंग कुलक्षण हो तो विवाह मत करो क्योंकि कुलक्षण कन्याएँ पति की आयु हर लेती हैं और सुलक्षणाएँ आयु बढ़ा देती हैं। शास्त्र कहता है कि जिन अंगों के लक्षणों का ज्ञान विवाह के पूर्व असंभव है वे यदि बाद में ज्ञात हो जायें और अशुभ हों तो पत्नी छोड़ दे पर उसका सर्वथा त्याग न करे क्योंकि वैसा करने पर वह स्वतंत्र हो जायेगी। अन्न-वस्त्र दिया करे पर पत्नी न माने।

मुहूर्ते तिथिसम्पन्ने ग्रहे सौम्ये बलान्विते। ब्राह्मणैः सह संगम्य कन्यां पश्येत कालवित्॥
वर्जयेत्सर्वथा भूष्णुरशुभा लक्षणैश्च याः। भर्तुरायुर्हरन्त्येता आलस्यादपरीक्षिताः॥
बालभावादविज्ञातलक्षणामुद्वहेद्यदि। प्रागल्भ्येप्यगुणां ज्ञात्वा सर्वथा तां परित्यजेत्॥

सामुद्रिक कहता है कि कन्या के हाथ में खंभा, कलश, कुण्ड आदि हैं तो उसका पति यज्ञकारी पुरोहित होगा। हल-मूसल आदि है तो खेत जोतने वाला किसान होगा। कन्या के हाथ, पैर स्तन, नाभि आदि के साथ हँसी, ऊँचाई, प्रकृति, चाल, और रक्त आदि का परीक्षण आवश्यक है। केश कुंचित हों, मुख गोल हो, नाभि दक्षिणावर्त हो तथा उदररेखाओं, जाँघों, वक्ष और दोनों स्तनों पर रोम न हों। हँसते समय गालों पर गड्ढे न बनते हों, कपिलवर्णा न हो, रोम से रहित न हो, बहुत रोम वाली न हो, नेत्र भूरे न हों, हीनांगी या अधिकांगी न हो, और नाटी, मोटी, काली पुरुषाकृति न हो क्योंकि ऐसी कन्याएँ पति की आयु हर लेती हैं। नक्षत्र, वृक्ष, नदी, अन्त्यज, पर्वत, पक्षी, साँप, दासी, दीन, और भीषण नामोवाली न हो तथा बहुत

बोलनेवाली न हो। नख पर श्वेतबिन्दु हों तो उसका कुलटा होना निश्चित है। अँगूठा चौड़ा है तो विधवा होगी और लम्बा है तो भाग्यहीन होगी। पैर की कोई अँगुली दूसरी पर चढ़ी है तो अनेक पतियों को मार कर वेश्या होगी। चलते समय धूल उड़ती है तो तीन पीढ़ियों का विनाश करने वाली व्यभिचारिणी होगी। अँगूठे के पास वाली अँगुली थोड़ा सा भी आगे निकली है तो विवाह के पूर्व व्यभिचारिणी होती है। योनि वायीं ओर ऊँची है तो कन्याएँ होंगी और दक्षिण ओर ऊँची है तो पुत्र होंगे अतः इसको भी किसी प्रकार देख लेना आवश्यक है। नेत्र में लाल रेशे हैं तो भ्रष्टा होगी और पिंगलनेत्रा है तो भाई से व्यभिचार करेगी।

नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिंगलाम्। नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्॥
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनाभिकाम्। नखेषु विन्दवःश्वेता यस्याः सा कुलटा भवेत्॥
विधवा विपुलांगुष्ठा दीर्घांगुष्ठेन दुर्भगा। परस्परसमारूढ़ाः पादांगुल्यो भवन्ति चेत्॥
हत्वा बहूनपि पतीन् वारवामा भविष्यति। यस्याः पथि समायान्त्या रजो भूमेः समुच्छलेत्॥
पांसुला सा प्रजायेत कुलत्रयविनाशिनी। प्रदेशिनी भवेद्यस्या अंगुष्ठादतिरेकिणी॥
कन्यैव कुलटा सा स्यादेष सामुद्रनिश्चयः। वामोन्नतस्तु कन्यादो दक्षिणः पुत्रदो भगः॥
रक्तनेत्रातु दुःशीला पिंगाक्षी भ्रातृगामिनी। वामहस्तस्तु नारीणां पुरुषाणां च दक्षिणः॥

जिसके पैर के अँगूठे और अनामिका का भूमि से स्पर्श नहीं होता वह व्यभिचारिणी होती है और पति को मार डालती है। उन्नत, मोटी, छोटी और विरल अँगुलियों वाली नारी दरिद्रा और दासी होती है। एक रोमकूप में तीन रोमों वाली विधवा होती है, बहुत गोरी पिंगला नारी विषकन्या होती है और जिसके पैर की एक अँगुली दूसरी पर चढ़ी हो वह अनेक पतियों की हत्या कर वेश्या हो जाती है। अनामिका और मध्यमा भूमि को न छुयें तो दो और तीन पति करती है। चलते समय नारी की कटि या जाँघ किटकिट करे तो वह पति को खा जाती है। वामभाग में आवर्त अशुभ होते हैं। जिसके ललाट, उदर और भग पर आवर्त होते हैं वह देवर, ससुर और पति को खा जाती है। स्तन और योनि के दायें भाग में तिलक या लांछन शुभ होते हैं। जिसके दायें स्तन पर लाल तिलक का लांछन होता है वह चार कन्याओं और तीन पुत्रों की माता होती है। किन्तु वही जब बायें स्तन पर होता है तो एक पुत्र उत्पन्न होने के वाद विधवा हो जाती है। योनि के दायें भाग में यदि मशकादि हो तो राजपत्नी और राजमाता होती है। यही चिह्न काला हो तो पतिघ्नी और पुंश्चली होती है। नाक का अग्रभाग लटका हो, लाल हो, दीर्घ हो, चिपटा हो और छोटा हो तो क्रमशः विधवा, क्लेशदात्री, दासी, कलहकारिणी और दुःखिनी होती है।

यस्या अनामिकांगुष्ठौ पृथिव्यां नैव तिष्ठतः। पतिं मारयते शीघ्रं स्वेच्छाचारेण वर्तते॥
अत्यन्तपिंगला नारी विषकन्या समीरिता। त्रिरोमा रोमकूपेषु यस्याः सा विधवा भवेत्॥
नोद्वहेत्कपिला कन्या वामनां पुरुषाकृतिम्। रक्तवर्णां तथा कृष्णां पिंगाक्षीं श्यावदन्तिनीम्॥
गच्छन्त्यास्तु यदा जंघा कटिः किटकिटायते। सा नारी हन्ति भर्तारं शीघ्रं नैवात्र संशयः॥
त्रिष्वावर्तो भवेद्यस्या ललाट उदरे भगे। त्रीणि सा भक्षयेन्नारी देवरं श्वशुरं पतिम्॥

सामुद्रिक में नारी के नेत्र की लम्बी समीक्षा है। उनमें पिंगाक्षी, केकराक्षी, श्यावाक्षी, लोलाक्षी, विषमाक्षी, रक्ताक्षी, धूम्राक्षी, प्रेताक्षी आदि के भीषण दोष हैं। जीभ श्वेत हो तो पानी में मरती है, श्यामा हो तो कलह करती है, मांसला हो तो दरिद्रा होती है, लम्बी हो तो अभक्ष्य खाती है और चौड़ी हो तो प्रमाद करती है। कोई रेखा अंगुष्ठ मूल से निकल कर कनिष्ठा की ओर जाय तो पति को खा जाती है। रेखाओं के आधार पर उदरपीड़ा, पतिघात, गर्भपात सन्तानहानि, विषभक्षण, जारसंग, शस्त्र-अग्नि-जल आदि से मृत्यु तथा अन्य कुफल लिखे हैं। मसूड़े काले हों तो चोरिन, दाँत बड़े हों तो विधवा, विरल हों तो दरिद्रा और नीचे अधिक हों तो मातृघातिनी होती है। कन्या का तालु श्वेत हो तो विधवा, पीला हो तो संन्यासिनी, काला हो

तो सन्तानहीन और रूक्ष हो तो चोर की पत्नी होती है। नाक का अग्र भाग झुका हुआ, बड़ा, छोटा, लाल और चिपटा हो तो क्रमशः दासी, विधवा, कामिनी और रुग्णा होती है। दाहिना स्तन ऊँचा हो तो पुत्रवती और बाँयाँ ऊँचा हो तो कन्यावती होती है। दीर्घ कुचाग्र वाली नारी कामिनी एवं धूर्ता होती है तथा चूचुक के प्रविष्ट होने पर पति से द्वेष करती है। योनि ऊर्ध्वरोमा हो, उसकी मणि छिपी हो और दोनों कोर सटे हों तो सौभाग्यवती होती है। योनि खुली हो, मणि दिखाई देती हो और रोम हों तो कई अशुभ फल होते हैं। योनि पर शंखावर्त शुभ है पर अन्य आवर्त अशुभ होते हैं। शिराल, रोमशा और रेखांकित योनि भी अशुभ होती है। हमारे सबसे बड़े आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि जिस स्त्री के पैर का कनिष्ठा या उसके पास वाली अँगुली भूमि को न छुये अथवा अँगूठे के पास वाली अंगूठे से कुछ ही आगे हो तो वह कुलटा और अति पापिनी होती है किन्तु अंगूठे के पास वाली तर्जनी स्वभावतः तुल्य या बड़ी होती है और परीक्षण करने पर यह सिद्धान्त सर्वथा मिथ्या सिद्ध हो जाता है पर ज्योतिषी को परीक्षण की आवश्यकता नहीं है। वह मुनिवचनों में संशय को पाप मानता है। इसलिए वराहमिहिर ने भी बिना परीक्षण किये केवल मुनिवचनों का संग्रह किया है और लिख दिया है–

> कनिष्ठिका वा तदनन्तरा वा महीं न यस्याः स्पृशति स्त्रियाः स्यात्।
> गताथवांगुष्ठमतीत्य यस्याः प्रदेशिनी सा कुलटातिपापा (बृ०सं० ७०।१६)॥
> पुरुषलक्षणमुक्तमिदं मया मुनिमतानि निरीक्ष्य समासतः॥ ६६। ४० ॥

इस प्रकार सामुद्रिक के भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में नारी के लक्षणों का विस्तृत वर्णन है और उसमें पर्याप्त मतभेद हैं। जहाँ मतभेद नहीं है वहाँ यह प्रश्न है कि (१) यदि आठ सुलक्षण और आठ कुलक्षण हों तो निर्णय क्या किया जाय? (२) सामुद्रिक के अनुसार चार वैधव्य योग हों और जन्मपत्री में आठ सौभाग्य योग हों तो किसकी बात मानी जाय? (३) क्या रूपवानों में मूर्ख, पापी, दरिद्र और रोगी आदि नहीं हैं? (४) क्या रूपविहीनों में शूर, त्यागी, विद्वान्, धर्मात्मा और सन्त नहीं हैं?

पुरुषों के हाथ–हाथ की पाँच अँगुलियों में नन्दा, भद्रा आदि पाँच तिथियों, २८ नक्षत्रों, १२ मासों और नव ग्रहों के स्थान निश्चित कर दिये गये हैं। राहुकेतु हाथ के पीछे हैं और सूर्यादि सात ग्रह हथेली में हैं किन्तु पाश्चात्य पद्धति में ग्रहों के पर्वत इनसे भिन्न हैं। पता नहीं, इस विषय में भारतीय सिद्धान्त सत्य हैं या पाश्चात्य, अथवा दोनों काल्पनिक हैं। ज्योतिषियों ने राहु-केतु नामक काल्पनिक ग्रहों का स्थान हाथ में निश्चित कर दिया किन्तु अभी तक यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो इधर-उधर भटक रहे हैं। आशा है, कुछ दिनों में वे भी हाथ में स्थान पा जायेंगे। कुछ का कथन है कि हाथ देख कर मनुष्य के जन्म कालीन मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र, वार आदि बताये जा सकते हैं। जन्म दिन में हुआ है या रात्रि में, इसका भी निर्णय किया जा सकता है परन्तु यह कथनी, कथनी मात्र है। भारतीय ज्योतिषियों ने हाथ में बारह मासों के स्थान निश्चित कर दिये हैं। दक्षिणायन के छ मास दायें में और उत्तरायण के छ बायें में हैं। हाथ का तलवा श्रावण है, भाद्रपद आदि पाँच मास अँगूठे से कनिष्ठा तक पाँच अँगुलियों में हैं और माघ से आषाढ़ तक बायें हाथ में है। प्रश्न यह है कि मुसल्मानों के मुहर्रम, सफ़र आदि और पाश्चात्यों के जनवरी, फरवरी आदि मासों का आरंभ, अन्त और मध्य हमसे भिन्न है पर ब्रह्मा सबके एक हैं तो उन्होंने उनके मास हाथ में कहाँ बैठाये हैं। क्या हमारी व्यवस्था से उनकी संगति संभव है?

आगेवाले हस्तचित्र में कनिष्ठा के पास पत्नीरेखाएँ बनी हैं किन्तु वे पाश्चात्य पद्धति में कनिष्ठा के नीचे बुध के पर्वत पर मानी जाती हैं। भारतीय पद्धति में पत्नी रेखाएँ ही नारी के हाथ की पति रेखाएँ होती हैं परन्तु यह कथन असंगत है क्योंकि अनेक पतिव्रताओं और विश्वस्त पत्नीव्रतियों के हाथों में इस स्थान में कई रेखाएँ देखी जाती हैं जबकि उन्होंने दूसरे पति और दूसरी पत्नी की बात कभी सोची ही नहीं हैं। अतः इन रेखाओं के आधार पर पतियों और पत्नियों की संख्या बताना अशिष्टता है। यहाँ अँगूठे में शुक्र के पास जो पुत्र-पुत्रियों की रेखाएँ हैं इन्हें भी कुछ आचार्य पति-पत्नीरेखाएँ मानते हैं। चूंकि

यहाँ प्राय: अनेक रेखाएँ रहती हैं इसलिए प्रत्येक पुरुष की एकाधिक पत्नियाँ होनी चाहियें पर यह सिद्धान्त प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। कुछ ग्रन्थकारों ने आयुरेखा और मणिबन्ध के बीच वाली भाई-बहन की रेखाओं को भी पत्नीरेखा माना है तथा कुछ ग्रन्थकारों का कथन है कि जिन साधुओं ने विवाह नहीं किया है उनकी पत्नीरेखाएँ शिष्यों की संख्याएँ हैं परन्तु ईसाहमसीह और शंकराचार्य आदि के इतने ही शिष्य नहीं थे अत: यह कथन और वृहत् मतभेद इस शास्त्र को काल्पनिक सिद्ध कर देता है। कुछ ग्रन्थों में वायें हाथ की मातृरेखा से पत्नीसुख का वर्णन है और पत्नी के अन्य स्थान भी हैं।

(१) आयूरेखाकनिष्ठान्तर्लेखा: स्युर्गृहिणीप्रदा:। (२) कनिष्ठातो मणिंयावन्महिला...।
(३) स्युर्यावत्योन्तरेरेखा मणिजीवितरेखयो:।तावत्यो महिलास्तस्य स्त्रियास्तावन्मिता: प्रिया:॥
(४) स्त्रिया दक्षिणपाणिस्था: पतिरेखा: प्रकीर्तिता:। (५) अंगुष्ठाच्चमणिं यावद्रेखाभि: श्यालकान्वदेत्॥

शंका—भागवत में शशबिन्दु की एक करोड़ और कृष्ण की १६१०८ पत्नियाँ हैं। दशरथ की कहीं ३५० और कहीं ७०० पत्नियों का वर्णन है। शशबिन्दु की हर पत्नी को एक सहस्त्र पुत्र और कृष्ण की हर पत्नी को १० पुत्र एवं १ कन्या का वर्णन है। सगर को साठ सहस्त्र और विश्वामित्र, धृतराष्ट्र एवं तालजंघ को सौ-सौ पुत्र थे। रघु, वाजीदलीशाह और निजाम आदि भी बहुपत्नीक थे तो हाथ में पत्नी-पुत्रों की इतनी रेखाएँ कहाँ बनेंगी? इनके अतिरिक्त माता, पिता, धर्म, भाई, गोत्र, यात्रा, मित्र, विभव, विद्या, आयु, पद, धन, पुण्य, भाग्य आदि अनेक रेखाओं का वर्णन है पर सबके स्थानों और फलों में मतभेद है तथा बारबार लिखा है कि यह कुछ का मत है। केषांचिन्मतमीरितम् तो निर्णय कैसे होगा? अण्डकोश, लिंग और मूत्रधारा का विशद वर्णन है पर उसमें भी बहुत मतभेद है। लिखा है कि समान अण्डकोश वाला राजा और विषम वाला दरिद्र होता है तथा एक वाला पानी में डूब कर मरता है। लिंग के दक्षिणावर्त होने पर पुत्रवान् और वामावर्त होने पर कन्यावान् होता है। अन्य अनेक फल हैं। इसी प्रकार कान, नेत्र, ललाट और अँगुली आदि प्रत्येक अंग के वर्णन हैं।

आयुरेखा—इसके द्वारा माता, पिता की और अपनी आयु के वर्ष तथा अनेक भयों और रोगों के फल बताये जाते हैं आयुरेखा जितनी अँगुलियों को पार करती है उतने २५ वर्षों की आयु बतायी गयी है और जहाँ कटी रहती है वे वर्ष कष्ट के हैं पर हाथ देखने वाले इस सिद्धान्त से हताश हो चुके हैं। कुछ ग्रन्थ कनिष्ठिका की लम्बाई से आयुनिर्णय करते हैं वह यदि अनामिका के ऊपरी पर्व को पार कर गयी तो सौ वर्ष आयु बतायी जाती है पर यह फल भी सफल नहीं है। पाश्चात्यपद्धति में हमारी पितृरेखा ही जीवन रेखा है और वहाँ की आयुनिर्णयपद्धति हमसे भिन्न है।

अंगुष्ठयव—एक ग्रन्थ कहता है कि अँगूठे में यव रहने से विद्या, यश और विभूति की प्राप्ति होती है, बायें अँगूठे में यव है तो शुक्लपक्ष और रात्रि में जन्म हुआ है, दायें में है तो दिन में जन्म है, दोनों में है तो कृष्णपक्ष और दिन में जन्म हुआ है परन्तु दूसरे ग्रन्थ में इसके विपरीत फल है। वस्तुत: अँगूठे के यवों से जन्मकाल का कोई सम्बन्ध नहीं है।

पाश्चात्यमत—हस्तरेखा के फलादेश में पूर्व और पश्चिम के विद्वानों में बहुत मतभेद है किन्तु इस समय भारत में जैसे वैद्यक के स्थान में ऐलोपैथी का अधिक प्रचार है, ठीक उसी प्रकार सामुद्रिक के स्थान में पाश्चात्य पामिस्ट्री प्रचलित हो गयी है। जैसे भारतीय सामुद्रिक में मतभेद है उसी प्रकार पश्चिम के हस्तविदों में भी भिन्न-भिन्न मत हैं। प्रत्येक सिद्धान्त के इतने अधिक अपवाद हैं कि वह सिद्धान्त-रह ही नहीं पाता। पामिस्ट्री ग्रन्थों की भूमिका में ही लिखा रहता है कि फल कहते समय किसी एक सिद्धान्त और रेखा पर दृढ़ न रहो। हाथ में भाग्यरेखा बड़ी है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह मनुष्य निश्चित रूप से भाग्यशाली है। भाग्यरेखा कृश है, छोटी है या है ही नहीं तो यह मत समझो कि वह सर्वथा भाग्यहीन है। हाथ का आकार, पर्वतों की स्थिति, अँगुलियों की बनावट आदि पचीसों विषयों का विवेचन करके फल कहो।

भाग्य की मातृ रेखा को पश्चिम वाले मस्तिष्क रेखा Head Line कहते हैं और पितृरेखा को जीवन रेखा Life

Line मानते हैं अर्थात् इनका माता–पिता से कोई सम्बन्ध नहीं है हमारी ऊर्ध्वरेखा उनकी भाग्यरेखा Fate Line हैं और ग्रहस्थानों में भी घोर मतभेद हैं। हम जिसे आयुरेखा कहते हैं वह पाश्चात्यों की हृदयरेखा Heart Line है और हमारे नक्षत्रस्थान उनकी राशियों से भिन्न हैं। जहाँ हमारा श्रवण नक्षत्र है वहाँ उनकी मिथुन राशि है और जहाँ हमारी अनुराधा है वहाँ उनकी कर्क राशि है। पश्चिम वाले बुध के पर्वत पर स्थित छोटी–छोटी रेखाओं को पत्नी रेखा मानते हैं किन्तु हमारी पत्नीरेखाएँ उनसे बायीं ओर हथेली के पार्श्व में हैं। भाईबहन और पुत्रपुत्री के स्थान में भी मतभेद हैं। हमारे यहाँ ग्रह अँगुलियों के अग्रभाग में हैं और वहाँ मूल में। हमारा शनि उनका बुध है और उनका शनि हमारा मंगल है।

आज के तीन सहस्र वर्ष पूर्व विश्व में कहीं भी सात वार और बारह राशियों का प्रचलन नहीं था। इसलिए ब्रह्मा ललाट या हथेली में जो लिखते थे वह राशियों और ग्रहों द्वारा नहीं जाना जाता था। पश्चिम में इन दोनों का आविष्कार होने के बाद ये ज्योतिष के आधार बन गये और कुछ दिनों बाद हथेली में भी आ बैठे। भारत ने आज के लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व पश्चिम के होरा को, राशियों को और वारों को अपनाया और यहाँ अंग्रेजी राज्य आने पर वहाँ की पामिस्ट्री भी ले ली। अब हम दृढ़ विश्वास कर बैठे हैं कि हाथ में बारह राशियों और सात ग्रह प्रतिष्ठित हो गये हैं तथा उन्हीं के आधार पर ब्रह्मलेख को पढ़ रहे हैं। आकाश के ग्रह चल हैं, बारह राशियों में सदा घूमा करते हैं किन्तु हथेली के ग्रह स्थिर हैं, अँगुलियों के पोरों में बैठी राशियों से दूर स्थित हैं। भारत के सामुद्रिक में पूरे शरीर का महत्त्व है पर यूरोप में हाथ का। भारत में पुरुष के दायें और स्त्री के बायें हाथ का महत्त्व है पर पश्चिम में दोनों का। वहाँ रेखाओं की अपेक्षा हाथ का विशेष महत्त्व है और उसके समकोण, निकृष्ट, दार्शनिक, व्यावसायिक, मिश्रित (Square, Elementary Philosophic, Artist Mixed) आदि अनेक भेद माने गये हैं। समकोण हाथ सर्वश्रेष्ठ माना जाता है किन्तु सारा फल हाथ के आधार पर ही नहीं कहा जाता। पर्वत, नख और अँगुलियों आदि का भी विचार किया जाता है पर अन्य भी अनेक बाधक हैं। वहाँ पर्वतों का ऊँचा होना शुभ माना जाता है पर सब के उच्च होने पर हथेली नीची हो जाती है इसलिए उच्च सदा शुभ नहीं होते। अँगूठा, अङ्गुली, हथेली, नखों और पर्वतों में क्या–क्या देखा जाय, इसका अभी निर्णय नहीं हुआ है। संगीत का सम्बन्ध शनि–शुक्र से तथा विवाह का गुरु और शुक्र दोनों से है। विवाह और सन्तान की रेखाएँ कई स्थानों पर बतायी गयी हैं।

वस्तुतः मनुष्य की मुखाकृति, चेष्टा और भाषण से उसके मनोभाव जाने जा सकते हैं पर सन्तान, विद्या और भाग्य आदि नहीं। ये विषय देशकालस्थिति, ज्ञान और प्रयास पर आश्रित हैं!

•

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

धर्म, नीति एवं संस्कृति विषय की प्रकाशित पुस्तकें

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
१.	भारतीय संस्कृति	डॉ. देवराज	४५.००
२.	धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-१	मू. पी. वी. काणे अनु. अर्जुन चौबे कश्यप	१४०.००
३.	धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-२	मू. पी. वी. काणे अनु. अर्जुन चौबे कश्यप	११०.००
४.	धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-३	मू. पी. वी. काणे अनु. अर्जुन चौबे कश्यप	१५०.००
५.	धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-४	मू. पी. वी. काणे अनु. अर्जुन चौबे कश्यप	१६५.००
६.	धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-५	मू. पी. वी. काणें अनु. अर्जुन चौबे कश्यप	१६५.००
८.	भारतीय ज्योतिष	अनु. शिवनाथ झारखंडी	१५०.००
९.	भारतीय ज्योतिष का इतिहास	डॉ. गोरख प्रसाद	६२.००
१०.	गीता का तात्त्विक विवेचन	आचार्य भास्करानंद लोहानी	१४०.००

सम्पर्क सूत्र

निदेशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन

६, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ - २२६००१